अप्रैल १९६४ (चैत्र १८८६)

साढ़े सात रुपये

निदेशक प्रकाशन विभाग दिल्ली-६, द्वारा प्रकाशित
और जीवणजी डाह्याभाई देसाई, नवजीवन प्रेस अहमदाबाद-१४ द्वारा मुद्रित

(पृष्ठ १३१।३२) और "नारायणस्वामी (पृष्ठ १६१।४) आदि जैसे राजनीतिक टिप्पणियोंकी किस्मके हैं और उनमें जहाँ एक ओर सरकारकी कड़ी आलोचना की गई है वहाँ दूसरी ओर संघर्षके लिए लोगोंका आह्वान भी किया गया है। खण्डके अन्तमें एक दुर्लभ प्रकरण (पृष्ठ ५११।१४) है जिसमें स्वयं गांधीजी द्वारा तैयार की गई जनरल स्मट्ससे उनकी भेंटकी रिपोर्ट दी गई है।

१ नवम्बर, १९१९को जब गांधीजी दक्षिण आफ्रिकामें उतरे तो परिस्थिति अत्यन्त निराशाजनक प्रतीत होती थी। इधर अनुयायी-गण कई वर्ष तक लगातार लड़ते रहनेके बाद थक गये थे और आराम लेना चाहते थे और उधर सरकार उनकी इस कमजोरीका लाभ उठानेके लिए कमर कसे बैठी थी। अगस्त १९१९में इंग्लैंडसे रवाना होते हुए स्मट्सने कहा था कि ट्रान्सवालके अधिकांश भारतीय तो आन्दोलनसे बिलकुल ऊब गये हैं। और दक्षिण आफ्रिका पहुँचकर उन्होंने उन सत्याग्रहियोंका संकल्प-बल तोड़नेके लिए, जो अपने निश्चयपर अब भी अटल थे अपना दमन-चक्र और जोरसे चलाना शुरू किया। सजाएँ और कठोर कर दी गई, जेल-जीवन कष्टप्रद बनानेमें कोई कसर बाकी नहीं रखी गई, अनेक भारतीयोंको भारत निर्वासित कर दिया गया और निर्वासनके दरम्यान उनके साथ भरपूर सख्ती बरती गई और जब इससे भी काम न चला तो बच्चों और स्त्रियोंके खिलाफ भी युद्ध छेड़ दिया गया। लेकिन सत्याग्रहमें गांधीजीका विश्वास डिगा नहीं और अधिक गहरा हो गया। उन्हें इस बातकी प्रतीति हो गई थी कि वे एक अभूतपूर्व संघर्षका — आधुनिक युगके सबसे जबरदस्त संघर्षका — नेतृत्व कर रहे हैं। अपने सहकर्मियोंकी वीरता और संघर्षकी महत्तापर उन्हें अभिमान था किन्तु साथ ही उनमें गहरी वैयक्तिक नम्रता भी थी। आश्रमके फीनिक्स नामके औचित्यकी चर्चा करते हुए मगनलालको नाम अपने एक पत्रमें वे कहते हैं मेरा नाम भुला दिया जाये यह चाहता हूँ। मेरी इच्छा यह है कि मेरा काम रहे। नाम भुला दिया जाय तभी काम रहेगा।" (पृष्ठ १९)। अथच हम अज्ञानवश मान लेते हैं कि हमें अपनी मेहनतसे रोटी मिलती है (पृष्ठ ८१)। और, मानो गांधीजीकी इस उक्तिकी सत्यता सिद्ध करनेके लिए ही जिस दिन वे केप टाउन पहुँचे उसी दिन उन्हें टाटाका बिन-माँगे भेजा हुआ २५,०)का चेक मिला।

किसी राजनीतिक संघर्षमें सत्याग्रहकी शक्तिके सहारे जनताका मतलब था लोकमतके सहारे लड़ना। गांधीजीने केवल इंग्लैंडमें या अपने देशवासियोंके बीच ही नहीं बल्कि दक्षिण आफ्रिकाके उन गोरोंके बीच भी जिनके पूर्वग्रहोंके खिलाफ वे जूझ रहे थे लोकमत तैयार करनेका कार्य प्रारम्भ कर दिया। इंग्लैंडसे रवाना होनेके पूर्व उन्होंने वहाँ लोगोंकी चिट्ठियाँ इकट्ठी करनेका विराट् अभियान चलाया था जिसमें ब्रिटिश और भारतीय स्वयंसेवक दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके आन्दोलनके पक्षमें लोगोंसे सहानुभूति माँग करते हुए घर-घर घूमे थे। दक्षिण आफ्रिका लौटकर उन्होंने समाचारपत्रोंको चिट्ठियाँ लिखीं उनके प्रतिनिधियोंको मुलाकातें दीं और जिस मंचसे भी सम्भव हुआ आन्दोलनके पक्षमें भाषण किये। उन्होंने गोरोंके मनसे उनके निराधार

भयको दूर करके और भारतीयोंकी मांगोंको समुचित परिप्रेक्ष्यमें रखकर उनके विरोधको निरस्त करनेकी कोशिश की। अपने भाषणोंके द्वारा वे भारतीयोंको अपना निश्चय कायम रखनेके लिए उत्साहित करते रहे "यदि आपमें तनिक भी पौरुष हो तो आपको सत्याग्रही बनना चाहिए। जैसा जनरल स्मट्सने कहा है, सत्याग्रह एक प्रकारका युद्ध है। नागप्पनने जो नींव डाली है उसे हम यों ही कैसे पड़ा रहने दें? हमें उनके नामका स्मरण करके जबतक जीत न मिले तबतक लड़ना है। कष्ट सहनेके बिना कुछ नहीं मिलता (पृष्ठ १ ७-८)। लेकिन भारतीयोंको अपने सम्मानकी रक्षाके लिए लड़नेको उत्साहित करते हुए उन्होंने उन्हें अपने दोष देखने और उन्हें सुधारनेके लिए भी कहा। उदाहरणके लिए भारतीय व्यापारी (पृष्ठ १५६-७) "क्या भारतीय झूठे हैं? (पृष्ठ १५७-८) जो करेगा सो भरेगा (पृष्ठ २४४) "हिन्दू-मुसलमान (पृष्ठ २०४) कलकत्तेमें दंगा (पृष्ठ ४१५) आदि लेख देखे जा सकते हैं।

और विरोधकी आवाज वे बिना थके निरन्तर बुलन्द करते रहे। प्रतिपक्षीको हृदय-परिवर्तनके द्वारा न्यायबुद्धिकी राहपर लानेके लिए यह जरूरी था कि ईर्ष्या-द्वेष और अतिशयोक्तिसे बचते हुए उसे उसके अन्यायका बोध कराया जाये। जब जो सवाल सामने आया — चाहे वह जेलमें भारतीय सत्याग्रही कैदियोंके साथ दुर्व्यवहारका रहा हो या नेटालके स्कूलोंमें भारतीय शिक्षकों और विद्यार्थियोंके प्रति भेदभावका अथवा दक्षिण आफ्रिका संघ अधिनियममें रंगदार लोगोंके मताधिकारके अपहरणका — गांधीजी पीड़ितोंको लगातार लड़ते रहनेके लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करते रहे। इस समयके उनके लेखों और भाषणोंमें यही एक स्वर बार-बार ध्वनित होता रहा कि उन्हें सारा भय छोड़कर अथक तबतक लड़ते रहना है, जबतक अन्याय दूर न कर दिया जाय और न्याय मिल न जाये। और वे अपनी बात केवल भारतीयोंसे नहीं समस्त एशियाइयों "रंग-विद्वेष (पृष्ठ १ ४) से बल्कि सारे रंगदार लोगोंसे (पृष्ठ १७० १७१) कह रहे थे।

संघर्ष चलता रहा और उसकी सफल समाप्तिका मुहूर्त दूर सरकता रहा। जून १ १९११ को दक्षिण आफ्रिका संघका जन्म हुआ और उसके साथ ही सोराबजीको सातवीं बार गिरफ्तार करके जेलमें बन्द कर दिया गया। गांधीजीने उसे भारतीयोंके लिए शोकका दिन कहा और समाचारपत्रोंके नाम लिखे गये अपने इसी तारीखके पत्र (पृष्ठ १८१-२) में भारतीयोंकी मांगको पुनः दुहराया। इस घटनाके कुछ ही समय बाद सरकारने भारतीय समाजके खिलाफ एक बिलकुल ही नया और असामान्य कदम उठाया उसने एक प्रतिष्ठित और पुराने व्यापारी छोटाभाईके नाबालिग लड़केके १६ सालकी आयु पूरी करनेके बाद संघमें रह सकनेके अधिकारको चुनौती दी। एक लम्बी अदालती लड़ाई शुरू हुई, जिसमें अन्ततः सर्वोच्च न्यायालयने अपना फैसला नाबालिगके पक्षमें दिया। सितम्बर, १९११ के अन्तिम दिनोंमें सुलतान नामक जहाजसे पोलकके साथ कई दक्षिण आफ्रिकी भारतीय जिन्हें भारत निर्वासित कर दिया गया था दक्षिण आफ्रिका वापस लौटे। किन्तु, उन्हें पहले डर्बनमें फिर पोर्ट एलिजाबेथमें फिर केपमें और पुनः डर्बनमें कहीं भी उतरनेकी अनुमति नहीं दी गई।

लेकर इन आदमियोंका जीवन इतना कष्टप्रद हो गया था कि श्री नारायणस्वामी नामक एक भारतीयकी मृत्यु हो गई। गांधीजीको इस घटनासे बहुत चोट पहुँची और उन्होंने सरकारको कानूनकी आड़में हत्या करनेका दोषी घोषित किया।

नवम्बरमें संघ-संसद्का पहला अधिवेशन होनेवाला था। गांधीजीने फिर संघर्षको समाप्त करनेकी अपनी शर्तोंका स्पष्टीकरण किया (प्रस्तावित नया प्रवासी विधेयक पृष्ठ, १६९-७१)। लेकिन सरकारका रुख और सख्त हो गया था जिसका संकेत देते हुए गांधीजीने चीनियोंकी एक सभामें कहा था उसने तो उनके बच्चों और स्त्रियों तक से लड़ाई छेड़ दी है (पृष्ठ १७६)। अपने पतिके जेलमें बन्दकर दिए जानेके बाद श्रीमती सोढ़ाके पास जीविकाका कोई सहारा नहीं रह गया था और इसलिए उन्होंने टॉल्स्टॉय फ़ार्ममें सत्याग्रहियोंके परिवारोंके साथ रहनेके सीमित उद्देश्यसे ट्रान्सवालमें प्रवेश किया। गांधीजी और ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री काछलियाने सरकारको बहुत समझाया कि श्रीमती सोढ़ाका इरादा प्रवेश या निवासके अपने अधिकारका दावा करनेका बिलकुल नहीं है उन्हें ट्रान्सवालमें शुद्ध मानवीय सहानुभूतिकी भावनासे प्रेरित होकर ही बुलाया गया है किन्तु उनकी एक न सुनी और उन्हें सीमा पर गिरफ्तार कर लिया गया।

सरकार और भारतीयोंके युद्धके इस ज्वारमें परावर्तनके आसार सन् १९११के आ पहुँचनेपर प्रकट हुए। एक जनवरी रिचको लिखे हुए पत्र (पृष्ठ ४२४-५)में हम देखते हैं कि स्मट्ससे गांधीजीकी भेंट और बातचीत हो चुकी है और वे समझौतेके सम्बन्धमें आशावान् हैं। इसीके बाद भारत सरकारकी १ जनवरीकी इस घोषणाका शुभ संवाद भी आ पहुँचा कि उसने जुलाई १, १९११से गिरमिटिया भारतीयोंका नटाल जाना बन्द कर देनेका निश्चय किया है।

२५ फरवरीको वह प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयक प्रकाशित हुआ जिसके जरिये जनरल स्मट्स भारतीय प्रश्नको सदाके लिए निपटा देनेकी बात कहते थे। विधेयकके बारेमें गांधीजीकी पहली प्रतिक्रिया आशा की थी किन्तु स्मट्सके वचनोंकी अनकार्यताके पिछले अनुभवके कारण उसपर तत् लोगोंकी राय माँगी गई और ज्ञात हुआ कि उसमें अनेक खामियाँ हैं और वह जैसा है वैसा तो स्वीकार करने योग्य नहीं है। विधेयकमें जिस शैक्षणिक परीक्षाकी व्यवस्था थी उसमें उसके अन्तर्गत प्रवेश करनेवाले एशियाइयोंको ट्रान्सवालके एशियाई पंजीयन अधिनियम (सन् १९०८का अधिनियम ३६) और ऑरेंज फ्री स्टेटके संविधानके प्रकरण ३३के शासनसे मुक्त किया जाना चाहिए था किन्तु विधेयक इस विषयमें चुप था और इसलिए संघमें उनके संचारकी आजादी उस हद तक सीमित थी। पुनः छोटाभाईवाले मुकदमेमें सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेके बावजूद विधेयक पंजीकृत एशियाइयोंके उन नाबालिग बच्चोंको जो विधेयकके पास होनेके समय ट्रान्सवालके बाहर रहे हों और संघ निवासियोंकी पत्नियोंको प्रचलित कानूनकी सुरक्षा प्रदान नहीं करता था। गांधीजीने यह मानते हुए कि सम्भव है, जानबूझकर ऐसा नहीं किया गया हो उसे सुधरवानेके लिए स्मट्सके साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ किया और मार्चके अन्तिम दिनोंमें वे उनसे वैयक्तिक बातचीत करनेके लिए केप टाउन भी गये। जनरल स्मट्सका कहा तो यह था कि वे भारतीय समाजको

सन्तुष्ट करके उससे मुक्त करना चाहते हैं किन्तु उनके साथ समझौतेकी बातचीतका यह सिलसिला टेढ़ी-मेढ़ी गलियों काफी लम्बा चला और बार-बार ऐसे अवसर भी आये जब लगा कि वह अब टूटा तब टूटा। इतना ही नहीं स्मट्सके साथ एक-एक इंच जमीनके लिए लड़ते हुए उन्हें होस्केन जैसे अपने समर्थकों और रिच जैसे सक्रिय कार्यकर्ताओं तक को अपने साथ रखनेमें काफी कठिनाई पड़ी ("एल० डब्ल्यू० रिचको" पृष्ठ ५२२ ।)। मार्च २७ को स्मट्ससे हुई अपनी बातचीतकी रिपोर्ट (पृष्ठ ५३१) जो उन्होंने कुमारी श्लेसिनको भेजी थी इस खण्डमें प्रकाशित अत्यन्त दिलचस्प प्रकरणोंमें से है। बातचीत टूटते-टूटते बच गई। आखिर वह अवसर आया जब केप टाउनके एक भाषणमें गांधीजीने कहा "अब हम मंजिलके बहुत पास आ पहुँचे हैं और यदि हम सत्याग्रहपर दृढ़ रहकर काम करते रहे तो जीत अवश्य हमारी होगी" (पृष्ठ ५३९)। लेकिन अन्तिम समझौता सन् १९११ में न होकर १९१३ और १९१४ की लड़ाइयोंमें भी ज्यादा बड़ी एक और लड़ाईके बाद ही हो सका।

इस अनवरत सार्वजनिक व्यस्तताके बावजूद गांधीजी अपनी आध्यात्मिक सम्पत्के विकासमें निरन्तर अग्रसर होते रहे। आखिर अपनी इसी सम्पत्तिसे तो उन्हें इस भारी बोझको सहज शान्तभावसे वहन करनेकी शक्ति मिलती थी जिसे वे अपने ऊपर लगातार लादते जा रहे थे। मगनलालके नाम अपने एक पत्रमें वे लिखते हैं "भारतके उद्धारका बोझ अपने कन्धोंपर उठानेका बनावटी कार्य मत करो। अपना ही उद्धार करो। इतना ही बोझ बहुत है। यह सब कुछ अपने ही ऊपर लागू करो। तुम्हीं भारत हो इस ज्ञानमें आत्माकी श्रेष्ठता निहित है। तुम्हारे उद्धारमें भारतका उद्धार है। बाकी सब ढोंग है" (पृष्ठ २२२)। गांधीजीकी सारी प्रवृत्तियाँ उनके इस बुनियादी विश्वाससे प्रेरित थी कि राजनीतिक स्वराज्य नैतिक स्वराज्यका ही बाह्य रूप है और यह नैतिक स्वराज्य हमें किसी बाहरी शत्रुसे नहीं एक आन्तरिक शत्रुसे लड़कर प्राप्त करना है। उनका यह विश्वास पिछले कई वर्षोंसे लगातार अधिकाधिक दृढ़ होता जा रहा था। उनकी जिज्ञासु दृष्टिको उसकी यथार्थताके संकेत कभी यहाँसे और कभी वहाँसे यानी विविध दिशाओंसे मिल रहे थे और उनका सहज विकासशील मन उन सारे पावन प्रभावोंको ग्रहण करता जा रहा था। तर्कातीत सहज ज्ञानके कण धीरे-धीरे एकत्र होते जा रहे थे और अन्तमें 'हिन्द स्वराज्य' के रूपमें उन्होंने सबको सुनिश्चित आकार प्रदान किया। सन् १९०९ के ग्रीष्म और पतझड़में जब गांधीजी इंग्लैंडमें थे तब उन्होंने देखा कि साम्राज्य-सरकार उन्हें एक ऐसे उद्देश्यकी प्राप्तिमें भी जो वह मदद देनेमें असमर्थ है या मदद देना नहीं चाहती जिसका सम्बन्ध उनके विचारमें जितना भारतीयोंके सम्मानकी रक्षासे था उतना ही साम्राज्यके प्रतिष्ठाकी रक्षासे भी। वहाँ वे देशभक्तिकी प्रखर भावनासे प्रेरित ऐसे अनेक भारतीय युवकोंके सम्पर्कमें भी आये जो भारतीय स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए हिंसाका प्रयोग करनेके लिए उद्यत थे। गांधीजी और उनके शिष्टमण्डलके वहाँ पहुँचनेसे कुछ ही दिन पूर्व इन्हीं युवकोंमें से एकने कर्जन वाइलीकी हत्या कर दी थी और इस कारण उस समय वहाँ भारतीयोंमें इस हत्याकी और इनके कार्योंकी बड़ी चर्चा थी। गांधीजी इन देशभक्त युवकोंकी वीरताकी सराहना करते थे किन्तु उनके तरीकोंके प्रति उन्हें गहरी विरक्ति थी। एक ऐसे आत्मसम्मानके

सत्ताके नाते जिसका उद्देश्य भारतीयोंके आत्मसम्मानकी रक्षा करना और गोरी जातियोंकी श्रेष्ठता और आधुनिक सभ्यताकी दुरभिमानपूर्ण मान्यताओंसे लड़ना था उनके लिए यह जरूरी हो गया कि धींगराके कृत्यसे जो सवाल उठ खड़े हुए थे उनपर वे सार्वजनिक रूपसे अपनी स्थिति स्पष्ट कर दें। पश्चिममें इतने दिन रहनेके बाद पश्चिमी सभ्यताकी नैतिक बीरानीका उन्हें पूरा परिचय मिल गया था और उससे वे बहुत असन्तुष्ट थे। प्रजातीय भावनाके पूर्वग्रहोंसे मुक्त होनेका दावा करनेवाली इंग्लैंडकी उदार दलीय सरकार दक्षिण आफ्रिकाकी गोरेतर आबादीको कोई सांविधानिक सुरक्षा नहीं दे पा रही थी और वहाँ दक्षिण आफ्रिकाके राज्योंका स्वयंशासी संघ बनता जा रहा था। अगर सत्याग्रह दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजके सीमित उद्देश्य प्राप्त करनेमें भी असफल हो गया था या असफल हो गया मालूम होता था तो फिर अंग्रेजोंके खिलाफ भारतमें अहिंसक उपायोंकी सफलताकी आशा कैसे की जा सकती थी? हिन्द स्वराज्य में गांधीजीको इस कठिन प्रश्नका उत्तर देना था। पाठक और सम्पादकके संवादके रूपमें लिखित इस पुस्तकमें गांधीजीको बार-बार सत्याग्रहकी शक्तिमें अपना विश्वास छोड़नेके लिए फुसलानेवाला पाठक उन भारतीय युवकोंका प्रतिनिधि है जिनसे वे लन्दनमें रहते हुए मिले थे और जिनके साथ इस प्रश्नपर उनकी चर्चाएँ हुई थीं। अंग्रेजोंको भारतसे निकालनेके विशुद्ध राजनीतिक उद्देश्य तक ही विचार सीमित रखा जाय तो इस प्रश्नका कोई तर्क शुद्ध उत्तर नहीं था किन्तु उसपर नीति-धर्मके प्रचारके द्वारा राष्ट्रीय पुनरुत्थानकी व्यापक समस्याके रूपमें विचार किया जाय तो गांधीजीके पास इसका उत्तर था और उन्होंने हिन्द स्वराज्य में इस उत्तरकी विस्तृत व्याख्या की है। उन्होंने इस उत्तरपर सत्ताके रूपमें प्राप्त अपनी प्रतिष्ठाकी बाजी लगा दी और उसके समर्थनमें हिन्दू शास्त्रोंके वचनोंको उद्धृत किया। उन्होंने बताया कि हमारे शास्त्र न केवल यह कहते हैं कि मुक्ति मानव-जातिके लिए प्राप्त करने योग्य सर्वोत्तम वस्तु है वे यह भी कहते हैं कि उसका तात्कालिक अर्थ मुक्ति है (पृष्ठ २६४)।

गांधीजीकी मान्यता थी कि राजनीतिक व्यवस्थाका औचित्य उसमें अन्तर्हित उसके नैतिक आशयमें है। इसी अपनी अन्तर्दृष्टि और दूरदर्शिताके इसी परिचायकके सिद्धान्तपर जोर देते हुए गांधीजी अपने आलोचकोंसे पूछते हैं आप केवल शासकोंका परिवर्तन तो नहीं चाहते? अगर भारतीय जनताको नैतिक दृष्टिसे मूल्यवान् और आत्मगौरवसे युक्त जीवन जीना है तो भारतको नैतिक स्वाधीनता भी प्राप्त करनी चाहिए और राजनीतिक स्वाधीनता भी। नैतिक गुलामीके लक्षण क्या हैं? इसके लक्षण हैं पेशे और शिक्षा-सम्पन्न धन्धोंमें लगे हुए लोग — अर्थात् वकील डॉक्टर और सरकारी अधिकारी। ये लोग आम जनताम भारतमें ब्रिटिश शासनको बनाये रखनेमें मदद दे रहे हैं। यह नया वर्ग ब्रिटिश शासनाधिकारी और नये-नये यन्त्र — ये सब मिलकर भारतीय जनताका शोषण कर रहे हैं। इनके सिवा पश्चिमके अन्धानुकरणमें यह नया शिक्षित समुदाय हमारे जीवनमें रहन-सहनकी ऐसी नई रीतियाँ दाखिल कर रहा है जिनका लक्ष्य शरीर-सुख है, किन्तु जो आत्माको कमजोर कर रही हैं। नैतिक स्वाधीनताका अर्थ है भारतीयोंके लिए अपनी आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएँ अपने नीतिबोध और अपनी पुरानी

परम्पराओंके अनुसार गढ़नेकी आजादी और अपना विकास तथा अपनी भूलोंका संशोधन भी अपनी ही आन्तरिक और इस प्रकार नैतिक सामर्थ्यके द्वारा करनेकी आजादी। वे पश्चिमके उधार लिये हुए आदर्शोंकी चकाचौंधसे चमत्कृत होकर अपनको उनके अनुसार ढालने लगें यह कदापि इष्ट नहीं है। यह था गांधीजीका वक्तव्य। और इसलिए हिन्द स्वराज्य'में अहिंसक उपायोंके प्रतिपादनसे आगे जाकर गांधीजीने उद्योग और राजनीतिके क्षेत्रोंमें उस समय भारतका जो आधुनिकीकरण हो रहा था उसकी सख्त टीका की है। गांधीजीने पश्चिमी सभ्यताको बहुत करीबसे देखा था और प्रतिस्पर्धा-मूलक उद्योग-प्रधान और नीतिधर्मके प्रति लापरवाह उस समाजकी बुराइयोंसे — जिन्हें अब सब लोग स्वीकार करने लगे हैं — वे बहुत विचलित हो उठे थे। उनका खयाल था कि वक्त अभी गुजरा नहीं है और उनके अदृश्य जहरसे भारत अपनको अब भी बचा सकता है और यदि वह अपनेको उससे बचा सके तो राजनीतिक स्वतन्त्रता उसे सहज ही मिल जायेगी।

बादमें इस पुस्तिकाके कारण उनपर मध्ययुगीनताका दोष लगाया गया और कुछ लोगोंने तो उसका उपयोग भारतके शिक्षित वर्गोंकी नजरोंमें उनके नेतृत्वका गिरानेके लिए भी किया। लेकिन गांधीजी अपने विचारोंपर अटल रहे। सरल और अकृत्रिम जीवनको वे व्यक्ति या समुदाय दोनोंके स्वस्थ विकास और कल्याणके लिए आवश्यक मानते थे और दक्षिण आफ्रिकामें रहते हुए ही उन्होंने अपने और अपने ऐसे सहकारियोंके जीवनको जिन्होंने उनका नेतृत्व स्वीकार कर लिया था इसी आदर्शके अनुसार ढालना शुरू कर दिया था। टॉल्स्टॉय फार्म यों तो सत्याग्रहकी लड़ाईसे उत्पन्न आव श्यकताओंकी दृष्टिमें रखकर खोला गया था और वहाँ जेल-यात्री सत्याग्रहियोंके परिवारोंको रखा जाता था और भरसक कम खर्चमें उनके पालन-पोषणकी व्यवस्था की जाती थी। किन्तु गांधीजीने इस अवसरका उपयोग सहयोग स्वावलम्बन शरीर श्रम और वैयक्तिक जीवनमें खासकर आहार और सेक्समें संयमपर आधारित सामु दायिक जीवनके नये रूपोंके प्रयोग करनेके लिए किया। टॉल्स्टॉय फार्मने मानो उनकी भावी जीवन-चर्याकी रूपरेखा निश्चित कर दी। इस दृष्टिसे टॉल्स्टॉय फार्मके उनके इस प्रयोगका बहुत महत्त्व है उनके आध्यात्मिक विकासमें वह एक रचनात्मक दौरका सूचक है और इस रूपमें गांधीजीके मनमें भी उसकी स्मृति सदा सुरक्षित रही।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन एण्ड मेमोरियल ट्रस्ट) और संग्रहालय नवजीवन ट्रस्ट गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय अहमदाबाद गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय नई दिल्ली भारत सेवक समिति (सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी) पूना कलोनियल ऑफिस पुस्तकालय तथा इण्डिया ऑफिस पुस्तकालय लन्दन श्री छगनलाल गांधी अहमदाबाद श्री नारणदास गांधी राजकोट श्रीमती सुशीलाबेन गांधी फीनिक्स डर्बन श्रीमती राधाबेन चौधरी कलकत्ता डॉक्टर चन्द्रन देवनेसन ताम्बरम् मद्रास श्री अल्बर्ट वेस्ट श्री सी एम डोक महात्मा गांधीजीना पत्रो गांधीजीनी साधना जीवननुं परोढ महात्मा लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी और टॉल्स्टॉय और गांधी पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा निम्नलिखित समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं केप आर्गस डायमण्ड फील्ड्स एडवर्टाइज़र इण्डिया इंडियन ओपिनियन नेटाल मर्क्युरी रैंड डेली मेल स्टार ट्रान्सवाल लीडर गुजराती तथा न्यू एज।

अनुसंधान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी पुस्तकालय गांधी स्मारक संग्रहालय इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय सूचना और प्रसारण मन्त्रालय (मिनिस्ट्री ऑफ इन्फरमेशन एंड ब्रॉडकास्टिंग) के अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग (रिसर्च एण्ड रेफरेंस डिवीजन) नई दिल्ली साबरमती संग्रहालय तथा गुजरात विद्यापीठ ग्रंथालय अहमदाबाद तथा श्री प्यारेलाल नय्यर हमारे धन्यवादके पात्र हैं। नकलोंकी फोटो-नकलें तैयार कर देनेके लिए हम सूचना और प्रसारण मन्त्रालयके फोटो विभाग नई दिल्लीके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

विभिन्न अधिकारियोंको लिखे गये प्रार्थनापत्र और निवेदन, अखबारोंको भेजे गये पत्र और सभाओंमें स्वीकृत प्रस्ताव, जो इस खण्डमें सम्मिलित किये गये हैं, उनको गांधीजीका लिखा मानने के कारण वे ही हैं जिनका हवाला खण्ड १ की भूमिकामें दिया जा चुका है। जहाँ किसी लेखको सम्मिलित करनेके विशेष कारण हैं, वहाँ वे पाद-टिप्पणीमें बता दिये गये हैं। इंडियन ओपिनियन में प्रकाशित गांधीजीके वे लेख जो लेखकका नाम दिये बिना छापे गये हैं, उनके आत्मकथा सम्बन्धी लेखोंकी सामान्य साक्षी, उनके सहयोगी श्री छगनलाल गांधी और श्री एच एस एल पोलककी सम्मति तथा अन्य उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर पहचाने गये हैं।

अंग्रेजीसे और गुजरातीसे अनुवाद करनेमें अनुवादको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही अनुवादकी भाषा सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। अनुवाद छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद किया गया है और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त-रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। यह ध्यान रखा गया है कि नामोंको सामान्यतः जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाये। जिन नामोंके उच्चारण संदिग्ध हैं उनको वैसा ही लिखा गया है, जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीचमें चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि ऐसा कोई अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्टें, न्यायालयोंकी कार्यवाहियाँ तथा वे शब्द, जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है, परन्तु जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है और जहाँ आवश्यक हुआ है उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। शीर्षकके अन्तमें सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है।

सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा और दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास के अनेक संस्करण होनेसे उनकी पृष्ठ संख्याएँ विभिन्न हैं, इसलिए हवाला देनेमें केवल उनके भाग और अध्यायका ही उल्लेख किया गया है।

साधन-सूत्रोंमें एस एन संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका; जी एन गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और सी डब्ल्यू कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ सामग्री परिशिष्टोंमें दे दी गई है। साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ अन्तमें दी गई हैं।

पाठकोंकी सुविधाके लिए शीर्षक-सांकेतिका के पूर्व इस खण्डसे सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावली भी दी जा रही है।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१. प्रस्तावना : टॉल्स्टॉयके 'एक हिन्दूके नाम पत्र' की[1]

एस० एस० किल्डोनन कैसिल
नवम्बर १८, १९०९

नीचे जिस पत्रका[2] [गुजराती] तर्जुमा दिया जा रहा है, उसके सम्बन्धमें कुछ स्पष्टीकरणकी जरूरत है।

काउंट टॉल्स्टॉय रूसके एक रईस हैं। वे सांसारिक सुखोंका पर्याप्त उपभोग कर चुके हैं, स्वयं एक वीर योद्धा रहे हैं और यूरोपमें लेखकके रूपमें उनकी बराबरी करनेवाला कोई देखनेमें नहीं आता। वे बहुत अनुभव प्राप्त करने और अध्ययन करनेके बाद इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि संसारमें साधारणतया जो राजनीति प्रचलित है वह दोषपूर्ण है। उसका मुख्य कारण उनके मतसे यह है कि हम लोगोंमें बदला लेनेकी जो टेव है वह अशोभनीय है और सब धर्मोंके विरुद्ध है। वे मानते हैं कि हम अपने नुकसान पहुँचानेवालेको नुकसान पहुँचायें तो इससे दोनोंकी हानि होती है। उनके विचारके अनुसार तो जो हमें मारे उसकी मार हमें सहन करनी चाहिए और उसका बदला हमें उस व्यक्तिके प्रति प्रेम दिखा कर लेना चाहिए। वे बुराईके बदले भलाई करनेके नियमपर बहुत दृढ़तासे आरूढ़ हैं।

ऐसा कहनेसे उनका तात्पर्य यह नहीं है कि जिसपर कोई कष्ट आये वह उसका कोई उपाय ही न करे। उनकी मान्यता यह है कि अपने दुःखके कारण स्वयं हम ही हैं। अगर हम जुल्म करनेवालेके जुल्मके आगे न झुकें तो वह जुल्म नहीं कर सकता। साधारणतया कोई भी व्यक्ति मुझे अपने दिल-बहलावकी खातिर लात नहीं मारेगा। ऐसा करनेका कोई-न-कोई सबब होगा। यदि मैं उसकी इच्छाके विरुद्ध चलूँ तो वह उसे मनवानेके लिए मुझे लात मारेगा। यदि मैं उसकी लात खाकर भी न मानूँ तो फिर वह मुझे मारना बन्द कर देगा। वह बन्द करे या न करे, मुझे उसकी परवाह नहीं होगी। उसकी आज्ञा न्यायपूर्ण नहीं है, मेरे लिए तो इतना काफी है। गुलामी अन्यायपूर्ण आज्ञा माननेमें है, लात खानेमें नहीं। लात खानेपर भी हम बदलेमें लात न मारें, यही सच्ची वीरता और सच्ची मनुष्यता है। टॉल्स्टॉयकी शिक्षाका मूल-मन्त्र यही है।

आगे जिस पत्रका तर्जुमा दिया गया है वह मूलतः रूसी भाषामें है। उसका अंग्रेजीमें अनुवाद स्वयं टॉल्स्टॉयने किया[3] और फ्री हिन्दुस्तान[4] के सम्पादकको उनके

१. यह प्रस्तावना टॉल्स्टॉयके १४-१२-१९०८ के पत्रके गांधीजी द्वारा किये गये गुजराती अनुवादकी है।

२. यहाँ नहीं दिया गया है।

३. टॉल्स्टॉयके अनुयायियोंमें से एक अनुवादक द्वारा; देखिए अगला शीर्षक।

४. वैंकूवरसे प्रकाशित एक पत्रिका जिसके प्रधान सम्पादक तारकनाथ दास थे। देखिए खण्ड ९, पाद-टिप्पणी २, पृष्ठ ४४४।

पत्रके उत्तरमें भेजा है। फ्री हिन्दुस्तान के सम्पादकके विचार टॉल्स्टॉयके विचारोंसे भिन्न हैं। उन्होंने वह पत्र नहीं छापा। एक मित्रने वह पत्र मेरे पास भेजकर पूछा कि उसे इंडियन ओपिनियन में प्रकाशित करनेके बारेमें मेरी क्या राय है। पत्र पसन्द आया। मुझे जो पत्र मिला था वह मूल पत्रकी नकल थी। मैंने वह पत्र टॉल्स्टॉयको भेजा और उसको छापनेकी मंजूरी माँगी और मैंने उनसे यह भी पूछा कि यह पत्र उनका है या नहीं।[1] उन्होंने मंजूरी दे दी।[2] इसलिए वह अंग्रेजी पत्र और उसका गुजराती तर्जुमा दोनों इं॰ ओ॰ में छाप जा रहे हैं।

मैं टॉल्स्टॉयके पत्रको कीमती मानता हूँ। जिसने ट्रान्सवालकी लड़ाईका रस चखा है, वह उस पत्रकी कीमत सहज ही समझ सकेगा। ट्रान्सवालकी सरकारके तोप-बन्दूक मुकाबलेमें मुट्ठी-भर भारतीय सत्याग्रह, प्रेमबल या आत्मबलकी आजमाइश कर रहे हैं। यह टॉल्स्टॉयकी शिक्षाका रहस्य है। यह सभी धर्मोंका सार है। हमारी आत्मामें — हममें परमात्माने — खुदाने ऐसी शक्ति दी है कि उसकी तुलनामें निरा शारीरिक बल किसी काम नहीं आता। हम आत्मबलको व्यवहारमें लाते हैं, सो ट्रान्सवालकी सरकारका तिरस्कार करने या उससे बदला लेनेके लिए नहीं बल्कि केवल इसलिए कि हमें उसकी अन्यायपूर्ण आज्ञा नहीं माननी है।

किन्तु जिन्होंने सत्याग्रहका रस नहीं चखा जो आधुनिक सभ्यताके महाजालमें वैसे ही चक्कर काटते हैं जैसे पतंगे दीपकके आसपास चक्कर काटते रहते हैं, उनको टॉल्स्टॉयके पत्रमें एकाएक रस नहीं आयेगा। ऐसे लोगोंको जरा धैर्यसे विचार करना चाहिए।

जो भारतीय भारतसे गोरोंको निकाल बाहर करनेके लिए अधीर हो रहे हैं उन्हें टॉल्स्टॉय सीधा-सा जवाब देते हैं। [उनके कथनानुसार] हम अपने ही गुलाम हैं अंग्रेजोंके नहीं। यह हृदयमें अंकित कर लेने योग्य बात है। यदि हम गोरोंको न चाहें तो वे नहीं रह सकते। *यदि गोला-बारूदसे गोरोंको निकालना हो तो* गोला-बारूदसे यूरोपके हाथ क्या लगा इसपर हरएक भारतीयको विचार करना चाहिए।

भारत स्वतन्त्र हो यह बात सबको अच्छी लगती है किन्तु वह स्वतन्त्र कैसे हो इस सम्बन्धमें जितने लोग उतने मत हैं। उनको टॉल्स्टॉयने सीधा मार्ग बताया है।

यह पत्र टॉल्स्टॉयने एक हिन्दूको लिखा है इसलिए इसमें मुख्यतः हिन्दू धर्म ग्रन्थोंके विचारोंका उपयोग किया गया है। किन्तु ऐसे विचार हरएक धर्मके ग्रंथोंमें हैं। ये विचार हिन्दू, मुसलमान और पारसी सबपर लागू होते हैं। धर्मोंके आचार-विचार जुदा हो सकते हैं किन्तु उनके नैतिक सिद्धान्त तो एक ही होते हैं। इसलिए सभी पाठकोंको मैं धर्मनीतिपर विचार करनेकी सलाह देता हूँ।

१. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ४४४।
२. देखिए खण्ड ९, परिशिष्ट २७।
३. २५-१२-१९०९, १-१-१९१० और ८-१-१९१०।

टॉल्स्टॉयके सब विचार मुझे मान्य हैं ऐसा नहीं समझा जाना चाहिए।[1] टॉल्स्टॉयको मैं अपना शिक्षक मानता हूँ। किन्तु उनके सब विचार मुझे मान्य हों ऐसी कोई बात नहीं है। उनकी शिक्षाका मूलमन्त्र मुझे पूर्णतया मान्य है और वह मूलमन्त्र इस पत्रमें आ गया है।

इस पत्रमें वे किसी भी धर्मके अन्ध-विश्वासोंका खण्डन करनेसे नहीं चूके हैं। लेकिन केवल इसी कारण हिन्दू अथवा किसी अन्य धर्माभिमानीको उनकी शिक्षाका विरोध नहीं करना चाहिए। हमारे लिए इतना काफी होना चाहिए कि वे सभी धर्मोंके सारको मानते हैं। बहुत बार अधर्म धर्मकी जगह ले लेता है तब धर्मका लोप हो जाता है। टॉल्स्टॉय इस बातको बार-बार दोहराते हैं। और हम चाहे जिस धर्मको मानते हों [उनका] यह विचार बहुत ध्यान देने योग्य है।

[पत्रका] अनुवाद करते समय यथासम्भव आसान गुजराती काममें लानेका प्रयत्न किया गया है। 'इं. ओ.' के पाठक आसान भाषा पसन्द करते हैं इस बातका ध्यान रखा गया है। फिर मैं चाहता हूँ कि टॉल्स्टॉयके पत्रको हजारों गुजराती भारतीय पढ़ें लेकिन यह सब जानते हुए भी कि हजारों कठिन भाषासे ऊब उठेंगे जहाँ कहीं बिलकुल आसान शब्द नहीं मिले वहाँ स्वभावतः कठिन शब्दोंका प्रयोग हुआ होगा। इसके लिए पाठकोंसे माफी माँगता हूँ।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, २५-१२-१९०९

२. प्रस्तावना : टॉल्स्टॉयके 'एक हिन्दूके नाम पत्र' की

एस. एस. किल्डोनन कैसिल
नवम्बर १९, १९०९

आगे जो पत्र[2] दिया जा रहा है वह टॉल्स्टॉयके एक पत्रका [अंग्रेजी] अनुवाद है। उन्होंने 'फ्री हिन्दुस्तान' के सम्पादकके एक पत्रका उत्तर रूसी भाषामें लिखा था। उक्त उत्तरका यह अनुवाद उनके एक अनुवादकने तैयार किया है। यह अनुवादित पत्र अनेक हाथोंसे गुजरता हुआ अन्तमें मेरे एक मित्रके जरिये मुझतक आया। टॉल्स्टॉयके विचारोंमें मेरी विशेष रुचि होनेके कारण मेरे मित्रने मुझसे पूछा कि क्या आप इसे प्रकाशनके योग्य समझते हैं? मैंने तुरन्त 'हाँ' में उत्तर दिया और कहा कि मैं स्वयं गुजरातीमें इसका अनुवाद करूँगा और दूसरोंको भी विभिन्न भारतीय भाषाओंमें इसे अनुवादित और प्रकाशित करनेके लिए प्रोत्साहित करूँगा।

१. गांधीजी टॉल्स्टॉयके पुनर्जन्म सम्बन्धी विचारोंसे सहमत नहीं थे; देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ४४४-४५।

२. टॉल्स्टॉयका "एक हिन्दूके नाम पत्र" इंडियन ओपिनियनके २५-१२-१९०९, १-१-१९१० तथा ८-१-१९१० अंकोंमें प्रकाशित हुआ था। यहाँ नहीं दिया गया है।

पत्रके उत्तरमें भेजा है। श्री हिन्दुस्तान के सम्पादकके विचार टॉल्स्टॉयके विचारोंसे भिन्न हैं। उन्होंने वह पत्र नहीं छापा। एक मित्रने वह पत्र मेरे पास भेजकर पूछा कि उसे इंडियन ओपिनियन में प्रकाशित करनेके बारेमें मेरी क्या राय है। पत्र पसन्द आया। मुझे जो पत्र मिला था वह मूल पत्रकी नकल थी। मैंने वह पत्र टॉल्स्टॉयको भेजा और उसको छापनेकी मंजूरी माँगी और मैंने उनसे यह भी पूछा कि वह पत्र उनका है या नहीं।[1] उन्होंने मंजूरी दे दी।[2] इसलिए वह अंग्रेजी पत्र और उसका गुजराती तर्जुमा दोनों इं० ओ०[3] में छापे जा रहे हैं।

मैं टॉल्स्टॉयके पत्रको कीमती मानता हूँ। जिसने ट्रान्सवालकी लड़ाईका रस चखा है वह उस पत्रकी कीमत सहज ही समझ सकेगा। ट्रान्सवालकी सरकारके तोप-बलके मुकाबलेमें मुट्ठी भर भारतीय सत्याग्रह प्रेमबल या आत्मबलकी आजमाइश कर रहे हैं। यह टॉल्स्टॉयकी शिक्षाका रहस्य है। यह सभी धर्मोंका सार है। हमारी आत्मामें—हमें परमात्माने—खुदाने ऐसी शक्ति दी है कि उसकी तुलनामें निरा शारीरिक बल किसी काम नहीं आता। हम आत्मबलका व्यवहारमें लाते हैं सो ट्रान्सवालकी सरकारका तिरस्कार करने या उससे बदला लेनेके लिए नहीं बल्कि केवल इसलिए कि हमें उसकी अन्यायपूर्ण आज्ञा नहीं माननी है।

किन्तु जिन्होंने सत्याग्रहका रस नहीं चखा जो आधुनिक सभ्यताके महापाशमें वैसे ही चक्कर काटते हैं जैसे पतंगे दीपकके आसपास चक्कर काटते रहते हैं उनको टॉल्स्टॉयके पत्रमें एकाएक रस नहीं आयेगा। ऐसे लोगोंको जरा धैर्यसे विचार करना चाहिए।

जो भारतीय भारतसे गोरोंको निकाल बाहर करनेके लिए अधीर हो रहे हैं उन्हें टॉल्स्टॉय सीधा-सा जवाब देते हैं। [उनके कथनानुसार] हम अपने ही गुलाम हैं अंग्रेजोंके नहीं। यह हृदयमें अंकित कर लेने योग्य बात है। यदि हम गोरोंको न चाहें तो वे नहीं रह सकते। यदि गोला-बारूदसे गोरोंको निकालना हो तो गोला-बारूदसे यूरोपके हाथ क्या आया इसपर हरएक भारतीयको विचार करना चाहिए।

भारत स्वतन्त्र हो यह बात सबको अच्छी लगती है किन्तु वह स्वतन्त्र कैसे हो इस सम्बन्धमें जितने लोग उतने मत हैं। उनको टॉल्स्टॉयने सीधा मार्ग बताया है।

यह पत्र टॉल्स्टॉयने एक हिन्दूको लिखा है इसलिए इसमें मुख्यतः हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंके विचारोंका उपयोग किया गया है। किन्तु ऐसे विचार हरएक धर्मके ग्रन्थोंमें हैं। ये विचार हिन्दू, मुसलमान और पारसी सबपर लागू होते हैं। धर्मोंके आचार-विचार जुदा हो सकते हैं किन्तु उनके नैतिक सिद्धान्त तो एक ही होते हैं। इसलिए सभी पाठकोंको मैं वसनीतिपर विचार करनेकी सलाह देता हूँ।

१. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ४४४।
२. देखिए खण्ड ९, परिशिष्ट २०।
३. २५-१२-१९०९, १-१-१९१० और ८-१-१९१०।

यदि हम चाहते हैं कि अंग्रेज भारतमें न रहें तो हमें उसकी कीमत चुकानी पड़ेगी। टॉल्स्टॉय उसकी ओर इंगित करते हैं। यास्नाया पोल्याना के साथ गहरे विश्वासके साथ घोषित करते हैं —

बुराईका प्रतिरोध न करें, परन्तु साथ ही यदि स्वयं बुराईमें न्यायालयोंके कार्योंमें कर-संग्रहमें तथा जो बात और भी महत्त्वपूर्ण है उसमें — सैनिकोंके हिंसक कार्योंमें — भाग न लें तो आपको संसारकी कोई ताकत गुलाम नहीं बना सकेगी।

उनके इस कथनकी सचाईमें कौन सन्देह कर सकता है कि एक व्यापारी कम्पनीने बीस करोड़ लोगोंके राष्ट्रको गुलाम बना लिया। यदि ऐसे किसी व्यक्तिसे जो अन्धविश्वासी न हो यह बात कहिए तो वह नहीं समझ सकेगा कि इन शब्दोंका अर्थ क्या है? तीस हजार लोगोंने — जो पहलवान नहीं थे बल्कि कमजोर और बीमारों-जैसे दीखते थे — २ करोड़ शक्तिशाली बुद्धिमान बलिष्ठ और स्वातन्त्र्य-प्रिय लोगोंको गुलाम बना लिया इसका रहस्य क्या है? क्या इन आँकड़ोंसे स्पष्ट नहीं हो जाता कि भारतीयोंको अंग्रेजोंने गुलाम नहीं बनाया बल्कि वे स्वयं ही गुलाम बने हैं।

वर्तमान व्यवस्थाकी इस आलोचनाके सार-तत्त्वकी सचाईको हृदयंगम करनेके लिए यह आवश्यक नहीं कि टॉल्स्टॉयने जो-कुछ कहा है — उनके कुछ तथ्य सही नहीं हैं — उस सबको स्वीकार किया जाये। वह सार-तत्त्व है शरीरपर आत्माकी और हमारे भीतर वासनाओंके उद्वेलनसे उत्पन्न पाशविक या शारीरिक शक्तिपर प्रेमकी जो आत्माका ही एक गुण है अमोघ शक्तिको समझना और उसके अनुसार आचरण करना।

इसमें सन्देह नहीं कि टॉल्स्टॉयने जो-कुछ कहा है उसमें कुछ नया नहीं है। परन्तु पुरातन सत्यको प्रस्तुत करनेका उनका ढंग स्फूर्तिदायक और ओजपूर्ण है। उनका तर्क अकाट्य है। और सबसे बड़ी बात यह है कि वे अपने उपदेशोंके अनुसार आचरण करनेका प्रयास करते हैं। वे अपनी बात कुछ इस तरहसे कहते हैं कि उसपर विश्वास हुए बिना नहीं रहता। वे सत्यशील और निष्ठावान हैं और वे बरबस अपनी ओर ध्यान आकर्षित कर लेते हैं।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-१२-१९०९

१ देखिए पाद-टिप्पणी १, पृष्ठ ३।

मुझे पत्रकी[1] टाइप की हुई प्रतिलिपि प्राप्त हुई थी इसलिए उसके बारेमें लेखकसे पूछा गया। उन्होंने कहा कि पत्र उन्हींका है और कृपापूर्वक उसे छापनेकी अनुमति दे दी।[2]

मैं उस महान् उपदेशकका विनीत अनुयायी रहा हूँ और एक लम्बे अरसेसे उन्हें अपना मार्ग-दर्शक मानता आया हूँ अतएव उनके पत्रके — विशेषत: इस पत्रके जो अब संसारके सामने प्रस्तुत किया जा रहा है — प्रकाशनसे सम्बद्ध होना मेरे लिए सम्मानकी बात है।

यह कहना एक साधारण तथ्यको प्रकट करना है कि प्रत्येक भारतीयकी राष्ट्रीय आकांक्षाएँ होती हैं चाहे वह इसे स्वीकार करे या नहीं। परन्तु इस आकांक्षाका सही अर्थ क्या है और विशेषत: इस लक्ष्यकी सिद्धिके उपाय क्या हों — इन बातोंके सम्बन्धमें जितने भारतीय देशभक्त हैं उतने ही मत हैं।

इस लक्ष्यकी प्राप्तिका एक माना हुआ और चिर प्रचलित उपाय हिंसा है। इस उपायका एक सबसे बुरा और निन्द्य उदाहरण सर कर्जन वाइलीकी[3] हत्या थी। अत्याचारकी समाप्ति अथवा किसी सुधारके लिए हिंसात्मक उपायके स्थानपर बुराईका प्रतिरोध न करनेके तरीकेको प्रतिष्ठित करनेके लिए टॉल्स्टॉयने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है। वे हिंसाके रूपमें व्यक्त घृणाका सामना कष्ट-सहनके रूपमें व्यक्त प्यारसे करना चाहते हैं। वे प्यारके इस उदात्त और दैवी नियममें काट-छाँट करनेवाले किसी अपवादकी गुंजाइश नहीं मानते। वे इस नियमको उन समस्त समस्याओंपर लागू करते हैं जिनसे मानवजाति ग्रस्त है।

टॉल्स्टॉय पाश्चात्य संसारके एक अत्यन्त स्पष्ट विचारक और महान् लेखक हैं। उन्होंने एक सैनिक की हैसियतसे यह देखा है कि हिंसा क्या है और वह क्या-क्या कर सकती है। जब वे आधुनिक विज्ञानके नियमका — जिसे झूठमूठ ही नियम कहा जाता है — अन्धानुकरण करनेके लिए जापानकी भर्त्सना करते हैं और उस देशके लिए बड़े-से-बड़े संकटोंकी आशंका करते हैं तब हमें रुकना और सोचना ही चाहिए कि कहीं अंग्रेजी शासनसे अधीर होकर हम एक बुराईके बदले दूसरी उससे भी बड़ी बुराईको तो दाखिल नहीं करना चाहते। भारतमें विश्वके महान् धर्म जन्मे और फूले-फले हैं। यह देश जिस दिन यूरोपके लोगोंको दासताकी स्थितिमें पहुँचा देनेवाली और उनमें मानव-परिवारकी विरासत — उनकी उच्चतम प्रवृत्तियों — का लगभग गला घोंट देनेवाली दूषित औद्योगिक सभ्यताकी अभिलाषासे भुला देगा और जिस दिन इसकी पवित्र भूमिपर बन्दूकें बनानेके कारखाने खड़े होने लगेंगे उस दिन इसकी राष्ट्रीय विशिष्टता खत्म हो जायेगी भारत भारत नहीं रह जायेगा और चाहे जो भी बन जाये।

१. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ४४४।

२. देखिए खण्ड ९, परिशिष्ट २०।

३. भारत-मन्त्रीका राजनीतिक सहायक, जिसे एक पंजाबी विद्यार्थी मदनलाल धींगराने जुलाई १, १९०९ को लन्दनके साउथ कैन्सिंगटनमें स्थित 'इम्पीरियल इन्स्टिट्यूट' में राष्ट्रीय भारतीय संघके एक स्वागत-समारोहमें गोली मार दी थी। देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ३११।

यदि हम चाहते हैं कि अंग्रेज भारतमें न रहें तो हमें उसकी कीमत चुकानी पड़ेगी। टॉल्स्टॉय उसकी ओर इंगित करते हैं। यास्नाया पोल्यानाके साधु गहरे विश्वासके साथ घोषित करते हैं —

बुराईका प्रतिरोध न करें, परन्तु साथ ही यदि स्वयं बुराईमें न्यायालयोंके कार्योंमें कर-संग्रहमें तथा जो बात और भी महत्त्वपूर्ण है उसमें — सैनिकोंके हिंसक कार्योंमें — भाग न लें तो आपको संसारकी कोई ताकत गुलाम नहीं बना सकेगी।

उनके इस कथनकी सचाईमें कौन सन्देह कर सकता है कि एक व्यापारी कम्पनीने बीस करोड़ लोगोंके राष्ट्रको गुलाम बना लिया। यदि ऐसे किसी व्यक्तिसे जो अन्धविश्वासी न हो यह बात कहिए तो वह नहीं समझ सकेगा कि इन शब्दोंका अर्थ क्या है? तीस हजार लोगोंने — जो पहलवान नहीं थे बल्कि कमजोर और बीमारों जैसे दीखते थे — २० करोड़ शक्तिशाली, बुद्धिमान बलिष्ठ और स्वातन्त्र्य-प्रिय लोगोंको गुलाम बना लिया इसका रहस्य क्या है? क्या इन आँकड़ोंसे स्पष्ट नहीं हो जाता कि भारतीयोंको अंग्रेजोंने गुलाम नहीं बनाया बल्कि वे स्वयं ही गुलाम बने हैं।

वर्तमान व्यवस्थाकी इस आलोचनाके सार-तत्वकी सचाईको हृदयंगम करनेके लिए यह आवश्यक नहीं कि टॉल्स्टॉयने जो-कुछ कहा है — उनके कुछ तथ्य सही नहीं हैं — उस सबको[1] स्वीकार किया जाये। वह सार-तत्व है शरीरपर आत्माकी और हमारे भीतर वासनाओंके शोषणसे उत्पन्न पाशविक या शारीरिक शक्तिपर प्रेमकी जो आत्माका ही एक गुण है अमोघ शक्तिको समझना और उसके अनुसार आचरण करना।

इसमें सन्देह नहीं कि टॉल्स्टॉयने जो-कुछ कहा है, उसमें कुछ नया नहीं है। परन्तु पुरातन सत्यको प्रस्तुत करनेका उनका ढंग स्फूर्तिदायक और ओजपूर्ण है। उनका तर्क अकाट्य है। और सबसे बड़ी बात यह है कि वे अपने उपदेशोंके अनुसार आचरण करनेका प्रयास करते हैं। वे अपनी बात कुछ इस तरहसे कहते हैं कि असर किए बिना नहीं रहता। वे सत्यशील और निष्ठावान हैं और वे बरबस अपनी ओर ध्यान आकर्षित कर लेते हैं।

मो॰ क॰ गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-१२-१९०९

१. देखिए पाद-टिप्पणी ६, पृष्ठ ३।

३. हिन्द स्वराज्य[1]

प्रस्तावना

इस विषयपर मैंने बीस प्रकरण लिखे हैं, उन्हें पाठकोंके सामने रखनेकी हिम्मत करता हूँ। जब मुझसे रहा नहीं गया तभी मैंने लिखा है। बहुत पढ़ा, बहुत सोच-विचार किया और जब ट्रान्सवालके शिष्टमण्डलमें विलायत गया और वहाँ चार माह[2] तक रहा, उस समय जितने भारतीयोंसे मिलना सम्भव हुआ उनसे इस विषयपर चर्चा की। हो सका उतने अंग्रेजोंसे भी मिला। इसके बाद अपने जो विचार मुझे अन्तिम मालूम हुए उन्हें पाठकोंके सामने रखना मुझे अपना कर्तव्य मालूम हुआ। गुजराती 'इंडियन ओपिनियन' के ग्राहक आठ सौके आसपास हैं। और हर ग्राहकपर कमसे-कम दस व्यक्ति इस पत्रको रुचिपूर्वक पढ़ते हैं ऐसा मेरा अनुभव है। जो लोग गुजराती नहीं जानते वे उसे दूसरोंसे पढ़वाते हैं। इनमें से अनेक भाइयोंने मुझसे भारतकी हालतके विषयमें अनेक प्रश्न पूछे हैं। ऐसे ही प्रश्न मुझसे विलायतमें भी पूछे गये। इसलिए मुझे लगा कि जो विचार, इस तरह, मैंने व्यक्तिगत बातचीतके प्रसंगमें प्रकट किये हैं उन्हें सार्वजनिक रूपसे कहनेमें कोई दोष नहीं है।

पुस्तकमें प्रस्तुत विचार मेरे हैं और मेरे नहीं हैं। वे मेरे हैं क्योंकि मैं उनके अनुसार आचरण करनेकी आशा करता हूँ। वे मानो मेरी आत्मामें बस गये हैं। वे मेरे नहीं हैं, क्योंकि उन्हें मैंने ही अपने चिन्तनके द्वारा ढूँढ़ निकाला हो, सो

१. यह पुस्तक गांधीजीने इंग्लैंडसे लौटते हुए 'किल्डोनन कैसिल' नामक जहाजपर गुजरातीमें लिखी थी और इसके अध्याय साप्ताहिक 'इंडियन ओपिनियन'में प्रकाशित हुए थे। पहले बारह अध्याय ११-१२-१९०९ के अंकमें और शेष १८-१२-१९०९ के अंकमें। पुस्तकके रूपमें यह पहली बार जनवरी, १९१० में प्रकाशित हुई थी और भारतमें बम्बई सरकार द्वारा २४ मार्च, १९१० को इसके प्रचारपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था (देखिए "हमारा प्रकाशन" पृष्ठ २९१)। बम्बई सरकारकी इस कार्रवाईके जवाबमें गांधीजीने इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करके दिया। (देखिए हिन्द स्वराज्यके विज्ञापन, पृष्ठ २ [illegible])।

यह हिन्दी अनुवाद 'नवजीवन ट्रस्ट' द्वारा प्रकाशित गुजराती हिन्द स्वराज, १९५४ की आवृत्तिसे किया गया है, जबकि यह मूलतः इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित पाठसे और मूलतः नवजीवन ट्रस्ट द्वारा ही प्रकाशित गांधीजीके हस्तलिखित मूल पुस्तकके पाठसे मिला लिया गया है और इन दो पाठोंमें जहाँ कहीं उल्लेखनीय फर्क नजर आया है उसपर टिप्पणी दी गई है। इस अनुवादको पुस्तकके अंग्रेजी अनुवादसे — 'नवजीवन ट्रस्ट' द्वारा सन् १९३९ में प्रकाशित नवीन संशोधित संस्करणके पाठसे — भी मिलाया गया है और इसके अर्थमें जहाँ उल्लेखनीय अन्तर दीखा है वहाँ उसपर भी टिप्पणी दी गई है। इस अंग्रेजी अनुवादके विषयमें यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि यह — पूरा गांधीजीका किया हुआ है तथापि इसके संशोधनमें [illegible] हाथ रहा है। पुस्तककी प्रथम अंग्रेजी आवृत्तिकी प्रस्तावनाके लिए देखिए हमारा अंग्रेजी खण्ड १०, पृष्ठ ६।

२. १ जुलाईसे १३ नवम्बर तक।

बात नहीं वे कई पुस्तकें पढ़नेके बाद बने हैं। अपने मनमें भीतर ही भीतर मैं जिस चीजको महसूस करता था उसे इन पुस्तकोंसे समर्थन मिला।[1]

यह सिद्ध करनेकी तो कोई जरूरत नहीं कि जो विचार मैं पाठकोंके सम्मुख रख रहा हूँ ऐसे कई भारतीय भी जिन्हें सभ्यता की छूत नहीं लगी है उन्ही विचारके हैं। यूरोपके भी हजारों लोग ऐसा ही सोचते हैं यह बात पाठकोंके मनमें मैं अपनी साखीके बलपर अंकित कर देना चाहता हूँ। जिन्हें इसकी खोज करनी हो और जिन्हें फुरसत हो वे उन पुस्तकोंको पढ़ सकते हैं। यथावकाश मैं इन पुस्तकोंमें से कुछ अंश पाठकोंके सम्मुख रखनेकी उम्मीद करता हूँ।

इंडियन ओपिनियन के पाठकों या दूसरे लोगोंके मनमें मेरी यह पुस्तक पढ़कर जो विचार आयें उन्हें यदि वे मुझतक पहुँचा दें तो मैं उनका कृतज्ञ होऊँगा।

मेरा उद्देश्य सिर्फ देशकी सेवा करने सत्यको ढूँढ़ने और उसके अनुसार आचरण करनेका है। इसलिए यदि मेरे विचार गलत सिद्ध हों तो मैं उनसे चिपटे रहनेका आग्रह नहीं करूँगा। और यदि वे सही निकलें तो देशहितके अनुरोधसे मैं सामान्यतः यह इच्छा रखूँगा कि दूसरे लोग उनके अनुसार आचरण करें।

सरलताकी दृष्टिसे मैंने अपनी बात पाठक और सम्पादकके संवादके रूपमें लिखी है।

मोहनदास करमचन्द गांधी

किल्डोनन कैसिल
२२-११-१९०९
[गुजरातीसे]

अध्याय १ कांग्रेस और उसके कर्ता-धर्ता

पाठक : इस समय भारतमें स्वराज्यकी हवा बह रही है। सभी भारतीय स्वतन्त्रता पानेके लिए उत्सुक दिखाई देते हैं। दक्षिण आफ्रिकामें भी वही जोश फैला हुआ है। बहुतेरे भारतीयोंमें अपने हक हासिल करनेके लिए बहुत उत्साह आ गया दीखता है। इस विषयमें आपके क्या विचार हैं?

सम्पादक : आपने सवाल किया सो ठीक है। परन्तु उत्तर देना सरल नहीं है। अखबारका एक काम है लोगोंकी भावनाएँ जानना और उन्हें प्रकट करना दूसरा उनमें अमुक आवश्यक भावनाएँ पैदा करना और तीसरा यदि उनमें दोष हों तो कैसी भी आपत्ति क्यों न आये उन्हें बेधड़क होकर कहना। आपके प्रश्नका उत्तर देनेमें ये तीनों काम एक-साथ करने पड़ेंगे। इसमें एक हद तक लोक-भावना बतानी पड़ेगी कुछ ऐसी भावनाएँ जो नहीं है उत्पन्न करनेकी कोशिश करनी पड़ेगी और दोषोंकी निन्दा

[1] देखिए "कुछ प्रमाणभूत ग्रन्थ" हिन्द स्वराज्यका परिशिष्ट-२, पृष्ठ ६५-६६।

करनी पड़ेगी।[1] फिर भी आपने प्रश्न किया है इसलिए उसका उत्तर देना मुझे अपना कर्तव्य मालूम होता है।

पाठक : क्या आपको सचमुच ऐसा प्रतीत होता है कि भारतमें स्वराज्यकी भावना पैदा हो गई है?

सम्पादक : वह तो जबसे राष्ट्रीय कांग्रेस स्थापित हुई तभीसे दिखाई दे रहा है।[2] 'राष्ट्रीय' शब्दसे ही यह अर्थ व्यक्त होता है।

पाठक : आपका यह कहना तो ठीक नहीं लगता। भारतीय कांग्रेसको नौजवान तो आज कुछ गिनते ही नहीं हैं। यहाँ तक कि वे उसे अंग्रेजी राज्य बनाये रखनेका साधन मानते हैं।

सम्पादक : नौजवानोंका ऐसा खयाल ठीक नहीं है। भारतके राष्ट्र-पितामह दादाभाईने[3] यदि जमीन तैयार न की होती तो नौजवान आज जो बातें करते हैं सो भी न कर पाते। श्री ह्यूमने[4] जो लेख लिखे, हमें जैसा फटकारा और जिस उत्साहसे हमें जगाया उसे कैसे भुलाया जा सकता है? सर विलियम वेडरबर्नने[5] कांग्रेसका उद्देश्य पूरा करनेमें अपना तन-मन-धन अर्पित कर दिया। उन्होंने अंग्रेजी राज्यके बारेमें जो लेख लिखे हैं वे आज भी पढ़ने लायक हैं। प्रोफेसर गोखलेने[6] भिखारियोंकी-सी स्थितिमें रहकर जनताको तैयार करनेके लिए अपने जीवनके बीस वर्ष दे दिये। आज भी वे महानुभाव गरीबीसे रहते हैं। स्वर्गीय न्यायमूर्ति बदरुद्दीनने[7] भी कांग्रेसके द्वारा स्वराज्यका बीज बोया था। इस तरह बंगाल, मद्रास, पंजाब आदिमें कांग्रेस तथा भारतका हित चाहनेवाले भारतीय और गोरे दोनों ही हो चुके हैं — यह बात याद रखनी चाहिए।

पाठक : ठहरिए, ठहरिए। आप तो कहींके कहीं पहुँच गये। मेरा प्रश्न कुछ है और आप उत्तर कुछ दे रहे हैं। मैं स्वराज्यकी बात करता हूँ और आप परराज्यकी बात करते हैं। मुझे किसी अंग्रेजका नाम नहीं चाहिए और आप तो उनके ही नाम गिनाने लगे। इस तरह तो हमारी गाड़ी पटरीपर आती नहीं दिखती। स्वराज्यकी ही बातें कीजिए तो मुझे रुचेंगी। बुद्धिमानीकी दूसरी बातोंसे सन्तोष होनेवाला नहीं है।

सम्पादक : आप उतावले हो गये हैं। उतावलीसे मेरा काम नहीं चल सकता। अगर आप जरा धीरज रखें तो आपको जो चाहते हैं, वही मिलेगा। उतावलीसे आम नहीं पकते यह कहावत याद रखिए। आपने मुझे रोका आपको भारतपर उपकार करनेवालोंकी चर्चा नहीं सुहाती इससे प्रकट होता है कि अभी आपके लिए

१ अंग्रेजी पाठमें — "दोनोंको मदद करना पड़ेगा।"

२ अंग्रेजी पाठमें — "जब भावनासे ही राष्ट्रीय कांग्रेस पैदा हुई।"

३ देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२१ और "भारतके पितामह" पृष्ठ ११५।

४ ए. ओ. ह्यूम कांग्रेसके संस्थापकोंमें से एक।

५ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके बम्बई (१८८९) और इलाहाबाद (१९१) अधिवेशनोंके अध्यक्ष, देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ११६।

६ सुप्रसिद्ध भारतीय नेता, शिक्षाविद् और समाजसुधारक, देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१०-१८।

७ कलकत्ता उच्च न्यायालयके न्यायाधीश और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके मद्रास अधिवेशन (१८८७) के अध्यक्ष; देखिए खण्ड ४ पृष्ठ ४७२ की पाद-टिप्पणी २।

हिन्द स्वराज्य'की प्रस्तावनाके

(देखिए पृष्ठ ७)

बायें हाथकी लिखावट : हिन्द स्वराज्य प्रकरण १

(देखिए पृष्ठ २७)

दाहिने हाथकी लिखावट   हिन्द स्वराज्य प्रकरण १

(देखिए पृष्ठ २७)

तो स्वराज्य दूर है। यदि आप जैसे भारतीय अधिक हो जायें तो हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे। यह बात तनिक सोचने योग्य है।

पाठक: मुझे तो लगता है कि आप इस तरह गोल-मोल बातें करके मेरे प्रश्नको उड़ा देना चाहते हैं। आप जिनको भारतका उपकारी मानते हैं उन्हें मैं ऐसा नहीं मानता। फिर मुझे किसके उपकारकी बात सुननी है?[1] आप जिन्हें भारतका राष्ट्र पितामह कहते हैं उन्होंने क्या उपकार किया है? वे तो कहते हैं कि अंग्रेज शासक न्याय करेंगे हमें उनके साथ मिलकर रहना चाहिए!

सम्पादक: मैं आपसे विनयपूर्वक कहना चाहता हूँ कि इस पुरुषके बारेमें आपका बेअदबीसे बोलना हमारे लिए शरमकी बात है। उनके कामोंपर नजर डालिए। उन्होंने अपना जीवन भारतको अर्पित कर दिया है। हमने यह सबक उनसे ही सीखा। माननीय दादाभाईने ही हमें बताया कि अंग्रेजोंने भारतका खून चूस लिया है। आज वे अंग्रेजोंपर विश्वास करते हैं तो क्या हुआ। यदि हम जवानीके जोशमें एक कदम आगे बढ़ जायें तो क्या इससे दादाभाई कम पूज्य हो गये? क्या इससे हम ज्यादा ज्ञानी हो गये? नसेनीकी जिस सीढ़ीसे हम ऊपर पहुँचे हैं उसे लात न मारना बुद्धिमानी है। यह याद रखना चाहिए कि उसे ठोकर मारना समूची नसेनीको गिरा देना है। हम बचपनसे जवानीमें आते हैं तो बचपनका तिरस्कार नहीं करते बल्कि उन दिनोंको प्यारसे याद करते हैं। यदि कोई वर्षों तक पढ़कर मुझे पढ़ाये और फिर उसके आधार पर मैं कुछ ज्यादा जान लूँ तो मैं अपने शिक्षकसे बड़ा तो नहीं हो गया। अपने शिक्षकका मान तो मुझे करना ही चाहिए। भारतके पितामहके बारेमें भी यही समझना योग्य है। यह तो हमें कहना ही होगा कि भारतीय जनता उनके पीछे है।[2]

पाठक: यह आपने ठीक कहा। श्री दादाभाईको मान दिया जाये यह बात तो समझमें आ सकती है। यह भी सही है कि उनके और उन जैसे पुरुषोंके कामके बिना हममें आजका उत्साह न होता। परन्तु ऐसा प्रोफेसर गोखलेके बारेमें कैसे माना जा सकता है? वे तो अंग्रेजोंके बड़े सगे बने बैठे हैं। वे तो कहते हैं कि हमें अंग्रेजोंसे बहुत सीखना है उनकी राजनीतिसे परिचित हो जानेपर ही स्वराज्यकी बातकी जा सकती है। इन महाशयके भाषणोंसे मैं तो बिलकुल ऊब गया हूँ।

सम्पादक: आपका ऊबना आपकी उतावली प्रकृतिका द्योतक है। परन्तु हम ऐसा मानते हैं कि जो नौजवान अपने माता-पिताकी ठण्डी प्रकृतिसे ऊब जाते हैं और वे उनके साथ नहीं दौड़ें तो नाराज होते हैं वे अपने माता-पिताका अनादर करते हैं। ऐसा ही हमें प्रोफेसर गोखलेके बारेमें भी मानना चाहिए। प्रोफेसर गोखले हमारे साथ नहीं दौड़ें तो क्या हुआ है? स्वराज्य भोगनेकी इच्छा करनेवाली जनता अपने बुजुर्गोंका तिरस्कार नहीं कर सकती। यदि आदर करनेकी हमारी आदत नष्ट हो जाये तो हम निकम्मे हो जायेंगे। स्वराज्यका उपभोग प्रौढ़ बुद्धिके लोग ही कर सकते हैं न कि उच्छृंखल। फिर देखिए, जब प्रोफेसर गोखलेने अपने-आपको भारतीय शिक्षाके लिए

१ अंग्रेजी पाठमें— "फिर ऐसे व्यक्तियोंके विषयमें आपका व्याख्यान मैं क्यों सुनूँ ?"

२ अंग्रेजी पाठमें— "हमें मानना होगा कि राष्ट्रीयताकी भावनाके जनक वे ही हैं।"

अर्पित किया उस समय इस तरहके भारतीय कितने थे? मेरी तो पक्की धारणा है कि प्रोफेसर गोखले जो-कुछ करते हैं वह शुद्ध भावसे और भारतका हित समझकर करते हैं। उनमें भारतके प्रति इतनी भक्ति है कि यदि भारतके लिए प्राण भी देने पड़ें तो वे दे डालें। वे जो-कुछ कहते हैं वह किसीकी खुशामद करनेके लिए नहीं वरन् सच मानकर कहते हैं। इसलिए उनके प्रति हमारे मनमें पूज्यभाव होना चाहिए।

पाठक: तो क्या वे जो-कुछ कहते हैं हमें भी वैसा ही करना चाहिए।

सम्पादक: मैं ऐसा कुछ नहीं कहता। यदि हम शुद्ध बुद्धिसे भिन्न विचार रखते हैं तो प्रोफेसर साहब खुद ही हमें उस विचारके अनुसार चलनेकी सलाह देंगे। हमारा मुख्य काम तो यह है कि हम उनके कामकी निन्दा न करें, यह मानें कि वे हमसे बड़े हैं, यह विश्वास करें कि उनके मुकाबलेमें हमने भारतके लिए कुछ भी नहीं किया। उनके सम्बन्धमें कुछ समाचारपत्र वाहियात बातें लिखा करते हैं, हम इसकी निन्दा करें और प्रोफेसर गोखले जैसोंको स्वराज्यके स्तम्भ मानें। ऐसा मान लेना कि उनके विचार गलत और हमारे सही ही हैं और जो हमारे विचारोंके अनुसार न चले वह देशका दुश्मन है, खराब वृत्ति है।

पाठक: आप जो कहते हैं वह अब कुछ-कुछ समझमें आ रहा है। फिर भी मुझे इस विषयमें विचार करना होगा। परन्तु श्री ह्यूम, सर विलियम वेडरबर्न आदिके बारेमें आपके कथनने तो गजब ढा दिया।

सम्पादक: जो नियम भारतीयोंके विषयमें लागू होता है वही अंग्रेजोंके विषयमें भी होता है। अंग्रेज-मात्र खराब हैं, यह तो मैं नहीं मानूँगा। बहुत-से अंग्रेज चाहते हैं कि भारतको स्वराज्य मिल जाये। यह ठीक है कि उन लोगोंमें स्वार्थ जरा ज्यादा है। परन्तु इससे यह साबित नहीं होता है कि हरएक अंग्रेज खराब है। जो हक — न्याय चाहते हैं उन्हें सबके प्रति न्याय करना होगा। सर विलियम भारतका बुरा चाहनेवाले नहीं हैं, इतना हमारे लिए बस है। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे वैसे-वैसे आप समझेंगे कि यदि हमने न्याय-वृत्तिसे काम लिया तो भारतका छुटकारा जल्दी होगा। आप यह भी देखेंगे कि यदि हम अंग्रेज-मात्रसे द्वेष करेंगे तो स्वराज्य दूर हटेगा, परन्तु यदि उनके प्रति भी न्याय करेंगे तो स्वराज्यमें उनकी सहायता प्राप्त होगी।

पाठक: अभी तो यह सब मुझे व्यर्थका प्रलाप लगता है। अंग्रेजोंकी मदद और स्वराज्य — ये तो परस्पर-विरोधी बातें हैं। स्वराज्यका अंग्रेजों [की मदद] से क्या सम्बन्ध? फिर भी इस प्रश्नका हल अभी मुझे नहीं चाहिए। उसमें समय खोना बेकार है। जब आप यह बतायेंगे कि स्वराज्य कैसे मिलेगा तब आपके विचार समझमें आयें तो आयें। अभी तो आपने अंग्रेजोंकी बात करके मुझे शंकामें डाल दिया है और मुझे आपके विचारोंके प्रति सन्देह हो गया है। इसलिए यह बात अब आगे न बढ़ायें तो अच्छा हो।

सम्पादक: मैं अंग्रेजोंकी बात देरतक नहीं करना चाहता। आप संशयमें पड़ गये हैं इसकी चिन्ता नहीं। अखरनेवाली बातको पहले ही कह देना ठीक होता है। अब आपके संशयको धैर्यके साथ दूर करना मेरा कर्तव्य है।

पाठक: आपका यह वाक्य मुझे पसन्द आया। इससे मुझमें जो ठीक जान पड़े सो कहनेका साहस आ गया। अभी मेरी एक शंका रह गई है। कांग्रेसके आरम्भसे स्वराज्यकी नींव पड़ी — सो कैसे?

सम्पादक: सुनिए। कांग्रेसने भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें भारतीयोंको एकत्र करके उनमें एक राष्ट्र बननेकी भावना भरी। कांग्रेसपर सरकारकी कड़ी दृष्टि रहती थी। उसने हमेशा यह माँगकी है कि राजस्व-सम्बन्धी अधिकार[1] जनताको होना चाहिए। उसने हमेशा वैसे स्वराज्यकी इच्छा की है जैसा कैनेडामें है। वह मिले या न मिले वैसा चाहिए या नहीं चाहिए, उससे अच्छा कोई दूसरा प्रकार है या नहीं यह प्रश्न भिन्न है। मुझे बताना तो इतना ही है कि भारतको स्वराज्यका रस कांग्रेसने चखाया है। यदि कोई अन्य उसका श्रेय लेना चाहे तो वह ठीक न होगा[2] और हम भी अगर वैसा मानें तो कृतघ्न ठहरेंगे। इतना ही नहीं बल्कि ऐसा करनेसे हमारा जो हेतु है उसे पूरा करनेमें कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं। कांग्रेसको विलग और स्वराज्य-विरोधी माननेसे हम उसका उपयोग नहीं कर सकते।

अध्याय २ बंग-भंग

पाठक: आप जो कहते हैं उसके अनुसार विचार करनेपर यह कहना ठीक मालूम होता है कि स्वराज्यकी नींव कांग्रेसने डाली है। फिर भी यह तो आपको स्वीकार करना चाहिए कि उसे सच्ची जागृति नहीं कह सकते। सच्ची जागृति कब और कैसे हुई?

सम्पादक: बीज कभी दिखलाई नहीं पड़ता। वह अपना काम मिट्टीके नीचे करता है और जब उसका अस्तित्व मिट जाता है अंकुर तभी जमीनके ऊपर दिखाई देता है। ऐसा ही कांग्रेसके बारेमें समझना चाहिए। जिसे आप सच्ची जागृति मानते हैं वह तो बंग-भंगसे[3] हुई। उसके लिए हमें लॉर्ड कर्जनका[4] आभार मानना पड़ेगा। बंग-भंगके समय बंगालियोंने कर्जन साहबसे बहुत अनुनय-विनय की परन्तु उक्त महाशयने अपनी सत्ताके मदमें इसकी कोई परवाह नहीं की। उन्होंने मान लिया कि भारतीय बकवास-भर करेंगे उनसे होना-हवाना कुछ नहीं है। उन्होंने अपमानभरी भाषाका उपयोग किया और जोर-जबरदस्तीसे बंगालका विभाजन कर डाला। ऐसा माना जा सकता है कि उस दिनसे अंग्रेजी राज्यके भी टुकड़े हो गये। जैसा धक्का अंग्रेजी राज्यको बंगालके विभाजनसे पहुँचा है वैसा दूसरी किसी बातसे नहीं पहुँचा। इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे अन्याय विभाजनसे कुछ कम हैं। नमक-कर कुछ छोटा अन्याय नहीं है। आगे ऐसे अनेक अन्यायोंकी बात आयगी। परन्तु बंग-भंगको स्वीकार करनेके लिए जनता

१. राजस्व निश्चयका अधिकार।
२. अंग्रेजी कहावत "उसे इस श्रेयसे वंचित करना ठीक न होगा।"
३. सन् १९०५ में।
४. भारतके वाइसराय १८९९-१९०५; देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ५०-५१।

तैयार न थी। उसकी भावनाएँ उस समय तीव्र थीं। उस समय बंगालके बहुत-से नेता अपना सर्वस्व न्योछावर करनेको तैयार थे। अपनी शक्तिका उन्हें भान था इसलिए एकदम आग भड़क उठी। अब उसे बुझाना सम्भव नहीं है; बुझानेकी जरूरत भी नहीं। विभाजन मिटेगा, बंगाल फिर एक होगा, परन्तु अंग्रेजी जहाजमें जो दरार पड़ गई है वह तो बनी ही रहेगी। वह दिन-ब-दिन चौड़ी होगी। जागा हुआ भारत फिरसे सो जाये यह सम्भव नहीं। विभाजन रद करनेकी माँग स्वराज्यकी माँगके बराबर है। बंगालके नेता यह बात भली-भाँति समझते हैं। अंग्रेज सत्ताधारी भी इसे समझते हैं इसलिए विभाजन रद नहीं हुआ। जैसे-जैसे दिन बीतते हैं वैसे-वैसे जनता संगठित हो रही है। जनता एक दिनमें संगठित नहीं हो जाती, इसमें बरसों लगते हैं।

पाठक: विभाजनके आपने क्या परिणाम देखे?

सम्पादक: आजतक हम मानते आये हैं कि सम्राट्के पास प्रार्थनापत्र भेजे जायें और प्रार्थनापत्र भेजनेसे न्याय न मिले तो तकलीफें भोग ली जायें। फिर भी प्रार्थनापत्र तो भेजते ही रहें। विभाजन होनेके बाद लोगोंने देखा कि प्रार्थनापत्रके पीछे बल चाहिए, लोगोंमें कष्ट उठानेकी शक्ति चाहिए। यह नई भावना ही विभाजनका मुख्य परिणाम मानी जायेगी। यह भावना अखबारोंके लेखोंमें झलकी। लेख कड़े होने लगे। जो बातें लोग डरते-डरते या लुके-छिपे करते थे वे खुल्लमखुल्ला कही और लिखी जाने लगीं। स्वदेशीका आन्दोलन चला। पहले अंग्रेजोंको देखते ही छोटे-बड़े सब भाग जाते थे। अब उनका डर चला गया। लोगोंने मार-पीट जानेकी भी परवाह नहीं की। जेल जानेमें उन्होंने बुराई नहीं मानी और इस समय भारतके पुत्ररत्न निर्वासित होकर [विदेशोंमें] विराजमान हैं।[1] यह चीज प्रार्थनापत्रोंसे भिन्न प्रकारकी है। इस तरह हम देखते हैं कि लोगोंमें जागृति आ गई है। बंगालकी हवा उत्तरमें पंजाब तक और दक्षिणमें कन्याकुमारी अन्तरीप तक पहुँच गई है।

पाठक: इसके सिवा अन्य कोई जानने योग्य परिणाम आपको सूझता है?

सम्पादक: बंगालके विभाजनसे अंग्रेजी जहाजमें तो दरार पड़ी ही है हमारे बीच भी पड़ी है। बड़ी घटनाओंके परिणाम ऐसे ही बड़े होते हैं। हमारे नेताओंमें दो दल बन गये हैं। एक मॉडरेट और दूसरा एक्स्ट्रीमिस्ट। उन्हें हम धीमा और उतावला कह सकते हैं। कुछ लोग मॉडरेट दलको नरम दल और एक्स्ट्रीमिस्ट दलको गरम दल भी कहते हैं। सब लोग अपने-अपने विचारोंके अनुसार इन दो शब्दोंका अर्थ करते हैं। इतना तो सही है कि ये जो दल बने हैं उनके बीच विद्वेष भी पैदा हुआ है। दोनों एक-दूसरेपर अविश्वास करते हैं और एक दूसरेपर ताने कसते हैं। सूरतकी कांग्रेसके[2] समय इनमें लगभग मार-पीट हो ही गई। मुझे तो लगता है कि इन दो दलोंका बनना देशके लिए शुभचिह्न नहीं है। परन्तु मेरा खयाल है कि ऐसे दल अरसे तक नहीं टिकेंगे। ये कितने दिनों बने रहेंगे यह नेताओंके ऊपर निर्भर है।

1. लोकमान्य तिलक जो उस समय मांडलेकी जेलमें थे।
2. सन् १९०७।

अध्याय ३ अशान्ति और असन्तोष

पाठक : तो बंग भंग आपकी समझमें जागृतिका कारण है। उससे फैली अशान्ति उचित मानी जाये या अनुचित।

सम्पादक : मनुष्यकी नींद खुलती है तो वह अंगड़ाई लेता है करवटें बदलता है और अशान्त होता है। पूरी तरह जाग्रत होनेमें कुछ समय लगता है। इसी तरह बंग-भंगसे नींद टूटी तो है फिर भी तंद्रा पूरी नहीं गई। अभी हम अंगड़ाईकी हालतमें हैं। स्थिति अभी अशान्तिकी है। जैसे नींद और जागृतिके बीचकी अवस्था जरूरी मानी जानी चाहिए और इसलिए उसे ठीक कहा जायेगा उसी तरह बंगालमें और उसके कारण सारे भारतमें फैली हुई अशान्ति भी ठीक मानी जायेगी। अशान्ति है यह हम जानते हैं इसलिए शान्तिका समय आना सम्भव है। नींदसे उठनेपर हम सदा ही अंगड़ाइयोंकी स्थितिमें नहीं बने रहते आगे-पीछे अपनी शक्तिके अनुसार पूरे जाग जाते हैं। वैसे ही इस अशान्तिसे हम जरूर बाहर निकलेंगे। अशान्ति किसीको रुचिकर नहीं लगती।

पाठक : अशान्तिका दूसरा पहलू क्या है?

सम्पादक : अशान्ति असलमें असन्तोष है। उसे आजकल हम 'अनरेस्ट' कहते हैं। कांग्रेसके जमानेमें उसे 'डिसकंटेंट' कहा जाता था। मि० ह्यूम हमेशा कहा करते थे कि भारतमें 'डिसकंटेंट' फैलानेकी जरूरत है। यह असन्तोष बहुत उपयोगी वस्तु है। जब तक मनुष्य अपनी वर्तमान स्थितिसे सन्तुष्ट रहता है तबतक उसे उससे निकल जानेकी बात समझाना कठिन होता है। इसलिए हरएक सुधारके पहले असन्तोष होना ही चाहिए। प्राप्त परिस्थितिसे अरुचि होनेपर ही उसे उठा फेंकनेकी इच्छा होती है। महान् भारतीयों तथा अंग्रेजोंकी पुस्तकें पढ़कर हममें यह असन्तोष आया है। इस असन्तोषसे अशान्ति हुई और इस अशान्तिमें कुछ लोग मरे कुछ घर-द्वार छोड़कर मारे-मारे फिरे बरबाद हुए, कुछ जेल गये और कुछको देश-निकाला हुआ।[1] आगे भी ऐसा ही

१ गांधीजी यहाँ क्रान्तिकारियोंके उस समय किये जा रहे अत्याचारोंकी बात कर रहे हैं जो स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए हिंसामें विश्वास रखते थे और जिन्होंने उन दिनों कुछ अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियोंके खिलाफ आतंकवाद शुरू करके कुछ अफसरोंकी हत्या कर दी थी। सन् १९०८ में बंगालके खुदीराम बोसने मुजफ्फरपुरके जिला-मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्डको मारनेके इरादेसे बम फेंका था जिससे श्रीमती और कुमारी केनेडी नामक दो अंग्रेज महिलाएँ मर गई थीं। [illegible] सरकारी [illegible] हत्या कर दी गई थी, इसी प्रकार अलीपुर षड्यन्त्र केसमें सरकारी गवाह बन जानेवाले नरेन्द्र गोस्वामीकी भी हत्या कर दी गई थी। अलीपुर षड्यन्त्र केसमें, इस केसके प्रमुख अभियुक्त श्री अरविन्द घोष, जिनकी पैरवी चित्तरंजन दासने की थी, निर्दोष छूट गये थे किन्तु अन्य कई क्रान्तिकारियोंको आजीवन निर्वासन [illegible] सजाएँ हुई थीं। सन् १९०९ में [illegible] [illegible] हत्या कर दी गई थी, [illegible] [illegible] हत्या कर दी गई थी। [illegible] कुछ ही दिन पहले [illegible] मार दिया था। [illegible] सन् १९०० में [illegible] और [illegible] निर्वासन [illegible] है, जिन्हें १९०८ से १९१४ तक [illegible] थे।

होगा—होना चाहिए। ये सभी चिह्न अच्छे कहे जा सकते हैं। परन्तु इनका नतीजा बुरा भी निकल सकता है।

अध्याय ४ स्वराज्य क्या है?

पाठक: मैं समझ गया कि कांग्रेसने भारतको एक राष्ट्र बनानेके लिए क्या क्या किया, बंग भंगसे जागृति कैसे हुई और अशान्ति तथा असन्तोष कैसे फैला। अब मैं स्वराज्यके विषयमें आपके विचार जानना चाहता हूँ। मुझे डर है कि कहीं इसमें हमारे विचार अलग-अलग न हों।

सम्पादक: सम्भव है। स्वराज्यके लिए आप और हम सब अधीर हैं। परन्तु स्वराज्य है क्या इस बारेमें हम ठीक निष्कर्षपर नहीं पहुँच पाये हैं। बहुत-से लोग यह कहते सुने जाते हैं कि अंग्रेजोंको निकाल बाहर किया जाये परन्तु ऐसा क्यों करना चाहिए, इसपर सचमुच कोई ठीक विचार किया गया हो ऐसा नहीं लगता। आपसे ही मैं पूछता हूँ मान लीजिए हम जितना माँगते हैं अंग्रेज उतना सब दे दें तो क्या आप फिर भी अंग्रेजोंको निकाल बाहर करनेकी जरूरत समझेंगे?

पाठक: मैं तो उनसे एक ही चीज माँगता हूँ—मेहरबानी करके आप हमारे देशसे चले जाइये। यह माँग वे स्वीकार करें और भारतसे चले जायें और बादमें कोई अर्थका अनर्थ करके यह सिद्ध कर दे कि वे जानेपर भी यहीं रह गये हैं तो मुझे कोई आपत्ति न होगी। तब मैं मानूँगा कि हमारी भाषामें किसीके देशसे गये का अर्थ रहे है।

सम्पादक: अच्छा मान लें कि माँगके अनुसार अंग्रेज चले गये। बादमें आप क्या करेंगे?

पाठक: इस प्रश्नका उत्तर अभी कैसे दिया जा सकता है? बादकी बात वे जिस तरीकेसे जायेंगे उसपर निर्भर रहेगी। अगर, जैसा कि आप कहते हैं हम यह मान लें कि वे चले गये तो मुझे लगता है कि हम उनका बनाया हुआ विधान कायम रखेंगे और राज्यका कारबार चलायेंगे। वे यों ही चले गये तो हमारे पास सेना आदि तैयार ही रहेगी और हमें राजकाज चलानेमें अड़चन नहीं होगी।

सम्पादक: आप भले ही ऐसा मानें मैं तो नहीं मानता। परन्तु इस विषयपर मैं अभी ज्यादा चर्चा करना नहीं चाहता। मुझे तो आपके प्रश्नका उत्तर देना है। वह आपसे ही कुछ प्रश्न पूछकर भलीभाँति दिया जा सकेगा। इसलिए कुछ प्रश्न पूछता हूँ। आप अंग्रेजोंको किसलिए निकालना चाहते हैं?

पाठक: क्योंकि उनके शासनसे देश कंगाल होता जाता है। वे हर वर्ष देशसे धन ले जाते हैं। वे अपनी ही चमड़ीके लोगोंको बड़े-बड़े ओहदे देते हैं। हमें सिर्फ गुलाम बनाकर रखते हैं हमारे साथ कठोर बरताव करते हैं और हमारी कोई परवाह नहीं करते।

सम्पादक: यदि वे धन बाहर न ले जायें नम्र हो जायें और हमें बड़े-बड़े ओहदे देने लगें तो क्या आपको उनके रहनेपर कोई आपत्ति है?

पाठक : यह प्रश्न ही निरर्थक है। बाघ अपना वेष बदल ले तो उसके साथ दोस्ती करनेमें क्या हानि है? — ऐसा पूछना केवल समय बरबाद करना है। बाघ अपना स्वभाव बदले तो अंग्रेज अपनी आदत छोड़ें। जिसका होना सम्भव नहीं है वही हो जायगा लोगोंमें ऐसा माननेका चलन नहीं है।

सम्पादक : कैनेडाको जो राज्यसत्ता मिली है, बोअर लोगोंको जो राज्यसत्ता मिली है वैसी ही हमें भी मिल जाये तो?

पाठक : यह प्रश्न भी निरर्थक है। यह तो तभी हो सकता है जब हमारे पास उनकी तरह गोला-बारूद हो। परन्तु जब हमें उन लोगों जितनी सत्ता मिलेगी तब तो हम अपना ही झंडा रखेंगे। जैसा जापान वैसा भारत। हमारा अपना जहाजी बेड़ा अपनी सेना अपनी समृद्धि। और तभी भारतका सारे संसारमें बोलबाला होगा।

सम्पादक : यह तो आपने अच्छी तसवीर खींची। इसका अर्थ तो यह हुआ कि हमें अंग्रेजी राज्य चाहिए, परन्तु अंग्रेज नहीं चाहिए। आप बाघका स्वभाव चाहते हैं, परन्तु बाघको नहीं चाहते। अर्थात् आप भारतीयोंको अंग्रेज बनाना चाहते हैं। किन्तु जब भारतीय अंग्रेज बन जायेगा तब देश भारत नहीं कहलायेगा बल्कि दरअसल इंग्लिस्तान कहलायेगा। यह स्वराज्य मेरे विचारका स्वराज्य नहीं है।

पाठक : मैंने तो जैसे स्वराज्यकी बात की वैसा मेरी समझमें आता है। हम जो शिक्षा पाते हैं यदि वह किसी कामकी हो स्पेन्सर, मिल आदि महान लेखकोंकी जो कृतियाँ हम पढ़ते हैं वे किसी कामकी हों अंग्रेजोंकी पार्लियामेंट पार्लियामेंटोंकी माता हो तब तो बेशक मुझे लगता है कि हमें उन लोगोंकी नकल करनी चाहिए और वह भी यहाँ तक कि जैसे वे अपने देशमें दूसरोंको नहीं घुसने देते वैसे ही हम भी न घुसने दें। और फिर, उन्होंने उनके अपने देशकी जैसी कुछ उन्नति की है, वैसी और जगहोंमें अभीतक तो देखनेमें नहीं आती। इसलिए हमें उनका ढंग अपनाना ही चाहिए। परन्तु अभी तो आप अपने विचार बतलाइए।

सम्पादक : धो तनिक देर से। मेरे विचार इस चर्चामें अपने-आप मालूम हो जायेंगे। स्वराज्यको समझना आपको जितना सरल मालूम होता है मुझे उतना ही कठिन। इसलिए अभी तो मैं इतना ही समझानेका प्रयत्न करूँगा कि जिसे आप स्वराज्य कहते हैं वह सचमुचमें स्वराज्य नहीं है।

अध्याय ५ इंग्लैंडकी दशा

पाठक : तो आपके कहनेका मैं यह मतलब निकालता हूँ कि इंग्लैंडमें जो राज्यपद्धति है वह ठीक नहीं है और वह हमारे उपयुक्त नहीं होगी।

सम्पादक : आपका अनुमान ठीक है। इंग्लैंडकी आजकी स्थिति सचमुच दयनीय है। और मैं तो ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वैसी स्थिति भारतकी कभी न हो। जिसे आप पार्लियामेंटोंकी माता कहते हैं वह पार्लियामेंट तो बन्ध्या है और वेश्या है। ये दोनों शब्द कड़े हैं फिर भी ठीक लागू होते हैं। मैंने बन्ध्या कहा क्योंकि अबतक पार्लियामेंटने अपने-आप एक भी अच्छा काम नहीं किया। उसकी स्वाभाविक स्थिति

ऐसी है कि यदि कोई उसपर जोर डालनेवाला न हो तो वह कुछ भी न करे। और वह वेश्या है, क्योंकि जो मन्त्रिमण्डल उसे रखता है वह उसके पास रहती है। आज उसका धनी एस्क्विथ[1] है तो कल बॉल्फर[2] और परसों कोई तीसरा।

पाठक: यह तो आप कुछ व्यंग्य-सा कर रहे हैं। बन्ध्या शब्द कैसे लागू है, यह आपने अभीतक समझाया नहीं। पार्लियामेंट लोगोंकी बनी है इसलिए वह लोगोंके दबावसे ही तो काम करेगी। यही उसका गुण है कि उसके ऊपर अंकुश है।

सम्पादक: इस बातमें भारी भूल है। यदि पार्लियामेंट बन्ध्या नहीं है, चूँकि लोग उसमें अच्छेसे-अच्छे सदस्य चुनकर भेजते हैं, सदस्य वेतनके बिना जाते हैं,[3] इसलिए अर्थात् वे लोक-कल्याणके लिए जाते हैं, मतदाता भी शिक्षित माने जाते हैं, अर्थात् वे [चुनाव में] भूल नहीं करते, तो फिर ऐसी पार्लियामेंटको प्रार्थनापत्रोंकी या दबावकी जरूरत क्यों पड़ती है? उस पार्लियामेंटका काम इतना सरल होना चाहिए कि दिन-ब-दिन उसका तेज अधिक दिखलाई पड़े और लोगोंपर उसका असर बढ़ता जाये। इतना तो सब स्वीकार करते हैं कि पार्लियामेंटके सदस्य ऐसे न होकर आडम्बरी और स्वार्थी पाये जाते हैं। सब अपना स्वार्थ साधते हैं। सिर्फ डरके कारण ही पार्लियामेंट कुछ काम करती है। आजका किया हुआ कल रद करना पड़ता है। आजतक पार्लियामेंटने एक भी बात ठिकाने लगाई हो ऐसा उदाहरण देखनेमें नहीं आता। जब उसमें बड़े-बड़े प्रश्नोंकी चर्चा चलती है तब उसके सदस्य पैर फैलाये ऊँघते बैठे रहते हैं। पार्लियामेंटमें सदस्य इतना चीखते-चिल्लाते हैं कि सुननेवाला हैरान हो जाता है। वहाँके एक महान् लेखकने[5] उसे दुनियाका बकवास-घर कहा है। सदस्य जिस पक्षके होते हैं उस पक्षमें वे अपना मत बिना सोचे-विचारे देते हैं; देनेके लिए बाध्य होते हैं। उनमें कोई अपवाद निकल आये तो उसकी शामत ही समझिए। जितना समय और धन पार्लियामेंट नष्ट करती है उतना समय और धन यदि कुछ अच्छे लोगोंको मिले तो राष्ट्रका उद्धार हो जाये। यह पार्लियामेंट तो राष्ट्रका खिलौना-मात्र है और यह खूब महँगा खिलौना है। ये विचार मेरे अपने हैं, ऐसा न समझिये। बड़े-बड़े विचारवान अंग्रेज भी ऐसा सोचते हैं। एक सदस्यने तो यहाँतक कहा है कि पार्लियामेंट धर्मिष्ठ व्यक्तिके योग्य नहीं रही। दूसरे सदस्यने कहा है कि पार्लियामेंट तो बेबी (बच्चा) है। किसी बच्चेको कभी आपने बच्चा ही बने रहते देखा है? आज सात सौ वर्ष बाद भी यदि पार्लियामेंट बच्चा ही बनी हुई हो तो वह बड़ी कब होगी?

पाठक: आपने मुझे विचारमें डाल दिया। यह सब मुझे एकदम मान लेना चाहिए, ऐसा तो आप नहीं चाहेंगे। आप मेरे मनमें बिलकुल भिन्न विचार पैदा कर रहे हैं। उनको मुझे पचाना होगा। और, अब आप वेश्या शब्दका विवेचन कीजिए।

१ हर्बर्ट हेनरी एस्क्विथ, (१८५२–१९२८), ग्रेट ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री, १९०८–१६।
२ आर्थर जेम्स बॉल्फर, ग्रेट ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री, १९०२–०५।
३ सदस्योंको वेतन देना १९११ में शुरू हुआ।
४ इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित पाठमें यह पूरा वाक्य मोटे टाइपमें दिया गया है।
५ कार्लाइल।

सम्पादक : आप मेरे विचारोंको एकदम न मान सकें यह तो ठीक है। यदि आप इससे सम्बन्धित आवश्यक साहित्य देखें तो आपको कुछ अन्दाज हो जायेगा। मेरा पार्लियामेंटको वेश्या कहना भी ठीक है।[1] उसका कोई धनी नहीं है। उसका एक धनी हो ही नहीं सकता। परन्तु मेरे कहनेका अर्थ इतना ही नहीं है। जब कोई उसका धनी बनता है — जैसे कि प्रधानमन्त्री — तब भी उसकी चाल एक सरीखी नहीं रहती। जैसे बुरे हाल वेश्याके होते हैं वैसे पार्लियामेंटके सर्वदा रहते हैं। प्रधानमन्त्रीको पार्लियामेंटकी चिन्ता थोड़े ही रहती है। वह तो अपनी सत्ताके नशेमें डूबा रहता है। उसे सिर्फ यह चिन्ता रहती है कि अपने पक्षकी विजय कैसे हो। पार्लियामेंट ठीक काम कैसे करे, यह विचार उसे नहीं रहता। वह अपने पक्षको बल प्रदान करनेके लिए पार्लियामेंटसे क्या-क्या काम कराता रहता है, इसके यथेष्ट उदाहरण मिलते हैं। ये सब बातें विचार करने योग्य हैं।

पाठक : इस तरह तो आप उन लोगोंपर भी हमला कर रहे हैं, जिन्हें आज तक हम देशाभिमानी और प्रामाणिक व्यक्ति मानते आये हैं।

सम्पादक : हाँ यह सच है। मुझे प्रधानमन्त्रियोंसे कोई द्वेष नहीं है। परन्तु अनुभव कहता है कि वे सच्चे देशाभिमानी नहीं माने जा सकते। जिसे रिश्वत कहते हैं सो वे खुल्लमखुल्ला नहीं लेते-देते; यदि इसीलिए उन्हें प्रामाणिक माना जाये तो अलग बात है, परन्तु वसीला उनके पास पहुँच सकता है। वे दूसरोंसे काम निकालनेके लिए उपाधि आदिकी भारी रिश्वत देते हैं। मैं साहसके साथ कह सकता हूँ कि शुद्ध भाव और शुद्ध प्रामाणिकता उनमें नहीं होती।

पाठक : जब आपके ऐसे विचार हैं तब तो आप अंग्रेज जनताके बारेमें भी कुछ कहें जिसके नामपर पार्लियामेंट राज्य करती है, ताकि उनके स्वराज्यकी पूरी कल्पना हो जाये।

सम्पादक : जो अंग्रेज वोटर हैं (चुनाव करते हैं) अखबार उनकी धर्म-पुस्तक (बाइबल) हो गये हैं। वे उन अखबारोंपरसे अपने विचार निश्चित करते हैं। पत्र अप्रामाणिक हैं — उनमें एक ही बातके दो रूप छापे जाते हैं। एक पक्षवाला एक बातको बड़ी बनाकर पेश करता है, दूसरा उसीको छोटी कर डालता है। एक अखबारवाला एक अंग्रेज नेताको प्रामाणिक मानेगा दूसरा अप्रामाणिक। जिस देशमें ऐसे अखबार हैं उस देशके लोगोंकी हालत कैसी बुरी होगी!

पाठक : यह आप ही बताइए।

सम्पादक : वे लोग क्षण-क्षणमें अपने विचार बदलते हैं। उन लोगोंमें कहावत प्रचलित है कि रंग हर सातवें वर्ष बदल जाता है। घड़ीके लोलककी तरह वे लोग इधरसे उधर डोला करते हैं। एक जगह स्थिर रह ही नहीं सकते। कोई व्यक्ति जरा

[1] अंग्रेजी पाठमें यह वाक्य छोड़ दिया गया है। इसे मूलानुसार जोड़ा गया है। गणेश ऐंड कं० द्वारा प्रकाशित हिन्द स्वराज्यकी अपनी प्रस्तावना (१८-५-१९१९) में गांधीजीने कहा था : "यदि मुझे इस पुस्तकमें संशोधन करनेका अवसर आये तो मैं एक शब्द बदलना चाहता हूँ। एक अंग्रेज महिला मित्रको मैंने उसे बदलनेका वचन दिया है। मैंने पार्लियामेंटको वेश्या कहा है; यह उसे नापसन्द है।"

आडम्बर-पटु हो और बड़ी-बड़ी बातें कर दे अथवा दावतें आदि देता रहे तो लोग नगाड़चीके समान उसके नामके नगाड़े बजाने लगते हैं। ऐसे लोगोंकी पार्लियामेंट भी ऐसी ही होती है। उनमें यह बात जरूर है कि वे अपने देशको [दूसरोंके हाथमें] नहीं जाने देंगे और यदि कोई उसपर नजर डाले तो उसकी आँखें निकाल लेंगे। परन्तु इससे उस देशकी प्रजामें सब गुण आ गये या वह अनुकरणीय हो गयी ऐसा नहीं कहा जा सकता। मेरा तो निश्चित विचार है कि यदि भारत अंग्रेजोंकी नकल करे तो वह बरबाद हो जायेगा।

पाठक : अंग्रेज जनताके ऐसे हो जानेका आप क्या कारण मानते हैं?

सम्पादक : इसमें अंग्रेजोंका विशेष दोष नहीं है दोष उनकी — बल्कि यूरोप-की — आधुनिक सभ्यताका है। वह सभ्यता असभ्यता है और उससे यूरोपकी जनता बरबाद होती जा रही है।

अध्याय ६ सभ्यता

पाठक : अब तो आपको सभ्यताकी बात भी समझानी पड़ेगी। आपके हिसाबसे सभ्यता असभ्यता जो ठहरी।

सम्पादक : मेरे हिसाबसे ही नहीं बल्कि अंग्रेज लेखकोंके हिसाबसे भी यह सभ्यता असभ्यता है। इसके विषयमें बहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं। वहाँ इस सभ्यताका विरोध करनेके लिए सभा-समितियोंकी स्थापना भी हो रही है। एक व्यक्तिने[1] सभ्यता उसके कारण और चिकित्सा नामकी पुस्तक लिखी है। उसमें उसने यह सिद्ध किया है कि सभ्यता एक प्रकारका रोग है।

पाठक : यह सब हमें मालूम क्यों नहीं पड़ता?

सम्पादक : इसका कारण तो साफ है। कोई भी व्यक्ति अपने विरुद्ध बात शायद ही करता है। सभ्यताके मोहमें फँसे हुए लोग उसके विरुद्ध नहीं लिखेंगे वरन् ऐसी बातें और दलीलें खोज निकालेंगे जिनसे उसे सहारा मिले। ऐसा भी नहीं कि वे जान-बूझकर ऐसा करते हैं। वे जो कुछ लिखते हैं वही उनकी धारणा होती है। मनुष्य जो स्वप्न देखता है उसे निद्राके वशमें रहनेपर सच ही मानता है। जब उसकी नींद खुलती है तभी उसे सत्यका पता चलता है। ऐसी ही दशा सभ्यताके वशीभूत मनुष्यकी होती है। हम जो-कुछ पढ़ते हैं वह सभ्यताके हिमायतियोंका लिखा होता है। उनमें बहुत बुद्धिमान और बहुत भले लोग शामिल हैं। उनके लेखनसे हम चौंधिया जाते हैं। इस तरह एकके बाद दूसरा व्यक्ति उसमें फँसता जाता है।

पाठक : यह बात आपने ठीक कही। अब उसकी कल्पना दीजिए जो आपने पढ़ा और सोचा है।

सम्पादक : पहले तो हम यह सोचें कि किस परिस्थितिको सभ्यता कहा जाता है। इस सभ्यताकी सच्ची पहचान तो यह है कि इसे स्वीकार करनेवाले लोग भौतिक

१. एडवर्ड कार्पेंटर; देखिए हिन्द स्वराज्य परिशिष्ट-२, पृ. ६५।

लोगों और शरीर-सुखोंमें सार्थकता और पुरुषार्थ मानते हैं। इसके उदाहरण देखें। यूरोपके लोग सौ वर्ष पूर्व जैसे घरोंमें रहते थे उनकी अपेक्षा आज ज्यादा अच्छे घरोंमें रहते हैं। यह सभ्यताका चिह्न माना जाता है। इसमें दृष्टि शरीर-सुखकी है। पहले लोग चमड़ेके कपड़े पहनते थे और भाले काममें लाते थे। अब वे लम्बे पतलून पहनते हैं, शरीरके शृंगारके लिए तरह-तरहके कपड़े बनवाते हैं और भालेके बदले लगातार पाँच बार फैर सकनेवाली पिस्तौल काममें लाते हैं। यह सभ्यताकी निशानी हुई। जब किसी देशके लोग जो जूते आदि नहीं पहनते थे यूरोपीय ढंगकी पोशाक पहनने लगते हैं तब कहा जाता है कि वे जंगली नहीं रहे सभ्य हो गये। यूरोपमें पहले लोग मामूली हलसे खुद मेहनत करके अपने कामके लायक जमीन जोत लेते थे। आज भापके यन्त्रोंसे हल चलाकर एक आदमी बहुत-सी जमीन जोत सकता है और खूब पैसा इकट्ठा कर ले सकता है। यह सभ्यताकी निशानी मानी जाती है। पहले लोग इनी-गिनी पुस्तकें ही लिखते थे और वे अमूल्य मानी जाती थीं। आज हर कोई चाहे जो लिखता है और छपवाता है और लोगोंका मन भ्रान्त करता है। यह सभ्यताकी निशानी है। पहले लोग बैलगाड़ीसे दिनमें बस बारह कोसकी मंजिल तय कर पाते थे। आज रेलगाड़ीसे चार-सौ कोसका सफर हो जाता है। यह तो सभ्यताका शिखर माना गया है। अब जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे यह धारणा होती जा रही है कि अब मनुष्य वायुयानसे यात्रा करेंगे और कुछ ही घंटोंमें दुनियाके किसी भी कोनेमें जा पहुँचेंगे। मनुष्यको हाथ-पैर हिलानेकी जरूरत नहीं रहेगी। एक बटन दबाया कि पहननेके कपड़े, दूसरा बटन दबाया कि अखबार, तीसरा बटन दबाया कि गाड़ी हाजिर हो जायेगी नित्य नया भोजन मिलेगा हाथ-पैरका काम ही नहीं पड़ेगा सारा काम यन्त्रोंसे ही किया जायेगा। पहले जब लोग लड़ना चाहते थे तब एक-दूसरेका शरीर-बल आजमाते थे। अब तो वे तोपके एक गोलेसे हजारों जानें ले सकते हैं। यह सभ्यताकी निशानी है। पहले लोग खुली हवामें स्वतन्त्रता पूर्वक उतना ही काम करते थे जितना उन्हें ठीक जान पड़ता था। आज हजारों मजदूर अपनी गुजर बसरके लिए इकट्ठे होकर बड़े कारखानों या खदानोंमें काम करते हैं। उनकी दशा जानवरोंसे भी बदतर हो गई है। उन्हें सीसा आदिके कारखानोंमें जान जोखिममें डालकर काम करना पड़ता है और लाभ पैसेवालोंको मिलता है। पहले लोग मार-मार कर गुलाम बनाये जाते थे अब पैसे और सुखका लालच देकर गुलाम बनाये जाते हैं। जो पहले नहीं थे अब ऐसे रोग पैदा हो गये हैं और लोग अनुसन्धान करनेमें लगे हैं कि [सभ्यतासे उत्पन्न] इन रोगोंको कैसे मिटाया जाये। इस तरह अस्पतालोंकी वृद्धि हो रही है। यह सभ्यताकी निशानी मानी जाती है। पहले जो पत्र लिखे जाते थे उनके लिए खास हरकारा जाता था और इसमें बहुत खर्च होता था। आज मुझे किसीको गाली देनेके लिए भी पत्र लिखना हो तो मैं एक पैसेमें गाली दे सकता हूँ। किसीको मैं धन्यवाद देना चाहूँ तो वह भी उसी खर्चमें पहुँचा सकता हूँ। यह सभ्यताकी निशानी है। पहले लोग दो-तीन बार खाते थे और वह भी हाथसे पकाई रोटी और हुआ तो कुछ साग। अब दो-दो घंटेमें खानेको चाहिए, और वह इस

हद तक कि खानेसे लोगोंको फुरसत ही नहीं मिलती। और कितना कहूँ? यह सब आप चाहे जिस पुस्तकमें देख सकते हैं। यह सब सभ्यताकी सच्ची निशानियाँ हैं। और यदि कोई व्यक्ति इससे भिन्न बात समझाये तो निश्चय मानिए, वह अनजान है। सभ्यता तो यही मानी जाती है, जिसे मैं बता चुका हूँ। उसमें नीति या धर्मकी बात है ही नहीं। सभ्यताके हिमायती साफ कहते हैं कि उनका काम लोगोंको धर्म सिखाना नहीं है। कुछ लोग मानते हैं कि धर्म तो ढोंग है। दूसरे कुछ लोग धर्मका दम्भ करते हैं, नीतिकी भी बात करते हैं। फिर भी मैं बीस वर्षके अनुभवके आधार पर कहता हूँ कि नीतिके नामपर अनीति सिखाई जाती है। यह तो बच्चा भी समझ सकता है कि नीति ऊपर बताई हुई बातोंमें हो ही नहीं सकती। सभ्यताको तो इसीकी चिन्ता है कि शारीरिक सुख कैसे मिले। वही देनेका वह प्रयत्न करती है किन्तु वह सुख नहीं मिल पाता।

यह सभ्यता तो अधर्म है और यह यूरोपमें इस हद तक फैल गई है कि वहाँके लोग अर्ध-विक्षिप्तसे दिखाई देते हैं। उनमें सच्ची शक्ति नहीं है अपनी शक्ति वे नशेके बलपर कायम रखते हैं। एकान्तमें वे बैठ ही नहीं सकते। स्त्रियोंको जिन्हें घरकी रानियाँ होना चाहिए, गलियोंमें भटकना पड़ता है या मजदूरीके लिए जाना पड़ता है। इंग्लैंडमें ही चालीस लाख[1] एक अबलाएँ पेटके लिए सख्त-मजदूरी करती हैं और इस कारण इस समय सफ्रेजेट [मताधिकार]का आन्दोलन चल रहा है।

यदि हम धैर्यपूर्वक सोचें तो समझमें आ जायेगा कि यह ऐसी सभ्यता है कि इसकी चपेटमें पड़े हुए लोग अपनी ही सुलगाई अग्निमें जल मरेंगे। पैगम्बर मुहम्मदकी शिक्षाके अनुसार इसे शैतानी राज्य कहा जा सकता है। हिन्दू धर्म इसे घोर कलियुग कहता है। मैं आपके सामने इस सभ्यताकी हूबहू तसवीर नहीं खींच सकता। वह बात मेरे बूतेके बाहरकी है। परन्तु यह आप समझ सकते हैं कि इसके कारण अंग्रेजों सड़ाँधने घर कर लिया है। यह सभ्यता नाशकारी और नाशवान है। इससे दूर रहना ही अच्छा है और इसीसे अंग्रेजोंकी पार्लियामेंट और दूसरी पार्लियामेंटें निकम्मी हो गई हैं। उक्त पार्लियामेंट वहाँकी गुलामीको सूचित करती है यह निश्चित है। यदि आप पढ़ें और सोचें तो आपको भी ऐसा ही लगेगा। इसमें आप अंग्रेजोंका दोष न निकालें। उनपर तो दया की जानी चाहिए। वे तो बा-होश लोग हैं इसलिए मैं मानता हूँ कि इस जालसे निकल जायेंगे। वे साहसी और परिश्रमी हैं। उनके विचार मूलतः अनीतिपूर्ण नहीं हैं। इसलिए उनके प्रति मेरे मनमें उत्तम विचार ही हैं। उनका दिल खराब नहीं है। सभ्यता उनके लिए असाध्य रोग नहीं है परन्तु अभी वे उस रोगसे ग्रस्त हैं, यह तो भूलना ही नहीं चाहिए।

अध्याय ७ भारत कैसे गया?

पाठक: आपने सभ्यताके बारेमें तो बहुत-सी बातें बताईं और मुझे विचारमें डाल दिया। मैं दुविधामें पड़ गया हूँ कि यूरोपकी प्रजासे क्या लिया जाये और क्या

१ अंग्रेजी पाठमें — पाँच लाख।

नहीं। परन्तु मनमें एक प्रश्न उठ रहा है कि सभ्यता यदि असभ्यता है, रोग है तो ऐसी सभ्यतासे ग्रस्त अंग्रेज भारतको कैसे ले सके और कैसे उसमें जमे हुए हैं?

सम्पादक : आपके इस प्रश्नका उत्तर देना अब कुछ आसान हो गया है और अब थोड़ी ही देरमें हम स्वराज्यपर भी विचार कर सकेंगे। मैं भूला नहीं हूँ कि आपके स्वराज्य सम्बन्धी प्रश्नका उत्तर मुझे देना है। परन्तु अभी आपके आखिरी सवालको ही लें। भारतको अंग्रेजोंने लिया हो सो बात नहीं है, हमने उन्हें अपना देश दिया है। वे यहाँ अपने बलसे नहीं टिके हैं बल्कि हमने उन्हें टिका रखा है। कैसे सो देखें। आपको याद दिलाता हूँ कि दरअसल वे हमारे देशमें व्यापारके लिए आये थे। जरा कम्पनी बहादुरकी[1] याद कीजिए। उसे बहादुर किसने बनाया? उन बेचारोंको तो राज्य करनेका खयाल तक नहीं था। कम्पनीके लोगोंकी मदद किसने की? कौन उनकी चाँदी देखकर मुग्ध हो जाता था? उनका माल कौन बेच देता था? इतिहास साक्षी है कि यह सब हम ही करते थे। फौरन धनवान बन जानेकी नीयतसे हम उनका स्वागत करते थे उनकी मदद करते थे। मुझे भाँग पीनेकी आदत हो और भाँग बेचनेवाला मुझे भाँग बेचे तो दोष उसका है या मेरा अपना? उसीको दोष देनेसे मेरी लत थोड़े ही छूट जायेगी? एकको भगा दें तो क्या मुझे दूसरा भाँग बेचनेवाला नहीं मिल जायेगा? भारतके सच्चे सेवकको ठीक-ठीक खोज करके इसके मूलकी जाँच करनी होगी। यदि मुझे बहुत खानेके कारण अजीर्ण हो गया हो तो मैं आबहवाको दोषी ठहराकर अजीर्ण दूर नहीं कर सकूँगा। वैद्य तो वह है जो रोगका मूल खोज निकाले। आप भारतके रोगके वैद्य बनना चाहते हैं तो रोगका मूल खोजना ही होगा।

पाठक : आप सच कहते हैं। अब मुझे समझानेके लिए आपको तर्क देनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। मैं आपके विचार जाननेके लिए अधीर हो उठा हूँ। हम अत्यन्त रोचक प्रसंगपर आ गये हैं। इसलिए अब आप मुझे अपने विचार ही बताइए। मुझे जहाँ शंका होगी वहाँ आपको टोकूँगा।

सम्पादक : बहुत अच्छा। परन्तु मुझे डर है कि आगे चलनेपर जरूर ही हमारे बीच फिर मतभेद होगा किन्तु जब आप मुझे टोकेंगे तभी मैं तर्कमें उतरूँगा।

हमने देखा कि अंग्रेज व्यापारियोंको हमने बढ़ावा दिया तब वे पैर फैला सके। इसी तरह जब हमारे यहाँके राजा आपसमें लड़े तब उन्होंने कम्पनी-बहादुरसे मदद माँगी। कम्पनी व्यापार तथा लड़ाईके काममें कुशल थी। उसमें उसे नीति-अनीतिकी बाधा नहीं थी। व्यापार बढ़ाना और धन कमाना उसका धन्धा था। उसमें जब हमने मदद दी तब उसने मदद की और अपनी कोठियाँ बढ़ाईं। कोठियोंकी रक्षाके लिए उसने सेना रखी। उस सेनाका हमने उपयोग किया। और अब उसपर दोष मढ़ें तो यह ठीक नहीं है। उस समय हिन्दू-मुसलमानोंमें वैर था। उससे कम्पनीको मौका मिला। यों सब तरहसे हमने कम्पनीको मौका दिया कि उसका अधिकार सारे भारतपर हो जाये इसलिए यह कहनेके बजाय कि भारत चला गया यह कहना ज्यादा सच है कि अपना देश अंग्रेजोंको हमने सौंप दिया।

१ ईस्ट इण्डिया कम्पनी।

पाठक : अब यह बताइए कि अंग्रेज भारतपर कब्जा किस तरह रखे हुए हैं?

सम्पादक : जैसे हमने उन्हें भारत दे दिया उसी तरह हम उसपर उनका कब्जा भी रहने दे रहे हैं। उनमें से कुछ लोग कहते हैं कि उन्होंने भारतको तलवारसे लिया है और तलवारसे ही उसपर कब्जा रखते हैं। ये दोनों ही बातें गलत हैं। भारतपर कब्जा रखनेमें तलवार किसी काम नहीं पड़ सकती। यहाँ उनका कब्जा बनाये रखनेके लिए भी हम ही उत्तरदायी हैं।

नेपोलियनने अंग्रेजोंको व्यापारी जाति कहा है। यह बिलकुल ठीक है। याद रखना चाहिए कि वे किसी भी देशपर कब्जा व्यापारके लिए रखते हैं। उनकी फौज और नौ-सेना सिर्फ व्यापारकी रक्षा करनेके लिए है। जब ट्रान्सवालमें व्यापार नहीं था तब भी ग्लैडस्टनको[1] तुरन्त सूझा कि अंग्रेजोंको ट्रान्सवाल नहीं रखना चाहिए। किन्तु जब वहाँ व्यापार दिखा तब भी चेम्बरलेनने[2] यह खोज निकाला कि ट्रान्सवालपर अंग्रेजोंकी हुकूमत है और उसके साथ युद्ध किया। स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरसे[3] किसीने पूछा "चन्द्रमामें सोना है या नहीं?" उन्होंने जवाब दिया कि "चन्द्रमामें सोनेका होना सम्भव नहीं लगता क्योंकि यदि होता तो अंग्रेज उसे अपने साम्राज्यमें मिला लेते।" यह ध्यानमें रखनेसे कि उनका परमेश्वर पैसा है, सारी बात स्पष्ट हो जायेगी।

तो हमने अंग्रेजोंको केवल अपने स्वार्थके कारण भारतमें बना रखा है। हमें उनका व्यापार पसन्द आता है। वे दाँव-पेच करके हमें रिझाते हैं और रिझाकर हमसे काम ले लेते हैं। इसमें हमारा उनके दोष निकालना उनकी सत्ताको बनाये रखनेके बराबर है। फिर हमारे आपसके झगड़े उनको और ज्यादा बल देते हैं।

यदि आप ऊपरकी बातको ठीक मानें तो हमने सिद्ध कर दिया कि अंग्रेज व्यापारके लिए आये व्यापारके लिए रहते हैं और उनके बने रहनेमें हम ही मददगार हैं। उनके हथियार तो बिलकुल व्यर्थ हैं।

इस प्रसंगमें मैं आपको यह याद दिलाता हूँ कि जापानमें भी अंग्रेजी झण्डा ही फहराता है आप ऐसा ही समझिये। जापानके साथ अंग्रेजोंने जो सन्धि की है सो व्यापारके लिए। और आप देखेंगे कि वे वहाँ व्यापार जमा लेंगे। अंग्रेज अपने मालके लिए सारी दुनियाको अपना बाजार बनाना चाहते हैं। ऐसा कर नहीं सकेंगे यह सही है। किन्तु इसपर तो उनका कोई वश नहीं है। हाँ वे अपने प्रयत्नोंमें कुछ उठा रखनेवाले नहीं हैं।

१ विलियम एवार्ट ग्लैडस्टन (१८०९–९८) ग्रेट ब्रिटेनके प्रधानमन्त्री, १८६८–७४ १८८०–८५, १८८६ और १८९२–९४।

२. जोजेफ चेम्बरलेन (१८३६–१९१४); ब्रिटेनके उपनिवेश-मन्त्री, १८९५।

३ स्टीफेनस जोहानेस पॉलस क्रूगर (१८२५–१९०४) बोअर नेता और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके राष्ट्रपति; देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ७९।

अध्याय ८ भारतकी दशा

पाठक: यह समझमें आ गया कि भारत क्यों अंग्रेजोंके हाथ है। अब मैं भारतकी दशाके बारेमें आपके विचार जानना चाहता हूँ।

सम्पादक: आज भारत दरिद्रावस्थामें है। यह कहते हुए मेरी आँखोंमें पानी भर आता है और गला सूख रहा है। मैं पूरी तरहसे आपको समझा सकूँगा या नहीं इसमें मुझे सन्देह है। मेरा निश्चित मत है कि भारत अंग्रेजोंके नहीं बल्कि वर्तमान सभ्यताके नीचे कुचला जा रहा है। वह उसकी चपेटमें आ गया है। उससे निकलनेका उपाय अभीतक तो जरूर है, परन्तु दिन-ब-दिन देरी होती जा रही है। मुझे तो धर्म प्यारा है इसलिए पहला दुःख तो यह है कि भारत धर्मभ्रष्ट होता जा रहा है। धर्मका अर्थ यहाँ मैं हिन्दू या मुसलमान या जरथोस्ती धर्म नहीं कहता। परन्तु इन सब धर्मोंमें जो धर्म-निहित है वह समाप्त हो रहा है। हम ईश्वरसे विमुख होते जा रहे हैं।

पाठक: सो कैसे?

सम्पादक: भारतपर यह आरोप है कि हम आलसी हैं और गोरे परिश्रमी तथा उत्साही हैं। और इसे मानकर हम अपनी स्थिति बदलना चाहते हैं।

हिन्दू मुसलमान पारसी ईसाई — सभी धर्म यह सिखाते हैं कि हमें सांसारिक बातोंके प्रति मन्द और धार्मिक बातोंके प्रति उत्साही रहना चाहिए — हम अपने सांसारिक लोभकी हद बाँध दें और धार्मिक लोभको मुक्त रखें। अपना उत्साह उसीमें रखें।

पाठक: यह तो मानो आप पाखण्डी बननेकी शिक्षा दे रहे हैं। ऐसी बातें करके धूर्त लोग दुनियाको ठगते आये हैं और आज भी ठग रहे हैं।

सम्पादक: इसका धर्मपर झूठा दोष न मढ़ें। पाखण्ड तो सब धर्मोंमें है। जहाँ सूर्य है वहाँ अँधेरा भी है। परछाईं हर वस्तुकी होती है। आप देखेंगे धार्मिक धूर्त सांसारिक धूर्तोंसे अच्छे हैं। सभ्यताके जिस पाखण्डकी मैं आपसे चर्चा कर चुका हूँ वह धर्ममें मुझे कहीं दिखा ही नहीं।

पाठक: ऐसा कैसे कहा जा सकता है? धर्मके नामपर हिन्दू-मुसलमान लड़े धर्मके बहाने ईसाइयोंमें महायुद्ध हुए, धर्मके नामपर हजारों निरपराध लोग मारे गये उन्हें जला दिया गया उनपर घोर संकट ढाये गये। यह तो सभ्यतासे भी खराब माना जायेगा।

सम्पादक: मैं कहता हूँ कि यह सब सभ्यताके दुःखोंकी अपेक्षा अधिक सह्य है। आपने जो-कुछ कहा वह पाखण्ड है ऐसा सब समझते हैं।[1] इसलिए जो आज उसमें फँसे हुए हैं आगे-पीछे वे उसमें से निकल भी आयेंगे। जहाँ भोले लोग हैं वहाँ ऐसा चलता तो रहेगा। परन्तु उसका बुरा असर सदैव नहीं बना रहता। किन्तु सभ्यताकी

[1] अंग्रेजी पाठमें: “हरएक समझता है कि आपने जिन अत्याचारोंकी बात कही, वे धर्मका हिस्सा नहीं है।”

होलीमें जलकर मरनेवालोंकी एक तो कोई सीमा नहीं है, और फिर खूबी यह है कि लोग उसे अच्छा मानकर उसमें कूदते हैं। वे न दीनके रहते हैं, न दुनियाके। वे सच्ची बातको बिलकुल भूल जाते हैं। सभ्यता चूहेकी भाँति फूँक-फूँक कर काटती है। जब हमको उसके असरका पता चलेगा तब उसकी तुलनामें हम पुराने अन्धविश्वास मीठे लगेंगे। मैं यह नहीं कहता कि हम उन अन्धविश्वासोंको कायम रखें। नहीं उनसे तो हम लड़ें ही परन्तु वह लड़ाई धर्मको भूल जानेसे नहीं लड़ी जायेगी बल्कि सही तौरपर धर्मका सम्पादन करके लड़ी जा सकेगी।

पाठक: तब तो आप यह भी कहेंगे कि अंग्रेजोंने भारतमें शान्ति कायम करके जो सुख दिया है वह बेकार है?

सम्पादक: आप भले शान्ति देखते हों मैं तो शान्ति-सुख नहीं देखता।

पाठक: तो क्या ठग[1] पिंडारी[2] भील आदि जो कष्ट देते थे उसमें आपके हिसाबसे कोई हर्ज नहीं था?

सम्पादक: आप थोड़ा सोचकर देखें तो मालूम होगा कि वह कष्ट बिलकुल मामूली था। यदि वह गम्भीर होता तो प्रजा कबकी जड़-मूलसे नष्ट हो गई होती। फिर आजकलकी शान्ति तो नाममात्रकी ही है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि हम इस शान्तिसे नामर्द स्त्रैण और भीरु बन गये हैं। अंग्रेजोंने ठगों और पिंडारियोंका स्वभाव बदल दिया है हम ऐसा न मान लें। हमपर वैसा कष्ट पड़े तो वह सहन किया जा सकता है परन्तु यदि कोई दूसरा व्यक्ति हमें उससे बचाये तो यह हमारे लिए एकदम हीनताजनक होगा। मुझे तो निर्बल बननेके बजाय यह ज्यादा पसन्द है कि हम भीलोंके तीरोंसे मर जायें। उस स्थितिमें भारतका तेज कुछ अलग ही था। मैकॉलेने भारतीयोंको नपुंसक माना यह उसके अधम अज्ञानका सूचक है। भारतीय नामर्द कभी रहे ही नहीं। जिस देशमें पहाड़ी लोग और बाघ-भेड़िये साथ साथ रहते हों उसके निवासी यदि सचमुच डरपोक हों तो उनका तो नाश ही हो जाये। आप कभी खेतोंमें गये हैं? मैं आपसे विश्वासके साथ कहता हूँ कि खेतोंमें आज भी हमारे किसान निर्भय होकर सोते हैं। अंग्रेज और आप वहाँ सोनेमें आनाकानी करेंगे। बल तो निर्भयतामें है। यह आप थोड़ा ही सोचनेसे समझ जायेंगे कि शरीरमें मांसका लौंदा बढ़ जानेसे बल नहीं आ जाता।

फिर आप तो स्वराज्यके इच्छुक हैं। मैं आपको याद दिलाता हूँ कि भील पिंडारी और ठग हमारे ही देश-भाई हैं। उनको जीतना आपका और मेरा काम है। जब तक आपको अपने ही भाईका डर रहेगा तबतक आप मंजिलपर कदापि नहीं पहुँचेंगे।

१ लुटेरोंके गिरोह जो राहगीरोंको धोखा देकर गला घोंटकर मार डालते थे और उनका माल लेकर चम्पत हो जाते थे।

२. सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दीके घुड़सवार लुटेरे।

अध्याय ९ भारतकी दशा (जारी) रेलगाड़ियाँ

पाठक : भारतकी तथाकथित शान्तिपर मैं मुग्ध था। वह मेरा मोह आपने खत्म कर दिया। अब ऐसा नहीं लगता कि आपने मेरे पास कुछ भी छोड़ा है।

सम्पादक : अभी तो मैंने आपको केवल धर्मकी दशाका अन्दाज दिया है। किन्तु भारत रंक क्यों बना है, इस विषयमें जब मैं आपको अपने विचार बताऊँगा, तब शायद आपको मुझसे नफरत ही हो जायेगी। क्योंकि आपने और हमने अबतक जिन चीजोंको लाभकर माना है, मुझे तो वे हानिकर जान पड़ती हैं।

पाठक : जरा सुनाइये तो वे क्या चीजें हैं?

सम्पादक : भारतको रेलगाड़ियों, वकीलों और डॉक्टरोंने कंगाल बना दिया है। यह परिस्थिति ऐसी है कि यदि हम समयपर नहीं जागे तो चारों ओरसे घिर जायेंगे।

पाठक : कौन जाने हमारा सब द्वारका पहुँचता है कि नहीं।[1] आपने तो उन सभी बातोंपर हमला शुरू कर दिया जो अच्छी दिखाई पड़ती हैं और अच्छी मानी गई हैं। अब बच ही क्या रहा?

सम्पादक : आपको धैर्य रखना पड़ेगा। [तथाकथित] सभ्यता कैसी असभ्यता है, यह बात तो कठिनाईसे ही समझमें आयेगी। हकीम आपको बतायेगा कि तपेदिकके मरीजको मरनेके दिन तक जीनेकी आशा रहती है। इस रोगसे होनेवाली हानि ऊपरसे दिखाई नहीं देती। यहाँतक कि इस बीमारीमें आदमीके चेहरेपर एक झूठी आभा आ जाती है। इसलिए रोगी विश्वासमें भ्रमित होता रहता है और अन्तमें डूब जाता है। इसी प्रकार सभ्यताकी बात भी समझिए। यह अदृश्य रोग है। इससे सावधान रहना चाहिए।

पाठक : ठीक है। किन्तु आप अपना रेलवे-पुराण सुनाइए।

सम्पादक : आप यह समझ सकेंगे कि यदि रेलवे न हो तो भारतपर अंग्रेजोंका जितना काबू है, उतना कदापि न रहे। रेलसे महामारी फैली है। यदि रेल न हो तो थोड़े ही व्यक्ति एक जगहसे दूसरी जगह जायें और इस प्रकार लगनेवाले रोग सारे देशमें न फैल सकें। हम लोग पहले सहज ही सेग्रेगेशन — सूतक — पालते थे। रेलके कारण दुष्काल बढ़ गये हैं, क्योंकि इस सुविधाके कारण लोग अपना अनाज बेच डालते हैं। जहाँ मँहगाई होती है, अनाज खिंचकर वहीं पहुँच जाता है। लोग लापरवाह हो जाते हैं और इससे दुर्भिक्षका दुःख बढ़ता है। रेलके कारण दुष्टता बढ़ती है, बुरे आदमी अपनी बुराइयाँ तेजीसे फैला सकते हैं। भारतमें जो पवित्र स्थान थे वे अपवित्र हो गये हैं। पहले लोग बड़ी कठिनाईसे उन स्थानोंपर जा पाते थे। वे लोग वास्तविक भक्तिसे ईश्वरोपासनाके लिए जाते थे। अब तो धूर्तोंकी टोली केवल धूर्तता करनेके लिए जाती है।

१. एक गुजराती कहावत जिसका आशय है : "मैं नहीं जानता कि इस [illegible] में मैं द्वारका पहुँच पाऊँगा।"

पाठक : यह तो आपने एकतरफा बात कही। जिस प्रकार बुरे आदमी वहाँ जा सकते हैं उसी प्रकार अच्छे भी जा सकते हैं। वे रेलका पूरा लाभ क्यों नहीं उठाते?

सम्पादक : जो अच्छा है, वह तो बीरबहूटीकी तरह चलता है। उसकी रेलवेसे पटरी नहीं बैठती। जो दूसरोंका भला करना चाहता है उसके मनमें कोई स्वार्थ नहीं होता। वह उतावली नहीं करता। वह जानता है कि मनुष्यपर किसी अच्छी बातकी छाप डालनेमें हमेशा बहुत समय लगता है। बुरी बात ही छलाँगें भर सकती है। घर बाँधना कठिन है, गिराना सरल है। इसलिए यह साफ समझ लेना चाहिए कि रेलवे हमेशा दुष्टताका ही विस्तार करेगी। भले ही कोई शास्त्रकार एक क्षणके लिए मेरे मनमें इस बातको लेकर सन्देह उत्पन्न कर सके कि रेलवेसे अकाल फैलते हैं या नहीं किन्तु उससे दुष्टता बढ़ती है यह बात तो मेरे मनपर अंकित हो गई है और मिट नहीं सकती।

पाठक : किन्तु जो रेलवेका सबसे बड़ा लाभ है उसे देखकर दूसरी हानियाँ भूल जाती हैं। रेलवे है, इसलिए भारतमें आज एक-राष्ट्रीयताकी भावना दिखाई पड़ रही है। इसलिए मैं तो कहता हूँ कि रेलवेका आना अच्छा हुआ।

सम्पादक : यह आपकी भूल है। आपको अंग्रेजोंने सिखाया है कि आप एक राष्ट्र नहीं थे और होनेमें अभी सैकड़ों वर्ष लगेंगे। यह बात एकदम निराधार है। जब अंग्रेज भारतमें नहीं थे तब हम एक-राष्ट्र थे हमारे विचार एक थे हमारा रहन-सहन एक था। और इसीलिए तो उन्होंने एक-राज्यकी स्थापना की। भेद तो उसके बाद उन्होंने उत्पन्न किये।

पाठक : यह बात अधिक समझानी पड़ेगी।

सम्पादक : मैं जो कहता हूँ सो बिना विचारे नहीं कहता। एक-राष्ट्रका यह अर्थ नहीं है कि हमारे बीच अन्तर नहीं था। किन्तु हमारे अग्रगण्य व्यक्ति पाँव पैदल या बैलगाड़ियोंमें सारे हिन्दुस्तानमें घूमते थे। वे एक-दूसरेकी भाषा सीखते थे और उनमें अन्तर नहीं था। जिन दीर्घद्रष्टा पुरुषोंने सेतुबन्ध रामेश्वरम्, जगन्नाथ और हरिद्वारकी यात्रा निश्चित की क्या आप जानते हैं उनके मनमें क्या विचार था? आप स्वीकार करेंगे कि वे लोग मूर्ख नहीं थे। वे जानते थे कि ईश्वर-भजन तो घर बैठे हो जाता है। उन्होंने हमें सिखाया कि मन चंगा तो कठौतीमें गंगा। किन्तु उन्होंने विचार किया कि प्रकृतिने भारतको एक देश बनाया है तो उसे एक राष्ट्र भी होना चाहिए। इसलिए इन विभिन्न धामोंकी संस्थापना करके उन्होंने लोगोंको एकताकी ऐसी कल्पना दी जैसी दुनिया में दूसरी जगह नहीं है। दो अंग्रेज जितने एक नहीं हैं हम भारतीय उतने एक थे और हैं। केवल हमारे और आपके मनमें जो सभ्य हो गये हैं, यह आभास उत्पन्न हो गया है कि भारतमें अलग-अलग कौमें हैं। पहले तो हम रेलवेके कारण [अपनेको] अलग-अलग राष्ट्र मानने लगे और फिर रेलवेने हमें एक-राष्ट्रीयताका विचार वापस दिया ऐसा यदि आप कहें तो मुझे आपत्ति नहीं है। अफीमची कह सकता है कि अफीमसे होनेवाली हानिकी खबर मुझे अफीमसे हुई, इसलिए अफीम अच्छी वस्तु है। इस सबपर आप अच्छी तरहसे विचार कीजिए। आपके मनमें अभी शंकाएँ उत्पन्न होंगी किन्तु आप उन सबका निर्णय अपने मनसे ही कर सकेंगे।

पाठक: आपने जो कहा है, उसपर मैं विचार करूँगा। किन्तु एक सवाल तो इसी समय मनमें उठ रहा है। आपने भारतमें मुसलमानोंके प्रवेशके पहलेकी स्थितिकी बात की। किन्तु अब तो मुसलमान पारसी ईसाई आदि बड़ी संख्यामें हैं। उनका एक-राष्ट्र होना सम्भव नहीं है। कहते हैं कि हिन्दू-मुसलमानोंमें स्वाभाविक विरोध है। हमारी कहावत भी ऐसी ही है कि मियाँ और महादेवकी नहीं बनती। मुसलमान हिन्दूको बुतपरस्त—मूर्तिपूजक—कहकर उसका तिरस्कार करता है। हिन्दू मूर्ति-पूजक है मुसलमान मूर्ति-भंजक है। हिन्दू गायकी पूजा करता है मुसलमान उसे मारता है। हिन्दू अहिंसक है मुसलमान हिंसक। इस तरह कदम-कदमपर विरोध है। वह कैसे मिट सकता है और भारत एक किस प्रकार हो सकता है?

अध्याय १० भारतकी दशा (जारी) हिन्दू-मुसलमान

सम्पादक: आपका अन्तिम प्रश्न बड़ा गम्भीर जान पड़ता है किन्तु विचार करनेपर वह सरल ही सिद्ध होगा। इस सवालके उत्पन्न होनेका कारण भी रेलवे वकील और डॉक्टर हैं। वकील और डॉक्टरके बारेमें अब हमें विचार करना पड़ेगा रेलवेके विषयमें विचार कर चुके। इतना मैं और कह दूँ कि आदमी बनाया इस तरह गया है कि उसे अपने हाथ-पाँवसे जितना बने उतना ही आना-जाना करना चाहिए। यदि हम रेलवे आदि साधनोंसे कोई दौड़-धूप न करें, तो हमारे सामने उलझनोंसे भरे हुए बहुत-से सवाल उपस्थित ही न हों। हम अपने हाथों दुःख बुलाते हैं। मनुष्यकी सीमा ईश्वरने उसकी शारीरिक रचनासे ही बाँध दी तो मनुष्यने उस सीमाका उल्लंघन करनेके उपाय खोज निकाले। मनुष्यको अक्ल इसलिए दी गई है कि वह उससे ईश्वरको पहचाने परन्तु मनुष्यने उसका उपयोग उसे भूलनेमें किया। मैं अपनी स्वाभाविक सीमाके मुताबिक केवल अपने आसपास रहनेवाले लोगोंकी सेवा ही कर सकता हूँ। किन्तु मैंने फौरन अपने अभिमानमें यह आविष्कार कर डाला कि मुझे तो अपने शरीरसे सारी दुनियाकी सेवा करनी है। ऐसा करते हुए अनेक धर्मों और विभिन्न स्वभावोंके मनुष्य एक-दूसरेके सम्पर्कमें आते हैं। यह बोझा मनुष्य उठा ही नहीं सकता इसलिए आपमें व्याकुल होता है। इस विचारके अनुसार आप समझ जायेंगे कि रेलवे वास्तवमें एक खतरनाक साधन है। मनुष्य उसका उपयोग करके ईश्वरको भूल गया है।

पाठक: किन्तु मैं तो अब अपने उठाये हुए सवालोंका जवाब पानेके लिए अधीर हो गया हूँ। मुसलमानोंके आनेके बाद [भारत] एक-राष्ट्र रहा या नहीं?

सम्पादक: भारतमें चाहे जिस धर्मके लोग रहें। इसके कारण [उसकी] एक-राष्ट्रीयता मिटनेवाली नहीं है। नये आनेवाले लोग राष्ट्रीयताको नहीं मिटा सकते। वे राष्ट्रमें घुल-मिल जाते हैं। जब ऐसा होता है, तभी कोई देश एक-राष्ट्र कहलाता है। उस देशमें दूसरे लोगोंको अपनेमें मिला लेनेका गुण होना चाहिए। ऐसा भारतमें था और है। यों वास्तवमें कह सकते हैं जितने व्यक्ति उतने धर्म। एक-राष्ट्र होकर रहनेवाले लोग एक-दूसरेके धर्मके आड़े नहीं आते। यदि आयें तो समझना चाहिए कि

वे एक-राष्ट्र होनेके योग्य नहीं हैं। यदि हिन्दू ऐसा मानें कि सारे भारतमें हिन्दू ही हिन्दू रहें तो यह स्वप्न है। मुसलमान ऐसा सोचें कि उसमें केवल मुसलमान ही रहें तो उसे भी स्वप्न समझिए।[1] फिर भी हिन्दू, मुसलमान पारसी ईसाई, जो इस देशको अपना मुल्क बनाकर रह रहे हैं वे एक-देशी एक-मुल्की हैं। वे देशबन्धु हैं और उन्हें एक-दूसरेके स्वार्थके लिए भी एक होकर रहना पड़ेगा।

दुनियाके किसी भी भागमें एक-राष्ट्रका अर्थ एक-धर्म नहीं हुआ। हिन्दुस्तानमें भी नहीं था।

पाठक: किन्तु कट्टर दुश्मनीके बारेमें आपका क्या कहना है?

सम्पादक: कट्टर दुश्मनी शब्द दोनोंकि दुश्मनोंने खोजकर निकाला है। जब हिन्दू-मुसलमान लड़ते थे तब ऐसी बातें जरूर चलती थीं। किन्तु हमारा लड़ना तो कबका बन्द हो गया है। फिर कट्टर दुश्मनी किस बातकी? इसके सिवा यह याद रखना चाहिए कि अंग्रेजोंके आनेके बाद ही हमने लड़ना बन्द किया हो ऐसी बात नहीं है। हिन्दू मुसलमान बादशाहोंके नीचे और मुसलमान हिन्दू राजाओंके नीचे रहते आये हैं। दोनोंको ही बादमें मालूम हो गया कि लड़नेसे किसीको लाभ नहीं। लड़नेसे कोई अपना धर्म नहीं छोड़ता और इसी तरह कोई अपनी हठ भी नहीं छोड़ता। इसलिए दोनोंने मिलकर रहना निश्चित किया। टंटे तो फिर अंग्रेजोंने शुरू कराये।

मियाँ और महादेवकी नहीं बनती इस कहावतको भी इसी तरह समझिये। कुछ कहावतें बच रहती हैं और नुकसान पहुँचाया करती हैं। हम कहावतकी धुनमें यह भी याद नहीं रखते कि अनेक हिन्दू और मुसलमानोंके बाप-दादे एक ही थे हम लोगोंकी नसोंमें एक ही रक्त बहता है। क्या धर्म बदलनेसे हम दुश्मन हो गये? क्या दोनोंका ईश्वर अलग-अलग है? धर्म तो एक ही जगह पहुँचनेके अलग-अलग रास्ते हैं। हम दोनों अलग-अलग मार्ग अपनाते हैं। इससे क्या होता है? इसमें दुःखकी क्या बात है?

इसके सिवा ऐसी कहावतें शैव और वैष्णवोंमें भी पाई जाती हैं। इस आधार पर कोई यह नहीं कहता कि वे एक-राष्ट्र नहीं हैं। वैदिक धर्मियों और जैनियोंमें बड़ा अन्तर माना जाता है फिर भी इस कारण वे दो अलग-अलग राष्ट्र नहीं हो जाते। हम गुलाम हो गये हैं इसीलिए हम अपने झगड़े तीसरेके पास ले जाते हैं।

जिस तरह मुसलमान मूर्ति-भंजक हैं उसी प्रकार हिन्दुओंमें भी ऐसी शाखा देखनेमें आती है। जैसे-जैसे वास्तविक ज्ञान बढ़ता जायेगा वैसे-वैसे हम समझेंगे कि अन्य व्यक्ति यदि ऐसे धर्मका पालन करता हो जो हमें पसन्द नहीं आता तो इसीलिए हमारा उसके प्रति वैर-भाव रखना उचित नहीं है। हमें उसके साथ जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए।

पाठक: अब गो-रक्षाके विषयमें अपने विचार बताइए?

सम्पादक: मैं स्वयं गायकी पूजा करता हूँ अर्थात् उसे सम्मान देता हूँ। गाय भारतकी रक्षक है क्योंकि उसकी सन्तानपर भारतका जो एक कृषि-प्रधान देश है,

१. अंग्रेजी पाठमें यह वाक्य छोड़ दिया गया है।

आधार है। गाय सैकड़ों दृष्टियोंसे उपयोगी प्राणी है। यह तो मुसलमान भाई भी कबूल करेंगे कि वह उपयोगी प्राणी है।

किन्तु जिस प्रकार मैं गायको पूजता हूँ उसी प्रकार मनुष्यको भी पूजता हूँ। जैसे गाय उपयोगी है उसी प्रकार मनुष्य भी उपयोगी है — चाहे वह मुसलमान हो चाहे हिन्दू। तब फिर क्या मैं गायको बचानेके लिए मुसलमानसे लड़ूँ? मैं उसे मारूँ? यदि ऐसा करूँ तो मैं मुसलमान और गाय दोनोंका दुश्मन बन जाऊँगा। इसलिए अपने विचारके मुताबिक तो मैं कहता हूँ कि गायकी रक्षाका उपाय एक ही है कि मैं अपने मुसलमान भाइयोंसे प्रार्थना करूँ और देशके लिए उसे गायकी रक्षा करनेकी बात समझाऊँ। यदि वह न समझे तो मुझे गायको जाने देना चाहिए। क्योंकि [तब] वह मेरे बसकी बात नहीं है। यदि मुझे गायपर अत्यन्त दया आती हो तो मैं उसके लिए अपने प्राण दे दूँ किन्तु किसी मुसलमानका प्राण न लूँ। मैं तो मानता हूँ कि यह धार्मिक नियम है।

हाँ में और नहीं में हमेशाका बैर है। यदि मैं बहस करूँ तो मुसलमान भी बहस करेगा। अगर मैं टेढ़ा बनूँ तो वह भी टेढ़ा बनेगा। यदि मैं बित्ता भर मुड़ूँ तो वह हाथ-भर मुड़ेगा। और यदि वह न झुके तो भी मेरा झुकना गलत नहीं कहलायेगा। जब हम लोगोंने हुज्जत की तब गोवध बढ़ा। मेरा कहना है कि गोरक्षा-प्रचारिणी सभाको गोवध प्रचारिणी सभा समझना चाहिए। ऐसी सभाका होना हमारे लिए लज्जाकी बात है। जब हम गायकी रक्षा करना भूल गये तभी हमें ऐसी सभाकी जरूरत पड़ी होगी।

यदि मेरा भाई गायको मारनेके लिए दौड़े तो मैं उसके साथ क्या बरताव करूँ? उसे मारूँ या उसके पाँव पड़ूँ? यदि आप कहें कि पाँव पड़ना चाहिए, तो फिर मुसलमान भाईके भी पाँव ही पड़ना चाहिए।

हिन्दू गायको दुःख देकर उसका नाश करते हैं तब उसे कौन छुड़ाता है? गायकी सन्तान बैलको हिन्दू आरसे छेदता है। कौन हिन्दू उसे समझाने जाता है? इसके कारण हमारे एक राष्ट्र होनेमें कोई अड़चन नहीं आई।

अन्तमें यदि यह बात सही हो कि हिन्दू अहिंसक और मुसलमान हिंसक है तो अहिंसकका कर्तव्य क्या है? ऐसा कहीं नहीं लिखा कि अहिंसक किसी मनुष्यकी हत्या करे। अहिंसकका रास्ता तो सीधा है। एकको बचानेके लिए उसे दूसरेकी हिंसा तो कदापि नहीं करनी है। उसके पास तो एक ही उपाय है — पाँवमें झुकना। इसीमें उसका पुरुषार्थ है।

क्या हिन्दू-मात्र अहिंसक हैं? गहरा विचार करें, तो अहिंसक कोई भी नहीं है। क्योंकि हम जीव-हानि तो करते ही हैं। किन्तु हम उससे ऊपर उठना चाहते हैं इसीलिए अहिंसक [कहे जाते] हैं। साधारण विचार करें तो देखते हैं कि बहुत-से हिन्दू मांसाहारी हैं इसलिए वे अहिंसक नहीं कहे जा सकते। खींच-तानकर कोई अलग अर्थ करना हो तो मुझे कुछ नहीं कहना है। जब परिस्थिति ऐसी है तो एक हिंसक है और दूसरा अहिंसक है इसलिए उनमें नहीं बन सकती ऐसा मानना गलत है।

यह विचार स्वार्थी धर्मोपदेशक पण्डितों और मुल्लाओंका फैलाया है। और जो-कुछ कम रहा था उसे अंग्रेजोंने पूरा कर दिया। उन्हें इतिहास लिखनेकी आदत पड़ी है।

वे हरएक जातिके रीति-रिवाज जाननेका दिखावा करते हैं। ईश्वरने मन तो छोटा दिया है, किन्तु वे बड़े-बड़े ईश्वरीय दावे करते हैं और तरह-तरहके प्रयोग करते हैं। वे स्वयं अपना ढोल बजाते हैं और हमारे मनमें अपने बड़प्पनका विश्वास जमाते रहते हैं। हम भोलेपनमें उस सबपर भरोसा कर लेते हैं।

जो पक्ष्य नहीं देखना चाहते वे देख सकते हैं कि कुरानशरीफ में ऐसे सैकड़ों वचन हैं जो हिन्दुओंको मान्य होंगे [इसी तरह] भगवद्गीता में [बहुत-कुछ] ऐसा लिखा हुआ है कि जिसके विरोधमें मुसलमानोंको लड़नेके लिए कुछ नहीं रहता। कुरानशरीफ की कुछ बातें मेरी समझमें न आयें अथवा मुझे पसन्द न पड़ें तो क्या इसलिए मैं उसके माननेवालोंका तिरस्कार करूँ? झगड़ा तो दोमें ही हो सकता है। यदि मुझे न झगड़ना हो तो मुसलमान क्या कर सकता है? और यदि मुसलमानको न झगड़ना हो तो मैं क्या कर सकता हूँ? हवामें घूँसा मारनेवालेका हाथ झटका खा जाता है। यदि सब अपने-अपने धर्मका स्वरूप समझें और उसका पालन करें तथा पण्डितों और मुल्लाओंको बीचमें न आने दें तो झगड़ेका मुँह काला हो जायेगा।

पाठक: अंग्रेज दोनों कौमोंकि बीच बनने देंगे?

सम्पादक: यह सवाल कायर व्यक्तिका है। इससे हमारी हीनता प्रकट होती है। दो भाइयोंको मिलकर रहना हो तो कौन उनमें फूट डाल सकता है? यदि तीसरा व्यक्ति उनके बीच तकरार करा सके तो हम उन भाइयोंको कच्ची बुद्धिका कहेंगे। इसी प्रकार यदि हम हिन्दू और मुसलमान कच्ची बुद्धिके हों तो फिर उसमें अंग्रेजोंका दोष निकालनेकी कोई बात नहीं बनती। कच्चा घड़ा एक कंकरसे नहीं तो दूसरे कंकरसे फूट ही जायेगा। उसको बचानेका उपाय घड़ेको कंकरसे दूर रखना नहीं बल्कि उसे पक्का करना है जिससे कंकरका भय न रहे। इसी तरह हमें भी पक्की बुद्धिका बनना है। इसके सिवा यदि दोमें से एक पक्की बुद्धिका हो तो तीसरेकी कुछ नहीं चलेगी। हिन्दू इस कामको आसानीसे कर सकते हैं। उनकी संख्या बहुत है। वे अधिक पढ़े लिखे हैं ऐसी उनकी मान्यता है। इसलिए वे अपनी बुद्धि स्थिर रख सकते हैं।[1]

दोनों समाजोंके बीच अविश्वास है। इसलिए मुसलमान कोई मौलेसे अमुक अधिकार माँगते हैं। हिन्दू इसका विरोध किसलिए करें? यदि हिन्दू विरोध न करें तो अंग्रेज चौंक जायें मुसलमान धीरे-धीरे विश्वास करने लगें और भाईचारा बढ़े। अपनी तकरार उनके पास ले जाते हुए हमें शर्म आनी चाहिए। इससे हिन्दू कुछ खोयेंगे नहीं। इसका आप स्वयं हिसाब लगाकर देख सकते हैं। जो व्यक्ति दूसरेके ऊपर विश्वास कर सकता है उसने आजतक कभी कुछ नहीं खोया।

मैं यह नहीं कहना चाहता कि हिन्दू-मुसलमान कभी लड़ेंगे ही नहीं। दो भाई एक-साथ रहते हैं तो तकरार भी होती है। कभी-कभी हमारे सिर फूटेंगे। ऐसा होना जरूरी नहीं है। किन्तु सभी व्यक्ति समान मतिके नहीं हो सकते। आवेशमें आ जानेसे कई बार लोग गलत काम कर बैठते हैं। यह हमें सहन करना पड़ेगा। किन्तु

१. अंग्रेजी पाठमें: "इसलिए मुसलमानोंके साथ अपने मीठे सम्बन्धोंपर आशंका करनेसे पहले वे अपनेको अच्छी तरह बचा सकते हैं।"

हम वैसे झगड़े भी बड़ी बकालत बघार कर अंग्रेजोंकी अदालतमें नहीं ले जायेंगे। दो व्यक्ति लड़ें दोनोंके अथवा एकका सिर फूट जाये बादमें तीसरा क्या न्याय करने वाला है? जो लड़ेगा वह जख्मी होगा यह पक्की बात है। दो व्यक्ति भिड़ें तो उसकी कुछ-न-कुछ निशानी बचेगी ही। इसका कोई क्या निबटारा करेगा?

अध्याय ११ भारतकी दशा (जारी) वकील

पाठक आप जो कहते हैं कि दो आदमी लड़ें तो उसका निबटारा भी न कराया जाये। यह तो आपने अजीब बात निकाली।

सम्पादक: आप अजीब कहें चाहे कोई दूसरा विशेषण दें किन्तु यह बात है ठीक। और आपकी शंका हमें वकील और डॉक्टरोंकी याद दिला देती है। मेरा मत है कि वकीलोंने भारतको गुलामीमें डाला है और उन्होंने हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़े बढ़ाये हैं उन्होंने अंग्रेजी सत्ताको फैलाया है।

पाठक: ऐसा दोषारोपण करना सरल है किन्तु इसे सिद्ध करना मुश्किल पड़ेगा। बिना वकीलोंके हमें स्वतन्त्रताका मार्ग कौन बताता? उनके बिना गरीबकी रक्षा कौन करता? कौन उनके बिना न्याय दिलवाता? विचार कीजिये स्वर्गीय मन मोहन घोषने[1] कितने लोगोंको बचाया। उन्होंने उसके बदले एक पाई भी नहीं ली। जिस कांग्रेसका आपने इतना बखान किया वह वकीलोंके बलपर टिकी है और उनके परिश्रमसे वहाँ काम हो रहा है। यदि आप इस वर्गकी निन्दा करें, तो यह तो अन्याय कहलायेगा। यह तो आपके हाथमें एक अखबार है, इसलिए जो भी जीमें आये सो कहनेकी छूट लेने जैसी बात हुई।

सम्पादक आपकी जो मान्यता है कभी मेरी भी वही मान्यता थी। मैं यह नहीं कहना चाहता कि वकीलोंने किसी दिन कुछ भी अच्छा नहीं किया। श्री मन मोहन घोषका मैं सम्मान करता हूँ। उन्होंने गरीबोंकी मदद की यह बात सही है। यह भी माना जा सकता है कि कांग्रेसमें वकीलोंने बहुत कुछ किया है। वकील भी मनुष्य हैं और मनुष्यमें कुछ-न-कुछ अच्छाई तो है ही। वकीलोंकी अच्छाईके बहुतेरे उदाहरण देखनेमें आते हैं वे तब सम्भव हुए हैं जब वे यह भूल गये कि वे वकील हैं। मैं तो आपसे इतना ही कहना चाहता हूँ कि उनका धन्धा उन्हें अनीति सिखाता है। वे गलत कामोंमें पड़ जाते हैं। उनमें से उबरनेवाले थोड़े ही हैं।

[मान लीजिए] हिन्दू और मुसलमान लड़े। कोई तटस्थ आदमी तो उनसे यही कहेगा कि इसे भूल जाओ। गलती दोनोंकी हो सकती है। दोनों मिलकर रहो। अगर वे वकीलके पास गये तो वकीलका यह कर्तव्य हो गया कि वह अपने मुवक्किलका पक्ष ले। उसका काम है कि वह उसके पक्षमें ऐसी दलीलें ढूँढ़ निकाले जो स्वयं उसके खयालमें न आई हों। यदि वह ऐसा न करे, तो समझा जाता है कि वह अपने धन्धेपर कलंक लगाता है। इसलिए वकील तो संघर्षको ज्यादातर बढ़ानेकी ही सलाह देगा।

[1] (१८४४-९६), एक प्रमुख भारतीय बैरिस्टर, इंडियन मिररके संस्थापक और सम्पादक।

इसके सिवा लोग वकील बनते हैं, सो कुछ दूसरोंके दुःख दूर करनेके लिए नहीं वरन पैसा कमानेके लिए। यह पैसा कमानेका एक रास्ता है। इसलिए वकीलका स्वार्थ टंटा बढ़ानेमें ही है। मैं जानता हूँ कि वकील जब टंटे होते हैं तो खुश होता है। मुख्तार भी वकीलकी जातिके ही हैं। जहाँ कुछ न हो वे वहाँ झगड़े खड़े करते हैं। उनके दलाल होते हैं। वे जोंककी तरह गरीब आदमीसे चिपट जाते हैं और उसका खून चूस लेते हैं। यह धन्धा ही इस तरहका है जिससे लोगोंको झगड़े करनेकी उत्तेजना मिलती है। वकील निठल्ले होते हैं। आलसी व्यक्ति ऐश-आराम भोगनेके लिए वकील बन जाते हैं — यह वास्तविकता है। दूसरी जो दलीलें पेश की जाती हैं, वे तो बहाना है। इस बातका आविष्कार वकीलोंने ही किया है कि वकालत एक बड़ा इज्जतदार पेशा है। वे ही कानून बनाते हैं। उसका बखान भी वे ही करते हैं। लोगोंसे कितनी फीस ली जाये यह भी वे ही तय करते हैं और उसपर रोब जमानेके लिए आडम्बर ऐसा करते हैं मानो वे आकाशसे अवतरित कोई दिव्य पुरुष हों।

वे मजदूरसे अधिक दैनिक पारिश्रमिक क्यों माँगते हैं? उनकी जरूरतें मजदूरकी अपेक्षा अधिक क्यों हैं? मजदूरकी अपेक्षा उन्होंने देशका कौन-सा अधिक भला किया है? क्या भला करनेवालेको अधिक पैसा लेनेका हक है? और जो कुछ उन्होंने किया वह यदि पैसेके लिए किया है, तो उसे भला कैसे कहा जाये? मैंने उनके धन्धेका जो गुण है सो आपको बताया। किन्तु यह एक अलग बात है।

जिन्हें इस बातका अनुभव है, वे जानते होंगे कि हिन्दू-मुसलमानोंके बीच कई दंगे वकीलोंके कारण हुए हैं। उनके कारण अनेक कुटुम्ब पामाल हुए हैं। उनके कारण भाई-भाई आपसमें दुश्मन हो गये हैं। कई रजवाड़े वकीलोंके जालमें फँसकर कर्जदार हो गये हैं। कितने ही जागीरदार वकीलोंकी कारस्तानीके कारण लुट गये। ऐसे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

किन्तु सबसे अधिक नुकसान उनके हाथों यह हुआ कि अंग्रेजी शिकंजेमें हमारा गला बड़ी बुरी तरह फँस गया है। आप विचार कीजिए। क्या आप सोचते हैं कि अंग्रेजी अदालतें न होतीं तो अंग्रेज राज्य चला सकते थे? ये अदालतें कुछ प्रजाके हितके लिए नहीं हैं। जिन्हें अपनी सत्ता कायम रखनी है वे अदालतके मारफत लोगोंको वशमें रखते हैं। यदि लोग आपसमें लड़ निपटें तो तीसरा आदमी उनपर अपनी सत्ता नहीं जमा सकता। सचमुच खुद दो-दो हाथ करने अथवा अपने सम्बन्धियोंको पंच बनाकर लड़ लेनेमें मर्दानगी होती थी। जब अदालतें आईं तो लोग कायर हो गये। आपसमें लड़ मरना जंगलीपन गिना जाता था। अब तीसरा आदमी हमारे टंटे निपटाता है क्या यह कम जंगलीपन है? क्या कोई कह सकता है कि जब तीसरा आदमी फैसला देता है तो वह सही ही होता है? दोनों पक्षोंके लोग जानते हैं कि कौन सच्चा है। हम अपने भोलेपनमें यह विश्वास कर लेते हैं कि तीसरा आदमी हमसे पैसा लेकर हमारा न्याय करता है।

[लेकिन] इस बातको छोड़ दें। बताना तो इतना ही है कि अंग्रेजोंने अदालतोंके जरिये हमारे ऊपर सत्ता जमाई है और यदि वकील न हों तो ये अदालतें चल ही

नहीं सकती। अंग्रेज ही जज होते अंग्रेज ही वकील होते अंग्रेज ही सिपाही होते तो अंग्रेज केवल अंग्रेजोंपर ही राज्य कर सकते थे। भारतीय न्यायाधीश और भारतीय वकीलोंके बिना काम नहीं चला। यदि आप यह समझ सकें कि वकील कैसे बने और उन्होंने कैसी गड़बड़ी की[1] तो मेरे मनमें इस धन्धेके प्रति जितना तिरस्कार है उतना ही आपके मनमें भी पैदा हो जायेगा। अंग्रेजी सत्ताकी एक मुख्य कुंजी उसकी अदालतें हैं और अदालतोंकी कुंजी वकील हैं। यदि वकील वकालत छोड़ दें और यह धन्धा वेश्याके धन्धेके जैसा नीच माना जाये तो अंग्रेजी राज्य एक दिनमें टूट जाये। वकीलोंने ही भारतीय जनतापर यह लांछन लगवाया है कि हमें लड़ाई-झगड़ेसे प्रेम है और हम अदालत-रूपी पानीकी मछलियाँ हैं।

मैंने वकीलोंके विषयमें जो शब्द कहे हैं वे ही शब्द न्यायाधीशोंके बारेमें भी लागू होते हैं। वे दोनों मौसेरे भाई हैं और एक-दूसरेको शक्ति पहुँचाते हैं।

अध्याय १२ भारतकी दशा (जारी) डॉक्टर

पाठक : वकीलोंकी बात तो समझमें आई। मुझे इसकी प्रतीति हो गई कि उन्होंने जो अच्छा किया सो संयोग-मात्र है। वैसे उनका धन्धा देखें तो वह हीन ही है। किन्तु आप डॉक्टरोंको भी उनके साथ घसीटते हैं। यह कैसे हो सकता है?

सम्पादक : मैं जो विचार आपके सामने रख रहा हूँ वे फिलहाल तो मेरे ही हैं। किन्तु ऐसे विचार मैंने ही व्यक्त किये हैं सो बात नहीं है। पश्चिमके सुधारक स्वयं इसके बारेमें मेरी अपेक्षा अधिक सख्त शब्दोंमें लिख चुके हैं। उन्होंने वकीलों और डॉक्टरोंकी बड़ी धज्जियाँ उड़ाई हैं। उनमें से एक लेखकने एक विष-वृक्ष बनाकर वकील डॉक्टर आदि निरर्थक धन्धा करनेवालोंको उसकी शाखाएँ कहा है और उसके तनेपर नीतिधर्म-रूपी कुल्हाड़ी उठाई है। अनीतिको इन सारे धन्धोंकी जड़ कहा गया है। इससे आप समझ जायेंगे कि मैं आपके सामने अपनी जेबसे निकाले हुए नये विचार पेश नहीं कर रहा हूँ बल्कि दूसरोंका और अपना भी अनुभव रख रहा हूँ।

डॉक्टरोंके विषयमें जैसा अभी आपको मोह है वैसा मुझे भी था। एक समय ऐसा भी था जब मैंने स्वयं डॉक्टर होनेका इरादा किया था और निश्चय किया था कि डॉक्टर बनकर समाजकी सेवा करूँगा। अब वह मोह नष्ट हो गया है। हमारे यहाँ वैद्यका धन्धा अच्छे धन्धोंमें क्यों नहीं गिना गया यह बात अब मेरी समझमें आ गई है और मैं उस विचारका मूल्य समझ सकता हूँ।

अंग्रेजोंने डॉक्टरी विद्यासे भी हमारे ऊपर शासनका शिकंजा कसा है। डॉक्टरोंके अभिमानका भी पार नहीं है। मुगल बादशाहको भ्रमित करनेवाला अंग्रेज डॉक्टर ही था। उसने बादशाहके घरमें [किसीकी] कोई बीमारी मिटाई, इसलिए उसे सिरोपा दिया गया था। अमीरोंके पास पहुँचनेवाले भी डॉक्टर ही हैं।

1. अंग्रेजी पाठमें "और किस तरह उनके साथ बरताव किया गया।"

डॉक्टरोंने हमको बिलकुल हिला दिया है। मेरी इच्छा होती है कि मैं ऐसा कहूँ कि डॉक्टरोंसे तो नीम-हकीम भले। इसपर हम कुछ विचार करें।

डॉक्टरोंका काम केवल शरीरकी सँभाल करना है बल्कि शरीर सँभालनेका भी नहीं शरीरमें जो रोग हो उसे दूर करना है। रोग क्यों होता है? हमारी अपनी गफलतीसे। मैं बहुत खा लेता हूँ अजीर्ण हो जाता है और डॉक्टरके पास जाता हूँ। वह मुझे गोली दे देता है। मैं ठीक हो जाता हूँ। और फिर खूब खाता हूँ और फिर गोली लेता हूँ। यह इससे हुआ है। यदि मैं गोली न लेता तो अजीर्णकी सजा भोगता और फिर इससे ज्यादा न खाता। डॉक्टर बीचमें आया और उसने मुझे हदसे ज्यादा खानेमें मदद की। इसलिए मेरा शरीर तो ठीक हो गया किन्तु मेरा मन कमजोर पड़ गया। ऐसा होते-होते अन्तमें मेरी स्थिति ऐसी हो जाती है कि मैं अपने मनपर तनिक भी काबू नहीं रख सकता।

मैं विलासमें पड़ा बीमार हुआ और मुझे डॉक्टरने दवा दी। मैं ठीक हो गया। क्या मैं फिर विलासमें नहीं पड़ूँगा? पड़ूँगा ही। यदि डॉक्टर बीचमें न पड़ता तो प्रकृति अपना काम करती मेरा मन दृढ़ बनता और मैं अन्तमें निर्विषयी होकर सुखी हो जाता।

अस्पताल पापकी जड़ है। उनके कारण लोग शरीरकी ठीक सँभाल नहीं करते और अनीति बढ़ाते हैं।

यूरोपके डॉक्टर तो हद करते हैं। वे केवल शरीरकी खोटी रक्षाके विचारसे प्रतिवर्ष लाखों जीवोंको मारते हैं। जीवित प्राणियोंपर प्रयोग करते हैं। ऐसा करना किसी भी धर्मको स्वीकार नहीं है। हिन्दू, मुसलमान ईसाई, पारसी सभी कहते हैं कि मनुष्यके शरीरके लिए इतने जीवोंको मारनेकी जरूरत नहीं है।

डॉक्टर हमें धर्मभ्रष्ट करते हैं। उनकी ज्यादातर दवाओंमें चरबी अथवा शराब होती है। ये दोनों ही चीजें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें निषिद्ध हैं। हम सभ्य होनेका ढोंग करके सभीको अंधश्रद्धालु मानकर मनमानी करें, तो बात अलग है। किन्तु डॉक्टर, जैसा मैं चुका हूँ वैसा करते हैं यह सच्ची और सीधी बात है।

इसका परिणाम यह हुआ है कि हम निःसत्त्व और नपुंसक हो गये हैं। ऐसी स्थितिमें हम लोकसेवा करनेके योग्य नहीं रहते और स्वयं शरीरसे दुर्बल तथा बुद्धि हीन होते जाते हैं। अंग्रेजी अथवा यूरोपीय ढंगकी डॉक्टरी सीखनेका परिणाम गुलामीकी गाँठ मजबूत करना ही होगा।

यह भी विचारणीय है कि हम डॉक्टर क्यों बनते हैं। उसका सही कारण तो प्रतिष्ठा और पैसा देनेवाला धन्धा करना है [उसमें] परोपकारकी बात नहीं है। यह तो मैं बता चुका हूँ कि इस धन्धेमें परोपकार नहीं है। इससे तो लोगोंका नुकसान होता है। डॉक्टर लोग आडम्बर करके लोगोंसे पाससे बड़ी-बड़ी फीस लेते हैं और अपनी एक पाईकी दवाकी कीमत एक रुपया लेते हैं। लोग इस तरह अच्छा होनेकी आशा और विश्वासमें पड़कर ठगे जाते हैं। ऐसी स्थितिमें भलाईका ढोंग करनेवाले डॉक्टरोंकी अपेक्षा प्रकट नीम-हकीम ज्यादा अच्छे हैं।

अध्याय १३ सच्ची सभ्यता क्या है?

पाठक: आपने रेलवेको रद कर दिया, वकीलोंकी खिल्ली उड़ाई और डॉक्टरोंकी कलई खोल दी। देखता हूँ कि यन्त्र-मात्र आपको नुकसानदेह जान पड़ते हैं। फिर सभ्यता किसे कहा जाये?

सम्पादक: इस सवालका जवाब मुश्किल नहीं है। मेरी मान्यता है कि भारतने जो सभ्यता विकसित की है उसे दुनियामें कोई नहीं पहुँच सकता। जो बीज हमारे पुरखोंने बोये हैं उनकी बराबरी कर सकने योग्य कहीं कुछ देखनेमें नहीं आया। रोम मिट्टीमें मिल गया, ग्रीसका नाम-भर बच रहा, मिस्रका साम्राज्य चला गया, जापान पश्चिमके शिकंजेमें आ गया और चीनका कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु इस भग्नावस्थामें भी भारतकी बुनियाद अभी मजबूत है।

यूरोपके लोग विनष्ट रोम और ग्रीसकी किताबोंसे शिक्षा लेते हैं। वे सोचते हैं कि वे उन-जैसी गलतियाँ नहीं करेंगे। ऐसी दयनीय अवस्था है उनकी जब कि भारत अचल है। यही उसका भूषण है। *भारतपर यह आरोप लगाया जाता है कि वह इतना जंगली और अज्ञान है कि उससे किसी प्रकारका परिवर्तन कराना सम्भव नहीं है।* यह आरोप हमारा गुण है, दोष नहीं। अनुभवसे हमें जो ठीक लगा है उसे हम क्यों बदलें? बहुतेरे अक्ल देनेवाले आते-जाते रहते हैं, किन्तु भारत अडिग रहता है। यह उसकी खूबी है यह उसका लंगर है।

सभ्यता वह आचरण है जिसके द्वारा आदमी अपना फर्ज अदा करता है। फर्ज अदा करना अर्थात् नीतिका पालन करना। नीतिका पालन अर्थात् अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखना। इस प्रकार आचरण करते हुए हम अपने आपको पहचानते हैं यही सभ्यता है। इसके विरुद्ध जो है वह असभ्यता है।

बहुत-से अंग्रेज लेखक लिख गये हैं कि ऊपरकी व्याख्याके मुताबिक भारतको कुछ भी सीखना बाकी नहीं है। उनका यह कथन ठीक है। हमने देखा कि मनुष्यकी वृत्तियाँ चंचल हैं। उसका मन भटकता रहता है। उसके शरीरको ज्यों-ज्यों अधिक दिया जाये त्यों-त्यों वह अधिकाधिक माँगता है। अधिक पाकर भी वह सुखी नहीं होता। भोगोंको भोगते रहनेसे भोगकी इच्छा बढ़ती जाती है। इसलिए पूर्वजोंने सीमा बाँध दी। बहुत सोचकर उन्होंने देखा कि सुख-दुःखका कारण मन है। सम्पन्न व्यक्ति सम्पन्नताके कारण सुखी नहीं है। गरीब गरीबीके कारण दुःखी नहीं है। अमीर दुःखी देखनेमें आते हैं और गरीब भी सुखी दिखाई पड़ते हैं। करोड़ों व्यक्ति गरीब ही रहेंगे। ऐसा देखकर उन्होंने भोगकी वासना छुड़वाई। हजारों वर्ष पहले जो हल था हमने अपना काम उसीसे चलाया। हजारों साल पहले हमारी जैसी झोपड़ियाँ थीं उन्हें हमने कायम रखा। हजारों वर्ष पहले जैसा अपना शिक्षण था वही चलता रहा। हमने विनाशकारी स्पर्धा नहीं की सब अपना-अपना धन्धा करते रहे। उसमें उन्होंने दस्तूरके मुताबिक दाम लिये। ऐसा नहीं है कि हम यन्त्र आदिकी खोज कर नहीं सकते थे। किन्तु

१ देखिए "प्रतिष्ठित व्यक्तियोंकी राय" हिन्द स्वराज्यका परिशिष्ट–२, पृष्ठ ६६-६९।

हमारे पूर्वजोंने देखा कि यन्त्र आदिके जंजालमें पड़ेंगे तो अन्तमें गुलाम ही बनेंगे और अपनी नैतिकता छोड़ देंगे। उन्होंने विचारपूर्वक यह कहा कि हमें अपने हाथ-पाँवसे जितना बने उतना ही करना चाहिए। हाथ-पाँवोंका उपयोग करनेमें ही सच्चा सुख है और उसीमें स्वास्थ्य है।

उन्होंने सोचा कि बड़े-बड़े शहर बसाना बेकारकी झंझट है। इससे लोगोंको सुख नहीं मिलेगा। उसमें बदमाशोंकी टोलियाँ और वेश्याओंकी गलियाँ बनेंगी और गरीब अमीरके हाथों लुटेंगे। इसलिए उन्होंने छोटे-छोटे गाँवोंमें सन्तोष माना।

उन्होंने देखा कि राजाओं और उनकी तलवारोंकी अपेक्षा नैतिक शक्ति अधिक बलवान है इसलिए उन्होंने राजाओंको नीतिमान पुरुषों — ऋषियों और फकीरोंसे कम दरजेका माना है।

जिस राष्ट्रकी प्रजाकी ऐसी प्रकृति हो वह दूसरोंको सिखाने योग्य है किसीसे सीखने योग्य नहीं।

इस समाजमें अदालतें थीं वकील थे चिकित्सक थे किन्तु उनकी एक बँधी हुई मर्यादा थी। सभी जानते थे कि ये धन्धे कोई ऐसे प्रतिष्ठित धन्धे नहीं हैं। इसके सिवा वकील वैद्य आदि लोगोंको लूटते नहीं थे वे तो लोगोंके आश्रित थे। वे लोगोंके मालिक नहीं बन जाते थे। न्याय काफी अच्छा होता था। अदालतमें न जाना ही लोगोंका नियम था। उनको भ्रमित करनेके लिए स्वार्थी व्यक्ति नहीं थे। जो थोड़ी खराबी थी वह भी केवल राजा और राजधानीके आसपास ही थी — सामान्य प्रजा तो उससे अलग रहकर अपने खेतोंका राज भोगती थी। सच्चा स्वराज्य उसके हाथमें था।

और जहाँ यह चाण्डाल सभ्यता नहीं पहुँची है वहाँ आज भी वैसा ही भारत विद्यमान है। उससे यदि हम अपने नये ढोंगोंकी बात करेंगे तो वह हमारी हँसी उड़ायेगा। उसपर अंग्रेज राज्य नहीं करते न आप कर सकेंगे।

जिस जनताका नाम लेकर हम बातें करते हैं, हम उसे नहीं पहचानते न वह हमें पहचानती है। आप अथवा अन्य जिन लोगोंको देशकी लगन हो उनसे मेरा यह कहना है कि आप देशमें — जहाँ रेलका उपद्रव नहीं पहुँचा है वहाँ छः महीने घूम आयें और फिर देशकी लगन लगायें इसके बाद ही स्वराज्यकी बातें करें।

अब आपने देख लिया कि मैं वास्तविक सभ्यता किसे कहता हूँ। ऊपर मैंने जो चित्र खींचा है वैसा भारत जहाँ हो वहाँ जो व्यक्ति परिवर्तन करेगा उसे देशका दुश्मन समझिए। वह मनुष्य पापी है।

पाठक: आपने जैसा कहा यदि भारत वैसा ही हो तब तो ठीक है। किन्तु जिस देशमें हजारों बाल-विधवाएँ हैं जिस देशमें दो वर्षकी बालिकाका विवाह हो जाता है जिस देशमें १२ वर्षके लड़के-लड़कियाँ गृहस्थी चलाते हैं, जिस देशमें स्त्रियाँ एकसे अधिक पति करती हैं जिस देशमें नियोगका चलन है जिस देशमें धर्मके नाम पर कुमारिकाएँ वेश्या बनती हैं, जिस देशमें धर्मके नामपर पाड़ों और बकरोंका वध

१ मूल पाठमें अमीरके हाथों — ये शब्द नहीं हैं।

होता है वह देश भी तो भारत ही है। तब भी क्या आपने जो कुछ कहा वह सभ्यताका लक्षण कहलायेगा?[1]

सम्पादक : यह आपकी भूल है। आपने जो दोष कहे, वे तो दोष ही हैं। उन्हें कोई सभ्यता या सुधार नहीं कहता। ये दोष सभ्यताके बावजूद रह गये हैं। हमेशा इन्हें दूर करनेके प्रयत्न हुए हैं और होते रहेंगे। जो नया जोश हममें दिखाई दे रहा है, उसका उपयोग हम इन बुराइयोंको दूर करनेमें कर सकते हैं।

मैंने आपको आधुनिक सभ्यताके जो लक्षण बताये उन्हें स्वयं उस सभ्यताके हामी मानते हैं। भारतकी सभ्यताका मैंने जो वर्णन किया है वैसा ही उसके हिमायतियोंने किया है।

किसी भी देशमें किसी भी सभ्यताके अन्तर्गत सभी लोग अपना सम्पूर्ण विकास नहीं कर पाये। भारतकी सभ्यताका झुकाव नैतिकताको मजबूत करनेकी ओर है। पश्चिमी सभ्यताका झुकाव अनीतिको दृढ़ करनेकी ओर है। इसीलिए मैंने उसे असभ्यता कहा है। पाश्चात्य सभ्यता नास्तिकतावादी है और भारतीय सभ्यता आस्तिकतावादी है।

ऐसा समझकर श्रद्धाके साथ भारतके हितेच्छुओंको भारतीय सभ्यतासे इस तरह चिपके रहना चाहिए जिस तरह बच्चा माँसे चिपका रहता है।

अध्याय १४ भारत स्वतन्त्र कैसे हो?

पाठक : मैं सभ्यता-सम्बन्धी आपके विचार समझ गया। मुझे आपके कथनपर ध्यान देना पड़ेगा। किन्तु सभी बातें तुरन्त मंजूर कर ली जायें ऐसा तो आप नहीं मानते होंगे। ऐसी आशा भी नहीं करनी चाहिए। आपके इस प्रकारके विचारोंके अनुसार भारतके मुक्त होनेका आप क्या उपाय मानते हैं?

सम्पादक : मैं ऐसा बिलकुल नहीं चाहता कि मेरे विचारोंको सभी तुरन्त मान लें। मेरा इतना ही कर्तव्य है कि आप जैसे जो लोग मेरे विचार जानना चाहें मैं अपने विचार उनके सामने रख दूँ। बादमें वे उन विचारोंको अपनाते हैं या नहीं यह तो समय बीतनेपर ही मालूम होगा।

सच कहें तो भारतके आज़ाद होनेके उपायोंपर हम विचार कर चुके हैं। फिर भी ऐसा हमने परोक्ष रूपमें किया था। अब हम उनपर प्रत्यक्ष रूपमें विचार करेंगे।

व्यक्ति जिस कारणसे बीमार हुआ है यदि उसे दूर कर दिया जाये तो रोगीको आराम हो जाता है। यह जग-जाहिर बात है। इसी तरह भारत जिस कारणसे गुलाम हुआ यदि वह दूर हो जाय तो वह स्वतन्त्र हो जायेगा।

पाठक : यदि भारतकी सभ्यता जैसा आप कहते हैं सर्वोत्तम है तो फिर भारत यह गुलाम कैसे बना?

सम्पादक : सभ्यता तो मैंने जैसी कही वैसी ही है किन्तु देखा जाता है कि सभी सभ्यताओंपर आपत्तियाँ आती रहती हैं। जो सभ्यता दृढ़ होती है वह अन्तमें

[1] गुजराती पाठके अनुसार : "क्या यह सब भी आपकी बताई सभ्यताका लक्षण है?"

अपनी आपत्तियोंको हटा देती है। भारतके बेटोंमें कोई न कोई कमी थी इसलिए उसकी सभ्यता आपत्तियोंसे घिर गई। लेकिन इस बन्धनसे छूटनेकी शक्ति उसमें है और इससे उसका गौरव प्रकट होता है।

इसके सिवा सारा भारत उससे घिरा हुआ नहीं है। जिन्होंने पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की है और उसके पाशमें पड़े हुए हैं वे ही गुलामीमें घिरे हुए हैं। हम सारे जगतको अपनी दमड़ीके मापसे मापते हैं। यदि हम गुलाम हों तो सारे जगतको वैसा ही समझ लेते हैं। हम गिरी हुई हालतमें हैं इसलिए सारे भारतको वैसा ही मान लेते हैं। दरअसल ऐसा कुछ है नहीं। फिर भी ऐसा मानना ठीक है कि हमारी गुलामी सारे देशकी गुलामी है। तथापि यदि हम ऊपरकी बात ध्यानमें रखें और सोचें तो यह बात समझमें आ जायेगी। यदि हमारी गुलामी नष्ट हो जाये तो भारतकी गुलामी भी नष्ट हो जायेगी। आपको अब स्वराज्यकी व्याख्या भी इसीमें मिल जायेगी। स्वराज्यका अर्थ है अपने ऊपर अपना ही राज्य। और ऐसा राज्य हमारी मुट्ठीमें है।

इस स्वराज्यको आप स्वप्न न समझें। मनमें उसकी कल्पना करके बैठ जाना स्वराज्य नहीं है। यह तो ऐसा स्वराज्य है कि यदि आपने उसे चख लिया तो आप आजीवन दूसरोंको उसका स्वाद चखानेके लिए यत्न करते रहेंगे। मुख्य बात तो हर व्यक्तिके स्वराज्य भोगनेकी है। डूबनेवाला दूसरोंको नहीं तार सकता तैरने वाला तार सकता है। हम स्वयं गुलाम रहें और दूसरोंको स्वतन्त्र करनेकी बात करें, यह बननेवाली बात नहीं है।

किन्तु इतना ही काफी नहीं है। हमें अभी और भी सोचना पड़ेगा।

अब आप इतना तो समझ ही गये होंगे कि हमें अंग्रेजोंको निकालनेकी प्रतिज्ञा करना जरूरी नहीं है। यदि अंग्रेज भारतीय बनकर रहें तो हम [भारतमें] उनका समावेश कर सकते हैं। यदि अंग्रेज अपनी सभ्यताको लेकर यहाँ रहना चाहें तो भारतमें उनके लिए स्थान नहीं है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना हमारे हाथमें है।

पाठक : अंग्रेज भारतीय बन जायें आप ऐसा कह रहे हैं। यह तो नामुमकिन है।

सम्पादक : हमारा ऐसा कहना तो यह कहनेके बराबर हो जायेगा कि अंग्रेज मनुष्य नहीं हैं। वे हमारे जैसे बनते हैं या नहीं इसकी हमें चिन्ता नहीं है। हम तो अपना घर सुधारें। फिर उसमें रहने लायक लोग ही उसमें रहेंगे दूसरे अपने आप चले जायेंगे। प्रत्येक [व्यक्तिको] [ऐसा] अनुभव हुआ होगा।

पाठक : इतिहासमें तो ऐसा होनेकी बात हमने नहीं पढ़ी।

सम्पादक : जिसे इतिहासमें न पढ़ा हो वह हो नहीं सकता ऐसा मानना हमारी हीनता है। जो बात हमारी बुद्धिमें आ सकती है आखिरकार उसे हमें आजमाना अवश्य चाहिए।

प्रत्येक देशकी स्थिति एक-सी नहीं होती। भारतकी स्थिति विचित्र है। उसका बल अपार है। इसलिए दूसरे इतिहासोंसे हमारा बहुत थोड़ा सम्बन्ध है। मैंने आपसे कहा कि जब दूसरी सभ्यताएँ नष्ट हो गईं तब भी भारतीय सभ्यतापर आँच नहीं आई।

पाठक : मुझे ये सारी बातें ठीक नहीं जँचतीं। हमें अंग्रेजोंको लड़कर ही निकालना होगा इसमें कोई शक नहीं है। जबतक वे हमारे देशमें हैं, तबतक हमें चैन नहीं

मिल सकता। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं यह स्पष्ट है। वे यहाँ हैं इसलिए हम निर्बल होते जा रहे हैं। हमारा तेज नष्ट हो गया है और हम लोग किंकर्तव्यविमूढ़ दिखाई पड़ते हैं। वे हमारे देशके लिए काल-स्वरूप हैं। इस कालको हमें जैसे बने वैसे भगाना ही होगा।

सम्पादक: आप आवेशमें मैंने जो-कुछ कहा था सो सभी कुछ भूल गये। अंग्रेजोंको हम लाये और वे जो टिके हुए हैं सो भी हमारी बदौलत। आपने उनकी सभ्यता ग्रहण की इसलिए उनका यहाँ रहना मुमकिन हो गया इसे आप कैसे भूल सकते हैं? आप उनसे जो नफरत करते हैं सो आपको उनकी सभ्यतासे करनी चाहिए। फिर भी अब यह मान लें कि हमें उन्हें लड़कर निकालना है तो [आप बताइये] यह कैसे हो सकता है?

पाठक: जैसे इटलीने किया वैसे। मैजिनी[1] और गैरीबाल्डीने[2] जो-कुछ किया सो हम भी कर सकते हैं। वे बहुत बहादुर थे क्या आप इससे इनकार कर सकते हैं?

अध्याय १५ इटली और भारत

सम्पादक: आपने इटलीका उदाहरण ठीक दिया। मैजिनी महात्मा थे। गैरिबाल्डी बड़े भारी योद्धा थे। ये दोनों पूजनीय थे। इनसे हम बहुत सीख सकते हैं। फिर भी इटली और भारतकी दशा अलग-अलग है।

पहले मैजिनी और गैरिबाल्डीके बीचका अन्तर समझ लेना चाहिए। मैजिनीका मनोरथ अलग था। मैजिनी जो सोचते थे सो इटलीमें नहीं हुआ। मैजिनीने मनुष्य जातिके कर्तव्यके विषयमें लिखते हुए यह बता दिया था कि हर व्यक्तिको स्वराज्य भोगनेवाला बन जाना चाहिए। यह तो उसके लिए स्वप्न-जैसा ही रहा। हमें याद रखना चाहिए कि गैरिबाल्डी और मैजिनीके बीच मतभेद हो गया था। इसके सिवाय गैरिबाल्डीने प्रत्येक इटालवीको शस्त्र दिये और प्रत्येक इटालवीने शस्त्र ले लिये।

इटली और आस्ट्रियाके बीच सभ्यताका भेद नहीं था। वे चचेरे भाई माने जायेंगे। इटलीका सिद्धान्त था जैसेको तैसा। गैरिबाल्डीको मोह था कि इटलीको विदेशी (आस्ट्रियाकी) गुलामीसे मुक्त किया जाये। इस उद्देश्यसे उसने कावूरके[3] मारफत जो षड्यन्त्र किये वे उसके शौर्यको बट्टा लगानेवाले हैं।

और अन्तमें फल क्या हुआ? यदि आप ऐसा मानते हों कि इटलीमें इटालवी राज्य करते हैं, इसलिए इटलीकी प्रजा सुखी है तो मुझे आपसे कहना चाहिए कि आप अँधेरेमें भटक रहे हैं। मैजिनीने साफ-साफ बताया है कि इटली मुक्त नहीं हुआ

१ जोजेफ मैजिनी (१८०५–७२), देखिए "जोजेफ मैजिनी" खण्ड ५, पृष्ठ ३०–३१।

२. जोजेफ गैरिबाल्डी (१८०७–८२), इटलीके स्वाधीनताके लिए हमेशा संघर्ष करनेवाले नेता देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ३०–३१।

३ काउण्ट केमिलो बेन्सो कावूर (१८१०–१८६१) इटलीका प्रसिद्ध राजनेता विक्टर इमैनुअलके मन्त्रित्व कालमें उसने इटलीके एकीकरणके लिए बहुत-कुछ किया था। विक्टर इमैनुअल सन् १८६१ में इटलीका राजा घोषित हुआ था।

है। विक्टर अमैन्युअल [द्वितीय] ने इटलीको एक तरहसे देखा मैज़िनीने दूसरी तरहसे। अमैन्युअल कावूर और गैरिबाल्डीकी दृष्टिसे इटलीका मतलब था — अमैन्युअल अथवा इटलीका राजा और उसके मुसाहिब मैज़िनीके विचारसे इटलीका अर्थ था — इटलीके लोग उसके किसान। [उसके लेखे] अमैन्युअल आदि तो इसके [प्रजाके] नौकर थे। मैज़िनीकी इटली अब भी गुलाम है। दो राजाओंके बीच शतरंजकी बाजी थी इटलीकी प्रजा तो सिर्फ प्यादा थी और है। इटलीके मजदूर अब भी दुखी हैं। इटलीके मजदूरोंकी फरियाद नहीं सुनी जाती इसलिए वे लोग खून करते हैं विरोध करते हैं सिर फोड़ते हैं और आज भी वहाँ विद्रोहका डर बना रहता है। आस्ट्रियाके चले जानेसे इटलीका क्या फायदा हुआ? नाममात्रका लाभ हुआ। जिन सुधारोंके लिए संघर्ष हुआ वे सुधार नहीं हुए, प्रजाकी स्थिति नहीं सुधरी।

आपका इरादा भारतकी ऐसी दशा करनेका तो नहीं होगा। मैं मानता हूँ कि आपका विचार भारतके करोड़ों लोगोंको सुखी करना है, यह नहीं कि मैं अथवा आप राजसत्ता ले लें। इस हालतमें हमें एक ही बात सोचनी पड़ेगी कि प्रजा कैसे स्वतन्त्र हो।

आप स्वीकार करेंगे कि कुछ देशी रियासतोंमें प्रजा कुचली जा रही है। वे [अहंकि शासक] लोगोंको बड़ी नीचतासे तकलीफ देते हैं। उनका अत्याचार अंग्रेजोंसे भी अधिक है। यदि आप भारतमें ऐसा ही अत्याचार होते देखना चाहते हों तो हमारी आपकी पटरी बैठ ही नहीं सकती।

मेरा स्वदेशाभिमान मुझे ऐसा नहीं सिखाता कि हमारे देशी राजाओंके नीचे रैयत जिस तरह कुचली जा रही है उसे उसी तरह कुचलने दिया जाये। मुझमें शक्ति हुई, तो मैं देशी राजाओंके अत्याचारके विरुद्ध उसी तरह जूझूँगा जिस तरह कि अंग्रेजोंके अत्याचारके विरोधमें।

स्वदेशाभिमान मेरे लेखे देशका हित है। यदि देशका हित अंग्रेजोंके हाथों होता हो तो मैं आज अंग्रेजोंको प्रणाम करूँगा। यदि कोई अंग्रेज कहे कि भारतको आजाद करना चाहिए, अत्याचारका मुकाबला करना चाहिए और लोगोंकी सेवा करनी चाहिए, तो मैं उस अंग्रेजको भारतीय मानकर उसका स्वागत करूँगा।

और फिर भारत तभी लड़ सकता है जब उसे इटलीकी तरह ही हथियार मिलें। किन्तु जान पड़ता है कि आपने इस जबर्दस्त बातपर विचार ही नहीं किया। अंग्रेज गोला-बारूदसे लैस हैं इस बातका डर नहीं लगता। किन्तु यह बात तो ठीक ही है कि यदि उनसे उन्हींके जैसे हथियारोंसे लड़ना हो तो भारतको सशस्त्र करना ही होगा। यदि यह सम्भव हो तो इसके लिए कितने वर्ष चाहिए? इसके सिवा प्रत्येक भारतीयको सशस्त्र बनानेका अर्थ तो भारतको यूरोप जैसा ही बनाना हो जाता है। यदि ऐसा हुआ तो आज यूरोपकी जो दुर्गति है वही भारतकी होगी। संक्षेपमें भारतको यूरोपीय सभ्यता अपनानी होगी। यदि ऐसा ही होना है तो यह अच्छा हो [illegible] निष्णात अंग्रेजोंको हम यहाँ ही बना रहने दें। उनसे थोड़ा-बहु[illegible] कुछ नहीं ले पायेंगे और इसी तरह दिन गुजारेंगे।

किन्तु वास्तविकता यह है कि भारतकी जनता कभी शस्त्र धारण नहीं करेगी और न करना ही ठीक है।

पाठक: आप तो बहुत ज्यादा कह गये। सभीको हथियारबन्द होनेकी जरूरत नहीं है। हम पहले तो कुछ हत्याएँ करके आतंक फैलायेंगे। इसके बाद जो थोड़े लोग सशस्त्र होकर तैयार हो जायेंगे वे खुल्लमखुल्ला लड़ेंगे। यह ठीक है कि इसमें पहले तो २ –२५ लाख[1] भारतीय मर जायेंगे किन्तु अन्तमें हम देशको अपने हाथमें कर लेंगे। हम गुरिल्ला (झाड़ुओंसे भिड़न्ती-मुक्ती) युद्ध-पद्धति अपनाकर अंग्रेजोंको हरा देंगे।

सम्पादक: आपका विचार भारतकी पवित्र भूमिको राक्षसी बना देनेका लगता है। हत्याएँ करके भारतको मुक्त करेंगे ऐसा सोचते हुए आपको झिझक क्यों नहीं होती? खून तो हमें अपना बहाना चाहिए। हम नामर्द हो गये हैं इसीलिए हम ऐसी बात सोचते हैं। इस प्रकार आप किसे आजाद करेंगे? भारतकी जनता कदापि ऐसा नहीं चाहती। हम जैसे लोग जिन्होंने अधम सभ्यताकी भाँग पी ली है मदमें ऐसा विचार करते हैं। जो लोग खून करके राज्य प्राप्त करेंगे वे प्रजाको सुखी नहीं कर सकते। धींगराने जो खून किया[2] और जो खून भारतमें हुए हैं,[3] उनसे फायदा हुआ — यदि कोई ऐसा मानता हो तो वह बड़ी भूल करता है। मैं धींगराको देशभक्त मानता हूँ किन्तु उसकी भक्ति उन्मत्त थी। उसने अपने शरीरकी आहुति गलत रास्तेसे दी। इससे अन्तमें हानि ही है।

पाठक: किन्तु आपको इतना तो मानना पड़ेगा कि अंग्रेज इस हत्यासे भयभीत हो गये हैं और लॉर्ड मॉर्लेने[4] जो-कुछ दिया है वह ऐसे ही डरसे दिया है।

सम्पादक: अंग्रेज जाति डरपोक भी है, और बहादुर भी। गोला-बारूदका असर उसपर तुरन्त हो जाता है यह मैं मानता हूँ। यह सम्भव है कि लॉर्ड मॉर्लेने जो-कुछ दिया वह डरके मारे दिया हो। किन्तु डरसे मिली हुई वस्तु जबतक डर है तभीतक टिक सकती है।

अध्याय १६ गोला-बारूद

पाठक: डरसे दी हुई चीज जबतक डर है, तभी तक टिक सकती है यह आपने विचित्र बात कही। जो दे दी सो दे दी फिर उसमें क्या फेरफार हो सकता है?

सम्पादक: ऐसा नहीं है। १८५७ की घोषणा[5] विद्रोहके अन्तमें लोगोंमें शान्ति स्थापित करनेके लिए की गई थी। जब शान्ति हो गई और लोग विश्वासी बन गये तब उसका अर्थ बदल गया। यदि मैं सजाके डरसे चोरी न करूँ, तो सजाका डर समाप्त होते ही मेरा मन चोरी करनेका हो जायेगा और मैं चोरी कर डालूँगा।

१ अंग्रेजी पाठमें डेढ़ दो लाख।
२ देखिए पाद-टिप्पणी ३, पृष्ठ ४।
३ देखिए पाद-टिप्पणी १, पृष्ठ १३-१४।
४ लॉर्ड मॉर्ले भारत-मन्त्री थे। मॉर्ले-मिन्टो सुधार १५ नवम्बर, १९०९ से लागू हुए।
५ १८५८ की महारानी विक्टोरियाकी घोषणा।

यह तो बहुत सामान्य अनुभव है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता। हमने मान लिया है कि लोगोंसे डाँट-डपट कर काम लिया जा सकता है, और इसीलिए हम ऐसा करते आये हैं।

पाठक: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आपका यह कहना आपके खिलाफ जाता है? आपको मानना होगा कि अंग्रेजोंने स्वयं जो-कुछ पाया सो मार-काट करके ही पाया है। आप कह चुके हैं कि उन्होंने जो-कुछ पाया सो बेकार है — यह मुझे याद है। किन्तु इससे मेरी दलीलपर आँच नहीं आती। उन्होंने बेकार चीज प्राप्त करनेका निश्चय किया और उसे पाया। मतलब यह कि उन्होंने अपनी मुराद हासिल की। इसके साधन क्या थे इसकी क्या चिन्ता? यदि हमारा उद्देश्य ठीक हो तो फिर क्या उसे हम चाहे जिस साधनसे — मार-काट करके भी — प्राप्त न करें? चोर मेरे घरमें घुस आये तब क्या मैं साधनका विचार करूँगा? मेरा धर्म तो उसे जैसे बने वैसे निकाल देनेका होगा।

आप यह तो मानते मालूम होते हैं कि हमें अर्जियाँ भेजते रहनेसे कुछ नहीं मिला और न आगे मिलेगा। तब फिर हम मार-धाड़ करके क्यों न लें? जितना आवश्यक हो मार-धाड़का उतना भय हम बनाये रखेंगे। बच्चा आगमें पाँव रखे और हम उसे आगसे बचानेके लिए उसपर अंकुश जमायें तो आप इसमें कोई दोष नहीं मानेंगे। हमें तो जैसे-तैसे कार्यसिद्धि करनी है।

सम्पादक: आपने ठीक दलील दी है। ऐसी दलीलसे बहुतोंने धोखा खाया है। मैं भी ऐसी दलील किया करता था। किन्तु अब मेरी आँखें खुल गई हैं और मैं अपनी गलती देख पाता हूँ। मैं उसे आपको भी बतानेकी कोशिश करूँगा।

पहले तो इसपर विचार कर लें कि अंग्रेजोंने जो-कुछ पाया सो मार-धाड़ करके पाया इसलिए हम भी वैसा ही करके [अपना उद्देश्य] प्राप्त करें। अंग्रेजोंने मार-धाड़ की और हम भी कर सकते हैं यह बात तो ठीक है। लेकिन हम भी वैसी ही चीज पा सकते हैं जैसी उन्हें मिली। आप स्वीकार करेंगे कि वैसी चीज तो हमें बिलकुल नहीं चाहिए।

आप यह जो मानते हैं कि साधन और साध्यमें सम्बन्ध नहीं है सो बहुत बड़ी भूल है। इस भूलके कारण जो व्यक्ति धार्मिक कहे गये हैं उन्होंने घोर कर्म किये हैं। यह तो धुरबेल बोकर बेलाके फूलकी इच्छा करने जैसा हुआ। मेरे लिए तो समुद्र पार करनेका साधन नाव ही है। अगर मैं पानीमें बैलगाड़ी डाल दूँ तो वह गाड़ी और मैं दोनों ही समुद्रके तलमें पहुँच जायेंगे। 'जैसा देव वैसी पूजा' यह वाक्य बहुत विचारणीय है। इसका गलत अर्थ निकाल कर लोग भूलमें पड़ गये हैं। साधन बीज है और साध्य — हासिल करनेकी चीज — वृक्ष है। इसलिए जितना सम्बन्ध बीज और वृक्षमें है उतना साधन और साध्यमें है। शैतानको भजकर मैं ईश्वरभजनका फल प्राप्त करूँ, यह सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए यह कहना कि हमें भजना तो ईश्वरको ही है साधन भले ही शैतानी हो एकदम अज्ञानसे भरी हुई बात है। जैसी करनी वैसी भरनी। अंग्रेजोंने मार-धाड़ करके १८३३में मत देनेका विशेष

अधिकार प्राप्त किया किन्तु क्या मार-काट करके वे अपना कर्तव्य समझ सके? उनका उद्देश्य अधिकार प्राप्त करनेका था सो उन्होंने मार-काट मचाकर हासिल कर लिया। वास्तविक अधिकार तो कर्तव्यके फल हैं वे उन्होंने प्राप्त नहीं किये। परिणाम यह हुआ है कि सभी अधिकार पानेके लिए प्रयत्न करते हैं किन्तु कर्तव्य सो गया है। जहाँ सभी अधिकारकी बात करते हैं वहाँ कौन किसको दे? हमारा कहनेका यह मतलब नहीं कि वे कोई भी कर्तव्य नहीं करते लेकिन जो अधिकार वे माँगते थे उनसे सम्बन्धित फर्ज उन्होंने अदा नहीं किये। उन्होंने योग्यता प्राप्त नहीं की इसलिए उनके अधिकार उनकी गरदनपर जूएकी तरह बोझ बनकर लद गये अर्थात् उन्हें जो-कुछ मिला है वह उनके साधनोंका ही परिणाम है। उन्हें जो-कुछ चाहिए था वे उसके अनुरूप साधन काममें लाये।

यदि मुझे आपकी घड़ी छीन लेनी हो तो निःसन्देह मुझे आपके साथ मार-पीट करनी होगी। किन्तु यदि मुझे आपकी घड़ी खरीदनी हो तो मुझे उसके दाम देने होंगे। और यदि इनामकी तरह लेनी हो तो आपकी चिरौरी करनी पड़ेगी। घड़ी पानेके लिए मैं जिस साधनका उपयोग करूँगा उसीके मुताबिक वह चोरीका माल मेरा माल या इनाममें पाई हुई चीज बन जायगी। तीन साधनोंके तीन अलग-अलग परिणाम होंगे। अब आप कैसे कह सकते हैं कि साधनकी कोई चिन्ता नहीं?

अब चोरको निकालनेकी मिसाल लें। मैं आपके इस विचारसे सहमत नहीं हूँ कि चोरको निकालनेके लिए चाहे जो साधन काममें लाया जा सकता है।

अगर मेरे घरमें मेरा बाप चोरी करने आ जाये तो मैं एक साधन काममें लाऊँगा। अगर जान-पहचानका कोई व्यक्ति चोरी करने आये तो वही साधन काममें नहीं लाऊँगा। यदि कोई अनजान आदमी घुस आया हो तो तीसरा साधन काममें लाऊँगा। यदि वह व्यक्ति गोरा हो तो एक साधन भारतीय हो तो दूसरा — शायद ऐसा भी आप कहेंगे। यदि कोई कमजोर लड़का चोरी करने आ जाये तो मैं बिलकुल दूसरा ही साधन इस्तेमाल करूँगा। अगर वह मेरी बराबरीका हो तो दूसरा और अगर वह तगड़ा और ताकतवर आदमी हो तो मैं चुपचाप सोता रहूँगा। इसमें बापसे लेकर ताकतवर आदमी तक अलग-अलग साधन काममें लाये जायेंगे। मुझे लगता है कि बाप होगा तो भी मैं सोता रहूँगा और अगर वह हथियारसे लैस ताकतवर आदमी होगा तो भी चुपचाप पड़ा रहूँगा। बापमें भी ताकत है और सशस्त्र व्यक्तिमें भी ताकत है। दोनोंसे हार मानकर मैं अपनी वस्तु चली जाने दूँगा। बापका बल मुझे ममताके कारण रुलायेगा और हथियारका बल मेरे मनमें क्रोध उत्पन्न करेगा। हम लोग कट्टर दुश्मन बन जायेंगे। ऐसी विषम परिस्थिति है। इन उदाहरणोंसे हम साधनोंका निर्णय तो नहीं कर सकेंगे। मुझे तो सभी चोरोंके साथ कैसा बरताव किया जाये यह बात समझमें आती है। किन्तु आप उस उपायसे भड़क उठेंगे इसलिए मैं उसे आपके सामने नहीं रखता। आप इस बातको समझ लीजिए। यदि नहीं समझेंगे तो हर वक्त आपको अलग-अलग साधन काममें लाने पड़ेंगे। लेकिन यह तो आप समझ ही गये होंगे कि चोरको निकाल

देनेके लिए चाहे जो साधन काम नहीं देगा और नतीजा साधनके अनुरूप आयेगा। आपका कर्म चोरको चरसे चाहे जैसे निकाल देनेका कदापि नहीं है।

जरा और आगे बढ़ें। मान लीजिए कि वह शस्त्र-बली आपकी कोई चीज ले गया है। इसे आपने याद रखा। इसपर आपको क्रोध है और आप उस बन्देको अपने लिए नहीं किन्तु लोक-कल्याणके लिए सजा देना चाहते हैं। आपने लोग इकट्ठे किये। उसके घरपर धावा बोल दिया। उसे खबर लगी। वह भाग गया। उसने दूसरे लुटेरे इकट्ठे किये। वह भी चिढ़ा हुआ है। अब तो उसने दिन-दहाड़े आपका घर लूट लेनेका सन्देशा आपको भेज दिया। आप बलवान हैं, डरते नहीं हैं। आप अपनी तैयारीमें हैं। इस बीच वह लुटेरा आपके आसपासके लोगोंको परेशान करता है। वे आपके पास फरियाद करते हैं। आप कहते हैं मैं यह सब-कुछ तुम्हारे लिए ही तो कर रहा हूँ। मेरा माल गया यह तो कोई बड़ी बात भी ही नहीं। लोग कहते हैं "पहले तो वह हमें नहीं लूटता था। आपने उसके साथ टंटा शुरू किया तभीसे उसने यह शुरू किया है। आप दुविधामें पड़ जाते हैं। आपको गरीबोंपर दया है। उनकी बात सच्ची है। अब क्या किया जाये? लुटेरेको छोड़ दें? उसमें तो आपकी इज्जत जाती है। इज्जत तो सबको प्रिय होती है। आप गरीबोंसे कहते हैं फिक्र न करो। यह मेरा धन आपका है। मैं आपको हथियार देता हूँ। आपको उनका उपयोग करना भी सिखाऊँगा। आप बदमाशको मारिए, छोड़िए मत। इस तरह झगड़ा बढ़ गया। लुटेरे बढ़े। लोगोंने अपने हाथों मुसीबत मोल ले ली। चोरसे बदला लेनेका नतीजा यह हुआ कि नींद बेचकर जागरण ले लिया। जहाँ शान्ति थी वहाँ अशान्ति हो गई। पहले तो जब मौत आती थी तभी मरते थे। अब तो रोज ही मरनेकी घड़ी खड़ी है। लोग हिम्मत खोकर कायर हो गये। आप शान्तिसे देखें तो देख सकेंगे कि मैंने यह तसवीर कुछ बढ़ा-चढ़ा कर नहीं रखी है। यह एक साधन हुआ।

अब दूसरे साधनकी जाँच करें। चोरको आपने मूर्ख समझा। कभी मौका लगेगा तो आपने उसे समझानेकी बात तय की है। आपने सोचा कि वह भी मनुष्य है। उसने किस लिए चोरी की यह आप कहाँ जानते हैं? आपके लिए सही रास्ता तो यही है कि जब समय आये तब आप उसके हृदयमें से चोरीका बीज ही निकाल डालें। आप इस तरह सोच रहे हैं तभी वे भाई साहब फिर चोरी करने आ गये। आप क्रोधित नहीं हुए। आपने उसपर दया की। आपको लगा कि यह मनुष्य [एक प्रकारका] रोगी है। आपने खिड़की दरवाजे सब खोल दिये। सोनेकी जगह बदल ली। अपनी चीजें इस तरह रख दीं कि वे आसानीसे उठा ली जा सकें। चोर आया। वह घबराता है। उसे यह अनोखा जान पड़ता है। माल तो वह ले गया किन्तु उसका मन सोचमें पड़ गया। उसने गाँवमें पूछ-ताछ की। आपकी दयाके विषय में उसने जाना। वह पछताया और उसने आपसे माफी माँगी। आपकी चीज वापस ले आया। उसने चोरीका धन्धा छोड़ दिया। वह आपका सेवक हो गया। आपने उसे किसी धन्धेमें लगा दिया। यह हुआ दूसरा साधन।

आप देख सकते हैं कि साधन अलग होनेसे परिणाम भी अलग होता है। सारे चोर ऐसा ही करेंगे अथवा सभीमें आपके समान दयाभाव होगा मैं इसके द्वारा ऐसा सिद्ध नहीं करना चाहता। इतना ही बताना चाहता हूँ कि अच्छा परिणाम उत्पन्न करनेके लिए अच्छा ही साधन होना चाहिए। और हमेशा नहीं तो ज्यादातर शस्त्र बलकी अपेक्षा दयाका बल अधिक शक्तिशाली है। हथियारमें हानि है, दयामें कभी नहीं।

अब अर्जीवाली बात लें। जिसके पीछे बल न हो वह अर्जी निकम्मी है। यह बात बिलकुल पक्की है। फिर भी स्वर्गीय जस्टिस रानडे[1] कहते थे कि प्रार्थना पत्र लोगोंको शिक्षित करनेका साधन है। उसके द्वारा लोगोंको उनकी स्थितिका भान कराया जा सकता है और शासनकर्ताओंको चेतावनी दी जा सकती है। उस तरह सोचें तो अर्जी निकम्मी चीज नहीं है। बराबरीका व्यक्ति प्रार्थनापत्र दे तो वह उसकी नम्रताकी निशानी कही जायेगी। गुलाम प्रार्थनापत्र दे तो वह उसकी गुलामीका चिह्न होगा। जिस अर्जीके पीछे बल है वह बराबरीवालेकी अर्जी है और वह अपनी माँग प्रार्थनापत्रके रूपमें प्रस्तुत करता है, इससे उसकी कुलीनता प्रकट होती है।

अर्जीके पीछे दो प्रकारकी शक्तियाँ होती हैं। एक तो "अगर नहीं दोगे तो हम तुम्हें मारेंगे"। यह गोला-बारूदका बल है। इसके खराब नतीजे हम देख आये हैं। दूसरा बल है अगर आप नहीं देंगे तो हम आपके प्रार्थी नहीं रहेंगे। हम प्रार्थी रहेंगे तो आप बादशाह बने रहेंगे। [इसलिए] हम आपके साथ कोई व्यवहार नहीं रखेंगे।" इस बलको दयाका बल कहो आत्मबल कहो चाहे सत्याग्रह कहो। यह बल अविनश्वर है और इस बलको बरतनेवाला अपनी स्थितिको ठीक-ठीक समझता है। हमारे बड़े-बूढ़ोंने इसी बातको एक कहावतके द्वारा कहा है "एक नहीं छत्तीस रोगोंको दूर करता है।"[2] जिनके पास यह बल है, उनके खिलाफ हथियार-बल टिक ही नहीं सकता।

बच्चेके आगमें पाँव रखनेपर तो उसे रोकनेके उदाहरणकी छान-बीन करें, तो आप हार जायेंगे। बच्चेके साथ आप क्या करेंगे? मान लीजिए कि बच्चा आपके मुकाबलेमें इतनी ताकत लगा सके कि आपको धकेलकर आगमें जा सके तब तो आगमें पड़नेसे वह किसी भी तरह बचेगा नहीं। इसका उपाय आपके पास है कि या तो आगमें जानेसे रोकनेके लिए आप उसके प्राण ले लें या उसका आगमें जाना आप बरदाश्त नहीं कर सकते इसलिए आप अपनी जान दे दें। आप बच्चेका प्राण तो नहीं ही लेंगे। यदि आपके मनमें पूरा-पूरा दयाभाव न हो तो यह सम्भव है कि आप अपने प्राण न दें। तब आप लाचार होकर बच्चेको आगमें जाने देंगे। अर्थात् आप बच्चेपर शस्त्र-बलका प्रयोग नहीं करेंगे। अगर किसी और ढंगसे आप बच्चेको रोक सकेंगे तो रोकेंगे। किन्तु वह शस्त्र-बलसे कम दरजेका होकर भी एक

१. महादेव गोविन्द रानडे (१८४२–१९०१), समाज-सुधारक, लेखक और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके संस्थापकोंमें से एक, देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२०–२१।

२. यह एक गुजराती कहावतका शाब्दिक अनुवाद है। आशय है — "असहयोग सब प्रकारके अन्यायोंको दूर करता है।"

प्रकारका शस्त्र-बल ही होगा आप ऐसा न मान लें। यह बिलकुल दूसरी तरहका बल है और इसीको समझ लेना है।

आप बच्चेको रोकनेमें बच्चेका ही हित देखते हैं। आप जिसपर अंकुश लगाना चाहते हैं उसपर यह अंकुश उसीके हितके विचारसे लगाना चाहते हैं। यह उदाहरण अंग्रेजोंपर तनिक भी लागू नहीं होता। आप अंग्रेजोंके प्रति शस्त्र-बलका प्रयोग करना चाहते हैं, इसमें आप अपना ही अर्थात् जनताका स्वार्थ देखते हैं। इसमें दयाका लेश भी नहीं है। यदि आप ऐसा कहें कि अंग्रेज नीच काम करते हैं नीच काम आग है वे इस आगमें अज्ञानसे पड़ते हैं और आप दयावश इस अज्ञानीको यानी बच्चेको बचाना चाहते हैं तब तो इस प्रयोगकी आजमाइशके लिए आपको जहाँ-कहीं भी कोई व्यक्ति नीच काम करता हुआ दिखे वहाँ-वहाँ पहुँचना होगा और उन सब स्थानोंपर विपक्षीके अर्थात् बच्चेके प्राण लेनेके बजाय अपने प्राण होमने पड़ेंगे। यदि आप इतना पुरुषार्थ करना तय करें, तो करें। किन्तु यह बात है असम्भव।

अध्याय १७ सत्याग्रह-आत्मबल

पाठक आप जिस सत्याग्रह अथवा आत्मबलकी बात करते हैं, क्या उसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण है? आजतक एक भी राष्ट्रमें वैसे बलके आधारपर उन्नति की हो ऐसा देखनेमें नहीं आता। मार-काट किये बिना दुष्ट सीधा कदापि नहीं रहता। इसका अनुभव आज भी होता रहता है।

सम्पादक: कवि तुलसीदासने कहा है

"दया धरमको मूल है, देह मूल[1] अभिमान

तुलसी दया न छोड़िए जब लग घटमें प्राण।"

मुझे तो यह वाक्य शास्त्र-वचनकी तरह लगता है। जैसे दो और दो चार ही होते हैं उपरके वाक्यपर मुझे उतना ही भरोसा है। दया-बल आत्मबल है, यह सत्याग्रह है। और इस बलका प्रमाण पग-पगपर दिखाई पड़ता है। यह बल न होता तो पृथ्वी रसातलमें समा गई होती।

किन्तु आप तो ऐतिहासिक प्रमाण माँगते हैं। इसलिए आपको इतिहास किसे कहते हैं यह जानना पड़ेगा।

इतिहास का अर्थ ऐसा हो गया है। यदि यह अर्थ करें, तो आपको सत्याग्रहके बहुत-से प्रमाण दिये जा सकेंगे। इतिहास जिस अंग्रेजी शब्दका अनुवाद है और जिस शब्दका अर्थ बादशाहोंकी तवारीख है, उस अर्थके अनुसार सत्याग्रहका प्रमाण नहीं मिल सकता। यदि आप जस्तेकी खानमें चाँदी खोजें तो वह कैसे मिल सकती है? हिस्ट्री में दुनियाके कोलाहलकी ही कहानी मिलेगी। इसलिए गोरी कौमोंमें कहावत है कि जिस राष्ट्रके हिस्ट्री (कोलाहल) नहीं है, वह प्रजा सुखी है। राजागण किस प्रकार भोग-विलास करते थे किस प्रकार हत्याएँ करते थे किस

१. मूल गुजरातीमें पाप मूल है।

प्रकार शत्रुता करते थे यह सब हिस्ट्री में मिल जाता है। यदि यही इतिहास होता यदि [दुनियामें] इतना ही हुआ होता तो दुनिया कभीकी डूब गई होती। यदि संसारकी गाथा लड़ाईसे शुरू हुई होती तो आज एक भी आदमी जीवित न होता। जो जाति लड़ाईका शिकार बन गई, उसकी ऐसी ही दशा हुई है। आस्ट्रेलियाके हब्शियोंका नामोनिशान मिट गया। आस्ट्रेलियाके गोरोंने उनमें से कदाचित् ही किसीको जीवित छोड़ा है। ये लोग जो जड़-मूलसे नष्ट हो गये सत्याग्रही नहीं थे। जो जीवित रहेंगे वे देखेंगे कि आस्ट्रेलियाके गोरोंका भी यही हाल होगा। जो तलवार चलाते हैं उनकी मौत तलवारसे होती है तैरनेवालेकी मौत पानीमें इस तरहकी कहावतें हम लोगोंमें है।

दुनियामें आज भी इतने लोग जिन्दा हैं, इससे सिद्ध होता है कि संसारकी नींव शस्त्र-बलपर नहीं है बल्कि सत्य दया अथवा आत्मबलपर है। इसलिए जबरदस्त ऐतिहासिक प्रमाण तो यही है कि संसार युद्धके हंगामोंके बाद भी बचा हुआ है। इसलिए शस्त्र-बलकी बजाय [यह] दूसरा बल ही उसका आधार है।

हजारों बल्कि लाखों मनुष्य प्रेमसे रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। करोड़ों परिवारोंके छोटे-छोटे झगड़े प्रेम-भावनामें डूब जाते हैं। सैकड़ों कौमें मिल-जुल कर रही हैं। हिस्ट्री इसका उल्लेख नहीं करती। कर भी नहीं सकती। जब इस दया प्रेम अथवा सत्यका प्रवाह रुक हो जाता है अथवा टूट जाता है, तभी उसका उल्लेख इतिहासमें किया जाता है। किसी कुटुम्बके दो भाई लड़े। इसमें एकने दूसरेके मुकाबले सत्याग्रहका प्रयोग किया। बादमें दोनों प्रेमसे रहने लगे। इसका उल्लेख कौन करता है? यदि इन दोनों भाइयोंमें वकीलकी मददसे अथवा अन्य कारणोंसे शत्रुता बढ़ जाती वे हथियार अथवा अदालतके जरिये (अदालत भी एक प्रकारका हथियार या शरीर-बल ही है) लड़ते तो उनके नाम अखबारमें आते अड़ोस-पड़ोसके लोग जानते और शायद इतिहासमें भी उनका उल्लेख हो जाता। जैसा कुटुम्बों, समुदायों और दलोंके बारेमें वैसा ही राष्ट्रोंके बारेमें भी समझिए। कुटुम्बोंके लिए एक नियम और राष्ट्रोंके लिए दूसरा ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है। हिस्ट्री अस्वाभाविक बातोंको दर्ज करती है। सत्याग्रह स्वाभाविक है इसलिए उसका उल्लेख करनेकी जरूरत नहीं होती।

पाठक आप जैसा कहते हैं उसके अनुसार ऐसा [अवश्य] लगता है कि सत्याग्रहके उदाहरण इतिहासमें दर्ज नहीं किये जा सकते। मैं सत्याग्रहको और भी अधिक समझना चाहता हूँ। आप क्या कहना चाहते हैं उसे कृपया अधिक स्पष्ट शब्दोंमें बतायें तो अच्छा हो।

सम्पादक सत्याग्रह अथवा आत्मबलको अंग्रेजीमें पैसिव रेजिस्टेन्स कहते हैं। यह शब्द जिन लोगोंने अपने हक पानेके लिए स्वयं दुःख सहन किये उनकी हक प्राप्त करनेकी रीतिके लिए बरता गया है। इसका हेतु युद्ध-बल [के हेतु] से बिलकुल उलटा है। जब मुझे कोई काम पसन्द न आये और मैं वह काम न करूँ तो मैं सत्याग्रह अथवा आत्मबल काममें लाता हूँ।

उदाहरणके लिए सरकारने मुझपर लागू होनेवाला कोई कानून पास किया। वह मुझे पसन्द नहीं है। उस समय यदि मैं सरकारपर हमला करके कायदा रद कर वाता हूँ तो मैंने शरीर-बलका प्रयोग किया। यदि मैं वह कानून स्वीकार न करूँ और उसके कारण मिलनेवाली सजा भुगत लूँ, तो मैंने आत्मबल अथवा सत्याग्रह बरता। सत्याग्रहमें मैं अपना बलिदान करता हूँ—अपना ही कुछ त्याग करता हूँ।

अपना बलिदान करना दूसरेका बलिदान करनेसे अच्छा है—ऐसा सभी कहेंगे। इसके सिवाय सत्याग्रहके द्वारा लड़नेमें अगर लड़ाई गलत हो तो केवल लड़नेवालेको ही दुःख भोगना पड़ता है अर्थात् अपनी गलतीकी सजा वह खुद ही भोगता है। ऐसी अनेक घटनाएँ हो चुकी हैं जिनमें लोगोंने गलतीसे संघर्ष किया। कोई भी आदमी निश्चय भावसे यह नहीं कह सकता कि अमुक कार्य खराब ही है। किन्तु जिस समय उसे वह खराब लगे उस समय तो उसके लिए खराब ही है। यदि ऐसा हो तो उसे वह काम नहीं करना चाहिए। और उसके लिए दुःख भोगना चाहिए। यह सत्याग्रहकी कुंजी है।

पाठक: अर्थात् आप कानूनका विरोध करते हैं। यह राजद्रोहकी वृत्ति कही जायेगी। हमारी गणना हमेशा कानून माननेवाले समाजके रूपमें होती है। आप तो अतिवादीसे भी आगे बढ़ते हुए जान पड़ते हैं। [अतिवादी] कहता है कि जो कानून बन गया उसे तो मानना ही चाहिए, लेकिन यदि कानून खराब हो तो कानून बनानेवालेको मार भगाना चाहिए।

सम्पादक: मैं आगे जाता हूँ या पीछे हटता हूँ इसकी मुझे या आपको चिन्ता नहीं होनी चाहिए। हम तो जो अच्छा है उसे खोजना और उसके मुताबिक बरतना चाहते हैं।

हमारा समाज कानून माननेवाला है, इसका सही अर्थ तो यह है कि हमारा समाज सत्याग्रही है। कानून पसन्द न आये तो हम कानून बनानेवालेका सिर नहीं फोड़ते किन्तु उसे रद करानेके लिए उपवास करते हैं।

हम अच्छा या बुरे किसी भी कानूनको कबूल कर लेते हैं यह अर्थ तो आजकलका है। पहले ऐसा कुछ नहीं था। लोग जी में आये उस कानूनको तोड़ते थे और उसकी सजा भोग लेते थे।

कानून नापसन्द होनेपर भी उसके मुताबिक चलना ऐसी सीख मर्दानगीके खिलाफ है, धर्मके खिलाफ है और गुलामीकी हद है।

सरकार कह सकती है कि हम उसके सामने नंगे होकर नाचें। तो क्या हम नाचेंगे? अगर मैं सत्याग्रही हूँ तो मैं सरकारसे कहूँगा: आप यह कानून अपने घरमें रखिए। मैं न तो आपके सामने नंगा होऊँगा और न नाचूँगा। किन्तु हम तो ऐसे असत्याग्रही बन चुके हैं कि सरकारके हुक्मपर नंगा होकर नाचनेसे भी नीच काम करते रहे हैं।

जिस मनुष्यमें इन्सानियत है जिसे खुदाका ही डर है वह दूसरेसे नहीं डरता। दूसरेका बनाया हुआ कानून उसे नहीं बाँधता। बेचारी सरकार भी नहीं कहती कि तुम्हें ऐसा करना ही पड़ेगा। वह भी कहती है कि "यदि तुम ऐसा नहीं करोगे

तो तुम्हें सजा होगी।" हम अपनी पतित अवस्थाके कारण मान बैठे हैं कि हमें ऐसा ही करना चाहिए यह हमारा फर्ज है यह हमारा धर्म है।

यदि लोग एक बार सीख लें कि जो कानून हमें अन्यायपूर्ण मालूम होता हो उसे मानना नपुंसकता है, तो फिर हमें किसीका भी जुल्म सहन नहीं हो सकता। यह स्वराज्यकी कुंजी है।

बहुसंख्यक जिसे कहें अल्पसंख्यक उसे मान ही लें यह तो अधर्म है अन्धश्रद्धा है। ऐसे हजारों उदाहरण मिल जायेंगे जिनमें अधिकांश लोगोंका कहा हुआ गलत निकला और जो थोड़ोंने कहा वही सही निकला। सभी सुधार बहुमतके विरुद्ध खड़े होकर थोड़े-से लोगोंने ही दाखिल कराये हैं। ठगोंकी बस्तीमें ज्यादातर लोग यही कहेंगे कि ठग-विद्या सीखनी ही चाहिए, तो क्या वहाँ रहनेवाला कोई साधु पुरुष भी ठग बन जायेगा? नहीं नहीं। जबतक यह भ्रम दूर नहीं होता कि अन्यायपूर्ण कानूनको भी मान लेना चाहिए, तबतक हमारी गुलामी दूर नहीं होगी और ऐसे भ्रमको केवल सत्याग्रही व्यक्ति ही दूर कर सकता है।

शरीर-बलका उपयोग करना गोला-बारूद काममें लाना उपर्युक्त कानूनमें [सत्याग्रहके कानूनमें] बाधा पहुँचानेवाले हैं। शरीरबलके उपयोगका अर्थ तो यह हुआ कि जो कुछ हमें पसन्द है, सो हम दूसरे व्यक्तिसे जबरदस्ती करवाना चाहते हैं। यदि यह बात ठीक हो तो विपक्षी भी अपनी रुचिका काम करानेके लिए हमपर गोलाबारूदका उपयोग करनेका अधिकारी है। इस तरह तो हम कभी अपने गन्तव्य तक नहीं पहुँच सकेंगे। कोल्हूके बैलकी तरह आँखोंपर पट्टी बँधी रहनेके कारण हम यह भले ही मान लें कि हम आगे बढ़ रहे हैं, किन्तु वास्तविकता तो यही है कि हम उस बैलकी तरह उस वर्तुलकी प्रदक्षिणा ही करते हैं। जो ऐसा मानते हैं कि कोई भी व्यक्ति जो कानून उसे पसन्द न आये उसपर चलनेके लिए बँधा हुआ नहीं है, उनके लिए सत्याग्रह ही एकमात्र सच्चा साधन है। अन्यथा नतीजा बड़ा विकट होगा।

पाठक आप जो कुछ कहते हैं उससे मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि सत्याग्रह कमजोर आदमियोंके अधिक कामका है किन्तु जब वे सबल हो जायें तब तो उन्हें शस्त्र ही चलाने चाहिए।

सम्पादक आपने यह तो बड़े अज्ञानकी बात कही। सत्याग्रह तो सर्वोपरि है। वह शस्त्र-बलकी अपेक्षा अधिक काम करता है तो फिर भला उसे निर्बलका हथियार कैसे गिन सकते हैं? सत्याग्रहके लिए जिस हिम्मत और मर्दानगीकी जरूरत पड़ती है, वह शस्त्र-बलवालेके पास हो ही नहीं सकती। क्या आप ऐसा मानते हैं कि कोई पस्त हिम्मत और कमजोर आदमी उस कानूनको भंग कर सकेगा जिसे वह नापसन्द करता है? उग्रपन्थी शस्त्र-बलवाले हैं। वे कानून माननेकी बात क्यों कर रहे हैं? मैं उनको दोष नहीं देता। वे दूसरी कोई बात कर ही नहीं सकते। वे अंग्रेजोंको मारकर जब खुद राज्य करेंगे तब आपसे और हमसे कानून मनवाना चाहेंगे। यह बात उनके सिद्धान्तके योग्य ही है। किन्तु सत्याग्रही तो कहेगा कि उसे जो कानून पसन्द नहीं है वह उसे मंजूर नहीं करेगा भले ही उसे तोपके मुँहपर क्यों न बाँध दिया जाये।

आप क्या मानते हैं? तोप चलाकर सैकड़ोंको मारनेके लिए हिम्मत चाहिए अथवा तोपके मुँहपर हँसते-हँसते बँध जानेमें हिम्मतकी जरूरत है? जो हथेलीपर जान लेकर चलता है वह शूरवीर है या वह जो दूसरोंकी जानको मुट्ठीमें रखता है?

नामर्द एक क्षण भी सत्याग्रही नहीं रह सकता इसे निश्चित मानिए।

हाँ यह ठीक है कि शरीरसे क्षीण व्यक्ति भी सत्याग्रही बन सकता है। एक व्यक्ति भी सत्याग्रही बन सकता है और लाखों भी। मर्द भी सत्याग्रही हो सकता है और औरत भी। उसे सेना तैयार करनेकी जरूरत नहीं पड़ती उसे पहलवानी सीखनेकी जरूरत नहीं पड़ती उसने जहाँ अपने मनपर काबू किया कि वह वनराज सिंहकी तरह गर्जना कर सकता है और जो दुश्मन बन बैठे हैं उनके हृदय उसके सिंह-नादसे फट जाते हैं।

सत्याग्रह एक दुधारी तलवार है। उसे जिस तरह काममें लाना चाहो उस तरह काममें ला सकते हो। चलानेवाला और जिसके ऊपर वह चलती है, दोनों सुखी होते हैं। वह रक्तपात नहीं करती फिर भी परिणाम उससे कहीं बड़ा प्रस्तुत कर सकती है। उसे जंग नहीं लग सकता और उसे कोई ले नहीं जा सकता। सत्याग्रही [दूसरे सत्याग्रही]की होड़ करे तो इसमें उसे थकान नहीं आती। सत्याग्रहीकी तलवारको म्यानकी जरूरत नहीं होती। उसे कोई छीन नहीं सकता। इतने पर भी यदि आप सत्याग्रहको निर्बलोंका हथियार मानें तो इसे केवल अन्धेर ही कहा जायेगा।

पाठक आपने कहा कि यह भारतका अपना विशिष्ट शस्त्र है। तो क्या भारतमें [कभी] शस्त्र-बलका उपयोग नहीं किया गया?

सम्पादक आप भारतका अर्थ मुट्ठी-भर राजाओंसे करते हैं। मेरे मनमें तो भारतका अर्थ वे करोड़ों किसान हैं जिनके सहारे राजा और हम सब जीते हैं।

राजा तो हथियार काममें लायेंगे ही। उनकी तो वह रीति ही ठहरी। उन्हें तो हुक्म चलाना है। किन्तु हुक्म माननेवालेको शस्त्र-बलकी आवश्यकता नहीं है। संसारका ज्यादातर भाग हुक्म माननेवालोंका है। उन्हें या तो शस्त्र-बल सीखना चाहिए या सत्याग्रहका बल। जहाँ वे शस्त्र-बल सीखते हैं वहाँ राजा और प्रजा दोनों पागल जैसे हो जाते हैं। जहाँ हुक्म माननेवालोंने सत्याग्रह सीखा है वहाँ राजाका अत्याचार उसकी तीन हाथकी तलवारसे आगे नहीं जा सका और हुक्म माननेवालोंने कभी अन्यायपूर्ण हुक्मकी परवाह नहीं की। किसान कभी किसीकी तलवारके वशमें नहीं हुए और न होंगे। उन्हें तलवार चलाना नहीं आता किन्तु वे किसीकी तलवारसे डरते भी नहीं हैं। वे मौतको हमेशा अपना तकिया बनाकर सोनेवाले महान लोग हैं। उन्होंने मौतका डर छोड़ दिया है, इसलिए सबका डर छोड़ दिया है। यह ठीक है कि मैं तसवीर कुछ बढ़ा-चढ़ाकर खींच रहा हूँ। किन्तु हमारे लिए, जो शस्त्रके बलके आगे दंग रह गये हैं यह चित्रण अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है।

बात यह है कि किसानोंने प्रजामण्डलोंने अपने और राज्यके कारोबारमें सत्याग्रहका प्रयोग किया है। जब राजा अत्याचार करता है तब प्रजा रूठ जाती है। यह सत्याग्रह ही है।

१ मूल पाठमें यहाँ [illegible] है। अंग्रेजी पाठमें यह भूल दुरुस्त कर दी गई है।

मुझे याद है कि एक रियासतमें रैयतको कोई हुक्म पसन्द नहीं आया। इसलिए रैयतने गाँव खाली करना शुरू कर दिया। राजा घबराया और उसने रैयतसे क्षमा माँगी और हुक्म वापस ले लिया। ऐसे बहुत-से दृष्टान्त मिल सकते हैं किन्तु ज्यादातर वे भारतकी ही उपज निकलेंगे। जहाँ ऐसी प्रजा है, वहाँ स्वराज्य है। इसके बिना स्वराज्य कुराज्य है।

पाठक : तब तो आप कहेंगे कि शरीरको मजबूत बनानेकी जरूरत ही नहीं है।

सम्पादक : यह आपने कैसे समझ लिया? शरीरको कस बिना सत्याग्रही होना कठिन है। जिन शरीरोंको पोस-पोसकर कमजोर बना दिया जाता है उनमें रहनेवाला मन भी कमजोर होता है और जहाँ मनोबल न हो वहाँ आत्मबल कैसे हो सकता है? हमें बाल-विवाह इत्यादि कुरीतियों और भोग-विलास प्रधान रहन-सहनकी बुराईको हटाकर शरीरको पुष्ट करना चाहिए। यदि मैं किसी मरियल आदमीसे तोपके सामने खड़े हो जानेको कहूँ तो लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे।

पाठक : आप जो कहते हैं उससे ऐसा लगता है कि सत्याग्रही होना कोई साधारण बात नहीं है। और यदि ऐसा है, तो आपको यह भी समझाना चाहिए कि *सत्याग्रही कैसे बना जा सकता है।*

सम्पादक : सत्याग्रही बनना आसान है। किन्तु वह जितना सरल है उतना कठिन भी है। चौदह वर्षका बच्चा सत्याग्रही बना है, यह मैंने स्वयं देखा है। रोगी व्यक्ति भी सत्याग्रही बने हैं यह भी मैंने देखा है। मैंने यह भी देखा है कि जो शरीरसे शक्तिशाली और दूसरी तरह सुखी थे वे सत्याग्रही नहीं बन सके।

मैंने अनुभवसे जाना है कि जो व्यक्ति देश-हितके लिए सत्याग्रही होना चाहते हैं उन्हें ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए, गरीबी अपनानी चाहिए। सत्यका पालन तो करना ही चाहिए और उसमें निर्भीकता [भी] होनी ही चाहिए।

ब्रह्मचर्य एक महान व्रत है और उसके बिना संकल्प दृढ़ नहीं होता। अब्रह्मचर्यसे व्यक्ति अवीर्यवान स्त्रैण और हीन हो जाता है। जिसका मन विषय-वासनामें भटकता हो उससे किसी कठिन प्रयत्नकी आशा नहीं की जा सकती। असंख्य उदाहरणोंसे यह बात सिद्ध की जा सकती है। तब प्रश्न उठता है कि गृहस्थ क्या करे। किन्तु इस प्रश्नको उपस्थित करनेकी कोई जरूरत नहीं है। गृहस्थ जो संग करता है वह विषय-भोग नहीं है ऐसा कोई नहीं कह सकता। केवल सन्तानोत्पत्ति करनेके लिए स्त्री-संगकी आज्ञा दी गई है। *सत्याग्रहीको सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा नहीं* करनी चाहिए। इस प्रकार वह संसारी होनेपर भी ब्रह्मचर्यका पालन कर सकता है। यह बात अधिक विस्तारसे कहने योग्य नहीं है। स्त्रीका क्या कहना है? यह सब कैसे हो सकेगा? ऐसे सवाल मनमें उत्पन्न होते हैं। फिर भी जिसे बड़े कामोंमें हाथ बँटाना है उसे ऐसे प्रश्नोंका निराकरण करना ही होगा।

जिस प्रकार ब्रह्मचर्य आवश्यक है उसी प्रकार गरीबी अपनाना भी जरूरी है। पैसेका लोभ और सत्याग्रहका पालन साथ-साथ नहीं चल सकते। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि जिसके पास पैसा है वह उसे फेंक दे। फिर भी पैसेके प्रति बेपरवाह

रहनेकी जरूरत है। सत्याग्रहका पालन करते हुए पैसा चला जाये तो चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

जो सत्यका पालन नहीं करता वह सत्यके बलको कैसे प्रकट कर सकेगा? इसलिए सत्यकी तो पूरी-पूरी जरूरत रहेगी। चाहे जितना नुकसान क्यों न हो सत्य छोड़ा नहीं जा सकता। सत्यके पास छिपाने योग्य कुछ नहीं है इसलिए सत्याग्रहीको गुप्त सेनाकी आवश्यकता हो ही नहीं सकती। इस सिलसिलेमें जान बचानेके लिए झूठ बोलना चाहिए या नहीं ऐसा प्रश्न मनमें नहीं उठना चाहिए। ऐसे निरर्थक सवाल तो वही उठाता है जो झूठका बचाव करना चाहता हो। जिसे सत्यका ही रास्ता लेना है उसके सामने ऐसा धर्म-संकट उपस्थित नहीं होता। यदि ऐसी विषम परिस्थितिमें आ पड़े तो भी सत्यवादी मनुष्य उसमें से निकल जाता है।

अभयके बिना सत्याग्रहकी गाड़ी एक कदम भी आगे नहीं चल सकती। अभय पूरी तरहसे और सब बातोंमें रहना चाहिए। धन-सम्पत्ति झूठी इज्जत सगे-सम्बन्धी राज-दरबार, शारीरिक आघात और मरण सभीके बारेमें अभय हो तभी सत्याग्रहका पालन सम्भव है।

ऐसा मानकर कि यह सब करना मुश्किल है इसे छोड़ नहीं देना चाहिए। जो सिरपर आ पड़े उसे सह लेनेकी शक्ति प्रकृतिने मनुष्यको दे रखी है। देश-सेवा न करनी हो तब भी ऐसे गुणोंका पालन करना उचित है।

इसके सिवा यह भी समझा जा सकता है कि जिसे शस्त्र-बल प्राप्त करना है उसे भी इन बातोंकी जरूरत पड़ेगी। रणवीर होना कुछ ऐसी बात नहीं है कि किसीको भी इच्छा हुई और रणवीर हो गया। योद्धाको ब्रह्मचर्यका पालन करना होगा भिखारी बनना होगा। जिसमें अभय न हो वे युद्धमें क्या लड़ेंगे? किसीको शायद ऐसा लगे कि योद्धाको सत्यका पालन करना उतना जरूरी नहीं है। किन्तु जहाँ अभय है, वहाँ सत्य तो अपने-आप रहेगा। जब कोई व्यक्ति सत्यको छोड़ता है तब वह किसी प्रकारके भयके कारण ही उसे छोड़ता है।

इसलिए इन चार गुणोंकी बात सुनकर डरनेकी जरूरत नहीं है। इसके सिवा तलवारबाजको कुछ निरर्थक प्रयत्न भी करने पड़ते हैं, जिनकी सत्याग्रहीको जरूरत नहीं पड़ती। तलवारबाजको जो अन्य प्रयत्न करने पड़ते हैं उसका कारण भय है। यदि वह पूरी तरह निर्भय हो जाये तो उसी क्षण वह हाथकी तलवार छोड़ देगा। फिर उसे उसके सहारेकी जरूरत ही नहीं रहती। जिसके मनमें किसीके प्रति शत्रु भाव नहीं है उसे तलवारकी जरूरत नहीं है। सिंहके सामने पहुँचनेवाले एक व्यक्तिके हाथकी लाठी अपने-आप उठ गई और वह समझ गया कि उसने अभयका पाठ केवल कंठस्थ ही किया था। उस दिनसे उसने लाठी छोड़ दी और निर्भय हो गया।

अध्याय १८ शिक्षण

पाठक आपने इतना सब कहा किन्तु उसमें शिक्षणकी आवश्यकता तो कहीं बताई ही नहीं। हम लोग शिक्षणकी कमियोंकी शिकायत हमेशा ही करते रहते हैं। हम देखते हैं अनिवार्य शिक्षण देनेके विषयमें सारे भारतमें आन्दोलन हो रहा है। महाराज गायकवाड़ने अनिवार्य शिक्षण शुरू किया है। सबकी दृष्टि उस ओर गई है। हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। क्या यह सारा प्रयत्न व्यर्थ समझा जाये?

सम्पादक यदि हम अपनी सभ्यताको सर्वोत्तम मानते हैं तो मुझे अफसोसके साथ कहना पड़ेगा कि यह प्रयत्न अधिकांशतः व्यर्थ है। महाराज साहब तथा हमारे अन्य धुरन्धर नेतागण सभीको शिक्षित करनेकी जो कोशिश कर रहे हैं उसमें उनका हेतु निर्मल है। इसलिए उन्हें धन्यवाद ही देना चाहिए। किन्तु उनके प्रयत्नका जो नतीजा हो सकता है, उसे हम नजर-अन्दाज नहीं कर सकते।

शिक्षणका क्या अर्थ है? यदि उसका अर्थ केवल अक्षर-ज्ञान ही हो तो तब वह एक साधनमात्र हुआ। उसका सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। हम किसी औजारसे शल्य-चिकित्सा करके बीमारको अच्छा कर सकते हैं और वही शस्त्र किसीकी जान लेनेके लिए भी काममें लाया जा सकता है। अक्षर-ज्ञान भी ऐसा ही है। बहुत-से व्यक्ति उसका दुरुपयोग करते हैं यह तो हम देखते ही हैं। सदुपयोग अपेक्षाकृत कम लोग करते हैं। यदि यह बात ठीक हो तो भी सिद्ध यह होता है कि अक्षर ज्ञानसे दुनियामें फायदेके बदले नुकसान हुआ है।

शिक्षणका साधारण अर्थ अक्षर-ज्ञान ही होता है। लोगोंको लिखना पढ़ना और हिसाब लगाना सिखाना — इसे ही मूल अथवा प्राथमिक शिक्षण कहा जाता है। किसान ईमानदारीसे खेती करके रोटी कमाता है। उसे साधारण दुनियावी ज्ञान है। उसे इन सब बातोंका पर्याप्त ज्ञान है कि माँ-बापके प्रति कैसा आचरण किया जाये अपनी स्त्री और बच्चोंकी तरफ कैसा बरताव किया जाये और जिस गाँवमें वह रहता है वहाँ वह कैसा व्यवहार रखे। वह नीतिके नियमोंको समझता है और उनका पालन करता है, किन्तु उसे अपने हस्ताक्षर करना नहीं आता। इस व्यक्तिको अक्षर ज्ञान देकर आप क्या करना चाहते हैं? उसके सुखमें आप क्या वृद्धि करेंगे? क्या आप उसके मनमें उसकी झोंपड़ी अथवा उसकी स्थितिके विषयमें असन्तोष पैदा करना चाहते हैं? ऐसा करना हो तो भी उसे अक्षर-ज्ञान देनेकी आवश्यकता नहीं है। पश्चिमके प्रभावमें आकर हमने यह बात पकड़ ली है कि लोगोंको शिक्षण दिया जाये। किन्तु हम इसमें आगे-पीछेकी बात नहीं सोचते।

अब उच्च शिक्षणको लीजिए। मैंने भूगोल-विद्या सीखी खगोल शास्त्र सीखा बीजगणित भी मुझे आ गया रेखागणितका भी ज्ञान प्राप्त किया भूगर्भ-विद्याको चाट गया किन्तु इससे हुआ क्या? मैंने उससे अपना क्या भला किया? अपने आसपासका क्या भला किया। यह ज्ञान मैंने किसलिए प्राप्त किया? उससे मुझे क्या फायदा हुआ? एक अंग्रेज विद्वान (हक्सले) ने शिक्षणके बारेमें इस तरह कहा है

सच्ची शिक्षा उस मनुष्यने पाई है जिसके शरीरको ऐसी तालीम दी गई है कि वह उसके वशमें रह सकता है — सौंपा हुआ काम सहर्ष और सरलताके साथ करता है। सच्ची शिक्षा उस व्यक्तिने पाई है जिसकी बुद्धि शुद्ध है, शान्त है और न्यायदर्शी है। सच्ची शिक्षा उसे मिली है जिसका मन प्राकृतिक नियमों [के ज्ञान] से ओतप्रोत है और जिसकी इन्द्रियाँ उसके वशमें हैं जिसकी अन्तर्वृत्ति शुद्ध है और जो नीच कामोंसे घृणा करता है और दूसरोंको अपने समान समझता है। ऐसा व्यक्ति वास्तविक रूपसे शिक्षित कहा जायेगा क्योंकि वह प्राकृतिक नियमोंके अनुसार चलता है। प्रकृति उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह प्रकृतिका अच्छा उपयोग करेगा।

यदि यह सच्चा शिक्षण हो तो मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि जो शास्त्र मैंने गिनाये उनका उपयोग मुझे अपने शरीर या इन्द्रियोंको वशमें करनेके लिए नहीं करना पड़ा। मतलब यह कि प्राथमिक शिक्षणको लो चाहे उच्च शिक्षणको उसका उपयोग मुख्य उद्देश्यमें नहीं होता। उससे हम मनुष्य नहीं बनते। उसके द्वारा हम अपना कर्तव्य नहीं पहचानते।

पाठक: यदि ऐसा ही है तो मुझे आपसे एक प्रश्न पूछना पड़ेगा। आप यह जो सब-कुछ कह रहे हैं वह किसका प्रताप है? यदि आपने अक्षर-ज्ञान और उच्च शिक्षण न लिया होता तो आप [मुझे] किस प्रकार समझा पाते?

सम्पादक: यह आपने खूब चोट की। किन्तु मेरा जवाब भी सीधा ही है। मैं यह नहीं मानता कि मैंने ऊँची या नीची शिक्षा न ली होती तो मैं निकम्मा रह जाता। अब बोलकर उपयोगी बननेकी इच्छा करता हूँ।[1] ऐसा करते हुए मैंने जो-कुछ पढ़ा है उसे काममें लाता हूँ और उसका उपयोग यदि वह उपयोग हो तो मैं अपने करोड़ों भाइयोंके लिए तो नहीं कर सकता किन्तु केवल आप-जैसे शिक्षित लोगोंके लिए करता हूँ। इससे भी मेरी बातको ही समर्थन मिलता है। आप और मैं दोनों गलत शिक्षणके फन्देमें फँस गये थे। मैं उससे अपनेको मुक्त हो गया मानता हूँ। अब वह अनुभव मैं आपसे कहता हूँ और कहते वक्त प्राप्त शिक्षाका उपयोग करके उसमें जो सड़ाँध है उससे आपका परिचय कराता हूँ।

इसके सिवा आपने जो चोट मुझपर की उसमें आप चूक गये क्योंकि मैंने अक्षर-ज्ञानको हर परिस्थितिमें निन्दनीय नहीं माना है। मैंने इतना ही कहा है कि हमें उस ज्ञानकी मूर्ति-पूजा नहीं करनी चाहिए। वह कुछ हमारी कामधेनु नहीं है। वह अपनी जगहपर शोभा दे सकता है और वह अपनी जगह तब प्राप्त करता है जब हमने अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लिया हो और नीतिकी नींव दृढ़ कर ली हो तब यदि हमें अक्षर-ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो उसे प्राप्त करके उसका अच्छा उपयोग भी हम कर सकते हैं। वह शिक्षा आभूषणके रूपमें शोभा दे सकती है। किन्तु यदि उसका उपयोग आभूषणके रूपमें ही हो तो उसे अनिवार्य बनानेकी आवश्यकता

१. अंग्रेजी पाठके अनुसार: "अब बोझरूप व्यक्तियोंमें सिद्ध हो गया हूँ ऐसा अभिमान नहीं करता; उपयोगी बननेकी इच्छा अवश्य करता हूँ।"

नहीं है। हमारी पुरानी पाठशालाएँ काफी हैं। वहाँ नीतिकी शिक्षाको प्रथम स्थान दिया जाता है। वह सच्ची प्राथमिक शिक्षा है। उसपर जो इमारत खड़ी की जायेगी वही टिकी रह सकेगी।

पाठक तब क्या मैं यह ठीक समझता हूँ कि आप स्वराज्यके लिए अंग्रेजी शिक्षाका कोई उपयोग नहीं मानते?

सम्पादक मेरा जवाब हाँ और नहीं — दोनों है। करोड़ों लोगोंको अंग्रेजी शिक्षण देना उन्हें गुलामीमें डालने जैसा है। मैकॉलेने जिस शिक्षणकी नींव डाली वह सचमुच गुलामीकी नींव थी। उसने इसी इरादेसे वह योजना बनाई, यह मैं नहीं कहना चाहता। किन्तु उसके कार्यका परिणाम यही हुआ है। हम स्वराज्यकी बात भी पराई भाषामें करते हैं यह कैसी बड़ी दरिद्रता है।

[फिर] यह भी जानने लायक है कि जिस पद्धतिको अंग्रेजोंने उतार फेंका है वही हमारा शृंगार बनी हुई है। उन्हींके विद्वान यह कहते हैं कि यह ठीक नहीं वह ठीक नहीं। [वहाँ] शिक्षाकी पद्धतियाँ बदलती रहती हैं। जिसे उन्होंने भुला दिया है उसे हम मूर्खतावश चिपटाये रहते हैं। वे अपनी-अपनी भाषाकी उन्नति करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। वेल्स इंग्लैंडका एक छोटा-सा परगना है। उसकी भाषा धूलके समान नगण्य है। अब उसका जीर्णोद्धार किया जा रहा है।

वेल्सके बच्चे वेल्श में ही बोलें ऐसी कोशिश की जा रही है। इंग्लैंडके खजानची लॉयड जॉर्ज इसमें बहुत बड़ा हाथ बँटा रहे हैं। तब हमारी दशा क्या है? हम एक-दूसरेको जो पत्र लिखते हैं सो गलत-सलत अंग्रेजीमें। गलत-सलत अंग्रेजीसे साधारण एम० ए० पास व्यक्ति भी मुक्त नहीं है। हमारे अच्छे-से-अच्छे विचार प्रकट करनेका साधन है अंग्रेजी। हमारी कांग्रेसका कारोबार भी अंग्रेजीमें चलता है। हमारे अच्छे अखबार अंग्रेजीमें हैं। यदि लम्बी अवधि तक ऐसा ही चलता रहा तो आनेवाली पीढ़ी हमारा तिरस्कार करेगी और हमें उसका शाप लगेगा ऐसी मेरी मान्यता है।

आपको समझना चाहिए कि अंग्रेजी शिक्षण स्वीकार करके हमने जनताको गुलाम बनाया है। अंग्रेजी शिक्षणसे दम्भ द्वेष अत्याचार आदि बढ़े हैं। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगोंने जनताको ठगने और परेशान करनेमें कोई कसर नहीं रखी। यदि हम [अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोग] अब उसके लिए कुछ करते भी हैं तो उसका हमपर जो ऋण है उसीका एक अंश अदा करते हैं।

क्या यह कम अत्याचारकी बात है कि मुझे यदि अपने देशमें न्याय प्राप्त करना हो तो मुझे अंग्रेजी भाषाका प्रयोग करना पड़े? बैरिस्टर हो जानेपर मैं अपनी भाषामें बोल नहीं सकता। दूसरा आदमी मेरी मातृभाषाका अनुवाद करके मुझे समझाये क्या यह छोटा-मोटा दम्भ है? यह गुलामीका चिह्न नहीं तो और क्या है? इसके लिए मैं किसे दोष दूँ? अंग्रेजोंको अथवा अपनेको? भारतको गुलाम बनानेवाले तो हम अंग्रेजी जाननेवाले लोग ही हैं। जनताकी हाय अंग्रेजोंको नहीं हमको लगेगी।

किन्तु मैंने आपसे कहा कि मेरा जवाब हाँ और नहीं दोनों में है। हाँ कैसे यह मैंने आपको समझाया।

अब नहीं कैसे सो बताता हूँ। हम ऐसे रोगमें फँस गये हैं कि अंग्रेजी शिक्षण लिये बिना काम चलनेका समय नहीं रहा। जिसने वह शिक्षा पाई है वह उसका अच्छा उपयोग करे — जहाँ उसकी जरूरत हो वहाँ करे। अंग्रेजोंके साथ और ऐसे भारतीयोंके साथ जिनकी भाषा हम न समझ सकते हों और यह समझनेके लिए कि अंग्रेज अपनी सभ्यतासे खुद कितना परेशान हो गये हैं अंग्रेजीका उपयोग किया जाये। जो अंग्रेजी पढ़े हुए हैं उनकी सन्तानको पहले नीतिकी शिक्षा दी जानी चाहिए। उन्हें उनकी मातृभाषा सिखानी चाहिए और भारतकी एक दूसरी भाषा भी सिखानी चाहिए। बच्चे जब काफी बड़े हो जायें तब भले ही उन्हें अंग्रेजी पढ़ाई जाये। और वह भी *उसको मिटानेके इरादेसे न कि उसके जरिए पैसा कमानेके विचारसे।* यह करते हुए भी आपको यह सोचना पड़ेगा कि अंग्रेजीमें क्या सीखें और क्या न सीखें। कौन-सा शास्त्र पढ़ें इसका भी विचार करना पड़ेगा। थोड़ा ही सोचनेपर स्पष्ट हो जायेगा कि यदि अंग्रेजी डिग्री इत्यादि लेना हम बन्द कर दें तो अंग्रेज अचकचाकर चौंक उठेंगे।

पाठक: तब कैसी शिक्षा दी जाये?

सम्पादक: उसका उत्तर कुछ हद तक ऊपर आ चुका है। फिर भी हम और विचार करें। मुझे तो लगता है कि हमें अपनी सभी भाषाओंको चमकाना चाहिए। हमें अपनी भाषाओंके द्वारा ही शिक्षा लेनी चाहिए इस बातका क्या अर्थ है — इसे अधिक समझानेका यह स्थान नहीं है। जो अंग्रेजी पुस्तकें कामकी हैं हमें उनका अनुवाद करना होगा। बहुत-से शास्त्र सीखनेका दम्भ और भ्रम हमें छोड़ना होगा। सबसे पहले धर्म अथवा नीतिकी ही शिक्षा दी जानी चाहिए। प्रत्येक पढ़े-लिखे भारतीयको अपनी भाषाका हिन्दूको संस्कृतका मुसलमानको अरबीका पारसीको फारसीका और हिन्दीका ज्ञान सबको होना चाहिए। कुछ हिन्दुओंको अरबी और कुछ मुसलमानों और पारसियोंको संस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तर और पश्चिम भारतके लोगोंको[1] तमिल सीखनी चाहिए। सारे भारतके लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिन्दी ही होगी। उसे उर्दू या देवनागरी लिपिमें लिखनेकी छूट रहनी चाहिए। हिन्दू और मुसलमानोंमें सद्भाव रहे इसलिए बहुतसे भारतीयोंको ये दोनों लिपियाँ जान लेनी चाहिए। ऐसा होनेपर हम आपसके व्यवहारमें अंग्रेजीको निकाल बाहर कर सकेंगे।

और यह सब किसके लिए है? हम जो गुलाम बन गये हैं उनके लिए। हमारी गुलामीके कारण देशकी जनता गुलाम हो गई है। अगर हम इससे मुक्त हो गये तो जनता भी मुक्त हो जायेगी।

पाठक: आपने जो धर्मकी शिक्षाकी बात कही वह कठिन जान पड़ती है।

सम्पादक: फिर भी उसके बिना छुटकारा नहीं है। भारत नास्तिक कभी नहीं बनेगा। भारतकी भूमि नास्तिकताकी फसलके अनुकूल नहीं है। काम कठिन है। धर्मकी शिक्षाकी बात सोचते ही सिर चकराने लगता है। धर्माचार्य दम्भी और स्वार्थी दिखाई पड़ते हैं। हमें उनसे विनती करनी पड़ेगी। मुल्ला, दस्तूर और ब्राह्मण — इनके

१. अंग्रेजी पाठके अनुसार बहुतेरे लोगोंको ।

हाथमें इसकी [धर्मकी शिक्षाकी] कुंजी है। लेकिन यदि इनमें सद्बुद्धि उत्पन्न न हो तो हमारे बीच अंग्रेजी शिक्षाके कारण जो उत्साह उत्पन्न हुआ है हम उसका उपयोग करके लोगोंको नीतिकी शिक्षा दे सकते हैं। यह कोई बड़ी कठिन बात नहीं है। भारतके महासागरके किनारोंपर ही मैल जमा हो गया है। उस मैलसे जो गन्दे हो गये हैं, उन्हें साफ होना है। हम लोग भी ऐसे ही हैं और हम लोग खुद ही बहुत कुछ साफ हो सकते हैं। मेरी यह टीका करोड़ों जनताके बारेमें नहीं है। भारतको सही रास्तेपर लानेके लिए हमें स्वयं अपनेको सही रास्तेपर लाना होगा। बाकी करोड़ों लोग तो सही रास्तेपर ही हैं। उनमें सुधार-बिगाड़ परिवर्तन-परिवर्धन समयके अनुसार होता रहेगा। पश्चिमकी सम्यताको उखाड़ फेंकनेकी कोशिश हमें करनी है। शेष तो अपने आप हो जायेगा।

अध्याय १९   यन्त्र

पाठक आप पश्चिमी सभ्यताको निकाल बाहर करनेकी बात करते हैं तब तो आप ऐसा भी कहेंगे कि यन्त्र भी हमें बिलकुल नहीं चाहिए।

सम्पादक यह सवाल करके आपने मुझे जो आघात लगा था उसे ताजा कर दिया है। श्री रमेशचन्द्र दत्तकी पुस्तक भारतका आर्थिक इतिहास जब मैंने पढ़ी थी तब भी मेरी ऐसी हालत हो गई थी। उसके बारेमें फिरसे सोचता हूँ तो मेरा दिल भर आता है। यन्त्रोंकी लपेटमें आनेके कारण ही भारत बरबाद हुआ। मैन्चेस्टरने हमें जो नुकसान पहुँचाया है उसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। भारतसे कारीगरी लगभग खत्म हो गई, यह मैन्चेस्टरका ही प्रताप है।

लेकिन यह मेरी भूल है। दोष मैन्चेस्टरको कैसे दिया जा सकता है? हमने उसके कपड़े पहने तभी उसने उन्हें बुना। जब मैंने बंगालकी बहादुरीका[1] वर्णन पढ़ा तब मुझे खुशी हुई। बंगालमें कपड़ेकी मिलें नहीं हैं इसलिए लोगोंने अपना असली धन्धा[2] फिर हाथमें ले लिया। बंगाल बम्बईकी मिलोंको बढ़ावा देता है सो ठीक ही है लेकिन यदि उसने मशीनमात्रका बहिष्कार किया होता तो वह और भी ठीक होता।

यन्त्रोंसे यूरोप उजड़ रहा है और वहाँकी हवा भारतमें आ गई है। यन्त्र आधुनिक सभ्यताकी मुख्य निशानी है और वह महापाप है ऐसा मैं तो बहुत साफ देख सकता हूँ।

बम्बईकी मिलोंमें जो मजदूर काम करते हैं वे गुलाम बन गये हैं। जो औरतें उनमें काम करती हैं उनकी दशा देखकर किसीको भी कँपकँपी हो जायेगी। जब मिलोंकी भरमार नहीं हुई थी तब वे औरतें कुछ भूखों नहीं मरती थीं। यदि यन्त्रोंकी यह हवा ज्यादा चली तो भारतकी बड़ी शोचनीय स्थिति हो जायेगी। मेरी

१ बंग-भंगसे सम्बन्धित स्वदेशी आन्दोलनसे लोगोंमें पुनरुज्जीवनका प्रारम्भ हुआ था।
२. हाथ-करघे।

बात आपको कठिन जान पड़ेगी किन्तु यह कहना मेरा कर्तव्य है कि भारतमें मिलें कायम करनेकी बजाय मैन्चेस्टरको अभी और रुपया भेजते रहकर उसका सड़ा हुआ कपड़ा इस्तेमाल करते रहनेमें हमारा भला है क्योंकि उसका कपड़ा इस्तेमाल करनेमें केवल हमारा पैसा जायेगा। यदि हम भारतमें मैन्चेस्टर बना डालें तो पैसा भारतमें रहेगा किन्तु वह पैसा हमारा खून चूस लेगा। क्योंकि वह हमारी नीति-निष्ठा और हमारे आचारको समाप्त कर देगा। जो मिलोंमें काम करते हैं उनके आचारका क्या हाल है यह उन्हींसे पूछा जाये। उनमें से जिन लोगोंने द्रव्य संचय किया है उनमें नैतिकता अन्य धनवानोंसे अधिक हो यह सम्भव नहीं है। यह मानना तो अज्ञान ही होगा कि अमरीकी राकफेलरसे भारतीय राकफ़ेलर कुछ कम है। गरीब भारत गुलामीसे छूट जायेगा लेकिन अनीतिसे धनवान बना हुआ भारत गुलामीसे छुटकारा पायेगा ही नहीं।

मुझे तो लगता है कि हमें यह कबूल करना पड़ेगा कि धनवानोंने ही अंग्रेजी राज्यको यहाँ बना रखा है। उनका स्वार्थ इसीमें है। पैसा आदमीको लाचार बना देता है। संसारमें ऐसी दूसरी चीज विषय-वासना है। ये दोनों चीजें विषमय हैं। उनका डंक साँपके डंकसे भी भयानक है। साँप काटता है तो देह लेकर छोड़ देता है पैसा अथवा विषय काटता है तब देह मन और आत्मा सब-कुछ लेकर भी नहीं छोड़ता। इसलिए हमारे देशमें मिलें कायम हों तो इसमें खुश होनेकी कोई बात नहीं है।

पाठक: तो क्या मिलोंको बन्द कर दिया जाये?

सम्पादक: यह बात मुश्किल है। जो वस्तु स्थापित हो गई है उसे निकालना कठिन है। इसलिए कार्यका अनारम्भ ही पहली बुद्धिमानी कही गई है। मिल-मालिकोंकी ओर हम तिरस्कारकी दृष्टिसे नहीं देख सकते। हमें उनपर दया करनी चाहिए। वे एकाएक मिल छोड़ दें यह सम्भव नहीं है लेकिन हम उनसे इस साहसको और आगे न बढ़ानेकी प्रार्थना कर सकते हैं। यदि वे भलाईकी इच्छा करें, तो अपना काम स्वयं धीरे-धीरे कम करें। वे खुद प्राचीन प्रौढ़ और पवित्र चरखेको घरमें जगह दे सकते हैं और लोगोंका बुना हुआ कपड़ा लेकर बेच सकते हैं।

वे ऐसा न करें, तो भी लोग स्वयं मशीनोंसे बनी हुई चीजोंको काममें लाना बन्द कर सकते हैं।

पाठक: यह तो कपड़ोंके बारेमें आपने कहा। किन्तु यन्त्रकी तो असंख्य चीजें हैं। उन्हें या तो विदेशसे लाना होगा या हमें उस प्रकारके यन्त्र दाखिल करने पड़ेंगे।

सम्पादक: बेशक। हमारे देवता [मूर्तियाँ] भी जर्मनीके यन्त्रोंमें बनकर हमारे पास आते हैं, तो फिर दियासलाई या आलपीनसे लेकर झाड़-फानूस आदिकी तो बात ही क्या की जाये? मेरा एक ही उत्तर है। जब ये सब चीजें यन्त्रसे नहीं बनती थीं तब भारत क्या करता था? आज भी वह वैसा ही कर सकता है। जबतक हम हाथसे आलपीन नहीं बनाते तबतक बिना आलपीनके चलायेंगे। झाड़-फानूसको आग लगा देंगे। माटीके दियेमें तेल डालकर, खेतमें पैदा हुई रुईकी बत्ती

बटकर उसका [illegible] करेंगे। उससे आँखें बचेंगी पैसा बचेगा हम स्वदेशी बने रहेंगे और स्वराज्यकी धूनी प्रज्वलित करेंगे।

ये सारे काम सभी लोग एक-साथ ही करेंगे या एक-साथ ही कुछ लोग यन्त्रसे बनी हुई सारी चीजें छोड़ देंगे यह सम्भव नहीं है। किन्तु यदि यह विचार ठीक हो तो हम हमेशा शोध करते रहेंगे और थोड़ी-थोड़ी चीजें छोड़ते जायेंगे। यदि हम ऐसा करें, तो दूसरे लोग भी ऐसा करेंगे। पहले इस विचारको दृढ़ करना जरूरी है। उसके बाद उसके अनुसार काम होगा। पहले एक ही व्यक्ति करेगा फिर दस फिर सौ। इस प्रकार नारियलकी कहानीकी तरह यह संख्या बढ़ती जायेगी। बड़े लोग जो करते हैं वही छोटे भी करते हैं और करेंगे। यदि समझें तो बात बहुत छोटी और सरल है। आपको और मुझे दूसरोंके करनेकी राह नहीं देखनी है। हमें तो जैसे ही समझमें आ जाये वैसे ही शुरू कर देना चाहिए। जो नहीं करेगा उसका नुकसान होगा। जो समझकर भी नहीं करेंगे वे तो निरे दम्भी कहलायेंगे।

पाठक ट्रामगाड़ी और बिजलीकी बत्तीका क्या होगा?

सम्पादक यह सवाल आपने बड़ी देरसे किया। इस सवालमें अब कोई जान नहीं बची। यदि रेलने हमारा नाश किया है तो क्या ट्राम नहीं करती? यन्त्र तो एक ऐसा बिल है जिसमें एक नहीं सैकड़ों साँप हैं। एकके बाद दूसरा लगा ही रहता है। जहाँ यन्त्र होंगे वहाँ बड़े शहर होंगे। जहाँ बड़े शहर होंगे वहाँ ट्रामगाड़ी और रेलगाड़ी होगी और वहीं बिजलीकी बत्तीकी जरूरत होगी। आप जानते होंगे कि विलायतमें भी गाँवोंमें बिजली या ट्राम नहीं है। प्रामाणिक वैद्य और डॉक्टर आपको बतायेंगे कि जहाँ रेलगाड़ी ट्रामगाड़ी आदि साधन बढ़े हैं, वहाँ लोगोंकी तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है। मुझे याद है कि एक शहरमें जब पैसेकी तंगी हो गई थी तब ट्रामों वकीलों और डॉक्टरोंकी आमदनी घट गई थी तथा लोग तन्दुरुस्त हो गये थे।

मुझे तो यन्त्रका एक भी गुण याद नहीं आता जब कि उसके दुर्गुणोंपर तो पूरी किताब लिख सकता हूँ।

पाठक: यह सारा लिखा हुआ यन्त्रकी मददसे छपेगा उसकी मददसे बँटेगा। इसे यन्त्रका गुण कहें या अवगुण?

सम्पादक: यह जहरसे जहरका नाश होनेका उदाहरण है। इसमें यन्त्रका कोई गुण नहीं है। यन्त्र मरते-मरते यही कहता है कि मुझसे बचो होशियार रहो मुझसे आपको कोई फायदा नहीं होगा। यदि ऐसा कहा जाये कि यन्त्रने कम-से-कम इतना ठीक किया तो यह बात उन्हींपर लागू होती है जो यन्त्रके जालमें फँसे हैं।

किन्तु मूल बात न भूलियेगा। यन्त्र एक खराब वस्तु है इसे मनमें दृढ़ कर लेना चाहिए। इसके बाद हम धीरे-धीरे उसका नाश करेंगे। प्रकृतिने ऐसा कोई सरल रास्ता नहीं बनाया कि हम जिस चीजकी इच्छा करें, वह तुरन्त ही मिल जाये। यन्त्रके ऊपर यदि मीठी नजरके बदले हमारी जहरीली नजर पड़ेगी तो वह आखिरकार चला जायेगा।

अध्याय २० छुटकारा

पाठक : आपके विचारोंसे मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आप एक तीसरा पक्ष स्थापित करना चाहते हैं। आप उग्रपन्थी नहीं हैं, उसी प्रकार उदारपन्थी (मॉडरेट) भी नहीं हैं।

सम्पादक : यहाँ आप भूलते हैं। मेरे मनमें तीसरे पक्षकी बात है ही नहीं। सबके विचार समान नहीं होते। सभी उदारपन्थियोंके एक ही-से मत हों ऐसा नहीं मानना चाहिए। जिसे सेवा ही करनी है उसे पक्षोंसे क्या मतलब? मैं तो नरमपन्थकी सेवा करूँगा और उसी तरह उग्रपन्थीकी भी। जहाँ उनके विचारसे मेरा मत अलग पड़ेगा वहाँ मैं उन्हें विनयपूर्वक बताऊँगा और अपना काम करता जाऊँगा।

पाठक : तब आप यदि दोनोंसे कहना चाहें तो क्या कहेंगे?

सम्पादक : उग्रपन्थीसे मैं कहूँगा कि आपका उद्देश्य भारतके लिए स्वराज्य प्राप्त करना है। स्वराज्य आपके प्रयत्नोंसे मिलनेवाला नहीं है। स्वराज्य तो सबको अपने लिए लेना चाहिए और अपने ऊपर करना चाहिए। जिसे दूसरे लोग दिला दें वह स्वराज्य नहीं बल्कि परराज्य है। इसलिए अंग्रेजोंको निकाल कर स्वराज्य ले लिया ऐसा यदि आप मानें तो वह ठीक नहीं होगा। वास्तविक स्वराज्य जिसे आप चाहते हैं सो तो वही होना चाहिए जो मैं बता चुका हूँ। उसे आप गोला-बारूदसे कभी प्राप्त नहीं करेंगे। गोला-बारूद भारतको सध सके ऐसी वस्तु नहीं है। इसलिए सत्याग्रहपर ही भरोसा रखिये। मनमें ऐसा भ्रम भी न लायें कि हमें स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए गोला-बारूदकी जरूरत है।

नरमपन्थीसे मैं कहूँगा कि हम केवल आजिजी करते रहें यह तो हमारी हीनता है। ऐसा करके हम अपनी हीनता स्वीकार करते हैं। अंग्रेजोंसे सम्बन्ध रखना अनिवार्य है ऐसा कहना हमारा ईश्वरपर अविश्वास करनेके बराबर है। हमें ईश्वरके अतिरिक्त और किसीकी आवश्यकता है ऐसा तो कहना ही नहीं चाहिए। और, साधारण विचार करें, तो भी ऐसा कहना कि अंग्रेजोंके बिना फिलहाल तो काम नहीं चलेगा उन्हें अभिमानी बनाने-जैसा होगा।

ऐसा नहीं मानना चाहिए कि अंग्रेज बोरिया-बिस्तर बाँधकर चले जायेंगे तो भारत अनाथ हो जायेगा। ऐसा होनेपर सम्भव है कि जो लोग उनके दबावसे चुप बैठे हैं वे लड़ने लगें। फोड़ेको दबा रखनेसे कोई फायदा नहीं। उसका तो फूट बहना ही ठीक है। इसलिए अगर आपसमें लड़ते रहना ही हमारे भाग्यमें हो तो हम लड़-मरेंगे। उसमें कमजोरको बचानेके बहानेसे किसी दूसरेको बीचमें पड़नेकी आवश्यकता नहीं है। इसीसे तो हमारा नाश हुआ है। कमजोरको इस तरह बचाना उसे और भी कमजोर बनानेके समान है। नरमपन्थियोंको इस बातपर अच्छी तरह सोचना चाहिए। इसके बिना स्वराज्य मुमकिन नहीं है। मैं उन्हें एक अंग्रेज पादरीके कहे हुए शब्दोंकी याद दिलाता हूँ कि "स्वराज्यका उपभोग करते हुए यदि अव्यवस्था हो तो वह सहन करने योग्य है किन्तु परराज्यमें प्राप्त व्यवस्था भी अखरता है।" अलबत्ता उस पादरीके स्वराज्य और हिन्द स्वराज्यका अर्थ जुदा-जुदा है। हम गोरे या भारतीय किसीका भी जुल्म अथवा दबाव नहीं चाहते। सबको तैरना सीखना और सिखाना है।

यदि ऐसा हो जाये तो उग्रपंथी और उदारपन्थी दोनों मिल जायेंगे — मिल सकेंगे — मिलना चाहिए। एक-दूसरेसे डरने अथवा अविश्वास करनेकी आवश्यकता नहीं है।

पाठक: यह तो आप दोनों पक्षोंसे कहेंगे। अंग्रेजोंसे क्या कहेंगे?

सम्पादक: उनसे मैं नम्रतापूर्वक कहूँगा कि आप हमारे राजा जरूर हैं। आप अपनी तलवारसे [हमारे राजा] हैं या हमारी इच्छासे इस बातकी चर्चा करनेकी मुझे जरूरत नहीं है। आप हमारे देशमें रहें इसमें भी मुझे कोई बुराई नहीं है। किन्तु राजा होते हुए भी आपको हमारा सेवक होकर रहना पड़ेगा। हमें आपका कहना करनेके बजाय आपको हमारा कहना करना पड़ेगा। आजतक आप इस देशसे जो धन ले गये वह आपको पच गया। किन्तु अब आगे आपको ऐसा नहीं करने दिया जा सकता। अगर आप भारतमें सिपाहीका काम करके रहना चाहें तो रह सकते हैं। आपको हमारे साथ व्यापारका लालच छोड़ना पड़ेगा। आप जिस सभ्यताकी हिमायत करते हैं उसे हम सभ्यता नहीं मानते। हम अपनी सभ्यताको आपकी सभ्यतासे बहुत ऊँचा मानते हैं। यदि आपको भी यह दिखाई पड़ जाये तो इसमें आपका लाभ है। किन्तु यदि आपको वैसा दिखाई न दे तो भी आपको अपनी ही कहावतके मुताबिक[1] हमारे देशमें भारतीय होकर रहना चाहिए। आपके हाथों कोई ऐसा काम नहीं होना चाहिए जिससे हमारे धर्ममें बाधा हो। राज्यकर्त्ता होनेके नाते आपका कर्तव्य है कि हिन्दुओंके सम्मानकी खातिर आप गायका मांस खाना छोड़ दें और मुसलमानोंके सम्मानके विचारसे बुरे जानवर [सुअर] का आहार छोड़ दें। हम दबे हुए थे इसलिए बोल नहीं सके। किन्तु आप ऐसा न समझें कि आपके इस कामसे हमारी भावनाको चोट नहीं पहुँची। हम स्वार्थ अथवा अन्य किसी भयके कारण आपसे कह नहीं सके किन्तु अब यह कहना हमारा कर्तव्य है। हम मानते हैं कि आपकी स्थापित की हुई पाठशालाएँ और अदालतें किसी कामकी नहीं। उनके बदले हमें अपनी प्राचीन और सच्ची अदालतें और पाठशालाएँ चाहिए।

भारतकी भाषा अंग्रेजी नहीं है, हिन्दी है। वह आपको सीखनी पड़ेगी। और हम तो आपके साथ अपनी भाषामें ही व्यवहार करेंगे।

आप रेलवे और सेनापर अपार खर्च करते हैं। वह हमसे देखा नहीं जाता। उसकी हमें जरूरत नहीं मालूम पड़ती। रूसका डर आपको होगा, हमें नहीं है। जब वह आयेगा तब हम देख लेंगे। यदि आप रहें तो हम दोनों मिलकर देख लेंगे। हमें विलायती अथवा यूरोपीय कपड़ा नहीं चाहिए। इस देशमें पैदा होनेवाली चीजोंसे ही हम अपना काम चला लेंगे। आप एक आँख मैंचेस्टरपर और दूसरी हमपर रखें यह नहीं चलेगा। आपका और हमारा हित एक ही है इस तरह आप बरताव करेंगे तभी हमारा-आपका साथ निभ सकता है।

हम आपसे ये बातें अशिष्टतापूर्वक नहीं कह रहे हैं। आपके पास शस्त्र-बल है जबरदस्त जहाजी बेड़ा है। उसके मुकाबले हम उसी प्रकारकी शक्ति लगाकर नहीं

[1] व्हेन इन रोम, डू ऐज रोमन्स डू।

कर सकते। फिर भी यदि आपको ऊपर कही हुई बातें कबूल न हों तो हमारी आपके साथ नहीं पटेगी। आपकी मर्जी हो और आपसे बने तो आप हमें काट डालिए, मनमें आये तो तोपसे उड़ा दीजिए। किन्तु हमें जो पसन्द नहीं है वह यदि आप करेंगे तो हम उसमें आपकी मदद नहीं करेंगे और हमारी मददके बिना आप एक कदम भी चल सकें ऐसा नहीं है।

सम्भव है कि अपनी सत्ताके मदमें आप इसकी हँसी उड़ायें। हम अभी तो शायद यह न दिखा सकें कि आपका हँसना गलत है किन्तु यदि हममें दम होगा तो आप देखेंगे कि आपका मद बेकार है और आपका हँसना विपरीत बुद्धि का लक्षण है।

हम मानते हैं कि आप स्वभावतः धार्मिक जातिके लोग हैं किन्तु हम तो धर्म भूमिमें ही रहते हैं। आपका और हमारा साथ कैसे हुआ इसका विचार करना नाहक है किन्तु अपने इस सम्बन्धका हम दोनों सदुपयोग कर सकते हैं।

आप भारतमें आनेवाले अंग्रेज अंग्रेज-जनताके सच्चे नमूने नहीं हैं और हम आधे अंग्रेज बने हुए भारतीय भी सच्ची भारतीय जनताके नमूने नहीं कहे जा सकते।[1] यदि अंग्रेजी जनता सब समझ जाये तो आपके कामोंका विरोध करे। भारतीय प्रजाने तो आपके साथ बहुत ही कम सम्बन्ध रखा है। यदि आप अपनी सभ्यताको जो वास्तवमें असभ्यता है, छोड़कर अपने धर्मकी छानबीन करें तो आप देखेंगे कि हमारी माँग ठीक है। आप इसी प्रकार भारतमें रह सकते हैं। यदि आप इस तरह रहें तो हमें आपसे जो-कुछ सीखना है वह हम सीखेंगे और हमारे पाससे आपको जो बहुत कुछ सीखना है सो आप सीखेंगे। इस प्रकार हम एक-दूसरेका लाभ उठायेंगे और दुनियाको लाभ पहुँचायेंगे। किन्तु यह तो तभी सम्भव है जब हमारे सम्बन्धोंकी जड़ धर्मकी जमीनमें जमे।

पाठक: जनतासे आप क्या कहेंगे?

सम्पादक: जनता अर्थात् कौन?

पाठक: अभी तो आप जिस अर्थमें इसे बरत रहे हैं वही जनता अर्थात् जो लोग यूरोपीय सभ्यतामें रंगे हुए हैं, जो स्वराज्यकी पुकार उठा रहे हैं वे।

सम्पादक: मैं इस जनतासे कहूँगा कि जिस भारतीयपर [स्वराज्यका] सच्चा नशा चढ़ा होगा वही अंग्रेजोंसे ऊपरकी बात कह सकेगा और उनके रोबमें नहीं आयेगा।

सच्चा नशा तो उसपर ही चढ़ता है जो ज्ञानपूर्वक ऐसा मानता है कि भारतीय सभ्यता सर्वोपरि है और यूरोपीय सभ्यता तो दिनका तमाशा है। ऐसी तो कितनी ही सभ्यताएँ आकर चली गईं अनेक आयेंगी और चली जायेंगी।

सच्चा नशा तो उसीको चढ़ सकता है कि जो आत्मबलका अनुभव करके शरीर-शक्तिसे बिना दबे निर्भय रहेगा और शस्त्र-बलका उपयोग स्वप्नमें भी करनेकी बात नहीं सोचेगा।

१ मूल पाठमें इस वाक्यकी रचना कुछ भिन्न है और अधूरी सी है।

सच्चा मदा तो उसी भारतीयको कहा जायेगा जो आजकी दयनीय दशासे बहुत ही ऊब उठा हो और जिसने पहलेसे ही जहरका प्याला पी लिया हो।

यदि ऐसा एक भी भारतीय हो तो वह अंग्रेजोंसे ऊपरकी बात कहेगा और अंग्रेजोंको उसकी बात सुननी पड़ेगी।

ऊपरकी माँग कोई माँग नहीं है बल्कि उससे भारतीयोंकी मनोदशा सूचित होती है। माँगनेसे कुछ नहीं मिलता। लेनेसे ही कुछ लिया जा सकेगा। लेनेके लिए शक्ति चाहिए। वह बल तो उसीमें होगा

१ जो अंग्रेजी भाषाका उपयोग अनिवार्य होनेपर ही करे।

२ जो यदि वकील हो तो अपनी वकालत छोड़ दे और अपने घरमें चरखा चलाकर कपड़ा बुने।

३ जो अपनी वकालतका उपयोग केवल लोगोंको समझाने और अंग्रेजोंकी आँखें खोलनेमें करे।

४ जो वकील होकर भी वादी-प्रतिवादीके झगड़ोंमें न पड़े बल्कि अदालत छोड़ दे और अपने अनुभवसे दूसरोंको अदालत छोड़नेके लिए समझाए।

५ जो जैसे वकील वकालत छोड़ता है उसी प्रकार न्यायाधीश हो तो अपना पद भी छोड़ दे।

६ जो यदि डॉक्टर हो तो अपना धन्धा छोड़े और वह समझे कि लोगोंके चामकी चीरफाड़ करनेकी अपेक्षा उनकी आत्माको छूने और उसमें सुधार करके उन्हें स्वस्थ बनाना अधिक अच्छा है।

७ जो चाहे जिस धर्मका हो डॉक्टर होकर यह समझे कि अंग्रेजी वैद्यक शालाओंमें जीवोंके प्रति जो निर्दयता बरती जाती है वैसी निर्दयतासे शरीर नीरोग बनानेकी अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि वह नीरोगी न हो रोगी ही बना रहे।

८ जो डॉक्टर होनेपर भी खुद चरखा चलाये और रोगियोंको रोगका सही कारण बताकर उसे दूर करनेके लिए कहे किन्तु निकम्मी दवाएँ देकर उनपर गलत लाड़ न दिखाये। वह समझेगा कि निकम्मी दवाएँ न लेनेसे यदि बीमारका शरीर छूट जाये तो दुनिया अनाथ नहीं हो जायेगी और यही मानेगा कि उसने उस व्यक्तिपर सच्ची दया की है।

९ जो धनवान होते हुए भी धनकी चिन्ता किये बिना जो मनमें है वह कहे और जबर्दस्तसे-जबर्दस्त व्यक्तिकी भी परवाह न करे।

१ जो धनवान होकर अपना पैसा चरखे स्थापित करनेमें खर्च करे और स्वयं केवल स्वदेशी माल पहनकर और बरत कर दूसरोंको प्रोत्साहित करे।

११ सब भारतीय यह समझें कि यह समय पश्चात्ताप प्रायश्चित्त और शोकका है।

१२ सब समझें कि अंग्रेजोंके दोष ढूँढ़ना व्यर्थ है। वे हमारे दोषोंकी वजहसे भारतमें आये। हमारे दोषोंके कारण ही वे यहाँ रहते हैं और हमारे दोष दूर होनेपर वे चले जायेंगे अथवा बदल जायेंगे।

१३ सब समझें कि शोककी परिस्थितियोंमें आमोद-प्रमोद नहीं हो सकता जबतक हमें चैन नहीं है तबतक हमारा जेलमें रहना या देशनिकाला सहना ही ठीक है।

१४ सब भारतीय समझें कि लोगोंको समझानेके उद्देश्यसे गिरफ्तार न होनेकी सावधानी रखना निरा मोह है।

१५. सब समझें कि कथनीसे करनीका प्रभाव कहीं अधिक और अद्भुत होता है। निर्भय होकर मनमें जो-कुछ हो वह कहना ही चाहिए और वैसा कहनेका जो परिणाम हो उसे सहना चाहिए। तभी हम अपने कहनेका असर दूसरोंपर डाल सकेंगे।

१६ सब भारतीय समझें कि हम दुःख उठाकर ही बन्धन-मुक्त हो सकते हैं।

१७ सब भारतीय समझें कि अंग्रेजोंका उनकी सभ्यताके विषयमें प्रोत्साहित करके हमने जो पाप किया है उसे धो डालनेके लिए हमें अगर मृत्यु-पर्यन्त अंदमानमें रहना पड़े तो वह भी कुछ अधिक नहीं होगा।

१८. सब भारतीय समझें कि किसी भी राष्ट्रने दुःख सहन किये बिना उन्नति नहीं की है। लड़ाईके मैदानमें भी कसौटी कष्ट-सहन करना ही है दूसरोंको मारना नहीं। ऐसा ही सत्याग्रहके बारेमें भी है।

१९. सब भारतीय ऐसा समझें कि यह कहना कि जब सब करेंगे तब हम करेंगे न करनेका बहाना है। हमें ठीक जँचता है इसलिए हम करें जब दूसरोंको ठीक लगेगा तब वे करेंगे — यही करनेका मार्ग है। मैं स्वादिष्ट भोजन देखता हूँ तो मैं खानेके लिए दूसरोंकी राह नहीं देखता। अगर कहे मुताबिक प्रयत्न करना दुःख भोगना स्वादिष्ट भोजन है। लाचारीसे करना और दुःख उठाना केवल बेगार है।

पाठकः ऐसा सब लोग कब करेंगे और उसका अन्त कब आयेगा?

सम्पादकः आप फिर भूलते हैं। मुझे और आपको इसकी चिन्ता नहीं होनी चाहिए कि सब कब करेंगे। आप अपनी सँभालें मैं अपनी सँभालता हूँ — यह स्वार्थ-वचन माना जाता है, किन्तु यह परमार्थ-वचन है। मैं अपना भला करूँगा तभी दूसरोंका भला करूँगा। सारी विधियाँ इसीमें समाई हुई हैं कि मैं अपना कर्तव्य कर लूँ।

आपसे विदा लेनेके पहले मैं फिर एक बार कहना चाहता हूँ —

१ स्वराज्यका अर्थ अपने मनपर शासन करना है।

२ उसकी कुँजी सत्याग्रह आत्मबल अथवा दया-बल है।

३ उस बलको आजमानेके लिए पूरी तरह स्वदेशीको अपनानेकी आवश्यकता है।

४ हम जो-कुछ करना चाहते हैं वह इसलिए नहीं कि हमारे मनमें अंग्रेजोंके प्रति द्वेष है या हम उन्हें सजा देना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि वैसा करना हमारा फर्ज है। कहनेका अर्थ है कि यदि अंग्रेज नमक-कर हटा दें किया हुआ धन वापस कर दें सारे भारतीयोंको बड़े-बड़े ओहदे दे डालकर खत्म कर दें तो हम उनकी मिलोंका कपड़ा पहनेंगे या अंग्रेजी भाषा काममें लायेंगे या उनके हुनर और उनकी कलाओंका उपयोग करेंगे ऐसा नहीं है। हमें समझना चाहिए कि यह सभी कुछ वस्तुतः न करने योग्य है और इसलिए हम उसे नहीं करेंगे।

मैंने जो-कुछ कहा सो अंग्रेजोंके प्रति द्वेष-भावके कारण नहीं कहा, बल्कि उनकी सभ्यताके प्रति द्वेष-भावसे कहा है।

मुझे जान पड़ता है कि हमने स्वराज्यका नाम लिया है किन्तु उसका स्वरूप नहीं समझा है। मैंने उसे जैसा समझा वैसा समझानेका प्रयत्न किया है। मेरा अन्तःकरण इस बातकी गवाही देता है कि उस तरहका स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए मेरी देह समर्पित है।

[गुजरातीसे]

परिशिष्ट

कुछ प्रमाणभूत ग्रन्थ और प्रतिष्ठित व्यक्तियोंकी साखी

१

कुछ प्रमाणभूत ग्रन्थ

'हिन्द स्वराज्य'में प्रतिपादित विषयके अधिक अध्ययनके लिए पाठक निम्नलिखित पुस्तकें पढ़ें :

द किंगडम ऑफ़ गॉड इज़ विदिन यू — टॉल्स्टॉय
व्हॉट इज़ आर्ट? — टॉल्स्टॉय
द स्लेवरी ऑफ़ अवर टाइम्स — टॉल्स्टॉय
द फर्स्ट स्टेप — टॉल्स्टॉय
हाउ शैल वी एस्केप? — टॉल्स्टॉय
लेटर टु ए हिन्दू — टॉल्स्टॉय
द व्हाइट स्लेव्ज़ ऑफ़ इंग्लैंड — शेरार्ड
सिविलिज़ेशन : इट्स कॉज़ ऐंड क्योर — कारपेन्टर
द फैलेसी ऑफ़ स्पीड — टेलर
ए न्यू क्रूसेड — ब्लाउण्ट
ऑन द ड्यूटी ऑफ़ सिविल डिसओबीडियन्स — थोरो
लाइफ़ विदाउट प्रिन्सिपल — थोरो
अन्टु दिस लास्ट — रस्किन
ए जॉय फ़ॉर एवर — रस्किन
ड्यूटीज़ ऑफ़ मैन — मैज़िनी
डिफ़ेन्स ऐंड डेथ ऑफ़ सॉक्रेटीज़ — प्लेटो
पैराडॉक्सेज़ ऑफ़ सिविलिज़ेशन — मैक्स नार्डो
पावर्टी ऐंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया — नौरोजी

इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया — दत्त
विलेज कम्युनिटीज़ — मेन

२

प्रतिष्ठित व्यक्तियोंकी साक्षी

श्री अल्लेख बेबके मूल्यवान संग्रहसे दिये जा रहे इन उद्धरणोंसे ज्ञात होगा कि भारतकी प्राचीन सभ्यताको आधुनिक पाश्चात्य सभ्यतासे कुछ भी नहीं सीखना है

कै० सीमोर के *ब्रिटिश संसद-सदस्य*

(यह लेखक भारतमें बैंक-व्यवसायी रहा था)

यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि हमारी स्थिति भारतमें जंगली जातियोंके बीच सभ्यताका प्रकाश लेकर पहुँचे हुए सभ्य लोगोंकी कभी नहीं रही। हम जब भारत पहुँचे तो हमने देखा कि वहाँ उन लोगोंके पास एक प्राचीन सभ्यता है जो पिछले हजारों सालोंमें वहाँ रहनेवाली अतिशय बुद्धिमान जातियोंके चरित्रमें घुल-मिल गई है और उनकी सारी जरूरतोंको पूरा करती है। उनकी यह सभ्यता सतही नहीं है, वह सर्वस्पर्शी और सर्वव्यापी है — उसने उस देशको न केवल समाजके राजनीतिक जीवनके गठनकी पद्धतियाँ दी हैं बल्कि सामाजिक और कौटुम्बिक जीवनकी अत्यन्त विविध और समृद्ध संस्थाएँ भी दी हैं। ये सारी संस्थाएँ कुल मिलाकर कितनी हितकारी हैं यह बात हिन्दू जातिके चरित्रपर उनके प्रभावको देखकर जानी जा सकती है। इस देशकी जनताके चरित्रमें उसकी सभ्यताका यह हितकारी प्रभाव जितना स्पष्ट है उतना किसी अन्य देशकी जनतामें शायद ही मिले। वे व्यापारमें चतुर हैं विचार और विवेचनकी गहराइयोंमें जानेवाली तीक्ष्ण बुद्धि रखते हैं, मितव्ययी धर्म-परायण संयमशील उदार, माता-पिताकी आज्ञा माननेवाले बूढ़ोंको आदर देनेवाले कानूनका पालन करनेवाले व्यवहारमें मीठे असहायोंके प्रति दयालु और आपत्ति आ पड़नेपर उसे धीरजसे सहन करनेवाले हैं।

(सन् १८८३ में लिखित)

विक्टर कज़िन (१७९२ – १८६७)

(दर्शनके क्षेत्रमें एक-धारा विशेषका प्रवर्तक)

दूसरी ओर जब हम पूर्वके और खासकर भारतके काव्य या दार्शनिक चिन्तनके आन्दोलनोंका जिनका प्रभाव अब यूरोपमें भी फैलता दिखाई दे रहा है ध्यानसे अध्ययन करते हैं तो हमें वहाँ इतने अधिक और इतने गहरे सत्योंका साक्षात्कार होता है कि हम पूर्वकी प्रतिभाके सामने घुटने टेकनेके लिए विवश हो जाते हैं और यह माने बिना नहीं रह सकते कि मनुष्य-जातिके पालने-जैसी यह भूमि उच्चतम दार्शनिक चिन्तनकी जन्मभूमि है। यूरोपकी प्रतिभा जिन परिणामों तक पहुँचकर रुक गई है उनकी सरलता और पूर्वकी प्रतिभा द्वारा प्रकाशित इन सत्योंके महत्त्वको देखकर सचमुच आश्चर्य होता है।

मैक्समूलर[1]

हमारा सारा पालन-पोषण यूनानियों रोमनों और केवल एक ही सामी जाति अर्थात् यहूदियोंकी विचार-सम्पदापर हुआ है। यदि मैं अपने-आपसे यह प्रश्न करूँ कि अपना आन्तरिक जीवन अधिक सम्पूर्ण अधिक व्यापक अधिक सर्वस्पर्शी या ऐसा कहें सही अर्थोंमें अधिक मानवतापूर्ण बनानेके लिए जिस वस्तुकी आवश्यकता है वह हम यूरोपवासियोंको कहाँसे मिल सकती है तो मैं फिर भारतका ही नाम लूँगा।

मैक्समूलर काउंट ब्जोर्नस्टजेर्ना

इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि पूर्वकालीन भारतीयोंको ईश्वरका सच्चा ज्ञान था। उनकी रचनाएँ उदात्त प्रांजल और भव्य भावों और उद्‌गारोंसे परिपूर्ण हैं। उनकी गहराई और उनमें प्रतिबिम्बित भक्तिकी भावना विभिन्न भाषाओंके साहित्यमें प्राप्त ईश्वरपरक रचनाओंकी गहराई या भक्ति-भावनासे किसी भी प्रकार कम नहीं है। ऐसे राष्ट्रोंमें जिनके पास अपना दर्शन और तत्त्वज्ञान है और जो इन विषयोंके प्रति स्वाभाविक रुचि रखते हैं — धर्मकी दृष्टिसे भारतका स्थान पहला है।

जे० ए० डुबोइ

(मैसूरमें ईसाई धर्म प्रचारक यह उद्धरण १५ दिसम्बर, १८२ को श्रीरंगपट्टमसे लिखी गई एक चिट्ठीसे लिया गया है।)

विवाहित स्त्रियाँ अपने घरोंमें अपने अधिकारका उपयोग परिवारके सदस्योंमें शान्ति और व्यवस्था बनाये रखनेमें करती हैं और उनमें से अधिकांश इस महत्त्वपूर्ण कर्तव्यको जिस विवेक और दूरदर्शितासे निबाहती हैं उसकी तुलना यूरोपमें मुश्किलसे ही मिलेगी। बड़े-बड़े लड़के और बड़ी-बड़ी लड़कियाँ और उनके बच्चोंसे निर्मित तीस-तीस चालीस-चालीस व्यक्तियोंके परिवारोंको मैंने किसी बड़ी-बूढ़ी स्त्री उन बड़े लड़के-लड़कियोंकी माँ या सासकी अध्यक्षतामें इकट्ठे रहते देखा है। मैंने देखा कि यह बूढ़ा अपने व्यवस्था-कौशलसे अपनी उन बहुओंसे उनके स्वभावके अनुसार व्यवहार करके परिस्थितियोंके अनुसार कभी कठोर होकर और कभी क्षमा और उदारता दिखाकर बरसों तक प्रतिकूल स्वभाववाली उन सारी स्त्रियोंमें शान्ति और सौहार्द रखनेमें सफल होती है। मैं पूछता हूँ कि क्या यह चीज ऐसी परिस्थितियोंमें हम अपने देशोंमें सिद्ध करनेकी उम्मीद कर सकते हैं? हमारे देशोंमें तो हम इतना भी नहीं कर पाते कि एक ही घरमें रहनेवाली दो स्त्रियाँ आपसमें मिल-जुलकर रहें।

1. वेस्टमिंस्टर प्रिंटिंग प्रेस द्वारा १९१ में प्रकाशित मूल संस्करणमें मैक्समूलरके व्याख्यानके साथ निम्नलिखित भी छपा था

मिस्टर बी० मुखर्जी, एम० ए० बी० एल०

आँकड़े

परिवार व्यवस्थाके अनुसार बैठे लोगोंकी संख्या

वर्ग-के पुरोहित जातियोंमें	१ से ३१
इंग्लैंड और वेल्स	९
भारत	३८

डिक्शनरी ऑफ स्टेटिस्टिक्स, एम० जी० मुल्हाल एफ० आर० एस० एस० रुटलेज ऐंड सन्स, १८९९

किसी सभ्य देशमें ईमानदारीसे किये जाने योग्य जो भी कार्य होते हैं उनमें शायद ही कोई ऐसा हो जिसमें हिन्दू स्त्रियाँ समुचित हिस्सा न लेती हों। घर-गृहस्थीकी व्यवस्था और परिवारकी सार-सँभालके सिवा किसानोंकी पत्नियाँ और लड़कियाँ अपने पतियों और पिताओंको खेती-किसानीमें मदद पहुँचाती हैं। व्यापार-धन्धा करनेवालोंकी स्त्रियाँ उन्हें उनकी दूकान चलानेमें मदद करती हैं। कितनी ही स्त्रियाँ अपने बलपर दूकानें चलाती हैं उन्हें अक्षर या अंकोंका ज्ञान नहीं होता फिर भी वे अपना हिसाब-किताब दूसरी युक्तियोंके द्वारा बहुत अच्छी तरह रखती हैं और व्यापारिक सौदे करनेमें वे पुरुषोंसे भी चतुर मानी जाती हैं।

जी० पैंग

(सेक्रेटरी सेवोंग मेकेनिक्स इंस्टिट्यूट)

भारतमें बसनेवाली ये जातियाँ नैतिक दृष्टिसे दुनियामें शायद सबसे ज्यादा विशिष्ट हैं। उनके व्यक्तित्व और स्वभावसे नैतिक पवित्रता टपकती मालूम होती है जिसकी हम सराहना किये बिना नहीं रह सकते। गरीब वर्गोंके बारेमें यह बात खास तौरपर लागू होती है जो गरीबीसे उत्पन्न अभावोंके बावजूद सुखी और सन्तुष्ट दिखाई पड़ते हैं। वे प्रकृतिके सच्चे बालक हैं और अपना जीवन कलकी चिन्ता किये बिना और विधाताने उन्हें रूखा-सूखा जो भी दे रखा है उसके लिए उसका आभार मानते हुए, सन्तोषसे बिताते हैं। स्त्री और पुरुष मजदूरोंको दिन-भरकी कड़ी मजदूरीके बाद जो कभी-कभी तो सूर्योदयसे सूर्यास्त तक चलती रहती है शामके समय घर वापस आते हुए देखिए तो आपको विस्मय होगा। लगातार कड़ी मेहनत करनेके फलस्वरूप होनेवाली थकानके बावजूद वे लोग ज्यादातर खुश नजर आते हैं उनके हाथ-पाँवोंमें तब भी सजीवता होती है, आपसमें उत्साहपूर्वक बातचीत करते होते हैं और बीच बीचमें किसी गीतकी कड़ी गूँज उठती है। किन्तु जिन्हें वे अपना घर कहते हैं उन झोंपड़ोंमें पहुँचनेके बाद उन्हें मिलता क्या है? भोजनके नामपर थोड़ा-सा चावल और सोनेके लिए मिट्टीका फर्श। भारतीय घरोंमें पारिवारिक सौहार्द तो सामान्यतः मिलता ही है। भारतमें प्रचलित विवाह-सम्बन्धकी रीतिका खयाल किया जाये तो यह कुछ अजीब-सी मालूम होती है क्योंकि विवाह सम्बन्ध जोड़नेका काम यहाँ माता-पिता करते हैं। अधिकतर घर-परिवार हर तरहसे सुसम्पन्न श्रेष्ठ वैवाहिक जीवनका उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसका कारण शायद उनके शास्त्रोंकी शिक्षा और वैवाहिक कर्तव्योंके विषयमें उनके महान आदेश हैं। लेकिन यह कहनेमें भी कोई अत्युक्ति नहीं कि पति सामान्यतः अपनी पत्नियोंसे बहुत प्रेम करते हैं और अधिकांश पत्नियाँ पतिके प्रति अपने कर्तव्योंके बारेमें बहुत ऊँचे आदर्श रखती हैं।

कर्नल टामस मनरो

(भारतमें १२ वर्ष तक सरकारी नौकर)

खेतीकी अच्छी पद्धति, अद्वितीय वस्तु-निर्माण-कौशल, ऐसी सारी चीजें पैदा करनेकी क्षमता जिनसे सुविधाओंमें या सुखोपभोगमें वृद्धि होती हो, लिखना-पढ़ना और गणित आदि सिखानेके लिए हरएक गाँवमें पाठशालाएँ, अभ्यागतका स्वागत-सत्कार

करनेकी सर्वसामान्य प्रथा और एक-दूसरेके प्रति प्रेम और सद्भावका गुण और सबसे बढ़कर स्त्रीजातिके प्रति विश्वास आदर और कोमलताका व्यवहार — यदि इन्हें किसी जातिके सभ्य होनेका चिह्न माना जाये तो हिन्दू जाति यूरोपके किसी भी राष्ट्रसे घटकर नहीं है और यदि इन दोनों देशोंके बीच सभ्यताका लेन-देन होता है तो मुझे निश्चय है कि इस देशसे हम जो भी लेंगे उससे लाभ ही होगा।

सर *विलियम वेडरबर्न*, बैरिस्टर

भारतीय गाँव इस प्रकार सदियों तक राजनीतिक अव्यवस्थाकी बाढ़ रोकनेवाली दीवार और सारे घरेलू और सामाजिक गुणोंका धाम रहा है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि तत्त्ववेत्ताओं और इतिहास-लेखकोंने इस प्राचीन संस्थाकी हृदयसे सराहना की है। ग्राम-संस्था स्वाभाविक सामाजिक इकाई और ग्राम-जीवनका श्रेष्ठ नमूना है स्वयंपूर्ण उद्योगशील शान्ति-प्रेमी और शब्दके उत्तम अर्थमें प्राचीनता-प्रेमी। मेरा खयाल है कि आप मुझसे इस बातमें सहमत होंगे कि भारतीय गाँवके सामाजिक और घरेलू जीवनकी इस व्यवस्थामें ऐसा बहुत-कुछ है जो सुहावना भी है और लुभावना भी। यह मनुष्यकी जीवन-पद्धतिका एक निर्दोष और सुखी नमूना है। इसके सिवा उसके व्यावहारिक परिणाम भी बहुत अच्छे रहे हैं।

४ पत्र : मगनलाल गांधीको

यूनियन कैसिल लाइन
आर एम एस किल्डोनन कैसिल
नवम्बर २४, १९ ९

चि मगनलाल,[1]

निश्चित नहीं है हम कब मिलेंगे। इसलिए सभी पत्रोंके उत्तर यहींसे दिये डालता हूँ। इस बार जहाजमें मैंने जो काम किया है उसकी कोई हद नहीं रही है। यह तुम वेस्ट आदिको लिखे मेरे पत्रों और लेखों आदिसे देखोगे। मुझे कहना बहुत है किन्तु वह तो जब मिलें तभी। इस समय तो जितना आवश्यक है उतना ही लिखूँगा।

चि सन्तोककी[3] स्थितिके सम्बन्धमें पढ़कर सन्तोष हुआ है।

फीनिक्सका नाम फीनिक्सके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं होना चाहिए यह ठीक जान पड़ता है। मेरा नाम भुला दिया जाये यह चाहता हूँ। मेरी इच्छा यह है कि मेरा काम रहे। नाम भुला दिया जाये तभी काम रहेगा। नाम इत्यादि देनेके झगड़ेमें भी फिलहाल पड़ना ठीक नहीं है। हम तो प्रयोग कर रहे हैं। तब नाममें क्या? और जब नाम दिया जायेगा उस समय भी हमें एक ऐसा बीचका शब्द ढूँढ़ना पड़ेगा जिसमें हिन्दू और मुसलमानका प्रश्न उठे ही नहीं। मठ या आश्रम विशेष रूपसे हिन्दुओंसे

१ खुशालचन्द गांधीके पुत्र, गांधीजीके भतीजे।

२. गांधीजीने अपनी हिन्द स्वराज्यकी रचना की, टॉल्स्टॉयके एक हिन्दूके नाम पत्रका गुजराती अनुवाद किया, उसकी अंग्रेजी और गुजराती प्रस्तावनाएँ लिखीं और मूलसे पत्र भी लिखे।

३ मगनलाल गांधीकी पत्नी, सन्तोक बेन।

सम्बन्धित शब्द हैं। इसलिए उनका प्रयोग नहीं किया जा सकता। फीनिक्स अनायास मिला हुआ अच्छा शब्द है। एक तो यह अंग्रेजी शब्द है, इसलिए इससे जिस देशमें हम रहते हैं उसका सम्मान हुआ। फिर यह तटस्थ शब्द है और कहा जाता है कि फीनिक्स पक्षी स्वयं अपनी राखमें से फिर-फिर पैदा हो जाता है, अर्थात् मरता ही नहीं। फीनिक्सका जो उद्देश्य है वह हमारे राख हो जानेपर भी नहीं मिटेगा, ऐसी हमारी मान्यता है। इसलिए अभी तो फीनिक्स नाम ही काफी है। भविष्यमें देखेंगे कि क्या करना उचित है। इस समय तो रंग और ढंग दोनों फीनिक्स पक्षीके जैसे हैं।[1]

भाई ठक्करको जो पत्र लिखा है उसको पढ़ना।

मोहनदासके आशीर्वाद

प्रभुदास गांधी-कृत 'जीवननुं परोढ़' में गांधीजीके हस्तलिखित गुजराती पत्रके चित्रसे।

५. पत्र : मणिलाल गांधीको

यूनियन कैसिल लाइन
आर० एम० एस० किल्डोनन कैसिल
नवम्बर २४, १९०९

चि० मणिलाल,

इस समय रातके १–३ बजे हैं। केपटाउन अभी पाँच दिनकी मंजिल है। मैं दायें हाथसे लिखते-लिखते थक गया हूँ, इसलिए अब तुमको बायें हाथसे पत्र लिखता हूँ। सम्भव है कि मुझे सीधा-सादा जेल चले जाना पड़े, इसलिए यह पत्र लिखता हूँ।

मेरे जेल जानेसे तुम तो प्रसन्न ही होगे, यह माने लेता हूँ; क्योंकि तुम समझदार हो। लड़ाईका रहस्य यही है कि हम जेल जाते हुए प्रसन्न हों और वहाँ प्रसन्न रहें।

तुमने फीनिक्सके सम्बन्धमें प्रश्न पूछा, सो ठीक किया। पहले यह विचार करना पड़ेगा कि हम आत्माकी खोज कैसे कर सकते हैं और देशसेवा किस प्रकार कर सकते हैं। उसके बाद यह समझा जा सकता है कि फीनिक्स क्या है? आत्माकी खोजके लिए पहले तो नीतिपर दृढ़ता होनी चाहिए, अर्थात् अभय, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि गुणोंका सम्पादन करना चाहिए। ऐसा करते हुए देशसेवा अपने आप हो सकती है। इसमें फीनिक्स बहुत सहायक है। मेरा विचार ऐसा है कि शहरोंमें, जहाँ लोग घनी आबादीमें रहते हैं और जहाँ बहुतेरे प्रलोभन हैं, नैतिक नियमोंका पालन करना बहुत कठिन है। इसीलिए ज्ञानी पुरुषोंने फीनिक्स जैसे एकान्त स्थानका निर्देश किया है। सच्ची पाठशाला अनुभव है। जो अनुभव तुम्हें फीनिक्समें मिला है वह दूसरे स्थानमें न

१. मूलमें रंग अने ढंग (रूप और रंग) है; प्रचलित गुजराती मुहावरा।
२. हरिलाल ठक्कर, फीनिक्स सेटलमेंटके एक सदस्य।
३. उपलब्ध नहीं है।
४. [illegible]

मिलता। आत्माकी खोज करनेका विचार भी नहीं किया जा सकता है। तुमने मुझसे ऐसा गूढ़ प्रश्न अपनी बाल्यावस्थामें किया यह तुम्हारे पुण्यका सूचक है। तुम श्री वेस्ट[1] आदिकी सेवा कर सके यह भी फीनिक्सके प्रभावके कारण ही। फीनिक्समें सभी नौसिखिये रहते हैं इसलिए तुमको दोष दिखाई देते होंगे। दोष तो होगा। फीनिक्स पूर्ण नहीं है किन्तु हम उसे पूर्ण बनानेकी इच्छा रखते हैं।

मैं जो यह चुका हूँ उससे फीनिक्सकी शालाका सम्बन्ध नहीं है। शाला तो हमें जो-कुछ करना है उसका साधन है। वह टूट जाये तो हम यह समझेंगे कि हम उस कामके लिए अभी तैयार नहीं हैं। तुम पढ़नेके लिए अधीर हो गये हो यह मैं जानता हूँ। मेरी सलाह है कि धीरज रखो। तुम्हारे सम्बन्धमें मैंने बहुत विचार किया है। हम जब मिलेंगे तब समझाऊँगा। इस बीच बापूपर भरोसा रखना। जो-कुछ समझमें न आया हो वह पूछना।

श्री वेस्टने तुम्हें पाकेट-बुक दी यह ठीक है। तुमने भेंटकी खातिर सेवा नहीं की। उन्होंने तुम्हें पुस्तक भेंटके रूपमें नहीं दी है बल्कि यादगारके रूपमें दी है।

रेवाके[2] सम्बन्धमें चिन्ता होती है। उसकी सँभाल रखना।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ९२) से।
सौजन्य : श्रीमती सुशीलाबेन गांधी।

६. शिष्टमण्डलपर अन्तिम टिप्पणी[3]

१

किल्डोनन कैसिल
नवम्बर २५, १९०९

शिष्टमण्डलके सम्बन्धमें यह मेरी अन्तिम टिप्पणी है। मेरी प्रार्थना है कि इसको सब भारतीय ध्यानपूर्वक पढ़ें। मुझे आशा है कि मेरी यह टिप्पणी इंडियन ओपिनियनमें[4] छपनेके पहले या तो हम दोनों भाई[5] पैठ जा चुके होंगे या शीघ्र ही पहुँच जायेंगे।

तीसकरका काम

ऐसा प्रतीत होता है कि ज्यों-ज्यों जनरल स्मट्स विरोध करते हैं त्यों-त्यों हमारी शक्ति भारतमें बढ़ती जाती है। किन्तु लोगोंको जगानेके लिए चार महीने कुछ भी

१. एल्बर्ट वेस्ट, इंटरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस, फीनिक्सके प्रबन्धक। बीमारीकी अवस्थामें मणिलालने उनकी सेवा की थी; देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ४७४।
२. हरिलाल, गांधीजीके सबसे बड़े पुत्र।
३. शिष्टमण्डलपर पहले लिखी गई टिप्पणियोंके लिए देखिए खण्ड ९।
४. यह इंडियन ओपिनियन (१८-१२-१९०९) के गुजराती विभागमें छपी थी।
५. गांधीजी और हाजी हबीब। जब शिष्टमण्डल इंग्लैंड जा रहा था तब ट्रान्सवालके सभी मुसलमानोंने उन दोनोंके प्रेमपूर्ण व्यवहारको देखकर समझा था कि वे भाई-भाई हैं। देखिए खण्ड ९, पृष्ठ १७५।

नहीं है। चार बरस भी काफी नहीं होंगे। तब भी पोलकके कामकी[1] सफलताकी कुंजी किसके पास है? वह तो ट्रान्सवालके सत्याग्रहियोंके पास है। उन्होंने जो प्रयत्न किये हैं उनका सबने स्वागत किया है — वे पोलक हैं इसलिए नहीं बल्कि वे हमारे प्रतिनिधिके रूपमें बोलते हैं, हमारी दुःख-गाथा सुनाते हैं इसलिए, हम भारतकी खातिर दुःख सहन करते हैं इसलिए और हम सच्चे हैं ऐसा भारतने समझ लिया है इसलिए।

इंग्लैंडमें आन्दोलन

और इंग्लैंडमें क्या हो रहा है? मैं यह नहीं बता सकता कि इंग्लैंडमें की गई हमारी हलचलकी जड़ कितनी गहरी जायेगी। १९०६ के शिष्टमण्डलके बाद समिति बनी। समितिने जो महत्त्वपूर्ण काम किया है उसके सम्बन्धमें हम बहुत बात कर चुके हैं। लॉर्ड ऍम्टहिल[2] और सर मंचरजी[3] अथक परिश्रम कर रहे हैं। वे इतना परिश्रम यह मानकर कर रहे हैं कि हम अन्ततक लड़ेंगे। किन्तु जो काम[4] अब शुरू हुआ है वह इससे भी बड़ा है। उस कामका उद्देश्य प्रत्येक अंग्रेजके सम्मुख अपने संघर्षकी बात रखना और इंग्लैंडमें प्रत्येक भारतीयको [स्थितिके सम्बन्धमें] पूरी जानकारी देना है। यह काम इसलिए शुरू नहीं किया गया कि हम अंग्रेज लोगोंपर निर्भर रहना चाहते हैं। हमारे संघर्षमें प्रत्येक मनुष्य सहायता कर सकता है। हमारे कार्यका उद्देश्य समस्त संसारमें अपने पक्षका औचित्य और ट्रान्सवालका अन्याय प्रकट करना है। हमारा सम्बन्ध अंग्रेज जनतासे है इसीलिए हम उसे अपने कार्यकी जानकारी देते हैं। जानकारी हासिल करके अंग्रेज लोग हमें बताते हैं कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह उचित है। वे हमारी सहायताके लिए धन भेजते हैं। इन सब बातोंसे हमें यह भान हुआ है कि हम उनकी बराबरीके हैं। वे हमें पत्र लिखते हैं तो इस तरह नहीं जैसे हमपर कृपा कर रहे हों। बल्कि हमारे भाई-बहनोंके रूपमें लिखते हैं। यह एक भिन्न प्रकारका मनोभाव है। [वे] हमारे प्रति अपना कर्तव्य पूरा करते हैं। मान लीजिए, इस आन्दोलनमें एक लाख हस्ताक्षर कराये जाते हैं और एक लाख पैनी इकट्ठी की जाती है। इसका महत्त्व एकदम समझमें नहीं आ सकता। एक लाख पैनी अर्थात् लगभग ४१६ पौंड हुए। यह कोई मामूली रकम नहीं है लेकिन इसमें रकमका इतना महत्त्व नहीं है। एक लाख हस्ताक्षर कराना कोई खिलवाड़ नहीं। इनको करानेके लिए लगभग ४० स्वयंसेवक भारतीय और गोरे, निकल पड़े हैं। इतने लोग जबरदस्त प्रयत्न करेंगे तब कहीं इतने हस्ताक्षर प्राप्त हो सकेंगे। और, एक लाख लोग हमसे कहें कि लड़ो तो यह कोई मामूली बात नहीं है। चालीस स्वयंसेवक लड़ाई खतम होने तक काम

१. भाषणमें यहाँ एच० एस० एल० पोलक (भारतीयोंको) दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका आन्दोलन चलानेके लिए भेजे गये थे।

२. लॉर्ड ऍम्टहिल, मद्रासके गवर्नर; देखिए खण्ड ७, पृष्ठ १८।

३. भावनगरी (१८५१-१९३३), भारतीय बैरिस्टर जो इंग्लैंडमें बस गये थे, ब्रिटिश संसदके सदस्य; देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२ तथा खण्ड ५, पृष्ठ ३।

४. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ५११।

करते रहें यह भी कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। वे यह सारी मेहनत किसलिए करेंगे? हम दुःख उठा रहे हैं इसीलिए तो! केवल यह बड़बड़ाते रहें कि हमें समान अधिकार चाहिए, न कोई मान सकता है या इतना सहयोग देनेके लिए न तैयार हो सकता है।

इतनी शक्ति लगानेके बाद ट्रान्सवालके भारतीय क्या करेंगे? यदि वे समस्त भारतीय समाजकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करना चाहते हों तो मौत मंजूर कर लेंगे किन्तु संघर्ष नहीं छोड़ेंगे। वे एक-दूसरेकी ओर नहीं ताकेंगे बल्कि लड़ते ही रहेंगे। सब नायप्पन[1] होना चाहेंगे। संघर्ष लम्बा होगा तो उससे घबरायेंगे नहीं बल्कि खुश होंगे क्योंकि ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं त्यों-त्यों लोग मानते जाते हैं कि हम ढोंगी नहीं हैं और वे हमारी लड़ाईसे परिचित भी होते जाते हैं। कष्ट-सहनकी यही विशेषता है। जब बहादुर मूर सैनिक एकके बाद एक फ्रांसीसी तोपोंके सामने आते चले गये और मरते चले गये[2] तब फ्रांसीसी तोपचियोंने तोपें चलानेसे इनकार कर दिया और वे शेष बचे हुए मूरोंसे गले मिले। हिम्मतका प्रताप ऐसा ही है। मूर जानपर खेलनेवाले थे इसलिए अपनी ऐसी छाप डाल सके। उनको बन्दूकें चलाना आता होता तो वे ऐसी विजय न पा सकते। किन्तु वे मरना जानते थे। उन्होंने अपने कार्य द्वारा फ्रांसीसी तोपचियोंसे कहा "हम तुम्हारी तोपोंसे डरनेवाले नहीं हैं। हमें अपने शरीरकी अपेक्षा अपना देश और अपना धर्म अधिक प्यारा है। इसलिए तुम अपनी तोपें अपने पास रखो। हमें तुम डरा नहीं सकते। हमारे मर जानेपर हमारी जमीन तुम्हारे हाथ लगे तो ले लेना। यह न मान लेना कि जबतक हम जीवित हैं तबतक तुम हमारी जमीनको हाथ लगा सकते हो। ये मूर मरे नहीं जीवित हैं। उनके देशवासी उनकी बहादुरीकी गाथा पीढ़ियों तक गायेंगे। और सारी दुनिया भी इन मूरोंका उदाहरण देगी। ऐसा ही ट्रान्सवालके भारतीयोंके सम्बन्धमें है। उन सबको एक स्वरसे कहना चाहिए कि उन्होंने जो प्रतिज्ञा की है उस प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिए वे अपने प्राण तक उत्सर्ग करनेको तैयार हैं। उनको ऐसा ही करना है।

[इन] चार महीनोंमें बहुत-से भारतीयोंने बहादुरी दिखाई। बहुतोंने अच्छा काम किया। किन्तु बहुतोंने कमजोरी भी दिखाई। इस कमजोरीका फल हम चख रहे हैं। लड़ाई लम्बी हो रही है लेकिन इससे क्या हुआ? यह ज्यों-ज्यों लम्बी होती है त्यों-त्यों लड़नेवाले दृढ़ होते जाते हैं। ऐसा नहीं माना जा सकता कि सभी लोग एक-जैसी हिम्मत दिखायेंगे। यदि वैसा होता तो फिर लड़ाईकी जरूरत ही नहीं रहती। फिर भी निम्नलिखित काम करनेकी जरूरत है

(१) जितने लोग कर सकें पूरी-पूरी हिम्मत रखकर मृत्यु-पर्यन्त संघर्ष करें।

(२) जो लड़ न सकें वे दूसरोंको गिरानेका प्रयत्न न करें। उसके बजाय वे जो लड़ें उन्हें हिम्मत बँधायें। वे ऐसा न कर सकें तो चुप रहें। किन्तु कोई अच्छा काम करते लगे तो उसमें बाधा न डालें।

१. एक खलासी जो शहीद हो गया था, देखिए खण्ड ९, पृष्ठ २९८।
२. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ १०९।

(३) [जो] संघर्षमें पहले अनुच्छेदमें कहे अनुसार माल न ले सकें वे पैसेसे मदद करें। सब लड़ाइयाँ ऐसे ही चलाई जाती हैं। सभी लोग तो रणमें नहीं जाते। जो रणमें जाते हैं उनको दूसरे प्रोत्साहित करते हैं। वे उनके पीछे सार-सँभाल करते हैं और अपना पैसा देते हैं।

(४) सभी लोग जनरल स्मट्सको बता दें कि जो माँगा है उसको लिये बिना भारतीय चैनसे न बैठेंगे।

यह तो ट्रान्सवालके भारतीयोंका कर्तव्य हुआ। समस्त दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको जान लेना चाहिए कि संघर्ष है तो वे भी हैं। उसीमें उनका भला है। दूसरे राज्योंमें [भारतीय-विरोधी] कानून बनाना मुश्किल हो गया है क्योंकि ट्रान्सवालमें लड़ाई चल रही है।

अगर लिखे अनुसार नहीं होगा तो भारतीयोंकी बदनामी होगी। यह प्रत्येक भारतीयको याद रखना चाहिए। संघर्षमें अन्ततः तो जीतना ही है यह ऐसी बात है जिसे बालक भी समझ सकता है। सरकार कानून रद करनेकी बात कहती है। वह छः भारतीयोंको प्रवेश देना भी स्वीकार करती है। किन्तु वह कहती है कि कानूनमें उनको [गोरोंके साथ] प्रवेशका समान अधिकार नहीं दिया जा सकता। इस अड़चनके आनेका कारण भी जनरल स्मट्सने बताया है। वह यह है कि भारतीयोंमें लड़नेवाले लोग थोड़े ही हैं। बाकी तो ऊब गये हैं। यदि ऊब ही गये हैं तो स्पष्ट है कि कुछ भी नहीं मिलेगा।

शिष्टमण्डलका खर्च

शिष्टमण्डलका खर्च लगभग ५ पौंड आया है। इसमें से २१ पौंड तो आने जानेका खर्च है शेष २९ पौंड इंग्लैंडमें खर्च हुए। हमने अपने वक्तव्यकी[1] २, प्रतियाँ छपवाई। उसकी छपाईका बिल अभी नहीं चुकाया गया है। उसमें कुछ कागजका और दूसरा खर्च जो करना ही है बाकी है। इसका हिसाब बादमें आयेगा। उक्त हिसाबका विवरण भी 'इंडियन ओपिनियन'[2] में प्रकाशित कर दिया जायेगा। उपर्युक्त कार्य [हस्ताक्षर आदि एकत्र करना] को देखते हुए भी रिचके[3] पास फिलहाल तो टाइपिस्ट रखना ही। कुमारी मोड[4] पोलकने यह काम हाथमें लिया है। उनकी नौकरी पक्की थी उसे छोड़नेका नोटिस उन्होंने हमारी रवानगीके वक्त दिया था। इस सम्बन्धमें [हस्ताक्षर करवानेके सम्बन्धमें] जो रकम अंतमें आई थी उसमें से बची रकमको बैंकमें जमा कर दिया गया है।

१ १६-७-१९०९ का; देखिए खण्ड ९, पृष्ठ २८०-१।
२ १५-१२-१९०९ का देखिए परिशिष्ट-१।
३ श्री एल० डब्ल्यू० रिच; गांधीजीके साथ विद्यार्थी रहे; बादमें दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिके अवैतनिक मन्त्री। देखिए खण्ड ४ पृष्ठ ३९०।
४ हेनरी पोलककी बहन

हमारी माँग

हमने लॉर्ड ऐम्टहिलकी मार्फत जो माँग की है वह इस प्रकार है। कानूनमें सबको प्रवेशका समान अधिकार होना चाहिए। कानूनके अन्तर्गत किसी भी जातिके लोगोंकी संख्या निर्धारित करनेका अधिकार गवर्नरको दिया जाना हमें स्वीकार है। किन्तु कानून तो सबके लिए समान ही होना चाहिए।

जनरल स्मट्सका कथन

जनरल स्मट्सका कहना है कि वे भारतीयोंको स्थायी अधिवासका अनुमतिपत्र देनेके लिए तैयार हैं वे खूनी कानूनको रद करनेके लिए भी तैयार हैं किन्तु प्रवासी अधिनियमके अन्तर्गत समान अधिकार देनेके लिए तैयार नहीं।

उनके कथनानुसार एशियाई लोगोंके लिए अलगसे एक खास कानून होना चाहिए। लॉर्ड क्रूने साफ-साफ लिखा है कि समान अधिकार देनेकी बात ही जनरल स्मट्सको मंजूर नहीं है।

इसलिए अर्थ यह हुआ कि वे उसी चीजको [जो हम चाहते हैं] अधिकारके रूपमें नहीं किन्तु दानके रूपमें देना चाहते हैं। कानूनमें तो वे गोरे और कालेका भेद कायम रखना चाहते हैं। हम कहते हैं कि हम संख्याके लिए नहीं लड़ते बल्कि समान अधिकारके लिए लड़ते हैं — भले ही वह अधिकार नाम-मात्रका क्यों न हो।

(२)[1]

इंग्लैंडमें चन्दा

इंग्लैंडमें किये गये चंदेमें अबतक नीचे लिखी रकमें प्राप्त हुई हैं। इनमें से दो रकमें मैं पहले ही दे चुका हूँ फिर भी उनको दुबारा दे रहा हूँ

	पौं	शि	पें
डॉक्टर मेहता	१०	०	०
हिन्द-सेवक (प्रति मास)	१	०	०
श्री गोकुलभाई दलाल	०	१०	
श्री जे एम पारीख	१	१	
श्री एच बोस	०	२	०
कुमारी विंटरबॉटम	१०		०
श्री दलीपसिंह[2]	५	०	०
श्रीमती दुबे	१	०	०
डॉक्टर कुमारी जोशी	१	०	०
	३१	११	०

यह तो अभी शुरुआत ही है। अभी चन्दा माँगने कोई नहीं निकला है।

१. [illegible] परिशिष्ट २।
२. [illegible]।
३. यह २६-११-१९०९ के इंडियन ओपिनियनमें दूसरी किस्तके रूपमें प्रकाशित हुआ था।
४. [illegible]।
५. [illegible]।

कैम्ब्रिजमें सभा

कैम्ब्रिजसे आमन्त्रण मिलनेपर मैं सर्व श्री हाजी हबीब, इस्माइल ईसा और कामाके साथ वहाँ गया। अलीगढ़ कालेजके तथा पंजाब, बंगाल और गुजरातके छात्रोंसे भेंट हुई। श्री काम हमारे साथ लन्दनसे आये थे। लगभग ७० छात्रोंसे हमारी भेंट हुई। सभामें श्री हाजी हबीब और मैंने भाषण दिये। उनको सुननेके बाद सभामें अच्छा उत्साह दिखाई दिया। उन्होंने चन्दा उगाहने और हस्ताक्षर प्राप्त करने आदि कामोंमें सहायता करना स्वीकार किया है। वहाँ प्रोफेसर वेस्टलेकसे[2] भी हमारी मुलाकात हुई।

स्टेशनपर विदा करनेके लिए श्री पोलकका परिवार, कुमारी स्मिथ, सर मंचरजी, श्री दुबे, श्री परीख, श्री मुन्शिफ और श्री बोस तथा अन्य भारतीय और अंग्रेज आये थे। इस प्रकार चारों ओर सहानुभूति जाग्रत हो गई है। इसको कायम रखना हमारा काम है। और इसी प्रकार लड़ाईका अन्त समीप लाना या उसे लम्बे अरसे तक चलने देना भी हमारे ही हाथमें है।

श्री मायरकी सभा

श्री मायरने[3] हम दोनोंसे मिलने और हमें जो कहना हो उसको सुननेके लिए वेस्ट मिन्स्टर पैलेस होटलमें १२ तारीखको एक सभा की थी। इसमें लॉर्ड ऍम्टहिल, लॉर्ड कर्जन, लॉर्ड रावर्ट्स[4] आदि सज्जनोंने न आनेपर खेद प्रकट करते हुए पत्र भेजे थे। सर चार्ल्स ब्रूसका[5] पत्र[6] निम्न प्रकार था:

> यद्यपि जिस कामके लिए वे (श्री हाजी हबीब और श्री गांधी) आये हैं उसमें सफलता नहीं मिली है तो भी मैं निराश नहीं हूँ। मानव-जातिके इतिहासमें ऐसा ही देखा जाता है कि प्रकाशसे पहले घोर अन्धकार होता है। अमेरिकामें जब गुलाम मुक्त किये गये तब अत्यन्त निराशा थी। जिस समय ईसाको बहुत ज्यादा निराशा दिखाई देती थी वही समय [उनकी] मुक्तिका था। मैं आपकी सभामें नहीं आ सकता, किन्तु मैं श्री गांधी और श्री हाजी हबीबकी सफलता चाहता हूँ।

सर विलियम मार्कबीने[7] निम्नलिखित पत्र लिखा:

> मैं सुनता हूँ श्री हाजी हबीब और श्री गांधी जो थोड़ा-सा न्याय प्राप्त करनेके लिए आये थे, उसको प्राप्त किये बिना वापस जा रहे हैं। उनकी माँग

१. ७-११-१९०६को हुई ईस्ट इंडिया एसोसिएशनकी सभा, देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ५११।

२. केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके एक स्नातक, [illegible] प्रोफेसर तथा [illegible] सदस्य।

३. श्री ... मायर, दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिके सदस्य; देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ५११।

४. १८९९-१९०० तथा १९०२-१९०४में दक्षिण आफ्रिकामें सेनापति; देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४।

५. मॉरिशसके गवर्नर (१८९७-१९०४)।

६. मूल पत्रके लिए देखिए इंडियन ओपिनियन ११-१२-१९०६।

७. (१८२९-१९१४), कलकत्ता हाईकोर्टके जज १८६६-७८; देखिए खण्ड ६, पृष्ठ २११।

उचित है, इससे कोई इनकार नहीं करता। केवल राजनीतिक कारणोंसे ब्रिटिश सरकार हस्तक्षेप नहीं करती। क्योंकि उचित अधिकारोंकी रक्षाके लिए भी ब्रिटिश सरकार हस्तक्षेप नहीं करती यह बात उचित नहीं है।

इस समारोहमें जो लोग उपस्थित थे उनमें राजकुमारी सोफिया दलीपसिंह, सर रेमंड वेस्ट[1], श्री अमीर अली[2], सर फ्रेडरिक लेली, डॉ॰ रदरफर्ड, सर मंचरजी भावनगरी, मेजर सैयद हुसैन बिलग्रामी, कुमारी विंटरबॉटम[3], श्री दुबे और उनकी पत्नी, माननीय श्री दाजी आबाजी खरे और उनकी पत्नी, श्री मोतीलाल नेहरू, श्री मार्महम और उनकी पत्नी, श्री रैटक्लिफ और उनकी पत्नी, श्री रिच और श्री इस्माइल ईसा आदि थे।

सब चाय-पान कर चुके तो श्री मायर बोले[4] कि जब श्री गांधीने मुझे सारी बात बताई तब मुझे लगा कि श्री हाजी हबीब और श्री गांधीसे कुछ सज्जनोंकी भेंटकी व्यवस्था होनी चाहिए; इसीसे मैंने यह सभा बुलाई है। श्री गांधीसे मैं दक्षिण आफ्रिकामें मिला था। उनके स्वभावसे मैं परिचित हूँ। हम न्यायप्रिय लोग कहे जाते हैं तब फिर हम अपने इन मित्रोंको अपनी सहानुभूति बताये बिना नहीं जाने दे सकते। हम यहाँ आये हैं इसका अर्थ यह नहीं कि हम उनके सब कार्योंको उचित कहते हैं। हमें ऐसा नहीं कहना है कि उन्होंने भूल की ही नहीं है। जो भूल नहीं करता वह मनुष्य नहीं कहा जा सकता। किन्तु हम उनके कार्यको आम तौरपर पसन्द करते हैं और उनकी लड़ाई उचित है यही कहनेके लिए इकट्ठे हुए हैं। यह सवाल केवल ट्रान्सवालका ही नहीं है। यह एकमात्र भारतका भी नहीं है बल्कि समस्त ब्रिटिश राज्यका है। श्री गांधी बताते हैं कि [जनरल स्मट्सकी ओरसे] ऐसा प्रस्ताव आया है कि सन् १९०७ का कानून रद हो जायेगा किन्तु इसमें शर्त है और वह मंजूर करने योग्य नहीं है। जिस कानूनमें समान अधिकार हो ऐसे कानूनके विरुद्ध श्री गांधी नहीं हैं किन्तु जिसमें भारतीय जातिका अपमान होता हो उसके विरुद्ध हैं।

श्री गांधीने कहा[5]

श्री मायरने यह सभा बुलाई इसके लिए मैं आभारी हूँ। मेरे साथीको और मुझको यह अवसर मिला है, यह सन्तोषकी बात है। हम यह नहीं चाहते कि हमने जो किया है उस सबको यह सभा मंजूर करे। हम आपसे इतना ही कहलवाना चाहते हैं कि हमारी माँग उचित है और हम इसमें आपकी सहायता चाहते हैं। जिस सवालके लिए हम लड़ते हैं। वह सवाल केवल ट्रान्सवालका नहीं है बल्कि समस्त ब्रिटिश साम्राज्यका है। ट्रान्सवालकी सरकार जो-कुछ करना मंजूर करती है वह काफी

१. (१८३२-१९१३), मद्रास, बम्बई विश्वविद्यालयके उपकुलपति; देखिए खण्ड ८, पृष्ठ २९७।
२. न्याय परिषद् (प्रिवी कौंसिल) के सदस्य देखिए "न्यायमूर्ति अमीर अलीका सम्मान" पृष्ठ १११।
३. यूनियन ऑफ एथिकल सोसाइटीज की मन्त्रिणी, देखिए खण्ड ८, पृष्ठ १९४।
४. अंग्रेजी रिपोर्ट ११-१२-१९०९ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित हुई थी।
५. ११-१२-१९०९ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित अंग्रेजी रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी देखिये खण्ड ९, पृष्ठ ५२५-३०।

नहीं है क्योंकि उससे हमारा उद्देश्य पूरा नहीं होता। दक्षिण आफ्रिकामें लगभग डेढ़ लाख भारतीय हैं। गिरमिटिया भारतीयोंसे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी शुरुआत हुई है। उसके पश्चात् स्वतन्त्र भारतीय प्रविष्ट हुए। वे व्यापारी थे इसलिए गोरे व्यापारियोंकी आँखोंमें खटके। इससे ही आज दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय सवाल पैदा हुआ है। दक्षिण आफ्रिकामें हमारी स्थिति विषम है। नेटालमें ऑरेंज फ्री स्टेटमें केपमें और ट्रान्सवालमें ऐसे कई कानून हैं जो हमें नापसन्द हैं। ट्रान्सवालमें अधिक कष्ट है। मुझसे पहले हमें जमीन खरीदनेका हक नहीं था। हमें मत देनेका हक नहीं था। हमको रास्तोंमें चलने और गाड़ियों (में बैठने) की दिक्कतें थीं। ये सभी कानून अभी जारी हैं। किन्तु सन् १९०६ तक हम इन कानूनोंका कष्ट भोगते रहे। हमने आवेदनपत्र दिये। मेरे मित्र श्री हाजी हबीब ब्रिटिश एजेंटके पास जाया करते थे। उससे कुछ सहायता भी मिलती थी किन्तु हमने इससे ज्यादा कार्रवाई नहीं की। परन्तु सन् १९०६ में जो कानून बनाया गया वह अजब तरहका था। उसकी उत्पत्ति जाल्से हुई। उस कानूनसे वहाँ रहनेवालोंपर लांछन आता था। और, इसके अलावा दूसरा कानून बनाकर भारतीय मात्रको प्रविष्ट होनेसे रोकनेका था। ऐसा कानून पहले कभी ब्रिटिश उपनिवेशोंमें नहीं बनाया गया था। इस कानूनसे हमारे समाजपर हमला हुआ। इससे हमने विचार किया कि आवेदनपत्र काफी नहीं हैं। हम एक थियेटरमें एकत्र हुए। और उसमें श्री हाजी हबीबने सब लोगोंको कसम दिलाई और वह कसम उन सब लोगोंने ली कि यदि वह कानून पास हो जायेगा तो वे उसे मंजूर नहीं करेंगे और उसको तोड़नेकी जो सजा होगी उसको भोगेंगे। इसमें हमारा निजी स्वार्थ नहीं था। जहाँतक हमारे ही नुकसानकी बात थी वहाँतक तो हमने सब किया। किन्तु जब हमने ऊपरके मुताबिक आक्रमण होते देखा और जब हमने देखा कि यह बात ब्रिटिश राज्यकी जड़ खोदनेवाली है तब हमने चुप न बैठनेका निर्णय किया। हमारे सामने दो रास्ते थे। एक तो यह कि हम शरीर-बलके विरोधमें शरीर बलका प्रयोग करें। यह हमने नापसन्द किया। दूसरा रास्ता कानूनको न माननेका था। यह हमने इख्तियार किया। जैसे डैनियलने जो लौकिक कानून खराब बना उसको माननेसे इनकार किया था[2] वैसे ही हमने भी इनकार किया। इस अपराधमें ब्रिटिश सरकार भी शामिल है। उसको मालूम था कि इस कानूनसे हमारे हृदयको चोट पहुँचेगी। वह ट्रान्सवालके कानूनपर हस्ताक्षर करनेसे इनकार कर सकती थी किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। ब्रिटिश संविधान क्या है? उसके अन्तर्गत सब लोगोंका समान अधिकार माना जाता है। ऐसे संविधानमें रहना मैं मंजूर कर सकता हूँ। किन्तु मुझे तो यह अनुभव हुआ है कि कानूनके मुताबिक एक-भी अधिकारका उपयोग भी हम नहीं कर सकते। मुझे यह कहना पड़ेगा कि ऐसे राज्यमें मैं तो नहीं रहूँगा। मेरा हिस्सा जो भी हो मुझे इसकी परवाह नहीं है किन्तु यदि मैं हिस्सेदार न माना जाऊँ और गुलाम समझा जाऊँ तो मैं इस तरह नहीं रह सकता। उक्त कानून ब्रिटिश

१. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ४३, ३४ और ३५४।
२. देखिए पुरानी बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेंट), डैनियल, अध्याय ६।

राज्यका उल्लंघन है। और उस कानूनका विरोध करके हम भारतकी ही नहीं बल्कि समस्त साम्राज्यकी सेवा करते हैं। यह सत्याग्रह हम ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध भी कर रहे हैं। और मुझे उम्मीद है कि यह सभा हमसे कहेगी कि हम जो-कुछ कर रहे हैं वह उचित है। (तालियाँ)। हम इससे कम कुछ करें तो साम्राज्यमें हिस्सेदारके रूपमें नहीं रह सकते। और जहाँ हिस्सा नहीं है वहाँ साम्राज्य कैसा? इसीलिए मैंने कहा है कि यह लड़ाई इस जमानेमें दुनियाकी बड़ीसे-बड़ी लड़ाई है। हम बिलकुल निःस्वार्थ भावसे लड़ रहे हैं और हम जिस हथियारका उपयोग करते हैं वह केवल आत्म-त्याग है। हम जो-कुछ माँगते हैं वह है कानूनमें एक-सा अधिकार। जनरल स्मट्स ऐसा करनेसे इनकार करते हैं। हम एक उदाहरण लें। कोई मालिक गुलामसे कहे कि तू मेरे साथ ही बैठना तू मेरे साथ ही खाना खाना और मैंसा ही खाना। किन्तु मेरे पास तेरी गुलामीका जो पट्टा है वह तो वैसाका वैसा रहेगा। तो क्या वह गुलाम जो छूटना चाहता है, ऐसा करार मंजूर कर लेगा? उसको तो गुलामीका पट्टा फाड़ना है। ऐसी ही बात हमारी है। हम गुलामीके पट्टेको फाड़ना चाहते हैं।

अब हम आपकी सहायता चाहते हैं। सत्याग्रहीके रूपमें हम किसीपर शरीर-बल नहीं आजमाते। न ऐसा चाहते हैं कि कोई दूसरा आजमाये। हम चाहते हैं कि आप हमारे संघर्षको समझें। यदि आपको हमारी लड़ाई ठीक लगे तो आप हमें प्रोत्साहन दे सकते हैं। आप ब्रिटिश सरकारको बता सकते हैं कि आप उसके इस अपराधमें शामिल नहीं हैं।

इसके बाद सर रेमंड वेस्ट और सर मैंचिरजी भावनगरीने भाषण दिये। मेजर सैयद हुसैन बिलग्रामीने भी जोशीला भाषण देते हुए कहा कि [ट्रान्सवालकी] इस लड़ाईके पीछे सारा भारत है। उसमें हिन्दू, मुसलमान और पारसी सब शामिल हैं। इसके बाद निम्नलिखित प्रस्ताव[1] सर्वसम्मतिसे स्वीकृत किया गया

> यह सभा ट्रान्सवालके भारतीयोंके नागरिक अधिकारोंकी माँग और उनके शान्तिपूर्ण तथा निःस्वार्थ संघर्षके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करती है और इस संघर्षको जारी रखनेमें पूर्ण प्रोत्साहन देती है।

इंग्लैंडमें इस तरह आन्दोलन चला। अब श्री रिच जगह-जगह जायेंगे। उनको ऑक्सफर्डमें और अन्यत्र भाषण देनेके निमन्त्रण मिले हैं। वे वहाँ भी जानेवाले हैं। ९ नवम्बरको व कुमारी स्मिथ यहाँ बोले थे। उस सभामें एक सज्जनने ५ व्यक्तियोंके हस्ताक्षर करानेका वचन दिया है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-१२-१९०९ और २५-१२-१९०९

1. मूल प्रस्तावके लिए देखिए इंडियन ओपिनियन ११-१२-१९०९।

७ पत्र ए० एच० वेस्टको

यूनियन कैसिल लाइन
आर० एम० एस० किल्डोनन कैसिल,
नवम्बर २६, १९०९

प्रिय वेस्ट,

यह एक जरूरी पत्र है। मुझे आर्थिक कठिनाइयोंके बारेमें सिवाय एक पत्रके जो श्री कार्डिसने[1] श्री कैलेनबैकको[2] बताकर भेजा था और कुछ मालूम नहीं था। मैं कब कहाँ जाऊँगा यह अनिश्चित है इसलिए मैंने श्री कैलेनबैकको पत्र लिख दिया है। इस स्थितिके लिए मुझे दुःख है। जो भी प्रबन्ध कर सकता था वे सब किये हैं। कई एक चीजें छापनेके बारेमें मेरी हिदायतें इस पत्रके साथ नहीं जानी चाहिए, पर डॉ० मेहताके[3] आदेशपर यह बात लागू नहीं है।

कुमारी स्मिथने स्वतः मुझे यह सूचना दी है कि अब आगे वे अपनी मासिक चिट्ठीके लिए पारिश्रमिक नहीं लेना चाहतीं फिर भी वे अपने लेख भेजती रहेंगी। मैंने उन्हें बता दिया है कि वे किन विषयोंपर लिख सकती हैं। मेरा सुझाव है कि आप उन्हें धन्यवादका पत्र लिख दें।

आर्थिक स्थितिको सन्तोषजनक स्थितिमें लानेके लिए आप जो भी अन्य परिवर्तन आवश्यक समझें कर सकते हैं। परन्तु मैं काछाभाईकी[3] सिफारिश करना चाहता हूँ। मेरा सुझाव है कि उन्हें हानि न पहुँचने पाये। जहाँतक अर्थ कार्यालयको बन्द करनेकी बात है इस मामलेपर सावधानीके साथ विचार करनेकी आवश्यकता है। परन्तु यदि आप समझते हैं कि इसका बन्द कर देना अच्छा है, तो आप अवश्य ऐसा कर सकते हैं। जिन्हें अपना पत्र परिवर्तन या भेंटमें भेजा जाता है उनकी सूचीमें आप जैसी चाहें कमी कर सकते हैं और अंग्रेजी स्तम्भोंका आकार घटा सकते हैं।

१ बर्नार्ड क्रिस्टोफ़र्स; कुछ समय तक फीनिक्स स्कूलके अध्यापक रहे थे; भारत आये और सेवाग्राममें गांधीजीके साथ रहे। १९६ में यहीं स्वर्गवासी हुए।

२ हर्मन कैलेनबैक, गांधीजीके निकटतम मित्र और सहयोगी; अपना फार्म सत्याग्रहियोंके रहनेको दे दिया था। देखिए "पत्र : कैलेनबैकको" पृष्ठ ३८०–८१।

३ दो समकालीन नेता एम० डी० पारसी-रुस्तमजी और चौधरी; इनका गांधीजीका साथ उसी समयसे शुरू हुआ जब विलायतमें उनसे गांधीजीका अच्छा परिचय हुआ क्योंकि उनका लगाव रहा था। गांधीजीको उसके लेकर अपनी मृत्यु-पर्यन्त (सन् १९३१) वे गांधीजीके कामोंमें आर्थिक सहायता देते रहे।

४ देखिए पत्र सम्पादित।

मेरा सुझाव है कि आप यह सब भी कैलेनबैककी सलाहसे करें। ऐसी सम्भावना है कि मैं जेल जानेसे पहले उनसे मिलूँ। उस दशामें मैं उनसे इन बातोंके बारेमें पूरी तरहसे बात करूँगा।

छगनलालके सम्बन्धमें बात यों है कि डॉ० मेहताने मेरे लड़कोंमें से एकको भेजनेकी इच्छा प्रकट की थी। उस समय मैंने उन्हें सुझाव दिया था कि वे मुझपर रोक न लगायें। वे मेरे चुने हुए एक और व्यक्तिको भी भेजनेको तैयार थे। मेरा मन दो व्यक्तियोंको भेजनेका उनका यह प्रस्ताव माननेका नहीं था। इसलिए मैंने उनसे कहा कि वे मुझे अपने लड़कोंकी जगहपर छगनलाल या मगनलालको लन्दन भेजने दें। यह ऐसी छात्रवृत्ति तो थी नहीं जिसके लिए प्रतिस्पर्धा हो। मुझे लगा कि मैं यह निर्णय कर सकता हूँ कि मेरे लड़कोंके स्थानपर किसे लन्दन जाना चाहिए। परन्तु जिसका मैं चुनाव करूँ उसको मुक्त कर देनेके लिए मुझे आपकी अनुमति लेनी चाहिए। जिस निर्णयपर मैं पहुँचा हूँ उसके कारणोंकी चर्चा मैं नहीं कर सका हूँ। परन्तु जब हम मिलेंगे मैं निश्चय ही इसकी बात करूँगा। ये कारण इतने बारीक और विस्तृत हैं कि मैं उन्हें पूरी तरह लिख नहीं सकता और फिर ऐसी दशामें जब कि मेरे पास एक मिनट भी फाजिल नहीं है।

स्कूलकी छात्रवृत्ति अबतक भी दी जा रही है। भारतसे भी कई छात्रवृत्तियोंके वचन मिले हैं। परन्तु अभी हम अनिश्चयकी स्थितिमें हैं मैं न उन्हें स्वीकार करनेका निर्णय कर सका हूँ और न ये छात्रवृत्तियाँ अस्वीकृत ही की गई हैं। भारतकी छात्रवृत्तियोंका प्रस्ताव पोलकके द्वारा आया है। मैंने उनसे इन छात्रवृत्तियोंकी माँग करनेके लिए उस समय कहा था जब इस मामलेपर डॉ० मेहतासे मेरी बात हुई थी।

मैं चाहता हूँ कि सब लोग इसका ध्यान रखें और भविष्यको न छेड़ा जाये। पिताके नाते मुझे लगा कि अभी उसका इंग्लैंड न जाना उसके हितमें है। आगेकी बात पूर्णतया इसपर निर्भर करती है कि छगनलाल क्या कर सकते हैं। मेरा खयाल है कि सब लोग समझते हैं कि इन दोनोंकी शर्तें कड़ी हैं, गरीबी स्वीकार करना और हम चाहे जहाँ रहें, फीनिक्सके कार्यको जारी रखना ये ऐसे कार्य हैं जो छोड़े नहीं जा सकते।

श्री कॉर्डिसने मुझसे एक प्रश्न किया है कि जो आयोजक[1] लम्बे समय तक के लिए बीमार पड़ जायें उनका खर्च उठानेके लिए क्या किया जाना चाहिए। मेरा उत्तर यह है कि हम एक परिवार जैसे हैं और उनका पालन-पोषण तो हमें करना ही होगा तथा अपनी गरीबीका खयाल रखते हुए यथा-शक्ति चिकित्सा आदिकी सहायता भी करनी होगी। मैं इस बातके लिए पूरी तरह तैयार हूँ कि ऐसे मामलोंके लिए मेरी गारंटी रहे। मैं यह भी कह दूँ कि जो आयोजक नहीं हैं उनके बारेमें भी एक उचित सीमाके अन्दर यही शर्तें लागू होनी चाहिए। मेरी रायमें ऐसे ही मामलोंमें हम अपने आदर्शोंको सर्वोत्तम रूपमें प्राप्त कर सकते हैं। हम निरन्तर त्यागका जीवन

१. फीनिक्सकी बस्तीकी योजनाके सम्बन्धमें देखिए "पत्र: ए० एच० वेस्टको" पृष्ठ १११-
१२।

बिताने और उसमें आनन्द प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु बादवाले सुझावको मंजूर या नामंजूर करना आपकी मर्जीपर है।

आपका हृदयसे
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (सी डब्ल्यू ४४१२) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य मी ए एच वेस्ट।

८. पत्र मगनलाल गांधीको

यूनियन कैसिल लाइन
नवम्बर २७ १९ ९

चि मगनलाल

मैंने आर्थिक स्थितिके सम्बन्धमें मी मैकिन्टायरका पत्र पढ़ने और मी वेस्टको[1] पत्र लिखनेके बाद अपने मनमें उठे विचारोंको तुमपर प्रकट करनेका निश्चय किया है। यह पत्र पुरुषोत्तमदासको[3] पढ़वा देना।

फीनिक्सकी परीक्षा अब होगी। शायद जोहानिसबर्गसे रुपया न मिलेगा। हमारा प्रश्न यह है कि जबतक फीनिक्समें एक भी व्यक्ति रहेगा तबतक हम इंडियन ओपिनियन को — भले एक पन्नेका ही अंक क्यों न हो — अवश्य प्रकाशित करेंगे और लोगोंमें बाँटेंगे। वहाँ किसी प्रकारका झगड़ा न होने देना। कहा-सुनी सह लेना। दर्जनका दफ्तर बन्द होता हो तो हो जाने देना। यह हमेशा याद रखना कि मुख्य बात पर दृढ़ रहना है। उसपर बलिदान होनेके लिए अन्य सब वस्तुओंका त्याग करना पड़ता है। असल बात तो यही है कि चाहे जितने कष्ट सहने पड़ें पत्र निकालना है और फीनिक्स नहीं छोड़ना है। यह रहे चाहे अन्य सब-कुछ चला जाये। हम पत्रकी मूर्ति मानकर पूजना नहीं चाहते किन्तु अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते हैं। हमारी जीत पत्र निकालनेमें नहीं प्रतिज्ञाके पालनमें है। ट्रान्सवालके कानूनको रद करवानेमें कुछ नहीं है प्रतिज्ञाके पालनमें ही सब-कुछ है। इससे आत्माका विकास होता है। यही इसका और [हमारी] सारी प्रवृत्तियोंका रहस्य है या होना चाहिए। सुझाव यह देना कि चाहे मी वेस्ट डर्बन जायें या मणिलाल किन्तु दफ्तर कायम रहे।

1. स्कॉटलैंडके एक थियॉसॉफिस्ट, जो शुरूमें गांधीजीके पास लिपिकके तौर काम करने आये थे और बादमें उनके सहयोगी बन गये थे।
2. देखिए "पत्र ए एच वेस्टको" पृष्ठ ८०–८१।
3. पुरुषोत्तमदास देसाई, जो फीनिक्स स्कूलके व्यवस्थापक थे; देखिए "पत्र ए एच वेस्टको" पृष्ठ ११२।

मैं तुम दोनोंको ही बताता हूँ कि यदि मणिलालकी इच्छा हो और बा[1] स्वीकृति दें तो अब तुम्हें मणिलालको इस संघर्षके लिए अर्पित कर देना है। इससे उसकी चंचल वृत्ति शान्त होगी। उसने यह माँग भी की है। किन्तु यदि ऐसा न हो तो उसका डर्बन जाना भी ठीक ही है, और तुम फीनिक्समें रह सकते हो। किन्तु यह आवश्यक होनेपर ही किया जाये। यह निश्चय कर लो कि यदि [जोहानिसबर्गसे] और रुपया न मिले तो भी घबराओगे नहीं। लोगोंको जवाब यह देना कि रुपया न आयेगा तो तुम दूसरी कोई कमाई करके भी खर्च पूरा करोगे। यह भी ऐलान कर देना कि यदि अन्य कोई न रहेगा तो भी तुम तो फीनिक्समें ही मरोगे। तुम्हारे उत्साहको दूसरे तुरन्त ग्रहण करेंगे किन्तु एक ही शर्त है कि इस उत्साहमें बचपन न होना चाहिए बल्कि आत्म-स्थिरता होनी चाहिए। यह उत्साह सच्चा होना चाहिए कोरी डींग नहीं। यह निश्चय समझो कि उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। अन्य कोई फेरफार करना उचित जान पड़े तो वह किया जा सकता है। यदि कहीं परिवर्तन ठीक न बैठे तो भी हो जाने देना। आर्थिक लाभ और हानिके विचारसे किसी बातपर आग्रह हरगिज न करना चाहिए। हम अज्ञानवश मान लेते हैं कि हमें अपनी मेहनतसे रोटी मिलती है। यदि यह कहावत कि जिसने दाँत दिये हैं वह चबेना भी देगा ही ठीक-ठीक समझ ली जाये तो अच्छा हो।

प्रभुदास गांधीके जीवननुं परोढ में गांधीजीके स्वाक्षरोंमें लिखित मूल पत्रके चित्रसे।

९. पत्र : रामदास गांधीको

यूनियन कैसिल लाइन
आर० एम० एस० किल्डोनन कैसिल
बुधवार, [नवम्बर २७, १९०९]

चि० रामदास[2]

तुम कब मिलोगे इसकी कुछ खबर नहीं, इसलिए यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं लाया इससे बापूपर नाराज मत होना। मुझे कोई चीज पसन्द नहीं आई। मुझे यूरोपकी कोई भी चीज पसन्द नहीं आती तो क्या करूँ? मुझे तो भारतका सब-कुछ पसन्द है। यूरोपके लोग ठीक हैं। उनका रहन-सहन ठीक नहीं है। मिलनेपर विस्तारसे समझाऊँगा।

१. श्रीमती कस्तूरबा गांधी, गांधीजीकी पत्नी और मणिलाल गांधीकी माता।
२. गांधीजीके तृतीय पुत्र।

मेरे जेलमें जानेसे तुम घबराना मत। तुम्हें खुश होना चाहिए। जहाँ हरिलाल[1] है वहाँ मुझे होना ही चाहिए। संघर्षके विचारसे भी मुझे वहाँ ही होना चाहिए।

तुम आनन्दसे रहना। मैं तुमको शरीरसे हृष्टपुष्ट देखना चाहता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९१) से।

सौजन्य: श्रीमती सुशीलाबेन गांधी।

१०. तार: गो० कृ० गोखलेको[2]

[नवम्बर ३०, १९०९]

कृपया श्री टाटाको[3] यथासम्भव उदारतापूर्ण सहायता देनेके लिए धन्यवाद दीजिए। विपत्ति बड़ी। कैदियोंको बहुत कष्ट। धार्मिक भावनाओंकी उपेक्षा। खुराककी कमी। कैदी मल-मूत्रकी बालटियाँ ढोते हैं। इनकार करनेसे कम खुराकपर तनहाईकी सजा मिलती है। प्रमुख मुसलमान हिन्दू, पारसी जेलमें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

गुजराती, १९-१२-१९०९

1. गांधीजीके सबसे बड़े पुत्र।
2. सम्भवतः इंडियन ओपिनियनके गुजराती विभागके अनुसार यह तार गांधीजीने प्रो० गोखलेको भेजा था। गांधीजीने [illegible] नवम्बरको केपटाउन पहुँचनेपर इसीके बारेमें लम्बा तार लिखा था। देखिए "तार: गो० कृ० गोखलेको", पृष्ठ १ ।
3. रतनजी जमशेदजी टाटा (१८७१-१९१८), प्रमुख भारतीय उद्योगपति और दानी; १९१२ में [illegible] की स्थापना की; १९१६ में 'सर' की उपाधि पाई।

११ केपटाउनसे प्रतिनिधियोंका सन्देश[1]

[नवम्बर १ १९०९]

हमारी प्रार्थना है कि आप अपने स्तम्भों द्वारा हमारे ट्रान्सवालवासी देशभाइयोंको सूचित कर दें कि शिष्टमण्डलके कार्यके वास्तविक परिणामसे प्रकट होता है कि हमारा संघर्ष एक राष्ट्रीय संघर्ष है। हमारी लड़ाईका मुद्दा बहुत साफ हो गया है यह प्रवासियोंके बारेमें कानूनी समानताकी माँग। हमें आशा है कि सत्याग्रही दृढ़ रहेंगे और समस्त दक्षिण आफ्रिकाके हमारे देशभाई हमारा समर्थन करेंगे।

हमें माननीय प्रो० गोखलेका एक तार मिला है जिसमें उन्होंने बताया है कि ट्रान्सवालके संघर्षकी सहायताके लिए बम्बईके रतनजी जमशेदजी टाटाने २५, रुपये दिये हैं। इस उदारतापूर्ण सहायताका अर्थ है कि हमारी मातृभूमि पूर्णतया जागरूक है। आवश्यकता यह है कि सत्याग्रही दिखला दें कि वे एक ऐसे आदर्शके लिए मरनेको तैयार हैं जो धर्ममय सात्त्विक और राष्ट्रीय है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४-१२-१९०९

१२ भेंट 'केप आर्गस' को[2]

[केपटाउन
नवम्बर १ १९ ९]

डा० अब्दुलरहमानने[3] आज प्रातःकाल श्री गांधी और [श्री] हबीबका जो गत जूनमें दक्षिण आफ्रिकासे भारतीय सत्याग्रहियोंकी ओरसे शिष्टमण्डलके रूपमें इंग्लैंडके लिए रवाना हुए थे परिचय कराया। वे आज सुबह पहुँचे हैं और पेरीमिंगियमें रोके न गये तो ट्रान्सवालकी अपनी यात्रा जारी रखेंगे।

श्री गांधी युवक दीखते हैं परन्तु उनकी अवस्था ४० वर्षसे ऊपर है। उनका एक पुत्र सत्याग्रहीके रूपमें बार बार जेल हो आया है। श्री गांधी भी इसी कारण जेल जा चुके हैं।

१ इंडियन ओपिनियनमें यह तार श्री मो० क० गांधी और श्री हाजी हबीबकी ओरसे, जो मंगलवारको केपटाउन पहुँचे थे, प्रकाशित हुआ था।

२. यह इंडियन ओपिनियन ११-१२-१९ ९ में उद्धृत हुआ था।

३ अफ्रिकी राजनीतिक संघ (अफ्रिकन पोलिटिकल ऑर्गनाइजेशन)के अध्यक्ष और केपटाउन नगरपालिकाके सदस्य।

[गांधीजी] सत्याग्रह तीन सालसे जारी है और अब ट्रान्सवाल-सरकार और ब्रिटिश भारतीयोंके बीच विवादका विषय क्या है यह यथासम्भव पूर्णतया स्पष्ट है। हम इस दौरानमें बराबर भारतसे आनेवाले भावी प्रवासियोंके सम्बन्धमें कानूनी अथवा सैद्धान्तिक समानताके लिए लड़ते रहे हैं। हम ट्रान्सवालके इस दृष्टिकोणको पूर्णतया स्वीकार करते हैं कि भारतसे आनेवाले प्रवासियोंकी बहुत सख्त परीक्षा होनी चाहिए। परन्तु हमने सदैव यह माना है कि इस स्थितिको लानेका तरीका सम्पूर्ण भारतको चोट पहुँचानेवाला नहीं होना चाहिए, जैसा कि इस समय है और अन्य उपनिवेशोंमें इसका जो विधान है उससे अलग नहीं होना चाहिए। ट्रान्सवालका विधान अपने ढंगका पहला है।

ट्रान्सवालसे भारतीयोंको इसलिए निकाला और बाहर रखा जाता है कि वे भारतीय हैं अर्थात् यह निष्कासन और प्रतिबन्ध प्रजाति या रंगके आधारपर है। इसके विपरीत अन्य उपनिवेशोंमें आस्ट्रेलियामें भी कठोर शैक्षणिक परीक्षा ही इसका आधार है। प्रवासी विभागकी देखरेखमें जो प्रशासक होते हैं उनकी हिदायतसे यह परीक्षा कड़ी या आसान कर दी जाती है।

इसके विरुद्ध हमें कुछ नहीं कहना है परन्तु मुझे लगता है कि सिद्धान्तमें पूर्ण रूपसे समानता बनी रहनी चाहिए, नहीं तो ब्रिटिश संविधान और ब्रिटिश प्रजा सर्वथा अर्थहीन शब्द हो जायेंगे।

मुझे अभी तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसने इस प्रश्नका अध्ययन किया हो और फिर जिसे हमने जो रुख अख्तियार किया है उसके विरुद्ध कुछ कहना हो। इस अनुचित असमानताको जान-बूझकर कानूनकी पुस्तकमें बनाये रखना ही विचारणीय प्रश्न है। मैं ट्रान्सवालकी अन्यवर्गी विधि-व्यवस्थाके बारेमें यद्यपि वह बुरी है कुछ नहीं कहता परन्तु उस मूलभूत मुद्देकी बात करता हूँ जिसकी ओर मैंने ध्यान दिलाया है। मैं यह भी कह दूँ कि संघर्ष पूर्णतया आदर्श बन गया है — इस अर्थमें कि जो इसमें लगे हैं उनका अपना कोई निजी स्वार्थ नहीं है। वे केवल एक सिद्धान्तके लिए लड़ रहे हैं। संघर्षका जो तरीका अपनाया गया है, वह भी आदर्शमय है, क्योंकि हम उस कानूनकी जिसे हम अपनी अन्तरात्मा और स्वाभिमानका विरोधी मानते हैं, अवज्ञा करके व्यक्तिगत कष्ट-सहनके द्वारा राहत पाना चाहते हैं।

हम कष्ट सहते हैं, यही सजा है इस तरह २,५ से ऊपर भारतीय ट्रान्सवालमें कैद भुगत चुके हैं — और कुछ तो बार-बार बार भी। इस संख्यामें व्यापारी फेरी-वाले नौकर और समस्त विभिन्न धर्मोंके अनुयायी हैं। और आज प्रो गोखलेका तार मिला है। वे कलकत्ता वाइसरॉय-परिषदके एक सदस्य हैं। तारमें उन्होंने कहा है कि भारतके एक करोड़पति श्री रतन जमशेदजी टाटाने २५, रुपयों (१६६ पौंड) का चन्दा सत्याग्रहियोंके लिए भेजा है। अभीतक हमने दक्षिण आफ्रिकाके बाहरसे चन्देकी माँग नहीं की है। परन्तु, चूँकि संघर्षके लम्बे होनेसे बहुतेरे भारतीय परिवार गरीब हो गये हैं हमारे लिए दक्षिण आफ्रिकाके बाहरसे भी सहायता स्वीकार करना आवश्यक हो गया है। इंग्लैंडमें बहुत-से अंग्रेजों और भारतीयोंने स्वेच्छासे चन्दे जमा किये हैं

और लड़ाई जारी रखनेके लिए सत्याग्रहियोंको प्रोत्साहित करनेवाले पत्रपर[1] हस्ताक्षर किये हैं।[2]

हम विरोध करनेकी भावनासे इंग्लैंड नहीं गये थे बल्कि वहाँ जो इतनी संख्यामें उपनिवेशी राजनीतिज्ञ जमा हुए थे उनकी उपस्थितिसे लाभ उठानेके उद्देश्यसे गये थे। मैं यह निश्चित मानता हूँ कि जब दक्षिण आफ्रिकाके लोग हमारे संघर्षके आदर्श स्वरूपको समझेंगे तब यद्यपि स्वयं उनका आदर्श भारतसे भारतीयोंको बहुत संख्यामें आने जानेको प्रोत्साहन देना नहीं है वे हमें वह गम्भीर यातना न देना चाहेंगे जो इस समय दी जा रही है। मेरा खयाल है कि राहत पानेके लिए हमने जो रास्ता अपनाया है, उसका दक्षिण आफ्रिकाके राजनीतिज्ञोंको स्वागत करना चाहिए क्योंकि हम दूसरोंको कष्ट नहीं पहुँचाते। यद्यपि हमारी इंग्लैंडकी यात्राका परिणाम नगण्य था तथापि मुझे सन्तोष है कि अंग्रेज अब संघर्षके वास्तविक स्वरूपको समझ गये हैं और उनके मनपर ऐसा असर हो गया है कि हम कर्तव्यकी भावनासे प्रेरित हैं।[3]

जहाँतक भारतमें इसके प्रभावका सम्बन्ध है भारतके समस्त प्रमुख नगरोंमें सभाएँ हुई हैं जिनमें सभी विभिन्न वर्गोंके लोगोंने सत्याग्रहियोंका एकमतसे समर्थन किया है। और मुझे ज्ञात हुआ है कि लॉर्ड मॉर्लेकी परिषदसे अवकाश प्राप्त करने वाले एक[4] भारतीयने कहा है कि ट्रान्सवालमें भारतीयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारके प्रश्नने भारतको जितना आन्दोलित किया है उतना और किसी प्रश्नने नहीं।[5]

प्रश्न क्या शिक्षा सम्बन्धी परीक्षा स्वीकार की जायेगी?

[श्री गांधी] हाँ प्रवासी अधिकारीको इस बारेमें निर्णय देनेका अधिकार होगा कि कैसी परीक्षा काममें लाई जाये और भारतीयोंके बारेमें कठिन परीक्षा निर्धारित करनेकी और जो उस परीक्षामें खरे न उतरें उनको अस्वीकार कर देनेकी उसे छूट होगी। ऐसा आस्ट्रेलिया और अन्य उपनिवेशोंमें किया जा रहा है। मुझे इसमें कोई कठिनाई नहीं मालूम होती। भय इस बातका है कि शैक्षणिक परीक्षासे आन्दोलन जारी रहेगा। परन्तु मैं इस भयको बेबुनियाद समझता हूँ।

अन्तमें श्री गांधीने अपना यह विश्वास प्रकट किया कि जनरल स्मट्स उनके मामलेको सहानुभूतिके साथ सुनेंगे।

[अंग्रेजीसे]

केप आर्गस, ३–११–१९०९

१ देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ५२५–२६।
२. यह अनुच्छेद इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत नहीं किया गया था।
३ यह वाक्य इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत नहीं किया गया था।
४ डेवर हुसेन वेक्समी।
५. यह अनुच्छेद इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत नहीं किया गया था।

१३. पत्र : मणिलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
कार्तिक बदी ९ [संवत्] १९६६
[दिसम्बर २, १९०९]

चि. मणिलाल,

जबतक तुम धर्म-नीतिपर दृढ़तासे चलोगे और अपने कर्तव्यका पालन करते रहोगे तबतक मुझे तुम्हारी किताबी शिक्षाके सम्बन्धमें कोई चिन्ता नहीं। शास्त्रोंमें जो यम और नियम बताये गये हैं, उनका पालन किया जाये इतना ही काफी है। तुम अपने शौकको पूरा करने या अपनी योग्यता बढ़ानेके लिए अपना किताबी ज्ञान बढ़ाना चाहो तो मैं उसमें सहायक बनूँगा। तुम वैसा न करोगे तो मैं तुमसे नाराज भी न होऊँगा। किन्तु मनमें जो भी एक निश्चय करो उसपर दृढ़ रहनेका प्रयत्न करना। लिखना कि तुम इन दिनों छापेखानेमें क्या-क्या कर रहे हो। किस समय उठते हो और खेतमें क्या काम करते हो इत्यादि भी लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पुस्तक : महात्मा गांधीजीना पत्रो, द्वाह्याभाई पटेल द्वारा सम्पादित और सेवक कार्यालय, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशितसे।

१४. भेंट : रायटरके प्रतिनिधिको

[जोहानिसबर्ग
दिसम्बर २, १९०९]

सर्वश्री गांधी और हाजी हबीब[1] आज प्रातः पार्क स्टेशन पहुँचे। गाड़ी आनेके बहुत पहले ही सैकड़ों भारतीय और चीनी वहाँ जमा हो गये थे। गाड़ी स्टेशनपर पहुँची, तब कोई ९, भारतीय तथा चीनी और कतिपय यूरोपीय वहाँ उपस्थित थे। भीड़ अत्यन्त व्यवस्थित थी। प्रमुख हर्ष-ध्वनिसे आनेवालोंका स्वागत किया गया और श्री गांधीपर पुष्पवर्षा की गई।

श्री गांधीने ट्रान्सवाल-सरकारको इस सौजन्यके लिए धन्यवाद दिया कि उसने कोई हस्तक्षेप किये बिना उनको फिरसे देशमें आने दिया। उन्होंने कहा कि मुझे आशा है ट्रान्सवाल-सरकार विधानमें सुधार करनेके बारेमें शीघ्र ही उपाय करेगी। मेरे विचारसे

१. ये दोनों जन शिष्टमण्डलमें शामिल थे जो इंग्लैंड गया था और हालमें ही लौटा था।

ट्रान्सवाल-सरकारकी कार्रवाई भारतीयोंको नहीं बल्कि साम्राज्यके स्थायित्वको चोट पहुँचा रही है। इंग्लैंड और भारतके लोग इस तथ्यके प्रति सजग होते जा रहे हैं कि यह संघर्ष न्यायपूर्ण है। वे ट्रान्सवाल-सरकारके इस कदमका हानिकर स्वरूप पहचान रहे हैं। भारतके लोग संघर्ष जारी रखनेकी आवश्यकताके प्रति विशेष रूपसे जागरूक हैं जैसा कि पिछले कुछ दिनोंमें श्री टाटाके[1] उदार दानसे प्रमाणित है। उन्होंने कहा कि मुझे यह जानकर हर्ष हो रहा है कि हमारे साथ सहानुभूति रखनेवालोंमें यूरोपीयोंकी भी एक बड़ी संख्या है। अंग्रेज लोग अब इस संघर्षके औचित्यको समझ रहे हैं। श्री गांधी और उनके सभी समर्थक अपनेको बिलकुल स्वस्थ महसूस कर रहे थे। उनकी जमातके बहुतेरे लोग अपने उद्देश्यके लिए बलि होनेको तैयार हैं।

इसके बाद लोग श्री गांधीको क्लेअरमौंट ले गये। वहाँ एशियाइयोंकी एक सभा थी। रवाना होनेसे पहले, उन्हें मालाएँ पहनाई गईं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४-१२-१९०९

१५. पत्र: मगनलाल गांधीको

गुरुवार रात्रि
[दिसम्बर २, १९०९को या उसके बाद][2]

चि॰ मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। वहाँ आजकल अव्यवस्था है, यह समझ गया हूँ। तुम्हें इस अव्यवस्थाके जो-जो कारण प्रतीत होते हों उन्हें तुमने जैसा समझा हो वैसा मुझे लिख भेजनेमें कोई हर्ज नहीं। मैं उनपर विचार कर लूँगा। तुम द्वेषभावसे कदापि न लिखोगे इसका मुझे विश्वास है।

अभीतक मुझे बैंककी ओरसे कोई पत्र नहीं मिला। तुम जाकर उन्हें याद दिलाना। मैं उन्हें याद दिलाना फिर भूल गया हूँ। अवकाश मिलता ही नहीं। इतना काम निबटानेके बाद यह करूँगा यही करते दिन बीत जाता है।

जो लोग फीनिक्समें सम्मिलित हुए हैं उनका कर्तव्य है कि वे वहाँका रहन-सहन सुन्दर बनायें और इंडियन ओपिनियन की खूब उन्नति करें क्योंकि इंडियन ओपिनियन के द्वारा लोगोंको शिक्षा मिलती है और परोपकार होता है। फीनिक्समें

१. देखिए “भेंट: केप आर्गसको” पृष्ठ ८८।

२. अनुमान है कि यह पत्र जिसके केवल पहले दो पृष्ठ उपलब्ध हैं, गांधीजीने इंग्लैंडसे लौटनेके बाद लिखा होगा। इसके अनुच्छेदमें बैंकका जो उल्लेख आता है उससे मालूम पड़ता है कि लगभग काम जो पहले छगनलाल गांधी करते थे उसका भार मगनलाल गांधीने ग्रहण किया था। यह पत्र लिखे जानेके समय छगनलाल गांधी भारतमें थे और इंग्लैंड जानेवाले थे।

यदि कुछ लोग शक्ति-भर परिश्रम नहीं करते चीजोंकी बरबादी करते हैं, अथवा झगड़े करते हैं तो इससे निराश नहीं होना है। जो समझदार हैं उन्हें इस दोषको दूर करनेके लिए दुगना प्रयत्न करना है। गीता का अध्ययन [ ] उसके शब्दोंकी ध्वनिका प्रभाव [ ] जो समझमें नहीं आती [ऐसी]।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्रकी फोटो-नकल (एस एन ९ /१) से।

१६ उत्तर 'स्टार' को

[जोहानिसबर्ग]
दिसम्बर १ १९ ९

महोदय

मेरे देशवासी गत तीन वर्षोंसे जिस संघर्षमें लगे हैं उसके विषयमें आपको और *आपके पाठकोंको एक बार फिर कष्ट देनेकी अनुमति चाहता हूँ।*

मुझे तो लन्दनमें भी यहाँके अपने अधिकांश देशवासियोंमें आपकी तरह, संघर्षसे उकतानेका कोई लक्षण नहीं नजर आया। निस्सन्देह उन्होंने इसका बोझ महसूस किया है। बेशक कुछ टूटे भी हैं और मंजिल तक पहुँचते-पहुँचते कुछ और भी टूट सकते हैं। किन्तु कल पार्क स्टेशनपर जो प्रदर्शन हुआ उसने महज मोटे तौरपर देखनेवालेके सामने भी यह स्पष्ट कर दिया होगा कि भारतीयोंकी लगभग सारी जमात संघर्षकी पृष्ठपोषक है और जिन्होंने कमजोरी या अन्य किसी कारणसे कानूनको मान लिया है, वे भी उसे सक्रिय सत्याग्रहियोंसे कम तीव्रताके साथ नापसन्द नहीं करते।

किन्तु मैं आपके पाठकोंका ध्यान सत्याग्रहकी शक्ति या दुर्बलताके प्रश्नकी अपेक्षा उसकी विशेषताओंकी ओर खींचना चाहता हूँ। मैकमेकने[2] किये गये आपके उद्धरणके बावजूद मैं अपनी यह बात दोहरानेका साहस करता हूँ कि प्रवासके सम्बन्धमें हमारे कानूनमें समानताके सिद्धान्तकी पुनःस्थापना भले ही कर दी जाये और प्रशासनमें जान-बूझकर उसे दूसरी तरहसे बरता जाये तो भी मैं इस आरोपका खण्डन करूँगा कि मैंने दो-अर्थी शब्दोंके प्रयोगसे[3] किसीको भ्रममें डाला है। ब्रिटिश संविधानके एक महान सिद्धान्तको प्रशासकीय चालाकी मक्कारी इत्यादि कहकर उड़ाया नहीं जा सकता। ये शब्द यहाँ संगत नहीं हैं। सिद्धान्त भारतीय प्रशासन-सेवा (सिविल सर्विस) सारी ब्रिटिश प्रजाके लिए खुली हुई है व्यवहारतः भारतीयोंके लिए

१ १ दिसम्बर १९ ९ के स्टारमें एक प्रमुख लेख "श्री गांधीकी चालें" छपा उसके उत्तरमें लिखा गया यह पत्र ११ दिसम्बर १९ ९ को इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत किया गया था।

२. लॉर्ड मेकॉले; देखिए "लेज़: सत्ताके प्रतिनिधि" पृष्ठ ८८-८९।

३ टेलीरैंडका एक कथन। वक्तव्यका आशय है कि ऐसे पूरे निर्दोष विचार भी हमें छलते रहते हैं — जो हमसे भले तो भाँति-भाँति करते हैं, लेकिन परोक्ष रूपसे हमारी आशाओंपर आघात करते रहते हैं।

बहुत ही सीमित अर्थमें चुकी है। इस प्रकार सिद्धान्तसे हटकर कल्पना दुर्भाग्यपूर्ण है, किन्तु न तो यह मक्कारी है न छल-कपटसे भरा हुआ क्योंकि यह खुले तौरपर किया जा रहा है और चाहे सही हो चाहे गलत यह एक प्रशासनिक आवश्यकताके रूपमें किया जाता है। आस्ट्रेलिया नेटाल और अनेक दूसरे उपनिवेशोंमें वैसा ही कानून है जैसा ब्रिटिश भारतीयोंने ट्रान्सवाल-सरकारकी मंजूरीके लिए प्रस्तुत किया है और यद्यपि उक्त उपनिवेश ब्रिटिश भारतीयोंको अपने यहाँ न आने देनेके लिए शैक्षणिक जाँचका बड़ा कारगर उपयोग करते हैं फिर भी इस कारण हम उनपर यह आरोप नहीं लगा सकते कि उनका व्यवहार शंकास्पद है। उनके कानूनमें किसी राष्ट्रके अपमानकी बात नहीं है और कौन कह सकता है कि उपनिवेशकी विधि संहिताको द्वेषके कलंकसे बचा रखना नगण्य है। यदि प्रशासनमें भेदभाव है तो वह केवल पूर्वग्रहको तरजीह देने और दक्षिण आफ्रिकाके गोरे निवासियोंकी सुनिश्चित नीतिके कारण ही होगा। किन्तु लॉर्ड ऐम्टहिलने अभी जो नवीनतम संशोधन प्रस्तुत किया है, उसमें मक्कारीके आरोपके लिए कोई गुंजाइश नहीं बचती। कानून स्पष्ट रूपसे कहेगा कि शैक्षणिक जाँचमें उत्तीर्ण होनेके बावजूद किसी भी व्यक्ति या कौमके प्रवासियोंकी संख्याको मर्यादित करनेका अधिकार सपरिषद् गवर्नरको होगा।

मुझे पूरा विश्वास है कि यदि दक्षिण आफ्रिका और विशेषतः ट्रान्सवालके लोग इस प्रश्नको समझ जायें तो वे हमारी सरकारसे उस माँगको मंजूर करनेका आग्रह करेंगे जिसके लिए मेरे देशवासी संघर्ष कर रहे हैं।

इस बीच सरकार सत्याग्रहियोंकी दशा लगभग असहनीय बनाती जा रही है। दक्षिण आफ्रिकाके महान् भारतीयोंमें से एकको उनके कमजोर स्वास्थ्यके बावजूद डीपक्लूफमें वह खास खुराक नहीं दी जा रही है जो फोक्सरस्ट और हाइडेलबर्गके स्वास्थ्य-अधिकारीके द्वारा उन्हें दी जाती थी। उन्हें सिर मुंडा रखनेपर बाध्य किया गया है यद्यपि उन्हें इसमें धार्मिक आपत्ति है और उनकी पिछली तीन सजाओंमें इस आपत्तिको मान्य किया गया था। जोहानिसबर्गसे आनेपर उन्हें केवल हथकड़ियाँ ही नहीं बल्कि बेड़ियाँ भी पहनाई गईं। किन्तु अगर मैं श्री रुस्तमजीको ठीक तरहसे जानता हूँ तो मुझे भरोसा है कि उनकी निर्भीकताको दुनियाकी कोई चीज परास्त नहीं कर सकती। एक दूसरे भारतीयको[1] जो कभी बैरिस्टर रहे हैं मैलेकी बालटियाँ[2] खाली करनेका काम सौंपा गया है। उन्हें इसपर आपत्ति है। मेरी अपनी जानकारीमें भी अबतक ऐसी जिम्मेदारी बहुत दूर तक खयाल किया जाता रहा है। अब तथाकथित हुक्म-उदूलीके कारण उनकी खुराक कम कर दी गई है और उन्हें काल-कोठरी[3] दे दी गई है। उपनिवेशोंके बाबत क्या कुछ किया जा रहा है इसका पता उपनिवेशको चलना रहे तो अच्छा होगा।

१. [illegible], देखिए खण्ड ८, पृष्ठ १४८।
२. देखिए "[illegible]" पृष्ठ ९३।
३. देखिए "श्री देसाईकी रिहाई" पृष्ठ ११५।

अन्तमें अपने साथी श्री हाजी हबीब और अपनी ओरसे मैं सरकारको उसकी इस कृपाके लिए धन्यवाद देना चाहता हूँ कि उसने हमें बिना रोक-टोक सीमाको पार करने दिया।

आपका
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

स्टार, ४-१२-१९०९

१७ भाषण : तमिल महिलाओंकी सभामें[1]

[जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ५, १९०९]

श्री गांधीने कहा कि श्रीमती वोगल और कुमारी श्लेसिनने ट्रान्सवालकी मार तीस महिलाओंके बीच जो श्रेष्ठ कार्य किया है उसके लिए समाज उनका कृतज्ञ है। मुझे मालूम हुआ है कि यहाँ उपस्थित सभी महिलाएँ सत्याग्रही हैं और वे अपने पतियों, भाइयों या पुत्रोंको वर्तमान राष्ट्रीय संघर्षके सिलसिलेमें जेल भेज चुकी हैं। उन्होंने बड़ा वीरतापूर्ण कार्य किया है और उनके कार्यने मातृभूमिमें लोगोंका ध्यान आकृष्ट किया है। इसके पश्चात् वक्ताने शिष्टमण्डलकी इंग्लैंड-यात्राके परिणामपर प्रकाश डाला और आशा प्रकट की कि चाहे जो कठिनाइयाँ सामने आयें श्रोतागण अपना कार्य जारी रखेंगे और बाधाओंसे अथवा संघर्ष लम्बा खिचनेसे डरेंगे नहीं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-१२-१९०९

[1] श्रीमती सोंजाबीके मकानमें यह सभा १०५, मार्केट स्ट्रीट, जोहानिसबर्गमें हुई थी। भारतीय महिलाओंके बीच कार्यका आरम्भ श्रीमती पोलकने किया था और श्रीमती वोगल तथा कुमारी श्लेसिनने उसे जारी रखा। महिलाओंकी सभाएँ नियमित रूपसे होती रहीं। गांधीजीने पासके कानूनमें महिलाओंको आश्वासन दिया कि वे इस संघर्षमें जाने कौनसे सिवाय भी नहीं रहेंगी।

१८. भाषण : जोहानिसबर्गकी आम सभामें[1]

[दिसम्बर ५, १९०९]

श्री गांधीने कहा कि उन्हें तथा श्री हाजी हबीबको अपने देशभाइयोंके बीच आकर और उन्हें इतनी अधिक संख्यामें [इकट्ठा हुआ] देखकर अत्यन्त सन्तोष हो रहा है। यहाँ उनकी उपस्थिति और पार्क स्टेशनपर किये गये स्वागतसे यह आरोप सर्वथा गलत सिद्ध हो गया है कि अब इस संघर्षमें लोगोंकी दिलचस्पी घट गई है। श्री गांधीने ट्रान्सवाल-सरकारके प्रति इस बातके लिए कृतज्ञता प्रकट की कि उसने उन्हें और श्री हाजी हबीबको बेरोकटोक ट्रान्सवालमें आने दिया। उन्होंने कहा : इससे प्रकट होता है कि लड़ाई बगैर किसी अनावश्यक कटुताके मर्यादापूर्ण ढंगसे चलाई जा सकती है। फिर भी पिछले पाँच महीनोंकी घटनाओंसे पता चलता है कि लोगोंमें अब भी बहुत अधिक कटुता और रोष है। उन्होंने वीर युवक नागप्पनकी मृत्युका, जिसने इस लड़ाईमें अपने प्राण अर्पित कर दिये उल्लेख किया और कहा कि हजारों मेजर डिक्सन[3] आ जायें तो भी वे उनके दिलपर पड़ी यह छाप नहीं मिटा सकते कि नागप्पन एक शहीदकी मौत मरा है। समाजके जबरदस्त हितू महान् रुस्तमजी अभीतक जेलमें हैं। उनका स्वास्थ्य काफी गिर गया है। स्वनाम धन्य इमाम अब्दुल कादिर बावजीर भी कारावास भोग रहे हैं। इसी प्रकार हिम्मतके धनी सोराबजी और अन्य वीर भारतीय भी जेलोंमें ही पड़े हैं। श्री दोस्तको काल-कोठरीमें रखा गया है और उनकी खुराक कम कर दी गई है, क्योंकि उन्होंने मल-मूत्रकी बालटियाँ उठानेसे इनकार किया था। ये बातें ऐसी हैं, जिनसे बहुत कटुता और क्षोभ उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकते। लोग कहते हैं कि समाजमें कमजोरी आ गई है। यह बिलकुल सच है कि कुछ लोग हार मान बैठे हैं। परन्तु यह उनका दोष नहीं। मानव-स्वभाव ही ऐसा है कि लोग एक बड़ी संख्यामें काफी लम्बे समय तक कष्ट-सहन नहीं कर सकते।

१. यह सभा शिष्टमण्डलके सदस्योंके सार्वजनिक स्वागतके लिए जोहानिसबर्गकी हमीदिया मस्जिदके मैदानमें तीसरे पहर ४ बजे हुई थी। इसमें १५०० से अधिक भारतीय उपस्थित थे। इनमें [illegible], [illegible], कुवाड़िया [illegible] और रेवरेंड [illegible] तथा अन्य समाजके प्रतिनिधि, एवं चीनी मित्र और [illegible] भी शामिल थे। दूर-दूरके गाँवोंसे [illegible] आये थे। [illegible] उन्होंने कहा : "इंग्लैंड और भारतकी [illegible] हमारे संघर्षको [illegible] प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।"

२. ६-१२-१९०९ के रैंड डेली मेलमें इसका सारांश भी प्रकाशित हुआ था।

३. नागप्पनकी मृत्युके सिलसिलेमें जनताके मनमें भारतीयोंकी जेल-यातनाके प्रति [illegible] सिलसिलेमें [illegible] मेजर डिक्सनको कमिश्नर नियुक्त किया गया था। देखिए खण्ड ९, पृष्ठ २९८, ३९ तथा ४८४।

जिस स्थितिमें वे रह रहे हैं उसे जनरल स्मट्सने युद्धकी स्थिति बताया है; और हर युद्धमें वीरता-प्रदर्शनका सम्मान तो इने-गिने लोगोंको ही मिलता है और आखिरकार हर समाजमें ऐसे व्यक्तियोंकी संख्या जिन्हें उस समाजका प्रतिनिधि कहा जा सके अत्यन्त सीमित होती है। समाजके प्रत्येक वर्गसे डीपक्लूफ जेलमें अच्छेसे-अच्छे आदमी गये हैं। इसलिए हमें निराश होनेका कोई कारण नहीं। श्री गांधीने आशा प्रकट की कि भारतीय अपने नेताओंके श्रेष्ठ उदाहरणका अनुकरण करेंगे। वास्तवमें इंग्लैंड और भारतको भेजे गये शिष्टमण्डल सत्याग्रहकी सच्ची भावनाके विपरीत थे; क्योंकि सत्याग्रहका आधार तो केवल त्याग और तपस्या है। लेकिन हमारे अन्दर कमजोरी भी तो है; इसलिए शिष्टमण्डल भेजकर प्रयत्नोंको बल देना जरूरी हो गया। शिष्टमण्डलके सदस्य इंग्लैंडसे लौट आये। यद्यपि उनकी यात्राका कोई अन्तिम परिणाम अभी नहीं निकला है, फिर भी वे निराश होकर नहीं लौटे हैं। अधिकारी अब संघर्षके सही स्वरूपको पूरी तरह पहचान गये हैं। इंग्लैंडमें ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जिसे इस लड़ाईके विरोधमें कुछ कहना हो। लॉर्ड ऍम्टहिलने पूरे दिलसे उनकी हिमायत की थी। वहाँका हर आदमी जानता है कि वे [भारतीय] प्रवासके सम्बन्धमें कानूनी और सैद्धान्तिक समानताके लिए लड़ रहे हैं। वहाँ लोगोंकी समझमें यह बात आ गई है कि लड़ाई ट्रान्सवालके मुट्ठी-भर भारतीय निवासियोंकी ही नहीं है; यह तो सारे भारत और वास्तवमें सारे साम्राज्यकी तरफसे लड़ी जा रही है। आज समस्त साम्राज्यकी इज्जत उनके [ट्रान्सवालके भारतीयोंके] हाथोंमें है। इसलिए उपनिवेशी इस संघर्षकी गम्भीरताको पूरी तरह समझ लें यह उनके हितमें होगा। लड़ाईसे पहले, सन् १९ ६ तक भारतीयोंको उपनिवेशमें प्रवेशके सम्बन्धमें समानताका अधिकार प्राप्त था। सन् १९ ६ में भारतीयोंके निर्बाध प्रवेशपर नियन्त्रण लगानेकी नीतिको सरकारने स्वीकार किया और उसपर अमल भी शुरू कर दिया। भारतीयोंकी माँग है कि यह नीति छोड़ दी जाये और उनको पुनः पहलेकी तरह स्वतन्त्रतापूर्वक उपनिवेशमें आने दिया जाये। उनकी इस माँगपर आपत्ति नहीं की जा सकती। भारतीयोंके प्रवेशपर लगाया गया यह नियन्त्रण सारे भारतीय राष्ट्रका अपमान है। अतः भारतीयोंका कर्तव्य है कि वे इसका विरोध करें। जब भारतीयोंसे कहा जाता है कि तुम्हें ट्रान्सवालमें नहीं आने दिया जायेगा क्योंकि तुम भारतीय हो तो उससे सूचित होनेवाला अपमान असह्य हो जाता है। भारतीयोंके लिए तो यह जीवन-मरणका प्रश्न है। श्री गांधीने कहा कि भारतीय जिस कानूनका विरोध कर रहे हैं उसके मूलमें निहित नीतिके खिलाफ लड़नेके लिए वे [श्री गांधी] और उनका विश्वास है कि अनेक अन्य भारतीय अपना जीवन अर्पित कर चुके हैं। श्री गांधीने कहा कि उनकी इस इंग्लैंड-यात्राका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला है कि वहाँ एक ऐसा स्वयंसेवक दल संगठित हो गया है जो लोगोंको घर-घर जाकर समझायेगा, चन्दा[1] एकत्र करेगा और ब्रिटिश प्रजाजनके इस हृदय तक अपनी

१ देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ५११।

आवाज पहुँचायेगा। ऐसे आन्दोलनके परिणाम बहुत व्यापक हो सकते हैं। बहुत-से उत्साही अंग्रेज और भारतीय इसमें शरीक हो गये हैं। [इसके बाद श्री पोलकके कार्यका उल्लेख करते हुए श्री गांधीने कहा कि] श्री पोलक बड़े त्यागी पुरुष हैं। उन्होंने [भारतमें] जो शानदार कार्य किया है उसका परिणाम बहुत सुन्दर हुआ है। श्री रतनजी जमशेदजी टाटाका उदारतापूर्ण दान उसीका फल है। इस प्रकारकी लड़ाई अधिक समय तक खिंच सकती है। और लड़ाई लम्बी खिंचनेका अर्थ है अधिक कष्ट और इसलिए अधिक अनुशासन। लेकिन जिस लक्ष्यके लिए लड़ाई शुरू की गई है उसके लिए जो भी बलिदान किया जाये कम है। उन्होंने आशा प्रकट की कि एशियावासी भाई इस लड़ाईको विजय मिलने तक जारी रखेंगे।

श्री गांधीने ट्रान्सवालकी सरकारसे तथा उपनिवेशियोंसे भी अपील की कि वे इस सवालपर गम्भीरतासे विचार करें। अपना मत प्रकट करते हुए उन्होंने कहा कि उपनिवेशियोंको सूझबूझसे काम लेना चाहिए, अपनी साम्राज्य-निष्ठाका खयाल करना चाहिए और एशियाई समाजकी माँगोंको मंजूर कर लेना चाहिए। श्री गांधीने कहा कि उनका खयाल है कि करोड़ों भारतीयोंसे वे [उपनिवेशीय] यह तो नहीं कहना चाहते कि उनकी दृष्टिमें भारतीय तुच्छ कोटिके जीव हैं; फिर उनका दर्जा चाहे जो हो। प्रवेशके सम्बन्धमें असमानताका यह सिद्धान्त पहली बार ट्रान्सवालमें लागू किया गया है। अभी समय है कि इस कदमको पीछे हटा लिया जाय। अगर कानूनमें वांछित संशोधन कर दिया जाये तो वह न्यायका एक सीधा-सादा शोभनीय कार्य होगा। परन्तु अगर ट्रान्सवाल अपनी वर्तमान नीतिपर कायम रहा तो श्री गांधीने आशंका व्यक्त की कि सरकारका यह कदम साम्राज्यकी जड़ें तक हिला देगा।

ट्रान्सवालमें यूरोपीयोंकी तरफसे प्राप्त समर्थनका उल्लेख करते हुए श्री गांधीने श्री हॉस्केनके[1] नेतृत्वमें यूरोपीय समिति द्वारा किये गये कामकी प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि इस समितिके सदस्योंको भी उपनिवेशके आदर्श उतने ही प्रिय हैं जितने दूसरोंको। परन्तु उन्हें भारतीयोंका साथ देना इन आदर्शोंके विपरीत नहीं लगता। उन्होंने स्वीकार किया कि यूरोपीय मित्रों तथा कार्यकर्ताओंकी सहानुभूति सहयोग और प्रोत्साहनके बिना सत्याग्रह चलाना एक तरहसे असम्भव होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-१२-१९०९

१. ट्रान्सवाल अधिकारी दल (लेजिस्लेटिव असेम्बली) के एक सदस्य-समर्थक नेता; देखिए खण्ड ८ और ९।
२. देखिए "भाषण : जोहानिसबर्गकी आम सभामें" पृ० ९०-९१।

१९ भाषण: जोहानिसबर्गकी आम सभामें[1]

[दिसम्बर ५, १९०९]

इस सभाकी उपस्थिति देखें तो भारतीय समाजपर कमजोर हो जानेका जो आरोप लगाया गया है वह मिथ्या ठहरता है। फिर भी इतना तो कहना ही होगा कि जो उत्साह प्रारम्भमें था वह अब नहीं है। बहुतेरे भारतीयोंने हार मान ली है। परन्तु इससे हताश न होना चाहिए। प्रत्येक संघर्षमें ऐसा हुआ ही करता है। संघर्षके अन्ततक थोड़े ही लड़नेवाले टिकते हैं। जिस समाजमें श्री बावजीर, श्री रुस्तमजी, श्री नायडू[2], श्री सोराबजी-जैसे वीर मौजूद हैं वह समाज हार गया, ऐसा माना ही नहीं जा सकता। जिस कौममें ऐसे लोग मौजूद हैं वह अवश्य जीतेगी; परन्तु हम जहाँ अपनी शक्तिका विचार करते हैं वहाँ हमें अपनी कमजोरीको नहीं भूलना है। जो झुक गये हैं वे अगर झुके न होते तो आज समझौता हो चुका होता — एक बच्चा भी इसे समझ सकता है।

जनरल स्मट्सने हम लोगोंको जाने दिया इसके लिए हमें उनका उपकार मानना चाहिए। इससे इस संघर्षमें सात्त्विकताकी जो भावना रही है उसका पता चलता है। फिर भी कटुता बढ़ी है। जब कैदियोंसे मैलेकी बाल्टियाँ इत्यादि उठवाई जायें और व्यर्थकी तकलीफें दी जायें तब कटुता क्यों न बढ़े? नागप्पनकी मृत्यु संघर्षमें ही हुई — यह कैसे भुलाया जा सकता है? अगर भारतीय समाज यह सब याद रखे तो वह संघर्षको कभी न छोड़ेगा। चाहे जो भी हो मैंने और इसी प्रकार अनेक भारतीयोंने इस संघर्षके निमित्त अपना जीवन अर्पित किया है। यदि सबके सब भारतीय सत्याग्रही होते तो (शिष्टमण्डलके) इंग्लैंड जानेकी जरूरत ही न रहती। सत्याग्रहीका बल दुःख उठानेमें ही है। परन्तु चूँकि हम सब सत्याग्रही नहीं हैं इसलिए शिष्टमण्डल भेजा गया। वह जीत तो साथ नहीं लाया परन्तु निराश भी नहीं लौटा। लॉर्ड क्रू अब समझते हैं कि हमारा संघर्ष नितान्त स्वच्छ है। उसमें स्वार्थ नहीं है और हमारे सब तरीके सराहनीय हैं। लॉर्ड ऍम्टहिल भी यह बात भली-भाँति समझते हैं और इसी प्रकार दूसरे अंग्रेज सज्जन भी। ऐसा एक भी अंग्रेज या भारतीय देखनेमें नहीं आया जिसने *कहा हो कि हमारा संघर्ष न्यायपर आधारित नहीं है। इसका नतीजा भी बुरा नहीं* माना जा सकता। अब हम आगे बढ़ सकते हैं।

१. रिज थियेटरमें जो भाषण दिया गया था यह उसका गुजराती विभागमें प्रकाशित विवरण है।
२. इसी खण्डमें देखिए "एम० पी० के० नायडू", पृष्ठ ११।
३. [illegible]; देखिए पिछला शीर्षक।

एक वक्त ऐसा भी आया था जब लगता था कि समझौता हो जायेगा। [जनरल स्मट्सने] कानूनको रद करना और बतौर मेहरबानी शिक्षित भारतीयोंको स्थायी निवासके प्रमाणपत्र देना भी स्वीकार किया पर यह बात हम मंजूर नहीं कर सकते थे। हम मेहरबानी नहीं बल्कि हक चाहते हैं। कानूनकी रूसे हम नीची पेढ़ीके माने जाते रहें लेकिन हमें आने दिया जाये — इससे तो कोई बात नहीं बनती। यह तो स्वार्थकी बात होती। भारतीय होनेके नाते हमें प्रवेशाधिकारसे वंचित रखना अपमानसे खाली नहीं है। जबतक यह अपमान दूर नहीं होता तबतक हमारा संकल्प अधूरा रहेगा। इसलिए अपने समाज और धर्मके हेतु, हमें इस संघर्षको चालू रखना ही होगा। हमारी माँग यह है कि कानूनमें भारतीयों और यूरोपीयों — दोनोंके लिए प्रवेशका समान अधिकार होना चाहिए। कानूनमें गवर्नरको ऐसे नियम बनानेका अधिकार दिया जा सकता है कि परीक्षा पास करनेपर भी किस जातिके कितने लोग आयेंगे। ऐसा होनेपर कानूनी समानता मिल जाती है और हमारी मर्यादाकी रक्षा भी होती है। परन्तु मेरा खयाल है कि हमारी यहाँकी कमजोरीके कारण वह हमें नहीं मिल सकी। भारतीयोंको यह भी याद रखना चाहिए कि हमें इससे अधिक प्राप्त होनेवाला नहीं है। अगर इतना मिल जाये तो वह भी हमारी खासी जीत कहलायेगी। और इतना हम लेकर ही रहेंगे।

श्री पोलकने भारतमें जो अच्छा काम किया है उसके प्रभावसे सभी परिचित हैं। इसी प्रभावके फल-स्वरूप श्री टाटाने २५,००० रुपये दिये हैं। इंग्लैंडमें अंग्रेज स्त्री-पुरुष तथा भारतीय सज्जन स्वयंसेवक बनकर घर-घर घूम रहे हैं।

इस प्रकार हमारा संघर्ष दुनियाकी नजरोंमें आया। हम प्रकाशमें आये। अब अगर उसे बन्द कर दिया जाये तो बड़ी शर्मकी बात होगी। क्योंकि दिलोंमें अब यह विश्वास घर कर गया है कि ट्रान्सवालके भारतीय हाथमें लिए हुए कामको कदापि न छोड़ेंगे तब संघर्षको छोड़ बैठना भारतीय समाजपर लांछन लगाने-जैसा होगा।

फिर सोचना यह है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थिति बहुत-कुछ इस संघर्षपर निर्भर करती है। संघर्षके जारी रहनेके कारण ही नये कानून पास नहीं किये गये, नेटालमें परवाना कानूनमें संशोधन किया गया और रोडेशियामें कानून बनाना मुल्तवी रहा। यदि संघर्ष जारी रहेगा तो संघ-संसदके अस्तित्वमें आ जानेपर हमारे विरुद्ध कानून बनाना मुश्किल हो जायगा। हमारा स्वार्थ भी इस तरह इसमें निहित है।

यह संघर्ष खिंचता जा रहा है, इसमें हमारी हानि नहीं लाभ है। इसके चलते रहनेसे हिन्दुस्तान जागता है हमें अनुभव प्राप्त होता है तथा हम सार्वजनिक कार्य करनेकी तालीम प्राप्त करते हैं। इसलिए समाजसे मेरी प्रार्थना है कि जो दृढ़ हैं वे दृढ़ रहें जो झुक चुके हैं वे अपनी कमजोरी साफ-साफ कबूल करें और पैसेसे तथा अन्य प्रकारसे संघर्षको बढ़ावा दें। ऐसा करना प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है।

इमाम साहब,[1] भी दस्तमजी, इत्यादि हमारी खातिर जेलमें हैं। उनको जेलमें रखकर हम कमजोर बनें अथवा अन्य प्रकारसे जो मदद करनी चाहिए वह न करें तो यह निस्सन्देह हमारे लिए शर्मकी बात है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-१२-१९०९

२० प्रस्ताव : जोहानिसबर्गकी आम सभामें[2]

दिसम्बर ५, १९०९

१. ब्रिटिश भारतीयोंकी यह सभा सर्वश्री हाजी हबीब और गांधीका स्वागत करती है और उनके वक्तव्य सुननेके पश्चात् उनके कार्योंका समर्थन करती है और उन्हें अपने मिशनको साहस धैर्य और संयमके साथ निभानेके लिए बधाई देती है।

२. ब्रिटिश भारतीयोंकी यह सभा लॉर्ड ऍम्टहिल और दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिके उनके साथी सदस्योंके प्रति इस बातके लिए आदर व्यक्त करती है और उन्हें धन्यवाद देती है कि उन्होंने प्रतिनिधियोंका पथ-प्रदर्शन किया और उन्हें अपने परिपक्व अनुभवका लाभ दिया।

३. ब्रिटिश भारतीयोंकी यह सभा अपने इस इरादेका ऐलान करती है कि जबतक प्रवासके विषयमें कानूनी और सैद्धान्तिक तौरपर सुसंस्कृत भारतीयोंको दूसरे प्रवासियोंके साथ फिरसे समानताका दर्जा नहीं दिया जाता तबतक हम जेल जाकर या दूसरे कष्ट उठाकर भी अपना संघर्ष बराबर जारी रखेंगे।

४. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी यह सभा सरकार और यूरोपीय उपनिवेशियोंसे प्रार्थना करती है कि वे संघर्षके समूचे साम्राज्यपर पड़नेवाले प्रभावके सम्बन्धमें विचार करें और इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुए कि ब्रिटिश भारतीयोंकी मांगके अन्तर्गत भारतीयोंके प्रवासपर कड़ा नियन्त्रण रखनेके औपनिवेशिक आदर्शकी पूरी रक्षा होती है, यह देखें कि हमारा समाज जो भयानक कष्ट सहन कर रहा है उसे न्याय द्वारा समाप्त किया जाये।

५. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी यह सभा साम्राज्य-सरकार और भारत सरकारसे इस बातका खास खयाल रखनेकी प्रार्थना करती है कि हमारा समाज लम्बे अरसेसे जिस अन्यायकी शिकायत करता आ रहा है वह एक राष्ट्रीय अपमान है तथा उसके और अधिक समय तक बने रहनेसे ब्रिटिश साम्राज्यकी प्रतिष्ठाको धक्का लगनेकी पूरी आशंका है इसलिए वे इस अन्यायका अन्त करानेके लिए अपने मैत्रीपूर्ण प्रयत्नोंका उपयोग करें।

१. इमाम अब्दुल कादिर बावजीर; देखिए पिछला शीर्षक ।

२. गांधीजी इस सभामें उपस्थित थे और उन्होंने इसमें भाषण किया था; देखिए पिछला शीर्षक । अनुमानतः इन प्रस्तावोंका मसविदा गांधीजीने ही तैयार किया था ।

६. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी यह सभा श्रीमान् रतन जमशेदजी टाटाके प्रति इस बातके लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है कि उन्होंने इस संघर्षकी सहायताके लिए आवश्यकताके समय उदारतापूर्वक २५,००० रुपयोंका दान दिया है।

७. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी यह सभा अध्यक्षको अधिकार देती है कि वे इन प्रस्तावोंको यथास्थान प्रेषित कर दें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-१२-१९०९

२१. पत्र : ट्रान्सवाल-गवर्नरके निजी सचिवको[1]

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ६, १९०९

निजी सचिव
परमश्रेष्ठ गवर्नर, ट्रान्सवाल
जोहानिसबर्ग

महोदय,

कल ब्रिटिश भारतीयोंकी एक विशाल सभा हुई। उसमें समाजके विभिन्न वर्गोंके लगभग १,५०० प्रतिनिधि सम्मिलित थे। सभामें सर्वसम्मतिसे पास हुए प्रस्ताव मैं इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ। सभाकी[2] इच्छा है कि मैं परमश्रेष्ठसे प्रार्थना करूँ कि वे इन प्रस्तावोंको परममाननीय उपनिवेश-मन्त्री और परममाननीय भारत-मन्त्रीकी सेवामें भेजनेकी कृपा करें।

आपका, आदि,
(ह०) ए० एम० काछलिया[3]
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

(सहपत्र[4])

उपनिवेश-कार्यालयके रिकार्डोंसे प्राप्त टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (सी० ओ० २९१/१४१) की फोटो-नकलसे।

1. संभवतः इसका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था।
2. देखिए खण्ड ९ (परिशिष्ट), जो यहाँ नहीं दिया जा रहा है।
3. इसमें इस विषयका प्रस्ताव संलग्न भी किया था।
4. इस पत्रके साथ (परिशिष्ट) के अन्तर्गत संलग्न थे।

२२ पत्र गो० कृ० गोखलेको

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ६, १९९

प्रिय प्रो० गोखले

जैसे ही हम केप टाउन पहुँचे आपका वह तार मिला जिसमें श्री टाटाके बावजार दानकी सूचना थी। और अब आपने पुत्रसे पूछा है कि हमें कितना रुपया चाहिए। मैंने अभी निम्न तार दिया है

फिलहाल हजार पौंडकी आवश्यकता। महीना खत्म होनेसे पहले फंडकी आशंका। बादमें इससे बहुत अधिककी जरूरत।

मैं देख रहा हूँ कि खर्च बढ़ गया है, इसपर हमारा कोई वश नहीं है और दक्षिण आफ्रिकामें हमारे साधन चुक गये हैं। ट्रान्सवालमें ही काफी भारतीय हैं और यदि वे चाहें तो अब भी बाहरी सहायताके बिना आन्दोलन जारी रख सकते हैं परन्तु अब उनकी इच्छा सहायता करनेकी नहीं है। उनका खयाल है कि वे काफी दे चुके हैं। ये समाजके अपेक्षाकृत कमजोर सदस्य हैं। जो सबसे ज्यादा ताकतवर थे वे आर्थिक दृष्टिसे बरबाद हो ही चुके हैं और अब इतना-भर करते हैं कि जितनी बार उनको सरकार गिरफ्तार करे उतनी बार जेल जाते हैं। उनके परिवारों तक का पालन करना होता है। संघर्षके आरम्भमें दफ्तरका सारा खर्च मैंने उठाया था। मैं दफ्तरका किराया भी देता था। यह दफ्तर वस्तुतः मेरी वकालतके कामके लिए था किन्तु पिछले दो साल मैंने वकालतका काम बहुत ही कम किया है। मैंने इंडियन ओपिनियन चलानेका खर्च भी जुटाया है। पत्र निश्चय ही अभीतक आत्म निर्भर नहीं बन पाया है। चालू खर्च इस प्रकार है

यहाँका दफ्तर	५ पौंड
लन्दनका दफ्तर	४ पौंड
इंडियन ओपिनियन	५ पौंड
संकटग्रस्त परिवार	२५ पौंड

मैं समझता हूँ कि महीनेका कमसे-कम इतना खर्च तो रहेगा ही। इंडियन ओपिनियन से सम्बन्धित लगभग सभी लोग जिनमें यूरोपीय भी हैं एक प्रकारसे गरीबीका व्रत लेकर काम कर रहे हैं किन्तु चूँकि शुल्क देनेवाले ग्राहक बहुत थोड़े हैं इसलिए सहायता आवश्यक है। मैं समझता हूँ कि अगर भारतसे चन्दा आ जाये तो हम ऊपरके सभी खर्च जारी रखें। यदि न आये तो मेरा इरादा इंडियन ओपिनियन का बहुत-सा खर्च कम कर देनेका है। [लेकिन] इस प्रकार संघर्ष अपनी सहायताके एक बड़े साधनसे वंचित हो जायेगा। मेरा इरादा लन्दनके दफ्तरको भी बन्द कर देनेका है। ऐसे सक्रिय सत्याग्रही जिनकी अन्ततक पक्के बने रहनेकी सम्भावना है

हम जितनीमें भी मानते हैं। ये अधिकारियोंका ध्यान अपनी ओर बलात् खींचेंगे। समाजके अधिकांश लोग सभाओंमें सम्मिलित होंगे विरोध प्रदर्शन करेंगे और कुछ लोग चन्दा देकर सहायता करेंगे। इस चन्देसे सत्याग्रहियोंके आश्रितोंकी देखरेख की जा सकेगी। संघर्षकी व्यापकताको इतना कम करनेका अर्थ है उसको अनिश्चित समय तक लम्बा खींचना किन्तु चूँकि यह बहुत कुछ अनुशासन-पालनके रूपमें आरम्भ किया गया है इसलिए हममें से वे लोग जो इस बातको समझते हैं कतई निराश होनेवाले नहीं हैं और तमाम उम्र तकलीफ उठानेके लिए तैयार हैं।

मैं ट्रान्सवाल या दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले अपने देशवासियोंको इस बातके लिए दोष नहीं दे सकता कि वे अब उतनी उदारतासे चन्दा नहीं दे रहे हैं जितनी उदारतासे अबतक देते रहे हैं। मेरे खयालसे आन्दोलनमें अबतक कमसे-कम १
पौंड खर्च हो चुके हैं। इसमें मैंने सभी उपसमितियोंके वे खर्च भी शामिल कर लिए हैं जो केन्द्रीय संघके विज्ञापित हिसाबमें नहीं दिये गये हैं किन्तु मैंने उस भारी हानिको इसमें शामिल नहीं किया है जो वैयक्तिक रूपसे उठाई गई है। ऐसी अवस्थामें यदि बहुत-से लोग हिम्मत हार जायें और आर्थिक सहायता देनेसे भी इनकार कर दें तो कोई आश्चर्य नहीं।

किन्तु अब संघर्षका राष्ट्रीय महत्त्व भारतमें पहचाना जा रहा है इसलिए मुझे लगता है कि हमें आर्थिक सहायता मिलेगी और वह भी वहीं देशसे। मैं इससे जितना सम्भव हो उतना लाभ उठाना चाहता हूँ। मैंने आपके सामने लगभग सारी स्थिति रख दी है। इस समय डीपक्लूफ जेलमें कुछ अत्यन्त बहादुर भारतीय हैं, जिनमें सभी जातियोंके प्रतिनिधि हैं। मैं श्री रुस्तमजीको इनमें सबसे अगणी मानता हूँ। उन्हें जेलमें पड़े हुए भी महीनेसे भी ज्यादा हो गये हैं। उनका स्वास्थ्य बहुत-कुछ चौपट हो गया है। मैं उनसे कल मिला था वे इस बातपर दृढ़ हैं कि यदि आवश्यकता पड़ी तो वे जेलमें ही अपने प्राण दे देंगे। दूसरे व्यक्ति एक सुसंस्कृत मुसलमान मुल्ला इमाम अब्दुल कादिर बावजीर हैं। तीसरे एक व्यक्ति प्रतिष्ठित मुसलमान व्यापारी सूरत-निवासी श्री इब्राहीम अस्वात हैं। चौथे श्री नानालाल शाह हैं वे जैन हैं और तपस्यापरक हैं। पाँचवें अहमदाबादके एक ब्राह्मण उमियाशंकर शेलत हैं। उन्होंने मैनेजरी बाहिस्त्री होनेसे इनकार कर दिया है और अब तनहाईकी सजा भुगत रहे हैं। किन्तु कदाचित् सबसे ज्यादा बहादुर और बफादार, कभी न झुकनेवाले श्री थम्बी नायडू हैं। मेरी जानकारीमें कोई दूसरा भारतीय ऐसा नहीं जो इस संघर्षकी भावनाको उतनी अच्छी तरह समझता हो जितनी अच्छी तरह वे समझते हैं। वे पैदा तो मॉरिशसमें हुए थे किन्तु हममें से अधिकांश लोगोंकी अपेक्षा अधिक भारतीय हैं। उन्होंने अपनी पूर्णाहुति ही दे दी है और मुझे एक चुनौती भरा सन्देश भेजा है। उन्होंने कहा है कि चाहे मैं हथियार डाल दूँ और कोई टैम्स्टिहिलके संशोधनसे कमपर समझौता कर लूँ किन्तु वे तब भी कोई उनका साथ दे या न दे सत्याग्रह करेंगे और ट्रान्सवालकी जेलोंमें ही मर-खप जायेंगे। मैं इस सूचीमें कदाचित् एक युवक श्री मोराग जीका नाम और जोड़ सकता हूँ। उन्होंने संघर्षके दूसरे चरणकी नींव डालने और

एक शिक्षित भारतीयके रूपमें प्रवेशका दावा करनेके लिए एक बड़ी लाभप्रद नौकरी छोड़ दी। उनका भविष्य क्या होगा इसकी चिन्ता किये बिना वे निश्चिन्त भावसे संघर्षमें आ गये थे किन्तु वे पिछले अठारह महीनेसे लगभग जेलमें ही हैं। ऐसे और भी बहुत नाम गिनाये जा सकते हैं। इस समय जेलोंमें कुल मिलाकर लगभग तीस भारतीय सत्याग्रही हैं यदि सरकार अन्य बहुत-से लोगोंको अवसर दे तो निश्चय ही वे भी इस सम्मानकी इच्छा करेंगे। इस प्रकारके संघर्षकी सम्भावनाओंको आँक पाना बहुत कठिन है। मुझे आशा है कि मातृभूमि यथासम्भव हमारी सहायताके लिए हाथ बढ़ायेगी। भारतसे लगातार आर्थिक सहायताकी प्राप्तिका नैतिक प्रभाव भी बहुत बड़ा होगा। मुझे आशा है मेरा लन्दनसे भेजा हुआ पत्र[1] आपको यथासमय मिल गया होगा और आपने उसपर विचार कर लिया होगा।

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

[पुनश्च]

आपसे जो अभी १६७१ पौंडकी रकम मिली है उसका उपयोग मैं अबतक लिये गये कर्जको चुकानेमें करना चाहता हूँ। इस कर्जका अधिकांश इंडियन ओपिनियन के लिए लिया गया था। आपको खर्चका पूरा हिसाब भेजा जायेगा।

मो० क० गांधी

टाइप की हुई गांधीजीके हस्ताक्षरसहित मूल अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ४७११) से। अनुलेख (पोस्टस्क्रिप्ट) उनके स्वाक्षरोंमें है।

२३. एक पत्रका अंश

[जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ६, १९०९]

कल मैंने श्री रुस्तमजीसे भेंट की। वे बहुत ही कमजोर हो गये हैं। फोक्सरस्टमें डॉक्टरकी रायसे उनके लिए जो खुराक निर्धारित हुई थी वह उन्हें यहाँ नहीं मिलती। पारसी — मेरा मतलब कट्टर पारसियोंसे है — अपनी टोपियाँ कभी नहीं उतारते परन्तु अब रुस्तमजीको अपनी टोपी उतारनेके लिए विवश किया गया है यद्यपि उन्हें फोक्सरस्ट और हार्टपूर्टमें उसे पहिने रहनेकी अनुमति थी। उन्हें पत्थर तोड़नेका काम दिया गया है। वे एक शारीरिक व्याधिसे भी पीड़ित हैं। उनकी

१. तारीख ११-११-१९०९ का पत्र जिसमें गोखलेको तुरन्त भारत आनेका निमन्त्रण दिया गया था; देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ५३७-३८।

२. [illegible]-अखबारके नाम लिखे गये एक पत्रकी जानकारीके तारीख ११ दिसम्बर, १९०९ के पत्रमें उद्धृत गांधीजीके पत्रका एक अंश; पूर्ण पत्र उपलब्ध नहीं है।

आँखें भी कमजोर हो गई हैं। वे अत्यन्त दयनीय दिखाई दिये। मैं उन्हें डॉक्टरको दिखानेकी अनुमतिके लिए प्रार्थना-पत्र भेज रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स सी० ओ० २९१/१४१।

२४. टाटाका दान

हिन्दुस्तान जागा है यह बात श्री रतनजी जमशेदजी टाटाके महान दानसे प्रकट है। उन्होंने २५, ... की बड़ी रकम देकर संघर्षको बहुत बढ़ावा दिया है। आशा है कि अन्य भारतीय भी ऐसा ही करेंगे।

पारसियोंकी दान-शीलता दुनिया-भरमें प्रसिद्ध है। श्री टाटाने इस दानशीलताको और रोशन किया है। दक्षिण आफ्रिकामें जितना भी वस्तमजीने किया है उतना शायद ही दूसरे भारतीयने किया होगा। उनकी उदारता बहुमूल्य है। इसलिए उन्होंने इस बार जिस उदारताका परिचय दिया है उसमें कोई अचरजकी बात नहीं है।

श्री टाटाने पूरे समाजपर उपकार किया है। समाज इससे कैसे उऋण होगा? उनके इस उपकारसे हममें दस गुना साहस आना चाहिए। यह मन यह समझकर दिया गया है कि हम संघर्षको अन्ततक चलाते रहेंगे। अब हमारा काम है कि हम अपनेको इस उदारताके योग्य सिद्ध करें।

अगर श्री टाटाके दानके ख्यालसे ही संघर्ष लम्बे अर्से तक चलता रहे तो भी सन्तोषकी बात मानी जायेगी। इसलिए नहीं कि दानकी राशि बहुत अधिक है बल्कि उसके पीछे जो भाव है और उसका संसारपर जो प्रभाव पड़ता है उसके लिए।

श्री टाटाकी उदारतासे जहाँ सन्तोष होता है वहाँ कुछ सावधानीकी भी जरूरत है। कौम दानमें प्राप्त हुई वस्तुका काम मुश्किलसे ही उठा पाते हैं। दानमें मिले हुए धनका सदुपयोग विरला ही कर सकता है। दान पाकर कौम कमजोर और कुपात्र हो जाते हैं। हमारा संघर्ष हमारे अपने बलपर आधारित है और उसका उद्देश्य अपने आपको सुधारना है। इसलिए अगर श्री टाटाकी इस सहायतासे कौम सुप्त होकर बैठ जायेंगे तो उससे लाभके स्थानपर हानि होना सम्भव है। हम आग्रह पूर्वक कहना चाहते हैं कि इस दानके बाद भारतीय समाज आफ्रिकामें अपने कर्तव्यके प्रति और भी सजग हो जाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-१२-१९०९

२५ नेटालका परवाना अधिनियम

नेटालकी संसदने व्यापारिक परवाना अधिनियममें संशोधन किया है। भारतीय समाज अपीलकी व्यवस्थाका आग्रह कर रहा था। उसकी यह इच्छा आंशिक रूपमें पूरी हुई है। यदि कोई अधिकारी मौजूदा परवानेको नया करनेसे इनकार करेगा तो उसपर अब सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की जा सकेगी। यह काफी सन्तोषकी बात है। जो घोर अत्याचार हो रहा था वह बन्द हो जायेगा। यह संशोधन नये परवानों-पर लागू नहीं होगा। परन्तु हम इसे कोई बड़ी अड़चन नहीं मानते। प्रयत्न करनेसे हमें सम्भवतः यह भी प्राप्त हो जायेगा।

प्रत्येक भारतीयको जान लेना चाहिए कि यह परिवर्तन कैसे हुआ। इसके दो मुख्य कारण हैं प्रथम गिरमिटिया प्रथाको बन्द करनेकी हलचलको रोकनेकी इच्छा दूसरे, नेटालमें सत्याग्रहकी आशंका। तीसरे, यह भी कारण माना जा सकता है कि नेटाल विधानमण्डलके जानेके फलस्वरूप यह परिवर्तन कुछ पहले ही हो गया। परन्तु हम भारतीय समाजका ध्यान पहले कारणकी ओर विशेष रूपसे खींचना चाहते हैं। यह संशोधन एक प्रकारका प्रलोभन है। अब सरकार व्यापारी समाजसे इस बातकी आशा करेगी कि वह गिरमिटियोंके आगमनको बन्द करनेके अपने आन्दोलनको त्याग दे। किन्तु हमें विश्वास है कि व्यापारी ऐसा कभी नहीं करेंगे। यदि वे ऐसा करेंगे तो यह सिद्ध हो जायेगा कि उन्होंने अपने कर्तव्यकी उपेक्षा की है।

हमारे विचारसे गिरमिट प्रथा ही खराब है। परन्तु अभी तो गिरमिटियोंपर तीन पौंडका जूती कर जारी है। इसे बन्द करवानेके लिए आन्दोलन होना ही चाहिए। नेटाल-सरकार यह चाहती है कि गिरमिट [की अवधि] हिन्दुस्तानमें समाप्त हो। [नेटाल मर्क्युरी]ने साफ-साफ कहा है कि यदि परवानेकी कठिनाई न होती तो सम्राट्की सरकारने [गिरमिटकी] अवधि हिन्दुस्तानमें समाप्त होनेके संशोधनको स्वीकार कर लिया होता। हम भारतीय समाजसे साग्रह अनुरोध करते हैं कि वह इस सम्बन्धमें अपने कर्तव्यसे पीछे न हटे।

यह कानून सत्याग्रहके कारण ही बना है यह बात सहज ही प्रत्येक भारतीयकी समझमें आ सकती है। और यह बात जिनकी समझमें आ जायेगी वे यह भी समझेंगे कि सत्याग्रहका प्रयोग प्रत्येक परिस्थितिमें किया जा सकता है।

नेटालके भारतीयोंकी शिक्षाकी समस्या भी बहुत गम्भीर है। भारतीय समाजको इस सम्बन्धमें पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए है।

इसलिए हम आशा करते हैं कि समाज यह मानकर सो नहीं जायेगा कि अब कुछ भी करना-धरना नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-१२-१९०९

२६ पत्र 'रैंड डेली मेल'को

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ११, १९०९

महोदय,

ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जिसके हृदयमें उपनिवेशकी और साम्राज्यकी भी भलाईका खयाल है अवश्य ही ट्रान्सवालके भारतीयोंकी स्थितिपर लिखे गये आपके अग्रलेखके लिए कृतज्ञ होगा।

क्या मैं उन लोगोंकी ओरसे जिनका प्रतिनिधित्व करनेका मैं दावा करता हूँ यह निवेदन कर दूँ कि जो इस उपनिवेशके निवासी हैं और जिनकी शिनाख्त की जानी चाहिए, उनके बारेमें जहाँतक हमारी सहायताकी आवश्यकता है हम सदा उसके लिए तत्पर रहेंगे। मैं १९०८के इतिहासकी याद नहीं दिलाना चाहता। वह अब भी उपनिवेशियोंकी स्मृतिमें ताजा है और उससे यह सिद्ध होता है कि हमारा समाज दुराग्रही नहीं है और जैसे हम इस समय अपने राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षाके लिए कष्ट उठा रहे हैं उसी प्रकार हम सरकारको सहायता देनेके लिए भी कष्ट उठानेको तैयार हैं।

आपका आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
रैंड डेली मेल, ११-१२-१९०९

२७ जोज़ेफ रायप्पन

श्री जोज़ेफ रायप्पनने जो अभी-अभी नये बैरिस्टर होकर आये हैं ट्रान्सवालके संघर्षमें शामिल होनेका निश्चय किया है। हम इसके लिए उन्हें बधाई देते हैं। उनका यह निश्चय सच्ची शिक्षाका परिचायक है। श्री जोज़ेफ रायप्पनके ट्रान्सवाल प्रवेशसे समाजको बहुत प्रोत्साहन मिलेगा इसमें शंकाकी कोई बात नहीं है। श्री रायप्पनका उदाहरण अनुकरणीय है।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, १८-१२-१९०९

१. इस पत्रका अनुवाद इंडियन ओपिनियन २८-१२-१९०९ के गुजराती स्तम्भोंमें छपा था।

२. तारीख १०-१२-१९०९का था पत्र इंडियन ओपिनियन १८-१२-१९०९ में [illegible] से उद्धृत किया गया था। इसमें ट्रान्सवालके भारतीयोंकी माँगोंको स्वीकार करनेकी सलाह दी गई थी।

२८ पत्र 'इंडियन ओपिनियन' को

दिसम्बर २, १९०९

सेवामें
सम्पादक
इंडियन ओपिनियन

महोदय

मैं आशा करता हूँ कि इस पत्रके प्रकाशित होनेसे पहले मैं जेल पहुँच जाऊँगा।[1]

मेरा दूसरा लड़का (मणिलाल) मेरे साथ रहता है। मैं कुछ समयसे उसे संघर्षमें शामिल करनेका विचार कर रहा था। उसका आग्रह था। अच्छी तरहसे विचार करनेके बाद मुझे लगा कि उसे संघर्षमें शामिल करना उचित है। शुद्ध बुद्धिसे देशहितके लिए जेल जाने या उस तरहके दुःख उठानेको मैं सच्ची शिक्षा मानता हूँ। मैं तो जेलको महल मानता हूँ। तब जिनको मैं प्रिय मानता हूँ उनको इस अधिकारसे वंचित कैसे देखूँ? मेरा लड़का इतनी उम्र (१७ बरस)[2] का हो चुका है कि वह अब अपनी बुद्धिका उपयोग कर सकता है।[3] मैं तो सभी भारतीय माता-पिताओंसे और सब भारतीय युवकोंसे भी कहता हूँ कि जो व्यक्ति इस लड़ाईमें शामिल होंगे वे कृतार्थ हो जायेंगे। लड़ाईका सच्चा लाभ तो लड़नेवाले ही उठाते हैं।

जो फिलहाल जेलमें हैं उनसे मैं निवेदन करता हूँ कि वे जैसे ही जेलसे बाहर निकलें फिर वैसे ही जेल जानेका इरादा रखें घड़ी-भर भी दम न लें। अपवाद केवल श्री दस्तमजीके सम्बन्धमें हो सकता है। यदि उनको [जेलसे छूटने पर] तुरन्त गिरफ्तार न करें तो उनका एक मासके लिए डर्बन हो आना उचित है। किन्तु महीना पूरा होनेपर, उनकी तबीयत चाहे जैसी हो, मुझे तो ऐसा लगता है कि वापस [ट्रान्सवाल] आ जाना ही उनका कर्तव्य होगा।

जो जेलके बाहर हैं उन्हें तुरन्त जेल जानेका विचार करना चाहिए। और कुछ नहीं तो वे जनवरी और फरवरी महीनोंमें तो आसानीसे जेलोंको भर दे सकते हैं।

दूसरे लोग चाहे जेल जायें या न जायें किन्तु जो भारतकी सेवाके लिए तैयार होना चाहते हैं उनका स्पष्ट कर्तव्य है कि वे पल-भर भी चैन न लें।

आपका
मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन २५-१२-१९०९

१. गांधीजी [illegible] ११ दिसम्बरको [illegible] ट्रान्सवालमें प्रवेश करते समय गिरफ्तार कर लिये गये थे। देखिए "[illegible]" पृष्ठ १८।

२. १८ वर्ष, देखिए "[illegible]" पृष्ठ १८।

३. देखिए [illegible] अन्तिम पंक्तियाँ।

स्वार्थ सिद्ध न होगा किन्तु उससे सारे भारतकी लाज रह जायगी। यदि ऊपर बताये गये भाई या अन्य कोई भारतीय अपने लिए ट्रान्सवालमें बसनेका हक लेनेकी इच्छासे संघर्षमें आये हों तो मैं उन्हें शरीक न होनेको कहूँगा। हमारे साथ आनेवाले लोगोंमें एक दूसरे उपनिवेशीय भारतीय श्री सैमुअल जोसेफ हैं। इसी तरह जर्मिस्टनसे श्री रामलाल सिंह संघर्षमें भाग लेनेके लिए सीमा लाँघकर आये हैं। वे भी हमारे साथ [ट्रान्सवालमें] प्रविष्ट होकर जेल जायेंगे। यदि हम तीन साल तक [इस तरह] लड़नेके बाद संघर्ष छोड़ देंगे तो यह हमारे लिए कलंककी बात होगी। कष्ट-सहनके बिना कुछ नहीं मिलता। बालकके जन्मके वक्त माँको भी कष्ट होता है, वैसे ही भारतीयोंको इस समय कष्ट सहना पड़ रहा है। जेलके जीवनसे एक तरहकी शिक्षा मिलती है और मनोबल आता है। मैं उसे बड़ा लाभ गिनता हूँ और इसीलिए मैंने अपने दूसरे लड़के मणिलालको अपने साथ जेल ले जानेका निश्चय किया है। मणिलाल स्वयं जेल जाना चाहता है। जेलमें हमें सत्याग्रही अर्थात् अच्छे जीवनके व्रतियों (मिशनरियों) के रूपमें काम करना है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-१२-१९ ९

३०. तार एच० एस० एल० पोलकको[1]

[जोहानिसबर्ग
दिसम्बर २२, १९०९]

जोजफ रायप्पन बैरिस्टर, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी ग्रेजुएट, सैमुअल जोजेफ हेडमास्टर भारतीय विद्यालय (इंडियन स्कूल), डेविड ऐंड्रूज बनार्ड एक दुभाषिया (सबका जन्म दक्षिण आफ्रिकामें), मणिलाल श्री गांधीका अठारहवर्षीय द्वितीय पुत्र, रामलालसिंह और फजनदार ब्रिटिश भारतीय संघके कार्यवाहक-अध्यक्ष और मैंने बैरोक-गोफ सीमा पार की। परन्तु हम किसी भी समय गिरफ्तार हो सकते हैं। मेरा खयाल है कि कांग्रेसके अधिवेशनपर सनसनी न फैले इसलिए गिरफ्तारी स्थगित की गई है। श्री फजनदार, यद्यपि उन्होंने स्वेच्छया पंजीयन कराया था, गत सप्ताह निर्वासित किये गये थे। उन्होंने पुनः प्रवेश किया। ट्रान्सवालके अधिकारियोंकी नीति यह जान पड़ती है कि स्वेच्छया पंजीकृत लोगोंको भी निर्वासित करके भारत भेज दिया जाये — अर्थात् उन लोगोंको भी जिन्हें सरकार वैध रूपसे ट्रान्सवालका निवासी

१. ट्रान्सवालमें भारतीयोंके प्रति व्यवहारके बारेमें गोखलेने जो प्रस्ताव भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के लाहौर अधिवेशनमें पेश किया था, उसका समर्थन करते हुए श्री पोलकने यह तार पढ़कर सुनाया था।

२. दिसम्बर २१, १९ ९ को।

काम आ सकती है। कानूनी स्थिति ऐसी ही है। नैतिक स्थिति यह है हम खर्च पूरा नहीं कर पाते मैं धन जुटानेमें असफल रहा हूँ हम प्रेस बन्द कर दें और अन्य साधनोंको आजमायें। यदि हम सफल नहीं होते और अपनी जमीनसे ही खर्च निकालनेकी कोशिशमें ध्यान नहीं दे देना चाहते तो फिर हम इस प्रयोगसे हट जाते हैं या वे लोग हट जायेंगे जो असन्तुष्ट हैं। जब मालिक लोग देखते हैं कि उनके कारोबारमें मुनाफा नहीं है, तब वे क्या करते हैं? यहाँ आकर बसे हुए लोग वस्तुतः [जमीनके] मालिक ही हैं। हाँ बहुमत चाहे तो जमीन बेची जा सकती है। मेरा खयाल है कि हमें अभी कोई अन्तिम निर्णय नहीं करना चाहिए।

आपको याद होगा मैंने एक बार कहा था कि केवल इंडियन ओपिनियन को फीनिक्स संस्थाके सदस्य (सेटलर्स) या उनमें से कुछ अपने हाथमें लेना चाहें तो ले सकते हैं। इसीलिए [ट्रस्टके दस्तावेजमें] ऐसी धारा[1] रखी है। मैं बराबर ऐसा मानता रहा हूँ कि कमसे-कम हममें से अधिकांश आदर्शोंपर चलते ही रहेंगे। संस्थाके सदस्य (सेटलर्स) वे हैं जो ट्रस्टके दस्तावेजमें जोड़ी हुई सदस्योंकी सूचीमें हस्ताक्षर करेंगे। पत्नियाँ और बच्चे ट्रस्टके अर्थमें सदस्य नहीं हैं। पोलक और हरिलाल जो इस योजनामें शामिल हुए हैं सदस्य हैं। कुमारी स्लेशिन भी सदस्य हो सकती हैं। श्री डोक और कुमारी स्मिथ नहीं हैं।

कमाईमें से जो खर्च बचाया जा सकता है, बचाया जायेगा। इस समय तो हमें केवल घाटा ही दीख पड़ रहा है। [धाराकी] व्याप्तिमें इस सीमा तक परिवर्तन कर दिया गया है कि सदस्योंको दाम अथवा योग्यताके अनुसार नहीं बल्कि उनकी आवश्यकताके अनुसार पैसा दिया जाता है।

मैं अभी भी संशोधन परिवर्तन या परिवर्धनके[2] लिए आपके ठोस सुझावोंकी प्रतीक्षा करूँगा।

हृदयसे आपका

मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल। (सी० डब्ल्यू० ४४११) से।

१ और २. मूलमें दस्तावेजका मसविदा उपलब्ध नहीं है, ट्रस्टके दस्तावेजके लिए देखिए खण्ड [illegible]।
फीनिक्सकी योजनाके बारेमें कुछ जानकारीकी बातोंके लिए देखिए "एम० के० गांधी" पृष्ठ १११-११२।

३३ न्यायमूर्ति अमीर अलीका सम्मान

न्यायमूर्ति अमीर अलीका सम्राटकी ओरसे सम्मान किये जानेकी खबर हम पिछले हफ्ते दे चुके हैं। वे प्रिवी कौंसिलके सदस्य बनाये गये हैं। इससे उनको सम्राट्की परिषद्में बैठनेका अधिकार मिला है। ऐसा सम्मान आजतक किसी दूसरे भारतीयको नहीं मिला अर्थात् न्यायमूर्ति अमीर अली इस सम्मानके पहले अधिकारी हुए हैं। हम उनको बधाई देते हैं। हमारे पाठकोंको शायद मालूम होगा कि न्यायमूर्ति अमीर अली बहुत वर्षोंसे इंग्लैंडमें रह रहे हैं। वे इंग्लैंडमें अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके अध्यक्ष हैं। इसके अलावा वे दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति [साउथ आफ्रिका ब्रिटिश इंडियन कमिटी] के एक सदस्य हैं। यह हमारी प्रसन्नताका और भी बड़ा सबब है। उनके इस प्रकार सम्मानित किये जानेसे हमें अधिक प्रयत्न करनेकी प्रेरणा मिलती है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-१२-१९ ९

३४ पत्र ए० एच० वेस्टको

बुधवार
[दिसम्बर २९, १९ ९को या उससे पहले][1]

प्रिय श्री वेस्ट

बहसमें पड़े बगैर मैं अपनी राय नीचे लिखे अनुसार देता हूँ:

स्वास्थ्य — जहाँतक सफाईका सम्बन्ध है, मैं कुछ नहीं कहूँगा। चिकित्सा सम्बन्धी खर्चेके[2] बारेमें मैं अपनी राय पहले ही दे चुका हूँ। सबके लिए उचित चिकित्साका खर्च [हमारे] कारोबारसे निकलना चाहिए। उचित क्या है यह रोगीकी सलाहसे हरएकके बारेमें पृथक रूपसे तय किया जाना चाहिए। यह योजना पारस्परिक विश्वासपर आधारित है और हम हरएकसे यह आशा जरूर रखते हैं कि वह न तो इरादतन बीमार पड़ेगा और न हमसे [जरूरत न होते हुए भी] खर्च उठानेको कहेगा। मुझे डॉक्टरकी आवश्यकता नहीं है, पर मैं अपने इस विचारको दूसरोंपर लाद नहीं सकता। इस निष्कर्षपर पहुँचनेमें मैं यह मानकर चला हूँ कि मानव-जीवनका

१. लगता है कि गांधीजीने यह पत्र इंग्लैंडसे लौटनेके बाद और इंडियन ओपिनियनके [illegible] दीपमेन दिये जाने (१-१-१९११) से पहले लिखा था।

२. देखिए “पत्र : ए० एच० वेस्टको” पृष्ठ ८१-८९।

सामान्य नियम स्वास्थ्य है बीमारी नहीं। अगर डॉ॰ नानजी[1] फीनिक्स नहीं जाना चाहते तो इस बारेमें किसी दूसरे डॉक्टरको कहा जाये।

स्कूल — स्कूलको ऐसा ही पड़ा रहने दिया जाये और जहाँतक सामग्रीका प्रश्न है श्री गोरासे[2] पूछना चाहिए कि वे उसका क्या करना चाहते हैं। मेरा सुझाव है कि आप स्वयं उनसे मिलें। इस समय तो पुरुषोत्तमदास अकेले ही स्कूलके लिए जो-कुछ कर सकते हों सो करें।

इंडियन ओपिनियन — इसका आकार सुझावके अनुसार बदल दिया जाना चाहिए। पत्रमें इसके लिए कोई क्षमा-याचना करनेकी आवश्यकता नहीं है। अंग्रेजीके स्तम्भ घटा दिये जाने चाहिए। केवल व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ दी जायें अग्रलेख या मत प्रकट करनेवाले लेख आदि न दिये जायें। सारी पाठ्यसामग्री कड़ाईके साथ संक्षिप्त की जानी चाहिए। सामग्रीको संक्षिप्त करनेकी कलामें दक्षता लगानी चाहिए। सामग्री इस तरह बाँटी जा सकती है सत्याग्रह नेटाल-सम्बन्धी टिप्पणियाँ केप-सम्बन्धी टिप्पणियाँ आदि। बम्बईकी और अन्य स्थानोंकी सभाओंके विवरण काफी छोटे कर दिये जाने चाहिए। जिनसे संक्षेप किया जाये उन मूल कागजातको यदि सम्भव हो तो किताबकी शक्लमें चिपका कर रख लेना चाहिए। अंग्रेजीके स्तम्भोंमें सिर्फ समस्त दक्षिण आफ्रिकाकी निर्योग्यताओंके बारेमें समाचार और जिन मामलोंमें हमें दिलचस्पी है उनको देना चाहिए। जब श्री पोलक वापस आ जायें तब यदि पैसेकी सुविधा हो तो वे पत्रका आकार प्रकार बढ़ा सकते हैं। इस मदमें प्रतिमास कितनी आवश्यकता होगी इस बारेमें श्री कैलेनबैकको सूचना दी जानी चाहिए। उत्तम तो यह होगा कि कुछ भी सहायता न माँगी जाये। गुजराती स्तम्भोंको घटाना नहीं चाहिए, परन्तु यदि गुजराती ग्राहकोंकी संख्या कम हो जाये तब उनको भी किसी भी सीमा तक घटाया जा सकता है। मेरी और पोलककी गैरहाजिरीमें यहाँ इस बातका निर्णय केवल आप करेंगे।

ग्राहकोंके उधार-खातेके बारेमें आप एक सीमा निर्धारित कर सकते हैं। श्री दाउद मुहम्मद[3] और दूसरे ऐसे विदेशी या स्थानीय [ग्राहकोंको] मुफ्त या पृथक सूचीमें रखा जा सकता है। यह इसलिए कि जिससे पता रहे कि हमें उनसे पैसा लेना है। जिन्हें पत्र मुफ्त भेजा जाता है उनकी सूचीको आप जितना उचित समझें घटा सकते हैं।

विवादात्मक लेखोंके बारेमें आपको डरने या चिन्ताकी जरूरत नहीं है। ऐसे सब समाचारोंपर, जिनकी जिम्मेदारी आप नहीं ले सकते उन लोगोंके हस्ताक्षर होने चाहिए जो उन्हें प्रेषित करते हैं। इस समय इस विषयपर कोई कानून पढ़नेकी जरूरत नहीं है। यदि मुझे कोई उत्तम पुस्तक मिली तो आपके

१. डर्बनमें रहनेवाले एक भारतीय चिकित्सक, श्री [illegible] गांधी तथा फीनिक्सके रहनेवालोंका इलाज करते थे।

२. श्री [illegible], डर्बनकी [illegible] [illegible] ।

३. [illegible] भारतीय समाजके एक नेता। कई वर्षतक नेटाल भारतीय कांग्रेसके [illegible] [illegible]।

३५. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी[1]

[बुधवार, दिसम्बर २१, १९१०]

मुसलमानोंका सत्याग्रह

सर्वश्री आमद बाबा, मूसा बाबा और सुलेमान हुसेनपर[2] चलनेवाले मुकदमेकी सुनवाई पिछले मंगलको हुई। इन सबको प्रवासी अधिनियमके अन्तर्गत देश-निकाला देनेकी तजवीज की जा रही थी। श्री गांधीने बचाव पक्षकी ओरसे इजलासमें हाजिर हो कर वकील दी कि

> [मौजूदा मामलेमें] प्रवासी अधिनियम बिलकुल लागू नहीं हो सकता क्योंकि इन सबने स्वेच्छासे पंजीयन-प्रमाणपत्र ले रखे थे। यह सच है कि उन्होंने अपने पंजीयन प्रमाणपत्र दिखानेसे इनकार किया क्योंकि आन्दोलन ही प्रमाणपत्र न दिखानेका है। कानूनमें ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके आधारपर पंजीयन-प्रमाणपत्र पेश करनेसे इनकार करनेवाले लोग निर्वासित किये जा सकते हों। अलबत्ता उनको जेलकी सजा दी जा सकती है।

इसपर सरकारी वकीलने उनको प्रिटोरियासे प्राप्त आदेश पढ़ कर सुनाये।[3] मुकदमेका फैसला बुधवारके[4] लिए मुल्तवी कर दिया गया।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १–१–१९११

1. यह जोहानिसबर्गके साप्ताहिक खरीतेसे लिया गया यह अंश है। यह खरीता नियमित रूपसे १-१-१९११के बाद इंडियन ओपिनियनमें छपता रहा (देखिए खण्ड ५, पृष्ठ १४ और २१५-१६)। प्रारम्भमें खरीतेका नाम "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" (अक्षरशः जोहानिसबर्गकी) था परन्तु अंक ११-१०-१९०९ से बदल दिया गया।
2. भारतीय व्यापारी।
3. मुकदमा ३ दिसम्बर शनिवारको शुरू हुआ; देखिए "ट्रान्सवालकी टिप्पणियाँ" इंडियन ओपिनियन १-१-१९११।
4. मैजिस्ट्रेटने वकीलोंकी दलीलोंके बाद अदालतने तय किया कि अभियुक्त निर्वासित कर दिये जायें। लेकिन सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलके फैसलेके बाद ही।

३६. श्री शेलतकी रिहाई

छः महीनेकी सजा भुगतनेके बाद श्री शेलत तारीख २४ दिसम्बरको डीपक्लूफ जेलसे छोड़ दिये गये। उनका वजन ११९ से घटकर ११ पौंड रह गया था। वे दुबले और कमजोर दिखाई देते थे। इस पत्रके पाठकोंको स्मरण होगा कि मैलेकी बाल्टियाँ उठानेसे इनकार करनेपर उन्हें तनहाई और कम खुराककी सजा दी गई थी।[1] हमारी राय है कि सत्याग्रहियोंको ट्रान्सवालकी जेलोंमें नीचेसे-नीचा काम भी करनेसे इनकार नहीं करना चाहिए। परन्तु श्री शेलतने जो वाजिब है इस मामलेको अन्तरात्माका प्रश्न बना लिया। इसलिए उनकी आपत्तिका हम आदर ही कर सकते हैं। इस आज्ञाका उल्लंघन करनेपर उन्हें पहले चौबीस घंटेकी तनहाई और घटी हुई खुराककी सजा दी गई। परन्तु श्री शेलत इससे विचलित नहीं हुए। दूसरी बार उन्हें उसी खुराकके साथ अड़तालीस घंटेकी तनहाईकी सजा दी गई। परन्तु इसका भी कोई असर नहीं हुआ। तीसरी बार उसी खुराकके साथ तनहाईकी सजा छः दिनकी कर दी गई। पर श्री शेलत दृढ़ रहे। कम खुराकका मतलब था दिनमें केवल दो बार चावलका माँड़ देना। इसका उनके स्वास्थ्यपर प्रभाव पड़ा। परन्तु श्री शेलत अपनी अन्तरात्माके लिए मरने तक की ठान चुके थे। उन्हें फिर १४ दिनकी तनहाई और कम खुराककी सजा दी गई। अबके कम खुराकका मतलब था आधी खुराक। परन्तु लगभग अंधेरी कोठरीमें तनहाईकी इतनी लम्बी सजा भी सत्याग्रहीको नहीं झुका सकी। इसलिए उन्हें अन्तिम बार अट्ठाईस दिनकी सजा दी गई। इससे उनकी सजा छः महीनेसे नौ दिन ऊपर हो जाती थी। परन्तु अधिकारियोंने उन्हें नौ दिन और रोके बिना छोड़ दिया। यह एक ऐसा पराक्रम है जो सत्याग्रहके इतिहासमें सदा उज्ज्वलतम रहेगा। हम श्री शेलतको उनके साहसपर बधाई देते हैं। उन्होंने ट्रान्सवालकी सरकारको दिखा दिया कि हमारे बीच कुछ भारतीय ऐसे हैं जो अन्तरात्माकी शान्तिका प्रश्न उपस्थित होनेपर कभी इस बातसे नहीं डरते कि परिणाम क्या होगा। श्री शेलतको जो सजा दी गई वह केवल बहुत पक्के अपराधियोंको ही दी जाती है। यह सजा श्री शेलतको देना और उन्हें आधा भूखा रखना घोर निर्दयता थी। परन्तु जो इस लड़ाईके मर्मको जानते हैं उनसे हम जोरके साथ यही कहेंगे कि चाहे कितने ही कष्ट हों जरा भी परवाह मत करो। जितना ही आप कष्ट सहेंगे आपके और कौमके लिए उतना ही अच्छा है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१-१९११

१. देखिए "पत्र: जोहानिसबर्गके [illegible]" पृष्ठ ९१।

५७. अपने विषयमें

इस अंकसे यह पत्र कुछ बदली हुई वेशभूषामें प्रकाशित हो रहा है। आकार भी घटा दिया गया है। ट्रान्सवालके संघर्षसे हमारे साधनोंपर बहुत अधिक भार पड़ा है। पुराने आकार-प्रकारको कायम रखना हमारे लिए अब बहुत कठिन हो गया है। हमारे अधिकतर पाठक जानते हैं कि यह पत्र व्यावसायिक दृष्टिसे नहीं चलाया जाता। परन्तु *इंडियन ओपिनियन* जिस समाजके हितोंका रक्षक है उसकी सेवा करनेकी हमारी शक्ति सीमित है और पाठक पत्रका जो यह रूपान्तर देखेंगे वह इसी कारण आवश्यक हो गया है। हम बड़ी अनिच्छासे — केवल किफायत करनेके लिए — इसका आवरण-पृष्ठ हटा रहे हैं जिसका रंग हमने खास तौरसे चुना था। यद्यपि आकार छोटा कर दिया गया है तथापि हमें आशा है कि हम कुछ संक्षेप करके उतनी ही जानकारी देते रहेंगे। हमारे पाठक जिन्हें इस पत्रके आदर्शोंमें दिलचस्पी है — उन आदर्शोंमें जिन्हें हम आगे बढ़ानेका उद्योग करते हैं — इस पत्रके ग्राहक बनाकर उपयोगी सेवा कर सकते हैं यह पत्र उनका अपना कहा जा सकता है। हम साधन बढ़नेपर सामग्रीमें विविधता भी लाना चाहते हैं। अतः अधिक अच्छे समाचार हम कब दे सकेंगे इसका जवाब स्वयं पाठकोंके सहयोगपर निर्भर है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१–१९११

५८. लेखा-जोखा

बरस आते हैं और जाते हैं। हम हर बरस समाजकी स्थितिका लेखा-जोखा करते हैं। ट्रान्सवाल सत्याग्रहने शेष सभी चीजें ढाँक ली हैं। सत्याग्रह संघर्षमें बहुत सी जानने योग्य बातें घटी हैं। एक शिष्टमण्डल भी विलायत गया था। इस संघर्षसे अनेक काम हुए हैं। हम साहसपूर्वक कह सकते हैं कि संघर्षके कारण दक्षिण आफ्रिकामें हमारे खिलाफ अनेक कानून बनते-बनते रह गये। इसके कई उदाहरण पाठकको आसानीसे दिखाई दे सकते हैं। इनके सिवा सत्याग्रहके अभ्याससे प्राप्त नैतिक मूल्यको तो आँका ही नहीं जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है कि इस संघर्षको चलाना अपने आपमें एक उपलब्धि है। ट्रान्सवालका संघर्ष अभी जारी है। भारतीय बहुत कमजोर हो गये। अगर वे कमजोर न पड़ते तो संघर्ष समाप्त हो चुका होता। किन्तु संघर्षके लम्बे चलनेसे समाजकी कोई हानि नहीं हुई। यहाँ आत्मबलकी बात है यहाँ उसका जितना उपयोग किया जाये उतना अच्छा। आत्म बल तो विद्याकी तरह बरतनेसे बढ़ता है। फिलहाल संघर्षका स्वरूप उत्तम है।

विलायतमें भी रिचके मातहत स्वयंसेवक बड़ा अच्छा काम कर रहे हैं। यह काम आज जैसा चल रहा है अगर एक साल वैसा चले तो इसका क्या अर्थ होगा? मान लीजिए हर हफ्ते औसतन चार पौंड आयें तो दो सौ आठ पौंड इकट्ठे हो जायेंगे। और यदि पचास दस्तखत हों तो २,६ दस्तखत हो चुकेंगे। वास्तवमें सम्भावना तो इससे अधिक काम होनेकी है। फिर भी यदि २६ आदमी ही हमारे संघर्षसे अच्छी तरह वाकिफ हो जायें तो यह कोई छोटी बात नहीं गिनी जा सकती। सत्याग्रहके संघर्षकी बात जितनी अधिक फैलती है वह उतना अधिक दीप्त होता है और जो उसका विरोध करते हैं उन्हें शर्मिन्दा होना पड़ता है। श्री पोलकने भारतको जगा दिया है। जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे हैं भारत अधिकाधिक शक्ति समेट रहा है। इस सबसे प्रकट होता है कि संघर्षके लम्बे होनेसे हमारी कोई हानि नहीं है। जिस लड़ाईमें लड़नेवालोंका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता उस लड़ाईके लम्बे खिंचनेसे उन्हें लाभ ही होता है क्योंकि वे परमार्थकी दृष्टिसे लड़ रहे होते हैं। परमार्थकी तो सीमा नहीं होती। इस तरह विचार करें तो जो जेलके कष्ट उठा रहे हैं हमें उनके बारेमें भी सोच नहीं करना चाहिए। वे दुःखकी आँचमें तपकर और भी चमकने लगते हैं।

नेटालपर नजर डालें तो वहाँकी परिस्थिति दयनीय दिखाई देती है। नेटाल-सरकारने कुछ ऐसे कानून बनाये हैं जिनका विरोध करनेकी आवश्यकता है। व्यापारिक कानूनमें जो थोड़ा-बहुत फेरफार हुआ है हम उसे महत्त्वहीन मानते हैं।[1] शिक्षाके मामलेमें सरकारने बड़ी मनमानी कर रखी है। आगे-पीछे नेटालके भारतीयोंके लिए सत्याग्रहके सिवा चारा नहीं है।

केपके भारतीय सोये पड़े हैं। केपमें कोई खास नया कानून नहीं बनाया गया किन्तु समाज रोज-ब-रोज कमजोर होता चला जा रहा है। व्यापार भारतीयोंके हाथमें नहीं रहा। केपकी अच्छी स्थितिसे समाजने काम नहीं उठाया। अन्यथा केपके भारतीय केपके साथ-साथ सारे दक्षिण आफ्रिकाके लिए बहुत बड़ा काम कर सकते हैं।

डेलागोआ-बेमें भारतीय दिन-दिन अपने अधिकार खोते जा रहे हैं। पुर्तगाली अधिकारी अंग्रेजोंके उकसानेसे उनपर ज्यादती करते हैं। हम समाजसे यह कहते हैं कि सरकारके अत्याचारका विरोध करनेमें कोई हानि नहीं है। इसमें समाजकी शोभा है। और ऐसा करना समाजका कर्तव्य है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१-१९११

1 देखिए "नेटालका व्यापार अधिनियम" पृष्ठ १४।

३९. कलेक्टरका खून

पिछले हफ्ते समाचारपत्रोंमें एक तार प्रकाशित हुआ था कि जैक्सन[1] नामके एक कलेक्टरका नासिकके पास खून हो गया है। कुछ भारतीय सोचते हैं कि इस तरहकी हत्याओंसे अंग्रेज आतंकित किये जा सकते हैं। यह बड़ी गम्भीर बात है। खून करनेवालेके मनमें तो इस बातका विश्वास है ही कि उसके इस कामसे देशको लाभ होगा किन्तु यह बात समझमें नहीं आती कि खून करनेसे लाभ कैसे हो सकता है। भिन्न-भिन्न देशोंमें इस तरहके खून हुए हैं वहाँ इससे लाभके बदले नुकसान ही हुआ है। अमेरिकाके राष्ट्रपति मैकिनलीको[2] एक व्यक्तिने मार डाला। आशा यह की गई थी कि इससे अमेरिकामें जो भ्रष्टाचार फैला हुआ है वह खत्म हो जायेगा। परिणाम ऐसा नहीं हुआ। इसी तरह कुछ वर्ष पहले फ्रांसके राष्ट्रपति कारनोका[3] खून किया गया था। उससे फ्रांसमें कोई सुधार नहीं हुआ। हाँ इन दोनों ही देशोंमें पुलिसका अत्याचार और खर्च जरूर बढ़ गया।

जबतक लोग किसी विशिष्ट अत्याचारका विरोध नहीं करते तबतक अत्याचार दूर नहीं होता। कभी-कभी लगता है कि जुल्म कम हुआ किन्तु उससे दूसरी खराबियाँ पैदा हो जाती हैं। अ ने ब पर जुल्म किया। ब स्वयं उसका विरोध नहीं करता बल्कि क ब की मुक्तिके लिए कोशिश करता है। तो इससे ब की गुलामी नहीं गई। अ के बदले उसपर क का सर्वस्व हो जाता है। यदि क भला आदमी हुआ तो यह बहुत हुआ लोहेकी बेड़ीके बदले सोनेकी बेड़ी पहना देगा। किन्तु, आखिरकार बेड़ी अर्थात् गुलामी तो बनी ही रही। करना तो यह चाहिए कि ब को उसकी गुलामीका भान कराया जाये और स्वतन्त्र होना सिखाया जाये। यह शिक्षा दूसरे आदमीका खून करके नहीं दी जा सकती।

हम अपने पाठकोंसे जोर देकर प्रार्थना करते हैं कि इस विषयपर वे पूरा ध्यान दें। हम जानते हैं कि फिलहाल खूनको पसन्द करनेकी हवा भारतीय जनतामें चल रही है। हमारा खयाल है कि यह हवा बहुत दिनों तक नहीं चलेगी। यह

1. ए. एम. टी. जैक्सन, आई. सी. एस०; जिला मजिस्ट्रेट, नासिककी औरंगाबादके एक व्यक्तिने २१-१२-१९०९ को गोली मारकर हत्या की थी।

2. विलियम मैकिनली (१८४३-१९०१); १८९६ में अमेरिकाके २५ वें राष्ट्रपति हुए; फिर १९०० में चुने गये; ६-९-१९०१ को लिओन चोल्गोश नामक व्यक्तिने उनपर गोली चलाई और १४-९-१९०१ को उनकी मृत्यु हो गई।

3. मेरी फ्रांसोआ सादी कारनो, (१८३७-१८९४); १८८७ में फ्रांसके तीसरे गणतन्त्रके चौथे राष्ट्रपति। इनके कार्यकालकी मुख्य घटनाएँ हैं १८८९ का बोलांजे आन्दोलन और १८९२ का पनामा भ्रष्टाचार। २४-६-१८९४ को कैसेरियो नामक एक इटालियन अराजकतावादीने लियोंमें छुरा मारकर उनका वध किया और उनकी तत्काल मृत्यु हो गई।

जल्दी ही बन्द हो जाये उसका प्रयत्न इंडियन ओपिनियन के प्रत्येक पाठकको करना चाहिए, ऐसी हमारी सलाह है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१-१९११

४० खतरनाक कार्रवाई

प्रिटोरियाकी नगर-परिषद् काले लोगोंकी कट्टर विरोधी है। प्रतिवर्ष जब परीक्षाएँ होती हैं तब विद्यार्थी टाउन हॉलमें बैठते हैं। इस बार एक काफिर परीक्षामें सम्मिलित हुआ। उसी हॉलमें गोरे थे। इसलिए परिषद्ने नाराज होकर परीक्षकोंको नोटिस दिया कि गोरोंके हॉलमें काफिरको बैठाया गया इस कारण आगेसे उन्हें वह हॉल नहीं दिया जायेगा। तब परीक्षकोंने काफिरके लिए अलग कमरेकी माँग की। परिषदने इसे भी नामंजूर कर दिया और प्रस्ताव पास किया कि काफिर या दूसरे काले लोगोंको टाउन हॉल अथवा उसका कोई अन्य कमरा कभी न बरतने दिया जाये। इस प्रस्तावको जिन गोरोंने पास किया है वे बहुत भले और विद्वान माने जाते हैं। ऐसे देशमें काले लोगोंकी स्थिति बड़ी विषम हो जाती है। इस स्थितिमें हमारे विचारसे सत्याग्रहके सिवाय और कोई उपाय है ही नहीं। ऐसा अन्याय इसी कारण होता है कि गोरे लोग कालोंको अपने बराबर नहीं मानते। यह सब न हो इसलिए हम लोग ट्रान्सवालमें लड़ रहे हैं। और जिस जातिमें इस प्रकारका तीव्र द्वेष भरा हुआ है, उसके विरुद्ध लड़नेमें [और जीतनेमें] समय लगना आश्चर्यकी बात नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१-१९११

४१ पोलककी पुस्तक

श्री पोलकने हिन्दुस्तानमें अनेक काम सफलताके साथ किये हैं। दक्षिण आफ्रिका पर पुस्तक[1] लिखकर उन्होंने अपने इन कामोंमें एक और काम जोड़ दिया। उस पुस्तकपर होनेवाला खर्च भी हमें नहीं उठाना पड़ा। श्री नटेसनने उसे अपने खर्च पर *प्रकाशित कर दिया है।*

इस पुस्तकमें पूरे दक्षिण आफ्रिकाकी स्थितिका विवरण है। इसके चार भाग हैं। पहले भागमें दक्षिण आफ्रिकाके सभी सामान्य कानूनोंकी तफसील दी गई है। शुरू नेटालसे किया गया है। इस भागमें ९ पृष्ठ हैं। उनमें से ११ पृष्ठ नेटालके बारेमें हैं। इनमें व्यापारिक कानून प्रवासी कानून गिरमिटिया कानून इत्यादिकी पूरी जानकारी

१. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय नामक पुस्तक मद्रासमें प्रकाशित हुई।

आ जाती है। व्यापारिक कानूनका विवरण देते हुए श्री हुंडामल[1] श्री दादा उस्मान[1] श्री कासिम मुहम्मद श्री ताहिर श्री मोसा श्री चेट्टी श्री आमद बेमात आदिके मामले दिये गये हैं।

गिरमिटियोंके कष्टोंके बारेमें भी बहुत-से उदाहरण दिये गये हैं।

ट्रान्सवालके संघर्षके विषयकी सामग्री ४५ पृष्ठोंमें है।

इसके सिवाय अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियोंने जो कहा है वह भी दिया गया है।

नेटालके प्रवासका कलंक" शीर्षकसे लॉर्ड ऍम्टहिलके नाम श्री आंगलियाका एक सख्त पत्र उद्धृत किया गया है। नेटालमें शिक्षा विषयक जानकारी भी दी गई है।

पुस्तकमें केप रोडेशिया तथा डेलागोआ-बेके कानूनोंकी जानकारी भी आ जाती है। यह बहुत मूल्यवान पुस्तक है और हरएक भारतीयके पास इसका होना जरूरी है। इसका मूल्य एक रुपया रखा गया है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१-१९११

४२ पत्र मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको[2]

[जोहानिसबर्ग
जनवरी ४ १९११]

वतनियों और एशियाइयोंको प्रभावित करनेवाले विनियमों (रेगुलेशन्स)के सम्बन्धमें माननीय उपनिवेश-सचिवके नाम भेजे गये पिछले महीनेकी २१ तारीखके मेरे पत्रके[3] उत्तरमें आपका पिछले महीनेकी २१ तारीखका पत्र[4] मिला। मेरा संघ आपके विस्तृत शिष्टतापूर्ण और मुलाहजेवाले उत्तरके लिए कृतज्ञता प्रकट करता है लेकिन मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि मेरे पत्रका भाव ठीक-ठीक नहीं समझा गया है। मेरे संघको मालूम है कि *विभागीय विनियम या निर्देश गजट*[5] में प्रकाशित होनेके पहलेसे मौजूद हैं। मैं तो कहता हूँ कि ये निर्देश उस समाजके सहयोगके फलस्वरूप ही बने थे जिसका प्रतिनिधित्व मेरा संघ करता है। और ये इस बातके असंदिग्ध प्रमाण हैं कि रेलवे प्रशासन और ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्ध अभीतक मैत्रीपूर्ण रहे हैं। लेकिन अब इन निर्देशोंको कानूनकी शक्ल दी जा रही है। इससे लगता है कि ब्रिटिश

१ देखिए खण्ड ४ पृष्ठ १८७-८९।

२ देखिए खण्ड १ पृष्ठ १८-२१।

३ इस पत्रका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था और वह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।

४ इंडियन ओपिनियन ८-१-१९११ में प्रकाशित देखिए "ट्रान्सवाल रेलवे विनियम" पृष्ठ १२९ १ और १३१-३२।

५ देखिए "उपनिवेश-सचिवके नाम पत्रका सारांश" पृष्ठ १ ९।

६ तारीख १०-१२-१९ १० है।

भारतीयोंने सहिष्णुता और सहयोगकी जो भावना दिखाई है उससे प्रशासन सन्तुष्ट नहीं है। मेरे संघने विभिन्न दर्जोंमें पृथक स्थान निश्चित करने और सुरक्षित (रिज़र्व्ड) के लेबिल लगानेपर कभी रोष प्रकट नहीं किया है। लेकिन मेरे संघने इस स्थितिको कभी स्वीकार नहीं किया कि भारतीय समाजके सदस्योंको एक्सप्रेस गाड़ियोंसे यात्रा करनेकी सुविधाओंसे वंचित किया जाये।

जैसा कि आप जानते हैं उपनिवेशमें इस समय एशियाइयोंकी जो तीखी और थकानेवाली लड़ाई जारी है वह कानूनी असमानता और भेदभावके कारण है विभागीय भेदभावके कारण नहीं जिसे उपनिवेशमें मौजूद रंग-भेद सम्बन्धी पूर्वग्रहोंको देखते हुए एशियाइयोंने उचित मान लिया है। रेलवे-निकाय (बोर्ड)ने इन विनियमोंको कानूनकी शक्ल देकर इस समयकी उपेक्षा की है और इस प्रकार जिस स्थितिके विरुद्ध मेरा संघ संघर्ष करता रहा है, उसको उग्रतर बना दिया है।

मेरे संघके लिए इस बारेमें कोई राय देना मुश्किल है कि वतनी लोगोंसे बरताव करनेमें प्रशासनको कानूनी सत्ताकी आवश्यकता है या नहीं परन्तु जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका सम्बन्ध है, शायद आप स्वीकार करेंगे कि ऐसी सत्ताकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए मेरे संघको भरोसा है कि इन विनियमोंको जहाँतक वे ब्रिटिश भारतीयोंको प्रभावित करते हैं, वापस ले लिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१-१९११

४३. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

[बुधवार, जनवरी ५, १९११]

व्यापारियोंके लिए ध्यातव्य

अखबारोंमें जो एक नोटिस निकला है उसका सार मैं नीचे देता हूँ।

सब प्रकारके परवाने (लाइसेन्स) इस मासके अन्त तक ले लेने चाहिए। परवाना लेनेसे पहले प्रत्येक व्यापारका कानूनके अनुसार पंजीयन किया जाना चाहिए। जो व्यापारका पंजीयन नहीं करायेंगे उनपर मुकदमा चलाया जायेगा और जिनके पास परवाना न होगा उनको १ प्रतिशत जुर्माना देकर परवाना लेना होगा। परवानोंकी दरें निम्नलिखित हैं

	पौं	शि	पें
विदेशी कम्पनीके एजेंट	१०	०	०
दलाल	१	०	०
सामान्य व्यापारी	१	०	०
फेरीवाला	१	०	
रेढ़ीवाला	२	०	०

जिस फेरीवालेके पास पहलेसे परवाना नहीं होगा उसे माँगते ही परवाना नहीं मिलेगा। जिसको नया परवाना लेना हो उसे शान्ति-रक्षक न्यायाधीश (जस्टिस ऑफ पीस) का प्रमाणपत्र पेश करना होगा।

व्यापारिक परवानोंके उम्मीदवार अपने कुल-नामके आरम्भिक अक्षरके क्रमसे परवाने लें। जिनका कुल-नाम ए, बी, सी और डीसे शुरू होता हो वे तारीख १२ से १५ तक परवाने लें ई से एल तकके १७ से २० तक एम से आर तकके २१ से २५ तक और एस से जेड तक के २६ से ३१ तक परवाने ले लें। भारतीयोंको शनिवारको छोड़कर प्रतिदिन २ बजेसे ३–३ बजे तक परवाने दिये जायेंगे।

जिन्हें माल-दफ्तर (रेवेन्यू ऑफिस) से परवाने लेने हैं उनके सम्बन्धमें ये सारी बातें लागू होती हैं।

नगरपालिकामें जो फेरी करते हों उनके लिए दरें अलग हैं और उन्हें जोहानिसबर्गमें १५ जनवरी तक परवाने ले लेने हैं।

अब क्या किया जाय?

इसका अर्थ यह हुआ कि जो भारतीय पूरे सत्याग्रही नहीं हैं उन्हें या किसी अन्य भारतीयको भी १५ जनवरी तक परवाना-कार्यालयमें जानेकी जरूरत नहीं है। जो दुकानदार हैं उन्हें ३१ जनवरी तक परवाने लेनेकी आवश्यकता नहीं है।

यदि बहुत-से भारतीय पस्त हो गये हैं तो वे फिर उठ खड़े हो सकते हैं। दुकानदार फिलहाल परवाने न लें और अन्तमें लें इसमें उनकी शोभा है। इसके अलावा यह जरूरी है कि प्रत्येक दुकानदार अपनी दुकानमें से कमसे-कम एक आदमीको फेरीपर भेजा करे। जो इस कामके लिए निकले वह उसे ठीक ढंगसे करे। प्रत्येक फेरीवालेको १६ तारीखसे गिरफ्तार होनेका प्रयत्न करना चाहिए और एक बार तो जेल भर ही देनी चाहिए। यह कोई असाधारण बात नहीं कही जायेगी। अगर सब लोग जेल न जायें तो प्रत्येक टोली या भोजनघरके सदस्योंमें से कुछ लोग जायें। दूसरे क्या कर रहे हैं यह कोई न सोचे। परन्तु जिससे जितना बन पड़े उतना करे। जेलसे निकलनेपर परवाना लेनेका विचार हो तो ले ले। अगर पूरा जोर लगाकर परवाना ले ही नहीं तो और भी अच्छा है। लोग यदि इतना भी करेंगे तो उससे जातिका भला होगा और खुद भी कुछ सीखेंगे।

फेरीवालोंको समझानेका उत्तरदायित्व श्री भायात श्री मूसा मियाँ और श्री अहमद मियाँने अपने ऊपर लिया है और वे अपनी-अपनी दुकानोंसे कमसे-कम एक-एक आदमी देंगे। श्री हाजी हबीब खुद परवाना देकर या किसी दूसरी तरह गिरफ्तार हो जायेंगे और अपनी दुकानसे एक आदमी देंगे। मैं आशा करता हूँ कि इन सज्जनोंका अनुकरण अन्य भारतीय भी करेंगे।

मुझे लगता है कि श्री जोजेफ रायप्पन श्री सैम्युअल जोजेफ और श्री डेविड एण्ड्रू भी अगर गिरफ्तार न हुए तो फेरी लगायेंगे। गैरसहरी लोगोंकि भारतीय भी इस सम्बन्धमें बहुत ही अच्छा काम कर सकते हैं।

यह पत्र मैं बुधवारको लिख रहा हूँ। साथ ही श्री जोजेफ रायप्पन और उनके साथी श्री काछलिया श्री गांधी आदि आमन्त्रणपर बॉक्सबर्ग जानेवाले हैं। यदि लोग दुबारा जोर पकड़ लें तो तुरन्त निपटारा हो जानेकी सम्भावना है। चाहे ऐसा न भी हो किन्तु इतना तो आवश्यक है कि लोग अपना कर्तव्य पूरा करें।

और धन

श्री पेटिटने श्री गांधीको आज तारसे २ पौंड और[1] भेजे हैं।

गिरफ्तारियाँ

अभी-अभी खबर मिली है कि श्री इब्राहीम इस्माइल जो सत्याग्रही हैं और जिन्होंने भाईकी दुकान ली थी आज गिरफ्तार कर लिये गये हैं।

मोज़ाम्बिकसे सहायता

श्री दामोदर आनन्दजीका सत्याग्रहकी लड़ाईके निमित्त ५ पौंडका चेक प्राप्त हुआ है। मोज़ाम्बिकके भारतीय भाइयोंने श्री आदमजीको बहुत अच्छी मदद दी है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१-१९१

४४ पत्र जे० सी० गिब्सनको

जोहानिसबर्ग
जनवरी ६ १९१

प्रिय श्री गिब्सन

मैं इस पत्रके साथ एक ज्ञापन (मेमोरैंडम) भेजता हूँ। उसमें बताया गया है कि उपनिवेशमें एशियाइयोंकी जो तीखी और थका देनेवाली लड़ाई चल रही है वह कैसे खत्म होगी।

मेरे ध्यानमें यह बात लाई गई है कि भारतीय समाजपर दो आरोप लगाये जा रहे हैं पहला यह कि ब्रिटिश भारतीय अपनी माँगोंको लगातार बदलते रहे हैं और दूसरा यह कि यहाँके आन्दोलनको पूर्णत भारतने उभारा है और उसका नियन्त्रण भी भारतसे किया जाता है।

१ "ट्रान्सवालकी टिप्पणियाँ" इंडियन ओपिनियन १-१ १९१ में बताया गया था कि "श्री जहाँगीर पेटिटने बम्बईसे श्री गांधीको ४ पौंड तारसे भेजे हैं।"

२. पादरी चार्ल्स फिलिप्स और जे सी गिब्सनने ट्रान्सवालके उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) लॉर्ड सेल्बोर्नसे भारतीय प्रश्नके बारे ६ जनवरी १९१ को गांधीजीसे भेंट की थी। यह पत्र और ज्ञापन उसीके फलस्वरूप भेजे गये थे। देखिए ७-१-१९१ को लॉर्ड सेल्बोर्नको भेजा गया ज्ञापन जो इंडियन ओपिनियन १०-१२-१९१ में उद्धृत किया गया था।

पहले आरोपके सम्बन्धमें कुछ तथ्य ये हैं। १९०७के सितम्बर मासके आसपास अर्थात् जब कैदकी सजाएँ शुरू हुई और समझौता किया गया उससे पहले उपनिवेश-सचिवको कई हजार भारतीयोंके हस्ताक्षरोंसे एक सार्वजनिक प्रार्थनापत्र[1] भेजा गया था। उसमें यह वाक्य आता है : हम सादर निवेदन करते हैं कि यहाँ उत्पन्न विषम स्थितिका सामना [पंजीयन] अधिनियम (ऐक्ट)को पूरी तरह रद करके ही किया जा सकता है उससे कम अन्य किसी उपायसे नहीं। इस तरह अधिनियमको रद करानेकी बात उद्देश्यके रूपमें सदा सामने रखी गई है। उस समय या दूसरे पंजीयन अधिनियमके पास होनेसे पहले किसी भी समय इस अधिनियमको पूरी तरह रद करके प्रवासी अधिनियमके अन्तर्गत कानूनी समानता फिर कायम की जा सकती थी।

मेरा कहना है कि समझौता करनेके समय[2] स्वेच्छया पंजीयन करानेपर इस कानूनको रद करनेका निश्चित वचन दिया गया था। जनरल स्मट्सने समझौतेके दो दिन बाद अपने रिचमंडके भाषणमें इस वचनका उल्लेख भी किया था।[3] उन्होंने कहा था कि एशियाइयोंने इस कानूनको रद करनेकी माँग की है। उन्होंने उनके नेताओंसे कह दिया है कि जबतक प्रत्येक एशियाई पंजीयन न करा लेगा वे अधिनियमको रद नहीं करेंगे।

जब मुझपर प्रहार हुआ था मैंने और श्री कैमनेने एक वक्तव्य[4] प्रकाशनके लिए तैयार किया था। उसका आशय यह था कि यदि ऐसा स्वेच्छया पंजीयन हो जाये जिससे अधिकारियोंको सन्तोष हो सके तो अधिनियम रद कर दिया जायेगा। प्रमाणपत्रोंको जलानेके बाद कार्यकारिणी परिषदकी बैठकमें समझौता इसलिए असम्भव हो गया था कि अधिनियम रद करानेका एक आवश्यक मुद्दा अर्थात् प्रवासके सम्बन्धमें कानूनी समानताका मुद्दा मंजूर नहीं किया गया था और इसी मुद्देके तय न होनेके कारण सम्भवमें अन्तिम समझौता नहीं हो पाया था। श्री डंकन[5] जिस बातकी चर्चा कर रहे हैं उन्हें उसकी जानकारी होनी चाहिए। उनकी यह गवाही नीचे दी जाती है कि हमने अपनी माँग कभी नहीं बदली है। उन्होंने गत फरवरीके 'स्टेट'[6] में एक लेखमें यह लिखा था

> भारतीय नेताओंकी स्थिति यह है कि वे ऐसे किसी भी कानूनको सहन न करेंगे जिसमें उनको प्रवास-सम्बन्धी प्रतिबन्धके मामलेमें यूरोपीय लोगोंके बराबर न रखा गया हो। वे इसके लिए तैयार हैं कि प्रशासनिक कार्रवाईसे एशियाई प्रवासियोंकी संख्या सीमित कर दी जाये। उनका आग्रह है कि उन्हें शुरू कानूनमें ही समानता दी जाये।

१ देखिए "भीमकाय प्रार्थनापत्र" खण्ड ७, पृष्ठ २३९४ ।
२. ३०-१-१९०८ को, देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ४१-४२ तथा ४३-४४ ।
३ ५-२-१९०८ के भाषणमें; देखिए खण्ड ८ परिशिष्ट ८ ।
४ यह प्रकाशित नहीं हुआ था और उपलब्ध नहीं है; देखिए खण्ड ८ पृष्ठ ३२६ ।
५. पैट्रिक डंकन स्मट्सके पहले ट्रान्सवालके उपनिवेश-सचिव ।
६ क्लोजर यूनियन सोसाइटीज का मासिक मुखपत्र ।

श्री डंकनने इस लेखमें माँगोंको बदलते रहनेके आरोपकी जाँच की है और वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि माँगें नहीं बदली गई हैं।

आन्दोलन भारतने उभाड़ा है और उसका नियन्त्रण भारतसे किया जाता है, इस आरोपके बारेमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि यह बिलकुल निराधार है। असलमें यद्यपि आन्दोलनको जिन लोगोंने थोड़ा भी समझा है, वे सभी जानते हैं कि यहाँ जो संघर्ष चल रहा है उसके राष्ट्रीय महत्त्वके बारेमें भारतमें पर्याप्त जागृति न होनेकी शिकायत थी। श्री पोलकको इसीलिए भेजा गया था। इंग्लैंडको शिष्टमण्डल भेजे जानेसे पहले कभी भारतकी ओरसे कोई आर्थिक सहायता न तो मिली थी और न अपेक्षित ही थी। आज समूचा संसार जानता है कि इस संघर्षका भारतकी राजनीतिपर न केवल प्रभाव पड़ रहा है बल्कि इसको भारतसे आर्थिक सहायता भी दी जा रही है। जो भी सहायता मिलती है पाई-पाई सार्वजनिक रूपसे छाप दी जाती है। अब हमें इस तरहकी सहायता इंग्लैंडसे भी मिल रही है।

अन्तमें मैं यह कहना चाहता हूँ कि यदि मेरे पत्र या इसके साथ संलग्न वक्तव्यकी कोई बात स्पष्ट न लगे तो मैं कोई दूसरा कागज भी भेजनेके लिए तैयार हूँ बशर्ते कि उससे इस वक्तव्यका मंशा पूरा होता हो और यह मंशा है कानूनकी मंसूखी और प्रवासके सम्बन्धमें कानूनी समानता। दूसरे पंजीयन अधिनियमके बाधक होनेके कारण इस एक मुद्देको दो मुद्दोंकी तरह पेश करना आवश्यक हो गया है, लेकिन मुद्दा वास्तवमें एक ही है।

केवल आपका
मो० क० गांधी

[संलग्न]

वक्तव्य

यदि १९०७का अधिनियम २ रद कर दिया जाये और प्रवासी अधिनियम (इमीग्रेशन ऐक्ट) में ऐसा हेरफेर कर दिया जाये जिससे कोई सुसंस्कृत एशियाई प्रवासी बिलकुल यूरोपीयोंके समान शर्तोंपर प्रवेश कर सके और उसे किसी भी पंजीयन अधिनियम (रजिस्ट्रेशन ऐक्ट) का पालन करनेकी जरूरत न रहे तो ब्रिटिश भारतीय सन्तुष्ट हो जायेंगे। इस संशोधनके अनुसार प्रवासी अधिकारी शैक्षणिक जाँचका तरीका बिलकुल अपनी मर्जीसे निश्चित करेगा और शैक्षणिक जाँचमें उत्तीर्ण हो जानेपर भी सपरिषद गवर्नर (गवर्नर-इन-कौंसिल)को विभिन्न वर्गों और जातियोंके प्रवासियोंकी संख्या विनियम (रेगुलेशन) बनाकर सीमित करनेका अधिकार होगा। यदि १९०८में पास किया गया दूसरा एशियाई अधिनियम मौजूद न होता तो जहाँतक एशियाइयोंका सम्बन्ध है प्रवासी अधिनियममें संशोधन करनेकी आवश्यकता ही न पड़ती। सपरिषद गवर्नरको उक्त प्रकारके विनियम बनानेका अधिकार देनेका संशोधन हो जानेपर कानूनके प्रशासन और उसकी धाराओंमें बहुत अन्तर होनेकी आपत्ति भी नहीं रह जायेगी।

१ यह एशियाई अधिनियम २१ जूनको जारी था और १ जुलाई, १९०९ को इंग्लैंड पहुँचा था।

यदि प्रवासिक कानूनके अन्तर्गत उपनिवेशमें प्रतिवर्ष एक निश्चित संख्यामें (जैसे छः तक) भी सुसंस्कृत शिक्षित भारतीयोंको प्रवेश करने दिया जायेगा तो शिक्षित भारतीय सन्तुष्ट हो जायेंगे। ये दोनों रियायतें मिल जानेपर संघर्ष समाप्त हो जायेगा और यह प्रश्न भारतीय राजनीतिक अखाड़ेसे भी हट जायेगा। तब ट्रान्सवालमें प्रवेश पा चुकनेवाले शिक्षित भारतीय बहुत-से चले जायेंगे और यदि प्रविष्ट होना भी चाहेंगे तो वे उसकी माँग सामान्य परीक्षाके अन्तर्गत ही करेंगे।

मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५३११) से।
इंडियन ओपिनियन १०–१२–१९११ से भी।

४५. भाषण : जोज़ेफ रायप्पन और अन्य मित्रोंको दिये गये भोजमें[1]

[जोहानिसबर्ग
जनवरी ७, १९११]

श्री गांधीने अतिथियोंके स्वास्थ्यकी कामना करते हुए बताया कि भारतीयोंका उपनिवेशमें आगमन उद्देश्य केवल राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षा करना है और कहा, हम इस उपनिवेशमें अपने जातीय सम्मानकी रक्षा करने आये हैं। हम यहाँ कष्टोंसे गुजरकर अपने लोगोंकी हिम्मत बँधानेके लिए आये हैं। हममें से बहुत-से जानते हैं कि यह अग्नि-परीक्षा कैसी है और निःसन्देह अभी यह तो देखना ही है कि नये रंगरूट कहाँतक कष्ट-सहन कर सकते हैं। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हममें से सैकड़ों कष्ट सहनेके लिए तैयार हैं यह दोसी हम अब नहीं नकार सकते। कोई २५ लोग जेल गये हैं और इनमें से बहुत-से यह अनुभव करते हैं कि वे अब नहीं जा सकते। जो लोग हिम्मत हार गये हैं उनको मैं दोष नहीं देता। ऐसे लोग प्रत्येक संघर्षमें मिलते हैं। किन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि हमारे कुछ सर्वोत्तम लोग कष्ट-सहनमें स्पष्टतः पक्के बन गये हैं और आन्दोलन चाहे महीनों चले या सालों तबतक जारी रहेगा जबतक यह सफल नहीं हो जाता या वे मर नहीं जाते। स्वयं मुझे परिणामके सम्बन्धमें कोई सन्देह नहीं है। यह अग्नि-परीक्षा लम्बी चलती है या थोड़े दिन चलती है, यह मेरी दृष्टिमें अपेक्षाकृत महत्त्वहीन है। प्रसन्नताकी असली बात तो यह है कि अब यह सिद्ध हो गया है कि हमारे बीच अभी ऐसे बहुत-से लोग हैं जिन्होंने नैतिक सिद्धान्तोंकी रक्षामें अदम्य उत्साहका परिचय दिया है।

1. जर्मिस्टन जेलसे छूटनेवाले श्री जोज़ेफ रायप्पन, डेविड ऐंड्रचू, सेम्युअल जोज़ेफ और अधिकांश ... सम्मानमें दिये गये एक सार्वजनिक भोजमें। इसकी अध्यक्षता विलियम हॉस्केनने की थी। ... समाज के सामान्य सदस्य थे। इसमें कई भारतीय और यूरोपीय व्यक्ति थे। गांधीजीके भाषणकी यह रिपोर्ट दूसरे ... इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित की गई थी।

श्री गांधीने एक मुसलमान[1] और एक दूसरे ब्रिटिश भारतीयका उदाहरण दिया और कहा: मुसलमानका पालन-पोषण सूरतमें हुआ है किन्तु वे डीपक्लूफकी जेलमें तीसरी बार सजा भुगत रहे हैं। दूसरे ब्रिटिश भारतीय एक प्रमुख पारसी[2] सज्जन हैं। उन्होंने एक समृद्ध व्यवसायकी बलि दी है। वे अगले महीनेकी ११ तारीखको १२ महीनेकी लगातार कैदकी सजा पूरी कर चुकेंगे। उनको पहले ६ महीनेकी कैद की सजा दी गई थी। किन्तु उन्होंने रिहाईके बाद तुरन्त फिर सीमा पार की और कैदकी सजा पाई। श्री गांधीने (अध्यक्ष द्वारा निवेदन किये जानेपर) बताया कि उन्होंने अपने १७ वर्षीय पुत्रको[3] उपनिवेशमें गिरफ्तार होनेके उद्देश्यसे प्रवेश करनेकी अनुमति क्यों दी। उन्होंने कहा: लड़केने बार-बार अपने देशवासियोंके सम्मानपूर्ण कष्ट-सहनमें भाग लेनेकी इच्छा प्रकट की थी इसलिए मैंने अन्तमें यह अनुभव करते हुए उसको स्वीकृति दे दी कि वह जेलमें जाकर उस जगहकी बुराइयाँ न सीखेगा। वह वहाँ किसी भी अर्थमें अपराधीके रूपमें नहीं जायेगा (तालियाँ) बल्कि अपनी ही जातिके पीड़ित लोगोंमें और वतनी कैदियोंमें जिनके वर्गमें वह रखा जायेगा एक सेवाभावीके रूपमें जायेगा। (जोरकी तालियाँ)। मैं यह अनुभव करता हूँ कि अनाक्रामक प्रतिरोधी न्यायकी खातिर जो कुछ इख्तियार कर रहे हैं उससे जहाँतक उनका सम्बन्ध है, जेल जानेमें अपराधकी गन्ध भी नहीं बची है। मेरा विश्वास है कि ईश्वरकी देखरेखमें अब भी उनके साथ न्याय होगा और उनके उद्देश्यकी जीत होगी। (जोरकी तालियाँ)

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-१-१९११

४६. स्वतन्त्रता

> स्वतन्त्रता इसमें है कि हम दूसरोंकी इच्छा और अन्तरात्माके बजाय अपनी ही इच्छा और अन्तरात्माका अनुसरण कर सकें। —लॉर्ड ह्यू सेसिलके एडिनबरा विश्वविद्यालयकी असोसिएटेड सोसाइटीजमें दिये गये भाषणसे।

ट्रान्सवालमें आजकल जो संघर्ष चल रहा है, उसे अक्सर स्वतन्त्रताकी लड़ाई कहा गया है। ऊपर जो परिभाषा दी गई है उसके अनुसार उसे देखें तो कहना होगा कि हमारे देशभाई ट्रान्सवालमें सचमुच स्वतन्त्रताकी लड़ाई लड़ रहे हैं और

1. इमाम अब्दुल कादिर बावजीर।
2. पारसी रुस्तमजी।
3. मणिलाल गांधी।
4. इस स्वागत-समारोहका प्रबन्ध रायप्पनने किया। इसके बाद [illegible] अपने देशके अनुकूल बनाने और भी प्रयत्न हुए हैं। क्योंकि कहा कि जो लोग नैतिक और आध्यात्मिक [illegible] रखते हैं वे अजेय हैं।

इसलिए उसे सर्वत्र सहानुभूति प्राप्त होनी चाहिए। अपनी परिभाषाको स्पष्ट करते हुए लॉर्ड ह्यू सेसिलने कहा था

> स्वतन्त्रताको कायम रखनेका सच्चा आधार यह स्थिति है जिसके बिना किसी सच्चे अर्थमें सद्गुण या धर्मशीलताका होना सम्भव नहीं। सद्गुण सही काम करनेमें नहीं है, बल्कि सही काम करना पसन्द करनेमें है। मनुष्य और पशुके बीच यही सबसे बड़ा अन्तर है।

ट्रान्सवालके भारतीय सरकारकी इच्छाके सामने झुकनेके बजाय अपनी इच्छा और अन्तरात्माके अनुसरणकी शक्तिको आजमा रहे हैं क्योंकि दोनोंकी इच्छाओंमें विरोध है। जो व्यक्ति अपनी इच्छाको दबाकर सरकारकी इच्छाका पालन करता है वह अपनी स्वतन्त्रताका त्याग करता है और इस तरह गुलाम बन जाता है। एशियाई कानून भारतीयोंपर गुलामी लादता है क्योंकि वह उन्हें उनकी स्वतन्त्रतासे अर्थात् अपनी अन्तरात्माका अनुसरण करनेकी प्रवृत्तिसे वंचित करता है।

लॉर्ड महोदयके शब्दोंसे आगे यह भी अर्थ निकलता है कि संसदमें अधिनियम बना देनेसे लोगोंको सद्गुणी नहीं बनाया जा सकता। अगर उन्हें कोई अच्छा कहा जानेवाला काम करनेके लिए कानून द्वारा मजबूर किया जाता है तो इसका श्रेय उन्हें उस चोरसे अधिक नहीं दिया जा सकता जो चोरी छोड़नेके लिए मजबूर किया जाता है।

इस तरह ट्रान्सवालके सत्याग्रही दक्षिण आफ्रिकाके सबसे अधिक शक्तिशाली राज्यके विरुद्ध खड़े होकर समस्त दक्षिण आफ्रिकाकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ रहे हैं। यद्यपि वे बहुत थोड़े-से हैं तथापि उनके सामने एक महान और स्पष्ट सत्कार्य है। और इसके लिए उन्होंने जो रेकर्ड कायम किया है उसपर वे अवश्य गर्व कर सकते हैं।

लॉर्ड ह्यू सेसिलने हमें स्वतन्त्रताकी वैज्ञानिक परिभाषा तो दी परन्तु उन्होंने यह नहीं बतलाया कि हम उसे प्राप्त कैसे करें। स्वतन्त्रताका अर्थ यदि यह है कि हम अपनी अन्तरात्माके अनुसार काम करनेमें समर्थ हों तो निःसन्देह यह समर्थता हथियारोंके बलसे अर्थात् शारीरिक हिंसासे प्राप्त नहीं की जा सकती। जबतक हमारे विरोधी अपनी भूलको समझ न लें और अपनी इच्छा हमपर लादनेका प्रयत्न करते हुए हमें सताना छोड़ न दें तबतक स्वयं कष्ट उठाकर बिना लड़े वह प्राप्त नहीं की जा सकती। इस परिभाषासे लड़ाईका यही — और केवल यही — तरीका स्वभावतः उपलब्ध होता है स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका कोई भी अन्य तरीका दूसरेके अधिकारको हड़पनेका तरीका है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१-१९१

४७. मेटासके परवाना सम्बन्धी विनियम

विक्रेता-परवाना अधिनियम (डीलर्स लाइसेंसेज ऐक्ट)के अन्तर्गत जो विनियम हालमें ही प्रकाशित हुए हैं उनका सार[1] हम एक दूसरे स्तम्भमें दे रहे हैं। उनमें इसके सिवा कोई आश्चर्यजनक या नई बात नहीं है कि अपीलकर्ताको जो १२ पौंड १० शिलिंग शुल्क जमा कराना होता था वह अब भी कायम रखा गया है। हम यह राय पहले ही जाहिर कर चुके हैं कि यह शुल्क लेना गैर-कानूनी है और अपीलकर्ता इस रकमको देनेके लिए बाध्य नहीं है। विनियमोंसे यह साफ जाहिर होता है कि उनका मंशा भारतीय व्यापारियोंके लिए नये परवाने प्राप्त करना उत्तरोत्तर कठिन कर देना है। अगर एक फेरीवाला भी नया परवाना लेना चाहता है तो उसे अखबारोंमें विज्ञापन देनेका नाटक करना होगा और एक उलझन-भरी विधिमें से गुजरना होगा। तब कहीं वह अपनी ईमानदारीकी रोटी कमानेके लिए मेहनत कर सकेगा। कुछ न कहें तो भी यह एक निर्दय पद्धति है और इसका अर्थ है बेईमानी तथा काहिलीको बढ़ावा देना।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१-१९११

४८. ट्रान्सवाल रेलवेके विनियम

मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके[2] महाप्रबन्धक और जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षके बीच आगे जो पत्र-व्यवहार हुआ है उसका सार[3] हम प्रकाशित करते हैं। हमें विश्वास है कि पत्रकी सान्त्वनापूर्ण ध्वनिसे ट्रान्सवालके भारतीय चौकेमें आकर निश्चिन्त न हो जायेंगे। इसलिए श्री काछलियाने महाप्रबन्धकको जो जवाब[4] भेजा है उसका हम स्वागत करते हैं। उन्होंने लिखा है जहाँतक संघका सम्बन्ध है उसके लिए यह बात कोई अर्थ नहीं रखती कि अब भी भारतीय जनताको माँगकी गई ही सहूलियतें दी जायेंगी क्योंकि यद्यपि प्रशासनकी छोटी-छोटी बातोंकी जाँच कराना या उनपर आपत्ति करना महत्त्वपूर्ण मामला है, फिर भी यह संघका कर्तव्य नहीं है। उसका कर्तव्य तो सिद्धान्तोंको मान्य कराना और उन्हें स्थापित कराना है। इसमें मुख्य और एकमात्र विचारणीय मुद्दा यह है कि गजट में छपनेसे पहले विनियम केवल महकमेके लिए दी गई भीतरी हिदायतोंके रूपमें थे और उनमें

१. यह यहाँ नहीं दिया गया है।
२. सेन्ट्रल साउथ आफ्रिकन रेलवे।
३. यह यहाँ नहीं दिया गया है।
४. देखिए "पत्र: मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको" पृष्ठ १२०-२१।

कानूनी भेद नहीं था। आज ये उपनिवेशके कानूनोंका अंग बन गये हैं और चूँकि उनसे कानूनी असमानताका सिद्धान्त स्थापित होता है इसलिए ट्रान्सवालके भारतीय समाजका यह कर्तव्य है कि वह अपनी पूरी शक्तिसे इस बुराईका मुकाबला करे। रेलगाड़ियोंमें अलग जगह मुकर्रर करना और ऐसे ही अन्य मामले कानूनके विषय नहीं हो सकते। बल्कि उनका नियन्त्रण तो सम्बन्धित समुदायोंके सद्भाव और ऐच्छिक सहयोगसे ही किया जा सकता है। यह स्थिति ज्यों ही बदलती है वह सत्ताके अपहरणका रूप ले लेती है और इसका विरोध समस्त कानूनी उपायोंसे किया जाना चाहिए। यहाँ हमने कानूनी शब्दका प्रयोग सत्याग्रहके अर्थमें किया है जिसे इस पत्रके पाठक अच्छी तरह जानते हैं। हमारी सम्मतिमें सत्याग्रह अन्यायके निवारणके लिए विशुद्ध कानूनी उपाय है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१-१९११

४९. फेरीवालोंका कर्तव्य

यह लेख हम खास तौरसे ट्रान्सवालके फेरीवालोंके लिए लिखते हैं। ट्रान्सवालके संघर्षका फेरीवालोंके साहससे बहुत अच्छा प्रभाव हुआ है। सैकड़ों फेरीवाले जेल गये इससे यह लड़ाई बड़ी मानी गई। अबतक खयाल किया जाता था कि ये लोग मानापमानकी बात नहीं समझते। अब सब मानते हैं कि फेरीवाले न केवल मानापमानकी बात समझ सकते हैं बल्कि उनकी प्रतिष्ठा भी बड़ी है। सभाओंमें उनकी उपस्थिति उनका गौरव बढ़ाती है। इतना करनेके बाद अब वे उसको छोड़ दें तो यह ठीक नहीं होगा।

ट्रान्सवालकी लड़ाई ऐसी है कि इसमें प्रत्येक व्यक्तिको अपनी शक्तिपर भरोसा रखना चाहिए। यह लड़ाई ऐसी नहीं है कि दूसरेकी मददसे जीत सकें। इस लड़ाईमें अपने दुःख अपने-आप दूर करना सीखना है। इसलिए यदि मान लिया जाये कि फेरीवाले इस बार हार ही जाते हैं तो भविष्यमें जब कभी उनपर संकट आयेगा तब वे उसका प्रतिकार न कर सकेंगे।

इस लड़ाईको ठीकसे खत्म करना फेरीवालोंके हाथकी बात है और इतना वे ज्यादा दुःख भुगते बिना कर सकते हैं। वे फिलहाल फेरीके परवाने न लें बिना परवानोंके ही व्यापार करके गिरफ्तार हों। यह काम वे आसानीसे कर सकते हैं। जिस प्रकार सरकार इस समय जान गई है कि फेरीवालोंने तो घुटने टेक दिये हैं उसी प्रकार वे सरकारको बता सकते हैं कि फेरीवाले घुटने टेकनेपर भी दुबारा उठ सकते हैं। ऐसा करनेमें किसीको किसीसे होड़ नहीं करनी है बल्कि सभी प्रयत्न कर सकते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१-१९११

५०. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुसलमान

भारतीय कांग्रेसके सम्बन्धमें रायटरके जो तार[1] आये हैं उनका अनुवाद हम पिछली बार दे चुके हैं। लॉर्ड मॉर्लेके अधिनियम (ऐक्ट) के सम्बन्धमें कांग्रेसमें जो चर्चा हुई उससे खेद हुआ है। कांग्रेसने यह विचार प्रकट किया है कि लॉर्ड मॉर्लेने मुसलमानोंको जो विशेषाधिकार दिये हैं उनसे हिन्दू नाराज हुए हैं और हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच अलगाव बढ़ा है। तारसे मिली खबरोंके आधारपर आलोचना करना खतरनाक है। जो लोग इन दो जातियोंके बीच फूट डालना चाहते हैं उनका एकपक्षीय तार देना आश्चर्यकी बात नहीं है। फिर भी रायटरका तार ठीक है, ऐसा समझकर हमारा विचार करना अनुचित न होगा।

हमारे खयालसे पहली भूल यह मान लेना है कि लॉर्ड मॉर्लेके कानूनसे दोनों कौमोंके बीच कटुता पैदा हो सकती है। लॉर्ड मॉर्ले चाहे जैसा कानून बनायें उससे दोनों जातियोंके बीच कटुता पैदा होनेका कोई कारण नहीं है।

लेकिन हम यह मान लें कि मुसलमानोंको जितने मिलने चाहिए वे उनसे अधिक अधिकार प्राप्त हो गये हैं। यदि ऐसा हो तो भी क्या हुआ? इसको लेकर लॉर्ड मॉर्लेसे शिकायत करनेकी जरूरत नहीं है। मुसलमानोंको ज्यादा मिले तो भी वह घरमें ही रहता है। इसमें हिन्दुओंके लिए घबरानेकी कोई बात नहीं है। इन दोनों महान् जातियोंके बीच तीसरा कोई न्याय करे, यह जबतक हम सोचते रहेंगे तबतक हम दोनोंके दोनों परतन्त्र ही रहेंगे। परिषद (कौंसिल) में ज्यादा मुसलमान हों अथवा ज्यादा हिन्दू हों इसमें दुःख करनेकी कोई बात नहीं है। आपसी सन्देह मिटानेका रास्ता हमें तो एक ही जान पड़ता है और वह यह कि चूँकि हिन्दू संख्यामें अधिक और विद्यामें आगे हैं इसलिए उनको झुकना चाहिए। यदि वे झुकेंगे तो कभी झगड़ेका कारण ही नहीं होगा यह तो बिलकुल स्पष्ट है।

आखिर, इस प्रकारकी चर्चा करके कांग्रेसने लॉर्ड मॉर्लेकी परिषद्को आवश्यकतासे अधिक महत्त्व दे दिया है। ऐसा करनेका कोई कारण नहीं है। यह परिषद् भारतको सुख सम्पन्न नहीं बना देगी। इसमें या ऐसी और किसी परिषद्से हम लोग तभी लाभ उठा सकेंगे जब हम आपसमें एक-दूसरेका विश्वास करेंगे और अपनी आपसकी शिकायत किसी तीसरेके पास ले जानेके बजाय उसका फैसला अपने घरमें ही करेंगे।

इतना कहनेके बाद हम मुसलमान भाइयोंसे भी कहेंगे कि उन्हें कांग्रेससे नाराज होनेकी जरूरत नहीं है। कांग्रेस तो जैसे हिन्दुओंकी है वैसे मुसलमानोंकी भी है। वह प्रत्येक भारतीयकी है। इसमें हिन्दू कोई अनुचित बात कहें तो मुसलमान उनका

१. [illegible] (कौंसिलों) [illegible]

अर्थात् बोअरलेवालोंका दोष बता सकते हैं और अगर मुसलमान कुछ अनुचित करें तो हिन्दू उनका दोष दिखा सकते हैं। कोई यह नहीं कह सकता कि यह तो सिर्फ अमुक जातिकी ही संस्था है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१-१९११

५१ पूर्व आफ्रिका परिषदमें भारतीयकी नियुक्ति

श्री ए० एम० जीवनजीको[1] दिये गये सम्मानका समाचार हम पिछले सप्ताह दे चुके हैं। ये सज्जन पूर्व आफ्रिकाकी विधान परिषद् (लेजिस्लेटिव कौंसिल)के सदस्य नियुक्त किये गये हैं। पूर्व आफ्रिकाके भाइयोंका यह अधिकार मान लिया गया, है यह देखकर हमें प्रसन्नता हुई है। पूर्व आफ्रिका और अन्य स्थानोंमें यह बात मान्य होती जा रही है कि भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यके साझेदार हैं। केवल दक्षिण आफ्रिकाके गोरे ही इसे मंजूर नहीं करते। इन लोगोंको आफ्रिकाके ही एक हिस्सेमें भारतीयकी नियुक्तिसे शिक्षा लेनी चाहिए। दक्षिण आफ्रिकाके और ट्रान्सवालके भारतीयोंको भी अपनी स्थितिका मान विशेष रूपसे होना चाहिए। पूर्व आफ्रिकाके भाइयोंके पास अपने अधिकारोंकी रक्षा करने और अपनी सम्पन्नता बढ़ानेके अच्छे साधन हैं। वे उनका लाभ लेंगे ही। हम भी जीवनजीको ओहदा जातिको जिसके वे सदस्य हैं और पूर्व आफ्रिकाके भारतीयोंको इस मूल्यवान अधिकारकी प्राप्तिपर बधाई देते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१-१९११

५२ ट्रान्सवालके रेलवे विनियम

इस विषयपर [महा]प्रबन्धकने श्री काछलियाको जो पत्र[2] लिखा है उससे समाजको भ्रमित नहीं होना है। फिलहाल इन विनियमोंको अमलमें नहीं लाया जायेगा हमें इससे सन्तोष होनेवाला नहीं है। जिन विनियमोंको लागू ही नहीं किया जाना है उनसे सरकारको क्या सरोकार है? श्री काछलियाने इसका उत्तर[3] दे दिया है। देखना है

१. कराची और मोम्बासा का प्रसिद्ध व्यापारी।

२. तारीख ३०-१२-१९१० को लिखा गया यह पत्र इंडियन ओपिनियन ८-१-१९११ में उद्धृत किया गया है। उसमें कहा गया है कि "ये विनियम नये नहीं हैं और १९०५ से बराबर अमलमें आनेवाले विनियमोंसे भिन्न भी नहीं हैं।" यहाँ रेलवे विनियम अधिनियम, १९०८ खण्ड ४ का पालन करनेके लिए बनाए जाते रहा है।" इसी पत्रमें यह आश्वासन भी दिया गया कि यह "कानूनका प्रशासन भविष्यमें भी उसी प्रकार चलता रहेगा जिस तरह अभीतक चलाया जाता रहा है।"

३. देखिए "पत्र: मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको", पृष्ठ १९०-९१।

इसका क्या नतीजा होता है। यह एक ऐसी बात है जिसे हम कदापि छोड़ नहीं सकते। भारतीयोंके विरोधमें जहाँ जहाँ भेदभावपूर्ण बातें पेश होंगी वहाँ-वहाँ हमें लड़ना ही है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१-१९११

५३ डेलागोआ-बेके भारतीय

डेलागोआ-बेके मार्निंग अखबारने यह खबर दी है कि डेलागोआ-बेमें नेटालके समान प्रवासी कानून बनानेकी बात चल रही है। निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि यदि डेलागोआ-बे नेटालकी नकल करेगा तो उसकी यह नकल असलसे भी बुरी सिद्ध होगी। इसका अर्थ यह है कि डेलागोआ-बेका कानून नेटालके कानूनसे भी बुरा होगा। हमें उम्मीद है कि डेलागोआ-बेके भारतीय आजसे ही कदम उठायेंगे। वे लोग चाहें तो बहुत अच्छा काम कर सकते हैं क्योंकि यदि एक ओर डेलागोआ-बेमें अन्धेर है तो दूसरी ओर वहाँकी सरकारको खुश करना आसान भी है। वहाँकी सरकारकी भारतीयोंसे कोई खास अदावत नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१-१९११

५४ नेटाल भारतीय कांग्रेस

नेटाल सरकारने अभी-अभी एक विश्वविद्यालय अधिनियम पास किया है। इसमें एक विभाग[1] ऐसा है कि जिसके द्वारा अधिकारी जिसे चाहें उसे नेटालके कालेजों में दाखिल होनेसे रोक सकेंगे। इस प्रकारकी रोकथामसे भारतीयोंको परेशानी उठानी पड़ेगी इसलिए नेटाल भारतीय कांग्रेसकी ओरसे उपनिवेश-मन्त्री लॉर्ड क्रू को एक प्रार्थनापत्र भेजा गया है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१-१९११

१ विधान [illegible] में कहा गया है कि यदि कोई परिषद् किसी भारतीयको दाखिल न करना निश्चित करनेके लिए निर्णय [illegible] उसे भारी दाखिल करनेसे इनकार करनेका अधिकार होगा।

५५. पत्र : ए० एच० वेस्टको

जनवरी १२, १९१०

प्रिय वेस्ट

मेरी अक्सर इच्छा हुई है कि आपको एक खानगी पत्र लिखूँ लेकिन लिख नहीं पाया।

अब आपको कैसा लगता है — शरीर, मन और आत्माकी दृष्टिसे? क्या आप पहलेसे ज्यादा सुखी हैं? कुटुम्बका वातावरण कैसा है? क्या नये प्रबन्धसे श्रीमती वेस्टको संतोष हो है? क्या देवी अब सुखी है? बस्ती [फीनिक्स सेटिलमेंट] के और लोग कैसे हैं?

मुझे तो यहाँ कई मोर्चोंपर जूझना पड़ रहा है। इस समय मैं जिन परिस्थितियोंसे घिरा हूँ वे बिलकुल अनुकूल नहीं हैं। लेकिन मुझे लगता है मेरा मन सुखी है। आप जानते ही हैं मेरा दिमाग बहुत ज्यादा चलता है — कभी शान्त नहीं रहता। अब मैं कुछ साहसपूर्ण प्रयोग कर रहा हूँ। कोई भी ज्योतिषाचार्य केवल पूर्वाभास करता है कि मेरे जीवनमें क्या आनेवाला है। मैं जितना अधिक देखता हूँ आधुनिक जीवनसे उतना ही अधिक असन्तोष होता जाता है। मुझे उसमें कोई अच्छाई दिखाई नहीं देती। लोग अच्छे होते हैं परन्तु वे इस मिथ्या विश्वासके शिकार बन जाते हैं कि वे भलाई कर रहे हैं। और वे अपने-आपको दुःखी बना लेते हैं। मैं जानता हूँ कि इस विश्वासके मूलमें एक भ्रान्ति है। और हो सकता है कि मैं भी जो अपने आसपास-की चीजोंकी जाँच करनेका दावा करता हूँ भ्रममें पड़ा मूर्ख ही होऊँ। फिर भी यह खतरा तो हम सभीको उठाना है। सच बात यह है कि जो उचित लगे वही करना हम सबका कर्तव्य है। और जहाँतक मेरा सवाल है मुझे लगता है कि आधुनिक जीवन ठीक नहीं है। मेरा यह विश्वास जितना अधिक दृढ़ होता जाता है, मेरे प्रयोग भी उतने ही साहसपूर्ण होते जाते हैं।

आपका हृदयसे
मो० क० गांधी

[पुनश्च]

इसे लिखते समय कुछ बाधा आ गई। लेकिन फिलहाल इतना काफी है।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४४११) से।
सौजन्य : ए० एच० वेस्ट।

१. ए० एच० वेस्टकी बहन, जिन्होंने अपना भारतीय नाम रखा था।
२. यहाँ उन्हीं प्रयोगोंसे अभिप्राय जान पड़ता है; देखिए पृष्ठ ११६-१८।

५६. रायप्पनको भोज

सर्वश्री रायप्पन और उनके साथियोंको दिये गये भोजका[1] महत्त्व सामयिक ही नहीं उससे अपेक्षा कुछ अधिक है। सत्याग्रहियोंका स्वागत करनेके लिए कोई चालीस जिम्मेदार यूरोपीय स्त्री-पुरुष भोजमें उपस्थित थे यह स्वतः बड़े महत्त्वकी घटना है। श्री हॉस्केन और माननीय श्री डूके[2] भाषण सुन्दर और हृदयस्पर्शी थे। दोनोंने आशा प्रकट की कि निकट भविष्यमें समझौता हो जायेगा। प्रीतिभोजकी मेजोंपर सभी वर्गों और समुदायोंके लगभग सौ भारतीय बैठे थे। इन सबसे प्रकट होता है कि सत्याग्रही मरे नहीं हैं बल्कि बहुत ज्यादा जीवित-जागृत हैं। श्री काछलियाका पूरा भाषण हमारे गुजराती स्तम्भोंमें दिया गया है। उसमें उन्होंने जनरल बोथा और जनरल स्मट्सको स्मरण दिलाया है कि यदि आज सत्याग्रहियोंकी संख्या उतनी नहीं है जितनी पहले थी तो उनकी यह हालत वैसी ही है जैसी पिछले युद्धमें बोअरोंकी थी। सन्धि तब हुई थी जब बोअरोंकी संख्या खतरनाक हद तक घट गई थी। श्री काछलियाका सारा भाषण उस व्यक्तिके ही अनुरूप था। उसमें आशा, धैर्य और संघर्षको मंजिल तक पहुँचानेका अभय निश्चय भरा हुआ था।

श्री थोमेक रायप्पनका भाषण संक्षिप्त और प्रसंगके अनुकूल था। उन्होंने कहा कि वे ट्रान्सवालमें अपना कर्तव्य पूरा करनेके लिए आये हैं और उन्हें आशा है कि वे उसे पूरा कर सकेंगे।

समारोह विशेष रूपसे सफल रहा और हम उसके संयोजकोंको उनके कार्यके लिए बधाई देते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-१-१९११

१. यह जनवरी ७, १९११ को दिया गया था।

[illegible]

५७ फेरीका नीतिशास्त्र

नये सत्याग्रही (रंगरूट) सर्वश्री सैम्युअल जोजेफ, डेविड ऐंड्रू और मणिलाल गांधी जो संघर्षमें शरीक होनेके लिए ट्रान्सवाल गये हैं कुछ समयसे वहाँ फल या सब्जी लेकर फेरियाँ लगा रहे हैं। हमें ज्ञात हुआ है कि शीघ्र ही श्री रामप्पन भी अपने इन साथियोंमें शरीक होनेवाले हैं। यह फेरी शौकिया हरगिज नहीं है। इन लोगोंने यह काम सच्चे फेरीवालोंकी भावनासे और नेकनीयतीसे शुरू किया है। वे नौजवान फल अथवा सब्जी जो भी हो लेकर घर-घर जाते हैं थोड़ा-सा मुनाफा लेकर उसे बेचते हैं और उस मुनाफेको सत्याग्रह कोषमें दे देते हैं।

इन्होंने यह फेरीका काम क्यों शुरू किया इसके कारणोंपर विचार करना जरूरी है। श्री ईसप मियाँ और इमाम अब्दुल कादिर बावजीरने अठारह महीने पहले जब इसको प्रारम्भ किया था तब उनका उद्देश्य केवल गिरफ्तार होना और दूसरे फेरीवालोंके सामने एक मिसाल पेश करना था। ट्रान्सवालके सत्याग्रहियोंके सामने यह उद्देश्य सदा रहना चाहिए। परन्तु प्रस्तुत उदाहरणमें केवल इतना नहीं है। समस्त दक्षिण आफ्रिकामें जो स्वतन्त्र भारतीय हैं उनमें से अधिकतर या तो फेरीवाले हैं या छोटे व्यापारी। सत्याग्रह केवल दूसरोंकी रक्षाका ही नहीं बल्कि आत्म-रक्षाका भी साधन है। यह अस्त्र ऐसा है जिसका उपयोग दूसरेकी मददके बगैर, एक आदमी भी उतने ही प्रभावशाली ढंगसे कर सकता है जितने प्रभावपूर्ण ढंगसे बहुत-से लोग एक-साथ मिलकर कर सकते हैं। सत्याग्रहमें यह शक्ति स्वयं उसके सहज गुणोंसे पैदा होती है। आत्माकी शक्ति प्रकृतिकी एक महान शक्ति है। शरीर-बलके द्वारा कमजोरोंकी रक्षा होती है यह विचार ही गलत है। वास्तवमें तो यह कमजोरोंको और भी कमजोर बनाता है क्योंकि यह उन्हें अपने तथाकथित बचाव करनेवालों या रक्षकोंका आश्रित बना देता है। आत्मबलसे उनकी शक्ति बढ़ती है जिनके लिए इसका प्रयोग किया जाता है और साथ ही उनकी शक्ति भी बढ़ती है जो इसका प्रयोग करते हैं। ट्रान्सवालके सत्याग्रहका हेतु यही है कि यह अधिकतर भारतीयोंको इस महान शक्तिका उपयोग करना सिखा दे ताकि वे सच्चे अर्थोंमें स्वतन्त्र मनुष्य बन जायें। यदि सत्याग्रहका आरम्भ बजाय व्यापारियोंके फेरीवाले करते तो आज उनकी स्थिति बेजोड़ होती। वर्तमान स्थिति यह है कि उनमें से बहुत-से बुरी तरह दबा दिये जानेके कारण अब संघर्षमें नहीं रहे हैं। यह शोचनीय परिणाम स्वयं फेरीवालोंमें सच्चे नेता न होनेका है। अपनेसे बड़ा माने जानेवाले आदमीकी बात सुननेके बजाय वे अपनेमें से ही किसी आदमीकी बात जल्दी सुन और समझ सकते थे। ट्रान्सवालमें जो आश्चर्यजनक लड़ाई चल रही है उसमें अबतक यह दोष था। इसे दूर करनेके लिए पाठशालाओंके अध्यापक और मुंशी लोग अब फेरीकी तरफ ध्यान देने लगे हैं। इसके अलावा सरकारका शायद अब यह इरादा है कि नये सत्याग्रहियों (रंगरूटों) का

मूर्खों मार-मारकर ट्रान्सवालसे भगा दिया जाये। इसका जवाब वे फेरियाँ लगाकर दे रहे हैं जिससे कि इस उपनिवेशमें वे अपनी जीविका भी अर्जित कर सकें।

परन्तु बात इतनी ही नहीं है। क्या मुंशी अथवा मुनीमका पेशा फेरी लगानेवालेकी अपेक्षा सचमुच अधिक अच्छा या इज्जतका पेशा है यह प्रश्न कमसे-कम विवादग्रस्त तो है ही। फेरीवाला स्वतन्त्र मनुष्य होता है। उसे मनुष्य-स्वभावका अध्ययन करनेका जो अवसर मिलता है वह उस मुंशीको नहीं मिल सकता जो प्रतिमास कुछ पौंडके लिए मुलाजमी करता है। फेरीवाला अपने समयका खुद मालिक होता है। मुंशीके पास अपना कहने लायक समय लगभग होता ही नहीं। अगर फेरीवाला चाहे तो वह अपनी बुद्धिका विकास कर सकता है। मुंशीके लिए यह सपनेमें भी सम्भव नहीं। और जो बात मुंशीपर लागू होती है वही कम या ज्यादा शिक्षकपर भी लागू होती है। वह पढ़ानेके लिए नहीं पढ़ाता बल्कि जीविकाके लिए पढ़ाता है। और निश्चय ही यह बात वकीलके पेशेपर भी लागू होती है। वकीलोंके मार्गमें इतने प्रलोभन रहते हैं कि उनसे साधारण आदमी जितना दूर रहे उतना ही अच्छा है। इसलिए ये नौजवान इस पेशेको अपनाकर बहुत कुछ कर सकते हैं। वे उसका भोंडापन दूर कर सकते हैं और उसे ऊँचा उठा सकते हैं। फेरीवाले तो राह ही देख रहे हैं कि उनमें कोई ऐसा आदमी पैदा हो जाये जो उनको अच्छे और शुद्ध जीवनकी तरफ ले जाये। इस प्रकार ये नौजवान फेरीवालोंके सामने अच्छी मिसाल पेश करनेके साथ-साथ लिखकों मुंशियों और, हम तो कहते हैं कि उन वकीलों और डॉक्टरोंके सामने भी अच्छी मिसाल पेश कर सकते हैं जो अपने पेशोंसे ऊब गये हैं और यदि मार्ग देख सके तो वे शरीर और आत्माको पीसनेवाली मेज-कुर्सीकी मुलाजमीको छोड़ देंगे।

एक बात और है और कम महत्त्वकी नहीं है। हमें लगता है प्रकृति आखिर यह चाहती है कि मनुष्य अपने शरीर-श्रमसे — अपने पसीनेकी कमाईसे — अपनी जीविका अर्जित करे। उसकी इच्छा यह भी है कि मनुष्य अपनी बुद्धिका उपयोग अपनी भौतिक जरूरतें बढ़ाकर आत्माका नाश करनेवाली और शरीरको कमजोर बनानेवाली विलास-सामग्रीसे अपने-आपको घेर लेनेके लिए न करे बल्कि वह अपने नैतिक जीवनको ऊँचा उठावे अपने सिरजनहारकी इच्छाको जाने मानवजातिकी सेवा करे और इस तरह अपनी ही सच्ची सेवा करे। अगर यह सही है तो फेरीका पेशा अथवा खेती या ऐसा ही कोई सीधा-सादा पेशा रोजी कमानेका ऊँचेसे-ऊँचा तरीका माना जाना चाहिए। करोड़ों मनुष्य क्या यही नहीं कर रहे हैं? निस्सन्देह बहुत-से लोग अनजाने प्रकृतिका अनुसरण कर रहे हैं। जब साधारण मनुष्यकी अपेक्षा प्रकृतिने जिन्हें अधिक बुद्धि दी है उनका काम है कि वे इन करोड़ोंका बुद्धिपूर्वक अनुकरण करें और अपनी बुद्धिको अपने मजबूर भाइयोंका ऊँचा उठानेके काममें लगा दें। तब बुद्धिजीवी लोग लकड़ी काटनेवालों और पानी खींचनेवालोंको घमण्डसे नीचा नहीं समझेंगे क्योंकि संसार उन लोगोंसे ही तो बना हुआ है।

इसलिए हम अपने इन नौजवान मित्रोंको उनके अच्छे कामपर बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि संघर्ष समाप्त हो जानेके बाद भी वहाँतक रोजी कमानेका

सम्भव है, वे अपने हाथ-पैरोंसे काम करते रहेंगे और अपनी बुद्धिका उपयोग अपनी जन्म-भूमि और मातृभूमिकी सेवाके लिए करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-१-१९१०

५८. हॉस्केनकी सभा

श्री जोजेफ रायप्पन वगैराको जिस समारोहमें प्रीतिभोज[1] दिया गया उसका विवरण हम दूसरी जगह दे रहे हैं। उसमें लगभग ४० यूरोपीय उपस्थित थे और इनमें काफी जाने-माने व्यक्ति थे। श्री हॉस्केन तथा ट्रान्सवाल लीडरके सम्पादक और आरेंज फ्री स्टेटकी कौंसिलके सदस्य श्री यूले जो कहा वह जानने योग्य है। भोजमें प्रसिद्ध पादरी भी थे। और सत्याग्रहके प्रति हरएककी सहानुभूति थी। इतने गोरे बेहिचक एक ही मेजपर भारतीयोंके साथ भोजन करने बैठे यह बड़ी सन्तोषजनक बात है। हमारे कहनेका यह अभिप्राय नहीं है कि जब गोरे हमसे मिलेंगे-जुलेंगे तभी कुछ होगा फिर भी जब ट्रान्सवाल-सरकारके खिलाफ हम संघर्ष कर रहे हैं उस समय इतने गोरोंके भोजमें शामिल होनेसे हमें सन्तोष होना ही चाहिए। यह अच्छा लक्षण है। इससे हम समझ सकते हैं कि संघर्षका अन्त निकट ही है। किन्तु यदि अन्त जल्दी हुआ न लगे तो भी इसमें शक नहीं है कि गोरोंकी सहानुभूति हमारी तरफ बढ़ती जाती है। अब शेष केवल यही है कि भारतीय समाज फिरसे जाग उठे और जेलोंवाले अपना कर्तव्य करें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-१-१९१०

५९. नेटालका प्रवासी कानून

इस कानूनका अमल मनमाने ढंगसे हो रहा है। श्री स्मिथ[2] अत्याचार कर रहे हैं और उन अत्याचारोंका मुकाबला करना जरूरी है किन्तु यह देखना भी जरूरी है कि खुद हमारे बीच कितनी धोखाधड़ी चल रही है। हम अपने-आपपर कितना अत्याचार करते हैं। श्री स्मिथ कहते हैं[3] कि लड़के औरतोंकी पोशाकमें आते हैं और कुछ लड़के अपने फर्जी माँ-बाप और कुछ औरतें फर्जी पति खड़े कर देती हैं। हमारा खयाल है कि प्रवेश सम्बन्धी अत्याचारका विरोध दो प्रकारसे किया जा सकता

1. देखिए "श्री जोजेफ रायप्पन और अन्य मित्रोंको दिये गये भोजमें" पृष्ठ १३९-४०।
2. टेटी स्मिथ, मुख्य प्रवासी प्रतिबन्धक अधिकारी।
3. भारतीय व्यापारियोंकी ओरसे श्री स्मिथकी शिकायतोंके बारेमें है। ये शिकायतें नेटाल मर्क्युरीके जरिये श्री स्मिथके पास भेजी गई थीं। शिकायतें तथा उनका जवाब साथ-साथ एक ही अंकमें प्रकाशित किये गये थे।

है — यहाँ सरकार अत्याचार करे वहाँ उसका मुकाबला करें, साथ ही जहाँ भारतीय गलत तरीकेसे लोगोंको दाखिल करें वहाँ उनका भी मुकाबला करें। हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमारे विरोधमें बननेवाले बहुत-से कानूनोंके कारण स्पष्ट रीतिसे हम ही हैं। केवल रंग-भेदके कारण वे बने हैं ऐसा नहीं मान लेना चाहिए। जबतक हम अपना दोष नहीं समझते तबतक हमें सच्चा इलाज भी नहीं मिल सकता।

इसके सिवा हमारी सलाह है कि वकीलोंकी मारफत अदालतमें लड़नेके बजाय सत्याग्रह करके लड़ना अच्छा है। प्रवासी कानूनके विरोधमें भी उसके द्वारा लड़ा जा सकता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-१-१९१

६० पत्र : मगनलाल गांधीको

गुरुवार, जनवरी २ १९१

चि. मगनलाल,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। मेरा वहाँ आना फिलहाल तो न हो सकेगा। मणिलाल गिरफ्तार कर लिया गया है[1] वह गुरुवारको रिहा किया जायेगा। उसके बाद देखें क्या होता है। मेरा खयाल है कि जबतक यहाँ पकड़-धकड़ जारी है तबतक वहाँ न आना ही ठीक होगा।

जैसा तुमने लिखा है रामाके[2] लिए व्यायाम आदिका प्रबन्ध यदि कर सको तो ठीक होगा। कॉडिसके सम्बन्धमें मैंने तुम्हें डाँटा नहीं था। इस बारेमें तुम्हें गलत-फहमी हुई मालूम होती है। तुम्हारा पत्र पढ़नेके बाद भी मुझे ऐसा ही लगता है। रामा उनके साथ सारा दिन रहेगा — मैंने ऐसा विचार कभी नहीं किया था। मेरा यह भी खयाल नहीं था कि वह विलीके[3] साथ रहे। दिनमें जब वह काम न कर रहा हो तब जहाँ चाहे वहाँ जाये। मेरी इच्छा है कि वह कॉडिसके साथ भोजन किया करे और उन्हींके साथ सोया करे। मैं नहीं मान सकता कि श्री कॉडिसके मनमें उसके प्रति स्नेह नहीं है। मुझे श्री कॉडिसकी त्रुटियोंका पता है हममें से कोई भी दोषरहित नहीं है।

अगर तुम "व्याता" सको मनाइगो"[4] श्लोक नहीं जानते तो मैं लिख भेजूँगा। पूर्वमें कहते हैं। यह मान लो कि उनका अन्तःकरण मलिन नहीं है। शेष बातें स्वतः आ जायेंगी।

1. १४-१-१९१ को
2. गांधीजीके ज्येष्ठ पुत्र रामदास।
3. कॉडिसके पुत्र।
4. मनाइगो; देखिए "पत्र : मगनलाल गांधीको" पाद-टिप्पणी २, पृष्ठ १४९।

हमारे कुटुम्बका प्राचीन इतिहास तो अब भी बहुत बाकी है और उसे अच्छी तरह तो केवल परमानन्द भाई[1] जानते हैं।

यदि बच्चोंके व्यायामके लिए छापेखानेसे समय निकल सके तो निकालना चाहिए।

'इंडियन ओपिनियन' के चन्देके बारेमें एक माससे अधिकका उधार-खाता न चलाना ठीक ही है। तुम्हें एक निश्चित सीमा तक ही जोखिम उठानी चाहिए। यह रकम भले ही तुम्हारे नाम चढ़ी रहे। यह तुम्हारे [illegible] भत्तेमें से नहीं काटी जायेगी। वह ग्राहकोंसे अधिककी जोखिम हरगिज नहीं उठानी चाहिए। यह भी अधिक है। फिर भी तुमने जितना केप कालोनीसे लिया हो उसका दायित्व हमीपर है क्योंकि तुम्हें नया नियम मालूम नहीं था। मेरा खयाल यह है कि नया नियम फिलहाल तो अच्छा है।

हमें भारी बोझे उठाने हैं। इसलिए इन सबमें कमी करना उचित है। अखबारोंमें यही प्रथा देखनेमें आती है। लोगोंको धीरे-धीरे आदत पड़ जायेगी और वे वैसा ही करेंगे। हम परवानेका शुल्क पेशगी अदा करते हैं सो एक दबावसे—जोर जबर्दस्तीसे। हम जो चन्दा पेशगी लेंगे वह तो आत्मबलसे। यह आत्मबल 'इंडियन ओपिनियन' को रोचक बनानेमें निहित है। इसके लिए हमारे सामने एक ही मार्ग है कि 'इंडियन ओपिनियन' के लिए अथक परिश्रम करें। फिर चन्दा अपने आप मिल जायेगा। इस सम्बन्धमें अधिक लिखनेका समय नहीं है।

मीरआलमका पत्र आया है। उसमें उन्होंने लिखा है कि उनका इरादा डर्बनमें कार्यालय खोलकर काम करनेका है। मैं उन्हें काम सौंपना ठीक मानता हूँ। श्री वेस्टको पत्र[2] लिख रहा हूँ। क्या तुमने उनको लिखा मेरा पिछला पत्र[3] पढ़ा है?

ब्रह्मचर्यका व्रत लेनेके पहले अच्छी तरह विचार कर लेना। सन्तोककी सम्मति लोगे तो और भी अच्छा होगा। कविने[4] अपनी रचनाओंमें ब्रह्मचर्य-पालनकी जो शर्तें बताई हैं उनमें से कुछ धीर करने लायक हैं। यह एक अत्यन्त कठिन व्रत है। [illegible] भी भटक गये। इसलिए यदि तुम इसका निरन्तर ध्यान रखो तो पार उतर सकते हो। लेकिन जब मैं एक विवाहित व्यक्ति द्वारा अपनी ही पत्नीके सम्बन्धमें ऐसा व्रत लेनेकी बात सोचता हूँ और विशेष कर अपने सम्बन्धमें तो मेरा दिमाग काम नहीं करता। इस सम्बन्धमें मेरा भाग्य बहुत प्रबल[5] रहा है। मुझे मजबूरन बा से अलग रहना पड़ता है—इसी कारण मैं बहुत बच गया हूँ। यदि हम सन् १९ से आजतक साथ-साथ रहे होते तो मैं बच पाया होता यह कह सकना कठिन है। मेरी इच्छा है कि मेरे अनुभवका पूरा लाभ तुमको मिले।

मेरा जाना फिलहाल न हो सकेगा। इसलिए जो प्रश्न पूछने योग्य हों सो पूछना।

मोहनदासके आशीर्वाद

१. गांधीजीके चचेरे भाई परमानन्ददास [illegible] गांधी।
२. उपलब्ध नहीं है।
३. यह शायद "पत्र: ए० एच० वेस्टको" का उल्लेख है; देखिए पृष्ठ ११४।
४. श्रीमद् राजचन्द्र, देखिए खण्ड १, पृष्ठ ९१।
५. यह अंश मूलकी प्रतिलिपिमें स्पष्ट नहीं है।

[पुनश्च]

बयर्मकर व्यासकी पत्नीका देहावसान हो गया है। तुम सब उन्हें समवेदनाका पत्र लिखना। चिरंजीव छगनलालका श्री पोलकके नाम लिखा हुआ पत्र मुझे मिला था। उसमें उसने घर-खर्चके लिए रुपयेका सवाल उठाया है। हम लोगोंने जो फेरफार किया है उसे देखते हुए अब कितनेकी आवश्यकता होगी — सो मुझे सूचित करना। इस बार तुम दो भाइयोंके बीच मुनाफेके रूपमें कितना आयेगा? चि० छगनलालके बयानसे हर महीने ३ रुपयेकी जरूरत होगी। डॉक्टर मेहताने इसे देना स्वीकार किया है। परन्तु हमें यथा-सम्भव कम लेना है। विचार करके मुझे लिखना। मेरा जाना फिलहाल न होगा। इसलिए यह बात पत्रमें बताई है।

मोहनदास

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ५१८२) से।

६१. ताजी रिहाइयाँ

ट्रान्सवालके लगभग बारह सत्याग्रहियोंकी रिहाईकी खबरसे जो इस सप्ताह हमने अपने स्तम्भोंमें दी है, भारतीयों अथवा यूरोपीयोंमें कोई दिलचस्पी नहीं पैदा हुई है। दो वर्ष पहले ऐसी घटना होती तो एशियाई प्रदर्शन करते और यूरोपीय भी इसमें कुछ दिलचस्पी दिखाते। अपने अन्तःकरणकी खातिर जेल जाना और रिहा होना एशियाइयोंके लिए अब एक साधारण बात हो गई है। यह एक बहुत बड़ा काम है। हम चाहते हैं कि सद्गुण और साहस हमारे देशभाइयोंमें ऐसी साधारण चीजें बन जायें कि उन्हें आचरणमें लानेपर किसीको भी कोई आश्चर्य न हो। रिहा हुए भारतीयोंमें श्री अस्वात भी हैं जो ब्रिटिश भारतीय संघके कार्यवाहक सभापति रह चुके हैं। पाठकोंको स्मरण होगा कि श्री अस्वात अपना स्वाभिमान स्थापनेकी अपेक्षा अपने सब मालकी आहुति देनेके लिए तैयार हो गये थे। अधिकांश सत्याग्रही परखे हुए योद्धा हैं और अनेक बार जेल जा चुके हैं। इस बहादुरीके लिए हम उन सबको बधाई देते हैं और यह लिखते हुए हमें सन्तोष होता है कि ज्यों ही सरकार उन्हें जेल भेजे त्यों ही वे पुनः जेल जानेके लिए तैयार हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१-१९११

६२ पाश्चात्य सभ्यताके दोष

हमें अंग्रेजी राज्यसे नहीं बल्कि पाश्चात्य सभ्यतासे बचना है, यह हमने "हिन्द स्वराज्य"[1] में देखा। यह तो प्रत्यक्ष है कि यदि अंग्रेज भारतमें भारतीय बनकर रहें तो वे परदेशी नहीं कहे जायेंगे। यदि वे ऐसा न कर सकें तो उनका भारतमें रहना असम्भव हो जाये ऐसी स्थिति उत्पन्न करना हमारा कर्तव्य है।

पाश्चात्य सभ्यता कितनी क्रूरतापूर्ण है यह हम अनेक बार अंग्रेजोंके ही लेखोंसे देखते हैं। कुछ दिन पहले जब स्पेनके राज्याधिकारियोंने फेररको[2] मार दिया था तब इंग्लैंडमें चीख-पुकार मची थी कि स्पेनने बड़ा अन्याय किया है। यह सब ढोंग है, यह बतानेके लिए विख्यात लेखक श्री ए० के० चेस्टरटनने २२ अक्तूबरके डेली न्यूज में एक पत्र लिखा। उसका सारांश आज भी यहाँ देने योग्य है। श्री चेस्टरटन कहते हैं[3]

> स्पेनकी घटनापर हम लोग बड़ा शोर मचाते हैं, किन्तु यह केवल ढोंग है। हम अपने घमण्डके कारण ऐसी बात कहते हैं। वास्तवमें हम लोग स्पेनियोंके समान ही बुरे हैं बल्कि कुछ बातोंमें उनसे भी बुरे हैं। हम इंग्लैंडमें राजनीतिक मामलोंमें किसीको तोपसे नहीं उड़ाते क्योंकि हमारे यहाँ राजनीतिक मामलोंको लेकर उपद्रव नहीं होते हैं। यह बात नहीं है कि धार्मिक होनेसे हम खून-खराबी नहीं करते। जब-जब हमारे देशमें उपद्रव होते हैं तब-तब हमारे यहाँ फाँसीकी सजाएँ दी जाती हैं। और हम जो सजाएँ देते हैं वे फेररको दी गई सजाके मुकाबले ज्यादा भीषणतामरी ज्यादा क्रूरतापूर्ण और अधिक बर्बर होती हैं। मैन्चेस्टरमें फीनियन दलके[4] लोगोंको जो फाँसी दी गई थी वह न्याय-विरुद्ध और नीति-विरुद्ध थी यह सभी वकील कहते हैं। दक्षिण आफ्रिकामें जहाजी कप्तान (स्कीपर) तोपसे उड़ाये गये इसके लिए अब साम्राज्यवादी अंग्रेज भी लज्जित होते हैं। देनशवाईमें[5] कुछ गरीब और निरपराध किसानोंने अपने मालकी लटका विरोध किया। उनपर अत्यन्त भयंकर अत्याचार किये गये और उनको फाँसीपर चढ़ा दिया गया। जब हमारे शासक दूरस्थ देशोंमें छोटे-छोटे विद्रोह होनेपर ऐसे नीच और क्रूर हो जाते हैं तब यदि कोई स्पेनकी तरह लन्दनमें ही उपद्रव करे तो वे कितना अत्याचार करेंगे? हम शान्त हैं इसका कारण यह नहीं है कि हम धर्मका ढोंग नहीं करते बल्कि यह है कि हमारे मुँह शासकोंके

१. देखिए "हिन्द स्वराज्य" पृष्ठ ६-६९।
२. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ४९७। फेररने स्पेनके लोगोंमें शिक्षाके प्रसारके लिए कार्य किया था।
३. यहाँ दिया गया अनुवाद मूलसे मिला लिया गया है।
४. स्वतन्त्रताके लिए लड़नेवाले नागरिक लोगोंका प्रसिद्ध दल।
५. यह मिस्रमें है, जहाँ चार मिस्री किसानोंको एक ब्रिटिश अधिकारीकी हत्याके जुर्ममें मृत्युदण्ड दिया गया था।

दबावसे बिलकुल बन्द हो गये हैं और हम दब गये हैं।[1] हम उपद्रव नहीं करते किन्तु उसके बजाय फेररकी हत्यासे अधिक बुरे काम करते हैं।[2] थोड़े दिन हुए एक सिपाहीने कोड़ोंकी मारसे बचनेके लिए आत्म-हत्या कर ली थी।[3] मालेगांवमें और अशान्तिके समय फेररको मार देनेकी अपेक्षा यह आत्महत्या अधिक रोमांचकारी घटना है। फिर भी इंग्लैंड इस मामलेमें चुप ही रहा। इसका कारण यह है कि यूरोपकी सभी जातियोंमें से अंग्रेज जाति ही ऐसी है, जिसपर सुरक्षित रूपसे अत्याचार किया जा सकता है।

जिस जातिकी सभ्यता देखकर हम लोग चौंधिया जाते हैं उसकी सभ्यतामें इस प्रकारके दोष वर्तमान हैं। तब हमें विचार करना है कि हम इस सभ्यताको भारतमें रहने देंगे या समस्त रहते निकाल बाहर करेंगे। यह सभ्यता लोगोंको कुचल देनेवाली है और इसमें थोड़े लोग जनताके नामपर सारी सत्ता हथियाकर उसका सर्वथा दुरुपयोग करते हैं। वे ऐसा जनताके नामपर करते हैं इससे जनता धोखा खा जाती है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-१-१९११

६३. पत्र : मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको[4]

[जोहानिसबर्ग]
जनवरी २५, १९११

महोदय,

आपका इसी २१ तारीखका पत्र मिला। अपने पत्रकी शिष्टतापूर्ण ध्वनि और अपने पूर्व उत्तरके लिए आपने मुझे एक बार फिर धन्यवाद देनेका अवसर दिया है। और इसीलिए मुझे यह कहनेमें परेशानी होती है कि हमारे पत्र-व्यवहारका परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहा।

१ मूल अंग्रेजीमें कहा गया है —"इसका कारण यह नहीं है कि हमने युद्धनीतिका पालन किया है और न यही कि हम अधिक सभ्य हो गये हैं।"

२ मूल अंग्रेजीमें कहा गया है : "यहाँ फेररकी तुलनामें भी अधिक भयानक कार्रवाइयाँ चुपचाप होती रहती हैं क्योंकि हम विरोधकी शक्ति खो चुके हैं।"

३ मूल अंग्रेजीमें कहा गया है "आत्मघातका प्रयत्न किया था।"

४ इसका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था।

५ देखिए "उपनिवेश-सचिवके नाम पत्रका मसविदा" पृष्ठ १ १। और "पत्र : मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको" पृष्ठ १२०-२१; ब्रिटिश भारतीय संघके मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकके पत्रोंके लिए, इंडियन ओपिनियन ८-१-१९११ और २९-२-१९११ और "ट्रान्सवाल रेलवे विनियम" पृष्ठ १३९। और पृष्ठ १३९-४१ भी देखिए।

मेरे संघकी समिति इस स्थितिको स्वीकार करती है कि संयुक्त कर-पुस्तक (ज्वाइंट टैरिफ बुक)में अभीतक जितनी शर्तें प्रकाशित की गई हैं लगभग सभीके बारेमें विनियम (रेग्युलेशन्स) बनानेके लिए प्रशासन विवश हो गया था। मेरी समिति आपका यह आश्वासन सधन्यवाद स्वीकार करती है कि रेलवे निकाय (बोर्ड)का मंशा एशियाई संघर्षके बारेमें कटुताका भाव पैदा करनेका नहीं है और यह भी कि मेरा संघ जिस समाजका प्रतिनिधित्व करता है उसे तेज गाड़ियोंमें[1] यात्रा करनेकी अबतक जो सुविधाएँ दी जाती रही हैं वे बनी रहेंगी।

आपके सहानुभूतिपूर्ण रुखको देखकर, मैं यह सुझाव देनेका साहस कर रहा हूँ कि निकाय विनियमोंमें संशोधन करे, और वे इस प्रकारके बनाये जायें कि उनमें वह लांछन न रहे, जो उनसे निःसन्देह एशियाई जातियोंपर लगता है। मेरा संघ एशियाइयोंकी भावनाओंके अनुरूप विनियम बनानेके काममें निकायके साथ सहयोग करनेके लिए तैयार रहेगा और उनको उचित रूपसे कार्यान्वित करनेमें प्रशासनके साथ पूरा सहयोग करेगा। मेरी विनम्र राय यह है कि यदि प्रशासन उन कारणोंसे जो उसे स्वयं यथेष्ट प्रतीत हों विभिन्न वर्गों या जातियोंको पृथक करने और उनके लिए अलग-अलग डिब्बे सुरक्षित करनेका अधिकार ले ले तो यह कठिनाई दूर हो जायेगी। यह तो आप मानेंगे ही कि इस प्रकारका एक सामान्य विनियम बना देनेसे प्रशासनको हर मामलेमें कार्यवाही कर सकनेका पर्याप्त अधिकार मिल जायेगा और उससे एशियाइयों तथा अन्य रंगदार लोगोंको यह सोचनेकी गुंजाइश भी रह जायेगी कि रेलवे-विनियम रंगदार जातियोंको पहले और दूसरे दर्जेके डिब्बोंमें यात्रा करनेका अधिकार न देनेके सिद्धान्तपर आधारित हैं और उनको इस प्रकारकी यात्रा केवल रियायतके तौरपर करने दी जाती है। मुझे भरोसा है कि रेलवे निकायका ऐसा कोई मंशा नहीं; उसका मंशा तो सिर्फ इतना है कि उपनिवेशमें मौजूद दुर्भाग्यपूर्ण पूर्वग्रहको तुष्ट किया जाये और इसीलिए पृथक् स्थानकी व्यवस्था की जाये। मैंने जो सुझाव रखनेका साहस किया है उससे यह मंशा अच्छी तरह पूरा हो जाता है।

आपका आदि
अ० मु० काछलिया
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१-१९११

१. मेल ट्रेन।

६४ उद्धरण[1] मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवे[2] के महाप्रबन्धकको भेजे गये पत्रसे

[जनवरी २५, १९१० के बाद]

पॉचेफस्ट्रूमके श्री उस्मान लतीफ उसी स्टेशनसे यात्रा कर रहे थे। पाँच अन्य ब्रिटिश भारतीय भी उनके साथ थे। उनमें से चार डेलागोआ-बे जा रहे थे। उन्हें गाड़ीमें साधारण दूसरे दर्जेका आधा डिब्बा दिया गया था जिसमें मुश्किलसे चार यात्री बैठ सकते थे। डेलागोआ-बेके यात्रियोंके साथ उनका सामान भी था। श्री उस्मान लतीफने गार्ड या कण्डक्टर नं० ११ से कहा कि उन्हें और स्थान चाहिए, परन्तु गार्ड या कंडक्टर कोई स्थान ढूँढ न सका। श्री लतीफने बताया कि कई डिब्बे हैं जिनमें उनके लिए स्थान मिल सकता है, परन्तु कंडक्टरने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया और श्री लतीफको खड़ा रहना पड़ा। लेकिन क्लर्क्सडॉर्पमें कंडक्टरने उन्हें एक दूसरा डिब्बा बताया। श्री लतीफने उसमें जानेसे इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि वे इस मामलेकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१-१९१०

६५ पत्र मगनलाल गांधीको

गुरुवार [जनवरी २७, १९१०][3]

चिरंजीव मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। श्री कॉर्डीसके बारेमें जो तुमने लिखा है सो मैं समझता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि मेरी अपेक्षा तुम्हें उनके दोष अधिक दिखाई दे सकते हैं। परन्तु मेरा कहना यह है कि इन दोषोंके होते हुए भी वे आदमी अच्छे हैं। उनके गुणोंकी ओर ही ध्यान देना। इस सम्बन्धमें अधिक बातें मिलनेपर होंगी।

१. अनुमान है कि यह उद्धरण गांधीजीके लिखे पत्रसे है, जो न[illegible] ट्रान्सवाल[illegible] भेजा गया था और इंडियन ओपिनियन २९-१-१९१० में "[illegible]" के अन्तर्गत छपा था।

२. सेन्ट्रल साउथ आफ्रिकन रेलवे।

३. पत्रके विषयसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मगनलाल गांधीको ३०-१-१९१० को लिखे गये पत्रके बाद लिखा गया था। देखिए पृष्ठ १५४।

१ -१

एक मास तक उधार देनेका नियम शरीरबल (स्वार्थ) और आत्मबल (परमार्थ) दोनों दृष्टियोंसे रख सकते हैं। यह नियम उन दो श्रेणियोंमें से किसके अन्तर्गत आता है सो इसपर निर्भर करता है कि वह किस उद्देश्यसे गढ़ा गया है।

धर्मादेमें से कुछ न लेनेका तुम्हारा विचार उत्तम है। वास्तवमें वह धर्मादा नहीं है। परन्तु ठीक यही है कि हम उसे धर्मादा मानें। लेकिन वर्तमान स्थितिमें इस प्रश्नको उठाना ठीक नहीं है। तुमने जो संकेत किया है उसके मुताबिक ही जमा कराना।

फिलहाल तुम्हारा चार पौंड [मासिक] लेते रहना ठीक है। मैंने यह निर्णय सोच समझकर ही किया था। चि० छगनलाल विलायत जायेगा इसका भी खयाल रखा था। राजकोटके बारेमें भी विचार कर लिया था।

ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें तुम्हारा संकल्प जानकर प्रसन्नता हो रही है। एक वर्षके लिए लिया है यह भी ठीक है। इस सम्बन्धमें तुम्हें मेरा पूरा आशीर्वाद है। जब तुम उसको निभा ले जाओगे तब तुम्हें दूसरा ही अनुभव होगा।

सन्तोकका फिलहाल भारत जानेका विचार न करना ही अच्छा है मैं तुम्हें इस सम्बन्धमें अपना विचार बतला चुका हूँ।

चि० छगनलालने 'सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी'[1] का जो वर्णन किया है उसे पढ़कर मनमें दुःख हुआ। यह खेदका विषय है कि प्रोफेसर गोखले जैसे महान व्यक्ति भी इसमें पड़े हैं। मेरा खयाल है कि वे उसमें से निकल आयेंगे क्योंकि वे सच्चे हैं। यह संस्था पश्चिमकी नकल-भर है। क्या सेवकोंके लिए सेवक रखना उचित है? और ये सेवक हैं कौन? उनको रखनेकी जरूरत ही क्यों पड़ी? इस संस्थाके सदस्योंका भोजन दूसरे क्यों बनाते हैं? ये सेवक धर्मके बारेमें क्या समझते हैं? भारतमें बड़ी-बड़ी इमारतें किसलिए होनी चाहिए? झोंपड़ियाँ पर्याप्त क्यों नहीं होनी चाहिए? यह तो चूहा मारनेके लिए पहाड़ खोदने जैसा हुआ। प्रोफेसर गोखलेका यह काम कब समाप्त होगा? उसपर खर्च कितना बैठता है? केवल एम० ए० या बी० ए० को ही सेवक बनाया जा सकता है, यह कैसा भ्रम है? यह तो ऊसरमें खड़े एरण्डको महान वृक्ष माननेके समान है। मेरी यह धारणा अवश्य है कि फीनिक्सके उद्देश्य सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी के उद्देश्योंसे बढ़चढ़कर हैं। यहाँके रहन-सहनकी पद्धति भी वहाँकी पद्धतिसे अच्छी है। हममें झगड़ा-फसाद हुआ करते हैं परन्तु ये तो होंगे ही। हम चीनीसे चाशनी तैयार करते हैं बनते समय उसमें बहुत-सा मैल दिखाई देता है परन्तु हम मैलको चाशनी नहीं मान लेते। हम लोग यहाँ एक प्रकारकी चाशनी तैयार कर रहे हैं। और जबतक वह बन नहीं जाती तबतक मैल दिखाई देगा ही। हम जो कुछ यहाँ कर रहे हैं, वह वास्तविक है जो कुछ पूनामें हो रहा है उद्देश्यको छोड़ दें तो वह अवास्तविक है। उद्देश्य तो अच्छा है परन्तु जो किया जा रहा है वह बुरा है। यह पत्र मैंने बहुत व्यस्ततामें लिखा है। इस समय मेरी मानसिक स्थिति 'नेति नेति'[2] की है। फीनिक्स भी 'नेति' है। फिर भी वह तुलनात्मक

१. श्री गोपालकृष्ण गोखले द्वारा १९०५ में स्थापित संस्था।
२. ब्रह्मकी व्याख्याका बोधक पद जिसका अर्थ होता है 'अन्त नहीं है'।

दृष्टिसे पूनाके आडम्बरसे अधिक अच्छा है। डॉक्टर मेहता इस भीतरी रहस्यको समझ सके हैं। इससे यह न समझना कि प्रोफेसर गोखले या उनके साथी हमारे पूज्य नहीं हैं लेकिन हमारा पूजा-भाव अन्धा नहीं है। 'हिन्द स्वराज्य'[1] में जिस मापदण्डका संकेत मैंने किया है उसके अनुसार प्रोफेसर गोखलेके सेवकों का काम उचित नहीं समझा जा सकता। उससे तो हमारी गुलामी बढ़नेकी ही सम्भावना है। यदि मैं पूर्वको पश्चिमका रूप देनेका प्रयत्न करूँ तो मैं भी गोखलेजीकी तरह दीर्घ निःश्वास भरूँगा और निराश हो जाऊँगा। मेरी वर्तमान मनःस्थिति ऐसी है कि मैंने जो कुछ भी कहा है यदि उसका विरोध सारा संसार करे तो भी मैं हताश न होऊँगा। मेरी यह बात घमंडकी बात नहीं है बल्कि सच्ची है। हमारा मनोरथ भारतको अच्छा बनाना नहीं है। हम खुद अच्छे बनें यह हमारा मनोरथ है। और यही हमारा मनोरथ हो सकता है। शेष सब मिथ्या है। जिसने अपने आपको नहीं पहचाना है उसने कुछ भी नहीं जाना है। सेवकों का अंग्रेजीका ज्ञान उनके लिए छद्मावरण हो गया है। चि० छगनलाल फीनिक्सके बारेमें उनके प्रश्नका उत्तर न दे सका इससे उसकी भीरुता प्रकट होती है। यह स्वाभाविक ही था। जरासा विचार करता तो वह जान जाता कि सेवकों की स्थिति अनाध्यात्मिक है। हमें अपने अक्षर-ज्ञान और लौकिक ज्ञानकी अन्धी पूजा त्यागनी है।

मेरे इन विचारोंके बावजूद छगनलालके द्वारा दिये गये वर्णनका कुछ भाग इंडियन ओपिनियन में प्रकाशित करनेमें कोई हर्ज नहीं है।[2] हम उससे कुछ सीखेंगे ही। हमें रावणके उत्साहका अनुकरण करते हुए आत्मतत्वकी ओर झुकना चाहिए।

तुम इस पत्रको फीनिक्समें जिसे पढ़ाना चाहो पढ़वा देना। फिर उसे चि० छगनलालको भेज देना। मुझे उसे पत्र लिखनेका समय नहीं मिलेगा। मेरा इरादा शनिवारको यहाँसे रवाना होनेका था लेकिन अब देखता हूँ कि यह सम्भव नहीं है। मुझे नहीं लगता कि अब मैं १५ फरवरीसे पहले रवाना हो सकूँगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें लिखित मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४९२१) से।

सौजन्य: राधाबेन चौधरी।

१. देखिए "हिन्द स्वराज्य" पृष्ठ ६–६९।

२. यह अंक ५–८–१९११ के और १९–८–१९११ के इंडियन ओपिनियनके गुजराती खण्डमें प्रकाशित हुआ था। उसका शीर्षक था – सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसायटी – छगनलालके संस्मरण।

६६. उद्धरण : एक पत्रसे[1]

[जनवरी २८, १९११][2]

श्री रुस्तमजीको अभीतक वह खुराक नहीं दी जाती जिसकी उनके लिए फोक्सरस्टमें डॉक्टरने तजवीज की थी। वे बराबर खबरें भेज रहे हैं कि उनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी शिकायतोंपर ध्यान नहीं दिया जाता। श्री गोपाल नायडू आज ही रिहा हुए हैं। वे बतलाते हैं कि श्री रुस्तमजीने कल चिकित्सा-अधिकारीसे लम्बी शिकायत की थी जिसपर उनका तबादला जोहानिसबर्ग जेलमें कर दिया गया है। मैं सोमवारको पता लगाऊँगा कि उनको कहाँ रखा जा रहा है। सर्वश्री थम्बी नायडू, मस्तात और अन्य कुछ लोग अब रिहा किये जा चुके हैं। इनमें से कुछ तो संघर्षमें नाम पा चुके हैं। 'स्टार'[4] के सम्पादकसे मैंने लम्बी मुलाकात[3] की थी। उन्होंने पूरी पूरी सहानुभूति व्यक्त की और मुझसे कहा कि जोहानिसबर्गका प्रत्येक व्यक्ति संघर्षसे बिलकुल ऊब गया है और चाहता है कि यह समाप्त हो जाये। मणिलाल गांधीको दस दिनकी कड़ी कैदकी सजा भुगतनेके बाद आज रिहा कर दिया गया। रिहा होकर आनेवाले कैदी सरकार द्वारा खुराकमें दो औंस घी बढ़ा दी जानेके बावजूद अब भी खुराक कम होने और घी न दिये जानेकी शिकायतें करते हैं। सभी कैदियोंका वजन घटा है। सर्वश्री पी॰ एस॰ पिल्ले, एस॰ एम॰ नायडू और शाह आज रिहा कर दिये गये। परन्तु श्री शाह निर्वासित करनेके लिए रोक लिये गये हैं। मैं जेल गया था परन्तु मुझे उनसे मिलने नहीं दिया गया और न उनको बाहरसे खाना लेनेकी इजाजत ही दी गई। जेल-जीवनसे उनकी सेहत बहुत गिर गई है। उनसे यह अपेक्षा की गई थी कि वे डीपक्लूफसे जोहानिसबर्ग जेलतक सात मील अपना बंडल लेकर पैदल आयेंगे। सौभाग्यसे खुफिया पुलिसके आदमीने उन्हें सवारीका इस्तेमाल करने दिया। मैंने सवारीका प्रबन्ध कर दिया था। यदि उनको पैदल ही आना पड़ता तो वे सड़कपर पस्त होकर गिर पड़ते। श्री शाहने स्वेच्छया पंजीयन करा लिया था इसलिए मैं निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि उनका निर्वासन बिलकुल गैर-कानूनी है। पंजीयक (रजिस्ट्रार)के दफ्तरमें उनकी शिनाख्तका सारा ब्योरा मौजूद है और पंजीयक यदि चाहते तो अपनी पूरी तसल्ली कर सकते थे कि श्री शाह पंजीकृत हैं या नहीं। यह इस बातका उदाहरण है कि अधिकारी वर्ग किस तरह जनताके मार्गमें कठिनाइयाँ पैदा कर सकता है, या उनको दूर कर सकता है। श्री जोजेफ

१. इंडियनने इस उद्धरणको "श्री गांधीके [illegible]" शीर्षकके अन्तर्गत उद्धृत किया था।

२. गोपाल नायडू और मणिलाल गांधीकी रिहाई २८-१-१९११ को हुई थी।

३. उपलब्ध नहीं है।

४. [illegible] श्री [illegible]; देखिए [illegible]।

रायप्पनको पंजीयन न करानेके आरोपमें अभी-अभी गिरफ्तार कर लिया गया है और निर्वासनका आदेश दिया गया है। वे बी॰ ए॰ एल-एल॰ बी॰ (कैंटब) लिंकन्स इनसे उत्तीर्ण बैरिस्टर और दक्षिण आफ्रिकाके निवासी हैं। उनको आये कुछ ही महीने हुए हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया १८-२-१९११

९७. श्री नानालाल शाहकी सेवाएँ

यद्यपि सत्याग्रह अब केवल कुछ एशियाइयों तक ही सीमित रह गया है तथापि ये मुट्ठी-भर एशियाई, चीनी हों अथवा भारतीय जो दृढ़ आग्रह दिखा रहे हैं वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। यह संघर्ष खरे आदमी पैदा कर रहा है। हाल ही में जो सत्याग्रही छोड़े गये हैं उनमें से हम एकका — श्री नानालाल शाहका — विशेष उल्लेख करते हैं। केवल श्री रुस्तमजी और श्री शाहको ही लगातार जेलमें लगभग पूरा वर्ष बितानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह कोई मामूली बात नहीं थी। उन्हें अंशतः भूखा रखा गया है। प्रायः सभीका वजन घटा है और सभी बहुत दुर्बल हो गये हैं। जेलका खाना कैदियोंके शरीरोंको खोखला कर देता है — खास तौरसे जब उन्हें श्री शाहकी तरह वहाँ लम्बे समय तक रहना पड़े।

पाठकोंको याद होगा कि श्री शाह बम्बई विश्वविद्यालयके उपस्नातक (अंडर ग्रेजुएट) हैं। वे कम उम्रके हैं किन्तु उनके सारे बाल सफेद हो गये हैं। जीवनकी निराशाओंने उन्हें समयसे पहले ही बूढ़ा कर दिया है। संघके अध्यक्ष जब शिक्षित भारतीयोंको संघर्षके प्रति उदासीनता दिखानेपर कोस रहे थे तब श्री शाहने नेटाल जानेका रेल-किराया चुकाने लायक रुपया उधार लिया और फिर चुपचाप ट्रान्सवालसे बाहर चले गये ताकि वे तुरन्त सीमा पार करके वापस आयें और गिरफ्तार हो जायें। तबसे श्री शाहने दम नहीं लिया है और आसार अब ऐसे हैं कि वे छः महीनेके लिए फिर जेल चले जायेंगे। श्री शाहका शरीर टूट सकता है, परन्तु उनकी आत्मशक्ति कभी न टूटेगी। उन्होंने संघर्षको ऐसी आत्मशक्ति प्रदान की है यह उनकी सबसे बड़ी सेवा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१-१९११

६८ सत्याग्रहियोंसे

यह सुझाव दिया गया है कि भारतीय जनता अंग्रेज मित्रों और सरकारकी जानकारीके लिए सक्रिय सत्याग्रहियोंकी पूरी सूची प्रकाशित की जाये। यह सूची लम्बी नहीं होगी इसलिए अमला है कि सत्याग्रहियोंको आपसमें एक-दूसरेको जान लेना चाहिए और जब जरूरत हो जेल जाना चाहिए। उनके जेलसे बाहर रहनेमें न उनका लाभ है न संघर्षका और न उस देशका जिसे उन्होंने अपनाया है। संघर्षका मुख्य उद्देश्य ऐसे आदमी तैयार करना है जो सिद्धान्तके लिए हर तरहके खतरेका सामना करें। इसलिए हमें ऐसे लोगोंके नाम प्राप्त करने और प्रकाशित करनेमें प्रसन्नता होगी जो हममें दम रहते लड़ते रहनेके लिए तैयार हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१-१९११

६९ शिक्षित भारतीय

श्री रायप्पनने फेरी लगाई। श्री रायप्पन बैरिस्टर हैं। आजसे कुछ ही समय पहले यदि कोई बैरिस्टर द्वारा फेरी लगाई जानेकी बात करता तो उसकी हँसी उड़ाई जाती। किन्तु सत्याग्रहके कारण ऐसा उदाहरण सम्भव हो गया। श्री रायप्पन-को अपने इस कामसे फायदा ही हुआ है इससे उन्होंने अपने कुटुम्बका उद्धार भी किया। यदि श्री रायप्पन वकालत करते तो भारतीयोंसे उन्हें कुछ पैसा मिल जाता। वे ईमानदारीके साथ पैसा पैदा करनेमें समर्थ होते अथवा नहीं इस बातमें शक है। श्री रायप्पन जिस दर्जेके वकील हैं उन्हें उस दर्जेके मुताबिक पैसा मिल जाता ऐसा नहीं माना जा सकता। परिणाम यह होता कि श्री रायप्पन कर्जमें डूब जाते उनके कुटुम्बियोंकी आशा भंग हो जाती और अन्तमें उन सबको दुःख भोगना पड़ता। अब श्री रायप्पन गरीब रहेंगे। यदि उनका कुटुम्ब उनका अनुसरण करे तो अपना भरण पोषण कर सकेगा और शारीरिक मेहनतके बलपर सुखी रहेगा।

क्या कोई भारतीय श्री रायप्पनका अनुसरण करेगा? यदि अनुसरण करेगा तो सुख पायेगा। शिक्षित भारतीय अशिक्षित भारतीयोंको अपना शिकार मानते हैं और हम देखते हैं कि य अशिक्षित भारतीय ही इस देशमें लाचार हैं। मुक्त उद्धत और अत्याचारी अधिकारियोंके अत्याचारसे बचनेके लिए वे शिक्षित भारतीयोंके पंजेमें पड़ जाते हैं और फिर वे जितना पैसा माँगते हैं उतना पैसा देकर अधिकारियोंके पंजेसे छूट पाते हैं। यदि यह तसवीर सच्ची हो तो शिक्षित भारतीयोंका क्या कर्तव्य है? हमारी समझमें तो उन्हें अशिक्षितोंका धन्धा अपनाकर गुजारा करना चाहिए।

यदि वे ऐसा करें, तो इससे अधिवासियोंकी सच्ची सेवा हो सकेगी।[1] तभी अधिवासियोंके दुःखकी वे कल्पना कर सकेंगे। ऐसा करनेसे सच्ची ईमानदारी क्या है यह भी वे समझेंगे।

अब हम ट्रान्सवालके शिक्षित भारतीयोंपर नजर डालें। यदि उन्होंने संघर्षमें ठीक-ठीक भाग लिया होता तो कुछ और ही बात बनती। संघर्षका अन्त हो चुका होता। किन्तु उन्होंने इसके बजाय शरीर-सुख धनोपार्जन और ऐशो-आरामकी तरफ देखा। इसलिए अशिक्षित फेरीवाले भी धीमे पड़ने लगे हैं और संघर्ष लम्बा होता जा रहा है। चिन्ता इसकी नहीं कि संघर्ष लम्बा हो रहा है किन्तु हमने जो यह आशा की थी कि संघर्षके अन्तमें फेरीवालोंमें शक्ति उत्पन्न हो जायेगी वह पूरी होती नजर नहीं आती। और यदि यह आशा पूरी नहीं होती तो उनकी हालत वैसीकी-वैसी बनी रहेगी। यदि ऐसा हुआ तो संघर्षको उसका सच्चा अर्थ प्राप्त नहीं होगा।

अभी भी समय है। शिक्षित व्यक्ति भी रायप्पनकी तरह फेरी लगा सकते हैं। फेरी लगानेके अपराधमें लोगोंको पकड़ा जा रहा है इसलिए उनकी गिरफ्तारीमें भी बाधा नहीं होगी। जरूरत केवल हिम्मत करनेकी है। क्या वे ऐसा करेंगे?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१-१९१

७० जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

गोरे व्यापारीका ओछापन

जब सत्याग्रहकी लड़ाई आरम्भ हुई तब एक गोरे व्यापारीकी पेढ़ीने भारतीय व्यापारियोंके साथ व्यापार बन्द कर दिया था। इसपर भारतीय व्यापारियोंने निश्चय किया कि जबतक वह क्षमा न माँगे और जुर्माना न दे तबतक कोई भी उससे व्यापार न करे। इस निश्चयसे सम्बन्धित कागजमें यह भी कहा गया है कि इसपर हस्ताक्षर करनेवाला कोई भी भारतीय उक्त गोरेके साथ अकेला व्यापार करेगा तो उसे भारी जुर्माना देना होगा। अब यह गोरा बेचैन हो उठा है। भारतीयोंके साथ व्यापार करनेका लोभ उसे फिर हुआ है। इससे उसने गुप्त रूपसे क्षमा माँगने और सत्याग्रहकी लड़ाईमें निश्चित रकम देनेकी खबर भेजी थी। भारतीय व्यापारी यह विचार कर ही रहे थे कि उसकी गुप्त क्षमा-याचना स्वीकार नहीं की जानी चाहिए इसी बीच वह एक कदम पीछे हट गया और इस शर्तपर कि उसका नाम प्रकाशित न किया जाये उसने सिर्फ दस पौंड नकद देनेका प्रस्ताव किया। किन्तु भारतीय व्यापारियोंने वह प्रस्ताव ठुकरा दिया है और उसके साथ व्यापारकी कोई परवाह नहीं की है। आशा है कि हमारे व्यापारी अपनी इस बातपर जमे रहेंगे।

१ देखिए "फेरीका महिमा", पृष्ठ ११६-१८।

पारसी रुस्तमजी

पारसी रुस्तमजीने जेलके डॉक्टरके विरुद्ध लापरवाहीकी शिकायत की थी और गवर्नरको ओर देकर बताया था कि उनकी पसलीमें दर्द रहा करता है। इस कारण वे जोहानिसबर्गकी जेलमें लाये गये हैं और वहाँ उनकी जाँच किसी दूसरे डॉक्टरसे कराई जायेगी। श्री रुस्तमजीने सन्देश भेजा है कि उनकी हालत चाहे जितनी बुरी हो जाये वे अन्ततक लड़ना चाहते हैं। मैं किसी ऐसे नये भारतीय अथवा एक बार हार जाये हुए भारतीयकी खोजमें हूँ जो उनके इस उत्साहका अनुकरण करे। श्री रुस्तमजी १ फरवरीको छ: महीनेकी सजा पूरी करेंगे। उन्होंने एक सन्देशमें यह इच्छा प्रकट की है कि जेलके फाटकपर अधिक लोग न आयें। उनको स्वागत-समारोहकी कोई आवश्यकता नहीं है। वे किसी भी प्रकारकी धूमधामके बिना शहरमें प्रवेश करना चाहते हैं।

रायप्पनका निश्चय

देश-निकाला होनेसे पहले श्री रायप्पनने मुझे बताया कि उन्होंने सदा गरीबीमें रहनेका निश्चय किया है और वे अपना निर्वाह सदा मजदूरीसे ही करना चाहते हैं। वे इस निश्चयपर दृढ़ रहेंगे तो इसका परिणाम अच्छा होनेकी सम्भावना है।

श्री रायप्पन श्री डेविड ऐंड्रू और श्री सैम्युअल जोजेफको जेपी स्टेशनसे बारह बजेकी गाड़ीसे प्रिटोरिया ले गये हैं। उनको वहाँसे सम्भवतः नेटाल भेजा जायेगा।

पत्नी नायडू

श्री एल. एस. पडियाची श्री एल. गोपाल और श्री एन. एस. पिल्ले शनिवारको रिहा कर दिये गये। श्री नायडू जैसे भारतीयको रिहा होनेपर भी किसीने बधाईका एक पत्र या तार नहीं दिया। श्री असवात जैसे ऊँचे दर्जेके भारतीय रिहा हुए और इसपर भी किसीका ध्यान नहीं गया। इसे मैं अच्छा लक्षण भी मानता हूँ और बुरा भी। मुझे लगता है कि इस प्रकार हम ऐसे साहसी लोगोंको देखते रहनेके अभ्यस्त हो गये हैं। साहस दिखाना और देशके लिए कष्ट सहना अब कोई अनोखी बात नहीं रही। इसे बुरा लक्षण इसलिए मानेंगे कि भारतीय समाज अपना शिष्टाचार दिखानेका कर्तव्य भूल गया है और सत्याग्रहके संबंधमें काफी दिलचस्पी नहीं लेता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-१-१९११

७१ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

[बुधवार, फरवरी १, १९११
के पूर्व]

भारतीय व्यापारियोंपर आक्रमण

'संडे टाइम्स'[1]ने भारतीय व्यापारियोंपर जबर्दस्त आक्रमण किया है। केपमें भारतीयोंके विरुद्ध जो आन्दोलन आरम्भ हुआ है यह आक्रमण उससे सम्बन्धित समाचारको लेकर किया गया है। पत्रने लिखा है कि ट्रान्सवालकी लड़ाईमें अब कोई भी दम नहीं रहा। सभी भारतीयोंने घुटने टेक दिये हैं। अब संघ-संसदमें उनके विरुद्ध और भी कड़े कानून बनाने होंगे। लेखकका उद्देश्य यह है कि समस्त भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकासे खदेड़ दिया जाये। इस आन्दोलनसे भारतीय व्यापारियोंको पूरी चेतावनी मिल जाती है। अधिकतर व्यापारी और उनके बाद फेरीवाले हार गये हैं। इससे दोनोंने अपने ही पैरोंपर कुल्हाड़ी मारी है। वे लड़ाईमें दिलचस्पी नहीं लेते। उनमें शक्ति नहीं है, यह मानकर सरकार चाहे जैसे कानून बनायेगी। मैं अब भी व्यापारियों और फेरीवालोंको सावधान करता हूँ। यदि वे ट्रान्सवालमें सुखसे रोटी कमाना चाहते हों तो उन्हें अपनी पूरी शक्ति लगानी चाहिए। यदि वे सब एक-एक बार भी जेल चले जायें तो बहुत-कुछ हो सकेगा।

हममें ईमानदारी नहीं रही है। इसलिए हम अनुचित रीतिसे लाभ उठाना चाहते हैं। ऐसा लाभ वास्तवमें अलाभ है, यह बात आसानीसे समझमें आ सकती है। फिर भी जो आदत पड़ गई है वह नहीं जाती। यहाँ जो बड़ी लड़ाई चल रही है उससे हम कुछ सीखें तो अच्छा हो।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-२-१९११

1. जोहानिसबर्गका समाचार पत्र; देखिए "भारतीय व्यापारी" पृष्ठ १५८-५९।

७२ उद्धरण : मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको लिखे गये पत्रसे[1]

[जोहानिसबर्ग]
फरवरी २, १९१

वे[2] सोमवारको जर्मिस्टन होकर जानेवाली ५-१३ बजेकी गाड़ीसे बेरीनिगिंगसे यात्रा कर रहे थे। फोर्ड्सबर्गकी ऐवेन्यू रोड पर स्थित मेसर्स सुलेमान इस्माइल मियाँ ऐंड कम्पनी के मैनेजर श्री एम. मैद उनके साथ थे। उन्होंने गाड़ीपर सवार होते समय देखा कि दो एक डिब्बे थे जिनके केवल एक हिस्सेमें ही लोग बैठे थे, फिर भी गार्डने उन्हें उन डिब्बोंमें नहीं बैठने दिया। इसलिए उन्हें खड़ा रहना पड़ा। रिजर्व्ड का लेबल किसी भी डिब्बेपर नहीं दिखाई दिया। उन्होंने गार्डसे कई बार अनुरोध भी किया, लेकिन उसने कोई ध्यान नहीं दिया। जब गाड़ी जर्मिस्टनसे निकल गई तब गार्डने उनसे कहा कि दो डिब्बे बिलकुल खाली हो गये हैं। वे उनमें से किसी एकमें बैठ सकते हैं। इस प्रकार जर्मिस्टन निकल जानेके बाद ही उन्हें बैठनेकी जगह मिल सकी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-२-१९११

७३. आगा खाँ और सत्याग्रह

महाविभव आगा खाँ जो अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके दिल्लीमें किये गये वार्षिक अधिवेशनके सभापति थे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहारकी कड़ी आलोचना करते रहे हैं। यहाँकी स्थिति बताते हुए उन्होंने यह ठीक ही कहा कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंका यह बलिदान हो रहा है।[3] उन्होंने ऐलान किया है कि अगर दूसरे तमाम उपाय बेकार साबित हों तो साम्राज्य सरकारको भारतसे नेटालमें गिरमिटिया मजदूर भेजना बन्द करनेके लिए कहा जाये। परन्तु हम महाविभवसे कुछ आगे जाना चाहते हैं और कहना चाहते हैं कि ऐसे प्रवासको हर हालतमें बन्द करना साम्राज्य सरकार और भारत सरकारका कर्तव्य है। सच तो यह है कि स्वयं नेटाल सरकारका

१. अनुमानतः इसका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था और अ. मु. काछलियाने इसपर हस्ताक्षर किये थे।

२. जोहानिसबर्गके इस्माइल व. मुल्ला, जिनकी दी गई खबरके आधारपर यह पत्र लिखा गया था।

३. रायटर द्वारा दी गई इसकी भाषणकी रिपोर्ट ५-२-१९१ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत की गई थी।

और यह असमर्थ रहे तो दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंका यह कर्तव्य है कि वे इस वास्तविक दूषित भ्रमसे मुक्त हो जायें। इन मजदूरोंको नेटालके सामान्य लोगोंके लिए नहीं बल्कि केवल कुछ धनिकोंके लिए लाया जा रहा है। अगर यह गन्दा प्रवाह बन्द कर दिया जाये तो हमें सन्देह नहीं है कि भारतीयोंका सवाल एक बड़ी हद तक खुद हल हो जायेगा। इस बीचमें अखिल भारतीय मुस्लिम लीगने जिसके महत्त्वकी उपेक्षा निरपेक्ष रूपसे जनरल स्मट्स भी नहीं कर सकते जिन कड़े शब्दोंमें अपनी सम्मति और सहानुभूति प्रकट की है, हम उनका स्वागत करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–२–१९११

७४ भारतीय व्यापारी

हमारे बीच एक कहानी प्रचलित है कि किसी मकानमें एक अहदी रहता था। उस घरमें आग लग गई। लोगोंने अहदीको समझाया कि या तो उसे आग बुझानी चाहिए या घरके बाहर निकल आना चाहिए। किन्तु वह क्यों मानने चला? अन्तमें वह आगमें जलकर मर गया।

यही मनोदशा भारतीय व्यापारियोंकी है। सच कहो तो दक्षिण आफ्रिकामें रहने वाले हरएक भारतीयपर यह बात लागू होती है, किन्तु व्यापारियोंपर तो और भी अधिक। केपके अखबारोंमें फिलहाल भारतीय व्यापारियोंके विरुद्ध आन्दोलन चल रहा है। संघ-संसदमें घोर मचाया जा रहा है कि भारतीय व्यापारियोंको खत्म कर दो। नेटालका एडवर्टाइज़र और जोहानिसबर्गका संडे टाइम्स इस प्रकारका समर्थन करते हैं। एक अखबारमें[1] ध्यान देने योग्य एक लेख छपा है, हम उसका हूबहू अनुवाद दे रहे हैं। वह जहरसे भरा हुआ लेख है। उसमें भारतीय व्यापारियोंको प्लेगकी उपमा दी गई है और लेखक कहता है कि जिस तरह प्लेगको नष्ट किया जाना चाहिए, उसी तरह भारतीयोंको भी खत्म कर दिया जाना चाहिए। पत्रके सम्पादकने इस कथनको उचित बताया है।

यदि इस हमलेके बावजूद कहानीके अहदीकी तरह भारतीय व्यापारी आलस्यमें पड़े रहे तो वे गोरोंके द्वेषकी आगमें जल मरेंगे। गोरे व्यापारी चैन नहीं लेंगे। जिन भारतीय व्यापारियोंके पास परवाने हैं उन्हें भी अपने आपको सही-सलामत नहीं मानना चाहिए। अखबारोंकी बातोंका जवाब देकर बैठ रहनेसे काम नहीं चलेगा।

हमने जिस लेखका अनुवाद दिया है उसमें जो आक्षेप सच हैं पहले तो हमें उन्हें सुधार लेना चाहिए। गलत ढंगसे लोगोंको ठगना बन्द किया जाना चाहिए, दूकानें साफ रखनी चाहिए और जहाँ माल रखा जाता हो वहाँ सोना, खाना आदि नहीं करना चाहिए।

१ साउथ आफ्रिकन न्यूज, १९-१-१९११।

यह सब सुधार होनेके बाद भी गोरे तो जलते ही रहेंगे। इससे लड़नेके लिए सत्याग्रहके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं है। सत्याग्रहके लिए फिलहाल ट्रान्सवालका समर्थन करना आवश्यक है। हमने जो अनुवाद दिया है उसका सम्बन्ध केपके भारतीयोंसे है किन्तु वह सभी भारतीयोंपर लागू होता है। इसलिए ट्रान्सवालके व्यापारियोंको जो सत्याग्रह छोड़ बैठे हैं सावधान हो जाना आवश्यक है। अपने स्वार्थ और पैसेके लालचमें यदि वे समाजके हितोंका बलिदान करेंगे तो बादमें पछतायेंगे। यदि उन्होंने फिलहाल थोड़ा नुकसान उठा भी लिया तो आगे चलकर बड़े नुकसानसे बचे रहेंगे। बादमें सब-कुछ खोनेसे तो यही अच्छा है कि अभी सत्याग्रहमें शामिल होकर थोड़ा बहुत नुकसान उठा लिया जाये। ट्रान्सवालके व्यापारियोंको इस काममें दूसरे व्यापारी हिम्मत और उत्तेजन देते रह सकते हैं। यदि इसमें चूक हुई तो बादमें पछताना पड़ेगा। जबतक एक भी लड़नेवाला भारतीय बचा है तबतक संघर्षमें तो जीत निश्चित ही है, किन्तु उसका फल व्यापारियोंको नहीं मिलेगा क्योंकि तब यह माना जायेगा कि वे कमजोर हैं। जब दक्षिण आफ्रिकाके अधिकारियोंको मालूम हो जायेगा कि व्यापारी भी सबल हैं, तभी वे उनसे डरेंगे।

हमारी सलाह है कि ऊपरकी बातोंपर प्रत्येक भारतीय व्यापारी गम्भीरतासे विचार करे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-२-१९११

७५ क्या भारतीय झूठे हैं?

सहयोगी [नेटाल] ऐडवर्टाइज़र डंक मारना बन्द नहीं करेगा। मजिस्ट्रेट बीन्सने एक भारतीयके मामलेमें फैसला देते हुए भारतीयोंपर झूठ बोलनेकी तोहमत लगाई है।[1] ऐडवर्टाइज़र ने उसपर टिप्पणी करते हुए एक लम्बा लेख लिखा है।[2] उसमें भारतीयोंपर हमला किया गया है और उनको बहुत धिक्कारा गया है। हमने इस लेखका सार दूसरी जगह दिया है। श्री बीन्सने अपने फैसलेमें हमारी निन्दा की है और श्री स्मिथको ऊँचा चढ़ाया है। यह तो अधिकारियोंका तरीका है ही। उन्हें एक-दूसरेका ढोल पीटना ही चाहिए। यदि इसमें रैयतकी बरबादी होती है, तो हो। उन्हें इसकी कोई चिन्ता नहीं। उन्हें तो केवल अपनी जेबकी फिक्र है।

कुछ भी हो जो हमारे प्रति द्वेषभाव रखते हैं हमें उनसे भी सीखना चाहिए। श्री बीन्स हमपर झूठ बोलनेका आरोप लगाते हैं। यह आरोप एकदम रद नहीं किया जा सकता। उसमें जो अतिशयोक्ति है उसको नजरअन्दाज करके हमें इसपर ध्यान देना चाहिए। यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जब हम लोग अदालतमें जाते हैं, तो कुछ तो इतना ही सोचते हैं कि जीत किस तरह हो। सत्य किस तरह जीते यह विचार

१ उनके १४-१-१९११ के फैसलेमें।

२. देखिए ५-२-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें "नेटालमें मजिस्ट्रेटोंका मत"।

नहीं रहता। हमारी दृष्टिमें तो अदालतमें सत्यकी जय भी गुंजाइश ही नहीं बची। किन्तु इसमें भी कोई शक नहीं है कि भारतीय समाजमें कुछ लोग ऐसे हैं जो यहाँ लगभग नाटक करते हैं और अदालतको चाहे जो समझा देते हैं। यदि हमारी यह आदत छूट जाये तो सम्भव है समाजको बहुत फायदा हो। समाज ऐसा करे, इससे पहले नेताओंको इसका प्रारम्भ करना पड़ेगा। समाजके सारे कामोंका आधार ईमानदारी है। इसलिए अपने पाठकोंको हमारी सलाह है कि वे ऐडमिनिस्ट्रेटर के लेखपर गम्भीरतासे विचार करें। हमारे यहाँ कहावत है साँचको आँच नहीं ।[1]

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-२-१९१

७६ पेरिसका तूफान

कुदरत तो अपना काम नियमानुसार करती रहती है। मनुष्य हमेशा उसके नियमोंको तोड़ा करता है। प्रकृति अलग-अलग ढंगसे समय-समयपर मनुष्यको चेतावनी देती रहती है कि संसारमें एक भी वस्तु ऐसी नहीं है जो अचल बनी रहेगी। इसका उदाहरण देना जरूरी नहीं है। श्री मलबारीने[2] गाया है जो आया है वह जायेगा । हमारे यहाँ एक गजल भी गाई जाती है कई कई परी जवान भी कालसे चले गये [3]। फिर भी जब-जब हमारे सामने कोई बड़ा और ताजा उदाहरण उपस्थित होता है, तब-तब हम चौंक उठते हैं और विचार करने लगते हैं। ऐसी ही एक घटना पेरिसमें हुई। अभी-अभी पेरिसकी नदीमें ऐसी बाढ़ आई कि बड़े-बड़े मकान गिरने लगे। प्रसिद्ध चित्रशाला[4] तो पूरी तरह जोखिममें आ गई। ऐसी मजबूत सड़कें जिनपर लाखों पौंड खर्च हुए थे बैठ गईं। आदमी डूब मरे। जो डूबनेसे बच गये वे दबकर मर गये। बड़े-बड़े चूहोंको जब खानेको कुछ न मिला तो वे बच्चोंपर ही टूटने लगे। ऐसा क्यों हुआ? पेरिसके लोगोंने तो पेरिसकी रचना यह सोचकर की थी कि उसका नाश कभी नहीं होगा। प्रकृतिने चेतावनी दी कि पूरा पेरिस भी नष्ट हो सकता है। यदि पानीका जोर एक दिन और ऐसा ही रहता तो सचमुच यही होता।

किन्तु पेरिसके लोग इस बातको नहीं समझेंगे कि फिरसे बड़े-बड़े प्रासाद बनाना केवल मूर्खता है। यह भी सच है कि अब जो इमारतें वे बनायेंगे वे भी कभी-न-कभी गिरेंगी। अच्छी इन्जीनियर और ज्यादा खूबीसे भरी योजनाएँ बनायेंगे और पानीकी तरह पैसा खर्च करेंगे। वे इस महाप्रकोपको भूल जायेंगे। ऐसी है आधुनिकताकी धुन!

क्या हम भी ऐसा ही करें? क्या हम भी ऐसे अंधकी और पागल लोगोंकी नकल करें? ऐसा आडम्बर तो वही कर सकता है जो ईश्वरको भूल जाये। सवाल यह

1. मूल गुजराती : सांचने बेली ईश्वर छे। सच्चेका मित्र भगवान है।
2. बहरामजी मलबारी (१८५३-१९१२) प्रसिद्ध पारसी पत्रकार, कवि और समाज-सुधारक।
3. क्या नहीं था उसका गोपीचन्दका अभिमान ठीक दिन पलटते ना।
4. लूवरके पुराने राजमहलकी चित्रशाला।

पैदा होता है कि तब फिर ट्रान्सवालके कानूनके विरोधमें ही क्यों लड़नेकी क्या जरूरत है? फिर हम सभीको माला अथवा तसबीह फेरनेकी सलाह क्यों नहीं देते? ऐसा प्रश्न करनेवालोंसे हमारा यह कहना है कि हमने तो माला — तसबीह — फेरनेकी सलाह ही दी है और देते हैं। अलबत्ता बाहरसे दिखावा करनेवाले बगला भगतकी तरह माला फेरनेकी सलाह हम नहीं देते। हम ऊपर कहे गये प्रकृतिके खेलको भलीभाँति समझते हैं। इसीलिए ट्रान्सवालके भारतीयों और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको पुकार कर कहते हैं कि प्रकृतिको पहचानो उसको समझो। तुम्हारी ये बड़ी-बड़ी बातें किसी काममें नहीं आयेंगी। यदि सरकार तुम्हारी मनुष्यता हरण कर ले और तुम्हें गुलाम बना डाले तो तुम माला ले नहीं सकते। जो खुदाका बन्दा है वह आदमीका गुलाम हरगिज नहीं बन सकता। सरकारके अत्याचारी कानूनोंसे न डरो। यदि तुम सत्यसे नहीं चिपकते तो तुम्हारे लिए डरकी कोई बात नहीं है। यदि सत्यपर दृढ़ रहोगे तो वह तुम्हारे पास ही रहेगा तुम्हें कभी नहीं छोड़ेगा बाढ़ उसे बहा नहीं सकती। हमारी सलाह है कि हमें ऐसी किसी भी चीजका मोह नहीं करना चाहिए, जो बादमें डूब सके। हम कहते हैं कि सत्य जो पकड़ रखने योग्य है, उसीका आग्रह रखना चाहिए। सत्यपर दृढ़ रहकर तुम जो सुख भोग सको वह भोगो। ऐसा करते हुए तुम्हें पछताना नहीं पड़ेगा। तब तुम भोगोंके प्रति आसक्त नहीं बनोगे क्योंकि तुम समझ जाओगे कि वे आज हैं कल नहीं हैं और सत्य तो सदा रहनेवाला है और सदा तुम्हारे साथ रहेगा। ऐसा करना धर्म है। सरकार अत्याचार करके इसके आड़े आती है, इसलिए हम उसे अधर्मी कहते हैं। सत्यमें ही सारे धर्मोंका सार आ जाता है और बिना इसके कोई भी धर्म शोभा नहीं पा सकता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-२-१९१

७७ रामप्पनको सजा

श्री जोजफ रायप्पन श्री डेविड ऐंड्रू तथा श्री सेम्युएल जोजेफको तीन-तीन महीनेकी सजा मिली है। उन्हें हम बधाई देते हैं। हमारा विश्वास है कि श्री रायप्पनके कारावासके विरोधमें सारे भारतमें आवाज उठाई जायेगी। यह कोई मामूली मामला नहीं है। संघर्षमें श्री रायप्पनके आनेसे बड़ा बल मिला है इसमें सन्देह नहीं। सभी गोरे *विचारमें पड़ गये हैं कि श्री रायप्पनको सजा क्यों दी गई।*

तमिल समाजने कमाल कर दिया। फिलहाल उसी समाजके भारतीय जेल जाते हुए देख जा रहे हैं। शेष समाजोंमें से ज्यादातर लोग भाग गये हैं। श्री रायप्पन और उनके साथियोंका कौन अनुकरण करेगा?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-२-१९११

७८. उद्धरण : एक पत्रसे[1]

[फरवरी ५, १९११]

यह एक धारदार लड़का है। उसने निश्चय ही मेरी उम्मीदें पूरी की हैं। वह जेलमें सत्याग्रही बन गया। वह अन्य भारतीयोंके साथ उसी कोठरीमें रहता था जिसमें चीनी कैदी रहते थे। इनमें से कई चीनी कैदी तो ट्रान्सवालके सबसे निकृष्ट अपराधी हैं। उन सब कैदियोंके बीच पानीकी केवल एक बाल्टी थी और वे चीनी उससे इस तरह पानी पीते थे जैसे कुत्ते पशुओंमें से पीते हैं। स्वभावतः मणिलालको चीनियोंकी तरह उस बाल्टीसे या प्यालेसे भी उस पानीको पीना पसन्द नहीं था जो इस तरह गन्दा कर दिया गया था। इसलिए उसने इसकी शिकायत डिप्टी-गवर्नरसे की। डिप्टी गवर्नरने इसपर यह सोचा कि मणिलाल झगड़ालू लड़का है और उसने तुरन्त उसको तनहाईकी सजा दे दी। मणिलालने उसको बिलकुल प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और मनमें सोचा कि इस तरह शान्तिपूर्वक सोचने-विचारनेका समय मिलेगा। लेकिन दूसरे दिन उसने अपनी स्थिति और अच्छी बनानी चाही और यह भी कहना चाहा कि उसने यह शिकायत केवल अपनी ओरसे नहीं बल्कि सभी भारतीयोंकी ओरसे की थी। इसलिए उसने गवर्नरसे मिलनेका हठ किया। गवर्नर कहीं अधिक विवेकशील था। उसने मणिलालकी तनहाईकी सजा खत्म कर दी और हुक्म निकाला कि भारतीय कैदियोंके लिए पानीकी एक बाल्टी अलग रख दी जाये। मणिलालने मुझे यह भी बताया कि उसने पारसी रुस्तमजीको बहुत सहारा दिया। पारसी रुस्तमजी भी फोर्ट जेलमें भेज दिये गये हैं। मणिलाल रोज शामको उनकी मालिश करता था। फोर्टमें भी रुस्तमजीके साथ कोई अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता। उनको डॉक्टरी सहायता देनेसे इनकार कर दिया गया है। आज मणिलालने[2] फेरी लगानेका अपना सम्माननीय काम फिर शुरू कर दिया और गिरफ्तारीके लिए चुनौती दी। वह पुलिसके उसी सिपाहीके पास गया जिसने उसे पहली बार गिरफ्तार किया था। सिपाहीने साधारण आपत्तिके बाद उसका अनुरोध मान लिया और उसे फिर गिरफ्तार कर लिया। परन्तु जब वह चार्ज ऑफिसमें लाया गया तब वरनॉनने[3] उसको रिहा करनेका आदेश दे दिया। वह पहलेकी भाँति रोज फेरी लगाता रहेगा। मुझे लगता है कि इस बार गिरफ्तार होनेपर उसे अपने अन्य साथियोंकी तरह ही निर्वासित कर दिया जायेगा और छः महीनेके लिए जेल भेज दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
इंडिया २५-२-१९११

१. यह पत्र अनुमानतः एल० डब्ल्यू० रिचको लन्दन भेजा गया था।
२. मणिलाल गांधी ५-२-१९११ को गिरफ्तार हुए थे।
३. जोहानिसबर्ग पुलिस सुपरिंटेंडेंट।

७९ एक पत्रका अंश[1]

[फरवरी ५, १९१ के आसपास]

विपत्तिके समय साहसके अलावा कोई चारा नहीं। और मेरे मनमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जो साधन ट्रान्सवालमें उचित ठहरेंगे वे ही भारतमें भी ठीक रहेंगे। लेकिन मगनलालके पत्रसे[2] प्रकट है कि तैयारी हम फीनिक्स-जैसे स्थानमें ही कर पायेंगे। हमारा कर्तव्य है कि हम श्मशानमें सोते हुए भी न डरें। यह सम्भव है कि वहाँ सामना शुरू करनेवाला व्यक्ति भयके मारे बीचमें ही मरकर रह जाये। इस प्रकार अभी तो हमारा और आपका भारत एक श्मशान-जैसा ही है। हमें वहीं अपना बिस्तर बिछाकर मीराबाईका भजन बोल मा बोल मा आदि गानेके लिए तैयारी करनी चाहिए, करनी पड़ती है मुझे सदा ऐसा आभास होता रहता है कि मृत्युका किसी भी रूपमें किसी भी समय स्वागत करने लायक शक्ति मुझमें आयेगी। मेरी यही कामना है कि सभी लोगोंमें इतनी दृढ़ता पैदा हो।

डाह्याभाई पटेल द्वारा सम्पादित और सेवक कार्यालय अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित गुजराती पुस्तक गांधीजीना पत्रो से। इसे रावजीभाई पटेलकी गुजराती पुस्तक गांधीजीनी साधना में भी उद्धृत किया गया है।

८० जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

बुधवार [फरवरी ९ १९१]

सत्याग्रहियोंको सुझाव

अब सत्याग्रहियोंमें अधिकतर तो तमिल भाई ही रहे हैं। उन तक मेरे शब्द पहुँचना कम सम्भव है फिर भी उनमें से कुछ गुजराती पढ़वाकर समझ लेते हैं। उनके लिए और बम्बई अहातेके तथा दूसरे प्रान्तोंके जो भारतीय अभी बचे हैं, उनके लिए मुझे यह लिखनेकी जरूरत है कि अब जितनी लड़ाई बाकी रह गई है वह सत्याग्रहियोंके कम हो जानेके कारण मुश्किल भी है और आसान भी है। अब जो जेल जानेवाले हैं उन्हें जमानतपर न छूटना चाहिए। जब उनपर मुकदमा चल रहा हो तब वक्त भी उन्हें

[1] सम्भवतः यह पत्र मगनलाल गांधीको लिखा गया था।

[2] यहाँ मगनलाल गांधीके जिस पत्रका उल्लेख किया गया है वह अभी तक मालूम नहीं हो सका है जिसमें जॉन्सटन और ... का विवरण था। इस पत्रके कुछ अंश ५-२-१९१ और १२-२-१९१ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित हुए थे। देखिए "एक ... गांधीजी" पृष्ठ १४०-४८।

बाहरसे खाना न मँगाना चाहिए और जब जेलका मुलावा आये तब भी उन्हें बिलकुल तैयार ही रहना चाहिए। सरकार जिनको कमजोर देखती अथवा कमजोर समझती है उन्हींको अधिक कष्ट देती है और ऐसा मानकर ही मुकदमोंको लम्बा भी करती है इस बातको ध्यानमें रखकर जो ठीक तरह सेवा करना चाहते हैं — जो पूरा कष्ट सहन करना चाहते हैं, उन्हें अपना जोर पूरी तरह दिखा देना चाहिए।

कैदियोंसे मुलाकात

मुझे पिछले रविवारको कुछ सत्याग्रहियोंसे मिलना था। इस सम्बन्धमें पूछताछ करनेपर पता चला कि जो मनुष्य एक बार भी जेल गया हो वह कैदियोंसे नहीं मिल सकता। इससे प्रश्न उठा कि कौन मिलने जाय। अन्तमें श्री कैलेनबैक श्री हरिलाल गांधीसे श्री आइज़क श्री सोराबजीसे कुमारी श्लेसिन श्री रुस्तमजीसे और श्री कोल श्री मेढसे मिले। खबर मिली है कि सभी सत्याग्रहियोंमें पूरा-पूरा उत्साह है।

उक्त नियम एक नया अड़ंगा है। इसे अबतक अमलमें नहीं लाया जाता था। सरकारका इरादा यही है कि सत्याग्रहियोंके आपसी सम्बन्ध बिलकुल बन्द कर दिये जायें। परन्तु ऐसा करनेमें वह सर्वथा असमर्थ है। वह जितनी ज्यादा सख्ती करेगी अगर हम मजबूत बने रहे तो उतनी ही मुँहकी खायगी। कैदियोंकी मुलाकात मिली तो क्या और न मिली तो भी क्या? यहाँ हमारी शक्तिकी परीक्षा ही होनी है, यहाँ काम जितना कठिन हो उतना ही अच्छा समझा जाना चाहिए।

रंगूनसे सहायता

रंगूनसे २५ पौंडका चेक आया है। अभी कुछ और भी धन आनेकी सम्भावना है यह वहाँकी ट्रान्सवाल सत्याग्रह कोष-समितिके मन्त्री डॉक्टर मेहताने लिखा है। मुझे चन्देकी रकमोंकी जाँच करनेसे मालूम हुआ है कि इसमें बहुत-से चीनी व्यापारियोंने भी चन्दा दिया है। रंगूनकी सभामें प्रस्ताव पास किया गया है कि यह रुपया केवल दुखी और निर्धन सत्याग्रहियोंकी सहायताके लिए ही खर्च किया जाये।

उक्त रुपयेको मिलाकर अबतक १९२१ पौंड ३ शिलिंग ४ पैंस आ चुके हैं। इसमें से २५ पौंडकी ऊपरकी रकम छोड़कर बाकी सब रकम प्रोफेसर गोखलेकी ओरसे श्री जहाँगीर बी० पेटिटने भेजी है। यह रुपया किस प्रकार एकत्र किया गया इसका विवरण प्राप्त नहीं हुआ है अर्थात् श्री रतन टाटाके २५,   रुपये छोड़कर बाकी रकम किस प्रकार जमा हुई, अभी इसका विवरण आनेकी सम्भावना है।

क्रूगर्सडॉर्पकी बस्ती

क्रूगर्सडॉर्पकी बस्ती (लोकेशन) से सम्बन्धित आयोगमें गोरे विचित्र बयान दे रहे हैं। वे कहते हैं कि बस्तीमें भारतीयोंके रहनेसे गोरोंको कठिनाई होती है भारतीय चरित्रहीन हैं वे गोरोंकी लड़कियोंको छलते हैं, उनकी ओर बुरे हाव-भाव करते हैं और काफिरोंका आचरण बिगाड़ते हैं। इस प्रकार गवाहियोंमें अत्यन्त विवेकहीन बातें कही गई हैं। इसके विरुद्ध भारतीय निवासियोंकी ओरसे गवाहियाँ अवश्य दी जानी चाहिए। इस सम्बन्धमें क्रूगर्सडॉर्पके भारतीयोंको पूरी तैयारी रखनेकी जरूरत है। फिर उक्त

शिकायतोंमें कुछ सचाई हो तो वैसी आदतोंसे बाज आना भी जरूरी है। यह बात बिलकुल झूठ तो नहीं है कि कुछ भारतीयोंका सम्बन्ध काफिर स्त्रियोंसे हो जाता है। यह सम्बन्ध मुझे तो भयंकर लगता है। इससे भारतीय बचें तो बहुत अच्छा हो।

हृदयद्रावक घटना

श्री गांधीके कार्यालयमें श्रीमती कमालनू और श्रीमती फकीरसामी नायडूने अपने सब आभूषण उतार दिये एवं लड़ाई समाप्त होने तक आभूषण न पहननेका प्रण किया। उन्होंने कानोंकी बालियाँ, नाककी हीरा जड़ी लौंगें, गलेके हार, चूड़ियाँ और अँगूठियाँ — सभी आभूषण उतार डाले। जो हार उनको विवाहके समय मिले थे वे भी उन्होंने उतार दिये। यह घटना कोई मामूली घटना नहीं है। श्रीमती फकीरसामी नायडूने कहा : "श्री फकीरसामी नायडूके ज्येष्ठ पुत्र जेल जानेवाले हैं और सम्भवतः श्री फकीरसामी स्वयं भी थोड़े दिनोंमें गिरफ्तार हो जायेंगे। इस स्थितिमें मैं आभूषण कैसे पहनूँ?" यह कहकर उन्होंने गहने उतार डाले।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १२–२–१९११

८१. मुसलिम लीगका अधिवेशन

अखिल भारतीय मुसलिम लीगके अधिवेशनमें महामहिम आगा खाँने जो भाषण दिया हम उसके विषयमें टिप्पणी[1] दे चुके हैं। लीगमें जो प्रस्ताव पास हुए उनपर कुछ कहना आवश्यक है। हमारी मान्यता है कि लीगके प्रस्ताव बहुत जोरदार हैं और उनसे हमें उत्तेजन मिलेगा। उन प्रस्तावोंको देखनेसे जान पड़ता है कि श्री पोलकने सारे भारतमें शोर मचा दिया है।[2] इन प्रस्तावोंपर वाइसरॉय और लॉर्ड मॉर्लेको ध्यान देना ही पड़ेगा।

किन्तु क्या हम ध्यान देते हैं? आगा खाँ ट्रान्सवालके भारतीयोंको "दुःख सहन करनेवाले शूरवीर" कहते हैं।[3] ऐसे शूरवीर कितने हैं? सिर्फ देशके लिए उत्साह है ऐसे सभी हिन्दुओं और मुसलमानोंको इसपर गम्भीर विचार करना चाहिए। यदि वे पूरा प्रयत्न करें तो यही नहीं कि संघर्ष जल्दी समाप्त होगा बल्कि इससे भारतका मान बढ़ेगा, देशकी नाक ऊँची होगी। ट्रान्सवालके भारतीयोंपर कोई छोटी-मोटी जिम्मेदारी नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १२–२–१९११

१ और ३. देखिए "आगा खाँ और स्वराज्य", पृष्ठ १५५–५६।

२. "दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयों द्वारा चलाये जानेवाले वीरता और देशभक्तिपूर्ण आन्दोलनकी प्रशंसा करते हुए लीगने एक प्रस्ताव पास किया था और उसमें "भारत-सरकारसे गिरमिटिया मजदूरोंके भेजे जानेपर प्रतिबन्ध लगानेका आग्रह किया था तथा साम्राज्यीय सरकारसे इसकेलिए कार्रवाई करनेकी अपील की थी।" देखिए ५–२–१९११ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत रायटरका तार।

८२ भाषण : चीनियों द्वारा आयोजित पादरी जे० जे० डोकके स्वागत-समारोहमें[1]

[जोहानिसबर्ग
फरवरी १४, १९११]

श्री गांधीने बोलते हुए कहा कि श्री डोक जबसे दक्षिण आफ्रिकामें रहते हैं तभीसे एशियाइयोंमें दिलचस्पी ले रहे हैं। दोनों समाजोंको यूरोपीय समिति जो सहायता देती है उसका पात्र बनता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-२-१९११

८३ डोकका सम्मान

[फरवरी १८, १९११ के पूर्व]

इसे सभी स्वीकार करेंगे कि श्री डोकने भारतीय और चीनी समाजके लिए बहुत-कुछ किया है। दोनों ही समाजोंने उनकी कीमत समझी है। और उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट किया है। चीनियोंने मानपत्र दिया है। भारतीय भोज देंगे। श्री डोकने सत्याग्रहका भली-भाँति अध्ययन किया है। वे कुछ दिनों विलायतमें रहेंगे और उस अवधिमें लॉर्ड ऍम्टहिलसे भेंट करेंगे। श्री डोककी बातपर उन्हें ध्यान देना पड़ेगा। श्री डोकका जोहानिसबर्गमें कम प्रभाव नहीं है।

श्री डोककी सज्जनता और सादगीसे बहुत-से भारतीय परिचित हैं। उनके कामकी जितनी भी प्रशंसा की जाये उतनी कम है। शिष्टमण्डल जब विलायत गया था तब भी डोकने बड़ा परिश्रम किया था।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-२-१९११

१. यह कैंटोनीज क्लबमें क्विनकी अध्यक्षतामें हुआ था। इसमें १५ चीनी व्यापारी तथा कई प्रमुख यूरोपीय और भारतीय मौजूद थे। क्विनने डोकके कार्योंकी प्रशंसामें भाषण दिया और उनको अभिनन्दन-पत्र भी दिया। उसके बाद गांधीजीने सभामें भाषण दिया।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. देखिए "भाषण : पादरी जे० जे० डोकको दिये गये भोजमें", पृष्ठ ११६-१७।

८४. पत्र : मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
फरवरी १८, १९११

महाशय,

पिछले शनिवारको मुलाकातमें श्री गांधी और मैंने आपको जो वचन दिया था उसके अनुसार मैं रेलवे विनियमोंका मसविदा इसके साथ भेज रहा हूँ। आप देखेंगे कि इस मसविदेमें एशियाइयोंकी यात्रा-सम्बन्धी उसी प्रथाको कायम रखा गया है जिसका अबतक पालन होता आया है। किसी भी जातीय भेदभावको शामिल करके इसे अपमानजनक नहीं बनाया गया है। मेरा विनम्र मत है कि हमारा यह पत्र-व्यवहार जिन विनियमोंके बारेमें चलता रहा है, उन सभीका समावेश इसमें हो जाता है। परन्तु यदि रेलवे निकाय यह समझता हो कि जहाँतक यात्रियोंका सम्बन्ध है वहाँतक उन विनियमोंको बरकरार रखना आवश्यक है तो मेरा सुझाव है कि वे जिस हद तक एशियाइयोंपर लागू होते हैं उनको रद कर दिया जाये।

जो मसविदा साथ भेजा जा रहा है यदि वह उपयुक्त न समझा जाये तो आप इसके बारेमें अपनी आपत्तियाँ भेजें। मैं उनका स्वागत करूँगा और मैं उनको दूर करनेके लिए एक दूसरा मसविदा तैयार करनेकी कोशिश करूँगा। मेरी समितिकी रायमें यह मामला बहुत जरूरी है, इसलिए समिति महसूस करती है कि विनियमोंका संघीय सरकार स्थापित होनेकी राह देखे बिना ही संशोधित कर देना चाहिए।

आपने यह पत्र-व्यवहार जिस मैत्रीपूर्ण ढंगसे किया है उसके लिए और इस आश्वासनके लिए कि इन विनियमोंके प्रकाशनका मंशा किसीका अपमान करना नहीं है मेरी समिति आभारी है और उसकी सराहना करती है। मेरी समितिको आशा है कि विनियमोंमें आवश्यक संशोधन करके आपके आश्वासन और आपकी सद्भावनाको व्यावहारिक रूप दिया जायेगा।

विनियमोंका मसविदा

१. महाप्रबन्धक (जनरल मैनेजर) द्वारा रेलगाड़ियोंमें भिन्न-भिन्न जातियों या वर्गोंके लिए अलग-अलग डिब्बोंका नियत किया जाना कानून-सम्मत होगा और वर्ग विशेष या जाति-विशेषके लोग अपने लिए इस प्रकार रिजर्व किये गये डिब्बोंमें ही यात्रा कर सकेंगे अन्य डिब्बोंमें नहीं और यदि कोई व्यक्ति अपने वर्गके लिए रिजर्व किये गये डिब्बेके अतिरिक्त अन्य किसी डिब्बेमें यात्रा करता हुआ पाया जायेगा तो वह इन विनियमोंको भंग करनेका अपराधी माना जायेगा।

१. अनुमान है कि इस पत्रका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था और यह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष, श्री अ॰ मु॰ काछलियाके हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।
२. [illegible] विवरण उपलब्ध नहीं है।

२. यदि गार्ड या अन्य कोई रेलवे अधिकारी किसी यात्रीको यह बतलाये कि उसके लिए अमुक डिब्बा रिजर्व किया गया है तो उल्लिखित विनियमोंके अन्तर्गत उसीको पर्याप्त रिजर्वेशन मान लिया जायेगा।

३. गार्ड या कंडक्टर या किसी भी अन्य रेलवे अधिकारीको पूर्ण अधिकार होगा कि वह कारण बताये बिना यात्रियोंको एक डिब्बेसे हटाकर दूसरेमें बैठा दे।

४. यदि स्टेशन-मास्टरकी रायमें कोई यात्री ठीक वेशभूषामें या साफ-सुथरी दशामें न हो तो उस यात्रीको पहले या दूसरे दर्जेका टिकट देनेसे इनकार कर देनेका उसे अधिकार होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६-२-१९११

८५. भाषण : पादरी जे० जे० डोकको दिये गये भोजमें

फरवरी १८, १९११

इसी १८ तारीखको रातको मेसॉनिक हॉल, जेपी स्ट्रीट जोहानिसबर्गमें पादरी जे० जे० डोकके सम्मानार्थ यूरोपीयों, चीनियों तथा भारतीयोंका एक मिला-जुला शानदार समारोह हुआ। ब्रिटिश भारतीय समाजकी ओरसे पादरी महोदयको निरामिष भोज दिया गया। श्री हॉस्केनने अध्यक्षता की। उनकी दाहिनी ओर श्री डोक तथा बाईं ओर श्रीमती डोक बैठे थे। श्री काछलिया श्री डोकके दाहिनी ओर थे। श्री क्विन तथा उनके चीनी दोस्त भी उपस्थित थे ...।[1]

भाषणके दौरान श्री गांधीने बताया कि इस शामके मेहमानके बारेमें मैं गहरी कृतज्ञताका भाव व्यक्त किये बिना कुछ नहीं कह सकता और उसमें स्वभावतः व्यक्तिगत बातें भी आ ही जायेंगी। यह बात उन दिनोंकी है जब श्री डोक और मैं एक-दूसरेको अपेक्षाकृत कम ही जानते थे। मैं वॉन ब्रैंडिस स्ट्रीटके एक दफ्तरमें नाजुक हालतमें पड़ा था। उन्होंने मुझे उठाया और पूछा कि क्या मैं उनके घर जाना चाहूँगा। मैंने तुरन्त हामी भरी।[2] उनके घरमें मुझे हर तरहकी स्नेह-सुविधा प्राप्त हुई। मेरी माँ स्वर्ग सिधार चुकी हैं, मेरी विधवा बहन मुझसे ४ ... मील दूर थी और पत्नी ४ ... मील दूर। लेकिन श्रीमती डोकने मुझसे मेरी माँ और बहनका-सा व्यवहार किया। मैं उस समयका चित्र कैसे भूल सकता हूँ जब श्री डोक आधी *रात गये चुपकेसे मेरे कमरेमें आते थे और देख जाते थे कि उनका मरीज जाग रहा है या सो रहा है?* श्री डोकने एशियाइयोंके हितमें किये गये कार्योंके सम्बन्धमें

१. यह अनुच्छेद २५-२-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित रिपोर्टसे लिया गया है और बाकी अंश ५-३-१९११ के अंकसे।

२. देखिए खण्ड ८ पृष्ठ ९१।

बोलते हुए उन्होंने कहा कि उस यूरोपीय समितिके कामकी प्रशंसामें कुछ न कहना असम्भव है जिसके अध्यक्ष इस समारोहके सभापति (श्री हॉस्केन) हैं। मैं निःसंकोच भावसे यह स्वीकार करता हूँ कि यूरोपीय समाजके शानदार सहयोगके बिना सारा आन्दोलन अथवा प्रतिरोध ठप हो सकता था। श्री हॉस्केनने जब-कभी और जहाँ-कहीं सम्भव था सहायता देनेमें कभी संकोच नहीं किया। वे बराबर मदद देनेके लिए तैयार रहते हैं। उन्होंने एशियाई प्रश्नका बड़ा व्यापक अध्ययन किया है। त्रस्त एशियाइयोंके लिए उनके घरके दरवाजे सदा खुले रहते हैं। वक्ताने आशा प्रकट की कि श्री डोक लॉर्ड क्रू और लॉर्ड मॉर्लेसे मिलनेका मौका निकालकर उन्हें अपने अनुभवका लाभ देंगे। उन्होंने सबके साथ श्री डोक और उनके परिवारकी सर्वांगीण सफलताकी कामना की।[1]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६-२-१९१ और ५-३-१९११

८६. श्री डोक

श्री डोक शीघ्र ही अमेरिकाको प्रस्थान कर रहे हैं। इसके उपलक्ष्यमें भारतीय[1] और चीनी[2] — दोनों समाजोंने हालमें उनका जो सम्मान किया है, वह उचित ही है। श्री डोकने सत्याग्रहके पवित्र उद्देश्यकी बहुत बड़ी और निर्मम सेवा की है। यहाँके गोरोंमें अप्रिय एशियाई आन्दोलनका समर्थन करनेके कारण श्री डोक और उनके-जैसे अन्य यूरोपीय मित्रोंको जो कुछ सहना पड़ा है संसारको उसका पता शायद कभी नहीं लगेगा।

परन्तु यदि यह बात यूरोपीय समितिके अन्य सदस्योंकी शानके खिलाफ न मानी जाये तो हम कहना चाहेंगे कि श्री डोकने इस सारे प्रश्नका ठीक-ठीक अध्ययन किया है। उन्होंने इस विषयपर उपलब्ध सारा साहित्य पढ़ा है। जिन दिनों सिप्टमबर्ग इंग्लैंडमें था श्री डोक बराबर यहाँके नेताओंसे सलाह करते रहे और उन्हें अपने परिपक्व अनुभवका लाभ देते हुए उत्साहित करते रहे। सच तो यह है कि उन्होंने इस कार्यको ईसाई पादरीके रूपमें अपने धर्म-प्रचारका एक अंग समझकर किया है और यह माना है कि एशियाइयोंके पवित्र उद्देश्यकी सेवा ईसाई समाजकी सेवा है। उनकी दृष्टिमें यह केवल एक राजनीतिक युद्ध नहीं है, बल्कि एक धर्मयुद्ध — मानवजातिका मानव जातिके निमित्त युद्ध — है। यदि हमारे बीच श्री डोक-जैसे और अधिक लोग होते तो सम्भवतः हममें मनुष्य-मनुष्यके बीचकी ये अस्वाभाविक असमानताएँ न होतीं।

१. [illegible]।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. देखिए "भारतीय चीनियों द्वारा आयोजित पार्टी में श्री डोकके सम्मान-समारोहमें" पृष्ठ १९४।

श्री गोक कुछ समय लन्दनमें रहेंगे। ये दोनों एशियाई समाजोंके पूर्णतः विश्वस्त दूत हैं। उनसे अनुरोध किया गया है कि वहाँ वे साम्राज्यके अधिकारियोंसे मिलें और उनके सामने इस प्रश्नको उस रूपमें रखें जिस रूपमें उन्होंने उसे अपने निजी अनुभवसे देखा है। अगर श्री गोकको उन अधिकारियोंसे मिलनेका अवसर मिला तो हमें निश्चय है कि वे उनकी बात आदरपूर्वक सुनेंगे। अपने उद्देश्यका ऐसा योग्य समर्थक प्राप्त कर लेनेपर हम दोनों समाजोंको बधाई देते हैं।

धर्मकार्यके निमित्त श्री गोक अमेरिका जा रहे हैं। हमारी शुभकामनाएँ उनके साथ हैं। प्रकट करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-२-१९११

८७ श्री रुस्तमजी

ट्रान्सवालमें चल रहे निराले संघर्षमें श्री रुस्तमजीने जो सेवाएँ की हैं उनकी प्रशंसा करना असम्भव है। केवल दो सत्याग्रहियोंको लगातार लगभग पूरे एक वर्ष तक जेलमें रहनेका विशेष गौरव प्राप्त हुआ है। श्री रुस्तमजीने वहाँ पूरा एक वर्ष बिताया। अपने पत्रमें[1] जिसे हम अन्यत्र छाप रहे हैं उन्होंने जिन कष्टोंका वर्णन किया है उनसे ट्रान्सवाल सरकारकी नीतिपर दुःखजनक प्रकाश पड़ता है। परन्तु श्री रुस्तमजीने सरकारको विश्वास दिलाया है कि उन्हें जो अनावश्यक कष्ट पहुँचाया गया है उससे उनका उत्साह भंग नहीं हो सकता।

अब श्री रुस्तमजी अपने साथी सत्याग्रहियोंकी सहमति और सलाहसे विश्राम कर रहे हैं जिसके वे पूर्ण अधिकारी हैं। वे अपने व्यापारको भी व्यवस्थित कर रहे हैं जिसे उनकी गैरहाजिरीमें स्वभावतः बहुत क्षति पहुँची है। हम आशा करते हैं कि श्री रुस्तमजी शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेंगे और अगर इस बीचमें लड़ाई समाप्त नहीं हुई तो पुनः ट्रान्सवालकी जेलको सुशोभित करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-२-१९११

१ देखिए परिशिष्ट १।

८८ इमाम साहब

डीपक्लूफ जेलसे सबसे ताजा रिहाई इमाम साहब अब्दुल कादिर बावजीर और श्री कुनकेकी[1] हुई है। दोनों ही संघर्षके स्तम्भ हैं। दोनों अनेक बार जेल गये हैं।

यद्यपि इमाम साहब संघर्षके लिए शक्तिके स्तम्भ हैं, तथापि वे अपना स्वास्थ्य खोकर लौटे हैं। वे हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके सम्मानित सभापति और धर्मगुरु हैं। खास तौरपर [दक्षिण आफ्रिकाके] मुसलमान और आम तौरपर सारा भारतीय समाज उनके दुःखसे दुःखी होता है। हम श्री बावजीरको उनकी महान सेवाओंके लिए, बधाई देते हैं। साथ ही हम परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें और उनके साथी सत्याग्रहियोंको बल दे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-२-१९११

८९ पारसी रुस्तमजी

श्री रुस्तमजी इमाम अब्दुल कादिर बावजीर और मुहम्मद इब्राहीम कुनकेके छूट गये हैं।

हम पहले भी शाहकी सेवाका श्री रुस्तमजीकी सेवाके साथ मिलान कर चुके हैं।[2] ये दोनों सत्याग्रही लगातार एक वर्ष जेलमें रहे। रुस्तमजीको कुल मिलाकर १४ महीने १९ दिनकी सजा हुई थी जिसमें उन्होंने एक साल लगातार जेलमें काटा। हमने उनके उस पत्रकी[3] ओर भी ध्यान आकर्षित किया था जिसमें उन्होंने इस अवधिमें होनेवाले कष्टोंका वर्णन किया है। इतना दुःख भोगनेपर भी श्री रुस्तमजीने जो हिम्मत कायम रखी हम उसके लिए उनको तथा समाजको बधाई देते हैं।

चूँकि रुस्तमजी दोबारा निर्वासित नहीं किये गये और वे जोहानिसबर्गमें ही छोड़ दिये गये इसलिए उन्हें डर्बन जानेका अवसर प्राप्त हुआ। इसका उन्होंने सत्याग्रहियोंकी सलाह और सम्मतिसे लाभ उठाया। यह कदम सही है। हम आशा करते हैं कि श्री रुस्तमजी अपने कामको सँभाल लेंगे और अपनी तबीयत भी सुधारेंगे। हम चाहते हैं कि ये दोनों चीजें सुधर जायें और श्री रुस्तमजी फिर जेलमें जाकर विराजमान हों।

श्री रुस्तमजीने जेलमें पूरा एक वर्ष बिताया सो इसलिए कि उन्हें वैसा अवसर मिल गया। इमाम साहब और श्री कुनकेने भी मिलनेवाले अवसरसे पूरा लाभ उठाया

1. मुहम्मद इब्राहीम कुनके; देखिए अगला शीर्षक।
2. देखिए “श्री [illegible] पारसी सेवाएँ” पृष्ठ १५ ।
3. देखिए परिशिष्ट २।

है और समाजको भी उसका लाभ दिया है। इमाम साहबके कामपर हमीदिया अंजुमन और सारे भारतीय समाजको अभिमान हो सकता है। उनकी तबीयत गिर गई है और शरीर रुग्ण है। उन्होंने इस सबकी परवाह नहीं की और समय-समयपर जेल जाते रहे। जबतक समाजमें ऐसे लोग हैं तबतक कौन कह सकता है कि हम हार जायेंगे।

हम तीनों सत्याग्रहियोंको धन्यवाद देते हैं और ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि वह उनको सदा सन्मति दे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १९–२–१९११

९० भाषण : डर्बनकी सार्वजनिक सभामें[1]

फरवरी ९, १९११

श्री रुस्तमजीका पत्र सभामें मिला। उससे प्रकट होता है कि वे यहाँ जानबूझकर नहीं आये हैं। यह पूरा पत्र सभाको पढ़कर सुनानेकी आवश्यकता नहीं है, लेकिन इस पत्रके द्वारा वे सभासे पूछ रहे हैं कि जिन सभाओंमें उन्हें और अन्य सज्जनोंको ट्रान्सवालके लिए विदा किया गया था उन सभाओंका उत्साह आज कहाँ गया। उसी प्रकार वे यह भी पूछते हैं कि जो सज्जन उनके साथ जानेवाले थे वे कहाँ हैं। आगे चलकर वे कहते हैं कि उन्हें इस प्रकार नाटकीय ढंगसे सम्मान देना उनकी हँसी उड़ानेके समान है। इसलिए वे इस प्रकारका सम्मान लेनेके लिए तैयार नहीं हैं। वे मानते हैं कि उनका सच्चा सम्मान तो उनकी तरह जेल जानेसे होगा। श्री गांधीने कहा कि आज मंचपर जो-कुछ हो रहा है, वह तो पर्देके बाहरका दिखावा है। परन्तु पर्देके भीतर जो-कुछ हो रहा है उसपर ही अपनी हार-जीतका दारोमदार है। आज जिन सज्जनोंने ट्रान्सवालको मदद देनेके सम्बन्धमें भाषण दिये और सत्याग्रहियोंको मुबारकबादी दी उन्होंने यदि यह सब हृदयसे किया हो तो संघर्षका अन्त समीप ही है। यदि हमारे नेता दिखावा करना बन्द कर दें तो जीत आसान होगी। हमारा संघर्ष चार दिनमें समाप्त होता है या चार वर्षमें यह हमारे ही हाथमें है। यदि यह लम्बा चलता है तो दोष हमारा अपना ही है। संघर्षके अन्तके सम्बन्धमें जब-जब मेरा अनुमान गलत निकला तब-तब मुझे उसका कारण यह दिखाई दिया कि समाजकी शक्तिके विषयमें मैंने गलत अनुमान लगा लिया था। इस बार जब मैं यहाँ आनेके लिए घरसे चला तब श्री अस्वात श्री काछलिया और श्री भायातने मुझपर दाउद सेठको साथ लानेके सम्बन्धमें बहुत जोर दिया। सभी पूछते हैं कि दाउद सेठ अब क्या करेंगे?

१. गांधीजी और रुस्तमजीका सम्मान करने और ३ पौंडी कर, मिडिल्सिक्स प्रथा और प्रवासी कानून संशोधन विधेयकके विरुद्ध भारतीय मत प्रकट करनेके लिए ९–२–१९११ को डर्बन भारतीय कांग्रेसकी ओरसे सभा की गई थी।

२. उपस्थित सज्जनोंमें श्री दाउद मुहम्मद भी थे जो सभाके बाद गांधीजीके पास बैठे।

मैं दाउद सेठ, श्री सापुरजी रुस्तमजीको तथा अन्य सज्जनोंको जो भी मेरे साथ चलें अपने साथ ले जानेके लिए आया हूँ। हमारे ही भाई सरकारको खबर देते हैं कि पुराने भारतीय हारते जाते हैं और जो लोग नेटाल गये हैं वे वापस आनेवाले नहीं हैं। यदि यह बात सच हो जाये तो इससे संघर्षको बड़ा धक्का पहुँचेगा। इस कारण मैं आशा करता हूँ कि ये सज्जन इस समय तैयार होंगे।

दूसरे, जातिकी एकताके विषयमें यहाँ जो कुछ-कुछ कहा गया है उसके बारेमें मेरा कथन यह है कि यदि दोनों समाजोंमें फूट है तो इसमें दोष दोनों समाजोंके नेताओंका ही है। यदि लोग शपथ लेनेके उपरान्त एकता करनेके अपने 'निश्चयको कार्य रूपमें परिणत करें तो एकता आसानीसे हो सकती है। यह मानना भ्रम है कि कोई बाहरी व्यक्ति आकर उनमें एकता करा देगा। जिन्हें एकता कायम रखनी है, वे ही उसके लिए उत्तरदायी हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २६–२–१९१

९१ पत्र : उपनिवेश-सचिवको[1]

[जोहानिसबर्ग]
फरवरी २३ १९१०

महोदय

श्री पारसी रुस्तमजीने डीपक्लूफ जेलमें अपने साथ किये गये सलूकके बारेमें अखबारोंको जो पत्र[2] लिखा था मैं उसकी नकल संलग्न कर रहा हूँ। साथ ही मैं उस डॉक्टरी प्रमाणपत्रकी नकल भी संलग्न कर रहा हूँ जो जेलसे छूटनेपर उनके पारिवारिक चिकित्सकने उनके स्वास्थ्यकी दशाके बारेमें दिया था

फर्स्ट एवेन्यू
डर्बन
फरवरी १६ १९१

मैं इसके द्वारा प्रमाणित करता हूँ कि मैंने श्री पारसी रुस्तमजीकी शरीर परीक्षा की है; मैं उनको बहुत समयसे जानता हूँ और मैंने देखा है कि अब उनका वजन और डील-डौल बहुत घट गया है; हालके कारावाससे उनके स्वास्थ्यको बहुत हानि पहुँची है और उनको पहलेकी भाँति स्वस्थ होनेमें कुछ महीने लग जायेंगे। मैं देखता हूँ कि उनके हृदयपर प्रभाव पड़ा है, लेकिन एक ही बारकी परीक्षाके बाद पक्के तौरपर यह कहना मुश्किल है कि उसमें

१ प्रिटोरिया स्थित; इस पत्रका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने बनाया था।
२ देखिए परिशिष्ट २।

गवर्नरको दी थी। उन्होंने इसकी जाँच कराई थी और श्री बाजजीरका खयाल है कि यह आश्वासन भी दिया था कि ऊपर बताई गई गलतियाँ भविष्यमें नहीं होंगी। फिर भी मेरी समिति यह कहे बिना नहीं रह सकती कि जिस व्यवस्थाके अन्तर्गत इतनी गम्भीर गलतियाँ हो सकती हैं उसमें संशोधन करना नितान्त आवश्यक होना चाहिए।

मेरी समिति आशा करती है कि यहाँ जिन विभिन्न विषयोंकी ओर सरकारका ध्यान आकर्षित किया गया है उनपर उचित विचार किया जायेगा।

आपका आदि
अ० मु० काछलिया
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-१-१९११

९२. भाषण : काठियावाड़ आर्यमण्डलमें

[डर्बन
फरवरी २१, १९११]

काठियावाड़ आर्य-मण्डलकी एक बैठक इसी महीनेकी २१ तारीखको क्वीन्स स्ट्रीट, डर्बनमें हुई। इसका उद्देश्य सर्वश्री पारसी रुस्तमजी, शाह और मेहताले मिलना-जुलना था।

श्री गांधीने जो उपस्थित थे सभामें भाषण दिया। उन्होंने संघर्षका स्वरूप समझाया और कहा : "मैं नेटाल इसलिए आया हूँ कि जो लोग संघर्षमें सम्मिलित होना चाहें उन्हें इसके लिए आमन्त्रित करूँ।"

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-२-१९११

९३. तार : द० आ० ब्रि० भा० समितिको[1]

[जोहानिसबर्ग]
फरवरी २५, १९११

इमीदिया अंजुमनके अध्यक्ष धर्मगुरु इमाम बावजीर रिहा सहत बहुत गिरी कमजोर। वे बताते हैं रायपन फोक्सरस्ट ले जानेके दौरान नंगे सिर, नंगे पैर पैदल चलाये गये। रुस्तमजी रिहा दुर्बल दिखाई देते हैं गम्भीर आरोप लगाते हुए अखबारोंको पत्र लिखा है रिहाईके बाद डॉक्टरी परीक्षा प्रमाणपत्रके अनुसार हृदय और प्रभावित। तीससे ऊपर चीनी लगभग चालीस भारतीय जेलमें। मणिलाल निर्वासित फिर सीमा पार करनेपर तीन महीनेकी कड़ी कैद। बिना घीकी भोजन-तालिका जारी रहनेसे क्षोभ। पी० के० नायडू बुधवारको रिहा फिर तुरन्त गिरफ्तार, तीन महीनेकी कड़ी कैद।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ४-३-१९११ और दक्षिण आफ्रिकी ब्लू-बुक संख्या ५११९ से।

९४. सत्याग्रहियोंको भूखों मारना

भारतीय कैदियोंकी आहार-तालिकामें फेर-फार किये गये हैं। ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघने एक पत्र लिखकर सरकारसे इसके काफी न होनेकी शिकायत की है। इसपर श्री स्मट्सने जो तफसील दी है उसे हम अन्यत्र छाप रहे हैं।[2] इस तफसीलमें खास बात यह है कि इसमें कुछ तथ्य छोड़ दिये गये हैं और कुछ करीब-करीब गलत हैं। यह उस विशेष तर्कका उदाहरण है जिससे वर्तमान अनुचित आहार-तालिकाको उचित सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है।

तीसरे अनुच्छेदमें कहा गया है कि आहार-तालिकामें परिवर्तन करनेका हेतु यह था कि कैदियोंकी आहार-तालिकामें घी और पिसा मसाला शामिल करके उसे करीब करीब भारतीयोंमें प्रचलित आहार जैसा बना दिया जाये। इसमें कहा गया है कि इस परिवर्तनसे पहले कैदियोंको घी नहीं दिया जाता था। परन्तु सचाई यह है कि जोहानिसबर्ग फोक्सरस्ट और अन्य कई जेलोंमें भारतीय कैदियोंको प्रतिदिन एक औंस घी दिया

१. ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीय संघके मन्त्री द्वारा दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति लन्दनको भेजा गया।

२, ३ और ४. देखिए "पत्र उपनिवेश-सचिवको" पृष्ठ १७१-७२।

५. ११-२-१९११ को।

६. देखिए "अनाक्रमक प्रतिरोधी कैदी" इंडियन ओपिनियन २५-२-१९११।

जाता था। इसके अलावा उन्हें हफ्तेमें तीन बार जेलमें घी जाती थी और एक बार माँस दिया जाता था। दूसरी जेलोंमें एक औंस चर्बी प्रतिदिन दी जाती थी। खास तौरसे इस शिकायतके जवाबमें कि निरामिष-भोजी सत्याग्रही चर्बी नहीं खा सकते इसलिए उसके बदलेमें उन्हें घी दिया जाय सरकारने समूचे उपनिवेशमें भारतीय कैदियोंको घी या चर्बीसे वंचित कर दिया। इस प्रकार संशोधित आहार-तालिका भारतीयोंके प्रचलित आहार से बिलकुल नहीं खाती क्योंकि उसमें रोटी घी दाल और साग भरपूर होती है। कोई भारतीय अपनी इच्छासे मक्कीका आहार नहीं करता। लेकिन फिर भी भारतीय कैदियोंके आहारका बड़ा भाग यही है। हम ऐसे किसी निष्पक्ष भारतीय समर्थक को नहीं जानते जिसने यह माना हो कि संशोधित आहार-तालिका भारतीयोंकी पहली आहार तालिकासे अच्छी है। दरअसल उन सबने यही कहा है कि घीके बगैर कोई भारतीय आहार-तालिका पूर्ण नहीं हो सकती। प्राचीन कालसे घी चावलका पूरक माना गया है। उसका दूसरा नाम ही अन्नपूर्णा अर्थात् चावलका पूरक है क्योंकि सभी जानते हैं कि चावलमें कोई स्निग्ध पदार्थ नहीं होता। तब जो चीज इस तरहके भोजनका आवश्यक भाग है उससे रहित आहार पहले आहारसे अधिक अच्छा कैसे कहा जा सकता है? बिना मसाला सिर्फ मसाला है। यह घीकी तरह आहार नहीं है। इस विवरणमें कहा गया है कि संशोधित तालिकाका निश्चय करनेसे पहले पच्चीस डॉक्टरोंकी सलाह ली गई थी और इसे बड़ा महत्त्व दिया गया है। परन्तु विवरणमें इस बातका कहीं उल्लेख तक नहीं कि पिछले नौ महीनासे भारतीय कैदियोंको मुख्यतः डीपक्लूफ जेलमें ही स्वस्थ रखा गया है इसलिए अन्य डॉक्टरोंके सामने विचार करनेके लिए पर्याप्त सामग्री ही नहीं थी। कार्यवाहक चिकित्साधिकारीका मत ही इस आरोपका कोई कारण नहीं मिल सका हो कि सत्याग्रही दुबले और कमजोर क्यों दिखाई दे रहे हैं परन्तु सर्वश्री रुस्तमजी बावजीर, अस्वात और साहके शरीर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं। श्री रुस्तमजीका तो विशेष इलाज ही चल रहा है। श्री बावजीर मुश्किलसे चल सकते हैं। श्री अस्वात पंगु हो गये हैं और श्री साहके थूकमें खून आता है। ये सब यही समाचार लाये हैं कि शिकायतोंका सबसे बड़ा कारण घीका अभाव है। डॉक्टरोंकी पूरी फौज आकर भले ही दूसरी तरहकी बातें कहे किन्तु उसका क्या मूल्य है, जबकि स्वयं शिकार हुए व्यक्ति ही आहार अपूर्ण होनेका प्रत्यक्ष सबूत अपने दुबले और कमजोर शरीरोंसे दे रहे हैं। फिर भी निःसन्देह हम कृतज्ञ हैं कि जो भारतीय माँस नहीं खाते उन्हें उसके बदले जेलमें घी दी जाती है। परन्तु उस विवरणमें इस बातकी तरफ कहीं ध्यान तक नहीं दिया गया है कि यद्यपि जेलमें माँसकी भलीभाँति पूर्ति कर सकती है फिर भी वे घीका स्थान तो नहीं ले सकती। इसलिए हम यह कहे बगैर कदापि नहीं रह सकते कि ट्रान्सवालकी उत्तम सरकार सत्याग्रहियोंके प्रति घोर निर्दयताका व्यवहार कर रही है। यह आरोप उसपर तबतक बना रहेगा जबतक कि वह हृदयहीन बनकर उन्हें आंशिक रूपसे भूखों मारती रहेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६–२–१९१०

९५ नेटाल भारतीय कांग्रेस

खास तौरपर निमन्त्रित एक सार्वजनिक सभामें नेटाल भारतीय कांग्रेसने कुछ प्रस्ताव[1] पास किये हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं और जिनके परिणाम व्यापक होंगे। हमारा खयाल है कि इनमें सबसे अधिक ध्यान देने लायक प्रस्ताव वे हैं जिनका सम्बन्ध गिरमिटिया मजदूरोंकी प्रथाको बिलकुल बन्द करने और ट्रान्सवालके संघर्षको जारी रखनेसे है। इन दोनों प्रस्तावोंमें महान सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है. इनमें प्रस्तावकों और समर्थकोंका कोई स्वार्थ नहीं है। इस कारण प्रस्तावोंकी भूमिका बड़ी उच्च बन गई है। इन प्रस्तावोंका भले ही निकट भविष्यमें कोई बड़ा या ठोस परिणाम न हो परन्तु ट्रान्सवाल और बाहरकी घटनाओंपर उनका असर पड़ना अवश्यम्भावी है। निश्चय ही सभी इसे स्वीकार करेंगे कि साम्राज्यकी दृष्टिसे दोनों प्रस्ताव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-२-१९११

९६ भारतीयोंकी शिक्षा

समाचार मिला है कि उच्चतर भारतीय पाठशालाओं (हायर ग्रेड इंडियन स्कूलों) में विद्यार्थियोंके प्रवेशके लिए आयुकी मर्यादा हटा दी गई है। परन्तु हमें ज्ञात हुआ है कि प्रतिबन्ध हटानेकी बात गजट में प्रकाशित नहीं की जायेगी यद्यपि प्रतिबन्ध लगानेकी बात प्रकाशित की गई थी। इस विचित्र घटनाका कारण स्पष्ट है। उस समय सरकारने मत लेनेके लिए उस खबरका ढोल पीटा था। परन्तु लोग नाराज न हों इस हेतुसे अब वह प्रतिबन्ध हटानेके तथ्यको दबाना चाहती है।

परन्तु भारतीय माता-पिताओंको प्रस्तावित परिवर्तनसे सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। उन्हें अपने बच्चोंके लिए अपनी निजी शालाएँ खोलनी चाहिए, जहाँ उन्हें समुचित शिक्षा दी जा सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-२-१९११

१ देखिए पाद-टिप्पणी १, पृष्ठ २० ।

१७. केपके रंगदार लोग

युवराज (प्रिंस ऑफ वेल्स) के आगमनके उपलक्ष्यमें केप टाउनकी[1] नगरपालिका परिषद् (म्युनिसिपल कौंसिल) ने १५ पौंड खर्च करनेका प्रस्ताव पास किया है। जब इस प्रस्तावपर मत लिए जा रहे थे तब परिषद्के सदस्य डॉक्टर अब्दुर्रहमानने बहुत कटु भाव व्यक्त किये। युवराज के आगमनके दिन ये सुयोग्य डॉक्टर शोक मनायेंगे। वे परमात्मा राजाकी रक्षा करें (गॉड सेव द किंग) गीत नहीं गायेंगे। वे सब रंगदार लोगोंको भी उसी प्रकार उत्सवसे अलग रहनेकी सलाह देते हैं। उनके क्रोधके इस तरह भड़कनेका कारण स्वाभाविक और उचित है। दक्षिण आफ्रिका अधिनियममें रंगदार लोगोंको आधिक रूपसे मताधिकारसे वंचित कर दिया गया है। इसका हजारों रंगदार लोगोंके दिलोंपर बड़ा गहरा असर हुआ है। उनके लिए इस सन्निकट उत्सवमें भाग लेना निश्चय ही हास्यास्पद और दिखावेकी बात होगी। यह निरा ढोंग होगा।

यह पूछा जा सकता है कि डॉक्टर अब्दुर्रहमानने जो भाव प्रकट किये हैं क्या वे राजनिष्ठासे मेल खाते हैं? राजनिष्ठा शब्दका बड़ा दुरुपयोग हुआ है। एक कायर या गुलामकी राजनिष्ठासे यह निश्चय ही असंगत होगा। परन्तु हम मानते हैं कि एक स्वतन्त्र मनुष्य — एक बुद्धिमान और स्वाधीन मनुष्य — हमारा खयाल है कि डॉक्टर अब्दुर्रहमान ऐसे ही मनुष्य हैं सम्राट्के प्रति राजनिष्ठा रखते हुए भी इस उत्सवमें भाग लेनेसे इनकार कर सकता है क्योंकि राजनिष्ठा तो एक आदर्श है और इस उत्सवसे उन सब लोगोंका अपमान होता है जो सबकी सहमतिसे अधिक अच्छे व्यवहारके पात्र हैं। हमारा खयाल है कि अपने भावोंको हिम्मतके साथ प्रकट करके डॉक्टर अब्दुर्रहमानने वातावरणको झूठ और ढोंगसे मुक्त करके स्वच्छ बना दिया है और इस तरह सत्य सम्राट् अपने समाज और खुदकी एक साथ सेवा की है। संयोगकी बात है कि ठीक इसी समय जोहानिसबर्गमें[2] रंगदार लोगोंकी एक सभामें जोरदार भाषामें यही बात कही गई है। अनेक वक्ताओंने अपने भाषणोंमें कहा कि अगर अधिकारियोंने अनुचित रुख दिखाया तो वे सत्याग्रह करेंगे। हम डॉक्टर अब्दुर्रहमानको उनके इस कार्यपर बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि वे समय आनेपर अपने कार्यक्रमके अनुसार चलनेका साहस करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६-२-१९११

१. २१-१-१९११ की बैठकमें, देखिए "अब्दुर्रहमानका प्रस्ताव" पृष्ठ १०९।

२. यह सभा १६-२-१९११ को हुई थी; देखिए "रंगदार भारतीयोंकी सभा" इंडियन ओपिनियन २६-२-१९११।

९८. डोकका सम्मान

श्री डोकके सम्मानमें जो समारोह हुआ हम उसके लिए ट्रान्सवालके भारतीयोंको बधाई देते हैं। श्री डोक जैसे निर्मल हृदय और प्रभावशाली सहयोगी थोड़े ही मिलते हैं। श्री डोकने हमारे समाजकी बड़ी भारी सेवा की है। श्री डोक ऐसे व्यक्ति हैं कि यदि हमें जेल जानेसे मुक्ति मिले तो वे जेल जानेको तैयार हैं।

इस आयोजनमें जो भारतीय उपस्थित थे उन्होंने देखा होगा कि आजसे तीन बरस पहले हम ऐसा आयोजन करनेमें असमर्थ होते। जो गोरे हमारे साथ बैठनेमें भी शरमाते थे वे आज हमारा मान करनेके लिए एकत्र होते हैं और हमारी पंक्तिमें बैठते हैं। यह कोई जबरदस्त बात हो गई ऐसा हम नहीं कहना चाहते बल्कि यह बताना चाहते हैं कि पहले हमारी कैसी अधम अवस्था थी। यह सारा परिवर्तन सत्याग्रहके बलपर हुआ है। अब यदि लोभ और भोग कम कर सकें तो और आगे बढ़ा जा सकता है। हमारी कामना है कि इस सम्मेलनसे भारतीय समाज यह सबक लेगा कि अपने बलसे बढ़कर बल नहीं है। हम जितना कष्ट उठायेंगे उतने बलवान होंगे।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, २५-२-१९११

९९. डर्बनमें आयोजन

श्री पारसी रुस्तमजी श्री शाह तथा श्री सेलतके आगमनपर डर्बनमें स्वागत आयोजन किये जा रहे हैं।[1] कांग्रेस तथा काठियावाड़ आर्य-मण्डलने[2] समारोह किये। उसमें जेल जानेवालोंका बखान किया गया। जेल जानेवाले कहते हैं हमें प्रशंसा नहीं चाहिए। भाषण और स्वागत आयोजन यों ठीक हैं किन्तु अब उनमें कोई सार नहीं है। काम करनेमें ही सब-कुछ है। भारतीय संस्थाएँ अगर चुप रहकर अपना कर्तव्य करती चली जायें तो जल्दी ही कार्यकी सिद्धि हो सकती है। संघर्षसे सम्बन्धित उनका कर्तव्य एक ही है लड़नेवालोंको तैयार करना और मैदानमें भेजना। हमारे कहनेका अर्थ यह है कि डर्बनमें खूब लड़नेवालोंको तैयार होना चाहिए। यदि संस्थाओंके पदाधिकारी ईमानदार हैं तो वे दूसरोंको भी समझा सकेंगे। यह अवसर दम्भ और दिखावेको एक तरफ रखकर मैदानमें कूदनेका है।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, २५-२-१९११

१. तीनों उस समय डर्बनमें थे।
२. देखिए "भाषण: डर्बनकी सार्वजनिक सभामें" पृष्ठ १००-०१।
३. "भाषण: काठियावाड़ आर्य मण्डलमें" पृष्ठ १०१।

१०० अब्दुर्रहमानका गुस्सा

केप टाउनकी परिषद (टाउन कौंसिल) में प्रस्ताव पेश हुआ कि युवराजके आगमनके अवसरपर सजावट आदिपर खर्च के लिए १५० पौंड मंजूर किये जायें। डॉक्टर अब्दुर्रहमानने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा

> इससे किसी काले आदमीको खुशी नहीं होगी। मुझे आशा है कि कोई काला आदमी राजगीत[1] नहीं गायेगा। मैं तो कदापि नहीं गाऊँगा। युवराजको मान देकर किसी काले आदमीको प्रसन्नता नहीं होगी क्योंकि उसे बराबर यह बात खटकती रहेगी कि ५ बरसोंसे उसका जो अधिकार चला आ रहा था आगामी दिन उसे पूरी तरह छीन लेनेका दिन है।
>
> उन्होंने आगे कहा: केपमें ३५, करदाता हैं। इनमें ५ प्रतिशत काले हैं। यह बात राग-रंग और सजावटके लिए उनकी जेबसे पैसा लेनेकी है।
>
> मैं काले आदमीकी हैसियतसे इस काममें शरीक नहीं हो सकता। मेरे लिए तो यह दिन मातम मनानेका दिन होगा। जिस तरह काले आदमीका अधिकार छीना गया है यदि किसी अंग्रेज अथवा आयरिशका छीना गया होता तो वह अंग्रेज या आयरिश जितनी नरमीसे मैं बोल रहा हूँ उतनी नरमीसे न बोलता। वे तो अपने अधिकारके लिए अपना खून बहानेको तैयार रहते हैं।

डॉक्टर अब्दुर्रहमानके ये वचन कटु हैं किन्तु हैं वाजिब। प्रस्ताव मंजूर तो हो गया, किन्तु डॉक्टर अब्दुर्रहमानके शब्द सदा गूँजते रहेंगे। यदि दूसरे काले आदमी उनका अनुसरण करने लगें तो उनके [illegible] शीघ्र ही निवारण हो जाये। हम डॉक्टरके इन शब्दोंमें राजद्रोह नहीं देखते। वास्तविक भक्ति कड़वी भी होती है। मुँहसे जी हुजूर करना ही वफादारी नहीं है। जो मनमें है वही कहना चाहिए, वही करना चाहिए — सच्ची वफादारीकी यही निशानी है।

हम आशा करते हैं कि उन्होंने जो कुछ कहा है वैसा ही वे कर दिखायेंगे और जब युवराज आयेंगे तब राग-रंगमें भाग नहीं लेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-२-१९११

1. गॉड सेव द किंग से अभिप्राय है।
2. ११-२-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित समाचारसे।

१०१ नेटालमें शिक्षा

[भारतीय] उच्चतर शालाओंमें [प्रवेशके लिए] उम्रकी जो कैद थी वह हट
है। यह सन्तोषकी बात है। किन्तु ऐसा माननेका कोई भी कारण नहीं है कि यह
जीत हुई। जीत इसी बातमें है कि नेटालकी सरकारने भूल कर डाली। लेकिन इस
यह अर्थ नहीं है कि इससे हमारे बाल-बच्चे पढ़-लिख लेंगे। भारतीय माता-पिताका कर्त
तो यह है कि वे जल्दीसे-जल्दी अपनी शालाएँ खोलें। उच्चतर शालाओंकी शिक्षा
भरोसा नहीं किया जा सकता। उनमें दी जानेवाली शिक्षा केवल तोता-रटन्त है
वहाँ देशभक्तिका लेश भी नहीं सिखाया जाता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-२-१९११

१०२ भाषण डर्बन भारतीय समितिमें

फरवरी २६, १९११

डर्बन भारतीय समिति (लोतापठी) के तत्वावधानमें समितिके सभाभवन १०
क्वीन स्ट्रीट, डर्बनमें २६ फरवरी रविवारको भारतीयोंकी एक असाधारण रूपसे भ
रंजक और प्रातिनिधिक सभा हुई। सभाभवन खचाखच भरा था और सभा बहुत
अनुशासन-बद्ध थी। देशबन्धु दाउद मुहम्मद अध्यक्ष चुने गये और उपस्थितजनोंमें प्रति
सत्याग्रही देशभक्त मो० क० गांधी देशबन्धु पू० एम० शेलत और नानालाल शाह
थे। मन्त्री देशबन्धु ए० डी० पिल्लेने इन कुशल सत्याग्रहियोंका स्वागत किया।

तब देशबन्धु वी० ए० चुन्दरम्मियाँ आचार्यने जिन्होंने हालहीमें भारतीयों
संघर्षमें शामिल होनेका निश्चय किया है, तमिलमें भाषण दिया।[1]

इसके बाद देशभक्त मो० क० गांधी और अन्य सत्याग्रहियोंको मालाएँ पहनाई गई।[2]
देशभक्त मो० क० गांधी तुमुल हर्षध्वनिके बीच स्वागतका उत्तर देनेके लिए उठे

उन्होंने कहा कि सभी भाषणोंने उन्हें बहुत प्रभावित किया है। उन्होंने श्री नायकरके
अनाक्रामक प्रतिरोध संघर्षमें शामिल होनेकी सलाह दी। उन्होंने यह भी कहा
संघर्ष अब भी उतनी ही जोरसे चलाया जा रहा है और दृढ़ निश्चयकी भावना भी दिखा
जा रही है। सत्याग्रहकी विजय अवश्य होगी क्योंकि उसका उद्देश्य महान और न्याय
संगत है एवं भारतीयोंने उस उद्देश्यको प्राप्त करनेके लिए अन्ततक संघर्ष जारी रखनेका

१ देखिए "भारतीयोंकी शिक्षा" पृष्ठ १०८।

२. इसका एक संक्षिप्त विवरण ४-३-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें छपा था।

समर्थन किया है चाहे उन्हें कितना ही कष्ट दिया जाये। ट्रान्सवाल-सरकारने जुर्माने वसूल करनेके लिए एक ऐसी भारी कार्रवाईका सहारा लिया है। वह मकानों, सामान, पशुओं और चीनीके बर्तनोंको कुर्क कर लेती है। परन्तु इससे भारतीय अपने मार्गसे विचलित नहीं हो सकते और ट्रान्सवालके भारतीयोंका जिन्होंने अपनी सारी सम्पत्तिसे हाथ धोना और जेल जाना पसन्द किया है, निश्चय उनकी सच्चाईका पर्याप्त प्रमाण है। उन्होंने कुछ पत्र पढ़े जो उन्हें देशबन्धु पी० के० नायडूसे प्राप्त हुए थे और सार्वजनिक कामके थे। उन्होंने श्री नायडूके वीरतापूर्ण रवैयेका उल्लेख किया जो बार-बार जेल भेज जानेपर भी कायम रहा है और कहा कि उनका कार्य अनुकरणीय है। उन्होंने यह भी कहा कि संघर्ष केवल पुरुषों तक ही सीमित नहीं रहा है वरन् उसमें स्त्रियोंने भी बहुत दिलचस्पी दिखाई है। उन्होंने अपने पतियोंको एक ऐसे राष्ट्रीय संघर्षमें हिस्सा लेनेकी अनुमति दी है जो निष्पक्षता और और न्यायका भी संघर्ष है। यह एक ऐसा काम है जो स्त्रियोंके वीरत्वका प्रमाण है। इन स्त्रियोंने भी अकथनीय कष्ट झेले हैं। फिर उन्होंने भारतसे प्राप्त एक तार[1] पढ़ा जो नेटालको गिरमिटियोंका भेजा जाना रोकनेके सम्बन्धमें था। तारमें यह कहा गया था कि यदि ट्रान्सवाल और नेटालकी सरकारें भारतीयोंके प्रति दुर्व्यवहार बन्द कर दें और स्वयं गिरमिटियोंसे भी अच्छा सलूक करें तो गिरमिट फिर जारी की जा सकती है। देशभक्त मो० क० गांधीने शर्तपर गिरमिट बन्द करनेकी बात स्वीकार नहीं की बल्कि उन्होंने कहा कि इन उपनिवेशोंमें गिरमिटियोंका लाया जाना पूरी तरह बन्द करना जरूरी है।

तब देशबन्धु यू० एम० शेलतने सभामें भाषण दिया। उनके बाद देशबन्धु नानालाल शाह बोले। उन्होंने उस कठोर बरतावका जो उनके साथ जेलमें किया गया था, विस्तार वर्णन किया।

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, ३-३-१९११

१०३. भाषण : डर्बन भारतीय समितिमें[2]

[फरवरी २१, १९११]

आजके बहुत-से भाषणोंमें आपने दो सुन्दर भाषण सुने। उनमें भी नायकरका भाषण सबसे अच्छा था। उन जैसे उत्साही सदस्य ट्रान्सवालकी जेलोंमें जायें तो यह माना जायेगा कि डर्बन भारतीय समिति (इंडियन सोसाइटी) ने बहुत अच्छा काम किया। श्री नायकरने शिक्षापर जोर दिया है। मेरा खयाल है कि सच्ची शिक्षाका समावेश मन और शरीरको अनुशासित करनेमें हो जाता है और खुद इससे प्रशिक्षित

१. जी० ए० नटेसनका तार, देखिए अगला शीर्षक।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

कमानेवालेको जितना लाभ होगा उतना ही समस्त देशको होगा। जिन्दगीमें हमेशा अपना फर्ज अदा करते जाना ही सच्ची शिक्षा है।

इस सम्बन्धमें श्री गांधीने श्री नायडूका उदाहरण देते हुए कहा:

सभी लोग मानेंगे कि उन्हें दूसरोंसे अधिक सच्ची शिक्षा मिली है। उन्होंने त्याग करनेमें कुछ उठा नहीं रखा। जिस प्रकार सुकरातने प्रसन्नतासे विषका प्याला पी लिया था उसी प्रकार नायडूने भी किया है। विशेषतः उपनिवेशियोंको उनका अनुकरण करना है। सत्याग्रहमें मिले कारावाससे मनुष्य पवित्र सत्यवादी और शूरवीर बनता है।

श्री गांधीने माननीय प्रोफेसर गोखलेका तार पढ़कर सुनाते हुए कहा:

यह तार यहाँके समाचारपत्रोंमें छप चुका है और उसपर जो टीकाएँ हुई हैं उनसे प्रकट होता है कि यह प्रश्न चारों ओर जोर पकड़ रहा है। अब हमारा कर्तव्य है कि हम ट्रान्सवालकी जेलोंको भर दें और उसकी सूचना माननीय गोखले और महामहिम आगा खाँको देकर उनके हाथ मजबूत करें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-३-१९११

१०४. भारतीय परिषद और गिरमिटिया मजदूर

माननीय गोखले और उनके साथियोंने भारतसे गिरमिटिया मजदूरोंका नेटाल भेजना बन्द करनेके सम्बन्धमें [भारतीय परिषद अर्थात् इंडियन कौंसिलमें] प्रस्ताव रख कर हमारी और सामान्यतः भारतकी (और हम तो समझते हैं उपनिवेशकी भी) सेवा की है। प्रस्तावमें कहा गया है कि दक्षिण आफ्रिकाकी स्वतन्त्र भारतीय आबादीकी शिकायतोंको दूर न करनेके दण्ड-स्वरूप गिरमिटकी प्रथा बन्द कर दी जाये। हम तो चाहते थे कि प्रोफेसर गोखले ऊँचेसे-ऊँचे दृष्टिकोणको अपनाते या अपना सकते और इस आधारपर कि यह प्रथा स्वतः बुरी है और स्वयं गिरमिटिया मजदूरोंको भी इससे कोई लाभ नहीं है इसे पूरी तरहसे बन्द करनेका प्रस्ताव रखते तो अधिक अच्छा होता। प्रस्तावमें एक कमजोरी है जिसे स्वीकार न करना निरर्थक है। अगर यह प्रथा स्वयं उन मजदूरोंके लिए लाभदायक हो जो कि गिरमिटमें बँधना चाहते हैं तो नेटाल और अन्य उपनिवेशोंके स्वतन्त्र भारतीयोंके स्वार्थकी दृष्टिसे उनको उसका लाभ उठानेसे नहीं रोका जाना चाहिए परन्तु अगर यह बुरी है तो उसके कारण स्वतन्त्र भारतीयोंको प्राप्त होनेवाली किसी भी राहतके बावजूद ऐसी कोई स्थिति जारी नहीं रखी जानी चाहिए जो स्वतः अनैतिक हो या अन्य प्रकारसे हानिकर हो।

परन्तु आज तो समझौते और तात्कालिक लाभका जमाना है। इसलिए हमें छोटी-छोटी कृपाओंके लिए भी कृतज्ञ होना पड़ता है। प्रोफेसर गोखलेने यह छोटा-सा

१ यहाँ इंडियन ओपिनियनमें, इसी रिपोर्टसे पूर्ति की गई है।

कदम उठाना इसलिए उचित समझा कि क्योंकि वे जानते हैं सरकार गिरमिटकी प्रथाको निन्दनीय ठहरानेमें शायद उनका साथ न दे। हम लोगोंको जो यही है यह देखना है कि हम किसी अनैतिक समझौतेको स्वीकार न करें। हम सामान्य भिकायतें दूर करानेके लिए आन्दोलन करेंगे एवं हम यह बतायेंगे कि नेटाल भारतके गिरमिटिया मजदूरोंका काम नहीं उठा सकता (यद्यपि यह सन्देहास्पद है) और ऐसा हमें करना भी चाहिए। *लेकिन हमें यह भी स्पष्ट बता देना चाहिए कि हम इस प्रथाको उसके अपने दोषके कारण और स्वयं गिरमिटमें बँधनेवाले मजदूरोंके नैतिक क्षेमके लिए* हानिकर होनेके कारण बन्द कराना चाहते हैं।

सर जेम्स लीज हुलेटने एक पत्र-प्रतिनिधिको बताया है कि उनकी सम्मतिमें भारतमें आन्दोलनका कारण भारतीय व्यापारियोंकी ओरसे किया गया प्रचार है। यह बिलकुल सही है। परन्तु स्थानीय संसदके गत अधिवेशनमें [भारतीयोंको] दी गई तथाकथित राहतसे यह आन्दोलन मर जायेगा यह निष्कर्ष निकालना बिलकुल गलत है। सर जे एल हुलेट और उनके साथी बागान मालिकोंसे हम प्रार्थना करना चाहते हैं कि वे इस प्रश्नको विशुद्ध दक्षिण आफ्रिकी दृष्टिकोणसे देखें। क्या वे यह बात समझ ही नहीं सकते कि उनके स्वार्थ उपनिवेशके भी स्वार्थ हों यह आवश्यक नहीं है और उपनिवेश चाहता है कि गिरमिटिया मजदूरोंका आना तुरन्त और पूर्ण रूपसे बन्द कर दिया जाये? हम नहीं मान सकते कि यदि चीनी और चायके उद्योग न रहेंगे तो उपनिवेशका सर्वनाश हो जायेगा। भारतीयोंने अपनी बाग-बगीचेकी पैदावारसे उपनिवेशको लाभ पहुँचाया है। स्वतन्त्र भारतीय आबादी इसे बरकरार रखेगी। परन्तु यह गिरमिटकी प्रथा जितनी जल्दी समाप्त कर दी जाये उतना ही अच्छा है। हम तो चाहते हैं कि इस प्रथाको भारत सरकारके बन्द करनेकी अपेक्षा स्वयं उपनिवेश ही अपनी तरफसे बन्द कर दे। इसके साथ ही यह आवश्यक है कि भारतमें इस परम अभीष्ट परिणामकी प्राप्त करनेका कोई प्रयत्न उठा न रखा जाये फिर वह चाहे दण्डके रूपमें हो चाहे अन्य किसी रूपमें। भारतसे नेटालको इस कृत्रिम प्रवासके पूर्णतः बन्द होते ही दक्षिण आफ्रिकाकी बहुत-सी कठिनाइयाँ बहुत-कुछ अपने-आप हल हो जायेंगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-३-१९११

१०५ जोहानिसबर्ग नगरपालिका और रंगदार लोग

जोहानिसबर्गकी नगरपालिका रंग-विरोधी अथवा एशियाई विरोधी कानून छलपूर्ण तरीकेसे पास कर लेना चाहती है। एक स्थानीय समाचारपत्रके उपेक्षित कोनेमें यह रोष फैलानेवाला नोटिस छपा है कि नगरपालिका स्थानीय संसदके आगामी अधिवेशनमें एक खानगी विधेयक पेश करना चाहती है। इस विधेयकका उद्देश्य अन्य बातोंके साथ उन नगर-सम्बन्धी विनियमोंको हाथमें लेना है जो भूतपूर्व गणतन्त्रीय सरकारने युद्धकी घोषणा होनेसे ठीक पहले पास किये थे। इन विनियमोंके अनुसार रंगदार लोगोंका पैदल-पटरियोंपर चलना या सड़कोंमें रहना गैर-कानूनी है। इन्हीं विनियमोंके अनुसार प्रिटोरियाकी नगरपालिकाने अपनी सीमामें रहनेवाले एशियाइयोंके अतिरिक्त तमाम रंगदार निवासियोंको हिदायत दी है कि वे शहर छोड़कर चले जायें। इसका वहाँके रंगदार लोगोंने हालमें ही बड़ा जोरदार विरोध किया था। पाठकोंको यह भी याद होगा कि प्रिटोरियाकी नगरपालिका इन विनियमोंको अपने उपयोगके लिए बनाये रखना चाहती थी इसलिए वह सरकारसे बहुत दिनों तक झगड़ती रही थी। अब जोहानिसबर्गकी नगरपालिका प्रिटोरिया नगरपालिकाका अनुकरण करना चाहती है। इसलिए श्री कामरूडियाने सरकारको नीचे लिखा पत्र भेजा है और टाउन क्लार्कको अपनी आपत्ति लिखित दी है

> मेरे संघने अखबारोंमें छपा एक नोटिस देखा है कि संसदके आगामी अधिवेशनमें जोहानिसबर्गकी नगरपालिकाकी परिषद एक खानगी विधेयक पेश करेगी। इस विधेयकमें अन्य बातोंके साथ-साथ १८ सितम्बर १८९९ के नगर सम्बन्धी विनियमोंकी धारा १२५९ को लागू करनेकी व्यवस्था है। मेरे संघ की विनम्र रायमें नगरपालिकामें इन विनियमोंको लागू करनेका उद्देश्य यह दिखाई देता है कि इस कानूनकी उन धाराओंको काममें लाया जाये जिनमें रंगदार लोगोंकी स्वतन्त्रता सीमित होती है। अगर ऐसा है तो यह अप्रत्यक्ष रूपसे यहाँ बहुत आपत्तिजनक ढंगका रंग-भेदकारी कानून जारी करनेका प्रयत्न है। इसलिए मेरा संघ आदरपूर्वक भरोसा करता है कि सरकार इस विधेयकका बहाँतक उपर्युक्त नगर-विनियमोंको लागू करनेका सम्बन्ध है विरोध करेगी।
>
> उसकी निवासियोंसे सम्बन्धित धारा इस प्रकार है
>
> रंगदार लोग किसी शहर या गाँवमें उन मकानोंमें न रह सकेंगे जो सार्वजनिक सड़कोंपर खुलते हैं। परन्तु हर गृहस्थ अथवा ऐसे नौकरका मालिक सेवाके लिए आवश्यक नौकरोंको अपने मकानके पीछेके अहातेमें आश्रित रख सकता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-३-१९१

१०६. भारतीय परिषद और गिरमिटिया भारतीय

कलकत्ताकी परिषद (इंडियन लेजिस्लेटिव कौंसिल) में माननीय प्रो॰ गोखले और अन्य भारतीय सदस्योंने प्रस्ताव पास कराया है कि गिरमिटियोंका आना बन्द होना चाहिए। हर भारतीयको उसका महत्त्व समझना चाहिए। इस प्रस्तावका गम्भीर प्रभाव होनेकी सम्भावना है। वह कितना गम्भीर हो सकता है यह तो यहाँके हमारे कामपर निर्भर है।

प्रस्तावका अर्थ यह है कि यदि ट्रान्सवाल अथवा नेटालमें स्वतन्त्र भारतीयोंको न्याय प्राप्त न हो तो गिरमिटिया भारतीयोंका प्रवास रोक दिया जाये। सर अन्स हलेटका कहना है कि हमें न्याय प्राप्त हो चुका है। वे ऐसा मानते हैं कि पिछली संसद (पार्लियामेंट)में कुछ संशोधन स्वीकार किये जा चुके हैं इसलिए अब कुछ देना नहीं रहा। वे यह भी कहते हैं कि अब भारत-सरकार कोई कदम न उठायगी। वेद धर्म-सभा सरकारके कियेका आभार मानती है किन्तु हम सारे भारतीयोंको सावधान करते हैं कि जबतक निम्नलिखित बातोंके बारेमें खुलासा नहीं कर दिया जाता तबतक यह नहीं माना जा सकता कि गैर-गिरमिटिया भारतीयोंको न्याय मिल गया है।

(१) तीन पौंडी कर पुरुषों और स्त्रियों — दोनोंपरसे हटाना चाहिए।

(२) सभी परवानोंके बारेमें सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलका अधिकार मिलना चाहिए।

(३) एक पौंडी व्यक्ति-कर खत्म किया जाना चाहिए।

(४) शिक्षाकी पूरी सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

(५) प्रवासी कानून (इमीग्रेशन लॉ) के अमलमें जो परेशानियाँ हैं वे दूर की जानी चाहिए।

(६) अनुमतिपत्र कानून-सम्बन्धी परेशानियाँ हटाई जानी चाहिए।

इतना तो नेटालमें होना जरूरी है। अब संघ बन गया है इसलिए सारे दक्षिण आफ्रिकाकी जाँच-पड़ताल करना आवश्यक है। इस तरह ट्रान्सवालकी तकलीफ मिटनी चाहिए और वह केवल संघर्षके सम्बन्धमें ही नहीं बल्कि जो अन्य अधिकार नहीं मिलते उनके सम्बन्धमें भी। केपमें परवानों और प्रवासका कष्ट है वह दूर होना चाहिए। जब समझौतेकी बातचीत होगी तब ये सारे सवाल उठ सकते हैं और इन्हें उठाया ही जाना चाहिए। इसलिए भारतीय समाजका एक कर्तव्य तो सरकारको साफ-साफ यह बताना है कि पिछली बैठकमें जो संशोधन किये गये हैं वे निरर्थक हैं। उनसे भारतीय समाजको कोई भी लाभ नहीं हुआ।

भारतीय समाजका एक दूसरा बड़ा कर्तव्य भी है। क्या हम सीधा करना चाहते हैं? प्रो॰ गोखलेने यह प्रश्न ठीक ही उठाया है। यदि यह प्रश्न दूसरी तरह उठाया जाता तो उसका भारत सरकारके ऊपर असर नहीं पड़ सकता था। किन्तु हमारी

स्थिति दूसरी है। हम गिरमिटियोंके हितको देखकर अपने हक नहीं खरीद सकते। हमें तो स्पष्ट कहना चाहिए कि सरकारको गिरमिटियोंका प्रवास बिलकुल बन्द कर देना चाहिए, और सो भी गिरमिटियोंके हितकी दृष्टिसे क्योंकि गिरमिट प्रथा मूलतः ही बुरी है और गिरमिटसे गिरमिटियोंको लाभ नहीं है। भारतसे गिरमिटियोंके आनेसे भारतको कोई लाभ नहीं है। इन सब बातोंपर काफी सोच-विचार किया जाना चाहिए।

यह समझ लेना चाहिए कि ऐसा[1] करनेमें ही भारतका हित है। जबतक गिरमिटिया नेटालमें आते हैं तबतक स्वतन्त्र भारतीय सुखसे नहीं बैठेंगे। फिर यह भी याद रखना चाहिए कि संघ-सरकार सम्भवतः गिरमिटियोंका प्रवास जारी न रहने दे। श्री मेरीमैन[2] उसके बिलकुल खिलाफ हैं। इसलिए हर तरहसे विचार करनेपर गिरमिटियोंका प्रवास बन्द करना ही अच्छा है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-१-१९११

१०७. प्राप्त अवसर

कलकत्ताकी कार्रवाई और ब्रिटिश संसदमें पूछे गये प्रश्नोंसे प्रत्येक भारतीय ट्रान्सवालकी लड़ाईका महत्त्व आँक सकता है। ट्रान्सवालकी लड़ाईकी जड़ें दिनोंदिन गहरी होती जाती हैं। इसकी जड़ें ऐसी जम जायेंगी कि कोई उनको उखाड़ न सकेगा। ऐसी लड़ाईमें देर लगती है इससे किसी प्रकारकी घबराहट न होनी चाहिए। सत्याग्रहीको प्रसन्नचित्त रहना चाहिए। भक्त सुधन्वा सत्यकी खातिर जब तेलके खौलते कड़ाहेमें डाले गये तब वे प्रसन्नमुख उसमें कूद पड़े थे। ऐसी ही मनोदशा प्रत्येक सत्याग्रहीकी होनी चाहिए। इसका यथार्थ उदाहरण हमें श्री पी० के० नायडूके रूपमें मिलता है।

इस लड़ाईका काले लोगोंपर गहरा असर होने लगा है। डॉक्टर अब्दुर्रहमानने इस विषयमें अपने अखबारमें बहुत लिखा है और प्रत्येक काले व्यक्तिको भारतीयोंका अनुसरण करनेकी सलाह दी है। काले लोगोंने पोचेफस्ट्रममें प्रस्ताव भी पास किया है कि वे सरकारके कानूनोंको नहीं मानेंगे और सत्याग्रह करेंगे।

ब्रिटिश लोकसभामें सरकारने एक प्रश्नके उत्तरमें बताया है कि अभी ट्रान्सवाल सरकारसे उसकी बातचीत चल रही है।

इस समय भारतीय समाजको बहुत विचार करके और लगानेकी जरूरत है। चीनी बहुत सचेत हो चुके हैं किन्तु भारतीय बमुश्किल दिखाई देते हैं। तमिल भारतीय इस आलोचनाके अपवाद हैं। हम गुजराती हिन्दुओं तथा गुजराती मुसलमानोंसे निवेदन

१. गिरमिटियोंका आना तुरन्त बन्द करनेमें।
२. जॉन जेवियर मेरीमैन (१८४१-१९२६), केपके प्रधान मन्त्री।

१०९. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सत्याग्रह-कोष

भारतीय लोग प्राय: पूछते हैं कि भारतसे रुपयेकी जो बड़ी सहायता मिली है उसकी व्यवस्था कैसी-क्या की जा रही है। प्रत्येक भारतीयको यह प्रश्न करनेका अधिकार है। इसलिए इसका स्पष्टीकरण भी किया जाना चाहिए। यह रुपया श्री गांधीके अधिकारमें है और केवल सत्याग्रहकी लड़ाईके लिए काममें लाया जायेगा। इसके लिए अनाक्रामक प्रतिरोध कोषके नामसे अलग खाता खोला गया है और उसमें से श्री गांधीके हस्ताक्षरोंसे रुपया निकलता है। इस रुपयेमें एक निश्चित रकम अर्थात् रंगूनसे मिली सारी रकम और बम्बईसे मिली कुछ रकम केवल गरीब सत्याग्रही कुटुम्बोंका निर्वाह करनेके लिए और गरीब सत्याग्रहियोंके निर्वाहमें सहायता देनेके लिए रख दी गई है। शेष रुपया सत्याग्रहकी लड़ाईको चलाने और जारी रखनेमें खर्च किया जा रहा है। अर्थात् यह रुपया ब्रिटिश भारतीय संघके दफ्तरका खर्च देनेमें, इंग्लैंडके दफ्तरका खर्च देनेमें, भारतमें होनेवाले खर्चको पूरा करनेमें और सत्याग्रहकी लड़ाईके सम्बन्धमें लिये गये कर्जको चुकानेमें काममें लाया गया है। इन सारे खर्चोंके सम्बन्धमें श्री काछलिया और अन्य सत्याग्रहियोंसे परामर्श किया जाता है और हिसाब प्रो॰ गोखलेको और साथ-साथ कोषके मन्त्री श्री पेटिटको भेजा जाता है। इस कोषको खर्च करनेके सम्बन्धमें प्रो॰ गोखले और श्री पेटिटके जो पत्र श्री गांधीके नाम आये हैं उनमें यह बात श्री गांधीकी अपनी मर्जीपर छोड़ी गई है। इन पत्रोंको अंग्रेजी विभागमें यथावश्यक प्रकाशित किया गया है।[1] इस कोषका कोई भी दूसरा उपयोग करनेके लिए दानी महानुभावोंकी स्वीकृति लेनी पड़ेगी।

जर्मिस्टनकी कहानी

सरकारने जर्मिस्टनके भारतीयोंको अपने शिकंजेमें कस लिया है। मैं चाहता हूँ कि वे लोग मजबूत रहें और उसमें से निकल आयें। कुछ नासमझ लोग उनको बहका रहे हैं। उनको मैं परामर्श देता हूँ कि उन्हें चुप रहना चाहिए। वे अच्छा न कर सकें तो बुरा भी न करें। उनको जेलमें ले जानेके बाद मजिस्ट्रेटने वापस बुलाया और आदेश दिया कि उनके जुर्मानोंकी वसूलीके लिए उनका माल जब्त कर लिया जाये। इसके फलस्वरूप श्री मोरेजका ३ पौंडका घर और श्री मूसासामीका २५ पौंडका घर दो-दो पौंड जुर्मानेमें जब्त किये गये हैं। इसके बावजूद मुझे उम्मीद है कि जर्मिस्टनके भारतीय जुर्माना हरगिज नहीं देंगे और माल जब्त हो जाने देंगे। किसी भी भारतीयको फुटकर मालकी बोली न लगानी चाहिए। घर बोली लगाकर ले लेना चाहिए। यह सुझाव दिया गया है कि इस सम्बन्धमें क्षति-पूर्ति समिति करे। यह सुझाव नासमझीसे दिया

१. गोखलेके १३-२-१९११ के पत्र और रिचके ५-१-१९११ के पत्रके केवल उद्धृत अंश ही छापे गये थे। देखिए इंडियन ओपिनियन ५-३-१९११।

गया लगता है। क्षति तो सभी सत्याग्रहियोंको सहनी है। जिस सत्याग्रहीपर कैदके बजाय जुर्माना किया जाये उसका जुर्माना समिति दे दे तो यह माना ही न जायेगा कि जिसपर जुर्माना किया गया है उसने सत्याग्रह किया है। जुर्माना होनेसे जिसका माल चला जाये और जो भिखारी हो जाये उस व्यक्तिका भरण-पोषण समिति कर सकती है। समिति इससे ज्यादा कुछ कर ही नहीं सकती। बहुत-से भारतीय इस लड़ाईमें और इस लड़ाईके निमित्त भिखारी बन गये हैं। उनकी सहायता किसने की है? सहायता की ही नहीं जा सकती। जिनपर जुर्माने हुए हैं उनको गर्व होना चाहिए कि वे अब भिखारी होकर अच्छी तरहसे लड़ाई लड़ सकेंगे। यह स्मरण रखना है कि इसमें मकान जब्त करानेका प्रश्न नहीं उठता।

फिर कुछ लोग कहते हैं कि अदालतने अनुचित निर्णय दिया है, इसलिए अपील की जानी चाहिए। ऐसी अपीलें करनेके दिन अब चले गये हैं। लोग अपीलें करनेसे कुछ बचनेवाले नहीं हैं। परन्तु यदि वे स्वयं साहसी होंगे तो उनके मनमें मालकी नीलामीसे अथवा ऐसी किसी अन्य बातसे डर पैदा नहीं हो सकेगा। यह अवसर अन्तिम है। इसमें तो पूरे जोरदार व्यक्ति ही आ सकते हैं। ऐसा समय नहीं है कि उनके अतिरिक्त जो अर्ध-सत्याग्रही हैं वे टिक सकें। बलवान व्यक्ति ही चारों ओरके प्रहारोंको झेल सकता है। श्री रुस्तमजी और श्री काछलिया सब-कुछ खो बैठे हैं। उनको कौन पैसा देगा?

मेरी मान्यता है कि भारतीयोंने इस सम्बन्धमें जो अपील भेजी है वह केवल समय लेनेके लिए ही भेजी है। इसी शनिवारको मालकी नीलामीकी सूचना गजट में है, परन्तु अपीलकी सूचना जानेसे मालकी नीलामी रुक जायेगी। लेकिन मुझे उम्मीद नहीं है कि अन्तमें भारतीय भाई अपना माल नीलाम हो जाने देंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-१-१९१

११० पत्र मौलवी अहमद मुख्तारको

डर्बन
शुक्रवार, मार्च ११ १९१

मौलवी अहमद मुख्तार साहब

आपका पत्र मिला। फीनिक्सका जो कर्ज मुझपर था वह अधिकतर सेवाके सम्बन्धमें हुआ था। सत्याग्रह कोषमेंसे वह कर्ज अदा किया जा सकता है, क्योंकि इंडियन ओपिनियन केवल जातिकी सेवाके लिए और लड़ाईकी खातिर चलाया जाता है। उसमें काम करनेवाले ज्यादातर लोग कौमकी खातिर गरीबीमें रहे हैं। फीनिक्स किया गया है तो वह भी कौमकी ही खातिर किया गया है और उसमें जो कुछ किया जाता है वह केवल कौमकी ही खातिर किया जाता है। इसलिए मैं फीनिक्सको सार्वजनिक संस्था मानता हूँ। फिर जो कर्ज सत्याग्रह कारमें से अदा किया गया है और

किया जा रहा है वही कर्ज अदा करनेके लिए कौमने ट्रान्सवालमें खासतौरसे आम चन्दा शुरू किया था परन्तु कौम उसको इकट्ठा नहीं कर सकी। जो खर्च हुआ है और होता है उसका हिसाब माननीय गोखलेको मारफत भारत भेजा जाता है।

कदाचित् आप यह नहीं जानते होंगे कि मेरी सारी कमाई[1] फीनिक्समें लगाई जा चुकी है।

मुझे यह देखकर दुःख होता है कि आपने मेरे साथ भेंटका जो विवरण प्रकाशित किया है[2] उससे मेरे कथनका विपरीत अर्थ ही अधिक प्रकट होता है।

आपको यह पत्र प्रकाशित करनेकी अनुमति है।

मोहनदास करमचन्द गांधीके सलाम

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-४-१९११

१११. गिरमिटिया भारतीयोंपर श्री टैथम

गिरमिटिया मजदूरोंका आना बन्द होना चाहिए, इस प्रश्नपर नेटालके स्वार्थी बागान-मालिकोंको छोड़कर अन्य लोगोंमें आश्चर्यजनक एकमत दिखाई देता है। इस प्रश्नपर हम श्री टैथमके भाषणके[3] कुछ अंश दे रहे हैं। हमें श्री टैथमकी दलीलोंसे सरोकार नहीं है उनमें से कुछ सदोष हैं। हम उनके इस विचारसे सहमत नहीं हैं कि स्वर्वालिक उद्योगवाद राष्ट्रको महानतर बनाता है और गोरोंका "सुसंस्कारी प्रभाव मानवके सुखकी वृद्धि करता है।" इस्लामके प्रचारके बारेमें उनके आक्षेप उनके पूर्ण अज्ञानको प्रकट करते हैं। परन्तु हम कह चुके हैं कि उनके इन विचारोंसे हमें कोई मतलब नहीं है। किन्तु हम उनकी इस बातसे हृदयसे सहमत हैं कि "इन (चाय और चीनीके) उद्योगोंका न चलना बेहतर होगा बनिस्बत इसके कि वे एक इस तरहके श्रमकी सहायतासे चलाये जायें जिससे देश बरबाद हो जाये।" इसके अलावा हम श्री टैथमके इस कथनसे भी सहमत हैं कि "एशियाई श्रमके अभावमें इन उद्योगोंका कुछ भी बिगड़नेवाला नहीं है।" हमारी इच्छा थी कि श्री टैथम जरा ऊपर उठकर ऊँची भूमिकासे इस गिरमिटिया प्रथाकी निन्दा उसके गुणावगुण और आन्तरिक दोषोंके आधार पर करते। और, जो हो इसमें कोई शक नहीं कि गुलाम मजदूरोंको दक्षिण आफ्रिकामें लाना एक दिन बन्द होगा ही। और इसके साथ ही एशियाइयोंका यह सनातन प्रश्न भी अदृश्य हो जायेगा।

१. यह उपलब्ध नहीं है।

२. देखिए "एस० एस० बी० पैंजीलो" पृष्ठ ११५-१७।

३. यह मैरित्सबर्गकी संसदीय वाद-विवाद समिति [पार्लियामेंटरी डिबेटिंग सोसायटी] की एक बैठकमें २-३-१९११ को दिया गया था।

कुछ भारतीयोंके मनमें इस भयने घर कर लिया है कि इस मजदूरोंका आना बन्द हो जानेसे वहाँ बसे हुए भारतीयोंकी स्थिति कहीं ज्यादा खराब न हो जाये। हम अपने उन पाठकोंको जिनके मनमें ऐसा भय है यह बता देना चाहते हैं कि जिस प्रथाको वे पसन्द नहीं करते उसका समर्थन करके वे अपनी हालत नहीं सुधार सकेंगे। हम यहाँ किसीकी दयापर नहीं बल्कि अपने अधिकार और कर्तव्यके बलपर रहना चाहते हैं।

नेटाल विधानसभाके कुछ *सामान्य-सात्विक सदस्योंने* बेशक कहा है कि वहाँतक स्त्रियोंका सम्बन्ध है, उनसे तीन पौंडका कर लेना अन्यायपूर्ण है। परन्तु इससे हमें यह मान लेनेकी भूल नहीं करनी चाहिए कि वे सम्पूर्ण भारतीय प्रश्नपर विचारके ढंगमें कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहते हैं। उन्होंने तो बार-बार घोषित किया है कि उन्हें हमारे श्रमकी जरूरत है परन्तु वे यह नहीं चाहते कि हम व्यापार या उद्योगकी अन्य शाखाओंमें उनसे प्रतिस्पर्धा करें। वे हमें नागरिक अथवा राजनीतिक समानता नहीं देना चाहते। जैसा कि हम अक्सर कहते रहे हैं नागरिक अथवा राजनीतिक समानता दी नहीं जाती। हमें ऐसी विशेष स्थिति उत्पन्न करनी है जिसमें हम उसे ले सकें। साधारण बुद्धिके लोगोंके निकट भी यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि जबतक गुलाम मजदूर भारतसे उपनिवेशमें चले जाते हैं तबतक ऐसी स्थिति उत्पन्न होना असम्भव है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १२-१-१९१

११२ गिरमिटिया भारतीय

भारतमें गिरमिटिया भारतीयोंके प्रवासको बन्द करनेका जो आन्दोलन हो रहा है उसके फलस्वरूप यहाँके समाचारपत्रोंमें बड़ी चर्चा चल रही है। मैरित्सबर्गके वकील श्री टैथमने भाषण दिया है। उसमें उन्होंने कहा है कि संघमें भारतीय मजदूरोंका आना बन्द किया ही जाना चाहिए। श्री टैथम कहते हैं कि पश्चिमकी सभ्यता हमारी [भारतीय] सभ्यतासे अच्छी है उसमें हमारी सभ्यताका मिश्रण होना निश्चय ही ठीक नहीं है। उक्त महानुभाव यह भी कहते हैं कि हम उनके सम्पर्कमें आने योग्य नहीं हैं। अन्तमें उन्होंने मुसलमानी धर्मके विषयमें अनुचित टीका करते हुए कहा है कि भारतीयोंका दक्षिण आफ्रिकामें न रहना ही ठीक होगा।

इन तर्कोंको तो हम एक तरफ ही रखें। उनको जाब देना बेकार है। किन्तु वे गिरमिट बन्द करना चाहते हैं यह हमें स्वीकार करना है। प्रत्येक भारतीयको यह समझ लेना चाहिए कि गिरमिटिया भारतीयोंके आनेसे न तो स्वतन्त्र भारतीयोंको सुख है और न गिरमिटियोंको। यह सोचना कि गिरमिटियोंके साथ व्यापार चलता है और उनके लिए जो अनाज आता है उसपर थोड़ा बहुत नफा मिल जाता है, अदूरदर्शिता है। गिरमिटियोंके साथ हमारा बहुत व्यापार नहीं है, हो भी नहीं सकता।

११५. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

रविवार [मार्च ११ १९१]

नेटालके सत्याग्रही

नेटालके सत्याग्रही फिर बिना गिरफ्तार हुए ट्रान्सवालमें दाखिल हो गये हैं। फोक्सरस्ट पहुँचनेपर एक अधिकारी उनके पास आया और उसने उन्हें बताया कि उनको गिरफ्तार करनेकी आज्ञा नहीं दी गई है। इससे सबको निराशा हुई। उन्हें जोहानिसबर्गके टिकट लेने पड़े और वे आगे बढ़े।

श्री काछलिया, श्री नायडू, श्री इमिक अर्नेस्ट और श्री डेविड मेरी सत्याग्रहियोंमें शामिल होने और गिरफ्तार होनेके लिए चार्ल्सटाउन गये थे। वहाँ श्री सालेह इब्राहीम पटेल भी उनके साथ आ गये। चार्ल्सटाउन, फोक्सरस्ट और स्टैंडर्टनमें स्थानीय भारतीय रेलगाड़ीपर उनसे मिलनेके लिए आये थे।

जोहानिसबर्ग पहुँचते ही इमाम साहब श्री अब्दुल कादिर बावजीर बहुत सबेरे उनको लिवाने आये। उन्होंने वहाँ सबको भोजन कराया। फिर भिन्न-भिन्न जातियोंके भारतीयोंने अपनी-अपनी जातिके भारतीयोंको अपने-अपने घरोंमें ठहराया। सभी सत्याग्रहियोंको एक ही स्थानपर रखनेका प्रबन्ध किया जा रहा है।

अभीतक तो रेल-भाड़ेमें बड़ा खर्च हुआ है। आगे क्या होता है यह देखना है। सब लोग सोमवारसे फेरी लगाना आरम्भ कर देंगे। खयाल है कि वे फेरी लगाकर अपना खर्च निकालेंगे और फेरी लगाते-लगाते गिरफ्तार होंगे।

हिन्द स्वराज्य पर रोक

भारतसे तार द्वारा खबर मिली है कि भारतमें श्री गांधीकी लिखी 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तकको बेचनेपर रोक लगा दी गई है। यह एकदम आश्चर्यकी बात तो नहीं है। उस पुस्तकके कुछ विचार ब्रिटिश सत्ताके विरुद्ध पड़ते हैं। सरकारको यह डर लगा जान पड़ता है कि इससे गर्म दलको जोर मिलेगा और बम आदि अधिक काममें लाये जायेंगे। श्री गांधी उसका अंग्रेजी अनुवाद[1] प्रकाशित कराना चाहते हैं। उद्देश्य यह है कि गोरे उसे बड़ी संख्यामें पढ़ें। इसके लिए रुपयेकी आवश्यकता होगी। यह पुस्तक लागत मूल्यपर बेची जायगी। जिनकी इच्छा इस काममें सहायता करनेकी हो वे श्री गांधीको या फीनिक्सके व्यवस्थापकको पत्र लिखें। उस अनुवादको *इंडियन ओपिनियन* में प्रकाशित नहीं किया जा सकता। इसलिए उसको अलग छपवानेमें कुछ अधिक समय लगेगा, परन्तु प्रत्येक प्रतिका लागत मूल्य छः पेनीसे अधिक नहीं हो सकता। प्रत्येक भारतीयको चाहिए कि वह इस अनुष्ठानमें सहायता पहुँचाये।

१. देखिए "हिन्द स्वराज्यके अनुवादकी भूमिका" पृष्ठ २ १–७५।

सरकारके इस कदमसे ट्रान्सवालकी लड़ाईपर कुछ असर होगा या नहीं यह विचारणीय है। कुछ-न-कुछ असर हुए बिना तो न रहेगा। ट्रान्सवालकी लड़ाई भारतम जागृति सूचित करती है। ट्रान्सवाल और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंमें जो उत्साह उत्प हुआ है वह नष्ट होनेवाला नहीं है। सरकार अपनी नासमझीके कारण अत्याचा करेगी ही। श्री गांधीकी लड़ाई और स्वराज्य विषयक पुस्तकके सम्बन्ध परस्पर सम्ब हुए बिना नहीं रह सकते। इसके सिवा जो लोग ट्रान्सवालकी लड़ाईमें सत्याग्र हैं वे सभी जगह सत्याग्रही होंगे। इस प्रकार स्वराज्य सम्बन्धी पुस्तक ट्रान्सवाल संघर्षको या तो धक्कित वैसी या उसे अधिक बलवान बनायेगी। जो डरपोक होंगे वे डर जायें और कहेंगे कि उनका स्वराज्यसे कोई सम्बन्ध नहीं है वे बरबाद होना नहीं चाहते जो हिम्मतवर होंगे जो पूरे सत्याग्रही होंगे वे और भी अधिक जोरसे लड़ेंगे अ जूझेंगे। वे समझेंगे कि ट्रान्सवालकी लड़ाई वास्तवमें भारतके स्वराज्यकी चाबी है इसमें श्री गांधी और सभी भारतीय कसौटीपर चढ़ेंगे।

सामान्यत सोचें तो उन लोगोंके लिए, जो ट्रान्सवालमें लड़ रहे हैं, डरनेकी को बात नहीं है। अधिकसे-अधिक इसका नतीजा यह निकल सकता है कि ट्रान्सवाल लड़ाई स्वराज्य-सम्बन्धी पुस्तकके उत्पन्न स्थितिके कारण लम्बी खिंच जाये। इसके सि इसका कोई दूसरा नतीजा नहीं हो सकता यह सभी भारतीय समझ सकते हैं। श *श्री गांधीके लिए इसके दूसरे नतीजे भी हो सकते हैं जिन्हें उनको भुगतना ही होग* देशकी सेवा दूसरी तरह या किसी दूसरी शर्तपर नहीं की जा सकती।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-३-१९११

११६ पत्र एम० पी० फैन्सीको

मंगलवार, मार्च १४ १९

सेठ श्री एम पी फैन्सी

मौलवी अहमद मुख्तयार साहबने मेरे साथ हुई अपनी भेंटका विवरण प्रकाशि किया है।[1] उसके बारेमें आपने प्रश्न किया है और यह भी कहा है कि उसपर भारतीयोंमें चर्चा हो रही है। अब आपको लगता है कि भेंटका वह विवरण ठ है या नहीं यह मुझे स्पष्ट कर देना चाहिए।

ऐसा करनेका मेरा कोई इरादा नहीं था। भारतीय समाज मुझे जानता है यदि अबतक न जानता हो तो उसे अब अपना परिचय देना मेरे लिए सम्भव है। मैंने कोई बात कही होगी या नहीं यह भारतीय तुरन्त जान सकते हैं। फि भी मैं आपका अनुरोध स्वीकार करके निम्नलिखित उत्तर भेज रहा हूँ

१ यह उपलब्ध नहीं है।

हम उनके लिए मास नहीं भेजा सकते। यदि यह सब सम्भव हो तो भी यह प्रश्न विचारणीय नहीं है। यह तो कोई भी भारतीय नहीं कह सकता कि भारतीय गिर मिटिये सुखी हैं। एक भी स्वतन्त्र भारतीय उनकी-जैसी स्थितिमें रहकर नौकरी करनेके लिए तैयार नहीं होगा। उनपर जो अत्याचार होता है, वह कैदियोंके साथ भी नहीं होता। उन्हें जितना काम करना पड़ता है कैदियोंको भी उतना नहीं करना पड़ता। गुलामी भोगनेके बाद वे जब छूटते हैं तब भी बरसों तक उनमें गुलामीकी बू बनी रहती है। एक भी भारतीय ऐसी दशामें रहे यह कामना की ही नहीं जा सकती।

यदि गिरमिटिया भारतीयोंका आना बन्द हो जाये तो इस समय दक्षिण आफ्रिकामें जो भारतीय हैं उनकी दशामें तुरन्त सुधार हो सकता है। हम इस समय जिस स्थितिमें हैं उसका कारण [गोरोंके मनमें] गिरमिटिया भारतीयोंका भय है। जब चीनी गिरमिटिये ट्रान्सवालमें आये तब केपके चीनियोंपर सख्ती होने लगी और सख्त कानून बनाये गये। गिरमिटिया भारतीयोंके दक्षिण आफ्रिकामें होनेसे गोरोंको यह भय बना रहता है कि भारतीय समाज बहुत बढ़ जायेगा। इसे दूर करनेका एक ही रास्ता है। इस तरह प्रत्येक दृष्टिसे गिरमिटिया भारतीयोंका आना बन्द होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १२-१-१९११

११३. भारतीय व्यापार-मण्डल

इस संस्थाने जो काम अभी हाथमें अपने जिम्मे लिया है वह बहुत सराहनीय है। मेसर्स ब्रूम मीडल-पॉइंट सिगरेट और लॉयन मार्का दियासलाईका व्यापार करनेवाली पेढ़ियाँ भारतीयोंके साथ कतई व्यापार नहीं करतीं। इसलिए भारतीय *व्यापारियोंको इन तीनों चीजोंके लिए गोरोंपर आश्रित रहना पड़ता है और उनको* मुँहमाँगा मूल्य चुकाना पड़ता है।

इतना तो स्पष्ट है कि यदि हममें दम हो तो उक्त तीनों पेढ़ियाँ इस प्रकार भारतीयोंकी उपेक्षा नहीं कर सकतीं। मनुष्यको व्यापारमें भी अपना नाम और मरतबा कायम रखना जरूरी होता है। हम अनेक बार ऐसा करना भूल जाते हैं और जहाँ दो पैसे मिलते हैं वहाँ अपनी मान-प्रतिष्ठाकी परवाह नहीं करते। अब डर्बनका भारतीय व्यापार-मण्डल इस सब स्थितिको बदलना चाहता है। उसने मेसर्स ब्रूमका व्यापार करनेवाली पेढ़ी द्वारा किये गये अपमान और साथ ही आर्थिक क्षतिसे बचनेका विचार किया है। उसका तरीका यह होगा। भारतीयोंकी जरूरत-भरका पूरा ब्रूम अन्य ब्रूम-विक्रेता पेढ़ीसे लिया जाये और उसमें ब्रूमको खरीदनेके लिए एक कम्पनी खोली जाये जिसकी जिम्मेदारी सीमित हो। यह कम्पनी फुटकर व्यापारियोंको ब्रूम बेचा करेगी। सब फुटकर व्यापारी मेसर्स कम्पनीका ब्रूम न खरीदकर केवल इसी कम्पनीसे ब्रूम लेनेके लिए बाध्य होंगे।

इस समय इतना उत्साह दीख पड़ रहा है कि कम्पनीके लगभग १५ पौंडके हिस्से बिक चुके हैं और फुटकर व्यापारियोंने नेसल्स कम्पनीसे दूध न लेना स्वीकार कर लिया है।

यह एक बहुत बड़ा कदम है। अगर यह सफल हो गया तो नेसल्स कम्पनी समझ लेगी कि भारतीयोंका तिरस्कार करनेमें कोई लाभ नहीं है। और भारतीय भी यह जान जायेंगे कि वे अपने बल-बूतेपर जूझ सकते हैं।

सफलता प्राप्त करनेकी शर्तें नीचे लिखे अनुसार हैं

१ भारतीयोंमें इस प्रकारका काम करनेका उत्साह और सामर्थ्य होना चाहिए।
२ मुखिया लोगोंमें कमसे-कम इस व्यापारके सम्बन्धमें ईमानदारी अवश्य होनी चाहिए। उसका कोई भी सदस्य दूसरोंका नफा हड़प जाये और या कम्पनी अपनी पूँजी पर बड़ा मुनाफा लेना चाहे तो काम न चलेगा।
३ भारतीय व्यापारियोंमें एकता होनी चाहिए।
४ छोटे व्यापारियोंको उदारतासे काम लेना होगा।
५ और सब भारतीयोंमें स्वाभिमानकी तीव्र भावना होनी चाहिए।

यदि इस काममें सफलता मिली तो इसी प्रकारके अन्य काम किये जा सकेंगे। हम भारतीय व्यापार-मण्डल और उसके पदाधिकारियोंको इस कदमके लिए बधाई देते हैं और इसमें सफलताकी कामना करते हैं। परन्तु सफलता तो उसके पदाधिकारियोंके कामपर निर्भर होगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १२-३-१९१

११४ जोसेफ रायप्पन फेरीवाले

बैरिस्टर श्री जोसफ रायप्पनका चित्र हम पहले दे चुके हैं अब फेरीवाले श्री जोसेफ रायप्पनका चित्र दिया जा रहा है। श्री रायप्पन अच्छा काम कर रहे हैं। इसलिए हमें पूरा विश्वास है कि इस बारके चित्रको सभी पाठक बहुत पसन्द करेंगे। दुःख और श्रम उठानेवालोंसे भारतका उद्धार होगा। वकील-बैरिस्टर तो उसे बेड़ी ही पहनायेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १२-३-१९१

११५ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

रविवार [मार्च ११ १९१]

नेटालके सत्याग्रही

नेटालके सत्याग्रही फिर बिना गिरफ्तार हुए ट्रान्सवालमें दाखिल हो गये हैं। फोक्सरस्ट पहुँचनेपर एक अधिकारी उनके पास आया और उसने उन्हें बताया कि उनको गिरफ्तार करनेकी आज्ञा नहीं दी गई है। इससे सबको निराशा हुई। उन्हें जोहानिसबर्गके टिकट लेने पड़े और वे आगे बढ़े।

श्री कालूजिया श्री बावा श्री डेविड अर्नेस्ट और श्री डेविड मेरी सत्याग्रहियोंमें शामिल होने और गिरफ्तार होनेके लिए चार्ल्सटाउन गये थे। वहाँ श्री सालेह इब्राहीम फ्रेम भी उनके साथ आ गये। चार्ल्सटाउन फोक्सरस्ट और स्टैंडर्टनमें स्थानीय भारतीय रेलगाड़ीपर उनसे मिलनेके लिए आये थे।

जोहानिसबर्ग पहुँचते ही इमाम साहब श्री अब्दुल कादिर बावजीर बहुत सवेरे उनको लिवाने आये। उन्होंने वहाँ सबको भोजन कराया। फिर भिन्न-भिन्न जातियोंके भारतीयोंने अपनी-अपनी जातिके भारतीयोंको अपने-अपने घरोंमें ठहराया। सभी सत्याग्रहियोंको एक ही स्थानपर रखनेका प्रबन्ध किया जा रहा है।

अभीतक तो रेल-भाड़ेमें बड़ा खर्च हुआ है। आगे क्या होता है यह देखना है। सब लोग सोमवारसे फेरी लगाना आरम्भ कर देंगे। खयाल है कि वे फेरी लगाकर अपना खर्च निकालेंगे और फेरी लगाते-लगाते गिरफ्तार होंगे।

'हिन्द स्वराज्य' पर रोक

भारतसे तार द्वारा खबर मिली है कि भारतमें भी गांधीकी लिखी हिन्द स्वराज्य पुस्तकको बेचनेपर रोक लगा दी गई है। यह एकदम आश्चर्यकी बात तो नहीं है। उस पुस्तकके कुछ विचार ब्रिटिश सत्ताके विरुद्ध पड़ते हैं। सरकारको यह डर लगा जान पड़ता है कि इससे गर्म दलको जोर मिलेगा और वह आदि अधिक काममें लाये जायेंगे। श्री गांधी उसका अंग्रेजी अनुवाद[1] प्रकाशित कराना चाहते हैं। उद्देश्य यह है कि गोरे उसे बड़ी संख्यामें पढ़ें। इसके लिए रुपयेकी आवश्यकता होगी। यह पुस्तक लागत मूल्यपर बेची जायेगी। जिनकी इच्छा इस काममें सहायता करनेकी हो वे श्री गांधीको या फीनिक्सके व्यवस्थापकको पत्र लिखें। उस अनुवादको इंडियन ओपिनियन में प्रकाशित नहीं किया जा सकता। इसलिए उसको अलग छपवानेमें कुछ अधिक समय लगेगा परन्तु प्रत्येक प्रतिका लागत मूल्य छः पेनीसे अधिक नहीं हो सकता। प्रत्येक भारतीयको चाहिए कि वह इस अनुष्ठानमें सहायता पहुँचाये।

१ देखिए "हिन्द स्वराज्यकी गुजराती भूमिका" खण्ड १० ३–७५।

सरकारके इस कदमसे ट्रान्सवालकी लड़ाईपर कुछ असर होगा या नहीं यह विचारणीय है। कुछ-न-कुछ असर हुए बिना तो न रहेगा। ट्रान्सवालकी लड़ाई भारतकी जागृति सूचित करती है। *ट्रान्सवाल और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंमें जो उत्साह उत्पन्न हुआ है वह नष्ट होनेवाला नहीं है।* सरकार अपनी नासमझीके कारण अत्याचार करेगी ही। श्री गांधीका लड़ाई और स्वराज्य विषयक पुस्तकसे सम्बन्ध परस्पर सम्बद्ध हुए बिना नहीं रह सकते। इसके सिवा जो लोग ट्रान्सवालकी लड़ाईमें सत्याग्रही हैं वे सभी जगह सत्याग्रही होंगे। इस प्रकार स्वराज्य सम्बन्धी पुस्तक ट्रान्सवालके *संघर्षको या तो शक्ति देगी या उसे अशक्त बनायेगी। जो डरपोक होंगे वे डर जायेंगे* और कहेंगे कि उनका स्वराज्यसे कोई सम्बन्ध नहीं है वे बरबाद होना नहीं चाहते। जो हिम्मतवर होंगे जो पूरे सत्याग्रही होंगे वे और भी अधिक जोरसे लड़ेंगे और जूझेंगे। वे समझेंगे कि ट्रान्सवालकी लड़ाई वास्तवमें भारतके स्वराज्यकी चाबी है। इसमें श्री गांधी और सभी भारतीय कसौटीपर चढ़ेंगे।

सामान्यतः लोगोंके तो उन लोगोंके लिए, जो ट्रान्सवालमें लड़ रहे हैं, डरनेकी कोई बात नहीं है। अधिकसे-अधिक इसका नतीजा यह निकल सकता है कि ट्रान्सवालकी लड़ाई स्वराज्य-सम्बन्धी पुस्तकसे उत्पन्न स्थितिके कारण लम्बी खिंच जाये। इसके सिवा इसका कोई दूसरा नतीजा नहीं हो सकता यह सभी भारतीय समझ सकते हैं। खुद श्री गांधीके लिए इसके दूसरे नतीजे भी हो सकते हैं जिन्हें उनको भुगतना ही होगा। देशकी सेवा दूसरी तरह या किसी दूसरी शर्तपर नहीं की जा सकती।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-३-१९११

११६ पत्र एम० पी० फैन्सीको

मंगलवार, मार्च २१, १९११

सेठ श्री एम पी फैन्सी

मौलवी अहमद मुख्तार साहबने मेरे साथ हुई अपनी भेंटका विवरण प्रकाशित किया है। उसके बारेमें आपने प्रश्न किया है और यह भी कहा है कि उसपर कुछ भारतीयोंमें चर्चा हो रही है। अतः आपको लगता है कि भेंटका वह विवरण ठीक है या नहीं यह मुझे स्पष्ट कर देना चाहिए।

ऐसा करनेका मेरा कोई इरादा नहीं था। भारतीय समाज मुझे जानता है और यदि अबतक न जानता हो तो उस अब अपना परिचय देना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैंने कोई बात कही होगी या नहीं यह भारतीय तुरन्त जान सकते हैं। फिर भी मैं आपका अनुरोध स्वीकार करके निम्नलिखित उत्तर भेज रहा हूँ

१ यह अक्षरशः सही है।

मुझे दुःख होता है कि मौलवी साहब द्वारा प्रकाशित भेंटके विवरणमें मेरे कथनको तोड़ा-मरोड़ा गया है। मेरे साथ बातचीत खतम होनेपर उन्होंने सन्तोष प्रकट किया था और कहा था कि उन्हें पूरा इत्मीनान हो गया है। उन्होंने इस लड़ाईमें पूरी सहायता देनेका वचन भी दिया था। फिर भी भेंटका जो विवरण उन्होंने प्रकाशित किया है वह लड़ाईके लिए हानिकर हो सकता है।

मैंने उन्हें बताया था कि सत्याग्रह कोषका आरम्भ कैसे हुआ। मैंने प्रो० गोखलेको अपने इंग्लैंडसे पत्र[1] लिखनेकी बात बताई। श्री पोलकको लिखे पत्रकी[2] बात कही। उन पत्रोंमें मैंने लड़ाईके कारण अपने ऊपर 'इंडियन ओपिनियन' के सम्बन्धमें कर्ज हो जानेकी बात लिखी थी यह मैंने मौलवी साहबसे कहा। मैंने बताया कि उन पत्रोंके उत्तरमें रुपया आया था। फिर मैंने प्रो० गोखलेको जो पत्र[3] लिखा उसमें 'इंडियन ओपिनियन' का कर्ज चुकानेमें संघके स्थानीय कार्यालय और इंग्लैंडके कार्यालयका खर्च चलानेमें एवं निर्धन कुटुम्बोंका गुजारा करनेमें रुपये खर्च करनेकी बात लिखी थी —यह भी कहा। यह खर्च उचित हुआ है ऐसा पत्र प्रो० गोखलेने भेजा है यह भी बताया। प्रो० गोखलेने और श्री पेटिटने सत्याग्रहमें उस रुपयेको किस प्रकार खर्च किया जाये यह तय करना मेरे अधिकारमें रखा है यह बात मैंने मौलवी साहबको बता दी थी। मैंने उनसे कहा था कि फिर भी मेरा इरादा अपनी इच्छाके अनुसार खर्च करनेका नहीं है। मैं उस रुपयेको खर्च करनेमें श्री काछलिया और अन्य सत्याग्रहियोंसे सलाह लेता हूँ। मैंने बताया कि उस कोषके लिए मैंने अलग खाता खोला है, संघर्ष खतम होनेपर कुल खर्चका हिसाब भी छापा जायेगा। और खर्च किस तरह किया जाता है यह इस वक्त भी प्रो० गोखलेको बताया जाता है। इस-पर मौलवी साहबने पूरा सन्तोष प्रकट किया।

तीसरे दर्जेमें सफर करनेके बारेमें मैंने बताया कि मैं दूसरे भारतीयोंको फिलहाल तीसरे दर्जेमें सफर करनेकी सलाह नहीं देता किन्तु मैंने अपने लिए यह चुनाव इन कारणोंसे किया है

१ ट्रान्सवालकी रेलके विनियम बन गये हैं।
२ सत्याग्रहके कोषमेंसे रुपया खर्च होता है।
३ मैं खूब गरीब हो गया हूँ और दूसरे सत्याग्रही भी ऐसी ही स्थितिमें आ गये हैं।
४ मुझे अपने मनकी वर्तमान अवस्थामें इस प्रकार यात्रा करना अच्छा लगता है।
५ केपमें काफिर मुसाफिरोंको तीसरे दर्जेमें जो तकलीफें सहनी पड़ती हैं उनका हाल मैंने पढ़ा तो मैं काँप उठा और मेरी इच्छा हुई कि मैं उस दर्जेकी यात्राकी तकलीफोंका अनुभव करूँ।

१ देखिए खण्ड ९, पृष्ठ १८० ।
२. यह उपलब्ध नहीं है ।
३ देखिए "पत्र : गो० कृ० गोखलेको" पृष्ठ १००-०२ ।
४ देखिए "पत्र : गो० कृ० गोखलेको" पृष्ठ ५१५-१९ ।

६ मैं मेटाल्के व्यक्तिकरके सम्बन्धमें गिरफ्तार किया गया था। तबसे मेरा यह विचार बना है कि यदि मैं गरीब भारतीयकी तरह ही रहूँ तो [भारतीय समाजकी] अधिक सेवा कर सकूँगा।

मैंने इतना समझाया। फिर भी मौलवी साहबका खयाल यही रहा कि तीसरे दर्जेमें यात्रा करना वैसी ही गलती है जैसी पहले अँगुलियोंके निशान देनेमें की गई। उसपर मैंने कहा कि अँगुलियोंके निशान देनेमें गलती हुई थी यह मैं नहीं मानता और तीसरे दर्जेकी यात्राके बारेमें मैंने सही कदम उठाया है। फिर मैंने उन्हें यह भी कहा कि मुझे हमेशा तीसरे दर्जेमें ही यात्रा करनी है, ऐसा भी नहीं है। अन्तमें मैंने यह दलील भी दी कि बहुतसे भारतीय गिरफ्तार होनेके लिए जायें और पहले या दूसरे दर्जेमें सफर करें तो ज्यादा खर्च होगा।

स्वामी शंकरानन्दके[1] विचारोंके सम्बन्धमें मैंने कहा कि जो लोग साथ-साथ और समान बनकर रहना चाहते हैं उनमें समान बल होना चाहिए, उनकी काठियावाड़ आर्य मण्डलमें कही गई यह बात मुझे उचित लगी है। स्वामीजीने कहा कि चार साथियोंमें तीन शस्त्रधारी हों तो चौथेको भी शस्त्रधारी होना चाहिए, यह मुझे अच्छा लगा है। साथ ही मैंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि मेरे मनमें शस्त्रका अर्थ सत्याग्रह है। मैंने अपनी यह मान्यता भी बतलाई कि सत्याग्रहीके निकट तलवार किसी कामकी नहीं हो सकती। मैंने यह विचार व्यक्त किया कि यदि कोई व्यक्ति दो जातियोंमें झगड़ा करवाना चाहे तो मैं इसके नितान्त विरुद्ध हूँ। मौलवी साहब इन विचारोंसे भी सन्तोष प्रकट करके गये थे।

इसलिए जब मैंने उनके द्वारा प्रकाशित भेंटका विवरण देखा तब मुझे कौमके खातिर अफसोस हुआ। मैंने ऊपर जो दिया है वह भेंटका सार-मात्र है। इंडियन ओपिनियन में खर्च किये गये रुपयेके बारेमें मौलवी साहबने मुझसे जो विशेष प्रश्न किये थे उनका उत्तर मैंने दिया है। उसकी प्रतिलिपि भी आपको भेजता हूँ।[2]

मैं हूँ
आपका सेवक
मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन १९-३-१९११

१. देखिए "मरित्सबर्गमें स्वामीजीका भाषण" पृष्ठ ३४।
२. देखिए "पत्र : मौलवी अहमद मुख्तारको" पृष्ठ १८९९।

११७ भेंट 'स्टार'के प्रतिनिधिको[1]

जोहानिसबर्ग
मार्च १७ १९१

सरकारने श्री गांधीके साथ रविवारको सुबह ट्रान्सवाल आनेवाले भारतीयोंकी गिरफ्तारी शुरू कर दी है। दो सोमवारको गिरफ्तार किये गये छः मंगलवारको और दो कल। सभीको निर्वासनका दण्ड दिया गया है और आज उन्हें प्रिटोरिया ले जाया जा रहा है। वहाँसे उन्हें निर्वासित करके नेटाल भेज दिया जायेगा। ये सभी या तो शिक्षित भारतीय हैं या युद्धसे पहलेके अधिवासी; और यद्यपि इन्हें उपनिवेशमें अधिवासका या अपनी शिक्षाके बलपर प्रवेशका अधिकार प्राप्त है, फिर भी हमें मालूम हुआ है कि आवश्यक हुआ तो ये संघर्षके समाप्त होनेपर ही नेटाल वापस आयेंगे।

आज सुबह श्री गांधीने हमारे प्रतिनिधिको बताया कि भारतीय जोहानिसबर्गमें अपने व्यक्तिगत अधिकारपर जोर देनेके लिए नहीं, बल्कि संघर्षमें भाग लेनेके लिए आये हैं। ये लौट आयेंगे और फोक्सरस्टमें फिर गिरफ्तार करके जेल भेज दिये जायेंगे। बाकी लोग भी कुछ ही दिनोंमें गिरफ्तार कर लिए जायेंगे। श्री गांधीने कहा :

"समझमें नहीं आता सरकार मुझे क्यों नहीं गिरफ्तार करती। मैं खुले रूपमें भी यह स्वीकार करता हूँ कि इन लोगोंको यहाँ लाने और उपनिवेशमें प्रवेश करानेमें मेरा हाथ है और दरअसल यह कहा भी गया है कि इन लोगोंको उपनिवेशमें लाकर मैंने प्रवासी कानून (इमीग्रेशन लॉ)को तोड़ा है क्योंकि मैं निषिद्ध प्रवासियोंको उपनिवेशमें प्रवेश करनेमें सहायता देता हूँ और उकसाता हूँ। मैं स्वयं तो इन भारतीयोंको कतई निषिद्ध प्रवासी नहीं मानता। हमारे संघर्षका मुख्य स्वरूप कष्ट-सहन और कष्ट-सहनके द्वारा वांछित राहत प्राप्त करना है। डीपक्लूफकी जेलमें चीनियों सहित १ अनाक्रामक प्रतिरोधी हैं और १६ व्यक्ति निर्वासित किये जानेकी प्रतीक्षामें हैं।

[अंग्रेजीसे]

स्टार, १७–३–१९१

१ इसकी एक रिपोर्ट १८–३–१९१ के नेटाल मर्क्युरीमें भी प्रकाशित की गई थी और यह २५–३–१९१ के इंडियन ओपिनियनमें भी उद्धृत की गई थी।

११८. पत्र : उपनिवेश-सचिवको[1]

[जोहानिसबर्ग
मार्च १९, १९११ के पूर्व]

मेरे संघको सूचित किया गया है कि पिछले सप्ताह जो चार भारतीय प्रिटोरियासे लॉरेंजो मार्क्विस के जाये गये वे उनको निर्वासित करके भारत भेजनेके पूर्व लॉरेंजो मार्क्विस जेलमें रखा गया था। उनमें से प्रत्येक जेल अधिकारियोंको पाँच शिलिंग देनपर विवश किया गया था। उनके लिए अधिकारियोंने भोजनकी कोई व्यवस्था नहीं की और पैसा देनपर भी उन्हें भोजन उपलब्ध नहीं हुआ। मेरा संघ सादर अनुरोध करता है कि आप तत्काल इस मामलेकी जाँच करानेकी कृपा करें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-३-१९११

११९. पत्र : पुलिस कमिश्नरको[2]

[जोहानिसबर्ग
मार्च १९, १९११ के पूर्व]

मेरे संघको सूचित किया गया है कि फोर्टके विचाराधीन भारतीय कैदी मुकदमेकी सुनवाईके लिए जब अदालतमें लाये जाते हैं तब सरकार वहाँ उनके दोपहरके भोजनकी कोई व्यवस्था नहीं करती। इस प्रकार यदि उनके मित्र बाहरसे उनके भोजनका कोई प्रबन्ध न करें तो उन्हें उन दिनों छः बजे शाम तक निराहार रहना पड़ता है। मेरे संघको यह भी सूचना दी गई है कि निर्वासनसे पूर्व जिन्हें प्रिटोरिया के जाया गया है उनके साथ भी ऐसा ही हुआ है। उन्हें भी रास्तेमें दोपहरको भोजन नहीं दिया गया।

मेरे संघका अनुरोध है कि आप कृपया इस मामलेकी जाँच करें और इन शिकायतोंको दूर करायें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-३-१९११

१. इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और वह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष अ० मु० काछलियाके हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।

२. इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और वह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अ० मु० काछलियाने प्रिटोरियाके पुलिस कमिश्नरको भेजा था।

१२० और सत्याग्रही

पिछले सप्ताह[1] श्री गांधी ट्रान्सवालमें अपने साथ यहाँकी अच्छी संख्यामें सत्याग्रही ले कर गये। हम अपने स्तम्भोंमें इनकी या सूची दे रहे हैं, उसमें भारतके प्रायः सभी मुख्य-मुख्य प्रान्तोंके लोग हैं। यह एक शुभ लक्षण है कि उपनिवेशमें पैदा हुए बहुत-से भारतीय संघर्षमें शरीक हो रहे हैं। इससे संघर्षको तो बल मिलता ही है, परन्तु इससे उनका अपना भी निःसन्देह बहुत बड़ा लाभ है, क्योंकि कष्ट-सहनकी इस पाठशालामें उन्हें सच्ची शिक्षा मिलती है। ट्रान्सवाल जानेवाले नौजवानोंको जो अनुभव मिल रहा है वह भावी जीवनमें उनके बहुत काम आयेगा। इसलिए जो बहादुर सोच-समझकर कष्ट-सहनके लिए ट्रान्सवाल गये हैं उन्हें हम बधाई देते हैं। उन्हें विदा करनेके लिए बहुत बड़ी संख्यामें सभी प्रकारके लोग स्टेशनपर गये यह उचित ही था।[2]

ट्रान्सवालकी सरकारने सत्याग्रहियोंको फिर निराश किया है। प्रवासी-अधिकारी (इमीग्रेशन-अफसर)ने उन्हें सीमापर गिरफ्तार नहीं किया। हम इसे सत्याग्रहियोंकी सचाईका एक बहुत बड़ा प्रमाणपत्र मानते हैं। वे लोग अपना नाम, दस्तखत अथवा अँगुलियोंका निशान दिये बगैर उस उपनिवेशमें प्रविष्ट हो गये। इसलिए उनकी शिनाख्त एकमात्र उनकी सचाई रह गई। सरकार जानती है कि ये सत्याग्रही अपना कोई स्वार्थ नहीं साधना चाहते और न उपनिवेशमें ही रहना चाहते हैं। बल्कि ज्यों ही भारतीयोंकी माँगें पूरी हो जायेंगी त्यों ही वे उपनिवेशसे चले जायेंगे।

परन्तु भारतीय समाजके लिए इस तरह सीमापर गिरफ्तार न किये जानेका अर्थ है धन और शक्तिकी बहुत बड़ी बर्बादी। यह अनिवार्य है। ट्रान्सवालकी सरकार हमारे साधनोंको समाप्त कर देना चाहती है इसीलिए हमें उसका जवाब देनेके लिए तैयार रहना चाहिए। परिणामोंकी परवाह किये बिना निधड़क आगे बढ़ते जानेसे ही यह सम्भव हो सकता है। सत्याग्रहीको तो सही काम करनेमें ही सन्तोष मानना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-३-१९११

१. ११-३-१९११ को।
२. जॉन स्टेमसर।

१२१. केपके भारतीय मतदाता

एक संवाददाताने हमसे पूछा है कि संघ-संसदके चुनावोंमें भारतीय मतदाताओंको मतदान किस प्रकार करना चाहिए। इस बारेमें कोई नियम निर्धारित करना सहज नहीं है। परन्तु यह तो कहा ही जा सकता है कि यदि चुनाव दलोंके आधारपर हो और संयुक्त सरकार न बने तो भी भारतीय प्रश्न दलगत प्रश्न नहीं बनाया जायेगा। दोनों दलोंमें ऐसे आदमी होंगे ही जो सामान्यतः हमारे साथ सहानुभूति रखेंगे। इसलिए हमारा सुझाव यह है कि उम्मीदवारोंसे कुछ निश्चित प्रश्न पूछे जायें और जो हमारे पक्षके अनुकूल जवाब दें भारतीय उनको ही अपना मत दें — फिर चाहे वे किसी भी दलके हों। भारतीय मतदाता यह भी अच्छी तरह समझ लें कि यदि किसी क्षेत्रमें एक भी उम्मीदवार न हो जो भारतीयोंके पक्षके अनुकूल हो तो वहाँ वे किसीके भी पक्षमें मत न दें। वे इसमें कोई भूल न करें। ये प्रश्न केपमें प्रवासी कानून (इमीग्रेशन ऐक्ट)पर अमल, विक्रेता-परवाना कानून (डीलर्स लाइसेंस ऐक्ट)में आवश्यक संशोधन, ट्रान्सवालके संघर्ष और नेटालमें गिरमिटिया मजदूरोंका लाना बन्द करनेके बारेमें पूछे जा सकते हैं। अन्तके दो प्रश्न पूरी तरहसे अब समस्त दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्न बन गये हैं और दक्षिण आफ्रिकाके सभी सार्वजनिक कार्यकर्ताओंका ध्यान इनकी तरफ जाना चाहिए।

अन्तमें हम केपके भारतीय मतदाताओंको यह सुझाव देना चाहते हैं कि उन्हें अपना एक निजी संगठन बना लेना चाहिए। इस संगठनमें सभी भारतीय मतदाताओंपर नियन्त्रण रखनेकी क्षमता होनी चाहिए। उसे अपने सदस्योंके मार्ग-दर्शनके लिए अपनी नीति भी निश्चित कर देनी चाहिए। ध्यान रहे कि उम्मीदवार व्यक्तिशः मतदाताओंकी बात न सुनेंगे। परन्तु कोई संस्था जिसे समस्त भारतीयोंके मतदानका बल प्राप्त हो ध्यान आकृष्ट किये बगैर नहीं रह सकती।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-३-१९११

१२२. पत्र: ब्रिटिश वाणिज्यदूतको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १९, १९११

महोदय,

आपका इसी १५ तारीखका पत्र संख्या ९१/१ एम मिला। मेरा पत्र[2] उस सूचनापर आधारित था जो यहाँ मेरे संघके एक सदस्यको एक सम्बन्धित व्यक्तिने तमिल भाषामें लिखकर भेजी थी। मेरा संघ शिकायत करनेवाले लोगोंकी बातोंको स्वीकार करनेमें पूरी सतर्कतासे काम लेता है।

मैं इस सुझावके लिए तो आपको धन्यवाद देता हूँ कि भविष्यमें आरोप अत्यन्त सतर्कतासे स्वीकार किये जाने चाहिए परन्तु मैं यह भी कहूँगा कि लॉरेंजो मार्क्विस नगरपालिकाके प्रशासकने आपको जो उत्तर भेजा है वह बिलकुल असन्दिग्ध तो कदापि नहीं माना जा सकता। क्या प्रशासक स्वयं कैदियोंसे मिले थे? क्या वाणिज्य दूतावासने किसीको वहाँ भेजा था? जबतक इन मोटी-मोटी बातोंका ध्यान न रखा गया हो तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि मेरे संघको जो बातें भेजी गई हैं वे "बिलकुल गलत और निराधार हैं। यदि प्रशासककी पूछताछ उन्हीं अधिकारियों तक सीमित हो शिकायत करनेवाले लोग जिनके अधीन थे तो स्पष्ट है कि उनकी दिलचस्पी इन बातोंका खण्डन करनेमें ही होगी क्योंकि उन बातोंसे वे अपराधी ठहर सकते थे या फिर कुछ नहीं तो अपने उच्चाधिकारियोंकी झिड़की खानी पड़ती।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-३-१९११

१. इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और वह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अ० मु० काछलियाने अपने हस्ताक्षरोंसे लॉरेंजो मार्क्विस स्थित ब्रिटिश वाणिज्यदूतको भेजा था। वाणिज्यदूतने लॉरेंजो मार्क्विसमें हुई घटनाका खण्डन किया था। उसी पत्रके उत्तरमें ही यह पत्र लिखा गया था; देखिए "पत्र: वाणिज्य-दूतको", पृष्ठ १९९।

२. देखिए "पत्र: वाणिज्य-दूतको", पृष्ठ १९९।

१२३ 'हिन्द स्वराज्य' के अनुवादकी भूमिका[1]

जोहानिसबर्ग
मार्च २०, १९१०

हिन्द स्वराज्य 'का अंग्रेजी अनुवाद जनताके सामने पेश करते हुए मुझे कुछ संकोच हो रहा है। एक यूरोपीय मित्रके[2] साथ इसकी विषय-वस्तुपर मेरी चर्चा हुई थी। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि इसका अंग्रेजी अनुवाद किया जाये। इसलिए अपने फुरसतके समयमें मैं जल्दी-जल्दी बोलता गया और वे लिखते गये। यह कोई शब्दशः अनुवाद नहीं है। परन्तु इसमें मूलके भाव पूरे-पूरे आ गये हैं। कुछ अंग्रेज मित्रोंने इसे पढ़ लिया है और जब राय माँगी जा रही थी कि पुस्तकको प्रकाशित करना ठीक है या नहीं तभी समाचार मिला कि मूल पुस्तक भारतमें जब्त कर ली गई है।[3] इस समाचारके कारण तुरन्त निर्णय लेना पड़ा कि इसका अनुवाद प्रकाशित करनेमें एक क्षणकी भी देर नहीं की जानी चाहिए। मेरे इंटरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस के साथी कार्यकर्ताओंकी भी यही राय रही और उन्होंने अतिरिक्त समय काम करके — केवल इस कामके प्रति प्रेमके कारण ही — मुझे आशासे कम समयमें इस अनुवादको जनताके सामने रखनेमें सहायता दी। पुस्तक जनताको लागत मूल्यपर ही दी जा रही है। बहुत-से मित्रोंने मुझे इसकी प्रतियाँ स्वयं अपने लिए और लोगोंमें बाँटनेके लिए खरीदनेका वचन दिया है। यदि उनसे यह आर्थिक सहायता न मिली होती तो शायद यह पुस्तक प्रकाशित ही न हो पाती।

मूलमें जो अनेक खामियाँ हैं उनका मुझे खूब ज्ञान है। अंग्रेजी अनुवादमें भी उनका और साथ ही दूसरी बहुत-सी भूलोंका आ जाना स्वाभाविक है। क्योंकि मैं मूलके भावोंको सही-रूपमें अनुवादित नहीं कर सका हूँ। जिन मित्रोंने अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा है उनमें से कुछने पुस्तकके विषयका निरूपण संवाद रूपमें करनेपर आपत्ति की है। मेरे पास इस आपत्तिका कोई जवाब नहीं है — सिवा इसके कि इस रूपमें लिखना गुजरातीमें सरल होता है और उसमें कठिन विषयोंको समझानेका यही सबसे अच्छा तरीका माना गया है। अगर मैंने मुख्यतः अंग्रेजी पढ़नेवालोंको ध्यानमें रखकर लिखा होता तो विषयका प्रतिपादन बिलकुल दूसरे प्रकारसे किया गया होता। इसके अलावा जिस रूपमें संवाद दिया गया है उसी रूपमें कितने ही मित्रोंसे, जो ज्यादातर इंडियन ओपिनियन के पाठक हैं, मेरी प्रत्यक्ष बातचीत भी हुई है।

हिन्द स्वराज्य में प्रकट किये गये विचार मेरे विचार हैं और मैंने भारतीय दर्शन शास्त्रके आचार्योंके साथ-साथ टॉल्स्टॉय रस्किन थोरो इमर्सन और अन्य

१. यह इंडियन ओपिनियनमें बिना किसी शीर्षकके साथ प्रकाशित हुई थी। इंडियन होम रूल्ज़ : गुजराती पुस्तकका अनुवाद 'हिन्द स्वराज्य' भारत-सरकार द्वारा जब्त।

२. कैलेनबैक, देखिए महादेव देसाईकी हिन्द स्वराज्यकी भूमिका १९३८।

३ देखिए "हमारे प्रकाशन" पृष्ठ २५१-५२।

लेखकोंका भी नम्रतापूर्वक अनुसरण करनेका यत्न किया है। क्योंकि टॉल्स्टॉय मेरे गुरुओंमें से एक रहे हैं। जो लोग आगेके अध्यायोंमें प्रस्तुत विचारोंका अनुमोदन देखना चाहें उन्हें स्वयं इन विचारकोंके ग्रन्थोंमें अनुमोदन इनका मिल जायेगा। पाठकोंकी सहूलियतके लिए कुछ पुस्तकोंके नाम परिशिष्टमें दे दिये गये हैं।[1]

मुझे पता नहीं कि 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तक भारतमें जब्त क्यों कर दी गई? मेरी दृष्टिमें तो यह जब्ती ब्रिटिश सरकार जिस सभ्यताका प्रतिनिधित्व करती है उसके निन्द्य होनेका अतिरिक्त प्रमाण है। इस पुस्तकमें हिंसाका रंचमात्र-सा भी समर्थन कहीं किसी रूपमें नहीं है। हाँ उसमें ब्रिटिश सरकारके तौर-तरीकोंकी जरूर कड़ी निन्दा की गई है। अगर मैं यह न करता तो मैं सत्यका, भारतका और जिस साम्राज्यके प्रति वफादार हूँ उसका द्रोही बनता। वफादारीकी मेरी कल्पनामें वर्तमान शासन अथवा सरकारको उसकी न्यायशीलता या उसके अन्यायकी ओरसे आँखें मूँदकर चुपचाप स्वीकार कर लेना नहीं आता। न्याय और नीतिके नामपर वह आज जो कर रही है उसे मैं नहीं मानता। बल्कि मेरी वफादारीकी यह कल्पना इस आशा और विश्वासपर आधारित है कि नीतिके जिस मानदण्डको सरकार आज अस्पष्ट और पाखण्डपूर्ण ढंगपर सिद्धान्त-रूपमें स्वीकार करती है उसे वह भविष्यमें कभी व्यवहारमें भी स्वीकार करेगी। परन्तु मुझे साफ तौरसे मान लेना चाहिए कि मुझे ब्रिटिश साम्राज्यके स्थायित्वसे इतना सरोकार नहीं है जितना भारतकी प्राचीन सभ्यताके स्थायित्वसे है क्योंकि मेरी मान्यता है कि वह संसारकी सर्वोत्तम सभ्यता है। भारतमें अंग्रेजी राज्य आज आधुनिक और प्राचीन सभ्यताके बीचके संघर्षका प्रतीक है। इनमें से एक शैतानका राज्य है और दूसरा ईश्वरका। एक युद्धका देवता है और दूसरा प्रेमका। मेरे देशवासी आधुनिक सभ्यताकी बुराइयोंके लिए अंग्रेज जातिको दोषी ठहराते हैं। इसलिए वे समझते हैं कि अंग्रेज लोग बुरे हैं न कि वह सभ्यता जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए वे यह मानते हैं कि अंग्रेजोंको देशसे निकालनेके लिए उन्हें आधुनिक सभ्यता और हिंसाके आधुनिक तरीके अपनाने चाहिए। 'हिन्द-स्वराज्य' यह दिखानेके लिए लिखा गया है कि यह आत्मघातकारी नीतिपर चलना होगा। उसका उद्देश्य यह दिखाना भी है कि अगर वे अपनी गौरवमयी सभ्यताका ही पुनः अनुसरण करेंगे तो अंग्रेज या तो उसको स्वीकार कर लेंगे और भारतीय बन जायेंगे या भारतसे उनका अधिकार ही उठ जायेगा।

पहले इस अनुवादको 'इंडियन ओपिनियन' में छापनेका विचार था। परन्तु मूल पुस्तकके जब्त हो जानेके कारण ऐसा करना उचित नहीं जान पड़ा। 'इंडियन ओपिनियन' ट्रान्सवालके सत्याग्रह-संग्रामका प्रतिनिधित्व करता है। इसके अलावा उसमें आम तौरपर दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी शिकायतें भी प्रकाशित की जाती हैं। इसीलिए यह वाञ्छनीय समझा गया कि इस तरहके प्रातिनिधिक पत्रमें मेरे व्यक्तिगत विचार प्रकाशित न किये जायें। ये विचार खतरनाक या राजद्रोहात्मक भी माने जा

[1] देखिए हिन्द-स्वराज्यका परिशिष्ट-२ पृ० ६५-६६।

सकते हैं। स्वभावतः मेरी चिन्ता तो यह है कि मेरे किसी ऐसे कार्यसे जिसका उससे कोई सम्बन्ध न हो इस महान संघर्षको हानि न पहुँचे। अगर मुझे यह मालूम न हो गया होता कि दक्षिण आफ्रिकामें भी हिंसात्मक साधनोंके लोकप्रिय होनेका खतरा है और मेरे सैकड़ों देशभाइयोंने और कई अंग्रेज मित्रोंने भी मुझसे यह आग्रह न किया होता कि मैं भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करूँ तो मैं संघर्षकी खातिर अपने विचारोंको लेखबद्ध न करता। लेकिन आज मेरा जो स्थान है उसे देखते हुए, उपर्युक्त परिस्थितियोंमें इस पुस्तकके प्रकाशनको टालना मेरे लिए कायरता होती।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन २-४-१९११

१२४ पत्र : जेल-निदेशकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मार्च २२, १९११

महोदय

मुझे आपके इस मासकी १९ तारीखके उस पत्रकी[2] पहुँच देनेका सम्मान प्राप्त हुआ है जो आपने श्री पारसी रुस्तमजीके साथ किये गये सलूक और अन्य मामलोंके सम्बन्धमें पिछले महीनेकी २१ तारीखको उपनिवेश-सचिवके नाम मेरे लिखे गये पत्रके[3] उत्तरमें भेजा है। आपने मेरे संघको जो विस्तृत सूचना दी है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

श्री रुस्तमजीके अखबारोंको भेजे गये पत्रके[4] विषयमें निवेदन है कि कई भारतीयोंने उन्हें पैरोंमें बेड़ियाँ पहने देखा था और जिस दिन वे इस हालतमें देखे गये उसी दिन इस मामलेकी सूचना मेरे संघको दे दी गई थी।

चिकित्सा-अधिकारीकी रायके बारेमें मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करना चाहूँगा कि फोक्सरस्टके चिकित्सा-अधिकारीने श्री रुस्तमजीको अवश्य ही विशेष खुराक देनेकी हिदायत की थी। यदि डीपक्लूफ जेलसे रिहा हुए अनेक सत्याग्रहियोंकी बातका विश्वास किया जाये तो श्री रुस्तमजीकी यह बात भी निर्विवाद है कि डीप-क्लूफके चिकित्सा-अधिकारीने उस भाषाका प्रयोग किया था जिसका आरोप श्री रुस्तमजीने

१ इस पत्रका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था और यह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अ० मु० काछलियाके हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।
२. यह इंडियन ओपिनियन २५-३-१९११ में उद्धृत किया गया था।
३ देखिए "पत्र : उपनिवेश-सचिवको" पृष्ठ १०१-०३।
४ देखिए परिशिष्ट २।

किया है। वास्तवमें अधिकांश सत्याग्रहियोंने यह शिकायत की है कि उक्त अधिकारी अशोभनीय भाषाका प्रयोग करता है।

श्री रुस्तमजीको स्थानान्तरित करने सम्बन्धमें विशेष हिदायतें जेलमें ही जारी की गई थीं। श्री रुस्तमजीके पारिवारिक चिकित्सकका प्रमाणपत्र इसलिए पेश किया गया है कि जेलके चिकित्सा-अधिकारीकी सम्मतिका खण्डन करना बिलकुल जरूरी हो गया था और मैं यह भी बता दूँ कि श्री रुस्तमजी अभीतक पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो पाये हैं उनका इलाज चल रहा है।

मेरी विनम्र सम्मतिमें टोपी पहनना धार्मिक दृष्टिसे आवश्यक है या नहीं इस मसलेका सबसे अच्छा फैसला श्री रुस्तमजी ही कर सकते हैं। लेकिन इस शिकायतकी मुख्य बात यह नहीं है कि श्री रुस्तमजीकी विशेष टोपी छीन ली गई थी बल्कि यह है कि वे गवर्नर और अन्य अधिकारियोंकी उपस्थितिमें हर बार उसे उतारनेके लिए विवश किये जाते थे जबकि उचित यह था कि उनकी टोपी न उतरवाई जाती जैसा कि फोक्सरस्ट और हाइडेलबर्गमें होता था। उन जेलोंमें सलाम करना टोपी उतारनेके बराबर मान लिया गया था।

श्री रुस्तमजीके वजनमें कमी जिसकी उन्होंने शिकायत की है, केवल डीपक्लूफ जेलमें कैद रहनेके दिनोंमें ही नहीं हुई बल्कि फोक्सरस्ट जेलमें भी हुई। श्री रुस्तमजी अपना मोटापा घटनेपर निःसन्देह कृतज्ञ हैं लेकिन उससे उनकी आम-सेहतको बड़ा खतरा पैदा हो गया।

मेरा संघ इस बातके लिए अत्यन्त आभारी है कि सत्याग्रही बिलकुल साथ-साथ रह सकें इस दृष्टिसे डीपक्लूफमें उनका बन्दोबस्त किया गया है। लेकिन यदि बात ऐसी ही है तो मैं क्या यह प्रार्थना कर सकता हूँ कि डीपक्लूफके कैदियोंके लिए तीन महीने बाद बाहरके लोगोंसे मुलाकात करने और पत्र लिखनेका विशेष नियम हटा दिया जाये और उनको हर महीने उसी प्रकार मुलाकातियोंसे मिलने और पत्र लिखनेकी अनुमति दी जाये जैसी कि उन सभी जेलोंमें प्राप्त है जो डीपक्लूफकी भाँति केवल कैदियोंकी बस्तियाँ नहीं हैं।

पाखानोंकी सफाईसे सम्बन्धित कामोंके बारेमें निवेदन है कि इस मामलेमें ब्रिटिश भारतीयोंके खास पूर्वग्रहको ध्यानमें रखते हुए सत्याग्रह शुरू होनेसे पहले भारतीय कैदी इस प्रकारके कामोंसे मुक्त रखे जाते थे। उसके बाद यह कठोरता डीपक्लूफ जेलमें ज्यादा बरती जाने लगी है। और, यदि सरकार सत्याग्रहियोंको विशेष रूपसे तंग नहीं करना चाहती तो मेरे संघकी समिति सादर फिर अनुरोध करती है कि उनपर से यह पाबन्दी हटा दी जाये।

प्रधान जोहानिसबर्ग जेलके गवर्नरको दिये गये बयानमें श्री रुस्तमजीने फोर्ट जेलमें मिष्टभाषण व्यवहार करनेके लिए और स्वयं गवर्नर द्वारा हमेशा उनका खयाल रखे जानेके लिए निश्चय ही कृतज्ञता प्रकट की है।

मैं देखता हूँ कि श्री कावजी द्वारा की गई शिकायतको सरकारने करीब-करीब ठीक मान ही लिया है। शिकायतकी गम्भीरता इस बातमें है कि उनकी बीमारीकी

तपस्या की गई और उनकी शिकायतकी तबतक हँसी ही उड़ाई गई, जबतक यह न मालूम हो गया कि उन्हें बहुत तेज बुखार है।

मैं सबको यह बात फिर कहनी पड़ेगी कि डीपक्लूफके सत्याग्रही रिहा होनेवाले कैदियोंके जरिये यही शिकायत मजबे रहते हैं कि उन्हें काफी खुराक नहीं दी जाती है और उनको लगता है कि घी न देकर उनको एक प्रकारसे अतिरिक्त दण्ड दिया जा रहा है।

मेरे सबको यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके विभागने श्री जोजेफ रायप्पन और उनके साथी कैदियोंको नंगे सिर और नंगे पैर चलाने और बिना नाश्तेके भेजनेके बारेमें अपनी गलती मान ली है।

अन्तमें मुझे भरोसा है कि घी देनेकी व्यवस्था सप्ताहके काम और सत्याग्रहियोंको मुलाकात तथा पत्र-व्यवहारकी सुविधाएँ देनेके शेष प्रश्नोंकी ओर भी अब उचित ध्यान दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन २६-३-१९११

१२५. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

बुधवार [मार्च २९, १९११]

क्रूगर्सडॉर्पमें बस्तीका संकट

क्रूगर्सडॉर्पमें बस्ती (लोकेशन) की समितिकी आखिरी बैठक हो चुकी है। इस समितिके सामने बस्तीके भूतपूर्व कमिश्नर श्री [जे० एच०] बर्गरने गवाही दी थी। यह गवाही बहुत तिरस्कार और अशिष्टतापूर्ण थी। उन्होंने गवाही देते हुए कहा कि भारतीयोंको निकाल बाहर करनेका निर्णय लड़ाईसे पहले ही किया जा चुका था और यदि लड़ाई न होती तो वे निकाल दिये गये होते। भारतीयोंके सम्बन्धमें बोलते हुए उन्होंने बहुत ही भद्दे ढंगसे कुली शब्दका प्रयोग किया। इन सज्जनने कहा कि भारतीयोंका यह बस्ती ब्रिटिश सरकारके बीचमें पड़नेसे दी गई थी। भूतपूर्व सरकार लन्दन-समझौते (कन्वेन्शन) के कारण इससे आगे नहीं बढ़ सकती थी। यदि वह आगे बढ़ती तो ब्रिटिश एजेंट रुकावट डालता। श्री बर्गरने कहा कि अब वे दोनों बाधाएँ नहीं रही हैं। इसलिए कुलियों को तुरन्त निकाल बाहर करना चाहिए। मेरी समझमें नहीं आता कि उनको निकालनेके सम्बन्धमें ऐसी जाँच क्यों की जा रही है।

उन्होंने मस्जिदके सम्बन्धमें भी अशिष्टतासे बात की और कहा कि मस्जिदकी जमीन देते वक्त उन्होंने क्या वचन दिया था यह याद नहीं है। वे कुलियोंके सम्बन्धमें कही गई बात याद रखनेकी परवाह नहीं करते। उन्होंने श्री सीढ़ोंके प्रश्न करनेपर कहा कि यदि उन्होंने बस्तीके हटानेके सम्बन्धमें कोई वचन दिया होता तो वह लिखित होता। यह सारी गवाही पढ़ने लायक है। लेकिन उसका मुख्य भाग वही है जो मैंने यहाँ दिया है। बस्तीपर हमला तो पूरा किया गया

है। भारतीय उसको बचाना चाहें तो इसके लिए उनमें साहस होना चाहिए। यदि भारतीय न हटें तो उन्हें हटाना मुश्किल है। यदि बस्तीमें आबाद भारतीयोंमें एकता होगी तो बस्ती बच जायेगी, अन्यथा वह गई ही समझनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-३-१९११

१२६. पत्र : टी० श्रीनिवासको

जोहानिसबर्ग
मार्च २४, १९११

प्रिय महोदय,

आपके २ जनवरीके पत्रका उत्तर इससे पहले न दे सका। आशा है, आप इसके लिए क्षमा करेंगे। बात यह है कि मैं जोहानिसबर्गमें नहीं था। यहाँ तमिल भारतीयोंमें अधिकतर जिनसे मुझसे वायद् चेट्टी और पडियाची हैं। तमिल ब्राह्मणोंकी संख्या बहुत कम है। उनमें से कुछ ईसाई हैं जिन्होंने या तो दक्षिण आफ्रिकामें आकर धर्म-परिवर्तन किया है या जो उन ईसाई माँ-बापोंकी सन्तान हैं जिनमें से अधिकांश गिरमिटिया हैं। ईसाई समाज बहुत छोटा है, परन्तु लौकिक दृष्टिसे कुछ प्रगतिशील है। इन लोगोंने पाश्चात्य आदतों और प्रथाओंको लगभग पूरी तरह अपना लिया है। लेकिन इससे मातृभूमिके प्रति उनके प्रेममें कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। पता नहीं मैंने आपको जो जानकारी दी है वह वही है जो आप चाहते थे या नहीं। यदि आप मुझे फिर पत्र लिखनेकी कृपा करें, तो मैं प्रसन्नतापूर्वक उसका उत्तर दूँगा। सत्याग्रहमें जब विजय होगी और वह अवश्य होगी, तब उस विजयको शीघ्रतासे निकट लानेका श्रेय भारतीय समाजके तमिल सदस्योंके अनुपम धैर्य और आत्म-त्यागको दिया जायेगा। मैं जब पहले-पहल दक्षिण आफ्रिका आया था, तभी मुझे उनमें कुछ ऐसी चीज दिखाई दी थी जिससे मैं उनकी ओर आकृष्ट हो गया था, लेकिन तब मैंने स्वप्नमें भी यह खयाल नहीं किया था कि वे राष्ट्रके लिए इतना अधिक साहस दिखा सकते हैं और उनमें कष्ट सहन करनेकी इतनी सामर्थ्य है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

टी० श्रीनिवास
बैरिस्टर
क्रिटिक कार्यालय
कोमोमेस्वरमपेट
माउंट रोड, मद्रास

गांधीजीके हस्ताक्षर-युक्त टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७९) से।

१२७ निर्वासन

ट्रान्सवालके भारतीयोंको निर्वासनकी जो सजाएँ दी जा रही हैं उनके बारेमें पढ़कर सभी न्यायप्रिय व्यक्तियोंको दुःख होगा। नेटालमें निर्वासित किये जानेका कोई बड़ा परिणाम नहीं होता सिवा इसके कि भविष्यमें उसका कानूनी असर होगा जिसपर अभी हम विचार नहीं करना चाहते। परन्तु जब सत्याग्रहियोंको भारत निर्वासित किया जाता है तब ये निर्वासन बहुत गम्भीर रूप धारण कर लेते हैं। ये निर्वासनकी सजाएँ ऐसे लोगोंको दी जा रही हैं जिनमें से बहुत-से लोगोंने स्वेच्छासे अपने पंजीयन करा लिए हैं जिन्हें एशियाई महकमा अच्छी तरह जानता है और जो सत्याग्रहीकी हैसियतसे जेलकी सजाएँ भी भोग चुके हैं। ये निर्वासन एशियाई-भागको निकाल बाहर करनेकी प्रक्रिया जान पड़ते हैं। हमारे जोहानिसबर्गके संवाददाताने हमारा ध्यान बार-बार इस बातकी ओर दिलाया है कि कुछ निर्वासित लोगोंका जन्म दक्षिण आफ्रिकामें ही हुआ है और कुछ तो अपने पीछे अपने परिवार भी यहीं छोड़े जा रहे हैं। मातृभूमिसे अच्छी मदद मिलनेके कारण इन परिवारोंका सत्याग्रह-कोषसे पोषण हो रहा है। अगर यह मदद यहाँ समयपर न पहुँच पाती तो इनका क्या हाल होता? निःसन्देह उनके भूखों मरनेका भय था।

हम इन पृष्ठोंमें जो बात बार-बार कह चुके हैं, उसकी पुनरुक्तिकी जोखिम उठाकर भी अपने पाठकोंको फिर याद दिलाते हैं कि ये दूरगामी प्रभाव करनेवाली आज्ञाएँ बगैर किसी निष्पक्ष जाँचके दी जा रही हैं। ये मामले केवल प्रशासकीय तौर पर अर्द्धगोपनीय ढंगसे चलाये जा रहे हैं। इन प्रशासकीय कार्योंके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालयमें कोई अपील भी नहीं है। इस तरह यह सारी कार्रवाई ब्रिटिश पद्धतिके विपरीत है और सिर्फ जरा-सी कलम हिलाकर प्रजाजनोंकी आजादी छीनी जा रही है। जो बात कानूनमें नहीं है उसकी पूर्ति बेईमान महकमा बड़ी छल-भरी चतुराईसे कर रहा है। *कानूनके अनुसार देश-निकालेकी सजा पानेवालोंको केवल ट्रान्सवालकी* सीमाके बाहर किया जा सकता है। इसलिए ट्रान्सवालकी सरकारने पड़ोसी पुर्तगाली सरकारसे एक समझौता कर लिया है। (शायद पड़ोसी ब्रिटिश उपनिवेश ट्रान्सवालके साथ ऐसा ओछा समझौता करना नहीं चाहते थे या कर नहीं सकते थे।) उक्त समझौतेके अनुसार ट्रान्सवालकी सरकार इन सत्याग्रहियोंको पुर्तगाली प्रदेशोंकी सीमामें निर्वासित कर देती है और वहाँकी सरकार बगैर मुकदमा चलाये उन्हें भारत जानेवाले जहाज पर चढ़ा देती है।

यहाँ स्वभावतः एक सवाल खड़ा होता है। मान लें कि महामहिम सम्राट् जिस स्वायत्त शासन प्राप्त उपनिवेशको मंजूरी दे चुके हैं उसकी कानूनी कार्यवाहियोंमें साम्राज्य-सरकार दस्तन्दाजी नहीं कर सकती। परन्तु साम्राज्य-सरकार इन ब्रिटिश भारतीयोंको जो ट्रान्सवालके स्थायी निवासी बन चुके हैं बेलापोआ-बे होकर चोरीसे

भारत भेजे जानेको घोर उदासीनतासे क्यों देखती है? उसके पास इसका कोई कानूनी औचित्य नहीं है। अगर पुर्तगाली सरकारसे ब्रिटिश उपनिवेशके बजाय कोई विदेशी राज्य ऐसा समझौता करता तो यह सन्धि-भंग कहा जाता और इसको लेकर शायद युद्ध छेड़ देना भी उचित ठहरता। इसलिए स्पष्ट है कि साम्राज्य-सरकारकी अनुमतिके बगैर ट्रान्सवाल-सरकारके लिए भारतीयोंको निर्वासित करना सम्भव ही नहीं था। इस तरह हम अनेक भारतीय परिवारोंको बरबाद करनेमें साम्राज्य-सरकार भी शरीक है। इससे बरबस नतीजा यह निकलता है कि केन्द्रीय सरकारने ब्रिटिश प्रजाजनोंके एक भागको दूसरे भागके अत्याचारसे बचानेका अपना प्राथमिक कर्तव्य छोड़ दिया है। वह ट्रान्सवाल-सरकारकी शक्तिके सामने पंगु हो गई है। बलवानके अत्याचारसे कमजोरकी रक्षा करनेमें वह असमर्थ है। अत्याचारियोंके अत्याचारोंको बढ़ावा देनेके लिए ही उसका अस्तित्व है। यह नतीजा दुःखजनक है परन्तु यह अनिवार्य है।

दक्षिण आफ्रिकाके साम्राज्यवादी उपर्युक्त तथ्योंपर अच्छी तरह विचार करें और अपने हृदयसे पूछें कि हम ऊपर जिस नतीजेपर पहुँचे हैं क्या वे उसका समर्थन नहीं करते।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६-१-१९११

१२८ कूगसडार्प बस्ती समिति

बस्ती-समिति (लोकेशन कमेटी) के सामने श्री बर्गरने जो गवाही दी है वह उनकी स्पष्टवादिता, हृदयहीनता और अशिष्टताकी दृष्टिसे अद्भुत है। परन्तु हम उनके इस तथाकथित कीमती सबूतपर समिति द्वारा दी गई बधाईका समर्थन नहीं कर सकते। श्री बर्गरका मिथ्या साक्षी माने जानेका अधिकार अब नहीं रहा है। इसका कारण उनका वह वक्तव्य है जो उन्होंने अधिकारीके रूपमें उन प्रतिष्ठित भारतीय व्यापारियोंके सम्बन्धमें दिया है जिन्होंने लड़ाईसे पहले जब वे अधिकारी थे उनसे भेंट की थी। उन्होंने उन्हें घृणासे कुलीका नाम दिया और कहा कि वे कुलियों को इतना महत्त्व नहीं देते इसलिए उन्होंने अपने और उनके बीच हुई बातचीत याद नहीं रखी। परन्तु श्री बर्गरने बुद्धिमानी की। उन्होंने समितिसे कहा कि उस समयकी गणतन्त्री-सरकार कुछ नहीं कर सकती थी क्योंकि लन्दनके समझौते (कन्वेन्शन) से और ब्रिटिश प्रतिनिधि (एजेंट) की कार्रवाईसे उसके मार्गमें बाधा पड़ती थी। परन्तु श्री बर्गरने आगे कहा किन्तु अब चूँकि सरकार कुछ भी करनेके लिए स्वतन्त्र है, इसलिए उसे छोटी-मोटी बातोंकी परवाह किये बिना इन कुलियोंको निकाल बाहर करना चाहिए। जो सरकार गणतन्त्रीय शासनकालमें भारतीयोंकी रक्षा करती थी और भारतीय बाजारोंको मुख्य सड़कोंपर रखवानेका आग्रह करती थी वही अब उन्हें ऐसे दुर्गम स्थानमें खदेड़नेका माध्यम बनाई जा रही है जहाँ वे कोई व्यापार नहीं कर सकते।

श्री वर्मरकी गवाहीसे एक बात साफ हो गई है। सरकारने मस्जिदकी जमह पूरी तरह विचार करनेके बाद दी थी। श्री वर्मर शपथपूर्वक नहीं कह सकते कि उनसे जो सिम्टमधक्त मिला था उसे उन्होंने बस्तीको स्थायी माननेका वचन नहीं दिया था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-१-१९११

१२९. निर्वासन और उसका अर्थ

दक्षिण आफ्रिकाके बहुत-से भारतीयोंमें देशप्रेमकी भावना आ रही है। यदि बिना मेहनतके देशकी कुछ सेवा सम्भव हो तो वे करना भी चाहते हैं। किन्तु स्वार्थके सामने लाचार हो जाते हैं। फिलहाल ट्रान्सवालमें जिस प्रकारसे सत्याग्रह चल रहा है उसपर बहुत थोड़े ही भारतीय पर्याप्त ध्यान दे रहे हैं। अपने काममें डूबे रहनेके कारण वे यह नहीं जानते कि उनके ही भाइयोंपर क्या अत्याचार हो रहा है और क्यों हो रहा है। और कुछ तो ऐसे भी हैं जो सोचते हैं कि कष्ट-सहन करनेवाले मुख्य रूपसे तमिल हैं इसलिए उनके बारेमें विचार आवश्यक नहीं है।

हम ऐसे भारतीयोंका ध्यान नीचे लिखे विचारोंकी ओर आकर्षित करते हैं। जिन्हें ये विचार पसन्द आयें वे अन्य भारतीयोंका ध्यान उनकी ओर आकर्षित करनेकी कृपा करें।

इस समय कुछ दिनोंसे भारतीय सत्याग्रहियोंको भारत भेजा जा रहा है। इस तरह अनेक बहादुर तमिल भेजे जा चुके हैं। इनमें कुछ दक्षिण आफ्रिकामें जन्मे हैं। कुछ लोगोंके बाल-बच्चे ट्रान्सवालमें आश्रयविहीन पड़े हुए हैं। यदि भारतसे मदद न मिली होती तो कहा नहीं जा सकता कि इनका क्या होता।

जिन भारतीयोंको निर्वासित किया जाता है उनपर मुकदमा अदालतमें नहीं बल्कि कानूनी तौरपर चलाया जाता है। इसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालयमें अपील नहीं हो सकती। सिर्फ नेटालमें निर्वासित किये जाने तक तो कोई बड़ा नुकसान नहीं है क्योंकि भारतीय नेटालसे तुरन्त फिर दाखिल हो सकता है और जेल जा सकता है।

हमें जिस बातपर विशेष विचार करना है वह है भारत भेजे जानेकी बात। ट्रान्सवालकी सरकारको कानूनन तो उन्हें केवल अपनी सीमाके पार निर्वासित करनेकी सत्ता प्राप्त है। तब फिर वह उन्हें भारत किस तरह भेज सकती है? ट्रान्सवालकी सरकार अपना यह नीचतापूर्ण उद्देश्य ब्रिटिश उपनिवेशकी मारफत पूरा नहीं कर सकती। उसने पुर्तगाली सरकारके साथ यह तय किया है और उसकी मारफत अपना यह जुल्मी इरादा पूरा करती है। अब इतना तो स्पष्ट है कि ट्रान्सवालकी सरकारको पुर्तगाली सरकारके साथ ऐसा करार करनेका कानूनी हक नहीं है। ऐसी बात बड़ी सरकारकी सम्मतिके बिना कदापि नहीं हो सकती। यदि किसी और राज्यने पुर्तगालकी सरकारके

साथ ऐसी शर्त तय की होती तो वह युद्धका कारण बन जाती। इसका यह अर्थ हुआ कि बड़ी सरकार अपनी प्रजाको अपनी सहप्रजापर अत्याचार करनेसे नहीं रोक सकती। वह ट्रान्सवालसे डरती है और इसका यह अर्थ भी निकलता है कि बड़ी सरकारकी सत्ताका उपयोग अत्याचारीके अत्याचारको स्थायी बनाने और उसकी मदद करनेमें होता है।

इस स्थितिमें हमें क्या करना चाहिए? यदि भारतीयोंमें दम है तो जो हार मानकर बैठ गये हैं उन्हें फिर उठ खड़ा होना चाहिए। इन्साफ कुछ अदालतोंमें जानेसे नहीं मिलेगा। हमें अपने ही बलपर जूझना है। ट्रान्सवालकी सरकार जितना अधिक जुल्म करे हमें उतना अधिक बल उतनी अधिक सहनशक्ति और निर्भयता बतानी है। हम चाहते हैं कि संघर्षमें भारतीय बहुतायतसे शामिल हों।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-१-१९११

१३० पारसी रुस्तमजी

श्री रुस्तमजीके बारेमें ट्रान्सवालकी सरकारने लम्बा उत्तर[1] भेजा है। श्री काछलियाने उसका जवाब[2] दे दिया है। ब्रिटिश लोकसभामें भी उसपर चर्चा हो रही है। यह सब ठीक रहा है। सरकारी अमलदारोंने श्री रुस्तमजीको तोड़ देनेकी कोई कोशिश उठा नहीं रखी। उन्हें अब उसीका फल भोगना पड़ रहा है। ऊपरसे वे भले ही चेहरेपर शिकन न आने दें किन्तु यह स्पष्ट जान पड़ता है कि इस बातको लेकर उनको काफी डाँट पड़ी है।

इमाम साहबसे सम्बन्धित जो शिकायत की गई थी सरकारने अपने इस पत्रमें उसका भी उल्लेख किया है। उसे उसका औचित्य स्वीकार करना पड़ा है। इन दो महानुभावोंने जो दुःख भोगा है उसका लाभ आगे सजा पानेवाले सत्याग्रहियोंको मिलेगा। ईश्वरका नियम ऐसा ही अद्भुत है। हमारे लिए उसको मानकर चलना उचित है। यदि दुःख भोगनेवाला उसका लाभ उठाये तो दुःखकी महिमा कम होती है। उसके दुःखकी सम्पूर्णता तो तभी है जब वह देहपात होने तक दुःख उठाये और बादके लोगोंको उसका लाभ मिले। हमारी कामना है कि श्री रुस्तमजी और इमाम साहबको ऐसी सद्बुद्धि और शक्ति मिले।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-१-१९११

१. देखिए १९-१-१९११ का केप-निवासकी ओरसे निकले भारतीय संघके अध्यक्षको भेजा गया पत्र; यह इंडियन ओपिनियनमें, २८-१-१९११ को उद्धृत किया गया था।

२. देखिए "पत्र: केप-निवासको" पृष्ठ २०५-०७।

१३१. पत्र: नारणदास गांधीको

जोहानिसबर्ग
फाल्गुन बदी ४ संवत् १९६५
[मार्च २९, १९०९]

चि. नारणदास,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है।

तुम आदरणीय खुशालभाईकी[1] अनुमति न मिलनेके कारण नहीं आ सकते यह बात मेरी समझमें आ सकती है। उनकी मर्जीके अनुसार चलना तुम्हारा धर्म है।

वहाँ रहते हुए भी तुम यहाँके उद्देश्यों (की पूर्ति)में सहायता कर सकते हो। [हिन्द] स्वराज्य नामक पुस्तक जब्त कर ली गई है। इससे प्रतीत होता है कि वहाँ भी बहुत संघर्ष करना पड़ेगा। ऐसा करनेके लिए तुमको चरित्र-निर्माण करना चाहिए। क्या तुम अपने धर्मके मूल तत्वोंसे परिचित हो? कदाचित् तुम कहोगे मुझे तो सम्पूर्ण गीता कण्ठस्थ है उसका अर्थ भी जानता हूँ। तब फिर चाचाजी मूल तत्वोंके बारेमें क्यों पूछ रहे हैं? मैं तो मूल तत्व जाननेका अर्थ तदनुसार व्यवहार करना लगाता हूँ। दैवी सम्पत्का प्रथम गुण अभय है। यह श्लोक तुम्हें याद होगा। क्या तुमने कुछ भी अभय–पद प्राप्त किया है? क्या तुम कर्तव्यको शरीरके लिए जोखिम होनेपर भी निडर होकर करोगे? जबतक यह स्थिति प्राप्त न हो तबतक इसका अभ्यास करना और उस तक पहुँचनेका प्रयत्न करना। अगर ऐसा किया तो तुम बहुत-कुछ कर सकोगे। इस प्रसंगमें तुम्हें प्रह्लाद सुधन्वा[3] आदिके चरित्र याद करनेकी जरूरत है। इन सबको दन्तकथाएँ न मान लेना। उस प्रकारके कर्म करनेवाले भारतके लाल हो चुके हैं। इसी कारण हम इन आख्यानोंको कण्ठस्थ करते हैं। ऐसा न मान लेना कि आज प्रह्लाद सुधन्वा हरिश्चन्द्र और श्रवण भारतमें नहीं हैं। जब हम इस योग्य बनेंगे तब उनसे भेंट भी हो जायेगी। वे यहाँ बम्बईकी चालों में नहीं दिखाई देंगे। पथरीली भूमिमें गेहूँकी फसलकी आशा नहीं की जा सकती। विशेष न लिखूँगा। दैवी सम्पत्के गुणोंपर पुनः विचार करना। उनको ध्यानमें रखकर इस पत्रको पढ़ना और तदनन्तर उसके अनुसार व्यवहार करनेका प्रयत्न करना। [हिन्द] स्वराज्य में सत्याग्रहका जो प्रकरण है, उसे एक बार फिर पढ़ लेना और उसपर विचार करना। कोई प्रश्न पूछना हो तो पूछ लेना। बम्बईमें मले

१. गांधीजीके चचेरे भाई और नारणदास गांधीके पिता; देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको" खण्ड ९, पृष्ठ ४५२-५३। इसमें गांधीजीने नारणदासको दक्षिण आफ्रिका आनेके लिए लिखा था।

२. भगवद्गीता, १६, १-३।

३. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ १९८ और २१९।

ही रहो। लेकिन मनमें यह निश्चित समझ लेना कि बम्बई साक्षात् नरक है और उसमें सार कुछ नहीं है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें लिखित मूल गुजराती पत्रकी नकल (सी० डब्ल्यू० ४९२५)से।
सौजन्य : नारणदास गांधी।

१३२. पत्र : मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ११, १९११

महोदय,

प्रिटोरियाके एक व्यवसायी श्री इस्माइल आदमने मेरे संघको नीचे लिखी घटनाकी सूचना दी है। उनके पास पार्कसे प्रिटोरिया तक का पहले दर्जेका वापसी टिकट है जिसका नम्बर १२७१ है। वे कल शाम ८–१ की गाड़ीसे प्रिटोरिया जा रहे थे। वे गाड़ीपर सवार हुए, उनका टिकट जाँचा गया और चूँकि आरक्षित [रिजर्व्ड] डिब्बेमें जगह नहीं थी इसलिए वे दूसरे डिब्बेमें घुस गये। उस डिब्बेमें चार यूरोपीय बैठे थे। उन्होंने अपने डिब्बेमें श्री इस्माइल आदमकी उपस्थितिपर कोई आपत्ति नहीं की। फिर भी कंडक्टरने श्री इस्माइल आदमको उस डिब्बेमें देखकर उनसे उसमें बैठनेका कारण पूछा। श्री इस्माइल आदमने उत्तर दिया कि यदि स्थान मिले तो वे बड़ी खुशीसे किसी दूसरे डिब्बेमें चले जायेंगे। कंडक्टरने इसपर कहा कि उनको बदली करनी ही पड़ेगी। श्री इस्माइल आदमने उसका यह अर्थ समझा कि उनको गाड़ीकी बदली करनेके लिए कहा जा रहा है इसीलिए उन्होंने पूछा कि बदली क्यों करनी होगी। लगता है कि इससे कंडक्टरको क्रोध आ गया। उसने उन्हें कहा कि उनको दूर्नफॉटीन स्टेशनपर उतरना पड़ेगा और स्टेशन आनेपर जब गाड़ी चल ही रही थी किन्तु उसकी चाल कुछ धीमी हो गई थी उसने उन्हें गाड़ीसे प्लेटफ़ार्मपर खींच लिया।

मेरे संघकी राय है कि अभीतक ऐसे जितने भी मामलोंकी ओर उसका ध्यान खींचा गया है उनमें यह सबसे गम्भीर है। यदि आप कृपा करके इस मामलेमें तुरन्त कार्रवाई करनेका आश्वासन देंगे तो मेरे संघको बड़ी प्रसन्नता होगी। प्रिटोरियामें श्री इस्माइल आदमका पता है : ११ क्वीन स्ट्रीट।

यद्यपि मेरा संघ अपना सार्वजनिक कर्तव्य समझकर और जिस समाजका वह प्रतिनिधित्व करता है उस समाजके हितोंकी खातिर ही इस घटनाकी ओर ध्यान

[1] इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और वह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षके हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।

आकर्षित करता है फिर भी सबको यह नहीं मालूम कि श्री इस्माइल आदम इस बारेमें अपनी ओरसे कोई कार्रवाई करेंगे या नहीं। कोंकस्टर इतना भी खयाल नहीं करता कि यात्रियोंको बन्दी गाड़ीसे उतारनेका मतलब उनकी जानको जोखिममें डालना भी हो सकता है। इससे पता चलता है कि स्थिति असाधारण है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-४-१९११

१३३ रंगदार लोगोंके विरुद्ध युद्ध

जोहानिसबर्गकी नगरपालिकाको उकसाया जा रहा है कि वह अपने प्रत्येक भारतीय और वतनी कर्मचारीको बिना इस बातकी परवाह किये कि उसने कितनी ईमानदारीसे काम किया है या वह कितना पुराना सेवक है निकाल बाहर करे। नगरपालिका अथवा कोई और विभाग अपनी नौकरीमें नये रंगदार आदमियों अथवा एशियाइयोंको न ले तो इसके विरोधमें कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता। परन्तु जो लोग पहलेसे काम कर रहे हैं उनको एकाएक निकाल देना नगरपालिका और उसे ऐसा करनेपर मजबूर करनेवालोंके लिए कोई अच्छी बात नहीं है। साउथ आफ्रिकन न्यूज ने इस बारेमें बहुत ठीक लिखा है

> काले आदमीको नौकरीसे हटाकर उसकी जगह गोरेको रख दीजिए। जैसा कि सुझाया गया है वतनियोंसे खेत छीनकर गोरे निवासियोंको दे दीजिए। और फिर सोचिए कि इन हलोंमें गये वतनियोंका क्या होगा? गरीब गोरोंकी समस्या हल करनेकी अपेक्षा इस समस्याका हल करना कहीं अधिक मुश्किल होगा। जबतक वतनियोंसे उनके साधन नहीं छीने जायेंगे तबतक कोई समस्या खड़ी नहीं होगी; किन्तु जैसे ही आपने उन्हें अलग बाड़ोंमें रखा उनका दमन किया या स्थायी रूपसे उन्हें बेरोजगार बनाया तो आप उसी क्षण उस महान् संकटको न्योता देंगे जो दमन-नीति अपनानेसे पैदा होता है।

इसमें कोई शक नहीं कि यदि एशियाई और खास तौरपर वतनी कर्मचारियोंको निर्दयतापूर्वक और अविचारपूर्वक हटाया जायेगा तो इसका परिणाम भयंकर ही होगा। परन्तु एशियाइयों और रंगदार जातियोंके खिलाफ यह जो हलचल जारी है इससे ब्रिटिश भारतीयों अन्य एशियाइयों तथा वतनियोंको भी आवश्यक सबक तो सीख ही लेना चाहिए। वतनियोंको गोरे उपनिवेशियोंपर इसके लिए निर्भर नहीं रहना चाहिए कि वे उनके लिए काम खोजें या उन्हें काम दें। अपनी जीविकाके लिए उन्हें स्वतन्त्र साधन तलाश करने होंगे और जैसे ही कुछ नेता स्वयं इस समस्याको हल करनेमें लगेंगे यह अत्यधिक सरल नजर आयेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २-४-१९११

१३४ नेटाल भारतीय कांग्रेसका कर्तव्य

हमें मार्कसे प्राप्त तारसे ज्ञात हुआ है कि गिरमिट प्रथाकी समाप्तिका विधेयक वाइसरॉयकी विधान परिषद् (लैजिस्लेटिव कौंसिल) में पास कर दिया गया है। वाइसरॉयने कहा है कि नेटाल-सरकारसे अच्छी तरह बातचीत करनेके बाद ही कानून अमलमें लाया जायेगा। इसका अर्थ यह निकला कि यदि भारतीय निष्क्रिय बैठे रहेंगे तो वाइसरॉय स्वयं गिरमिट-प्रथाको समाप्त नहीं करेंगे। यदि भारतीय अपना कर्तव्य पूरा करेंगे तो गिरमिट प्रथा समाप्त हुए बिना न रहेगी। किन्तु हम देखते हैं कि कुछ भारतीयोंका खयाल यह है कि गिरमिट समाप्त होनेसे हानि है। हानि किसकी है? गिरमिटपर आनेवाले मजदूरोंको यह गुलामी न मिल सकी इसे कोई हानि माने तो भले ही माने। हम इसमें अन्य किसकी हानि मान सकते हैं? हमें गिरमिटियोंके आनेसे स्वतन्त्र भारतीयोंकी तो बहुत ही हानि दिखाई देती है। उनमें जो मजदूर हैं उन्हें मजदूरी नहीं मिलती। यदि मजदूरी मिलती है तो उसमें बहुत कम पैसे मिलते हैं। इससे मजदूरोंकी और जो मजदूर नहीं हैं उनकी भी बेइज्जती होती है, क्योंकि गिरमिटियोंके आनेसे हमारे विरुद्ध आपत्ति बढ़ती ही जाती है।

गिरमिट-प्रथा समाप्त हो जाने तो भारतीय कौमोंका दर्जा तुरन्त ऊँचा हो सकता है। गुलामीका अन्त होनेसे पाव बर्पोंके कानूनोंको हटवाया जा सकेगा और व्यापारियों पर जो हमला किया जाता है वह भी कम हो जायेगा। बेशक बादमें भी लड़ाई तो लड़नी ही पड़ेगी परन्तु यह लड़ाई अधिक उत्साहसे लड़ी जा सकेगी और उसमें सफलताकी आशा भी अधिक होगी। जब दक्षिण आफ्रिकामें केवल स्वतन्त्र भारतीय ही होंगे तब भारतीय समाज बहुत ज्यादा काम कर सकेगा। इस प्रकार चाहे जैसे विचार करें, गिरमिट-प्रथाकी समाप्तिमें ही भारतीयोंका लाभ है।

फिर यह भी विचारणीय है कि यदि भारतीय गिरमिटकी समाप्तिका आन्दोलन छोड़ दें तो भी संघ-संसद तो उसे समाप्त करेगी ही। जब ऐसा होगा तब भारतीयोंको लज्जित होना पड़ेगा और यश प्राप्त करनेका जो अवसर आज मिला है वह पुनः नहीं मिल सकेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–४–१९११

१३५ पश्चिमकी भयंकर सभ्यता

विलायतके 'न्यू एज' नामक समाचारपत्रमें उक्त विषयपर एक व्यंग्यचित्र (कार्टून) छपा है। हम इस अंकमें उसकी प्रतिकृति दे रहे हैं। उसमें एक कबन्ध कूच करता हुआ दिखाया गया है। सबसे पीछे दिखाया गया है कि एक विचित्र और भयंकर आकृतिका सेनापति। इस विकराल आकृतिके शरीरके चारों ओर धुँआ उगलती हुई बन्दूक और खूनसे तर-ब-तर तलवारें झूल रही हैं और सिरपर तोप है। बाजूमें झूलते हुए बिल्लेपर खोपड़ीका चित्र है और बाँहपर क्रॉसका चिह्न अंकित है। (क्रॉसका चिह्न घायलोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाली टुकड़ीका चिह्न होता है।) मुँहमें दाँतोंसे ऐसा खंजर पकड़े हुए है जिससे खून टपक रहा है। कन्धेपर कारतूसोंसे भरी हुई पेटी दिखाई देती है। इस सम्पूर्ण चित्रका नाम दिया है 'मार्च ऑफ सिविलाइज़ेशन' (*अर्थात् सभ्यताका कूच*)। *इस व्यंग्यचित्रका जो वर्णन ऊपर दिया गया* है उसे पढ़कर किसी भी व्यक्तिका चेहरा गम्भीर हुए बिना नहीं रह सकता। इसपर विचार करें तो ऐसी प्रतीति हुए बिना नहीं रह सकती कि इस चित्रमें क्रूरताका जो भाव अंकित किया गया है पश्चिमकी सभ्यता वैसी ही और कदाचित् उससे भी अधिक क्रूर है। सबसे अधिक क्षोभजनक बात तो यह है कि खूनसे सने हथियारोंके बीचमें एक बड़ा क्रॉसका चिह्न अंकित किया गया है। यहाँ नई सभ्यताके दम्भकी हद हो जाती है। पहले भी बहुत खूंख्वार लड़ाइयाँ होती थीं किन्तु उनमें आधुनिक सभ्यताका दम्भ नहीं था। इस चित्रके वर्णनके साथ ही हम अपने पाठकोंको सत्याग्रहके लुभाई मूरकी झाँकी दिखाना चाहते हैं। एक तरफ पैसेकी भूख और दुनियाके भोगोंकी लालसाको पूरा करनेके जोशमें भेड़ियेकी तरह विकराल क्रूर जैसी सभ्यताको देखिये और दूसरी तरफ सच्ची टेकके लिए, न्यायनिष्ठाके लिए और बुराई फरमानको रद्द करानेके लिए धीरजसे भरी छाती हँसते चेहरे और आँखोंमें आँसूकी बूँद लाये बिना कुर्बानी हावसे संकट सहनेवाले सत्याग्रहीके चित्रका दर्शन कीजिए। इन दो दृश्योंमें से पाठकोंका मन किसकी ओर खिंचेगा? हम विश्वासके साथ कह सकते हैं कि सत्याग्रहीका दृश्य ही मनुष्य-जातिके हृदयको खींचता रहेगा और उसके संकटका बोझ जैसे-जैसे बढ़ता जायेगा वैसे-वैसे उसका प्रभाव अधिक गहरा होता जायेगा। ऐसा कौन है जिसके मनमें केवल इस एक दृश्यको देखकर ही यह भाव अंकुरित न हो कि मनुष्य-जातिकी मुक्ति और शक्ति दिखानेवाला एक-मात्र उपाय सत्याग्रह ही है। हम मानते हैं कि गोली मारनेकी अपेक्षा गोलीसे मरने या फाँसीपर चढ़ने आदि सभी बातोंमें धैर्यकी परीक्षा होती है। फिर भी सत्याग्रही द्वारा दुःख भोगने एक लम्बी अवधि तक शान्त मनसे अत्याचार सहने और बिना गोली मारे गोली खाकर मरनेमें जिस धैर्य और साहसकी जरूरत होती है, दूसरेको मारकर मरनेमें उसके शतांशकी भी जरूरत नहीं होती। सत्याग्रहके बलकी मुकाबले

उचित किसीकी तलवारमें नहीं है। किन्तु लोहेकी तलवार लेकर पैंतरे दिखानेवाले व्यक्तिको लोहेकी अधिक तेज तलवारके आगे झुकना पड़ता है। इसीलिए सत्याग्रहीकी कथा बड़ी पवित्र भावनाके साथ बाँधी जाती है। जिस आदमीमें सत्याग्रहके पालनका बल नहीं होता उसका मन सहज ही शरीर-बलका सहारा लेना चाहता है क्योंकि वह अपेक्षाकृत सुगम है। भारतके लिए स्वराज्य प्राप्त करनेकी धुनमें उन्मत्त और मरणातुर कुछ भारतीय ऐसा सोचते जान पड़ते हैं कि सत्याग्रहके अन्तमें पशुबल ही का आश्रय लेना पड़ता है, अर्थात् सत्याग्रह एक सीढ़ी है जो पशुबलके पागलपनमें कूदनेसे पहले आती है। ऐसी धारणा रखनेवाले लोगोंको यदि सागरको नापनेवाले कुएँके मेंढकके समान माना जाये तो अनुचित न होगा। तथ्य तो यह है कि सत्याग्रहके लिए आवश्यक सहनशीलता जिस पुरुषमें विकसित नहीं हो पाती वह हताश होकर शरीर-बलका उपयोग कर बैठता है और थोड़ी ही अवधिमें अपने दुःखोंका अन्त करनेकी गरजसे बावला होकर और आँखें मूँदकर हिंसाके कुएँमें कूद पड़ता है। ऐसा व्यक्ति कभी सत्याग्रही रहा ही नहीं। ऐसा व्यक्ति सत्याग्रहको समझना ही नहीं चाहता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २-४-१९११

१३६. पत्र : मगनलाल गांधीको

फाल्गुन बदी ७ [संवत् १९६७]
[अप्रैल २, १९११]

चि० मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं उसे इस उद्देश्यसे तुम्हारे पास वापस भेज रहा हूँ कि उत्तर तुम्हारी समझमें आ सके।

जो शंकाएँ तुमने उठाई हैं उनके उत्तर देनेका प्रयत्न करूँगा। परन्तु वे शायद उससे भी पूरे तौरपर समझमें न आ सकेंगी। यदि तुम [हिन्द] स्वराज्य नामक पुस्तिका एक-दो बार फिर पढ़ जाओगे तो जो स्पष्टीकरण तुमने माँगा है वह क्वचित् उसमें मिल जायेगा।

जिस हद तक हमने [पाश्चात्य] सभ्यताको अपनाया है, उस हद तक हमें अपने कदम पीछे हटाने होंगे — इसमें सन्देह नहीं है। हमारे कामका यह भाग सबसे कठिन है परन्तु इसे पूरा करनेमें ही छुटकारा है। यदि हम गलत रास्तेपर चले जाते हैं तो पीछे लौटे बिना काम नहीं चलता। जिन प्रवृत्तियोंमें हम रस ले रहे हैं उनके प्रति अनासक्त होनेसे ही छुटकारा मिलेगा। ऐसा करनेके लिए हमें उनके प्रति उपेक्षाका भाव रखना उचित है। जो साधन लाभदायक दिखाई पड़ रहे हैं वे तो छोड़े नहीं जा सकते। जो व्यक्ति यह अनुभव कर लेगा कि किसी चीजमें दिखाई पड़नेवाले लाभकी अपेक्षा हानि अधिक है वही उसे त्यागेगा। मुझे तो लगता है कि पर्वोंके पानी भेजे

जाने और जानेकी व्यवस्थासे कोई लाभ नहीं हुआ है। जब हम रेल और ऐसे ही अन्य साधनोंको छोड़ देंगे तब पचोंकी झंझटमें न पड़ेंगे। जिस वस्तुमें सचमुच दोष नहीं है उसे एक निश्चित सीमा तक काममें लाया जा सकता है। हम लोग जो [पाश्चात्य] सभ्यतासे घिरे हैं डाक और ऐसी अन्य वस्तुओंका उपयोग कर सकते हैं किन्तु हम उनका उपयोग विवेकके साथ करेंगे तो उनके पीछे दीवाने न बनेंगे और अपने व्यवसायकी बढ़ानेके स्थानपर झंझट घटायेंगे ही। जिस व्यक्तिकी समझमें यह बात आ जायेगी उसे जिन गाँवोंमें रेल या डाकखाना नहीं है वहाँ उन्हें ले जानेका मोह न होगा। स्टीमर-जैसी अनावश्यक वस्तुएँ एकाएक नहीं जा सकतीं और सब लोग उन्हें छोड़ेंगे भी नहीं इस खयालसे हमें और तुम्हें चुप बैठे रहकर उनके उपयोगमें वृद्धि न करनी चाहिए। यदि एक भी व्यक्ति उनका उपयोग कम कर देगा या बन्द कर देगा तो दूसरे लोग उतनी ही दूर तक वैसा करना सीख जायेंगे। जो व्यक्ति यह मानता है कि — किसी कामको करना ठीक है वह तो उसे करता ही रहेगा फिर दूसरे लोग उसे चाहे करें, चाहे न करें। सत्यके प्रचारकी यही विधि है। इसकी दूसरी विधि संसारमें देखनेमें नहीं आई।

संसारका मोह त्यागना कठिन है। चमड़ी उतारना जीवित व्यक्तिको आगमें झोंकना लोगोंके कान और नाक काटना निःसन्देह जंगलीपन था लेकिन चंगेज खाँ तैमूरलंग और ऐसे ही अन्य लोगोंके अत्याचारोंकी अपेक्षा संसारका अत्याचार बढ़चढ़कर है। इसी कारण हम उसमें फँस गये हैं। आधुनिक अत्याचार मोहजनित है इस कारण वह अधिक खराबी करता है। एक व्यक्तिके अत्याचारके सामने टिका जा सकता है परन्तु जनताके नामसे जनतापर किये गये अत्याचारका सामना करना बहुत कठिन है। ऐसा लगता है कि पहले कुछ शासक मूर्खराज होते थे और कुछ बुद्धिमान निकल जाते थे। यदि हमपर केवल एडवर्ड ही शासन करते तो ठीक होता परन्तु हमपर और तुमपर अंग्रेज-जाति राज्य करती है। इस वाक्यके अर्थपर विचार करना। यहाँ मैं लोगोंके संसार-मोहकी बात नहीं कहता। भारतमें साधारणतः तो यही माना जाता है कि संसार एक पाखण्ड है। अधसाधारण बुद्धिका व्यक्ति भी पाश्चात्य सभ्यताके रंगमें रँगकर संसारमें मोहग्रस्त हो जाता है।

यह कहकर कि पिण्डारियों (लुटेरों) पर दयाका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता तुमने आत्माके अस्तित्वको अथवा उसके मुख्य गुणको माननेसे ही इनकार किया है। भगवान् पतंजलिने[1] दया आदिका जो महत्त्व बताया है उसके विचार-मात्रसे चित्त प्रसन्न होता है। असल बात यह है कि हम लोगोंके मनमें भयने घर कर रखा है। इस कारण सत्य दया आदि गुण विकसित नहीं हो पाते। फिर हम यह मान लेते हैं कि क्रूर मनुष्योंपर दया कुछ असर नहीं करती। यदि हम ऐसे व्यक्तिके प्रति दया करते हैं जो हमारे प्रति दया करता है तो वह दया नहीं कही जा सकती यह तो दयाका बदला है।

१ योगदर्शनके प्रणेता।

यदि कोई व्यक्ति बिना कुछ लिये हमारी रक्षा करता है अथवा हम उसे अपनी रक्षाके बदलेमें कुछ देते हैं तो हम कमजोर माने जायेंगे। यदि हमें पिण्डारियों आदिके नाशसे बचनेके लिए दूसरोंकी सहायता लेनी पड़ती है तो हम स्वराज्यके अयोग्य हैं। यदि हम उन्हें शरीर-बल द्वारा परास्त करना चाहते हैं तो हमें अपने भीतर ही शरीर बल उत्पन्न करना होगा। उस हालतमें हमें कर देनेकी आवश्यकता न रह जायेगी। नारी अपने स्वत्वके रूपमें अपने पतिसे रक्षण माँगती है परन्तु वह अबला ही मानी जाती है।

स्वराज्य उनके लिए है जो उसे समझते हैं। तुम और हम तो उसे आज भी भोग सकते हैं। उसी प्रकार औरोंको सीखना होगा। किसीका दिलाया हुआ राज्य स्वराज्य नहीं पर-राज्य है फिर दिलानेवाला चाहे भारतीय हो चाहे अंग्रेज।

गो-रक्षा प्रचारिणी समितियोंको गो-वध प्रचारिणी समितियाँ कहना ठीक होगा। क्योंकि उनका उद्देश्य गायको भूखा लाना अथवा मुसलमानोंपर दबाव डालकर बचाना है।

धन देकर गायको छुड़ानेसे गायकी रक्षा नहीं होती। यह रास्ता तो कसाईको धोखेबाजी सिखानेका है। अगर हम मुसलमानोंपर दबाव डालनेका रास्ता अख्तियार करेंगे तो वे और अधिक गो-वध करेंगे। परन्तु यदि हम उन्हें समझा लें या उनके विरुद्ध सत्याग्रह करें तो वे गायकी रक्षा करेंगे। ऐसा करनेके लिए गो-रक्षा प्रचारिणी सभाकी आवश्यकता नहीं। इस सभाका काम तो हिन्दुओंको हिन्दूपन सिखाना होना चाहिए। बैलको कम दाना देने पैने आरेसे टोचने उससे बूतेसे ज्यादा काम लेने और इस प्रकार उसे कष्ट देकर मारनेसे तो तलवारकी एक ही चोटसे उसका काम तमाम कर देना ज्यादा अच्छा है।

श्री रामचन्द्र अथवा अन्य महापुरुषोंके उदाहरणोंका अक्षरश: स्थूल अर्थ लेना बहुत उलझनमें पड़ना है। रावणका दस-शीश और बीस भुजाओंवाले शरीरके रूपमें होना मुझे सम्भव नहीं लगा परन्तु उसे महाविषयी और जड़ मानकर रामचन्द्रजी रूपी चैतन्यने उसका विनाश किया यह बात समझमें आ सकती है। तुलसीदासजीने राम चन्द्रजीको मद मोह और महा ममता रूपी रजनीके तमपुंजका नाश करनेवाले भगवान् भास्करकी उपमा दी है। जब हममें मद ममता और मोह शेष नहीं रहेंगे *तब क्या तुम समझते हो कि हममें किसीके भी शरीरका नाश करनेकी कामना लेश-मात्र* भी रह सकती है? अगर तुम नहीं कहते हो तो रामचन्द्रजी जो अभिमान ममता मोह आदिसे रहित और दयाके निधान थे रावणका वध किस प्रकार कर सकते थे? फिर भी जब हम उस विभूतिको प्राप्त कर लेंगे और लक्ष्मणकी तरह १४ वर्ष तक निद्राका त्याग कर देंगे और ब्रह्मचर्यका पालन करेंगे तब समझ सकेंगे कि शरीर बलका प्रयोग कहाँ किया जा सकता है।

मैं यह कहना चाहता हूँ कि विनम्रतासे सब सुलभ हो जाता है। तुमने दृष्टान्त मालकी मिसाल ठीक दी है। मुझसे यह कहते रहना काफी नहीं है कि तुममें उक्त भाव मौजूद है। वह भाव कसौटीपर कसा जाना चाहिए। यह तो सोचो कि हरिश्चन्द्रको सत्यके प्रति अपनी निष्ठा सिद्ध करनेसे पूर्व कितने संकटोंका सामना करना पड़ा था।

यह भी सोचो कि सुधन्वाकी भक्ति खरी सिद्ध हुई, उससे पूर्व उसे कितने कष्ट-सहन करने पड़े थे। इन्हें केवल दन्तकथा मान लेनेका कोई कारण नहीं है। नाम और रूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। परन्तु जिन्होंने इन कथाओंको लिखा है उन्होंने इनके द्वारा अपने अनुभव व्यक्त किये हैं। ट्रान्सवालमें भी मुझ-जैसे लोग जो आवाज उठा रहे हैं, कसौटीपर कसे जा रहे हैं। यह भी याद रखो कि सत्याग्रही माने जानेवाले बहुत-से दम्भी निकले हैं। अब सच्चा सत्याग्रही किन्हें कहा जाये? क्या आदि गुणोंसे सम्पन्न व्यक्तियोंको। यह बात कहीं नहीं लिखी गई है कि उन्हें कष्ट-सहन न करना होगा। फिर दुःख कहते किसे हैं? गीता कहती है कि मन ही बन्धन तथा मोक्षका कारण है।[1] सुधन्वा खौलते तेलमें डाल दिया गया था। जिस व्यक्तिने उसे तेलमें डलवाया था उसने सोचा था कि उसे इससे दुःख होगा किन्तु सुधन्वाको उससे अपनी भक्तिकी तीव्रताको प्रदर्शित करनेका सुअवसर मिल गया।

सब लोग एक ही समय गरीब हो जायें या धनाढ्य बन जायें ऐसा कभी नहीं होगा। परन्तु यदि हम भिन्न-भिन्न व्यवसायोंकी बन्धाओं और बुराइयोंपर विचार करें तो विदित हो जायेगा कि संसारका निर्वाह किसानोंसे ही रहा है। किसान तो गरीब ही है। यदि कोई वकील परमार्थका दम भरता है तो उसे अपनी आजीविका अपने शरीरके श्रमसे कमानी चाहिए और वकालत निःशुल्क करनी चाहिए। वकील आलसी हैं यह बात तुम्हें एकाएक न जँचेगी। जिस प्रकार कोई विषयी पुरुष अत्यधिक भोग-विलासके कारण शिथिल हो जानेपर विषयोंमें लीन रहता है उसी प्रकार एक वकील शक्तिविहीन हो जानेपर भी धन कमाने बड़ा बनने और बादमें सुखसे रहनेकी इच्छासे जी-तोड़ परिश्रम करता रहता है। वह अपने जीवनका अन्तिम भाग ऐशोआराममें बिताना चाहता है। उसका लक्ष्य यही रहता है। मैं जानता हूँ कि इसमें थोड़ी अतिशयोक्ति है। परन्तु जो-कुछ मैंने कहा है वह बहुत अंशोंमें ठीक है।

डॉक्टरोंकी टोली देशकी क्या सेवा करेगी? वे पाँच-सात वर्ष तक मृत शरीरोंकी चीरफाड़ करते हैं जीवोंको जानसे मारते हैं और अनुपयोगी सूत्रोंको कण्ठस्थ करते हैं। इससे वे कौन-सी बड़ी चीज हासिल करते हैं? शारीरिक रोगोंके निवारणकी योग्यतासे देशका क्या काम होगा? उससे तो हमारे मनमें शरीरके प्रति ममत्व ही बढ़ेगा। हम चिकित्सा-शास्त्रके ज्ञानके बिना भी रोगोंकी रोकथामकी योजना बना सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि डॉक्टरों या चिकित्सकोंकी आवश्यकता ही नहीं है। वे तो हमारे पीछे रहेंगे ही। कहनेका अर्थ यह है कि बहुत-से युवक इस पेशेको अनुचित महत्त्व देकर इस शास्त्रके अध्ययनमें सैकड़ों रुपये और कई साल बरबाद करते हैं—यह न होना चाहिए। यह जान लेना चाहिए कि डॉक्टरोंसे हमें रत्ती-भर भी लाभ नहीं हुआ है और न होनेवाला ही है।

यह है तुम्हारी शंकाओंका उत्तर। भारतके उद्धारका बोझ अपने कन्धोंपर उठानेका अनावश्यक कार्य मत करो। अपना उद्धार करो। इतना ही बोझ बहुत है।

[1] मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । यह श्लोक जो गीताका बताया जाता है, ब्रह्मबिन्दु उपनिषद्का है।

इस पत्रका उत्तर महाप्रबन्धक (जनरल मैनेजर)ने यह दिया है कि इस मामलेमें तुरन्त जाँच की जायेगी। इसपर रेल-अधिकारी श्री इस्माइल आदमसे मिले भी हैं। मुझे मालूम हुआ है कि श्री इस्माइल आदम स्वयं भी कार्रवाई करना चाहते हैं।

फकीरा और परभू नायकर

ये दोनों व्यक्ति शुक्रवारको[1] छूट गये। गुजराती हिन्दुओंमें बचे हुए सत्याग्रहियोंमें श्री फकीरा एक पक्के सत्याग्रही हैं। वे छः-सात बार जेल हो आये हैं। उन्होंने अपनी चिन्ता नहीं की। श्री काछलिया और अन्य सज्जन [जेलसे] उन्हें और श्री नायकरको लेने गये थे। श्री फकीराने समाचार दिया कि सभी सत्याग्रही प्रसन्न हैं।

कैदियोंसे मुलाकात

श्री कैलेनबैक रविवारको कैदियोंसे मिलने डीपक्लूफ गये थे। वे श्री सोराबजीसे मिले। उनका स्वास्थ्य अच्छा था। उन्होंने खबर भेजी है कि सभी सत्याग्रहियोंका उत्साह अक्षुण्ण है। श्री कैलेनबैक लगभग एक घंटे तक श्री सोराबजीके साथ रहे।

डेलागोआ-बेमें सत्याग्रही

डेलागोआ-बेसे श्री चोकसिंगाम पिल्लेका पत्र आया है। उसमें वे कहते हैं कि अठारह भारतीय अभीतक स्टीमरमें नहीं चढ़ाये गये हैं। वे यह भी लिखते हैं कि उनके झगड़नेसे खुराकमें फेरफार हुआ है और अब उन्हें खुराक ठीक मिलेगी।

गोरे सत्याग्रही

भारतीय समाज द्वारा सत्याग्रह किये जानेके बाद उसकी हवा चल पड़ी है। ऑरेंज रिवर कालोनीमें अंग्रेज लड़कोंको डच भाषा सीखनी ही पड़ेगी ऐसा कठोर नियम बनाया गया है। इस नियमके विरोधमें वहाँके शिक्षण-विभागके प्रमुख अधिकारीने इस्तीफा दे दिया है। अंग्रेजोंको इस समय बड़ी पीड़ा हो रही है। उक्त उपनिवेशकी संसदके सदस्य लिखते हैं कि किसी भी हालतमें इस नियमके आगे न तो झुकना चाहिए और न इसे बिलकुल मानना ही चाहिए। इस विषयमें बहुत चर्चा हो रही है और वहाँके समाचारपत्र भी प्रोत्साहन दे रहे हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-४-१९११

1. मार्च तारीख ३ को; उस दिन शनिवार था; देखिए "ट्रान्सवालकी टिप्पणियाँ" इंडियन ओपिनियन ९-४-१९११।

सभ्यताका अभियान

(देखिए पृष्ठ २११)

इस पत्रका उत्तर महाप्रबन्धक (जनरल मैनेजर)ने यह दिया है कि इस मामलेमें तुरन्त जाँच की जायेगी। इसपर रेल-अधिकारी श्री इस्माइल आदमसे मिले थे। मुझे मालूम हुआ है कि श्री इस्माइल आदम स्वयं भी कार्रवाई करना चाहते हैं।

फकीरा और बापू नायकर

ये दोनों व्यक्ति गुरुवारको[1] छूट गये। गुजराती हिन्दुओंमें बचे हुए सत्याग्रहियोंमें श्री फकीरा एक पक्के सत्याग्रही हैं। वे छः-सात बार जेल हो आये हैं। उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की। श्री काछलिया और अन्य सज्जन [जेलसे] उन्हें और श्री नायकरको लेने गये थे। श्री फकीराने समाचार दिया कि सभी सत्याग्रही प्रसन्न हैं।

कैदियोंसे मुलाकात

श्री कैलेनबैक रविवारको कैदियोंसे मिलने डीपक्लूफ गये थे। वे श्री सोराबजीसे मिले। उनका स्वास्थ्य अच्छा था। उन्होंने खबर भेजी है कि सभी सत्याग्रहियोंका उत्साह अक्षुण्ण है। श्री कैलेनबैक लगभग एक घंटे तक श्री सोराबजीके साथ रहे।

डेलागोआ-बेमें सत्याग्रही

डेलागोआ-बेसे श्री लोकलिंगम पिल्लेका पत्र आया है। उसमें वे कहते हैं कि अठारह भारतीय अभीतक स्टीमरमें नहीं चढ़ाये गये हैं। वे यह भी लिखते हैं कि उनके झगड़नेसे खुराकमें फेरफार हुआ है और अब उन्हें खुराक ठीक मिलेगी।

गोरे सत्याग्रही

भारतीय समाज द्वारा सत्याग्रह किये जानेके बाद उसकी हवा चल पड़ी है। ऑरेंज रिवर कालोनीमें अंग्रेज अध्यापकोंको डच भाषा सीखनी ही पड़ेगी ऐसा कठोर नियम बनाया गया है। इस नियमके विरोधमें वहाँके शिक्षण-विभागके प्रमुख अधिकारीने इस्तीफा दे दिया है। अंग्रेजोंको इस समय बड़ी पीड़ा हो रही है। उक्त उपनिवेशकी संसदके सदस्य लिखते हैं कि किसी भी हालतमें इस नियमके आगे न तो झुकना चाहिए और न इसे बिलकुल मानना ही चाहिए। इस विषयमें बहुत चर्चा हो रही है और वहाँके समाचारपत्र भी प्रोत्साहन दे रहे हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-४-१९११

१. अप्रैल तारीख ६को; उस दिन गुरुवार था; देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" इंडियन ओपिनियन ८-४-१९११ ।

१३८ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [अप्रैल ४ १९११]

और गिरफ्तारियाँ

श्री डेविड सॉलोमन श्री मूनसामी चेलन श्री मूनसामी पॉल और श्री जॉन एडवर्डके साथ गोवींसामी और श्री चिन्निया भी गिरफ्तार किये गये थे। इन सभीको निर्वासित करनेकी आज्ञा दी गई है।

इनके अलावा २ अप्रैल शनिवारको श्री गोविन्दसामी नारन पिल्ले श्री एमारी मूनसामी श्री मदुराई मुतू, श्री कन्नाबले नारन पिल्ले श्री मूनसामी श्री के चिन्ना सामी और श्री गोविन्दसामी गिरफ्तार किये गये। इनमें से दो तो किशोर ही हैं। ये सभी सिगार बनानेवाले एक गोरेके यहाँ काम करते थे।

मैंने जो सुना है उसके मुताबिक किसी भारतीयने ही इन्हें गिरफ्तार कराया है। वे स्वयं तो गिरफ्तारीके लिए तैयार थे ही किन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि किसी भारतीयको उन्हें गिरफ्तार करानेका साहस कैसे हुआ। यदि गिरफ्तारियोंका प्रबन्ध संघर्षको क्षति पहुँचानेके लिए कराया गया होता तो भी बात अलग होती। ये गिरफ्तारियाँ तो जबरदस्त कराई गई हैं। फिर भी उन भारतीयोंके इस कामसे संघर्षको बल ही मिला है।

इन लोगोंके बारेमें बहुत-कुछ जानने योग्य है। इनमें से ज्यादातर लोगोंके पास स्वेच्छया लिये गये पंजीयन प्रमाणपत्र थे। इन्हें वे जला चुके हैं। इन व्यक्तियोंमें से चार ट्रोकाडीरो होटलमें वेटर थे। उन्होंने अपनी नौकरियाँ छोड़ दी हैं। अन्तिम सात कई वर्षोंसे सिगारके कारखानेमें काम करते थे। उन्होंने भी अपनी नौकरियाँ छोड़ दी हैं। इनमें से कुछ आठसे दस पौंड प्रतिमास तक कमाते थे। ऐसे आत्म-बलिदानके उदाहरण शायद ही मिल सकेंगे। ध्यान देनेकी बात है कि ये सभी लोग तमिल हैं और बिलकुल बेघरबार होकर [जेल] चले जा रहे हैं। किसीकी माँ है किसीके बाल-बच्चे हैं। हमारे बीच भारतके ऐसे सपूतोंके रहते संघर्षका एक ही परिणाम हो सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि तमिल समाजका यह बलिदान दुनियाके इतिहासमें सदा अंकित रहेगा।

मेरी यही इच्छा है कि अन्य भारतीय इस त्यागमें कुछ तो हाथ बँटाएँ।

रेलगाड़ियोंमें ज्यादती

श्री इस्माइल कासिम प्रिटोरियाके व्यापारी हैं। वे पार्क स्टेशनसे पहले दर्जेमें प्रिटोरिया जा रहे थे। वे जबरदस्ती गाड़ीसे नीचे उतार दिये गये। इस विषयमें श्री काछलियाने प्रबन्धक (मैनेजर) के नाम जो पत्र लिखा है उसका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है।[1]

१ देखिए "पत्र : मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको" पृष्ठ ५१४-१५।

इस पत्रका उत्तर महाप्रबन्धक (जनरल मैनेजर)ने यह दिया है कि इस मामलेमें तुरन्त जाँच की जायेगी। इसपर रेल-अधिकारी श्री इस्माइल आदमसे मिले भी हैं। मुझे मालूम हुआ है कि श्री इस्माइल आदम स्वयं भी कार्रवाई करना चाहते हैं।

फकीरा और वरमू नायकर

ये दोनों व्यक्ति शुक्रवारको[1] छूट गये। गुजराती हिन्दुओंमें बचे हुए सत्याग्रहियोंमें श्री फकीरा एक पक्के सत्याग्रही हैं। वे छः-सात बार जेल हो आये हैं। उन्होंने अपनी चिन्ता नहीं की। श्री काछलिया और अन्य सज्जन [जेलसे] उन्हें और श्री नायकरको लेने गये थे। श्री फकीराने समाचार दिया कि सभी सत्याग्रही प्रसन्न हैं।

कैदियोंसे मुलाकात

श्री कैलेनबैक रविवारको कैदियोंसे मिलने डीपक्लूफ गये थे। वे श्री सोराबजीसे मिले। उनका स्वास्थ्य अच्छा था। उन्होंने खबर भेजी है कि सभी सत्याग्रहियोंका उत्साह अक्षुण्ण है। श्री कैलेनबैक लगभग एक घंटे तक श्री सोराबजीके साथ रहे।

डेलागोआ-बेमें सत्याग्रही

डेलागोआ-बेसे श्री चोकलिंगम पिल्लेका पत्र आया है। उसमें वे कहते हैं कि अठारह भारतीय अभीतक स्टीमरमें नहीं चढ़ाये गये हैं। वे यह भी लिखते हैं कि उनके झगड़नेसे खुराकमें फेरफार हुआ है और अब उन्हें खुराक ठीक मिलेगी।

गोरे सत्याग्रही

भारतीय समाज द्वारा सत्याग्रह किये जानेके बाद उसकी हवा चल पड़ी है। ऑरेंज रिवर कालोनीमें अंग्रेज लड़कोंको डच भाषा सीखनी ही पड़ेगी ऐसा कठोर नियम बनाया गया है। इस नियमके विरोधमें वहाँके शिक्षण-विभागके प्रमुख अधिकारीने इस्तीफा दे दिया है। अंग्रेजोंको इस समय बड़ी पीड़ा हो रही है। उक्त उपनिवेशकी संसदके सदस्य लिखते हैं कि किसी भी हालतमें इस नियमके आगे न तो झुकना चाहिए और न इसे बिलकुल मानना ही चाहिए। इस विषयमें बहुत चर्चा हो रही है और वहाँके समाचारपत्र भी प्रोत्साहन दे रहे हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-४-१९११

१. वस्तुतः तारीख ३ को; ... देखिए "ट्रान्सवालकी चिट्ठी" इंडियन ओपिनियन १-४-१९११।

१३९. पत्र: लिओ टॉल्स्टॉयको[1]

जोहानिसबर्ग
ट्रान्सवाल, दक्षिण आफ्रिका
अप्रैल ४, १९१०

प्रिय महोदय,

आपको स्मरण होगा कि जब मैं कुछ समयके लिए लन्दनमें[2] था तब मैंने आपसे पत्र-व्यवहार किया था। आपके एक विनम्र अनुयायीकी हैसियतसे मैं इसके साथ अपनी लिखी हुई एक पुस्तिका[3] भेज रहा हूँ। यह मेरी एक गुजराती रचनाका मेरा ही किया हुआ अनुवाद है। एक अजीब-सी बात यह हुई है कि मूल पुस्तिका भारत-सरकार द्वारा जब्त कर ली गई है। इसलिए मैंने अनुवादके प्रकाशनमें जल्दी की है। मेरी इच्छा तो नहीं है कि आपको परेशान न करूँ। परन्तु यदि आपका स्वास्थ्य गवारा करे और आप इस पुस्तिकाको देख जानेका समय निकाल सकें तो कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मैं इस रचनाके बारेमें आपकी समालोचनाकी कद्र करूँगा। एक हिन्दूके नाम लिखे हुए आपके पत्रकी[4] कुछ प्रतियाँ भी मैं आपके पास भेज रहा हूँ। आपने मुझे इसको प्रकाशित करनेका अधिकार दे दिया था। भारतीय भाषाओंमें से एकमें अनुवाद भी इसका हो चुका है।

मो० क० गांधी

काउंट लिओ टॉल्स्टॉय
यास्नाया पोल्याना
रूस

[अंग्रेजीसे]

श्री डी० जी० तेन्दुलकर लिखित महात्मा, खण्ड १ में प्रकाशित मूल टाइप की हुई प्रति जिसपर गांधीजीके हस्ताक्षर हैं, के ब्लॉकसे।

१. टॉल्स्टॉय ऐण्ड दि ओरियंट।

२. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ४४३-४५ और ५१३-१४।

३. हिन्द स्वराज या इंडियन होमरूल, देखिए पृष्ठ ६-६९।

४. इस पत्रका गांधीजीने गुजरातीमें अनुवाद किया था जो इंडियन ओपिनियन २५-१२-१९०९ और १-१-१९१० के अंकोंमें छपा था। बादमें यह पुस्तिकाके रूपमें भी प्रकाशित हुआ था।

प्रसिद्ध है। इन लोगोंका आपसी झगड़ा था जिसकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं है। उनका खयाल था कि वे आपसमें लड़-भिड़कर अपने मतभेद दूर कर लेंगे। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जो खबरें मिली हैं उनके अनुसार यद्यपि पुलिसको पहलेसे मालूम था कि झगड़ा होनेवाला है, फिर भी पुलिसने उसे रोकनेके लिए पर्याप्त सावधानीसे काम नहीं लिया।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १६-४-१९११

१४२ कोई चिन्ता नहीं

महात्मा टॉल्स्टॉयका जो पत्र[1] इस साप्ताहिकमें छापा गया था उसे नडियादके गुजरात अखबारमें उद्धृत किया गया इसपर उस अखबारको नोटिस दिया गया है कि उसके विरुद्ध मुकदमा चलाया जायेगा। कार्रवाई नये समाचारपत्र-अधिनियम (प्रेस ऐक्ट) के अन्तर्गत की जायेगी। हमारे पाठकोंको टॉल्स्टॉयके पत्रका ध्यान होगा। जिन्होंने उसे न पढ़ा हो मेरी सलाह है कि वे उसे पढ़ लें। उस पत्रमें एक वाक्य भी ऐसा नहीं है जिससे खून-खराबीका डर हो। फिर भी उसके प्रकाशकपर मुकदमा चलाया जा रहा है, यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है। इससे राज्य-अधिकारियोंका निरा पागलपन प्रकट होता है। वे डर गये हैं और डरके मारे यह निश्चय नहीं कर सकते कि क्या करने दिया जाये और क्या नहीं। हमें दुःख यह होता है कि यद्यपि उस लेखके सम्बन्धमें पहला उत्तरदायित्व हमारा है, फिर भी हमारे विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई और मुसीबत गुजरात के सम्पादकके सिर आ पड़ी। हमें आशा है कि गुजरात के सम्पादक और व्यवस्थापक निडर होकर अपने कर्तव्यका पालन करेंगे और तनिक भी पीछे न हटेंगे।

इस समय भारतकी पूरी परीक्षा हो रही है। बड़े-बड़े कानून बनाये गये हैं और लेखोंपर रोक लगाई जा रही है। इसके लिए मुख्य रूपसे बम चलानेवाले जिम्मेवार हैं परन्तु वे इससे रुक जायेंगे ऐसा नहीं है। सरकार कोई भेद किये बिना पत्रोंको बन्द करेगी तो उससे शान्ति कदापि नहीं होगी। हम तो मानते हैं कि इस प्रकारके दमनसे शान्ति होनेके बजाय अशान्ति बढ़ेगी। जिन लोगोंके मनमें विष नहीं था उनके मनमें भी विष पैदा हो जायेगा।

वास्तवमें टॉल्स्टॉयके पत्रका उद्देश्य लोगोंके मनमें शान्ति उत्पन्न करना है। उसका उद्देश्य यह है कि लोग दूसरोंके दोष निकालनेके बजाय अपने दोष देखें। यह सच है कि उसमें अंग्रेजी शासनसे हुई हानिका चित्र बहुत सुन्दर दिया गया है। इसका प्रभाव लेखपर रोक लगानेसे नष्ट न होगा। जनताकी आँखें खुल गई हैं और वे अब बन्द न होंगी।

[1] देखिए "महात्मा टॉल्स्टॉयका एक हिन्दूके नाम पत्र 'की'" पादटिप्पणी २, पृष्ठ १।

१४० पत्र जेल-निदेशकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
अप्रैल ४, १९११

सत्याग्रही कैदियोंके साथ होनेवाले सलूकके बारेमें आपका इस मासकी पहली तारीखका पत्र[2] संख्या १४५९/१ मिला। मेरा संघ यह माँग नहीं करना चाहता कि सत्याग्रहियोंको जिस श्रेणीमें रखा जाता है उनके साथ उससे भिन्न अन्य किसी श्रेणीका-सा सलूक किया जाये। मेरे संघकी शिकायत तो यह है कि यदि सरकार इन कैदियोंके साथ और ज्यादा सख्ती नहीं बरतना चाहती तो उनको ऐसी जेलमें न भेजा जाना चाहिए, जहाँ मेरे संघके खयालमें केवल पक्के अपराधी ही भेजे जाते और जहाँ अन्य सभी जेलोंमें मिलनेवाली सुविधाएँ छीन ली जाती हैं।

मेरे संघने खूराकके साथ घी मिलनेकी जो माँग की है, वह केवल सत्याग्रही कैदियोंके लिए नहीं है। मेरा संघ चाहता है कि घीकी सुविधा सभी भारतीय कैदियोंको दी जाये क्योंकि उससे वंचित होनेपर उनकी स्थिति उन वतनी कैदियोंसे भी बदतर हो जाती है, जिनको प्रतिदिन एक औंस चर्बी दी जाती है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-४-१९११

१४१ पत्र अखबारोंको[3]

अप्रैल ८, १९११

महोदय

कल भारतीयों द्वारा जो दुर्भाग्यपूर्ण उपद्रव किया गया उसकी खबर मैं पढ़ चुका हूँ।[4] यह मानना सरासर भूल है कि चालू अनाक्रामक प्रतिरोधसे इसका कोई सम्बन्ध है। यह लड़ाई एक खास फिरकेके सदस्योंमें हुई थी। यह फिरका अपने झगड़ालू स्वभावके लिए

1. इसका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया और यह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अ० मु० काछलियाके हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।
2. यह "पत्र : जेल-निदेशकको", पृष्ठ २०५-०७ के उत्तरमें लिखा गया था और ९-४-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकट किया गया था।
3. इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और यह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष अ० मु० काछलियाके हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।
4. अभिप्राय [illegible] दो विरोधी दलोंके बीच हुई मारपीटसे है; देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २१२।

प्रसिद्ध है। इन लोगोंका आपसी झगड़ा था जिसकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं है। उनका खयाल था कि वे आपसमें लड़-भिड़कर अपने मतभेद दूर कर लेंगे। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जो खबरें मिली हैं उनके अनुसार यद्यपि पुलिसको पहलेसे मालूम था कि झगड़ा होनेवाला है फिर भी पुलिसने उसे रोकनेके लिए पर्याप्त सावधानीसे काम नहीं लिया।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १६-४-१९१०

१४२ कोई चिन्ता नहीं

महात्मा टॉल्स्टॉयका जो पत्र[1] इस साप्ताहिकमें छापा गया था उसे नडियादके 'गुजरात' अखबारमें उद्धृत किया गया। इसपर उस अखबारको नोटिस दिया गया है कि उसके विरुद्ध मुकदमा चलाया जायेगा। कार्रवाई नये समाचारपत्र-अधिनियम (प्रेस ऐक्ट) के अन्तर्गत की जायेगी। हमारे पाठकोंको टॉल्स्टॉयके पत्रका ध्यान होगा। जिन्होंने उसे न पढ़ा हो मेरी सलाह है कि वे उसे पढ़ लें। उस पत्रमें एक वाक्य भी ऐसा नहीं है जिससे खून-खराबीका डर हो। फिर भी उसके प्रकाशकपर मुकदमा चलाया जा रहा है यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है। इससे राज्य-अधिकारियोंका निरा पागलपन प्रकट होता है। वे डर गये हैं और डरके मारे यह निश्चय नहीं कर सकते कि क्या करने दिया जाये और क्या नहीं। हमें दुःख यह होता है कि यद्यपि उस लेखके सम्बन्धमें पहला उत्तरदायित्व हमारा है फिर भी हमारे विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई और मुसीबत 'गुजरात' के सम्पादकके सिर आ पड़ी। हमें आशा है कि 'गुजरात' के सम्पादक और व्यवस्थापक निडर होकर अपने कर्तव्यका पालन करेंगे और तनिक भी पीछे न हटेंगे।

इस समय भारतकी पूरी परीक्षा हो रही है। बड़े-बड़े कानून बनाये गये हैं और पत्रोंपर रोक लगाई जा रही है। इसके लिए मुख्य रूपसे बम चलानेवाले जिम्मेदार हैं परन्तु वे इससे रुक जायेंगे ऐसा नहीं है। सरकार कोई भेद किये बिना पत्रोंको बन्द करेगी तो उससे शान्ति कदापि नहीं होगी। हम तो मानते हैं कि इस प्रकारके दमनसे शान्ति होनेके बजाय अशान्ति बढ़ेगी। जिन लोगोंके मनमें विष नहीं था उनके मनमें भी विष पैदा हो जायेगा।

वास्तवमें टॉल्स्टॉयके पत्रका उद्देश्य लोगोंके मनमें शान्ति उत्पन्न करना है। उसका उद्देश्य यह है कि लोग दूसरोंके दोष निकालनेके बजाय अपने दोष देखें। यह सच है कि उसमें अंग्रेजी शासनसे हुई हानिका चित्र बहुत सुन्दर दिया गया है। इसका असर किसीपर खराब न होगा। जनताकी आँखें खुल गई हैं और वे अब बन्द न होंगी।

१ देखिए "महात्मा टॉल्स्टॉय ऐंड हिन्दू स्वराज पर 'खी'", पादटिप्पणी ६, पृष्ठ २।

इस अवसरपर हम अपने पाठकोंसे दो शब्द कहना चाहते हैं। हमारा खयाल है कि उन्हें चुप नहीं बैठना चाहिए। हम तो कदापि चुप नहीं बैठेंगे। हमारे देशके अपने दूसरे लोगोंपर संकट आता है केवल इसी कारण हमारा बैठे रहना सम्भव नहीं है। परन्तु, पत्रके केवल सम्पादक और संचालक नहीं होते उसका बड़ा भाग तो पाठकोंका होता है। देखना यह है कि हमारे पाठक इस घटनासे डर जाते हैं या अपने कर्तव्यका पालन करते हैं। प्रत्येक पाठक दूसरे लोगों तक भी इस पत्रको पहुँचानेका प्रयत्न करे। पत्रका प्रधान उद्देश्य उसमें दिये गये विचारोंका प्रचार करना और उनके अनुसार लोगोंसे आचरण करवाना है। यह काम पाठकोंकी सहायताके बिना नहीं हो सकता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-४-१९११

१४३ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [अप्रैल ११, १९११]

डेलागोआ-बे भेजे गये

श्री आचारी और १७ अन्य सत्याग्रही शनिवारको प्रिटोरियासे डेलागोआ-बे भेज दिये गये। उनमें से करीब छः व्यक्ति तो सत्याग्रही नहीं थे। अब हो गये हों तो कहा नहीं जा सकता। उनमें से जो तमिल नाम हैं वे सब सत्याग्रही हैं। इस प्रकार तमिल लोग सत्याग्रहका झण्डा उठा रहे हैं। मैंने सब तमिल नाम अंग्रेजीमें दे दिये हैं[1] इसलिए उनको यहाँ नहीं देता।

जहाजोंकी इनकारी

पिछले सप्ताह मैंने अंग्रेजी विभागमें[2] समाचार दिया था कि कुछ जहाजोंने इन निर्वासितोंको ले जानेसे इनकार कर दिया है। इसमें सत्य कितना है यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह जान पड़ता है कि उन्हें अमीतक जहाज मिला नहीं है। यदि भारत पूरी शक्ति लगा देगा तो एक भी जहाज निर्वासितोंको ले जानेका साहस न करेगा। इस बार जो भारतीय निर्वासित किये जायेंगे वे भारतमें धूम मचा देंगे यह माननेका पर्याप्त कारण है।

चेट्टियार[3]

श्री चेट्टियारको आज निर्वासित करनेकी आज्ञा दे दी गई है और वे जेल भेज दिये गये हैं। उनकी आयु लगभग ५५ वर्षकी है। वे बहुत दिनोंसे रोग पीड़ित हैं। फिर भी वे

१ देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" पृष्ठ २३२।

२ देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" पृष्ठ २२२-२२३।

३ तमिल संघ (तीनामबी) के अध्यक्ष श्री ए॰ चेट्टियार, जो ५ अप्रैलको गिरफ्तार किये गये थे। देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" इंडियन ओपिनियन ९-४-१९११।

पूर्ण उत्साहसे निर्वासन स्वीकार कर रहे हैं। उनको नेटाल भेजा जा रहा है। वे वहाँसे तुरन्त लौट आयेंगे।

अन्य गिरफ्तारियाँ

श्री चिमन दियाला[1] और सेलमार पिल्ले गिरफ्तार कर लिये गये हैं। उनको निर्वासित करनेकी आज्ञा भी दी गई है।

करोदिया

दोनों करोदिया बन्धुओंपर[2] जो मुकदमा चलाया जा रहा था वह वापस ले लिया गया है। उनमें से एकपर झूठे प्रवेशपत्रका और दूसरेपर असत्य हलफिया बयान देनेका आरोप था।

पुलिसने इस मुकदमेको तैयार करनेमें कोई कसर नहीं रखी थी। डर्बनसे प्रवासी अधिकारी (इमीग्रेशन ऑफिसर) और श्री मूसा हाजी आदम आदिको गवाही देनेके लिए बुलाया गया था फिर भी आखिरी वक्तमें मुकदमा वापस ले लिया गया।

सच्ची बात यह है कि किसी भारतीयने दोनों भाइयोंके विरुद्ध द्वेषभावके कारण हलफिया बयान दिया था और दूसरोंसे दिलवाया था। वे लोग बादमें पछताये। उनको अपने दिये हुए बयानोंको साबित करनेमें बड़ी दिक्कत दिखाई दी क्योंकि जोहानिसबर्गमें बहाँसे पहले श्री करोदियाकी मौजूदगीके बारेमें काफी सबूत दिये जा सकते थे। मेरा खयाल है इन लोगोंपर कोई धब्बा न आने देनेके उद्देश्यसे सरकारने गवाहियाँ लिये बिना ही मुकदमेको वापस ले लिया है।

श्री करोदियाका विचार इस मामलेको यहीं छोड़ देनेका नहीं है, बल्कि वे एक मिसाल कायम करने और आगे दूसरे जाने-माने लोगोंको ऐसी घटनाओंसे बचानेके खयालसे महान्यायवादी (अटर्नी जनरल)से शिकायत करेंगे।

काले लोग रह सकते हैं या नहीं

जोहानिसबर्गके बहुत-से पट्टोंमें यह शर्त है कि जमीनका मालिक उसपर एशियाई या काले लोगोंको जो नौकर न हों नहीं रख सकता। ऐसी शर्त नारवुडमें [भी] है। वहाँ एक गोरेने बाड़ा लिया था। बादमें उसने देखा कि उसमें कुछ जगहोंपर काले लोग रहते हैं। इसलिए उसने कम्पनीके विरुद्ध मुकदमा दायर किया कि उस बाड़ेमें काले लोग रहते हैं इसलिए उसका पट्टा रद किया जाये। न्यायाधीशने कम्पनीके विरुद्ध निर्णय दिया। मुकदमा ऊपर गया। अब सर्वोच्च न्यायालयने निर्णय दिया है कि यद्यपि पट्टोंमें यह शर्त है, फिर भी उसके लिए कम्पनी उत्तरदायी नहीं है। जो व्यक्ति किसी काले आदमीको रखता है यदि कोई बाड़ेदार चाहे तो उसके विरुद्ध दावा कर सकता है। इस निर्णयसे काले लोग इस वक्त तो वहाँ रहते थे वहीं रह सकते हैं। अब

१. देखिए "गुप्तचरकी टिप्पणियाँ" इंडियन ओपिनियन १९-४-१९११ । वहाँ यह नाम जामरी अक्षर दिया गया है।

२. मसर्स करीदिया नरसी जोहानिसबर्गके प्रसिद्ध भारतीय व्यापारी। देखिए "पत्र : मजिस्ट्रेटको" पृष्ठ २३४-३५ ।

दूसरा मुकदमा चलेगा उसका फैसला देखना है। यहाँ कदाचित् यह कहावत होती है "नाम बड़ी कालों पाये"।

लॉर्ड सेल्बोर्न

माल-आफिकोंने लॉर्ड सेल्बोर्नको भोज दिया था। उसमें इन महाशयने यो चेतावनी दी कि यदि वे लोग पेटोंमें नहीं और केपमें रंगदार लोगोंपर ध्यान न दिया जायेगा तो उसका परिणाम बुरा होगा और उन्हीं लोगोंमें से एक व्यक्ति उठ होंगे जो काफिरोंका नेतृत्व करेंगे। लॉर्ड सेल्बोर्न मानते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें प्रश्न सबसे बड़ा प्रश्न है।

इन उद्‌गारोंकी कुछ छान-बीन जरूरी है। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि सेल्बोर्नने काले लोगोंकी भलाईकी दृष्टिसे ऐसा कहा है बल्कि उन्हें भय है कि काले लोगोंमें नेता उत्पन्न हो जायेगा तो बुरा होगा। फिर भी उनके कथनसे हितचिन्तकोंको यही कामना करनी चाहिए कि एक नेता पैदा हों। ये जितने ज्यादा पैदा हों उतना ही अच्छा ऐसे लोगोंको प्रोत्साहन देना चाहिए।

रेलवेके विनियम

महाप्रबन्धक (जनरल मैनेजर) सहायक प्रबन्धक श्री बेस्ता श्री पाठनिया और श्री गांधीके बीच आज लगभग डेढ़ घंटे तक बातचीत हुई। उसके बाद कुछ परिवर्तनोंके साथ वह मसविदा[1] स्वीकार कर लिया गया जो संघकी ओरसे भेजा गया था। महाप्रबन्धकने कहा कि रेलवे-निकाय (बोर्ड) में जो विनियम बन चुके हैं उनको रद करनेकी सिफारिश करेंगे और जो मसविदा उन्होंने पसन्द किया है उसके अनुसार नये विनियम बनाये जायेंगे। जो मसविदा स्वीकृत किया गया है उसके अनुसार चलनेसे झगड़ा कानूनसम्मत नहीं हो सकता। भारतीय तीसरे दर्जेमें ही यात्रा कर सकते हैं यह विधान करनेवाली धारा रद कर दी जायेगी और तब जैसी स्थिति पहले थी वैसी ही हो जायेगी।

भारतीयोंको चेतावनी

इस प्रकारका परिवर्तन निस्सन्देह अच्छा माना जायेगा। इससे प्रकट होता है कि भारतीय जातिका तिरस्कार करना कठिन है। किन्तु भारतीय जातिका उत्तरदायित्व भी बढ़ता। हम अपनी मर्यादामें रहकर आयेंगे-जायेंगे तो कुछ कठिनाई नहीं आयेगी परन्तु यदि हम मर्यादाका उल्लंघन करेंगे तो निःसन्देह कठिनाई आयेगी और हमारे विरुद्ध विनाय विनियम (रेगुलेशन) बनाये जायेंगे।

ट्रामगाड़ी विनियम

ट्राम गाड़ी चलानेके विनियममें फिर सुधार किया जायेगा। उसमें मुख्य सुधार यह होगा कि यूरोपीयोंके डिब्बे जहाँ खाली ... आये ... रद करनेके ...

1. गुजराती कहावत — [illegible]
2. देखिए परिशिष्ट ४।

एशियाइयोंकी दूकानें शामके छः बजे बन्द करनी होंगी। मुझे इस विषमताके विरुद्ध कुछ अधिक करना सम्भव नहीं दिखाई देता फिर भी संघने इसके विरुद्ध उपनिवेश सचिवको पत्र[1] भेजा है।

कानमियोंमें कलह

कानमिया[2] भाई आपसमें दिल खोलकर लड़े। उन्होंने सरेआम सड़कपर मार-पीट की। उस दंगलके लिए बहुत-से गोरे इकट्ठे हो गये थे। करीब तीन आदमी बहुत जख्मी हुए। लड़नेवालोंकी लाज तो गई ही कुछ हद तक भारतीय समाजकी भी गई। लड़ाईसे दोनोंमें से किसीको लाभ नहीं हुआ। लाभ केवल सरकार और वकीलोंको होगा। दोनों पक्षोंने वकील किये हैं। वे कहते हैं पैसा पानीकी तरह खर्च करेंगे।

अखबारोंमें कहा गया कि यह लड़ाई सत्याग्रहियों और असत्याग्रहियोंकी है। इसलिए श्री काछलियाने अखबारोंको एक पत्र लिखा है[3] कि इस मारपीटसे सत्याग्रहका कोई सम्बन्ध नहीं है।

मैं कानमिया भाइयोंसे दो शब्द कहना चाहता हूँ। वे लड़नेमें बहादुर हैं, यह मैं जानता हूँ और सब लोग जानते हैं। परन्तु यदि वे यह मानते हों कि इस प्रकार मारपीट करनेसे उनका नाम होगा तो यह उनकी बड़ी भूल है। झगड़ेका कारण कुछ भी हो। दोष किस पक्षका है इसका विचार मैं नहीं करता। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि मार-पीट करनेसे उनमें से किसीको भी कोई लाभ नहीं हुआ। फिर भी जिनको अपने शरीरबलका गर्व हो और जो उसका उपयोग करना ही चाहते हों उनको उसका उपयोग बैर निकालनेके निमित्त नहीं बल्कि दूसरोंकी रक्षाके निमित्त करना चाहिए।

फिर, जो लड़ना चाहते हों उनको लड़कर ही मरना या जीतना उचित है। मारपीट करके अदालतमें जाना तो दोहरी दरिद्रता मानी जायगी। मारना कायरताका काम है और अदालतमें जाना उससे भी बुरा काम। मारनेवाला व्यक्ति जब अदालतमें जाता है तब वह किसी भी कामका नहीं रहता।

इंग्लैंडके सिवा यूरोपके दूसरे भागोंमें द्वन्द्व-युद्धकी प्रथा प्रचलित है। उसकी विधि यह है कि विवादी पक्ष अपनी गर्वोक्ति सत्य सिद्ध करनेके लिए आपसमें एक-दूसरेसे विधिवत् लड़ते हैं और उस लड़ाईमें जो हार जाता है उसकी गर्वोक्ति असत्य मानी जाती है। ये लोग अदालतमें जा ही नहीं सकते। मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि जो लोग मारपीटमें विश्वास करते हैं उनकी दृष्टिसे मानें तो ऊपर [उक्त] प्रथा अच्छी मानी जा सकती है।

किन्तु मारनेसे मरना भला जो यह बात जानते हैं वे सब-कुछ जानते हैं और उन्होंने सब-कुछ जीत लिया है। यह सत्याग्रहियोंकी विशेष पद्धति है।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, १६-४-१९१०

१. देखिए "पत्र : उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ २३८।
२. कच्छ (एक दुकान) के मुसलमान।
३. देखिए "पत्र : अखबारोंको", पृष्ठ २२९-३०।

१४४ ट्रान्सवालकी टिप्पणियाँ

मंगलवार [अप्रैल १२, १९१०]

नीचे लिखे व्यक्ति शनिवार ९ अप्रैलको डेलागोआ-बेको भेज दिये गये हैं:[1] रायची वीरा पिल्ले एस० माणिकम् एन० वी० पिल्ले एम० के० पिल्ले गोविन्द चेट्टी पो० विनायग मुत्तू मुनियन डेविड सॉलोमन मुनुसामी पॉल मुनुसामी बेकन मूर्ती मुनु अप्पन टोपी गोविन्दसामी लेव्ही अमी नायडू जॉन एडवर्ड टी० ए० एस० आचारी सी० नारायण सामी आर० सी० पीटर, मॉर्गन बेला पाथेर, आर० मुनुसामी जॉन लाजारस डेविड मरियन फ्रांसिस बेकर, मस्टर्ड बेकर, के० चिन्नासामी पिल्ले एम० पी० पैरसन एम० जिम्मी ई० एम० डेविड एल० गोविन्दसामी डी० वलसुन्दरम् चिन्नी लाजारस एम० मुनुसामी वीरासामी नायडू गुलाम मुहम्मद बीराम बस्कम नूर अली और रामजी रणछोड़। इनमें से अन्तिम चार व्यक्तियोंके सम्बन्धमें मुझे यह निश्चय नहीं है कि वे सत्याग्रही हैं। लेकिन सम्भवतः प्रिटोरियाकी पुलिस-चारकोंमें इन लोगोंके प्रतिष्ठित लोगोंके सम्पर्क होनेके बाद वे सत्याग्रही हो गये हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १६-४-१९१०

१४५ पत्र : जेल निदेशकको[2]

[जोहानिसबर्ग]
अप्रैल १२, १९१०

महोदय

भारतीय सत्याग्रहियोंके साथ जेलमें होनेवाले आम सलूकके बारेमें आपका इस मासकी ९ तारीखका पत्र संख्या १४५५/१/२६७ प्राप्त हुआ।

मेरे संघका निवेदन है कि एशियाइयोंके विचारसे डीपक्लूफकी जेलका चुना जाना यह बताता है कि सरकारका मंशा सत्याग्रहियोंके साथ मजिस्ट्रेटों द्वारा उनको दिये गये दण्डसे कुछ अधिक सख्ती बरतना है क्योंकि केवल वहीं कैदियोंको तीन महीनेमें सिर्फ एक बार मुलाकात और पत्र-व्यवहारकी इजाजत मिल पाती है।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. इस पत्रका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था, और यह ब्रिटिश भारतीय संघके कार्यवाहक अध्यक्ष श्री अ० मु० काछलियाके हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।

भारतीयोंकी खुराकसे घी हटा देनेके बारेमें निवेदन है कि मेरे संघकी जानकारीके अनुसार वर्तमान खुराक जेल-गवर्नरोंने ही निर्धारित की है। लेकिन यह तो निर्विवाद है कि इस परिवर्तनके फलस्वरूप खुराकमें से एक ऐसी चीज हट गई है जो ट्रान्सवालकी जेलोंमें अधिकांश भारतीय कैदियोंको दी जाती है और जो ब्रिटिश भारतीयोंके लिए खास तौरपर जरूरी है। मेरे संघकी विनम्र राय है कि जेल-गवर्नरोंने इस परिवर्तनका फैसला करते समय रुचि और आदतका कोई ध्यान नहीं रखा।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन १६-४-१९१

१४६. पत्र : मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको

जोहानिसबर्ग
अप्रैल १२, १९१०

महोदय

मैं अपनी और श्री काछलियाकी ओरसे आपके इसी ११ तारीखके उस पत्रके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ जिसमें आपके विभागके तथा ब्रिटिश भारतीय संघके प्रतिनिधिके रूपमें श्री काछलियाके और मेरे बीच कल हुई बातचीतका सारांश दिया गया है। सारांश स्थितिको बिलकुल सही रूपमें प्रस्तुत करता है। गजटमें प्रकाशित विनियमोंके सम्बन्धमें आपके विभाग और मेरे संघके बीच जो पत्र-व्यवहार चल रहा था उसके सम्बन्धमें आपने मेरे संघ द्वारा पेश किये गये प्रार्थनापत्रोंके प्रति जो उदार रुख अख्तियार किया है उसके लिए मेरे साथी और मैं आपको धन्यवाद देते हैं।

मैं मानता हूँ इस व्यवस्थाका सुचारु अमल इसपर निर्भर करेगा कि ब्रिटिश भारतीय कितने आत्म-संयमसे काम लेते हैं लेकिन साथ ही यह यात्रियोंके आवागमनका नियमन करनेवाले अधिकारियोंकी चतुराई और सद्भावनापर भी उतना ही निर्भर करेगा। अंतमें मुझे आशा है कि ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीकी सरकारें और रेलवे-विभाग आपकी सिफारिशोंको मान लेंगे और जिन विनियमोंके बारेमें शिकायतकी गई है वे रद कर दिये जायेंगे तथा उनके स्थानपर आपके इस पत्रमें उल्लिखित विनियम रख दिये जायेंगे।

आपका आदि
मो० क० गांधी
अवैतनिक मंत्री
ब्रिटिश भारतीय संघ

मूल अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ५१६१) और इंडियन ओपिनियन १६-४-१९१० से।

१. देखिए परिशिष्ट ४।

१४७ पत्र : उपनिवेश-सचिवको[1]

[जोहानिसबर्ग
अप्रैल १२, १९

महोदय,

दूकानोंके खुलने और बन्द होनेके समयके सम्बन्धमें सरकारी गजट में प्रका
विधेयकके सिलसिलेमें मेरा संघ यूरोपीय उपाहारगृहों और एशियाई भोजनालयोंके
होनेके समयके निर्धारणमें किये गये भेदभावका[2] नम्रतापूर्वक विरोध करता है। य
सरकार एशियाई भोजनालयोंके मालिकोंको भी वैसी विशेष सुविधाएँ दे दे तो उ
कोई बड़ा फर्क नहीं पड़ता। इसलिए मेरे संघको भरोसा है कि यह भेदभाव दूर
किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–४–१९११

१४८ पत्र : महान्यायवादीको

[जोहानिसबर्ग]
अप्रैल १४, १९११

महोदय,

सर्वश्री एम॰ ए॰ करोडिया और ए॰ ए॰ करोडिया कुछ समय पूर्व गिरफ्तार किये गये थे। इनमें से पहलेपर व्यक्तिपर धोखा देकर पंजीयन प्रमाणपत्र प्राप्त करनेका आरोप था और दूसरेपर झूठा हलफनामा देनेका। दो मोहलतोंके बाद दोनों मामले सरकारकी ओरसे कोई सबूत पेश किये बगैर उठा लिये गये। मेसर्स करोडिया ब्रदर्स जोहानिसबर्गमें प्रसिद्ध ब्रिटिश भारतीय व्यापारी हैं। आजतक वे यह नहीं जानते कि किस सबूतके आधारपर उनपर ये आरोप लगाये गये थे। उनकी गिरफ्तारीसे भारतीय समाजको बहुत अधिक अचम्भा हुआ और स्वयं उनको भी कुछ कम धक्का नहीं पहुँचा। वे अपने विरुद्ध लगाये गये आरोपोंका सामना करनेके लिए पूरे तौरसे तैयार थे और अब भी हैं। एशियाई विभाग (डिपार्टमेंट) इस तथ्यसे भलीभाँति परिचित है कि वे प्रतिष्ठित व्यापारी हैं। मुझे लगता है कि यदि वे अपने विरुद्ध की गई इस

१. इस पत्रका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था और वह ब्रिटिश भारतीय संघके कार्यवाहक अध्यक्ष ई॰ आई॰ अस्वातके हस्ताक्षरसे भेजा गया था।

२. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ १३०–३१।

हो। स्वयं श्री थेट्टियार तीसरी बार गिरफ्तार हुए हैं और जैसा कि हम पहले बता चुके हैं उनका पुत्र सातवीं बार। इन वीर पुरुषोंने राष्ट्रकी प्रतिष्ठा और अपनी पवित्र प्रतिमाकी रक्षाके लिए अपने आपको अकिंचन बना लिया है और इस तरह असरल सर्वस्वकी आहुति दे दी है। तमिलोंके लिए गिरफ्तार होना एक ऐसी साधारण बात हो गई है कि अब उसकी तरफ न किसीका ध्यान जाता है और न किसीको उसमें नवीनता लगती है। श्री थेट्टियारकी हालत किसी समय बहुत अच्छी थी[1] वे अब निर्धन हो गये हैं। उनके परिवारके निर्वाहके लिए बेच गये जवाहरातकी कुछ रसीदें हमने अपनी आँखोंसे देखी हैं। इस प्रकारके त्यागको देखकर अगर कोई क्षण-भरके लिए भी यह सन्देह करे कि जिस समाजमें ऐसे वीर रत्न हैं उस समाजको अपने ध्येयकी प्राप्तिमें सफलता नहीं मिलेगी तो हम कहेंगे कि वह निश्चित रूपसे नास्तिक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १६-४-१९११

१५१ स्वर्गीय श्री मुडहेड

श्री मुडहेडकी मृत्युसे यूरोपीय समाजके साथ-साथ नेटालके भारतीय समाजकी भी बड़ी हानि हुई है। दिवंगत सज्जन जिनकी उस रोज बहुत ही असामयिक मृत्यु हो गई, नेटाल मर्क्युरी के सम्पादकीय विभागमें २८ वर्ष तक जिम्मेदारीके पदपर काम कर चुके थे। वे जबतक प्रबन्ध सम्पादक रहे उस समय तक मर्क्युरी ने उपनिवेशकी रंगदार कौमोंसे सम्बन्धित सभी प्रश्नोंपर अपना स्वर सदा ऊँचा रखा और अनेक अवसरोंपर जातीय घृणा और रंग-विद्वेषके खिलाफ समाजको सावधान भी किया। दर्जनकी अनेक भारतीय संस्थाओंने[2] उनकी मृत्युपर शोक प्रकट कर और उसे अपनी क्षति मानकर उचित ही किया है। उनके इस शोकमें हम भी शामिल होते हैं और दिवंगत पत्रकारकी विधवा एवं बच्चोंके प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६-४-१९११

१. ११-४-१९११ को वे छः महीनेके लिए जेल गये थे।

२. नेटाल भारतीय समिति और डर्बन भारतीय समिति (डीलागोआ) आदिने; देखिए "श्री मुडहेडकी मृत्यु", इंडियन ओपिनियन १६-४-१९११।

१५२. गो० कृ० गोखलेकी सेवाएँ

माननीय प्रोफेसर गोखलेने जो सेवा की है उसे भोला नहीं जा सकता। यों तो उन्होंने सदैव हमारी मदद की है किन्तु विधान परिषद (लेजिस्लेटिव कौंसिल) में उन्होंने जो काम किया वह बहुत मूल्यवान है। गिरमिट बन्द करनेके बारेमें उन्होंने जो प्रस्ताव पेश किया[1] और उसपर जो-कुछ कहा[2] वह पढ़ने योग्य है। उनके भाषणसे समस्त दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी दशाका चित्र सामने आ जाता है। उनके भाषणपर अंग्रेजी अखबारोंने भी बड़ी अच्छी टिप्पणियाँ दी हैं। हम देखते हैं कि उन्होंने यह माँग की है कि गिरमिट प्रथा [अपने आपमें] खराब है इसलिए उसे बन्द कर दिया जाना चाहिए। वास्तविक रूपमें देखें तो यह ठीक ही हुआ है।

प्रोफेसर गोखलेके बाद अन्य भारतीय सदस्योंके भाषण हुए। आगेके अंकोंमें हमें इन सभीके अनुवाद देने हैं। इनसे सभी पाठक यह देख सकेंगे कि ट्रान्सवालके संघर्ष का असर कितना गहरा हुआ है।

इस कामके लिए निस्सन्देह प्रोफेसर गोखलेके प्रति आभार मानना चाहिए। हम आशा करते हैं कि उक्त महानुभावपर सभी उपनिवेशोंकी सार्वजनिक संस्थाएँ आभार प्रदर्शनके प्रस्तावोंकी वर्षा करेंगी।

समाचारपत्रोंसे ज्ञात होता है कि इस महान कामका श्रेय सारा भारत गोखलेको देता है। जब सभा विसर्जित हुई तब लोगोंने गोखलेको बधाइयाँ दीं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६-४-१९१०

१५३. ट्रान्सवालकी संसद

ट्रान्सवालकी संसद (पार्लियामेंट) कुछ करेगी यह आशा सभी भारतीयोंको थी और हमें भी थी। फिर भी अब जान पड़ता है कि इस संसदमें लड़ाईका कोई फैसला नहीं होगा। फैसला कैसे हो? भारतीय समाजकी शक्ति कम हुआ जानके ट्रान्सवाल-सरकारको लोभ हो गया। उसने सोचा कि कुछ और ठहर जायें तो हर भारतीय थककर बैठ जायगा। इसी दृष्टिसे संसदमें कुछ नहीं आ रहा है—ऐसी हमारी निश्चित धारणा है। इससे हम निराश नहीं होते। हम धोखा देकर कुछ लेना नहीं चाहते। हम जानते

1 और 2. २५-२-१९१० को; देखिए "साम्राज्यीय परिषद्में भाषण", इंडियन ओपिनियन, १-४-१९१०।

3. ये यहाँ नहीं दिये गये हैं। प्रस्ताव और गोखलेके भाषणके अनुवादके लिए देखिए "साम्राज्यीय परिषद्में भाषण", इंडियन ओपिनियन, १६-४-१९१०।

अटक भरासपर झूम रहे हैं। कुछ वीर तो मृत्युपर्यंत मैदानमें रहेंगे इसलिए भारतीय जीत हुए ही हैं। उस जीतको हम कब मनायेंगे यह इस बातपर निर्भर है कि हममें से कितने जोर लगाते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १९–४–१९११

१५४ शाबाश, चेट्टियार!

जो भारतीय हार मानकर बैठ गये हैं श्री चेट्टियारका किस्सा सुनकर उन्हें भी रोमांच हुए बिना नहीं रह सकता। श्री चेट्टियार बुजुर्ग हैं। तमिल समाजके मुखिया हैं। वे दो बार तो जेल भोग आये हैं। उनका पुत्र अनेक बार जेल हो आया है। अब उसे निर्वासित करके भारत भेज दिया गया है। श्री चेट्टियारने बाहर रहकर बहुत काम किया है। पकड़े जानेका उन्होंने भय नहीं माना अब वे गिरफ्तार हो गये हैं। उन्होंने अपने रोगको नहीं गिना। वे अपना पैसा खो चुके हैं। उनके रोम-रोममें यह भावना भरी है कि मानके लिए, देशके लिए प्राण दे दूँगा पर आत्मसमर्पण नहीं करूँगा। वे मार्शल स्क्वेयरमें हँसते-हँसते विराजमान हैं। हम आशा करते हैं कि बूढ़े-जवान छोटे-बड़े सभी भारतीय श्री चेट्टियारका उत्साह देखकर उत्साहित होंगे और श्री चेट्टियारके नामपर अभिमान करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९–४–१९११

१५५ क्या लॉर्ड ग्लैडस्टनको मानपत्र दें?

दक्षिण आफ्रिकाके गवर्नर जनरल लॉर्ड ग्लैडस्टन कुछ दिनोंमें आ जायेंगे। उनको मानपत्र दिया जाये या नहीं यह प्रश्न उपनिवेशोंमें प्रत्येक भारतीयके मनमें घूम रहा होगा।

अपनी अवस्थाके सम्बन्धमें सब दृष्टियोंसे विचार करनेपर यह प्रतीत होता है कि लॉर्ड ग्लैडस्टनको मानपत्र देना हम लोगोंके लिए उचित नहीं है। जिस देशमें हमको अपमानित किया जाता है उस देशमें हम किसको मानपत्र दें? जो सरकार हमारे साथ न्याय नहीं करती उसके प्रतिनिधिको मानपत्र देना कैसा? यह एक दृष्टिकोण है।

दूसरा दृष्टिकोण यह है कि इस देशमें अंग्रेजोंकी पताका फहराती है, इसलिए हम अपने अधिकारोंकी माँग करनेमें झिझकते नहीं। हम इस देशके लोगोंके साथ मिल-जुलकर रहना चाहते हैं। हम अपने सम्मानकी रक्षा करना चाहते हैं। अपने

सम्मानकी रक्षाका इच्छुक सदा दूसरोंका सम्मान करता है। जिसकी दृष्टिमें सम्मानका मूल्य है वह दूसरोंसे ओछेपनका व्यवहार कदापि न करेगा। सम्राट्के प्रतिनिधिका सम्मान करनेसे हम सम्मानित होंगे। यह दूसरी दृष्टि है। इस दृष्टिसे हम लॉर्ड मौर्लेको मानपत्र दें तो इसमें दोष नहीं दिखाई देता। हम उनको झूठी प्रशंसाके रूपमें नहीं बल्कि केवल शिष्टताके रूपमें मानपत्र दें। यह उचित माना जा सकता है। मानपत्रके स्वरूपपर उसका औचित्य या अनौचित्य निर्भर है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १६-४-१९११

१५६ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [अप्रैल १८, १९११]

रिहाइयाँ

श्री पेरूमल और श्री गोविन्दसामी छः सप्ताहकी सजा पूरी होनेपर गत सप्ताह रिहा कर दिये गये।

फकीरा और अन्य लोग

बहादुर श्री फकीरा गत शनिवारको फिर गिरफ्तारकर लिये गये। उनका मुकदमा आज पेश हुआ। उनको भारत भेजनेकी आज्ञा दी गई है। उन्होंने भारतसे तुरन्त लौटनेका निश्चय किया है।

आज श्री भारतमामी और श्री किस्टप्पा गिरफ्तार कर लिए गये और श्री इयास-सामकी, श्री कासिम इब्राहीम, श्री अली आदम, श्री ईसा आदम तथा श्री ऊकाब भीखाको देश-निकालेकी आज्ञा दी गई। इनमें से अन्तिम पाँच व्यक्ति सत्याग्रही नहीं हैं किन्तु वे आचारीसे गिरफ्तार हुए हैं और आचारीसे ही देश जा रहे हैं।

पीट्रियार

श्री पट्टिमार, श्री मॉमन तथा श्री फ्रांसिसको १५ तारीखको तीन-तीन मासकी कैदकी सजा दी गई है।

डीलन वापस

श्री डीकन ट्रान्सवालमें फिरसे दाखिल हो गये हैं और गिरफ्तार कर लिये गये हैं। उनका मुकदमा मंगलवारको पेश होगा।

५९ को देश-निकाला

भारतीयोंका भारतको भेजा जाना देश-निकाला माना जाये यह कितने दुःखकी बात है? फिर भी इस मासकी १४ तारीखको जो ५९ भारतीय डमरोमी में भेजे गए उन्हें निर्वासित किया गया यह कह बिना काम नहीं चलता। ऐसे बहादुर लोगोंको अवतक

एक भी जहाज भारत नहीं भेजा गया था। इन भारतीयोंमें से जो अभी गये हैं कुछ नवयुवक इसी देशमें जन्मे हैं, कुछ बचपनसे ही यहाँके निवासी हैं और कुछके परिवार यहाँ ही रहते हैं। फिर कुछ नेटालके निवासी हैं या पढ़े हुए होनेके कारण नेटाल जानेके अधिकारी हैं। इन सभीको भारत भेज दिया गया है। यह अत्याचारकी पराकाष्ठा हो गई है। इन भारतीयोंमें से बहुत-से स्वेच्छासे पंजीकृत हो चुके हैं।

मुझे विश्वास है कि ये कुछ दिनोंमें वापस लौट आयेंगे।

इनमें से कुछ डेलागोआ-बेमें बीमार पड़ गये थे। श्री सामी क्रिस्टरको अस्पताल भेजना पड़ा था। फिर भी एक भी भारतीयने हार नहीं मानी यह हमारे सौभाग्यका लक्षण है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-४-१९९

१५७ पत्र जेल-निदेशकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
अप्रैल १९, १९९

महोदय

श्री पी ए चेट्टियार भारतीय समाजके एक वयोवृद्ध सदस्य और तमिल कल्याण संघ (बेनीफिट सोसाइटी) के अध्यक्ष हैं। उनको सत्याग्रहीके रूपमें तीसरी बार कैदकी सजा दी गई है। मेरे संघका खयाल है कि इस बार उनको फोक्सरस्टमें कठिन श्रमके साथ कैदकी सजा मिली है। मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि श्री चेट्टियार एक शरीर-व्याधिसे पीड़ित हैं और इसीलिए जोहानिसबर्गमें मजिस्ट्रेटने उनको मामूली श्रम ही दिया था। मेरा संघ नहीं जानता कि फोक्सरस्टमें उनके साथ कैसा व्यवहार किया जा रहा है लेकिन अन्तमें वे डीपक्लूफ भेजे जायेंगे और उनको जोहानिसबर्गसे डीपक्लूफ तक की दूरी शायद पैदल चलकर तय करनी पड़ेगी। चूँकि उनमें इतना सामर्थ्य नहीं है इसलिए मैं आपका ध्यान ऊपर दी गई जानकारीकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि इस सम्बन्धमें उचित सावधानी बरती जायेगी जिससे श्री चेट्टियारके स्वास्थ्यपर बुरा प्रभाव न पड़े। मेरे संघको मिली सूचनाके अनुसार, श्री चेट्टियार अभीतक फोक्सरस्ट जेलमें हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २३-४-१९९

[1] इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और यह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अ मु काछलियाके हस्ताक्षरसे भेजा गया था।

१५८ ये निर्वासन

पिछले हफ्ते उमलोटी[1] में दक्षिण आफ्रिकी समुद्र-तटसे जो अमूल्य मानव-भार भारत भेजा गया है उससे अधिक मूल्यवान मानव-भार किसी दूसरे जहाजमें कभी नहीं भेजा गया। उस जहाजमें कोई साठ सत्याग्रही थे। ये लोग अत्यन्त कमजोर गवाहीके आधार पर प्रशासकीय आज्ञासे गैरकानूनी तौरपर, ट्रान्सवालसे भारत भेजे गये हैं और इस आज्ञाके विरुद्ध उपनिवेशके सामान्य न्यायालयोंमें अपील भी नहीं की जा सकती। ये सत्याग्रही कौन हैं? उनमें से अधिकांश लोगोंने स्वेच्छापूर्वक अपना पंजीयन करवा लिया है और सभी ट्रान्सवालके स्थायी निवासी हैं। उनमें से अधिकांश सत्याग्रहियोंके रूपमें सजाएँ भी भोग चुके हैं और उनमें से कुछ दक्षिण आफ्रिकामें पैदा हुए हैं वे अभी लड़के ही हैं। कुछ नेटालके अधिवासी भी हैं और कुछ अपनी शैक्षणिक योग्यताके आधारपर नेटाल अथवा केपमें प्रवेश पानेके अधिकारी हैं। इनमें से कई लोगोंके परिवार यहीं रह गये हैं। अगर भारतसे समयपर मदद न आती तो इन परिवारोंको भूखों मरना पड़ता।

इन लोगोंको क्यों निर्वासित किया गया है? किसी समय हमसे कहा गया था कि जो स्वेच्छासे अपना पंजीयन करवा लेंगे उन्हें निर्वासित नहीं किया जायगा। परन्तु अब एशियाई [विभागके] अधिकारियोंको पता लगा है कि वे स्वेच्छया पंजीयन करानेवाले सत्याग्रहियोंसे भी अपना पिण्ड छुड़ा सकते हैं। इन लोगोंसे अपने प्रमाणपत्र दिखानेको कहा जाता है। वे जवाब देते हैं कि उन्होंने उन कागजोंको जला दिया है। तब उनसे कहा जाता है कि वे अपने दस्तखत करें और अपनी अँगुलियोंके निशान दें। सत्याग्रही इससे स्वभावतः इनकार कर देते हैं। अब प्रमाणपत्र दिखाने और दस्तखत आदि करनेसे इनकार करना दोनों अपराध हैं और इनके लिए कड़ी सजाएँ हैं। परन्तु उत्साही अधिकारी इनपर कानूनी कार्रवाई करनेके नियमित मार्गका अवलम्बन करना नहीं चाहते। वे मान लेते हैं कि इन लोगोंके पास प्रमाणपत्र हैं ही नहीं। इसलिए वे प्रशासकीय जाँचके अन्तर्गत उन्हें निर्वासित कर देनेका आग्रह करते हैं। वे कहते हैं कि यदि हम इस मार्गका अनुसरण नहीं करेंगे तो कोई भी एशियाई यह बहाना कर सकता है कि उसने अपना पंजीयन करा लिया है और इस तरह केवल जेल जा सकता है। इस दलीलमें दो भ्रान्तियाँ हैं क्योंकि जो आदमी इस तरहका बहाना करता है वह फिर भी जेल तो जाता ही है। और जब जेल जाता है तब उसे अपनी अँगुलियोंके निशान भी देने ही पड़ते हैं। इसलिए यदि किसीने ऐसा कोई बहाना किया हो तो उसका पता निश्चित रूपसे लग सकता है। अगर इस जाँचमें पता लग गया कि वह आदमी झूठा है तो उसका निर्वासन तो होगा ही परन्तु इसके अतिरिक्त उसे झूठी कसम खाकर धोखा देनेकी भी सजा दी जायगी। फिर यह दलील इसलिए भी काम नहीं दे सकती कि श्री थेट्टियार और नियन जैसे प्रसिद्ध नेताओंको भी निर्वासित

१. [illegible]; देखिए "[illegible]" पृष्ठ २९।

किया गया है। इस सबके पीछे असलमें चाल यह है कि सत्याग्रहियोंसे ऐसा व्यवहार किया जाये कि वे उसे सह न सकें। अब देखना यह है कि एशियाई मुहकमेके प्रयत्न कहाँतक सफल होते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-४-१९११

१५९. अखबारवालोंका कर्तव्य

देशसे आये हुए समाचारपत्रोंमें निम्नलिखित समाचार देखनेमें आया है :

> खेड़ाके जिला मजिस्ट्रेट श्री चक्रवर्तीने नडियादसे प्रकाशित 'गुजरात' पत्रके व्यवस्थापक और सम्पादकको नोटिस देकर पूछा था कि उनपर भारतीय दण्ड विधानकी १२४वीं धाराके अनुसार मुकदमा क्यों न चलाया जाये। आनन्दके जिला मजिस्ट्रेटके सामने नोटिसकी अवधिके भीतर प्रतिवादियोंके वकील श्री मगनभाई चतुरभाई पटेल बी० ए० एल-एल० बी० ने सूचित किया कि जिस लेखके सम्बन्धमें नोटिस जारी किया गया है वह अंग्रेजी अखबारसे लिया गया था और उसको प्रकाशित करनेमें प्रतिवादियोंका उद्देश्य बुरा नहीं था। साथ ही उन्होंने उस लेखको प्रकाशित करनेपर खेद प्रकट किया। इसलिए जो नोटिस दिया गया था वह रद कर दिया गया।

व्यवस्थापक तथा सम्पादकके लिए हमें दुःख है। जैसी हालत उनकी है, इन दिनों भारतमें किसी भी अखबारकी वैसी हालत हो सकती है। सम्भव है यहाँ भी कभी ऐसी स्थिति हो जाये। फिर भी यह स्पष्ट है कि यहाँ इस समय ऐसी स्थिति नहीं है। इसलिए हम जो लिख रहे हैं उसका महत्त्व अभी पूरी तरह समझमें नहीं आ सकता। जो कष्टोंसे घिरे हों उनके बारेमें कष्टोंसे बाहरका मनुष्य कुछ भी लिखे यह एक दृष्टिसे मूर्खतापूर्ण माना जा सकता है। फिर भी इस अवसरपर साधारण रूपमें इसपर विचार करना अनुचित न होगा।

हम यह अनुभव करते हैं कि जो समाचारपत्र धन्धेके रूपमें नहीं बल्कि केवल लोक-सेवाके लिए निकाले जाते हैं, उनके सम्पादकोंको उनके बन्द हो जानेका डर छोड़कर उन्हें चलाना चाहिए। सभी समाचारपत्रोंपर यह नियम लागू नहीं होता यह स्पष्ट है परन्तु जिस समाचारपत्रका उद्देश्य राज्यका अथवा प्रजाका या दोनोंका सुधार करके सेवा करना है उसपर लागू होता है।

जो-कुछ छापा गया है वह सरकारको पसन्द न हो और कानूनके खिलाफ हो तो भी यदि वह सत्य हो तो सम्पादकको क्या करना चाहिए? क्या उसे क्षमा माँगनी चाहिए? हम तो कहेंगे कि कदापि नहीं। यह ठीक है कि सम्पादक वैसे लेख छापनेके लिए बाध्य नहीं होता किन्तु एक बार उसे प्रकाशित कर देनेपर सम्पादकको उसकी जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए।

इससे एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है। यदि यह सिद्धान्त जो हमने बताया ठीक हो तो बिना सोचे-समझे कोई क्षोभजनक लेख छाप देनेपर क्षमा न माँगनेसे पत्रकी अन्य सेवाएँ भी रुक जायेंगी और जातिको उसका लाभ नहीं मिलेगा। इसलिए हम यह नहीं कहते कि उक्त सिद्धान्त उस लेखपर भी लागू किया जाना चाहिए जो साभिप्राय नहीं छापा गया है बल्कि उसे अच्छी तरह सोच-समझ कर छापे गये लेखके सम्बन्धमें लागू मानना चाहिए। यदि ऐसे लेखके कारण संकट आ जाये तो अखबारको बन्द कर देनेमें अधिक लोक-सेवा होती है, ऐसी हमारी मान्यता है। उस समय समस्त धन-सम्पत्ति जब्त होने और भिखारी बननेका अवसर आ जायेगा ऐसा तर्क करना काम नहीं दे सकता। ऐसा अवसर आयेगा इसीलिए हमने आरम्भमें बताया कि लोक-सेवा करनेवाले समाचारपत्रके सम्पादकको भीलका वर छोड़कर बसना चाहिए।

दो-एक प्रत्यक्ष उदाहरण लें। मान लें कि कहीं कन्या-विक्रयकी नृशंस प्रथा दिखाई देती है। वहाँ किसी सुधारकने अखबार निकाला और कन्या-विक्रयके विरुद्ध कड़े लेख लिखे। उनसे कन्या-विक्रय करनेवाले चिढ़ गये एवं उन्होंने सुधारककी क्षमा न माँगनेपर जाति-बिरादरीसे अलग करनेका निश्चय किया। अब हम तो यह अनुभव करते हैं कि सुधारकको बर्बाद होने और जाति-बहिष्कृत किये जानेपर भी कन्या-विक्रयके विरुद्ध लिखते जाना चाहिए और अपने पास पैसा न रहनेपर अखबार बन्द कर देना चाहिए किन्तु माफी तो कदापि न माँगनी चाहिए। ऐसा करनेपर ही कन्या-विक्रयकी रूढ़िके उन्मूलनका आधार मजबूत होगा।

अब दूसरा उदाहरण लें। कल्पना कीजिए कि सरकारने घोर अन्याय करके गरीबोंपर कर थोप दिये। वहाँ कोई सुधारक पत्र है। उसमें ऐसे अन्यायके विरुद्ध लेख लिखा गया और लोगोंको सरकारी कानूनकी अवज्ञा करनेका परामर्श दिया गया। इससे सरकार नाराज हो गई और उसने धमकी दी कि क्षमा न माँगनेपर सुधारककी सम्पत्ति जब्त की जायेगी। तब क्या सुधारकको माफी माँग लेनी चाहिए? हमें लगता है कि इसका उत्तर भी नहीं है। सम्पत्ति जब्त हो जाने दी जाये और समाचारपत्रका प्रकाशन बन्द कर दिया जाये परन्तु माफी न माँगी जाये। ऐसा करनेपर लोग सोचेंगे कि सुधारकने उनके हितके लिए सब-कुछ गँवा दिया। तब वे अपने हितके लिए कानूनका विरोध क्यों नहीं करेंगे? यदि सुधारक माफी माँगे तो अनुकूल प्रभाव पड़नेके बजाय विपरीत पड़ेगा। लोग कहेंगे कि इस सुधारकको उनके परोक्ष नाश हो जानेकी कोई परवाह नहीं है। यह तो दूर बैठा बेकार चिल्लाता है। जब स्वयं उसके ऊपर संकट आया तो वह मुकर कर रह गया। तब लोग यह भी सोचेंगे कि मनमार कर बैठ जायें और जो होता हो तो होने दें। यों वे और भी दुर्बल हो जायेंगे। इसलिए स्पष्ट है कि उक्त उदाहरणमें सुधारक समाचारपत्रको बन्द कर देना तभी पूरी सेवा करेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-४-१९११

१६० जो करेगा सो भरेगा

हम सभी इस कहावतको जानते हैं, किन्तु हममें से ज्यादातर लोग काम उलटा करते हैं और अच्छे उलटे फलकी इच्छा करते हैं। हम घर बैठे रहकर लक्ष्मीकी कामना करते हैं। हदसे ज्यादा जाकर इच्छा करते हैं कि मन्दगमी न हो। बिना मेहनतके इच्छापूर्तिकी आशा करते हैं। नरक जानेके काम करके स्वर्गकी इच्छा रखते हैं। देशके अखबारोंमें भंगी आदि वर्णोंकी दुर्दशाकी तसवीर देखनेमें आती है। जिनकी गिनती सभ्य लोगोंमें है ऐसे भारतीय भी अबतक उनका तिरस्कार करते हैं। बड़ौदाके महाराजाने उन्हें सार्वजनिक पाठशालाओंमें दाखिल करनेका कानून बनाया है। जो अपनी गिनती ऊँचे वर्णोंमें कराना चाहते हैं ऐसे अनेक भारतीयोंने इसपर आपत्ति उठाई है और वे महाराजाको परेशान कर रहे हैं। हम एक जातिके रूपमें ऐसा व्यवहार करते हैं और फिर भी दक्षिण आफ्रिकामें हमारे साथ जो व्यवहार होता है उसे फलरूपमें स्वीकार नहीं करना चाहते। यह कैसे हो सकता है? मद्रासके एक भारतीय सज्जनने अभी-अभी कड़ी टीका करते हुए कहा है कि हम दक्षिण आफ्रिकाके कष्टोंके बारेमें शिकायत करते हैं सो तो ठीक है, किन्तु हम अपने ही लोगोंको तुच्छ मानते हैं। उनके स्पर्श-मात्रसे अपवित्र हो जाते हैं, उन्हें दूर-दूर रखते हैं और उनको कुचलते हैं। अतः हम इस स्थितिको सुधारनेके उपाय क्यों नहीं करते? दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंपर प्रहार करनेके बजाय हम अपनी ही पीठपर चाबुकोंकी वर्षा क्यों नहीं करते?

हमारे पास इन बातोंका जवाब नहीं है। कुछ बातें हमारे पक्षमें कही जा सकती हैं, किन्तु यहाँ उनपर विचार करनेकी जरूरत नहीं है।

दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको अपनी दशासे शिक्षा लेनी ही चाहिए। उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि वे देश लौटनेपर भंगी आदिका तिरस्कार कदापि नहीं करेंगे।

जो महाराजा गायकवाड़को परेशान कर रहे हैं वे ही यदि ऊँचे वर्णके भारतीयोंके नमूने हैं तो एक ऐसा समय भी आयेगा जब भंगियोंके कुलमें पैदा होना इज्जतकी बात गिनी जायेगी। मनुष्य अपने मदमें और स्वार्थमें किस हद तक गिर जाता है, हिन्दुओंकी भंगी आदि जातियोंकी ओर तिरस्कारकी भावना इसका उदाहरण है। हमारी कामना है कि हरेक समझदार और सुशील हिन्दू ऐसी प्रार्थना करे कि हे परमेश्वर, ऐसे

१. डॉ० नीविलास एम० एल० ए० प्रीटोरियाकी एक सभामें अध्यक्षपदसे भाषण देते हुए जानते था कहा था। देखिए "द बीम इन ऑवर्स आई" इंडियन ओपिनियन २२-४-१९११।

२. भंगियोंके बच्चोंको सरकारी शालाओंमें दाखिल करनेकी बड़ौदा नरेशकी आज्ञाके बारेमें, देखिए "टेलिस्कोप" (स्वा०), इंडियन ओपिनियन २२-४-१९११।

मद और स्वार्थसे हमें छुटकारा दे। और प्रत्येक हिन्दूको (प्रभुसे) ऐसे गुस्सेका मुकाबिला करनेकी शक्तिकी याचना करनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-४-१९११

१६१ प्रार्थनापत्र : ट्रान्सवाल विधानसभाको[1]

अप्रैल २५, १९११

१ आपके प्रार्थीने एक व्यक्तिगत विधेयक पढ़ा है जिसका उद्देश्य प्रिटोरिया नगरपालिकासे सम्बन्धित कुछ कानूनोंमें सुधार करना और उसकी परिषद (कौंसिल)को और अधिक सत्ता देना है।

२ आपका प्रार्थी संघ (ब्रि० इं० असोसिएशन) की भाँतिसे विधेयकके खण्ड ५ का नम्रतापूर्वक विरोध करता है, क्योंकि उसमें १८९९ के २५ अक्तूबरके कुछ नगर विनियमोंको प्रिटोरिया नगरपालिकामें लागू करनेका विधान है और इन विनियमोंसे ब्रिटिश भारतीयोंके और अन्य लोगोंके भी पैदल पटरियोंसे सम्बन्धित अधिकारोंपर आक्रमण होता है।

३ इसलिए आपका प्रार्थी अनुरोध करता है कि सम्माननीय सदन कृपा करके खण्ड ५ के उल्लिखित अंशको निकाल दे या कोई ऐसी अन्य उपयुक्त राहत दे। इस न्याय और दयाके कार्यके लिए प्रार्थी कर्तव्यबद्ध होकर सदा आपके लिए दुआ करेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १०-४-१९११

१६२ पत्र : गो० कृ० गोखलेको[2]

जोहानिसबर्ग
अप्रैल २५, १९११

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

मेरे पत्र १ दिसम्बरके तारके उत्तरमें आपने तारसे पूछा था कि कितने धनकी आवश्यकता है और अपने जवाबी तारमें मैंने नीचे लिखे अनुसार कहा था :

वर्तमान आवश्यकता हजार पौंड। समझौतेसे पहले गिरफ्तारीकी आशा। बादमें और अधिक आवश्यकता।[3]

1. इस प्रार्थनापत्रका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था और वह ब्रिटिश भारतीय संघके कार्यवाहक अध्यक्ष श्री [illegible] के हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।
2. तारका उत्तरकी नकल ७-५-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित हुआ था।
3. यह उपलब्ध नहीं है।

उसी दिन मैंने आपको पत्रमें[1] लिखा था कि रुपयेको किस प्रकार काममें लाया जा रहा है। उस पत्रमें मैंने आपको बताया था कि फीनिक्स आश्रमके चलानेमें स्वयं मैंने जो कर्ज लिया था वह आपसे प्राप्त रकममें से अदा कर दिया गया था। यह हिसाब १२ पौंडसे ज्यादाका है। मैंने आपके पास मासिक खर्चका अनुमानित विवरण भी नीचे लिखे अनुसार भेजा था

यहाँका कार्यालय	५ पौंड
लन्दनका कार्यालय	४ पौंड
इंडियन ओपिनियन	५ पौंड
पीड़ित परिवार	२५ पौंड

मेरे पत्रके उत्तरमें आपने अपने पत्रमें कृपापूर्वक सूचित किया था कि खर्च नियमानुसार है।

यह देखते हुए कि संघर्षका अभी काफी समय तक लम्बा चलना निश्चित है मेरे लिए आपके पास आय-व्यय और आजतककी घटनाओंका संक्षिप्त विवरण भेजना आवश्यक है। गत दिसम्बरसे आजतक जो धन प्राप्त हुआ है वह नीचे लिखे अनुसार है

	पौं	शि	पें
बम्बईसे	४२५१	१	४
रंगूनसे	७५		
लन्दनसे	११५	८	२
मोज़ाम्बिकसे	५		
जंजीबारसे	५९	१	१
लॉरेंको मार्क्विससे	११	१२	
नेटालसे	८	११	
स्थानीय	१	७	७
कुल	५,२१९	१	७

बम्बईकी राशि दो विभागोंमें विभक्त है — ४११४ पौंड १ शिलिंग सामान्य संघर्षको चालू रखनेमें खर्च करनेके लिए भेजे गये हैं और ११८पौंड ११ शिलिंग ४ पेंस पीड़ित सत्याग्रहियों या उनके आश्रितोंकी सहायताके लिए पृथक रख दिये गये हैं। इन हिदायतोंपर पूरी तरह अमल किया गया है। रंगून और लन्दनसे भेजी गई रकमें बम्बईसे प्राप्त पृथक रखी गई राशिकी भाँति केवल पीड़ितोंकी सहायताके लिए रख छोड़ी है।

आपके पत्र और पेटिटके पत्रके अनुसार इस रुपयेको व्यय करना मेरे निर्णयपर छोड़ दिया गया है। मैंने इस सुविधासे काम चलाना सर्वोत्तम समझा है। यह धन सत्याग्रह-कोषके नामसे एक अलग खातेमें नेटाल बैंक जोहानिसबर्गमें जमा कर दिया गया है। जहाँतक बैंकका प्रश्न है, केवल मैं ही रुपया जमा कराता और निकालता हूँ। कोई अन्य खास औपचारिक समिति इसके लिए संगठित नहीं की गई है। यह लिटिल

१ देखिए "पत्र : गो० कृ० गोखलेको", पृष्ठ १०१-२।

भारतीय समाजके हिसाबका अंग भी नहीं समझा जाता। ब्रिटिश भारतीय संघका क्षेत्र सत्याग्रहसे ज्यादा व्यापक है। रुपया भी काछलियाकी जो ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष हैं और अन्य सत्याग्रहियोंकी सलाह या स्वीकृतिसे खर्च किया जाता है।

फीनिक्सका कर्ज वह कर्ज है जो मैंने व्यक्तिगत रूपसे अपने यूरोपीय मित्रों और मुवक्किलोंसे लिया था। इसका कारण यह था कि 'इंडियन ओपिनियन' को संघर्षकी खातिर कुछ विषम परिस्थितियोंमें और हानि उठाकर चालू रखनेकी आवश्यकता थी। मैंने 'इंडियन ओपिनियन'को चालू रखने और फीनिक्स आश्रमकी स्थापना करनेमें दक्षिण आफ्रिकामें पिछली बार रहते हुए की गई अपनी सारी कमाई लगा दी थी जो लगभग ५, पौंड थी। फीनिक्ससे मुझे कोई आर्थिक लाभ नहीं होता। मेरा और मेरे परिवारका खर्च एक यूरोपीय मित्रकी[1] सहायतासे चलता है। वे यूरोपीय और भारतीय जो फीनिक्समें मेरे सहयोगी हैं प्रायः केवल उतना ही लेते हैं जितनी उनकी आवश्यकता होती है और उन्होंने लगभग गरीबीका व्रत लिया है। मुझे आपको यह कहते हुए खुशी होती है कि फीनिक्सकी व्यवस्थामें कुछ हेर-फेर करनेसे अखबार अबतक मेरे पत्रमें बताई गई मासिक सहायताके बिना ही जारी रखा जा सका है। लन्दनकी समिति भी बहुत कम खर्चसे चलाई जा रही है। यहाँके कार्यालयोंके बारेमें भी मुझे यही कहना है। इसी १० तारीख तकका खर्च नीचे लिखे अनुसार है:

स्थानीय खर्च	१७४	११	८
लन्दन-कार्यालय	१७५	१५	
पीड़ितोंको सहायता	४४९	११	११
पीड़ित सहायताकोषके अलावा सहायता	५		
इंडियन ओपिनियनका कर्ज	१२०		

कुल २,२४९ पौं० १८ शि० ७ पें०

इसके बाद १ १९ पौंड १२ शिलिंग शेष रहते हैं। परन्तु जैसा कि आप देखेंगे पीड़ितोंको सहायता देनेमें मासिक खर्च ऊपर बढ़ा है और यद्यपि दिसम्बरके महीनेमें केवल २५ पौंड दिये गये थे, वर्तमान आधारपर यह खर्च लगभग ११ पौंड प्रति मास आता है। पचाससे ऊपर परिवारोंको सहायता दी जा रही है। स्थानीय खर्चोंमें यहाँका कार्यालय चलानेके अतिरिक्त डर्बनसे सत्याग्रहियोंकी यात्रा आदिका खर्च, तारोंका खर्च और ऐसे ही अन्य खर्च शामिल हैं। उपर्युक्त व्यय साढ़े चार मासका है। सहायताके खर्च और 'इंडियन ओपिनियन' के कर्जकी मदको छोड़ दें तो औसत मासिक खर्च लगभग १११ पौंड बैठता है। पीड़ित परिवारोंको सहायता देनेका खर्च निश्चय ही दिन-ब-दिन बढ़ेगा। इसलिए मैंने यह २ पौंड प्रति मास रखा है। उस दशामें औसत मासिक व्यय १११ पौंड रखा जा सकता है। इस प्रकार १ १९ पौंड १२ शिलिंगकी रकम यथासंभव आगामी जनवरी मासके आसपास समाप्त हो जायेगी।

१. हरमान कैलनबैक

लगभग ५ पौंड पीड़ित परिवारोंके मकानोंका किराया चुकानेके लिए दिये जा रहे हैं। इसलिए हम यह विचार कर रहे हैं कि क्या उन्हें किसी फार्ममें ले जाना ठीक होगा। वहाँ स्त्रियाँ और पुरुष जीविका अर्जित करनेके लिए कोई काम कर सकते हैं और वहाँ सहायतामें जो धन इस समय व्यय किया जा रहा है सम्भवतः उसका आधा हम बचा सकेंगे।

फार्मपर लगानेके लिए पूँजीकी कुछ कठिनाई थी। श्री काछलिया जेलसे बाहर मौजूद दूसरे लोग और मैं पूँजी लगानेकी भी जोखिम उठानेके लिए तैयार थे क्योंकि हम आशा करते थे कि यदि आवश्यकता हुई तो संघर्षके समाप्त होनेपर उस फार्मको बेच सकेंगे। परन्तु सम्भवतः वही पूँजी लगानेकी आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि एक यूरोपीय मित्रने कहा है कि वे एक फार्म खरीद देंगे और उसे जबतक सत्याग्रह चले तबतकके लिए सत्याग्रहियोंको बिना कुछ लिये दे देंगे।[1] यह अति उदारताका प्रस्ताव धन्यवाद स्वीकार कर लिया गया है और जब यह पत्र आपके हाथमें होगा तबतक वे शायद एक उपयुक्त फार्म प्राप्त कर चुके होंगे और [ऐसा हुआ तो] उसमें समस्त पीड़ित परिवार और मैं साथ-साथ रह रहे होंगे।

ऊपर जिन खर्चोंका ब्योरा दिया गया है उनमें उस सहायताका उल्लेख नहीं है जो व्यक्तियों द्वारा निजी तौरपर दी जा रही है।

मैं अब देखता हूँ कि मैंने आपको सक्रिय सत्याग्रहियोंका जो अन्दाज बता कर दिया था वह कम था। और बहुत-से लोग जिनके बारेमें मैंने सोचा था कि वे आगे नहीं आयेंगे सजा काट रहे हैं या निर्वासित कर दिये गये हैं। हालमें अधिकारी भारतीयोंको छाँटकर बहादुर तमिलोंको गिरफ्तार करनेमें बहुत सक्रिय हो गये हैं। संघर्षके सम्बन्धमें उनसे ज्यादा अच्छा काम भारतीयोंके अन्य किसी वर्गने नहीं किया है। इन वीर पुरुषोंने बार-बार जेल यात्रा की है। डीपक्लूफ जेलमें इस समय उनकी संख्या तीससे ऊपर है। डीपक्लूफ घोर अपराधियोंकी बस्ती है। ट्रान्सवालकी अन्य जेलोंकी अपेक्षा यहाँके विनियम बहुत कड़े हैं। उमकाटी जहाजसे लगभग ६ भारतीय निर्वासित किये जा चुके हैं और तीससे ऊपर किसी दिन निर्वासित किये जा सकते हैं। उनके निर्वासनकी आज्ञाएँ दी जा चुकी हैं। इन निर्वासितोंके बारेमें मैं यथेष्ट संयमके साथ नहीं लिख सकता। ये सब लोग ट्रान्सवालके अधिवासी हैं। इनमें से कुछ नेटालके भी अधिवासी हैं। फिर कुछको नेटालमें प्रवेश करनेका अधिकार है क्योंकि वे उस उपनिवेशके प्रवासी अधिनियमके अन्तर्गत शैक्षणिक परीक्षा पास कर सकते हैं। कुछ तो केवल लड़के हैं वे ट्रान्सवालमें या दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भागोंमें जन्मे हैं। बहुत-से लोगोंके परिवार यहीं हैं और उनका पालन पोषण इस देशमें ही हुआ है। मैं इन निर्वासित लोगोंकी वीर पत्नियों बहनों या माताओंसे प्राय मिलता रहता हूँ। एक बार मैंने पूछा कि क्या वे निर्वासितोंके साथ भारत जाना पसन्द करेंगी? उन्होंने जोशमें भरकर कहा — हम कैसे जा सकती हैं? हम तब बच्ची थीं तभी इस देशमें आई थीं। भारतमें हम किसीको नहीं जानतीं। भारत जानेकी अपेक्षा हम यहाँ मर-मिटना अधिक पसन्द करेंगी क्योंकि भारत हमारे लिए विदेश है।"

१ देखिए "पत्र : एच० कैलेनबैकको" पृष्ठ २८०-८१।

राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे उनका यह मनोभाव कितना ही शोचनीय क्यों न प्रतीत हो यथार्थ मत यह है कि इन पुरुषों और स्त्रियोंकी जड़ें दक्षिण आफ्रिकाकी भूमिमें जम गई हैं। संघर्ष आरम्भ होनेसे पहले इनमें से बहुत-से लोग अच्छी जीविका अर्जित करते थे। कुछके पास दुकानें थीं कुछ ट्रोली-ठेकेदार थे और कुछ फेरीवाले सिगार बनानेवाले होटलोंके नौकर आदि थे। नौकर कमसे-कम ६ पौंड और अधिकसे-अधिक १५ पौंड तक मजदूरी पाते थे और ट्रोली-ठेकेदार और दूसरे लोग जिनके पेशे स्वतन्त्र थे २ से ३ पौंड प्रतिमास तक पैदा करते थे। ये सब अब गरीब हो गये हैं और इनके परिवारोंको सत्याग्रह-कोषसे निर्वाह-योग्य न्यूनतम पैसे मिलते हैं।

आपकी जानकारीके लिए मैं यह बता दूँ कि किसी समय सरकारकी ओरसे कहा गया था कि जिन्होंने ट्रान्सवालमें स्वेच्छया पंजीयन (रजिस्ट्रेशन) करा लिया है वैसा कि इन निर्वासितोंमें से बहुतोंने कराया है वे कतई निर्वासित नहीं किये जाते हैं और जो ट्रान्सवालके अतिरिक्त दक्षिण आफ्रिकाके किन्हीं दूसरे भागोंके अधिवासी हैं वे भारतको नहीं बल्कि उन्हीं भागोंको भेजे जाते हैं — ये दोनों बातें अमलमें नहीं आ रही हैं और इसके लिए कारण यह बताया गया है कि ये लोग शिनाख्तका ब्योरा देने और अपना अधिवास प्रमाणित करनेसे इनकार करते हैं। पहली चीज निरर्थक है क्योंकि शिनाख्तका ब्योरा देनेसे इनकार करना अपने आपमें एक अपराध है और यह देखते हुए कि इन लोगोंने अपने आपको स्वेच्छया पंजीकृत घोषित किया है इनके विरुद्ध शिनाख्तका ब्योरा देनेसे इनकार करनेसे सम्बन्धित उक्त विशेष खण्डके अन्तर्गत मुकदमा चलाया जा सकता था। उनसे अपंजीकृत (अन-रजिस्टर्ड) भारतीय-जैसा व्यवहार करने और उन्हें इस प्रकार निर्वासित करनेका कोई कारण नहीं था। दूसरा कारण भी इतना ही निरर्थक है क्योंकि जिन्हें नेटालमें प्रवेश करनेका अधिकार था उन्होंने कहा था कि वे वहाँके अधिवासी हैं और जिन्हें किसी यूरोपीय भाषाका ज्ञान था उन्हें कोई सबूत पेश करनेकी आवश्यकता नहीं थी। मेरी रायमें असलियत यह है कि वीर तमिलोंकी स्वाभिमानकी भावनाको कुचलनेमें असफल होनेके कारण एशियाई महकमेने हमें खत्म करनेकी और हमारे आर्थिक साधनोंपर बहुत अधिक बोझ डालनेकी योजना बनाई है। जो भी हो मुझे लगता है कि मैं आपको और आपके माध्यमसे भारतकी जनताको यह विश्वास ठीक ही दिला रहा हूँ कि चाहे ये लोग हों चाहे इनकी पत्नियाँ माताएँ या बहनें उनमें से किसीके भी कोई खास हार माननेकी सम्भावना नहीं है।

मुझे आशा है कि जबतक ट्रान्सवालके विधानमें जिसके विरुद्ध हम लड़ रहे हैं *किया गया मातृभूमिका अपमान दूर नहीं कर दिया जाता तबतक मातृभूमि चैन न* लेगी और हमें अबतक जो सहायता मिली है वह आगे भी मिलती रहेगी।

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

गांधीजीके हस्ताक्षरोंसे युक्त टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ३७१९) और ७-५-१९११ के इंडियन ओपिनियन से।

१६३ पत्र : जेल निदेशकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
अप्रैल २६, १९०९

महोदय

फोक्सरस्ट जेलसे हालमें रिहा हुए कुछ सत्याग्रहियोंने मेरे संघका ध्यान ऐसी जानकारी और शिकायतोंकी ओर आकर्षित किया है जिनको मेरा संघ मानवताके हितकी दृष्टिसे आपके सामने रखना अपना कर्तव्य समझता है।

श्री सोराबजी कई बार जेल जा चुके हैं। उनको पिछली बार २१ अक्तूबरको श्री मेढके साथ फोक्सरस्टमें फिर सजा दी गई। श्री सोराबजीका कहना है कि फोक्सरस्टकी जेलमें इस सजाके दौरान नेल नामक एक वार्डरने उनके साथ बुरा सलूक किया था। पिछली बार जब वे जेल गये थे तब उनको डॉक्टरके आदेशपर कम मशक्कतका काम दिया गया था और भारी वजन उठानेकी मनाही कर दी गई थी। लेकिन इस बार सजा मिलनेके पहले ही दिन श्री सोराबजीकी डॉक्टरी परीक्षा होनेसे पहले वार्डर नेलने उनको पौधोंमें पानी देनेका आदेश दिया जिसके लिए उनको पाँच-पाँच गैलनकी दो बाल्टियाँ पूरी भरकर कुछ दूर ले जानी पड़ती थीं। इस काममें वे वतनी कैदी भी जिनके साथ श्री सोराबजी और अन्य भारतीय कैदी रखे गये थे थोड़ी-बहुत कठिनाई महसूस करते थे। वार्डर नेल श्री सोराबजीको पिछली बारकी जेल-यात्राके समयसे जानता था। उसे यह भी मालूम था कि श्री सोराबजीको डॉक्टरके विशेष आदेशसे कम मशक्कतका काम दिया जाता था और उनको स्टोर सम्हालने पोशाकोंका हिसाब रखने और बाँटनेके काम ही मुख्यतया दिये जाते थे। श्री सोराबजी एक दूसरे वार्डर — ओवरहोल्स्टर — की निगरानीमें काम कर रहे थे। उस वार्डरको श्री सोराबजीके धीरे-धीरे काम करने और बाल्टियाँ आधी भरकर ले जानेपर आपत्ति न होती थी। लेकिन उस दिन दो बजे वार्डर नेल आया और उसने उनसे दोनों बाल्टियाँ पूरी भरकर ले जानेका आग्रह किया। श्री सोराबजीने उसका विरोध किया और कहा कि वह उन्हें जानता है और उसे यह भी मालूम है कि पिछली बार चिकित्सा-अधिकारीने उनसे कम मशक्कतका काम ही करवाया था। उन्होंने वार्डरका ध्यान इस बातकी ओर भी खींचा कि वे आँत उतरने और तिल्ली जकड़न बढ़नेकी बीमारीसे पीड़ित हैं। उनके हाथकी हड्डी भी उतरी हुई है। लेकिन वार्डरने उनकी बातपर ध्यान नहीं दिया और पौधोंको पानी देनेके लिए भरी बाल्टियाँ ले जानेकी जिद करता रहा। श्री सोराबजीको चिकित्सा-अधिकारीसे मिलने तक पानी

१. जेल-निदेशकको नाम लिखे इस पत्रका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था और उसपर ब्रिटिश भारतीय संघके कार्यवाहक अध्यक्ष श्री ई॰ आई॰ अस्वातने हस्ताक्षर किये थे।

२. फेरीवाले एक प्रमुख सत्याग्रही, देखिए "चार रिहाइयाँ" पृष्ठ १५३।

दो दिन यही काम करना पड़ा। जब उन्होंने चिकित्सा-अधिकारीका ध्यान इस ओर आकर्षित किया तो तुरन्त ही आदेश दिया गया कि उनसे कोई भी ज्यादा मशक्कतका काम न लिया जाय और ज्यादा भारी बोझ भी न उठवाया जाये। स्पष्ट है कि वार्डर मक उनसे बदला लेना चाहता था इसीलिए उसने श्री सोराबजीपर अनुशासन भंग करनेका अभियोग लगाया और उनको मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया। अनुशासनका भंग इस बातमें बताया गया कि श्री सोराबजीने अपनी दशाकी ओर उसका ध्यान आकर्षित किया था। वार्डरके कथनानुसार श्री सोराबजीने उनसे यह भी कहा था कि मुझे अपना काम करने दो। मुझे तुम नाहक तंग कर रहे हो। श्री सोराबजीने इससे इनकार किया। उन्होंने वार्डरसे विरुद्ध की और मजिस्ट्रेटको पूरा किस्सा सुनाया। इसपर मजिस्ट्रेटने कहा कि श्री सोराबजीको दिये गये कामके औचित्यपर विचार करना उनका काम नहीं है वे तो अनुशासन-भंगके मामलेपर विचार कर रहे हैं और श्री सोराबजीको उन्होंने कम खुराक दिये जानेकी सजा दी। यहाँ इसका उल्लेख भी शायद किया जाना चाहिए कि चिकित्सा-अधिकारीका चूँकि श्री सोराबजीको कम मशक्कतका काम देनेका आदेश था इस वार्डरने उनको गन्देसे-गन्दा अर्थात् संडास साफ करनेका काम दिया। श्री सोराबजी चाहते हैं कि मैं आपको बतला दूँ कि एक सत्याग्रही होनेके नाते उनको इस कामपर भी कोई आपत्ति नहीं है पर मेरा संघ इस मामलेको आपकी जानकारीमें लाना अपना कर्तव्य समझता है।

फोक्सरस्टसे रवाना होनेके समय श्री सोराबजीके साथ सर्वश्री मेढ और हरिलाल गांधी थे। तीनोंको एक-साथ हथकड़ियाँ लगाकर जेलसे स्टेशन तक एक मील पैदल चलाया गया। हथकड़ियाँ लगी होनेपर भी उनसे उनके सामानके गट्ठर भी उठवाए गए। ये काफी भारी थे क्योंकि उनमें उनके कपड़े-लत्तोंके अलावा किताबें भी थीं और साथ ही निगरानी करनेवाले वार्डरकी चीजें और एक-एक कम्बल भी उठवाये गये। उनको इसी तरह पार्क स्टेशनसे फोर्ट तक पैदल ले जाया गया।

सर्वश्री मेढ और सोराबजी अभी हालमें रिहा हुए हैं। दोनोंने ही डीपक्लूफ जेलके हालातके बारेमें पहलेसे रिहा होनेवाले अन्य कैदियोंके इस कथनकी पुष्टि की है कि चिकित्सा-अधिकारी अभीतक कैदियोंके उन कष्टोंके प्रति भी जिनको आसानीसे दूर किया जा सकता है निर्दयता दिखाते हैं। श्री पन्नी नायडू अभी डीपक्लूफ जेलमें हैं। मेरे संघकी मान्यता है कि वे बड़े वीर पुरुष हैं और असत्य भाषण करना उनके स्वभावमें ही नहीं है। उन्होंने एक बार चिकित्सा-अधिकारीसे शिकायत की थी कि कैदियोंको आधे पेट रहना पड़ता है। चिकित्सा-अधिकारीने इसपर उनको झूठा कहा था। श्री मेढने अक्सर शिकायत की कि उनका वजन घटता जा रहा है और उनको अधिक अच्छे किस्मका भोजन दिया जाना चाहिए और भोजनकी मात्रा भी बढ़ा देनी चाहिए। परन्तु चिकित्सा-अधिकारी इसपर हँसा और उसने शिकायतपर कोई ध्यान नहीं दिया। श्री मेढका वजन २५ पौंडसे भी अधिक घट गया था। उन्होंने डिप्टी-गवर्नरसे उसकी शिकायत की और उसपर पहली अप्रैलसे अर्थात् जेल-जीवनके केवल आखिरी तीन हफ्तोंमें उनके भोजनकी मात्रा बढ़ाई गई। वजन घटनेकी शिकायत अधिकतर कैदी करते हैं, लेकिन

खुराकमें किसी भी रद्दोबदलका आदेश तबतक नहीं दिया जाता जबतक कि चिकित्सा अधिकारी यह न समझे कि उनका वजन जरूरतसे ज्यादा घट गया है। चिकित्सा-अधिकारी आम तौरपर यही कहता है कि यदि कैदियोंका वजन थोड़ा-बहुत घट जाये और कुछ चर्बी कम हो जाये तो कोई नुकसान नहीं होता वह उसे अनावश्यक चर्बी मानता है। वह अक्सर यह कहता रहता है कि कैदी सरकारी राशन खा-खाकर मोटे होते जा रहे हैं। मेरे संघकी विनम्र राय है कि डीपक्लूफ जेलमें इस प्रकारके बर्तावसे भारतीय सत्याग्रहियोंके कष्ट अनावश्यक रूपसे बढ़ाये जा रहे हैं। ७२ एशियाई कैदियोंमें से १८ की खुराक बढ़ानी पड़ी। इसी एक तथ्यसे प्रकट हो जाता है कि मौजूदा खुराक किस्म और मिकदार, दोनों ही दृष्टिसे अत्यन्त अपर्याप्त है। जाड़ेकी बात सोचकर मेरे संघको इन कैदियोंके स्वास्थ्यके बारेमें और अधिक चिन्ता हो जाती है क्योंकि उनको भोजनके साथ साधारण चिकनाई लेनेकी आदत है और उसके न मिलनेपर उनके स्वास्थ्यपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा।

रिहा होकर आये लोगोंकी एक यह भी शिकायत है कि पिछले जाड़ोंमें तो उनको अन्य कपड़ोंके साथ एक मोटी-सी कमीज भी दी गई थी लेकिन इस बार अभी तक उसकी मंजूरी नहीं दी गई है और कैदियोंको अब उसकी कमी लगने लगी है। मेरे संघको नहीं मालूम कि यह परिवर्तन सभी जेलोंमें किया गया है या नहीं लेकिन यदि मितव्ययिता या अन्य किसी आधारपर ऐसा परिवर्तन किया भी गया है तो मेरे संघको आशा है कि भारतीय कैदियोंको अधिक गर्म देशके वासी होनेके नाते पूरी बाहोंकी कमीजोंसे वंचित नहीं किया जायेगा क्योंकि वे उनको हमेशासे मिलती रही हैं। मेरे संघको मालूम हुआ है कि इस शिकायतकी ओर गवर्नर और चिकित्सा-अधिकारीका ध्यान आकर्षित किया जा चुका है। लेकिन उन्होंने कैदियोंको बतलाया है कि यह परिवर्तन सरकारने किया है। कैदियोंने कम संख्यामें कम्बल मिलनेकी भी शिकायत की है। डीपक्लूफ जेल लोहेकी नालीदार चादरोंका बनाया गया है और छतोंमें तख्ते नहीं लगाये गये हैं। फिर यह बहुत ऊँचाईपर बना है। इसलिए बहुत ठण्ड रहती है। फोक्सरस्ट जेल तो पत्थरका बना हुआ था इसलिए वहाँ ब्रिटिश भारतीयोंके लिए तीन कम्बल काफी थे लेकिन डीपक्लूफ जेलमें कैदियोंका काम उतने कम्बलोंसे नहीं चलता। मेरा संघ आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करना चाहता है कि फोक्सरस्टमें सभी भारतीय कैदियोंको गर्मियों तकमें तीन कम्बल और बिछानेकी चटाइयोंके अलावा एक तख्त और एक तकिया दिया जाता था। डीपक्लूफमें कैदियोंको तख्त और तकिया नहीं दिया जाता। सर्वश्री सोराबजी और मेढको हाईडलबर्ग और फोक्सरस्ट दोनों ही जेलोंका अनुभव है। वे बताते हैं कि उन दोनों जगहोंपर जाड़ेके दिनोंमें सभी ब्रिटिश भारतीय कैदियोंको चार चार कम्बल दिये जाते थे। उनका कहना है कि हाईडलबर्गमें तो आपने ही उस जेलके दौरेके समय सत्याग्रहियोंकी शिकायतपर प्रत्येकको चार चार कम्बल देनेका आदेश दिया था।

सर्वश्री सोराबजी और मेढने एक और दुःखद घटनाकी सूचना दी है। डीपक्लूफ जेलमें एक भारतीय कैदीकी अवस्था साठ वर्षसे ऊपर है। उसने चिकित्सा-अधिकारीसे

एक कमीज और एक अतिरिक्त कम्बल देनेके लिए प्रार्थना की थी लेकिन उस अधिकारीने राहत देनेसे साफ इनकार कर दिया।

मेरे संघको भरोसा है कि इस पत्रमें जिन मामलोंका उल्लेख किया गया है, उनपर आप अविलम्ब सावधानीसे विचार करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-४-१९११

१६४ खास रिहाइयाँ

सर्वश्री सोराबजी और मेढ जो सत्याग्रह-संग्रामके मुख्य स्तम्भोंमें से हैं गत शनिवारको छोड़ दिये गये। दोनों ही एक वर्षसे अधिक जेलमें रहे। दोनों शिक्षित हैं और दोनोंने भारतके सम्मानके लिए अपने सर्वस्वका त्याग किया है। सोराबजीने लड़ाईके दूसरे चरणका श्रीगणेश किया था और श्री मेढ मेटाके भारतीयोंके उस पहले जत्थेमें थे जिसने ब्रिटिश प्रजाके रूपमें अपने अधिकारोंकी परीक्षा करनेके लिए ट्रान्सवालमें प्रवेश किया था। दानाने जेलवासमें बहुत कष्ट उठाये हैं। श्री मेढका वजन बहुत घट गया है। परन्तु नैतिक बल — आत्मबल — दोनोंका बढ़ा है। उनकी भौतिक हानिसे समाजका लाभ हुआ है। हम भारतके इन दोनों सेवकोंको बधाई देते हैं और कामना करते हैं कि ईश्वर उनको भविष्यमें आनेवाले अन्य कष्टोंको सहनेकी भी शक्ति दे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १०-४-१९११

१६५ प्रिटोरिया-नगरपालिका[1]

प्रिटोरियाकी बदनाम नगरपालिका रंगदार जातियोंके विरुद्ध अपनी युद्ध-रत रहनेकी ख्यातिकी रक्षा बराबर कर रही है। बोअर-शासनके नगर-विनियमोंको जिनमें वतनियों रंगदार लोगों और एशियाइयोंको पैदल-पटरियोंपर चलनेकी मनाही की गई है, कायम रखनेके लिए ट्रान्सवाल संसदके गत अधिवेशनमें एक गैरसरकारी विधेयक पेश किया गया था। ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) ने इस विधेयकका विधिवत् विरोध करके बहुत अच्छा किया है।[2] विधेयकमें एक धारा इस आशयकी है जो ठीक भी है कि जबतक सम्राट् यह प्रकट न कर दें कि उन्होंने

१. देखिए "प्रिटोरियाकी नगरपालिका" पृष्ठ २५५।
२. देखिए "प्रार्थनापत्र: ट्रान्सवाल विधान-सभाको" पृष्ठ २४५।

इस कानूनको नामंजूर नहीं किया है तबतक यह कानून लागू नहीं किया जायेगा। अब कोई भूके लिए यह विचारनेका अवसर आ गया है कि वे दक्षिण आफ्रिकाके प्रति निमित्तहीन वर्गोंको अपमान और उत्पीड़नसे बचानेके लिए तैयार हैं। परन्तु अपीलका अन्तिम निर्णय करनेवाले तो स्वयं वे कोम हैं और उन्हें ही होना चाहिए जिनपर इस विरोधी कानूनका असर होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १०–४–१९११

१६६ फिर तीन पौंडी कर

जिन भारतीयोंसे ३ पौंडका वार्षिक व्यक्ति-कर वसूल किया जा सकता है उन भारतीयोंको सरकारने सूचित किया है कि वे फिर गिरमिटमें बँधकर इस करसे बच सकते हैं। जिन स्त्रियोंपर यह कर लग सकता है उनको भी सूचित किया गया है कि वे अपने जिलेके मजिस्ट्रेटको इस करसे बचनेका समुचित कारण बताकर इससे बच सकती हैं। जाहिर तौरपर यह *सूचना सम्बन्धित पुरुषों और स्त्रियोंके लिए* हितकर प्रतीत होती है। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। जहाँतक पुरुषोंका सम्बन्ध है यह सूचना पूर्णत: भारतीय मजदूरोंको नौकर रखनेवाले मालिकोंके लाभके लिए निकाली गई है। उन्हींको ध्यानमें रखकर कानूनमें यह संशोधन किया गया है क्योंकि जिन भारतीयोंपर कर लगाया जा सकता है मालिकोंको उन्हें अधिक मजदूरी देनी पड़ती है जिससे कि वे करको चुका दें। इसलिए एक आत्म-तुष्ट सरकारने भारतीयोंको इस करसे मुक्त करके मदद उन मालिकोंकी की है जो उन्हें नौकर रखना चाहते हैं। अत: यह सूचना वास्तवमें उन अभागे भारतीयोंके लिए एक चेतावनी है कि वे या तो पुन: गिरमिटमें बँध जायें या कर देनेके लिए तैयार हो जायें।

जहाँतक स्त्रियोंका सम्बन्ध है, इस लज्जाजनक प्रकरणके बारेमें जितना ही कम कहा जाये उतना ही अच्छा है। जिस सरकारने विधानसभामें शोर मचानेवाले सदस्यके सामने आत्मसमर्पण कर दिया हो उस सरकारसे इन स्त्रियोंके लिए अपमानजनक सूचनासे अच्छी चीजकी उम्मीद भी नहीं की जा सकती थी। वास्तवमें उनका नारीत्व ही करसे मुक्ति पानेका पर्याप्त कारण होना चाहिए। अगर वह पर्याप्त कारण नहीं है तो दूसरा कोई कारण पर्याप्त नहीं हो सकता। यदि उनके नारी होनेसे उनकी रक्षा नहीं हो सकती तो उन्हें भी पुरुषोंकी तरह फिर गिरमिटमें बँधना पड़ेगा। परन्तु हमें आशा है कि एक भी भारतीय स्त्री ऐसा कुछ नहीं करेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–४–१९११

१६७. प्रिटोरियाकी नगरपालिका

प्रिटोरियाकी नगरपालिकाने रद्दी कामोंके सिवा और कुछ करना नहीं जाना। यह नगरपालिका काले लोगोंके प्रति द्वेष-भावके लिए विख्यात हो गई है। जान पड़ता है काले लोगोंको दुःख देनेके लिए ही उसका जन्म हुआ है। ट्रान्सवालकी संसदके पिछले सत्रमें भी उक्त नगरपालिकाने काले लोगोंपर प्रहार किया था। एक खानगी विधेयक द्वारा उसने ऐसा विनियम बनानेका निश्चय किया है कि जिससे काले लोग पैदल-पटरीपर न चल सकें। काले लोगोंमें केप ब्वाएज और एशियाइयोंका समावेश हो जाता है। यह ठीक हुआ है कि इसके विरोधमें ब्रिटिश भारतीय संघने अर्जी दी है। लॉर्ड क्रू को भी अर्जी भेजनी पड़ेगी। देखना है उक्त महानुभाव और लॉर्ड मॉर्ले क्या कहते हैं। किन्तु याद रखना चाहिए कि हमें आखिरी फरियाद तो अपने-आपसे ही करनी है। *क्या प्रिटोरियामें भारतीय पैदल-पटरी छोड़कर सड़कपर चलेंगे?*

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-४-१९१

१६८. पत्र : गो० कृ० गोखलेको

जोहानिसबर्ग
मई २, १९१

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

मैं आपके नाम लिखा गया एक खुला पत्र भेज रहा हूँ।[1] काफी विचारके बाद मैंने सोचा कि मेरे लिए ऐसा ही करना सर्वोत्तम होगा। यह पत्र यहाँ समाचारपत्रोंको दे दिया गया है[2] और मुझे विश्वास है कि आप भी इसे वहाँ प्रकाशित कर देंगे। इस पत्रसे मुझे दानदाताओंको सूचना देनेमें भी मदद मिलती है। श्री पेटिटने मुझे लिखा है कि *इंडियन ओपिनियन* के मदमें मैंने जो खर्च किया है उसे श्री टाटा ठीक मानते हैं। आपके पत्रसे जिसका मैंने संलग्न पत्रमें उल्लेख किया है इस बारेमें पहले ही आश्वस्त हो चुका था। परन्तु मुझे श्री टाटाकी भी स्पष्ट मंजूरी मिल गई, यह ठीक हुआ।

मुझे पूरी आशा है कि *हिन्द स्वराज्य* को गुजरातीमें और अब उसके अंग्रेजी अनुवादको प्रकाशित करनेकी मेरी कार्रवाईमें इस समय ट्रान्सवालमें चलनेवाले संघर्षपर

१. देखिए “पत्र : गो० कृ० गोखलेको” पृष्ठ २४५-४९।
२. मई ७, १९१ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत।

मंगलवार [मई ३, १९१०]

क्विनकी अर्जी

श्री क्विनने जिनको निर्वासित करनेकी आज्ञा दी गई है और जो प्रिटोरिया जेलमें कैद हैं सर्वोच्च न्यायालयमें इस प्रकारका आवेदन दिया था कि सरकारको उन्हें देश-पार करनेसे पहले हिरासतमें रखनेका अधिकार नहीं है, अतः उन्हें रिहा कर देना चाहिए। इस आवेदनपर विचार किया गया और मुख्य न्यायाधीशने निर्णय दिया कि सरकारने हिरासतका जो समय लिया है वह अधिक नहीं माना जा सकता।[1] उन्होंने कहा कि देश-पारकी आज्ञाके सम्बन्धमें न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता इसलिए प्रश्न केवल समयका रह जाता है। इस निर्णयका प्रभाव कुछ भी नहीं हुआ है। हम जहाँके तहाँ ही हैं। सत्याग्रही इस प्रकार उच्च न्यायालयमें जानेकी खटपट नहीं कर सकता। फिर भी चूँकि भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंके लोग हैं इसलिए उनके निमित्त श्री क्विनको ऐसा आवेदन देना पड़ा था। चीनी लोग इस आवेदनके परिणामसे तनिक भी नहीं घबराये हैं।

चीनियोंकी सभा

रविवारको चीनियोंकी सभा थी। उसमें श्री रायप्पन उनके साथी इमाम साहब श्री कुवाड़िया श्री मीयाखाँ श्री सोराबजी श्री मेढ और श्री गांधी आदि उपस्थित थे। श्री क्विनने सारे संघर्षपर प्रकाश डाला। फिर श्री गांधी श्री रायप्पन तथा श्री सोराबजी बोले। सभा समाप्त होनेपर श्री रायप्पनके सम्मानमें मेवा और चाय दी गई। श्री रायप्पन जेलमें पूर्ण रूपसे निरामिष-भोजी रहे। उनका कहना है कि उन्हें मांसकी आवश्यकता बिलकुल अनुभव नहीं हुई। श्री रायप्पन और अन्य लोग आज सबेरे प्रिटोरिया के जाने गये हैं।

श्री दोस्त

डीपक्लूफ जेलसे भारतीय कैदियोंने कहलाया है कि सरकार श्री दोस्तको मैलेकी बाल्टियाँ उठानेका काम न दे। उनके बदले वे बाल्टियाँ उठानेके लिए तैयार हैं। यह सन्देश भारतीयोंके लिए शोभनीय ही है। इसपर श्री काछलियाने सरकारको पत्र लिखा है कि यदि वह ठीक समझे तो श्री दोस्तको कष्ट न दे।

श्री डोसासे मुलाकात

कुमारी श्लेसिन पिछले रविवारको श्री डोसासे मिलनेके लिए डीपक्लूफ गई थीं। श्री डोसा आगामी रविवारको रिहा किये जायेंगे। जेलमें सब स्वस्थ हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-५-१९१

१. देखिए "सर्वोच्च न्यायालयका मामला", पृष्ठ २५ ।

२. देखिए पहला शीर्षक।

१७१ पत्र : जेल-निदेशकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मई ६, १९१०

महोदय

श्री शेलत कुछ समय पहले एक सत्याग्रहीके रूपमें डीपक्लूफ जेलमें सजा काट रहे थे। वे गन्दी बाल्टियाँ ढोनेसे इनकार करनेके कारण कम्बे अर्से तक तनहाईमें रहे। डीपक्लूफ जेलसे रिहा होनेवाले सत्याग्रही मेरे संघके लिए यह सन्देशा लाये हैं कि शेष ब्रिटिश भारतीय कैदी इसपर राजी हैं कि श्री शेलतको मैलेकी बाल्टियाँ ढोनेके कामसे छुटकारा दे दिया जाये। वे ब्राह्मण हैं और उनको यह काम करनेमें धार्मिक आपत्ति है और बाल्टियाँ ढोनेकी उनकी बारी आनेपर अन्य ब्रिटिश भारतीय कैदी उनकी जगह काम करनेको तैयार हैं।[2] मेरे संघको नहीं मालूम कि श्री शेलतको अब भी वही काम करनेके लिए कहा गया है या नहीं लेकिन मैं इस मामलेकी ओर आपका ध्यान दिलाना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिससे आप डीपक्लूफ जेलके अधिकारियोंको जो हिदायतें देना उचित समझें दे सकें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-५-१९१०

१७२ तार : शाही परिवारको[3]

[जोहानिसबर्ग
मई ६, १९१० के बाद]

ब्रिटिश भारतीय संघ शाही परिवारके प्रति विनम्रतापूर्वक समवेदना प्रकट करता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-५-१९१०

१. इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और यह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अ० मु० काछलियाके हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।

२. देखिए "पत्र : मुख्यमन्त्रीके [illegible]" पृष्ठ २८९-९० ।

३. इस तारका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अ० मु० काछलियाने संघकी ओरसे सम्राज्ञीके निजी-सचिवकी मार्फत शाही परिवारको भेजा था। यह सम्राट् एडवर्डकी मृत्युपर, जो ६-५-१९१० को हुई थी, दिया गया था।

किसी तरह असर नहीं पड़ता। इस पुस्तिकामें मैंने जो विचार व्यक्त किये हैं वे मेरे निजी विचार हैं। यद्यपि ये विचार संघर्षके दौरान परिपक्व हुए हैं परन्तु संघर्षसे इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। और मुझे विश्वास है कि यदि व्यक्तिगत रूपसे मेरे या इस पुस्तिकाके विरुद्ध आपके मनमें कोई प्रतिकूल भाव उत्पन्न हो जाय तो भी आप संघर्षकी विशेषताओंको इनसे सर्वथा अलग रखकर देख सकेंगे। 'हिन्द स्वराज्य' में मैंने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे बहुत सोचने-समझनेके बाद बने हैं। श्री पोलकने उसकी टाइप की हुई प्रति आपको भेज दी है। मैं आपके पास छपी हुई प्रति नहीं भेज रहा हूँ क्योंकि गुजराती संस्करण जब्त कर लिया गया है और मेरा खयाल है कि यही बात उसके अनुवादपर भी लागू होती है।

यदि आपको टाइप की हुई प्रति देखनेका समय मिला हो तो उसपर मैं आपकी बहुमूल्य राय जानना चाहूँगा। यह पुस्तक यहाँ बड़े पैमानेपर वितरित की गई है। इसकी काफी आलोचना हुई है। आजके 'ट्रान्सवाल लीडर' में एक समालोचना प्रकाशित हुई है जिसपर लेखकका नाम है। उसको मैं श्री पोलकसे आपके पास भेजनेके लिए कह रहा हूँ।

मैं आपके विसम्बरके पत्रके व्यक्तिगत अंशका उत्तर नहीं दे रहा हूँ। मैंने केवल यह अनुभव किया कि आपके सामने अपने विचार रख देना मेरा कर्तव्य है। मैंने वह कर्तव्य ही पूरा किया है। मैं अब उनपर बहस न करूँगा। यदि मुझे कभी व्यक्तिगत रूपसे आपके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ तो निश्चय ही मैं पुनः उन कतिपय विचारोंकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करूँगा जिनमें मेरा दृढ़ विश्वास है और जो मुझे बिलकुल ठीक लगते हैं। इस बीच मैं आशा करता हूँ कि आप सर्वथा रोग-मुक्त हो गये होंगे और मातृभूमिकी सेवाके लिए दीर्घकाल तक जीवित रहेंगे।

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

माननीय प्रोफेसर गोखले
बम्बई

गांधीजीके हस्ताक्षरोंसे युक्त टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ३८) की फोटो-नकलसे।

१६९ पत्र : मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मई २, १९१०

महोदय

जोहानिसबर्गकी ९ पुअसी स्ट्रीटके निवासी सर्वश्री एम० ए० मुस्सा और सुलेमान काजी गत २५ अप्रैलको ट्रिचार्ड्ससे अर्मेका जा रहे थे। गाड़ीपर सवार होनेके बाद उन्हें बैठनेकी जगह नहीं मिल सकी। उनके पास दूसरे दर्जेके टिकट थे। उन्होंने यह बात कंडक्टरको बताई। उसने कहा कि उनके बैठनेकी व्यवस्था की जायेगी। एक-एक करके स्टेशन निकलते गये और वे कंडक्टरसे मिलते रहे, पर गाड़ीके बेटन स्टेशन पहुँचने तक जगहकी व्यवस्था नहीं की गई। बेटन स्टेशनपर श्री मुस्साने कंडक्टरसे कहा कि वे उसकी शिकायत करेंगे। इसपर वह बोला कि यदि ऐसी बात है, तब तो श्री मुस्साको बैठनेकी जगह दी ही नहीं जायेगी। इतना कहकर वह चला गया। लेकिन श्री मुस्सा और उनके साथी बताये हुए डिब्बेमें जा बैठे। मेरे संघको भरोसा है कि आप इस मामलेकी जाँच करनेकी कृपा करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-५-१९१०

१७० जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [मई २, १९१०]

जोज़ेफ रायप्पन

सर्वश्री जोज़ेफ रायप्पन, डेविड ऐंड्रचू, सैम्युअल जोज़ेफ तथा पोबी नायना शनिवारको रिहा किये जानेवाले थे लेकिन वे इससे एक दिन पहले ही यहाँकी जेलमें ले जाये गये। उनको रिहा करनेके बजाय निर्वासित करनेके लिए पुलिसको सौंप दिया गया और फिर वे तुरन्त ही दो दिनके लिए जमानतपर छोड़ दिये गये। रायप्पन और उनके साथियोंका यह पहला ही अनुभव था फिर भी उन्होंने जेलमें बड़ी हँसी-खुशीसे अपना समय काटा। उनका स्वास्थ्य भी अच्छा है। वे सब तुरन्त वापस आना चाहते हैं।

1. इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और यह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अ० मु० काछलियाके हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।

मंगलवार [मई ९, १९११]

भिखनकी अर्जी

श्री भिखनने जिनको निर्वासित करनेकी आज्ञा दी गई है और जो प्रिटोरिया जेलमें कैद हैं सर्वोच्च न्यायालयमें इस प्रकारका आवेदन दिया था कि सरकारको उन्हें देश-पार करनेसे पहले हिरासतमें रखनेका अधिकार नहीं है, अतः उन्हें रिहा कर देना चाहिए। इस आवेदनपर विचार किया गया और मुख्य न्यायाधीशने निर्णय दिया कि सरकारने हिरासतका जो समय लिया है वह अधिक नहीं माना जा सकता।[1] उन्होंने कहा कि देश-पारकी आज्ञाके सम्बन्धमें न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता इसलिए प्रश्न केवल समयका रह जाता है। इस निर्णयका प्रभाव कुछ भी नहीं हुआ है। हम जहाँके तहाँ ही हैं। सत्याग्रही इस प्रकार उच्च न्यायालयमें जानेकी खटपट नहीं कर सकता। फिर भी चूँकि भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंके लोग हैं इसलिए उनके निमित्त श्री भिखनको ऐसा आवेदन देना पड़ा था। चीनी लोग इस आवेदनके परिणामसे तनिक भी नहीं घबराये हैं।

चीनियोंकी सभा

रविवारको चीनियोंकी सभा थी। उसमें श्री रायप्पन उनके साथी इमाम साहब श्री कुवाडिया श्री मीयाखाँ श्री सोराबजी श्री मेढ और श्री गांधी आदि उपस्थित थे। श्री क्विनने सारे संघर्षपर प्रकाश डाला। फिर श्री गांधी श्री रायप्पन तथा श्री सोराबजी बोले। सभा समाप्त होनेपर श्री रायप्पनके सम्मानमें मेवा और चाय दी गई। श्री रायप्पन जेलमें पूर्ण रूपसे निरामिष-भोजी रहे। उनका कहना है कि उन्हें मांसकी आवश्यकता बिलकुल अनुभव नहीं हुई। श्री रायप्पन और अन्य लोग आज सबेरे प्रिटोरिया को चले गये हैं।

श्री सेलत

डीपक्लूफ जेलसे भारतीय कैदियोंने कहलाया है कि सरकार श्री सेलतको मैलेकी बाल्टियाँ उठानेका काम न दे। उनके बदले वे बाल्टियाँ उठानेके लिए तैयार हैं। यह सन्देश भारतीयोंके लिए शोभनीय ही है। इसपर श्री काछलियाने सरकारको पत्र[2] लिखा है कि यदि वह ठीक समझे तो श्री सेलतको कष्ट न दे।

श्री सोढासे मुलाकात

कुमारी श्लेसिन पिछले रविवारको श्री सोढासे मिलनेके लिए डीपक्लूफ गई थीं। श्री सोढा आगामी रविवारको रिहा किये जायेंगे। जेलमें सब स्वस्थ हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ७–५–१९११

१. देखिए "सर्वोच्च न्यायालयका फैसला", पृष्ठ ९९।
२. देखिए अगला शीर्षक।

१७१ पत्र : जेल-निदेशकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मई ३, १९१०

महोदय,

श्री धनजी कुछ समय पहले एक सत्याग्रहीके रूपमें डीपक्लूफ जेलमें सजा काट रहे थे। वे गन्दी बाल्टियाँ ढोनेसे इनकार करनेके कारण लम्बे अर्से तक तनहाईमें रहे। डीपक्लूफ जेलसे रिहा होनेवाले सत्याग्रही मेरे संघके लिए यह सन्देशा लाये हैं कि शेष ब्रिटिश भारतीय कैदी इसपर राजी हैं कि श्री धनजीको मैलेकी बाल्टियाँ ढोनेके कामसे छुटकारा दे दिया जाये। वे ब्राह्मण हैं और उनको यह काम करनेमें धार्मिक आपत्ति है और बाल्टियाँ ढोनेकी उनकी बारी आनेपर अन्य ब्रिटिश भारतीय कैदी उनकी जगह काम करनेको तैयार हैं।[2] मेरे संघको नहीं मालूम कि श्री धनजीको अब भी वही काम करनेके लिए कहा गया है या नहीं, लेकिन मैं इस मामलेकी ओर आपका ध्यान दिलाना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिससे आप डीपक्लूफ जेलके अधिकारियोंको जो हिदायतें देना उचित समझें दे सकें।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ७-५-१९१०

१७२ तार : शाही परिवारको[3]

[जोहानिसबर्ग
मई ६, १९१०के बाद]

ब्रिटिश भारतीय संघ शाही परिवारके प्रति विनम्रतापूर्वक समवेदना प्रकट करता है।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १४-५-१९१०

१. इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और यह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अ० मु० काछलियाके हस्ताक्षरसे भेजा गया था।

२. देखिए “एक सत्याग्रहीकी कहानी”, पृष्ठ २८९-९०।

३. इस तारका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अ० मु० काछलियाने इसको गवर्नर-जनरलके मार्फत शाही परिवारको भेजा था। यह सम्राट्की मृत्युपर, जो ६-५-१९१० को हुई थी, दिया गया था।

१७३ सर्वोच्च न्यायालयका मामला

ट्रान्सवाल चीनी संघके अध्यक्ष श्री क्विनकी दरख्वास्तपर सर्वोच्च न्यायालयने जो फैसला[1] दिया है उससे हम जहाँकि तहाँ ही हैं। लोगोंका निर्वासन अवैधका अवैध ही बना है। न्यायालयसे यह फैसला नहीं माँगा गया था कि गिरफ्तारीकी आज्ञा कानूनी है या नहीं। इस मामलेमें तो न्यायालयको अधिकार ही नहीं था क्योंकि यह आज्ञा शुद्ध रूपसे प्रशासनिक थी। इसलिए जो एशियाई कानूनके अनुसार ट्रान्सवालके वैध रूपसे पंजीकृत अधिवासी हैं, उनके निर्वासनका सवाल जैसाका तैसा बना हुआ है। न्यायालयको तो केवल इस प्रश्नका निर्णय करना था कि निर्वासित होने तक लोगोंको प्रिटोरियामें रोककर रखा जाना उचित है या नहीं। परिस्थितियोंको ध्यानमें रखते हुए न्यायालयको इस तरहके निर्णयपर पहुँचनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई कि इस प्रकार रोक रखना अनुचित नहीं है।

लेकिन इस कार्रवाईसे एक विचित्र स्थिति प्रकाशमें आती है। अधिकारी अपनी इस *गैर-कानूनी निर्वासन-नीतिको ब्रिटिश बन्दरगाहोंके जरिये कार्यान्वित नहीं कर सकते।* अगर निर्वासित व्यक्ति ब्रिटिश प्रदेशसे ले जाये जाते तो वे कानूनी शरण ले सकते थे। इसलिए उन्हें विदेशी बन्दरगाहसे बाहर भेज दिया जाता है। परन्तु सत्याग्रहीके नाते शिकायत करना उनका धर्म नहीं है। उनका तो कर्तव्य केवल इतना है कि जहाँ उन्हें जबर्दस्ती ले जाया जाये वहाँ चुपचाप चले जायें और ज्यों ही वे स्वतन्त्र हों वापस आकर ट्रान्सवाल सरकारकी शक्तिको फिर चुनौती दें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-५-१९१०

१७४ श्री रायप्पन और उनके मित्र

श्री जोज़ेफ रायप्पन और उनके मित्र ऐतिहासिक काम कर रहे हैं। डीलागोआ बेसे जो भी समाचार बाहर आया है उसीने श्री रायप्पन और उनके साथी श्री ऐंड्रू और जोज़ेफकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है। उन्होंने कैदको बहुत अच्छे रूपमें ग्रहण किया है। सरकारने भी अपनी आदतके अनुसार उनकी शक्तिकी परीक्षा लेनेके लिए उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया है और निर्वासित कर दिया है। जैसा कि श्री रायप्पनने समाचारपत्रोंको भेजे गये अपने पत्रमें लिखा है उन्होंने और उनके मित्रोंने सरकारी

चुनौती स्वीकार कर ली है। इस साहसके लिए हम उनको और उनके मित्रोंको बधाई देते हैं।

परन्तु श्री रायप्पनके पत्रसे प्रकट होता है कि ट्रान्सवालकी जेलोंकी हालत अत्यन्त दर्दनाक है। उन्होंने अपने पत्रमें जो-कुछ लिखा है उसमें से बहुत-सी बातें तो सभी लोग जानते हैं। उन्हें किस तरह पत्थरके ठण्डे फर्शपर नंगे पैर खड़ा रखा गया, भूखे गलियारोंमें नंगे बदन रखा गया, हथकड़ियाँ लगाई गईं और जेलके कुछ वार्डरोंने उनके साथ पाशविक बर्ताव किया यह सारी तफसील एक अत्यन्त लज्जाजनक और दिल दहलानेवाली घटनाकी याद ताजा करती है। यह देखकर हमें प्रसन्नता होती है कि इस व्यवहारसे हिम्मत टूटना तो दूर, उनका स्वराष्ट्रकी सम्मान-रक्षाका निश्चय और भी दृढ़ हो गया है।

श्री रायप्पन और उनके साथियोंने दक्षिण आफ्रिकाके युवकोंके सामने एक अत्यन्त उज्ज्वल और अनुकरणीय उदाहरण पेश किया है। उन्होंने दिखा दिया है कि सच्चा गुण धन कमानेमें नहीं बल्कि चरित्र-निर्माण करनेमें है। हमें निश्चय है कि श्री रायप्पनका मार्गदर्शन उपनिवेशमें जन्मे भारतीयों और अन्य भारतीयोंमें एक नया उत्साह भर देगा। वे अगर भावी दक्षिण आफ्रिकाके राष्ट्रका निर्माण करना चाहते हैं तो उनके सामने यही एक निश्चित मार्ग है।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन ७-५-१९१०

१७५ हमारे प्रकाशन

बम्बई सरकारके २४ मार्चके 'गज़ट' में यह सूचना प्रकाशित की गई है कि इंटरनेशनल प्रिंटिंग प्रेसमें छपे 'हिन्द स्वराज्य', 'सर्वोदय'[1], "मुस्तफा कामेल पाशाका भाषण"[2] और "सुकरातका बचाव या एक सत्यवीरकी कथा"[3] सम्राट्की सरकार द्वारा जब्त कर लिये गये हैं "क्योंकि इनमें ऐसी सामग्री है जो ... राजद्रोहात्मक घोषित की गई है"।

'हिन्द स्वराज्य' 'इंडियन होम रूल' के रूपमें हमारे पाठकोंके सामने है। 'सर्वोदय' रस्किनके 'अन टु दिस लास्ट' का गुजराती रूपान्तर है। 'मुस्तफा कामेल पाशाका भाषण' उस भाषणका गुजराती अनुवाद है जो मिस्रके इस देशभक्तने अपनी मृत्युके पहले अलेक्जेंड्रियाकी एक विराट सभामें दिया था और 'सुकरातका बचाव या एक सत्यवीरकी कथा' प्लेटोकी अमर कृतिका गुजराती रूपान्तर है। यह सत्याग्रही

१, २ और ३. इनके मूल अंग्रेजी नाम क्रमशः 'अन टु दिस लास्ट', 'मुस्तफा कामेल पाशाज़ स्पीच' और 'डिफेंस ऑफ सॉक्रेटीज़ ऑर द स्टोरी ऑफ ए ट्रू वॉरियर' हैं। इन तीनोंके लिए देखिए क्रमशः "सर्वोदय" खण्ड ८ पृ ३१२-१४, ३४०-४२, ३५१-५३, ३७२-७४, ३८०-८१, ३९४-९६, ४११-१०, ४१२-१६, ४२४-२८ और "एक सत्यवीरकी कथा" खण्ड ८ पृ १९५-९७, २०८-९, २१७-२२, २४०-४४, २५९-६१, २६७-७१।

अच्छाई और असली भावनाको समझानेके लिए प्रकाशित किया गया है। हिन्द स्व-राज्य को छोड़कर शेष सारे प्रकाशन पहले प्रकाशित हो चुके हैं। उनके प्रकाशनके पीछे यही हेतु रहा है कि उनसे पाठकोंका नैतिक स्तर ऊँचा हो। हमारी रायमें वे किताबें ऐसी हैं जिनको बगैर किसी खतरेके बड़े मजेमें बच्चोंके हाथोंमें भी दिया जा सकता है।

परन्तु इन जब्तियोंपर हमें शिकायत करनेका कोई अधिकार नहीं है। भारत सरकारकी इस मनोवृत्ताको हम अस्थायी मानते हैं। आज वह भयग्रस्त है और कुछ-न-कुछ करना चाहती है। जिसमें थोड़ा-बहुत विचार-स्वातन्त्र्य भी हो वह ऐसे साहित्यके प्रचारको रोकना चाहती है। निश्चय ही उत्साहकी यह अधिकता अपने आप ठंडी पड़ जायेगी। जो प्रकाशन वास्तवमें खतरनाक हैं उनका प्रचार इस तरह नहीं रुकेगा। वे अनेक टेढ़े-मेढ़े उलटे-सीधे तरीकोंसे अपना प्रचारका रास्ता निकाल ही लेंगे और हमें भय है कि इस कारण सरकार ऐसी किताबें जिन वर्गों तक नहीं पहुँचने देना चाहती उनतक वे अवश्य पहुँच जायेंगी और वे उन्हें पढ़ेंगे।

इस सूरतमें हम-जैसे सत्याग्रहके कट्टर समर्थकोंके सामने केवल एक ही मार्ग खुला है। दमनका हमपर कोई असर नहीं हो सकता। वह हमारे विचारोंको नहीं बदल सकता। प्रत्येक उचित अवसरपर उनका प्रकाशन अवश्य किया जायेगा फिर इसके लिए कोई भी व्यक्तिगत कष्ट क्यों न उठाने पड़ें।

हिंसात्मक तरीकोंको रोकनेके लिए सरकारकी चिन्तासे हमें सहानुभूति है। इसके लिए हम भी बहुत-कुछ करना और योग देना चाहेंगे। परन्तु हम तो इस बीमारीको रोकनेका केवल एक मार्ग जानते हैं और वह यह है कि सत्याग्रहके सही तरीकेका प्रचार किया जाये। दूसरे सब मार्ग और विशेष रूपसे दमन आगे चलकर अवश्य ही असफल होंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ७–५–१९११

१७६. श्री रायप्पन

सभी लोग स्वीकार करेंगे कि श्री रायप्पन और उनके साथियोंने जातिकी अच्छी सेवा की है। उन्होंने अपनी शिक्षाका अच्छा उपयोग किया है। जेलमें उनका व्यवहार भी सत्याग्रहीके योग्य ही रहा। वे जेलमें जिस सादगीसे रहे वह बहुत ही सराहनीय है। जेलमें श्री डेविड ऐंड्रू और श्री सैम्युअल जोजेफने भी उनके साथ बहुत प्रसन्नतापूर्वक अपना समय बिताया।

अब ये तीनों भारतीय वीर फिर जेलमें पहुँच जायेंगे। सरकारने उन्हें भगा [सत्याग्रही] मानकर तुरन्त ही निर्वासित कर दिया है। सरकारको तो यह आशा है

१. देखिए "श्री रायप्पन पृष्ठ २०८ और "जोजेफ रायप्पन" पृष्ठ १८ ।

कि वे निराश होकर वापस नेटाल चले जायेंगे। उसकी यह आशा व्यर्थ सिद्ध होगी यह सन्तोषकी बात है।

श्री रायप्पनने अखबारोंको पत्र[1] लिखा है उसका अनुवाद हम दूसरी जगह दे रहे हैं। वह पठनीय है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-५-१९१०

१७७ पत्र: डब्ल्यू० जे० वायबर्गको

मई १ १९१०

प्रिय श्री वायबर्ग[2]

हिन्द स्वराज्य सम्बन्धी छोटी-सी पुस्तिकाकी आपने जो बहुत विस्तृत और मूल्यवान समालोचना की है उसके लिए मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। मैं बड़ी खुशीसे आपका पत्र[3] इंडियन ओपिनियन में प्रकाशनार्थ भेज दूँगा और उसका यह उत्तर भी।

अपने पत्रके अन्तिम अनुच्छेदमें आपने जो भाव व्यक्त किये हैं मैं उनसे पूर्णतया सहमत हूँ। मुझे यह बात पूरी तरह मालूम है कि मेरे विचारोंके कारण मेरे कट्टर मित्रों और जिन्हें मैं आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ उनके तथा मेरे बीच बहुत-से मतभेद पैदा होंगे परन्तु जहाँतक मेरा सम्बन्ध है इन मतभेदोंके कारण न तो उनके प्रति मेरे आदरमें कमी आ सकती है और न मैत्रीपूर्ण सम्बन्धोंमें अन्तर पड़ सकता है।

आपने अपने पत्रमें जिन अपूर्णताओं और त्रुटियोंकी ओर संकेत किया है मुझे उनका अहसास है और साथ दुःख भी है। मैं जानता हूँ कि जिन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्याओंकी चर्चा इस पुस्तिकामें की गई है उनपर विचार करनेके लिए मैं कितना अयोग्य हूँ। परन्तु परिस्थितिवश मुझे पत्रकार होना पड़ा है और इसलिए मैं अपने उन पाठकोंके लिए लिखनेको विवश था जिनके लिए इंडियन ओपिनियन निकाला जाता है। प्रश्न यह तय करनेका था कि इस समय भारतवर्षमें जो उन्मादभरी हिंसा चल रही है उसके विषयमें इंडियन ओपिनियन के पाठकोंको मार्गदर्शनके लिए इच्छुक होनेपर भी भटकने दिया जाये या उन्हें उनका स्पष्ट नेतृत्व दिया जाये भले ही वह नेतृत्व अत्यन्त साधारण क्यों न हो। हिंसाको कम करनेका एकमात्र रास्ता मुझे तो वही दिखाई पड़ा जो पुस्तिकामें अंकित है।

आपके इस विचारसे मैं सहमत हूँ कि सतही तौरपर पढ़नेवाला व्यक्ति इस पुस्तिकाको राजद्रोहात्मक रचना समझेगा और मैं यह भी मानता हूँ कि जो लोग मनुष्यों

१ यहाँ नहीं दिया जा रहा है।
२. ट्रान्सवाल विधानसभाके सदस्य।
३ देखिए परिशिष्ट ५।

इसके पीछे जो सिद्धान्त निहित है वह हिंसाके सिद्धान्तके सर्वथा विपरीत है। इसलिए इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि लड़ाईका धरातल भौतिकसे हटकर मानसिक हो जाता है। हिंसाका काम है बाह्य साधनोंसे सुधार करवाना; अनाक्रामक प्रतिरोध अर्थात् आत्मबलका काम है उसे आन्तरिक विकासके जरिये प्राप्त करना। और यह आन्तरिक विकास कष्ट-सहनसे आत्मशुद्धिसे होता है। हिंसा सदा असफल होती है; अनाक्रामक प्रतिरोध सदा सफल होता है। अनाक्रामक प्रतिरोधीकी लड़ाई फिर भी आध्यात्मिक होती है क्योंकि वह विजय प्राप्त करनेके लिए लड़ता है। उसके लेखे लड़के निमित्त अर्थात् आत्मजयके निमित्त लड़ना अनिवार्य है। अनाक्रामक प्रतिरोध सदा नैतिकतापर आधारित होता है; उसमें कभी निर्दयता नहीं होती। और कोई भी कार्य चाहे वह मानसिक हो या अन्य प्रकारका जो इस कसौटीपर खरा नहीं उतरता वह निःसन्देह ही अनाक्रामक प्रतिरोध नहीं है।

आपने अपने तर्कमें यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि राजनीतिको धर्म या आध्यात्मिकतासे सर्वथा पृथक रहना चाहिए। आधुनिक परिस्थितियोंमें हम यही बात रोजमर्राके जीवनमें देखते हैं। अनाक्रामक प्रतिरोधका उद्देश्य राजनीति और धर्ममें पुनः ऐक्य स्थापित करना और हमारे प्रत्येक कार्यको नैतिक सिद्धान्तोंके प्रकाशमें जाँचना है। ईसाने पत्थरोंको रोटीमें बदलनेके लिए आत्मबलका प्रयोग करनेसे इनकार कर दिया था; इससे मेरे ही तर्ककी पुष्टि होती है। आधुनिक सभ्यता इस समय उसी असम्भव कृत्यको सम्भव करनेका प्रयत्न करनेमें व्यस्त है। पत्थरोंको रोटीमें बदलनेके लिए आत्मबलका प्रयोग जादूगरी माना जाता जैसा कि भारतमें आज भी माना जाता है। मैं आपसे इस बातमें भी सहमत नहीं हो सकता कि अमुक काम उचित है या अनुचित इसका निर्णय सदैव उस कामके पीछे जो मंशा हो उससे किया जा सकता है। एक अज्ञानी माँ शुद्धतम इरादेसे अपने बच्चेको थोड़ी-सी अफीम खिला सकती है। उसका यह मंशा उसे न तो उसके अज्ञानसे मुक्त कर सकेगा और न उससे नैतिक दृष्टिसे अपने बच्चेको मारनेका उसका अपराध ही धुल सकेगा। एक अनाक्रामक प्रतिरोधी इस सिद्धान्तको मानकर और यह जानते हुए कि मंशा कितना ही साफ क्यों न हो फिर भी कार्य सर्वथा गलत हो सकता है, फैसला परमात्मापर छोड़ देता है और जिसे वह अनुचित समझता है उसके प्रतिरोधका प्रयत्न करते हुए स्वयं ही कष्ट-सहन करता है।

सारी भगवद्गीतामें मुझे ऐसा कुछ नहीं मिलता जिसमें कहा गया हो कि जिस मनुष्यका केवल कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण है परन्तु जो मनको विषयोंके चिन्तनसे अलग नहीं रख सकता, उसके लिए यही बेहतर है कि जबतक वह मनपर भी नियन्त्रण न कर ले तबतक कर्मेन्द्रियोंसे भोग करे। साधारण व्यवहारमें हम ऐसी प्रवृत्तिको भोग लिप्सा कहते हैं। हम यह भी जानते हैं कि आत्माके दुर्बल होनेपर भी यदि हम इन्द्रियोंपर काबू रख सकें और सतत कामना करते रहें कि आत्मा भी वैसी ही बलवान हो तो हम आत्मा और इन्द्रियोंमें ऐक्य ला सकेंगे। मेरा खयाल है कि जो वाक्य आपने उद्धृत किया है वह एक ऐसे व्यक्तिसे सम्बन्धित है जो दिखानेके लिए तो इन्द्रिय दमन करता प्रतीत होता है परन्तु वास्तवमें जानबूझकर अपने मनमें विषयोंका चिन्तन करता है।

मैं आपसे पूर्णतया सहमत हूँ कि एक विशुद्ध अनाक्रमक प्रतिरोधी यह इच्छा नहीं कर सकता कि लोग उसे दुरात्मा समझें, न वह जेलके अथवा किसी अन्य प्रकारके कष्टोंकी शिकायत कर सकता है और न जो उसे अन्याय या दुर्व्यवहार प्रतीत होता है उसका राजनीतिक लाभ उठा सकता है। फिर सत्याग्रहके किसी मामलेका प्रचार करनेका सवाल ही नहीं उठता। परन्तु दुर्भाग्यवश सभी कार्योंमें मिलावट होती है। शुद्धतम अनाक्रमक प्रतिरोध केवल सिद्धान्त रूपमें ही मिल सकता है। जो असंगतियाँ आपने बताई हैं वे इस बातकी पुष्टि ही करती हैं कि ट्रान्सवालके भारतीय अनाक्रमक प्रतिरोधी ऐसे मानव प्राणी हैं जिनसे बहुत गलतियाँ हो सकती हैं और अब भी वे बहुत दुर्बल हैं। किन्तु मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि उनका उद्देश्य अपने आचरणको यथासम्भव शुद्ध अनाक्रामक प्रतिरोधके अधिकसे-अधिक अनुरूप बनाना है और ज्यों-ज्यों संघर्ष बढ़ता जाता है हमारे बीचमें निश्चय ही शुद्ध आत्माएँ उत्पन्न होती जाती हैं।

मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि सभी सत्याग्रही प्रेम या सत्यकी भावनासे अनुप्राणित नहीं हैं। निस्सन्देह हममें से कुछ ऐसे हैं जो प्रतिरोध या घृणाकी भावनासे मुक्त नहीं हैं। परन्तु हम सबकी यह इच्छा है कि हम अपने आपको घृणा या बैरकी भावनासे मुक्त करें। मैंने यह भी देखा है कि जो आन्दोलनके तमेपनकी चकाचौंधके कारण या किसी स्वार्थवश अनाक्रमक प्रतिरोधी बन गये थे वे बादमें अलग हो गये। दिखावटी कष्ट-सहन लम्बे समय तक नहीं चल सकता। ऐसे लोग अनाक्रामक प्रतिरोधी कभी नहीं थे। अनाक्रामक प्रतिरोधीके विषयमें कुछ तटस्थ भावसे विचार करनेकी आवश्यकता है। आप जो यह कहते हैं कि सैनिकोंका शारीरिक कष्ट-सहन ट्रान्सवालके अनाक्रमक प्रतिरोधियोंकी तुलनामें कहीं अधिक रहा है सो इसमें मैं आपसे पूर्णतया सहमत हूँ। किन्तु जो जानबूझकर धधकती चिताओंमें या उबलते तेलके कड़ाहोंमें कूद गये उन विश्वविख्यात अनाक्रामक प्रतिरोधियोंका कष्ट-सहन किसी भी सैनिकके कष्ट-सहनसे अपेक्षाकृत अधिक था।

टॉल्स्टॉयने पशुबलसे संगठित और उसीपर आधारित संस्थाओं अर्थात् सरकारोंकी बड़ी निर्ममतापूर्वक आलोचना की है। मैं उनकी ओरसे कुछ कहनेका दावा नहीं कर सकता लेकिन उनकी कृतियाँ पढ़कर मैं कभी इस निष्कर्षपर नहीं पहुँचा कि वे ऐसा मानते था सोचते हैं कि सारा संसार एक दार्शनिक अराजकताकी अवस्थामें रहनेमें समर्थ होगा। उन्होंने जो उपदेश दिया है, और जैसा कि मेरी रायमें विश्वके समस्त उपदेशकोंने दिया है, वह यह है कि प्रत्येक मनुष्यको स्वयं अपनी अन्तरात्माकी आवाज सुननी चाहिए, स्वयं अपना स्वामी होना चाहिए और स्वयं अपने अन्तरमें ईश्वरका राज्य खोजना चाहिए। टॉल्स्टॉयके अनुसार ऐसी कोई सरकार नहीं है जो उनकी सहमतिके बिना उनपर नियन्त्रण रख सके। ऐसे पुरुषकी सत्ता समस्त सरकारोंसे बड़ी है। और एक शेर यदि दूसरे शेरोंके एक ऐसे समूहको जो अज्ञानवश अपनेको भेड़ समझते हैं यह बताये कि वे भी भेड़ें नहीं बल्कि शेर हैं तो क्या इसमें कोई खतरेकी बात हो सकती है? इसमें सन्देह नहीं कि कुछ महा अज्ञानी शेर उस बुद्धिमान शेरके

कथनका विरोध करेंगे। निस्सन्देह इससे भ्रम भी फैलेगा। किन्तु अज्ञान कितना ही प्रबल क्यों न हो यह तो कोई नहीं कहेगा कि बुद्धिमान शेर चुप बैठा रहे और अपने साथी शेरोंसे अपनी ही जैसी प्रभुता और स्वतन्त्रताका आनन्द लेनेको न कहे।

मेरे खयालमें यह बात आई है कि यदि कोई एशियाई-विरोधी-संगठन शुद्ध तथापि सर्वथा भ्रमित अभिप्रायसे एशियाइयोंको अभिशाप मानकर ट्रान्सवालसे निर्वासित करना चाहे तो उसके लिए हिंसात्मक साधनों द्वारा अपने उद्देश्यकी पूर्ति करना उसके अपने दृष्टिकोणसे अवश्य ही उचित होगा। सत्याग्रहियोंका यदि वे निर्बल नहीं हैं तो जिसे वे मनमानी कार्रवाई मानते हैं उसके विरुद्ध शिकायत करना शोभा नहीं देता। उनके लिए तो अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध किसी कामके आगे सिर झुकानेकी अपेक्षा निर्वासन या उससे भी बड़ा कोई कष्ट पाना सुखदायी राहत पानेके समान होना चाहिए। मुझे आशा है कि आपने स्वयं जो दृष्टान्त दिया है उसमें आप अनाक्रामक प्रतिरोधके सौन्दर्यको देखनेसे नहीं चूकेंगे। यदि हम मान लें कि ये निर्वासित व्यक्ति अपने बलात् निर्वासनका शारीरिक प्रतिरोध करनेमें समर्थ थे और इसके बावजूद उन्होंने निर्वासनका प्रतिरोध करनेके बजाय शुद्ध मनसे निर्वासित हो जाना स्वीकार किया तो क्या इससे यह प्रकट नहीं होगा कि उनका साहस और नैतिक शक्ति ज्यादा ऊँचे दर्जेकी है?

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २१-५-१९१०

१७८ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [मई ९, १९१०]

जेल गये

श्री ईस्मुअल जोजफ, श्री रेंडू और श्री जोबी नायडू जो केवल कुछ दिन पहले ही रिहा होनेपर निर्वासित किये गये थे फिर [ट्रान्सवालमें] प्रवेश करके गत शुक्रवारको जेल चले गये। आश्चर्यकी बात है कि उन्हें केवल छः हफ्तेकी सजा दी गई है। पहले छः महीनेकी सजा दी जाती थी फिर तीन मासकी हुई और अब डेढ़ मासकी हो गई। ऐसा क्यों किया जा रहा है, यह मेरी समझमें नहीं आता। सरकार घबरा गई है यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। वह सारे काम घबराहटमें कर रही है। संघ-शासन पहली जूनसे आरम्भ होगा। हो सकता है सरकारका इरादा उसके पूर्व डीपक्लूफ जेल खाली करनेका हो। वैसे यह अनुमान-मात्र है। फिर यह प्रश्न भी उठता है कि वह इस प्रकार जेल खाली क्यों कर रही है। देखें क्या होता है।

"भारत तो गाने-बजानेके साथ मण्डपमें आयेगी।"[1] सत्याग्रहीके लिए छः महीने हों तो और छः हफ्ते हों तो सब एक समान ही होने चाहिए।

सोढा

श्री सोढा शनिवारको रिहा कर दिये गये।[2] उनका स्वास्थ्य ठीक दिखाई देता है। पिछली बार जैसी कमजोरी थी वैसी इस बार नहीं है। उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया, इसलिए वे अपने बाल-बच्चोंसे मिलनेके लिए नेटाल जा रहे हैं। उनका इरादा उनसे मिलकर कुछ दिनोंमें लौटने और अपने सत्याग्रही बन्धुओंके साथ जेल जानेका है। श्री हरिलाल गांधी भी इसी उद्देश्यसे पिछले शुक्रवारको फीनिक्स चले गये हैं।

सम्राट् एडवर्ड

सम्राट एडवर्डकी मृत्युपर शोक मनानेके लिए आज शहरके सब बाजार बन्द हैं और कार्यालयों आदि पर काले झंडे लगे हैं।

मंगलवार [मई १ १९१]

पीटर मूनलाइट

श्री पीटर मूनलाइट जो कभी तमिलोंके अध्यक्ष थे इस समय पुलिसकी हिरासतमें हैं और उन्हें निर्वासित किया जायेगा।

राज-परिवारको तार

ब्रिटिश भारतीय संघने सम्राट्के परिवारको सहानुभूतिका सन्देश यहाँके डिप्टी गवर्नरके मार्फत तारसे[3] भेजा है।

कल सब दूकानें बन्द थीं। समाचारपत्रोंमें स्वर्गीय सम्राट्की लम्बी जीवनी प्रकाशित की गई है।

चीनियोंका मुकदमा

चीनी सर्वोच्च न्यायालयमें जिस मुकदमेमें हार गये हैं, उसके सम्बन्धमें वे प्रिवी कौंसिलमें अपील करनेकी व्यवस्था कर रहे हैं।[4] अपीलका काम झंझटका है इसलिए अभी कुछ निश्चित नहीं हो सका है।

बुधवार [मई ११ १९१]

निर्वासित

चीनासामी पोल नामका एक १६ वर्षीय लड़का और पीटर मूनलाइट हद-पार कर दिये गये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १४–५–१९१

१ गुजराती कहावत "जिसका कर्म है [illegible] कर देगी"।

२ देखिए "श्री सोढाकी रिहाई" पृष्ठ २००।

३ देखिए "तार: शाही परिवारको" पृष्ठ २५९।

४ देखिए "सर्वोच्च न्यायालयका मामला" पृष्ठ २९ ।

१७९ स्वर्गीय सम्राट्[1]

सम्राट् एडवर्डकी मृत्यु हो गई और वे पूरे साम्राज्यको शोक-मग्न कर गये। ब्रिटिश संविधानमें राजाको राजनीतिसे परे रखा गया है। इसलिए उनकी मृत्युसे कितनी हानि हुई यह तो उनके व्यक्तिगत गुणोंसे ही आँका जायेगा परन्तु इनसे प्रेरणा तो केवल उन्हींको मिलती है जिनके जीवन उनसे प्रभावित होते रहे हैं। भारतीय तो स्वर्गीय महामहिम सम्राट्को इस रूपमें याद करेंगे कि उन्होंने अपनी आदरणीया दिवंगत माताके पद-चिह्नोंका अनुसरण किया। अपनी माताकी भाँति स्वर्गीय सम्राट्के मनमें भी भारतकी जनताके लिए प्रेम था। इस कारण हमें भी हमेशा उनकी मधुर याद बनी रहेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-५-१९११

१८० सम्राट् चिरजीवी हों!

वेल्सके महाविभव राजकुमार जॉर्ज अब जॉर्ज पंचमके नामसे इंग्लैंडके राजा और भारतके सम्राट् बन गये हैं। राजा मर गया राजा चिरजीवी हो! ये दोनों बातें एक साथ कही जाती हैं। राजा और सम्राट् आते-जाते रहते हैं, परन्तु राज-पद अमर है। राजाके लिए उपयुक्त माने गये गुणोंके अनुसार आचरण बहुत कम राजा कर पाते हैं। वर्तमान राजा जॉर्ज पंचमके शब्दोंमें उनके पिता राजा एडवर्डकी इच्छा थी कि अन्तिम साँस तक वे प्रजाका अधिकतम हित करनेका प्रयत्न करते रहेंगे और अपने इस वचनका पालन उन्होंने अपनी शक्ति-भर किया। ईश्वरकी कृपासे मैं भी इस बारेमें अपने पिताका ही अनुसरण करनेका पूरा प्रयास करूँगा।" बादशाह चाहते हैं कि उनके प्रजाजन भी परमात्मासे उनके बारेमें यही प्रार्थना करें कि "वह उन्हें इसके लिए बल दे और उनका मार्गदर्शन करे।" यह प्रार्थना बहुत-से देशोंसे अनेक भाषाओंमें स्वर्ग लोक तक ऊँची उठेगी। इस प्रार्थनामें हम भी नम्रतापूर्वक भाग ले रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-५-१९१०

१. यह मोटी काली रूलमें घेरकर शोकके रूपमें प्रकाशित किया गया था।

१८१. श्री वी० ए० चेट्टियार

हमें विश्वास है कि तमिल कल्याण समिति (बेनीफिट सोसाइटी) के अध्यक्ष श्री वी० ए० चेट्टियारका चित्र पाकर हमारे पाठकोंको हर्ष होगा। इस अंकके साथ हम श्री चेट्टियारका एक चित्र पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत कर रहे हैं, यह केवल इसलिए नहीं कि श्री चेट्टियार जैसे वयोवृद्ध सैनिक तीसरी बार जेल गये हैं और उनके निर्वासित पुत्र जहाजसे भारत जा रहे हैं; बल्कि इसलिए कि इस भेंटके द्वारा हम सम्पूर्ण तमिल समाजका अभिनन्दन करना चाहते हैं। उक्त समाजने इस लड़ाईमें आश्चर्यजनक काम किया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-५-१९१०

१८२. श्री सोढाकी रिहाई

श्री आर० एम० सोढा कल शनिवारको छोड़ दिये गये। पिछले हफ्ते जिन वीर जोड़ोंका हमने उल्लेख किया था श्री सोढा उनमें से एक हैं। वे लगभग पूरे एक वर्ष तक लगातार जेलमें रहे हैं। इसके अलावा कर्मकांडी हिन्दू होनेके कारण उन्हें दूना कष्ट सहना पड़ा क्योंकि वर्षमें कुछ महीने वे दिनमें केवल एक ही बार भोजन करते हैं। जेलके बाहर तो एक बारके भोजनसे भी शरीरको लगभग उतना ही पोषण मिल सकता है जितना तीन बारके सामान्य भोजनसे मिलता है। परन्तु जेलमें तो उन्हें एक बारके भोजनमें जो-कुछ मिलता था उसीसे सन्तोष करना पड़ता था। परन्तु श्री सोढाने यह सब आनन्दपूर्वक सह लिया। श्री सोढाका निर्वासन नहीं हो रहा है। इसलिए छूटनेपर वे अपनी पत्नी और बच्चोंसे मिलनेके लिए सीधे नेटाल चले गये हैं और वहाँसे डीपक्लूफ जेलमें अपने साथी कैदियोंके पास पहुँचनेके लिए शीघ्र ही लौटना चाहते हैं। श्री सोढा और उनके समान तपे हुए सत्याग्रही जिस वीरतासे बार-बार जेलके कष्ट सह रहे हैं वह उनके लिए और उनके समाजके लिए बड़े गौरवकी बात है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-५-१९१

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" पृष्ठ २९८।

१८३. स्वर्गीय सम्राट एडवर्ड[1]

सम्राट् एडवर्डकी मृत्युपर सारे ब्रिटिश साम्राज्यमें शोक मनाया जा रहा है। भारतीयोंकी स्थिति क्या है? इस समय ब्रिटिश राज्यमें प्रजा दुःखी है क्या इस कारण वे इस शोकमें भागी नहीं बन सकते? जो इसमें भागी नहीं बनते वे व्यक्ति अवश्य ही ब्रिटिश संविधानसे अनभिज्ञ हैं। इस संविधानके अनुसार राजा प्रशासनमें कोई भाग नहीं लेता। वह राज्यकी नीतिमें परिवर्तन नहीं कर सकता। इसलिए उसकी कसौटी करते समय केवल उसके व्यक्तिगत गुणोंपर ही विचार किया जा सकता है। किन्तु उसके व्यक्तिगत गुणोंका भी भारतीयोंपर शायद ही कोई असर पड़ता है। जो उसके जीवनसे परिचित हों और जो उसके कार्योंपर विचार करते हों उनका असर उन्हींपर हो सकता है।

हमारे लिए तो इतना ही काफी है कि सम्राट् एडवर्डने अपनी माँ महारानी विक्टोरियाका अनुसरण करके भारतीयोंपर प्रेम प्रकट किया था। यह स्पष्ट है कि उनके हृदयमें भारतीय लोगोंके प्रति प्रेम था। इस कारण सम्राट्के प्रति भारतीयोंकी भावना शुद्ध ही होनी चाहिए, भले ही ब्रिटिश नीतिके सम्बन्धमें उनके विचार कुछ भी हों।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-५-१९१०

१८४. बादशाह चिरजीवी हों!

बादशाह चल बसा बादशाह चिरजीवी हो। ये दोनों वाक्य बादशाहकी मृत्युके समय एक साथ बोले जाते हैं। बादशाह मरता भी है और जीता भी है। बहुत-से बादशाह मर गये और बहुत-से मरेंगे। दारा सिकन्दर और अन्य बादशाह खाली हाथ चले गये इस तरह मनुष्यके शरीरका भरोसा नहीं रहता। किन्तु बादशाहत बनी रहती है, वह चाहे अन्यायी हो या न्यायी और प्रजाके लिए उपयोगी। लेकिन ब्रिटेनकी बादशाहतके सम्बन्धमें इनमें से कोई भी बात नहीं कही जा सकती। बादशाह एडवर्डने यथाशक्ति सेवा की। उन्होंने राजकाजमें हस्तक्षेप करनेका अभाव भी नहीं किया यह उनकी महानताका सूचक है। उन्हें इसीमें प्रजाका हित दिखाई दिया। नये बादशाह अब युवराज (प्रिंस ऑफ वेल्स) नहीं रहे। वे बादशाह जॉर्ज पंचम हो गये हैं। उनका विचार अपने पिताके पद-चिह्नोंपर चलनेका है। वे इसके लिए ईश्वरसे सहायता और

1. इसे शोक-सूचक काली-काली मोटी रेखाओंसे घेरकर छापा गया था।

शक्तिकी कामना करते हैं। वे चाहते हैं कि उनकी प्रजा उनकी इस कामनाकी पूर्तिके लिए प्रार्थना करे। इस प्रार्थनामें लाखों लोग सम्मिलित होंगे और हम भी प्रार्थना करते हैं कि ईश्वर उन्हें बुद्धि और बल दे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-५-१९११

१८५. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [मई १५, १९११]

पोलकका तार

श्री पोलकके तीन तार प्राप्त हुए हैं। उन्होंने उनमें लिखा है कि सब सत्याग्रही बम्बई पहुँच गये हैं। उनके सम्बन्धमें मद्रासमें एक बड़ी सभा हुई। उनमें से २६ लोग वहाँ ही वापस रवाना हो गये। निर्वासित किये गये लोगोंमें से कुछ लोग गैर-सत्याग्रही भी थे। श्री पोलकने यह खबर भी दी है कि उनमें से एककी मृत्यु हो गई है। श्री पोलककी तूफानी गति-विधियोंसे यहाँके अधिकारी चौंक उठे हैं। मुझे आशा है कि जो सत्याग्रही लौटकर डर्बनमें आयेंगे उनका स्वागत और आतिथ्य डर्बनके भारतीय करेंगे। वे कमसे-कम इतना तो कर ही सकते हैं और यह उनका कर्तव्य है कि वे उनको ठहरनेकी जगह दें उनका [सार्वजनिक] सम्मान करें और उन्हें ट्रान्सवाल भेज दें।

डेलागोआ-बेमें जुर्माना

एक संवाददाताने मुझे खबर दी है कि ट्रान्सवाल जानेवाले यात्रियोंको डेलागोआ-बेमें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। डॉक्टर आठ शिलिंग लेता है। फिर यदि यात्रीके पास ट्रान्सवालका पास हो तो उसे आठ पौंड लेकर उतारते हैं। इसके अतिरिक्त उससे डेढ़ पौंड शुल्क लेते हैं और उसका ट्रान्सवालका पास ले लिया जाता है। पासको देख लेनेके बाद टिकट दिया जाता है। उसे इसके बाद पुलिसको अपनी रवानगीकी खबर देनी पड़ती है। एक आदमी उसको सरहदपर पहुँचाने जाता है और वहाँ एक पौंड काटकर उसे सात पौंड लौटा देता है। इस प्रकार ट्रान्सवाल पहुँचने तक भारतीय कैदमें रहता है और तीन पौंड तक का जुर्माना देता है। इस सबको प्रवासी भारतीय ही चुपचाप सहन नहीं करते बल्कि डेलागोआ-बेके भारतीय भी सहन करते हैं। वे इस सम्बन्धमें न्याय पानेमें समर्थ हैं किन्तु स्वार्थ-वश कुछ नहीं करते।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-५-१९११

१८६. लौटे हुए निर्वासित

श्री पोलक और वापस आनेवाले २६ निर्वासित सज्जन दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके धन्यवादके पात्र हैं। श्री पोलक इसलिए कि उन्होंने इतनी जल्दी इन लोगोंको यहाँ वापस भेज दिया और निर्वासित सज्जन अपनी बहादुरी और बलिदानकी भावनाके कारण क्योंकि वे बम्बई पहुँचनेके चार दिनके अन्दर ही पुनः यहाँ लौटनेके लिए रवाना हो गये हैं। इसके लिए उन्हें अपने मनसे बड़ा युद्ध करना पड़ा होगा। वे अपनी मातृभूमिको गये थे। इनमें से कुछने तो उसे कभी देखा भी नहीं था। अगर वे वहाँ रह जाते तो अपने देशको कुछ देन पाते और इसमें किसीको आपत्तिकी गुंजाइश भी न होती। परन्तु उन्होंने कर्तव्यको सर्वोपरि समझा। वे जहाजके ऊपर ही जगह पाकर कष्ट सहते हुए वहाँ गये और फिर वैसे ही कष्ट उठाते हुए लौट आये। और यहाँ पहुँचनेपर भी उन्हें कोई चैन थोड़े ही नसीब होनेवाला है? यहाँ भी जेल या पता नहीं क्या उनके भाग्यमें है। लोग अपने दिलोंमें इनके विषयमें तरह-तरहकी कल्पनाएँ कर रहे हैं। इन्हें दक्षिण आफ्रिकाके किसी बन्दरगाहपर उतरने दिया जायेगा या नहीं? अगर वे केप अथवा नेटालके बाशिन्दे बन गये हैं तो उनके वहाँ उतरनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। उनके यहाँ पहुँचने तक संघ-सरकार अपना काम पूरी तरहसे सँभाल लेगी। देखना है नई सरकार इनके साथ क्या सलूक करती है। ट्रान्सवाल आनेपर उनका क्या होगा इस विषयमें कुछ भी अनुमान लगाना बेकार है, क्योंकि उनपर चाहे निषिद्ध प्रवासीके रूपमें मुकदमा चलाया जाये या किसी दूसरे आरोपमें उन्हें तो जेल जाना ही है। हाँ, अगर सरकार उन्हें उपनिवेशमें लाकर डेलागोआ-बेके रास्ते फिर भारत भेज दे तो बात दूसरी है। कुछ भी हो, सत्याग्रहीकी हैसियतसे उनके सामने केवल एक ही मार्ग है। वह यह कि वे तबतक कानूनके सामने अपना सिर नहीं झुकायेंगे जबतक कि जिन शिकायतोंके खिलाफ वे लड़ रहे हैं वे दूर नहीं कर दी जातीं फिर इसका परिणाम चाहे जो हो। डर्बनके भारतीयोंका कर्तव्य भी स्पष्ट है वह यह कि इन भाइयोंके आनेपर वे उनका स्वागत करें और उन्हें जितने आरामसे रखा जा सके रखें। उनका स्वागत भी वे इतने उत्साहसे करें कि उनपर यह प्रकट हो जाये कि उनके इस आत्मोत्सर्गको समस्त दक्षिण आफ्रिकामें बसे उनके देशभाई आदरकी दृष्टिसे देखते हैं और दक्षिण आफ्रिकाकी सरकार भी जान ले कि दक्षिण आफ्रिकाका समस्त भारतीय समाज उनके साथ है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-५-१९११

१८७ हिन्दू-मुसलमान

उपनिवेशमें जन्मे भारतीय और अन्य भारतीय

उपर्युक्त शीर्षकको लिखते हुए हमें शर्म आती है किन्तु चूँकि मजबूर सच लिखना हमारा काम है।

मैरित्सबर्गमें कुछ हिन्दुओं और उपनिवेशमें उत्पन्न भारतीयोंने व्यापारिक परवानोंके लिए प्रार्थनापत्र दिया था। उनको परवाने मिल गये यह तो ठीक है। उनके मिलनेपर हम भारतीयोंको बधाई चाहिए तो हम देनेके लिए तैयार हैं परन्तु उन परवानोंको लेनेके लिए जो तरीके काममें लाये गये वे अपने हाथों-पाँवोंपर कुल्हाड़ी मारनेके समान हैं। उस प्रार्थनापत्रके समर्थनमें कुछ भाइयोंने भी एक अर्जी पेश की थी। उसमें कहा गया है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता नहीं है। इसलिए हिन्दुओं और उपनिवेशमें उत्पन्न भारतीयोंको मुसलमानोंकी दूकानोंसे सामान खरीदनेके लिए मजबूर करना उचित नहीं है। फलतः इन समझदार गोरोंने सूचित किया कि [प्रार्थियोंको] परवाने दिये जाने चाहिए।

हमें तो ऐसी कार्रवाइयोंके परिणाम बुरे ही नजर आते हैं। अबतक हमारे प्रार्थनापत्रोंके विरुद्ध केवल गोरे ही दिखाई देते थे। अब हम देखते हैं कि भारतीय भी आपसमें एक-दूसरेका विरोध कर रहे हैं। यह [समाजकी] दुर्दशाका सूचक है। हम देखते हैं कि भारतीयोंकी नीयत गोरोंके समर्थनके बलपर एक-दूसरेका नुकसान पहुँचाकर फायदा उठानेकी हो गई है। बुद्धिमान भारतीयोंको तुरन्त समझ लेना चाहिए कि ऐसा करनेसे दोनों ही जातियोंको बड़ी हानि पहुँचेगी। ऐसी प्रवृत्ति अदूरदर्शिताकी द्योतक है। इसलिए हम भारतीय नेताओंसे निवेदन करते हैं कि वे इस प्रकारके काम करनेसे पहले विचार करें और चेतें। हिन्दू और मुसलमान इन दोनों जातियोंमें या उपनिवेशमें उत्पन्न भारतीयों और अन्य भारतीयोंमें जो भी भेद डालेगा फिर वह भारतीय हो या अन्य कोई, हम उसे जातिका शत्रु मानेंगे। उसे शत्रु माना भी जाना चाहिए। हम यह बात खास तौरसे कहना चाहते हैं कि यदि हममें से एक जाति दूसरी जातिकी अपेक्षा अधिक लाभ उठा ले जाती हो तो उसको उठा ले जाने दिया जाये परन्तु हम अपने आपको तीसरेके हाथमें न जाने दें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-५-१९११

१८८. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [मई २१ १९१]

निर्वासित व्यक्ति

निर्वासित लोगोंमें से श्री भाभारी अपने २१ अप्रैलके पत्रमें डेलागोआ-बेसे लिखते हैं कि जो लोग निर्वासित किये गये हैं वे जहाजमें प्रसन्न थे। उनके भोजनके सम्बन्धमें ध्यानसे कुछ झगड़ा चल रहा था। यह ब्रिटिश राजदूतकी सहायतासे बेरामें तय कर दिया गया।

अन्य निर्वासित व्यक्ति

श्री डेविड अर्नेस्ट और २१ अन्य भारतीयोंको १८ तारीखको अमफूली जहाजमें निर्वासित किया गया। उनके साथ श्री क्विन और अन्य २९ चीनी हैं। उनका जहाज कोलम्बो जायेगा। वहाँसे आगे प्रवासियोंका क्या होगा यह निश्चित नहीं है। चीनियोंको चीन ले जानेकी बात है। श्री क्विनने सूचित किया है कि चीनी राजदूतने चीनियोंके खाने-पीनेका अच्छा बन्दोबस्त किया है। इसके अतिरिक्त चीनी लोग पुर्तगालकी राजधानी लिस्बन-स्थित चीनी राजदूतसे पुर्तगाली सरकारको पत्र लिखवानेका उपक्रम कर रहे हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २८–५–१९१

१८९. तार : वाइकाउंट ग्लैडस्टनके सचिवको[1]

जोहानिसबर्ग

मई १६, १९१

ब्रिटिश भारतीय संघ परमश्रेष्ठका और लेडी ग्लैडस्टनका सादर स्वागत करता है। उपनिवेशमें चल रहे दुःखजनक एशियाई संघर्षके सम्बन्धमें आप यदि एक छोटे शिष्टमण्डलको भेंटका समय देंगे तो संघ आभारी होगा।

अ० मु० काछलिया

अध्यक्ष

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स : सी० ओ० ५५१।

१ इस तारका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था। २१ मईको सचिवने उत्तर दिया कि वाइसरॉय ग्लैडस्टन शिष्टमण्डलसे नहीं मिल सकते। देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" पृष्ठ १   ।

१९० अक्षम्य उपेक्षा

माननीय श्री आर. जेमिसन[1] और श्री डामर्टी[2] केवल भारतीय समाजके ही नहीं बल्कि उस सबके धन्यवादके पात्र हैं जिन्हें डर्बनके नामकी चिन्ता है। ईस्टर्न फ्ले नामक भारतीय बस्तीकी सफाईकी डर्बन निगमने अक्षम्य उपेक्षा की है। वह बीमारीका घर बनी हुई है। इन दोनों सज्जनोंने बड़ी स्पष्ट भाषामें इसकी निन्दा की है। इस बस्तीमें लगभग आठ सौ भारतीय रहते हैं जिन्हें श्री जेमिसनने "लम्बे अरसेसे पीड़ित धैर्यवान और असहाय" कहा है। सन् १९ १ से अबतक इन भारतीय किरायेदारोंने निगमको ८५ ८ पौंड किराये और करके रूपमें दिये हैं। और इसके बदलेमें उन्हें सिवा एकाध पानीके नल और मामूली सफाईके कुछ नहीं मिला है। श्री जेमिसन आगे कहते हैं कि यदि यहाँ यूरोपीय रहते होते तो यह बुराई कभीकी दूर कर दी गई होती। श्री डामर्टीने कुछ तफसील भी दी है। वे कहते हैं कि सुधारके कामोंमें इस तफसीलकी उपेक्षा करने या उन्हें भुला देनेका असर उनके स्वास्थ्य आराम और आर्थिक स्थितिपर भी पड़े बिना नहीं रहा है। शहरके दूसरे हिस्सोंमें इन तमाम बातोंकी तरफ बराबर ध्यान दिया जा रहा है यद्यपि उन भागोंकी अपेक्षा यहाँ ज्यादा जल्दी ध्यान देनेकी जरूरत है। इस बस्तीकी सड़कपर तो तेलका एक दिया तक नहीं है। यह इन्तजाम भयंकर है। इसे पढ़ते ही दिमागमें सबसे पहला विचार तो यही आता है कि इस निगमको ठीक करनेका बीड़ा उठा लिया जाये इसमें कोई शक नहीं कि इसने ईस्टर्न फ्लेकी भयंकर उपेक्षा की है। परन्तु जरा गहराईसे विचार करें तो इस विषयमें हमें भी कुछ आत्मनिरीक्षण करना होगा। हम इस विषयमें स्वयं ईस्टर्न फ्लेके निवासी भारतीयोंको भी एकदम निर्दोष नहीं मानना चाहते। वे इस हालतमें रहनेसे साफ इनकार कर सकते थे और आज भी कर सकते हैं। परन्तु इसमें सबसे बड़ा दोष है समाजके नेताओंका। मालूम होता है कि हमारे अन्दर कौमी जिम्मेदारी नामकी कोई चीज ही नहीं है। बस्तीके निवासियोंकी बेबसीको हम समझ सकते हैं। परन्तु नेताओंकी उदासीनता समझमें आने लायक नहीं है। उन्हें निगमके पीछे पड़ जाना चाहिए था और उसे अपने इस प्रत्यक्ष कर्तव्यको पूरा करनेके लिए मजबूर कर देना चाहिए था। अगर इस बस्तीमें यूरोपीय रहते होते तो उसकी तरफ निगमको क्यों तुरन्त ध्यान देना पड़ता? इसलिए नहीं कि वे यूरोपीय थे बल्कि इसलिए कि वे नहीं तो उनके नेता इस भयंकर अन्यायको दूर करवानेके लिए जमीन-आसमान एक कर देते। यूरोपीय लोग समाजके प्रति अपने कर्तव्यको समझते हैं। हम नहीं समझते। इसलिए यदि इसमें निगमकी उपेक्षा अक्षम्य है तो हमारे नेताओंकी उपेक्षा उससे कहीं अधिक असम्य है। निगम

१. डर्बी क्लेमेंटि जमाव।
२. श्री डामर्टि निरीक्षक।

भी कमिश्नरके पत्रको[1] दाखिल-दफ्तर कर सकता है और भी डायरेक्टरके प्रतिवेदनको[2] भी उपेक्षा कर सकता है। क्या हमारे नेता उसे ऐसा कर लेने देंगे? तमाम भारतीय संस्थाओंके सामने यह एक सीधा-सा काम है। यह काम ऐसा है कि जिसमें बगैर अधिक कष्टके सफलता मिल सकती है। भारतीय बस्तीके निरीक्षणके लिए किसीको भी नियुक्त कर सकते हैं, सही-सही जानकारी एकत्र कर सकते हैं, वहाँके निवासियोंको उनका कर्तव्य समझा सकते हैं, उन्हें बता सकते हैं कि खुद उन्हें क्या करना चाहिए, और जबतक निगम अपने इस कर्तव्यका पालन न करने लगे तबतक उस निगमके पीछे पड़कर उसे परेशान भी कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-५-१९११

१९१ जर्मन पूर्वी आफ्रिका लाइनके जहाज

कांजलर नामका एक जहाज गत ११ मार्चको बम्बईसे चला था। उसके मुसाफिरोंने कुछ आरोप लगाये हैं जिन्हें हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। इनकी तरफ हम जर्मन पूर्वी आफ्रिका जहाजी लाइनके एजेंटका ध्यान दिलाना चाहते हैं। यदि ये आरोप सही हैं तो इन्हें कांजलर जहाजके अधिकारियोंपर गम्भीर आक्षेप कहा जायेगा। हम आशा करते हैं कि कम्पनीके एजेंट इन आरोपोंकी पूरी जाँच करेंगे। इसके साथ ही हम उन्हें सावधान कर देना चाहते हैं कि यदि ये अधिकारी इन आरोपोंको स्पष्ट शब्दोंमें अस्वीकार कर दें और एजेंट उससे सन्तोष मान लें तो भी हमें उससे सन्तोष नहीं होगा। शायद मुसाफिरोंमें से अधिकांश उपलब्ध हो सकते हैं। उन्होंने अपने नाम दे दिये हैं। अब और नहीं तो कमसे-कम अपने हितमें इन आरोपोंकी पूरी-पूरी जाँच करना कम्पनीके एजेंटोंका कर्तव्य है। हम विश्वास नहीं कर सकते कि वे अपने मुसाफिरोंके साथ फिर वे भारतीय हों या यूरोपीय किये गये दुर्व्यवहारको बढ़ावा देंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-५-१९११

१. [illegible] २१-५-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें छपा था।

२. यह भी २१-५-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें छपा था।

३. ये यहाँ नहीं दिये गये हैं; ये [illegible] भारतीय [illegible] दुर्व्यवहार सम्बन्धी थे।

१९२ श्री रायप्पन

श्री जोजेफ रायप्पन अपनी वृद्धा माता और स्वजनोंसे मिलकर फिर अपने साथियोंसे जेलमें जा मिले हैं। लन्दनसे लौटनेपर वे बहुत कम समय तक बाहर ठहर पाये थे और अब फिर ब्रिटिश उपनिवेशमें प्रवेश करनेके अपराधमें उन्हें दुबारा सजा मिली है और इस बार कठोर परिश्रमके साथ। उनकी शैक्षणिक योग्यता उनकी रक्षा करनेमें असमर्थ है। भारतीय कुलमें जन्म लेनेके कारण उनकी यह योग्यता तीन कौड़ीकी भी नहीं रही। हाँ अगर वे यूरोपीय होते तो अवश्य ही उनके गुणोंके कारण उनका सर्वत्र स्वागत होता। श्री पोलकके कथनानुसार यह दुःखद घटना है और इससे जो शिक्षा मिलती है वह स्पष्ट है। ट्रान्सवालमें किसी भारतीयके लिए ब्रिटिश प्रजा शब्दका कोई अर्थ नहीं होता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-५-१९११

१९३ और रिहाइयाँ

डीपक्लूफ जेलसे नामी सत्याग्रहियोंके छूटते जानेका सिलसिला जारी है। कट्टर सत्याग्रही श्री पी के नायडू और शान्त स्वयंसेवक श्री राजू नायडू और इनके साथ ही युवक मणिलाल गांधी भी सजाएँ पूरी होनेपर गत सोमवारको छोड़ दिये गये। सत्याग्रहकी लड़ाईके दौरान श्री पी के नायडूने चौथी बार जेलकी यह सजा काटी है। उनकी हिम्मत तोड़नेके उद्देश्यसे अधिकारियोंने पिछली बार उन्हें जेलसे छूटते ही पुनः गिरफ्तार कर लिया था। परन्तु श्री नायडू दृढ़ थे। उनको अब जेलसे कोई डर नहीं रह गया था। इसलिए उन्होंने अपने परिवारवालोंसे मिलनेके लिए थोड़े समयकी मोहलत भी नहीं माँगी और कर्तव्यकी पुकारपर सीधे जेल चले गये। पाठकोंको स्मरण होगा कि वे पिछले बोअर-युद्धमें संगठित किये गये भारतीय आहत-सहायक स्वयंसेवक दलके सदस्य थे। उन्हें युद्धका एक पदक भी मिला था। परन्तु ट्रान्सवालमें न तो किसी भारतीयकी शैक्षणिक योग्यताका[1] कोई मूल्य है और न सैनिक सेवाका।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-५-१९११

१ देखिए पिछला शीर्षक।

हम आशा करते हैं कि उपनिवेशमें पैदा हुए भारतीय बसूटोलैंडके शिक्षा निरीक्षकका पत्र ध्यानसे पढ़ेंगे। उसमें लिखा है कि पिछले वर्षसे सम्बन्धित प्रतिवेदन पढ़ेगा। बसूटो जातिके लिए अंग्रेजी और सेसूटो भाषाके महत्त्वकी तुलना करते हुए शिक्षा-निरीक्षकने लिखा है

> यदि वसूटो लोगोंके लिए शिक्षाको सचमुच उपयोगी बनाना है तो उसे उन्हींकी भाषामें अच्छी तरह दिया जाना चाहिए। ऐसी कोई बात जिससे शिक्षकोंको शिक्षाकी इस अवस्थामें लापरवाही करके यह दिखानेके लिए प्रोत्साहन मिले कि उनके विद्यार्थी ऊँचे दर्जोंमें पढ़ रहे हैं, सच्ची शिक्षाके लिए घातक होगी। बसूटोलैंडमें स्थानिवासियोंका अंग्रेजी बोलना ही अस्वाभाविक है। अंग्रेजी बोल सकना एक उपलब्धि है; किन्तु यदि यह अधकचरी हो तो यूरोपीय श्रोताओंपर बोलनेवालेका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता। इसलिए बसूटोलैंडमें इस विषयमें सब लोग प्रायः एकमत हैं कि प्रारम्भिक शिक्षा सेसूटो भाषामें ही दी जानी चाहिए। अतः जिस शालामें ऊँचे दर्जोंमें अंग्रेजी शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या अधिक हो वह अच्छी अथवा जिसमें अधिकांश विद्यार्थी केवल सेसूटो भाषा ही जानते हैं वह बुरी है, शालाओंको इस तरह आँकनेकी कोशिश मैं नापसन्द करता हूँ। जो विद्यार्थी सेसूटो भाषा अच्छी तरह जानता है वह 'बाइबल' और 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' पढ़ सकता है। वह इस भाषाके समाचारपत्र भी पढ़ सकता है और इच्छा होनेपर सेसूटोमें लिखे उपन्यास भी। बहुत-से यूरोपीय ऐसे मिलेंगे जिन्हें अपनी भाषाका इससे अधिक पुस्तकीय ज्ञान नहीं है, परन्तु वे बहुत आगे बढ़ गये हैं।

हम आशा करते हैं कि बसूटोलैंडके शिक्षा-निरीक्षकके इन शब्दोंपर हर भारतीय ध्यानसे विचार करेगा। शिक्षा-निरीक्षककी बात यदि बसूटो कौमके लोगोंके लिए सही है तो वह इस देशमें रहनेवाले भारतीय युवकोंके लिए कितनी अधिक सही मानी जानी चाहिए, जिन्हें इस उपनिवेशकी साधारण शालाओंमें अपनी मातृभाषाकी शिक्षा दी ही नहीं जा रही है। फिर, यद्यपि सेसूटो भाषा अच्छी तो है परन्तु हमारा खयाल है कि उपनिवेशमें जो महान भारतीय भाषाएँ बोली जाती हैं उनके-से साहित्यिक गुण उसमें नहीं मिल सकते। यदि कोई भारतीय युवक संस्कार-सम्पन्न भारतीयकी भाँति अपनी मातृभाषा पढ़ या बोल नहीं सकता तो उसे शर्म आनी चाहिए। भारतीय बच्चों और उनके माता-पिताओंमें अपनी भाषाएँ पढ़नेके बारेमें जो लापरवाही देखी जाती है, वह अक्षम्य है। इससे तो उनके मनमें अपने राष्ट्रके प्रति रत्ती-भर भी अभिमान नहीं रहेगा। सचमुच सरकारोंका तथा जो ईसाई पादरी भारतीय शालाओंका संचालन कर रहे हैं उनका भी यह कर्तव्य है कि वे बसूटोलैंडके शिक्षा-निरीक्षकके अत्यन्त बहुमूल्य सुझावोंको हृदयंगम करें। परन्तु

वे करें या न करें, भारतीय माता-पिताओंका अपने बच्चोंके प्रति पवित्र कर्तव्य है कि कमसे-कम वे तो समय रहते जो बुराई हुई है उसे सुधार लें। उपनिवेशकी शालाओंमें पढ़नेवाले भारतीय बच्चोंमें से अधिकांश न तो अपनी मातृभाषा पढ़ते हैं और न अंग्रेजी। इसका नतीजा यह होता है कि भारतीय और उपनिवेशके नागरिककी हैसियतसे वे किसी कामके नहीं रह जाते और इज्जतके साथ रोजी कमानेके लायक भी नहीं रहते।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-५-१९११

१९५ जोजेफ रायप्पन

श्री जोजेफ रायप्पन फिर जेलमें पहुँच गये हैं। उन्हें छः महीनेकी सख्त सजा मिली है और वे मातृभूमिके निमित्त कठिन श्रम करनेके लिए वापस [जेल] चले गये हैं। श्री रायप्पनका यह साहस सराहनीय है। उनके जेल जानेसे उन्हें और समाजको बड़ा लाभ हुआ है और आगे भी होगा।

श्री रायप्पन जैसे शिक्षित भारतीयको ट्रान्सवालमें प्रवेश करते ही जेल जाना पड़ता है यह कोई साधारण बात नहीं है। यह बात भारतीयोंके मनमें घरकर जायेगी। इस घटनासे सिद्ध होता है कि हम ब्रिटिश प्रजा नहीं हैं गुलाम हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-५-१९११

१९६ पत्र एच० कैलेनबैकको

मई १, १९११

प्रिय श्री कैलेनबैक,

आपका पत्र मैंने श्री काछलिया और अन्य साथी सत्याग्रहियोंको दिखा दिया है और मैं उनकी और अपनी ओरसे आपके इस उदारतापूर्ण प्रस्तावके लिए धन्यवाद देता

१ वह इस प्रकार है:

मई १, १९११

प्रिय श्री गांधी,

हमारी जो बातचीत हुई उसके अनुसार मैं लॉलीके पासके अपने फार्मका उपयोग सत्याग्रहियों और उनके गरीब परिवारोंके लिए करनेका अधिकार आपको देता हूँ। जबतक ट्रान्सवाल सत्याग्रह संघर्ष जारी रहेगा, वे परिवार और सत्याग्रही फार्ममें रहें और उन्हें उसका कोई किराया या शुल्क नहीं देना पड़ेगा। वे उन सब इमारतोंको भी, जो इस समय मेरे उपयोगमें नहीं आ रही हैं, बिना शुल्क दिये अपने काममें ला सकते हैं।

हूँ। आपके इस प्रस्तावको मैं स्वीकार करता हूँ और यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इससे आर्थिक भार बहुत कम हो जायेगा।

आपके पत्रके अनुच्छेद २ और ३ में जिन परिवर्तनों और परिवर्धनोंका उल्लेख है उनके खर्चका मैं सही-सही हिसाब रखूँगा। आप उसकी जाँच कर सकेंगे और मैं आपकी स्वीकृतिके बिना इन परिवर्तनों या परिवर्धनोंका काम हाथमें नहीं लूँगा।

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ११-६-१९११

१९७. पत्र : अखबारोंको

जोहानिसबर्ग
जून २, १९११

महोदय,

संघ-राज्यके प्रारम्भपर दक्षिण आफ्रिकाकी यूरोपीय कौमोंने सर्वत्र खुशियाँ मनाईं। आशा की गई थी कि इस खुशीमें एशियाई भी शरीक होंगे। अगर वे इन उम्मीदोंको पूरी नहीं कर सके हैं तो जहाँतक ट्रान्सवालका सम्बन्ध है, इसका कारण ढूँढ़ना बहुत कठिन नहीं है। जिस दिन संघ-राज्यका समारम्भ हुआ उसी दिन[1] लगभग साठ परिवारोंसे उनके रोजी कमानेवाले छीन लिये गये। इनका भरण-पोषण सार्वजनिक चन्देसे किया जा रहा है। जिस दिन संघने अपना काम शुरू किया एक सुसंस्कृत भारतीय और पारसी कौमके प्रतिनिधि श्री सोराबजी फिर गिरफ्तार कर लिये गये। इससे पहले वे छः बार जेलकी सजा भुगत चुके हैं। वे डीपक्लूफ जेलसे छूटनेके बाद एक महीनेसे कुछ ही अधिक बाहर रह पाते थे। अब उनके निर्वासनकी आज्ञा हुई है। दूसरे सत्याग्रहियोंकी भी गिरफ्तारियाँ बराबर जारी हैं। बैरिस्टर और कैम्ब्रिजके स्नातक श्री जोजेफ रायप्पन और उनके साथी भी जेल भेज दिये गये हैं। ये सारे

जब कोई-कुछ स्थायी सामान परिवर्तन, परिवर्धन या सुधार करनेमें आपके द्वारा फार्मसे अलग किये गये हों या उनमें वे नष्ट हुए हों तो आप उनका मूल्य चुका देंगे। यह मूल्य हलफनामेके आधारपर लिया जायेगा। कुल लागतमें इस मामलेमें कम कर देंगे।

मैं इन सभी हर्जे-सम्बन्धी सुधारोंका जिन्हें आप फार्मपर करनेवाले हों, खर्च देनेका भी प्रस्ताव करता हूँ। इस खर्चका आकलन भी हलफनामेके रूपमें लिया जायेगा।

टॉल्स्टॉय फार्मके बाद फार्मपर करनेवाले लोग कामसे चले जायेंगे।

हृदयसे आपका,
एच० कैलेनबैक

१. गुरुवार, जून ८, १९११।

कष्ट इसलिए दिये जा रहे हैं कि एक कानून जिसे अब एक जमाती चिह्न माना जाता है, रद नहीं किया गया और उच्च शिक्षा प्राप्त ब्रिटिश भारतीयोंके ब्रिटिश अथवा अन्य यूरोपीयोंके समान ही ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेके सैद्धान्तिक कानूनी अधिकारको मान्य नहीं किया जा रहा है।

जिस संघमें ऊपर बताई गई स्थिति जारी है वह एशियाइयोंके किस कामका हो सकता है? वे तो देखते हैं कि उनके विरुद्ध सारी ताकतें मिलकर एक हो गई हैं। कहा जाता है संघके निर्माणसे साम्राज्यकी शक्ति बढ़ गई है। क्या वह अपनी शक्ति और महत्ताके दबावसे सम्राट्के एशियाई प्रजाजनोंको कुचल देगा? निःसन्देह, यदि सम्राट्ने संघ-राज्यकी स्थापनाके अवसरपर दिनी जूजूको[1] क्षमा-दान दिया है तो वह सही और मुनासिब ही हुआ है। इससे दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंके लिए यह अवसर विशेष रूपसे महत्त्वपूर्ण बन गया है। उनके दिलोंपर स्वभावतः दिनी जूजूकी रिहाईका असर बड़ा अच्छा होगा। क्या दक्षिण आफ्रिकाके एशियाइयोंकी माँगें मंजूर कर लेना उतना ही उचित नहीं होगा? इससे वे भी यह महसूस कर सकेंगे कि दक्षिण आफ्रिकामें अब नई और कल्याणकारी भावनाका उदय हुआ है और मैं यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि उनकी इन माँगोंको इस महाद्वीपके हर एक समझदार यूरोपीयोंमें से भी यूरोपीय सचमुच वाजिब मानते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-६-१९११

१९८. महामहिम सम्राटको जन्मदिवसपर सन्देश[2]

[जून ९, १९११]

ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय भक्तिपूर्वक सम्राट्को उनकी वर्षगाँठके अवसरपर बधाई देते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-६-१९११

१. एक चाहू. नेता; देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४२२। पिछले साल इसे ट्रान्सवालमें एक कमीशनपर नियुक्त किया गया था, यहीं जनवरी १९११ में इसकी मृत्यु हो गई।

२. ब्रिटिश भारतीय संघकी ओरसे भेजे गये इस सन्देशका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था। इसके बादमें ९ जुलाई, १९११ को भेजी गई प्राप्ति-सूचनामें तार भेजनेकी तारीखका उल्लेख है। यह प्राप्ति-सूचना १५-७-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित की गई थी।

१९९ श्री भायात[1]

श्री ए० एम० भायातकी रिहाई विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि उन्होंने न केवल शारीरिक दृष्टिसे बहुत कष्ट झेले हैं बल्कि इस लड़ाईमें वे खोलवड़ समाजके शायद एकमात्र प्रतिनिधि हैं जिन्होंने हर खतरेका सामना किया है और बार-बार जेल जाकर अपने समाजकी प्रतिष्ठाकी रक्षा की है। कौमके प्रति कर्तव्यका पालन श्री भायात निडर होकर करते हैं। हम आशा करते हैं कि दूसरे व्यापारी भी श्री भायातका अनुसरण करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४-६-१९१०

२०० सोराबजी फिर गिरफ्तार

श्री सोराबजी शापुरजी अडाजानिया फिर गिरफ्तार कर लिए गये हैं। उनकी यह गिरफ्तारी अनेक दुःखदायी स्मृतियाँ जगाती है। वे भारतके एक महान् सपूत हैं। वे शानदार पारसी कौमके शानदार प्रतिनिधि हैं। उनका जन्म बम्बईके एक प्रसिद्ध घरानेमें हुआ था और उन्होंने ही हमारे संघर्षका दूसरा चरण प्रारम्भ किया था। वे इससे पहले छः बार जेलकी सजा भुगत चुके हैं और अब सातवीं बार जेल जायेंगे। उन्होंने कुल मिलाकर सोलह महीनेकी सजा भोगी है, जो सबसे ज्यादा है। भारतीयोंके लिए संघ-राज्यका श्रीगणेश श्री सोराबजीकी दुबारा गिरफ्तारीसे हो रहा है। संघ-राज्यका प्रथम कार्य-दिवस पूरे दक्षिण आफ्रिकामें नहीं तो ट्रान्सवालमें भारतीयोंके लिए शोक-दिवसमें बदल जाने और उन्हें याद दिलाये कि संघ-राज्यका उनके लिए कोई अर्थ नहीं है, ब्रिटिश साम्राज्यके विकाससे सम्बन्धित युगान्तरकारी घटनापर यह एक दुःखद टिप्पणी है। नेटाल संघ-राज्यके अन्तर्गत ही है और श्री सोराबजीको नेटालमें अधिवासके अधिकार प्राप्त हैं। अब वे संघके किसी अन्य प्रान्तमें निर्वासित किये जायेंगे। कैसा संघ है यह? यह किन लोगोंको एक करता है, किन चीजोंको जोड़ता है? अथवा यह दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए भारतीयों और अन्य रंगदार कौमोंके विरुद्ध कोई गुटबन्दी है? अगर दक्षिण आफ्रिकाका यह संघ-राज्य साम्राज्यके बलको बढ़ाता है तो इस साम्राज्यके सदस्यके नाते हमें खुशी मनानी चाहिए अथवा नहीं? भारतके नये सम्राट्पर इस घटनाका क्या असर होगा? इस सम्बन्धमें दक्षिण आफ्रिकाके गवर्नर-जनरलकी जिम्मेदारी कितनी है? ये सवाल हैं जिनके सही जवाब दिये

1. "भायात" भी देखिए पृष्ठ ३८४।
2. देखिए "दो बहादुरोंको" पृष्ठ २८१-८२।

भी जा सकते हैं और नहीं भी दिये जा सकते हैं। किन्तु फिलहाल बहादुर सोराबजी अपने कर्तव्यका पालन कर रहे हैं और यदि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको उनके कष्टोंपर दुःख है तो साथ ही उन्हें इस बातपर खुशी भी होनी चाहिए कि उनके एक भाईपर सारे भारतको गर्व है। भारतकी मुक्ति बाहरी मददपर नहीं बल्कि उस आन्तरिक विकासपर निर्भर करती है जिसका उदाहरण श्री सोराबजीने पेश किया है।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन ४–६–१९११

२०१ मायात[1]

हम श्री ए. एम. मायातको उनकी वीरतापर बधाई देते हैं। उन्होंने कोकण समाजकी लाज रख ली है और हाइडेलबर्गकी प्रतिष्ठा बढ़ाई है। उन्होंने जेलको पवित्र किया है। यदि दूसरे बहुत-से भारतीय व्यापारी भी श्री मायातका अनुकरण करते या करें तो अन्तमें उनको और समाजको लाभ ही होगा। बेशक पहले तो श्री मायातकी तरह दुःख सहन करना पड़ता और पैसेका नुकसान भी उठाना होगा लेकिन अन्तमें लाभ ही होगा। श्री मायातने समाजके लिए अपना स्वास्थ्य भी खो दिया है। उनका वजन कम हो गया है। लेकिन उन्होंने उसकी परवाह नहीं की। इसमें शक नहीं कि हम जीतेंगे। इस जीतका श्रेय श्री मायात जैसे सत्याग्रहियोंको ही मिलेगा जो बार-बार जेल जा रहे हैं।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन ४–६–१९११

२०२ डॉ० मेहताको भेजे गये पत्रका अंश[2]

[टॉल्स्टॉय फार्म
जून ४, १९११ के बाद][3]

फार्ममें जितनी रोटियोंकी जरूरत होती है, वे सारी मैं बनाता हूँ। आम राय यह है कि ये अच्छी बनती हैं। मगनलाल और कुछ दूसरे लोगोंने भी इसे बनाना सीख लिया है। हम इसमें यवफेन (यीस्ट) और बेकिंग पाउडर नहीं डालते। गेहूँ हम खुद ही पीसते हैं। हमने फार्ममें पैदा की गई नारंगियोंका मुरब्बा भी बनाया

१. "श्री मायात" पृष्ठ २८६ भी देखिए।

२. गांधीजी डॉ० मेहताको गुजरातीमें लिखा करते थे। डॉ० मेहताने अपनी पुस्तकमें जो प्रस्तुत अंश उद्धृत किया है, वह अवश्य ही मूल गुजरातीका अंग्रेजी अनुवाद होगा। लेकिन मूल गुजराती पत्र उपलब्ध नहीं है।

३. यहाँ टॉल्स्टॉय फार्ममें मकान-निर्माण कार्यके उल्लेखसे जान पड़ता है कि यह पत्र ४ जूनके कुछ बाद लिखा गया होगा, जब गांधीजी फार्ममें रहनेके लिए गये थे। देखिए "कैलेनबैकको चिट्ठी" पृष्ठ १९१।

है। मैंने भुने मक्कैकी कॉफी बनाना भी सीख लिया है। यह बच्चों तक को पेयके रूपमें दी जा सकती है। फार्मपर रहनेवाले सत्याग्रहियोंने चाय और कॉफीका प्रयोग करना छोड़ दिया है और फार्मपर तैयार की गई भुने गेहूँकी कॉफी पीने लगे हैं। इसके लिए गेहूँ एक खास तरीकेसे भून कर पीस लिया जाता है। हमारा इरादा है कि इन चीजोंकी अतिरिक्त पैदावार बादमें लोगोंको बेची जाये। इस समय हम लोग फार्मपर चालू भवन-निर्माणमें मजदूरोंकी जगह काम कर रहे हैं इसलिए ऊपर बताई गई चीजें जरूरतसे ज्यादा तैयार नहीं कर सकते।

जी ए नटसन ऐंड कं मद्रास प्रकाशित डॉ प्राणजीवन मेहता-कृत एम के गांधी ऐंड द साउथ आफ्रिकन इंडियन प्रॉब्लेम से।

२०३ तार दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिको

जोहानिसबर्ग
जून ६, १९११

रायप्पनको छ सप्ताहकी सजा। पहली जूनको सोराबजी सातवीं बार गिरफ्तार। निर्वासनकी आज्ञा। मामाद रिहा। दुर्बल और हमकूर्ज़ासे पीड़ित। जेलमें मैलेकी बाल्टियाँ ले जानेसे इनकार करनेपर अल्प भोजनकी सजा। कोड़ोंकी धमकी।[1]

गांधी

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स (सी ओ ५११६३) और इंडिया १०–६–१९११ से भी।

२०४ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [जून ६, १९११]

रिहाइयाँ

मेसर्स टॉमस श्री कृष्णसामी नायडू श्री टी नारणसामी पिल्ले और श्री पपीना मुनसामी आज रिहा कर दिये गये।

जेलमें अत्याचार

जो लोग जेलसे रिहा हुए हैं उन्होंने खबर दी है कि श्री सोराबजीसे मैलेकी बाल्टियाँ उठानेका काम लिया जाने लगा है। गत सप्ताह उनको २४ घंटेकी फ़ाक़ाकशी, और

१ इंडियाने अपने १०–६–१९११ के अंकमें इस तारको प्रकाशित करते हुए लिखा था: "श्री गांधीने यह भी कहा है कि कुछ भी हो हमारा संघर्ष तबतक जारी रहेगा जबतक न्याय नहीं मिल जाता।"

कम खुराककी सजा दी गई थी। अब गवर्नरने कहा है कि यदि वे काम न करेंगे तो उनको कोड़ोंकी सजा दी जायेगी। श्री सेवकने कहा है कि उनको कोड़ोंकी सजा मंजूर है, लेकिन वे मैलेकी बाल्टी नहीं ले जायेंगे। आज जेलमें श्री सेवककी फिर पेशी है। उसका समाचार हमें इस समय मिलना सम्भव नहीं है। उनके सम्बन्धमें सरकारसे लिखा-पढ़ी की गई है।[1]

सोराबजी

श्री सोराबजी प्रिटोरिया ले जाये गये हैं। वहाँसे वे लिखते हैं कि उनको जोहानिसबर्गके मुकाबले प्रिटोरियाके चार्ज ऑफिसमें ज्यादा आराम है।

थम्बी नायडू

श्री थम्बी नायडू फिर गिरफ्तार कर लिए गये हैं। उन्हें अधिकारी एक मिनट भी बाहर नहीं रहने दे सकते। उनका उत्साह अतुलनीय है। क्या उनकी प्रशंसामें भी कुछ लिखनेकी जरूरत है? उनकी टक्करके सत्याग्रही इस लड़ाईमें विरले ही निकले हैं। यह उनकी आठवीं गिरफ्तारी है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-६-१९०९

२०५. पत्र: ट्रान्सवालके प्रशासकको[2]

[जोहानिसबर्ग]
जून ७, १९०९

महोदय,

जेलसे कल रिहा हुए भारतीय सत्याग्रही खबर लाये हैं कि डीपक्लूफ जेलमें कैद एक ब्राह्मण सत्याग्रही श्री सेवकको तनहाईकी और कम खुराककी सजा दी गई है, क्योंकि धर्मके विरुद्ध होनेके कारण आन्तरिक प्रेरणापर उन्होंने मैलेकी बाल्टियाँ ढोनेसे इनकार कर दिया। रिहा हुए सत्याग्रहियोंके कथनानुसार श्री सेवकको धमकी दी गई है कि यदि वे इसी प्रकार अवज्ञा करते रहेंगे तो उन्हें कोड़ोंकी सजा दी जायेगी। मेरे संघको विश्वास है कि यदि इस तरहकी कोई धमकी दी भी गई हो[3]

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और उसपर अपनी सही किया था। इसे ब्रिटिश भारतीय संघके कार्यवाहक अध्यक्ष भी हैं पर कुमारस्वामीके हस्ताक्षरसे प्रशासकके नाम प्रिटोरिया भेजा गया था।

३. जेल-निदेशकने इसका उत्तर १२ जूनको दिया था, जिसे २६-६-१९०९ के इंडियन ओपिनियनमें छापा गया था। इसमें उसने कहा था "ऐसे अपराधोंकी कोई धमकी नहीं दी गई है और इस प्रकारका अपराध करनेपर बेंत कभी नहीं दिया जायेगा।"

तो अधिकारियोंका सचमुच वैसा कोई मंशा नहीं होगा। जो भी हो मेरे संघको भरोसा है कि सरकार इस धमकीको कार्यरूपमें परिणत करके भारतीय समाजकी भावनाओंको ठेस न पहुँचानेकी कृपा करेगी।

मेरा संघ आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करना चाहता है कि श्री सोराबजीने पिछली बारकी कैदमें इसी कारण अन्तःकरणकी साक्षीपर एक महीनेसे अधिक समय तक तनहाईकी सजा भोगी थी और श्री पोलक तथा अन्य सत्याग्रही कैदियोंने कहा है कि श्री दाउदका मैलेकी बाल्टियाँ ढोनेके कामसे छुटकारा दे दिया जाय तो उन्हें कोई एतराज नहीं होगा।'

मेरे संघको भरोसा है कि आप इस मामलेपर समुचित ध्यान देनेकी कृपा करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-६-१९११

२०६. श्री कैलनबैकका प्रस्ताव

श्री कैलनबैकने जो प्रस्ताव[1] किया है उससे सत्याग्रही बिना किसी भारी आर्थिक कष्टके इस युद्धमें अन्ततक लड़ते रह सकते हैं। हम नहीं जानते कि इसपर हम किसे बधाई दें — श्री कैलनबैकको जिन्होंने यह प्रस्ताव करनेकी उदारता दिखाई है या कौमको जिसे यह सहायता मिलनेवाली है। निःसन्देह सत्याग्रहियोंके परिवारोंके लिए श्री कैलनबैकको धन्यवाद देनेका सबसे उत्तम मार्ग यह होगा कि वे इस प्रस्तावका उपयोग करें और फार्ममें रहकर अपने अनुकरणीय आचरण द्वारा समस्त दक्षिण आफ्रिकाको दिखा दें कि वे इस अच्छे व्यवहारके पात्र हैं।

श्री कैलनबैकके पत्रमें[2] दी गई शर्तें एकतरफा हैं। जितना-कुछ देना मुनासिब था वह सब उन्होंने दे दिया है और बदलेमें कोई अपेक्षा नहीं रखी है। सत्याग्रहियोंसे उनके परिश्रमकी मजदूरी चुकाये बिना वे अपनी जमीनका किराया नहीं लेना चाहते। श्री कैलनबैकने जैसा कार्य किया है वैसे कार्योंसे पूँजी और परिश्रम एक-दूसरेके निकट नजदीक लाये और सच्चे साथी बनाये जा सकते हैं उनमें अपनेपन भरी भावनामें लेन-देनमें और भावमें देन-लेन नहीं। हम इस प्रयोगको बड़ी दिलचस्पीसे देखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-६-१९११

१. देखिए "पत्र : केप [illegible]", पृष्ठ २५९।
२. देखिए "पत्र : [illegible]", पृष्ठ २८०-८१।
३. [illegible] ३-६-१९११; देखिए पृष्ठ २८०-८१ की पाद-टिप्पणी।

२०७ कोड़े!

हमारे ट्रान्सवालके संवाददाताने इस हफ्ते एक अत्यन्त गम्भीर समाचार दिया है। श्री सोराबजीने मैलेकी बाल्टियाँ न उठानेका निश्चय किया है और उन्होंने इसे धर्मका प्रश्न मान लिया है। वे अपनी पिछली जेल-यात्रामें इसी कारण एक महीनेसे ऊपर तनहाईमें रखे गये थे और इस अवधिमें उन्हें प्रायः कम खुराक भी दी जाती थी। हम आशा करते थे कि अधिकारी पिछले अनुभवसे लाभ उठाकर इस बार कोई बखेड़ा न खड़ा करेंगे और श्री सोराबजीको उक्त कामको करनेपर मजबूर न करेंगे। डीपक्लूफके कैदियोंसे खबर मिलनेपर जेल-निदेशकसे प्रार्थना की गई थी कि श्री सोराबजीसे यह काम करानेका आग्रह न किया जाये[1] क्योंकि उन्हें छूट देनेके सम्बन्धमें दूसरे सब सत्याग्रही सहमत हैं। लेकिन निदेशकने भी लापरवाहीका जवाब दिया कि ऐसी राहत नहीं दी जा सकती। और अब नतीजा सामने है। ट्रान्सवालके लोगोंकी खातिर, हम आशा करते हैं कि अधिकारियोंने जो कदम उठानेकी धमकी दी है, वे उसे नहीं उठायेंगे। किसी व्यक्तिको उसके अन्तःकरणके विरुद्ध मजबूर करके काम करवानेके लिए कोड़े लगानेकी आज्ञा देना बर्बरताकी हद है। इसमें सन्देह नहीं कि श्री सोराबजी सत्याग्रहीके रूपमें कोड़ोंकी सजा भी प्रसन्नतापूर्वक सह लेंगे। लेकिन अधिकारियोंके अपने पाशविक तरीकोंपर अमल करनेके आग्रहसे तो भारतीयोंमें फैली हुई उत्तेजना केवल बढ़ ही सकती है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-६-१९११

२०८ थम्बी नायडू फिर गिरफ्तार

श्री सोराबजीके तुरन्त बाद श्री थम्बी नायडू भी फिरसे गिरफ्तार कर लिए गये हैं। एशियाई कौमोंपर नियन्त्रण-सम्बन्धी अपनी नीतिकी पुष्टि हो जानेसे जनरल स्मट्समें स्वामीनामकी भावना आ गई है। इसलिए स्पष्ट है कि अब वे बहादुरसे-बहादुर सत्याग्रहियोंपर हाथ डालकर अपनी शक्ति और दृढ़ताका परिचय देना चाहते हैं। उन्हें इस कुस्मकी खुशी मुबारक हो। इस सहसा उठाये गये कदमके लिए हम यदि उन्हें ही जिम्मेदार मानें तो हमारी समझमें हम उस महान सेनापतिके प्रति कोई अन्याय नहीं करते। और सत्याग्रहियोंके लिए तो ध्येय प्राप्त न होने तक जेलमें डाल दिया जाना एक तरहकी राहत ही है।

श्री थम्बी नायडूकी गिरफ्तारीमें नाटकीयताका तत्त्व भी रहा है। सोमवारको प्रातः वे अपने पुत्रसे मिले थे जो डीपक्लूफ जेलसे तीन महीनेकी सजा काटकर

[1] देखिए "पत्र जेल-निदेशकको" पृष्ठ २५१।

सौदा ही था। उसी दिन तीसरे पहर वे फिर गिरफ्तार कर लिए गये। इस तरह पिताको अपने पुत्रके साथ कुछ दिन भी नहीं रहने दिया गया। निःसन्देह यह एक संयोगमात्र था। परन्तु इससे साफ प्रकट होता है कि ट्रान्सवालके अनेक भारतीयोंके लिए यह संघर्ष क्या अर्थ रखता है।

श्री नायडू अत्यन्त दृढ़-निश्चयी और अध्यवसायी सत्याग्रही हैं। वे जेलके भीतर हों या बाहर, कभी आराम नहीं करते। उनका एकमात्र लक्ष्य यह है कि ट्रान्सवालकी लड़ाईमें भाग लेनेवालोंके दिमागमें सत्याग्रहीकी जो ऊँचीसे-ऊँची कल्पना है वे अपने आपको उसके लायक बनायें। श्री सोराबजीकी भाँति श्री नायडू भी दक्षिण आफ्रिकी भारतीय समाजके एक उज्ज्वल रत्न हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-९-१९११

२०९. कोड़े !

श्री सेलतको मैलेकी बाल्टियाँ न उठानेपर कोड़े भी लगाये जा सकते हैं। यदि ऐसा ही हो तो क्या दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय बैठे रहेंगे? श्री सेलत कोड़े खायेंगे तो किसके लिए? और उन्हें कोड़े कौन लगायेगे? यह सोचकर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कोई कहेगा कि श्री सेलत मैलेकी बाल्टियाँ उठानेका हुक्म नहीं मानते तो इसमें हम क्या करें? ऐसा सोचना नासमझी है। आज श्री सेलत हैं तो कल दूसरे भारतीय होंगे। बात यह है कि श्री सेलतने मैलेकी बाल्टियाँ न उठानेके प्रश्नको धर्मका प्रश्न मान लिया है। ऐसे मामलेमें कोई किसीपर अत्याचार नहीं कर सकता। किन्तु ऐसे प्रश्नको लेकर जब कोई स्वयं कष्ट-सहन करनेके लिए तैयार हो जाये तब उसका समर्थन करना प्रत्येक धार्मिक व्यक्तिका कर्तव्य हो जाता है फिर वह काम भ्रमवश ही क्यों न किया गया हो। नहीं तो स्वतन्त्रताकी रक्षा नहीं की जा सकती। जहाँ स्वतन्त्र विचार या आचार नहीं होता वहाँ धर्म भी नहीं होता और जहाँ धर्म नहीं होता वहाँ लोगोंका नाश अवश्यम्भावी है। इसलिए हमें आशा है कि यदि श्री सेलत पर ऐसा अत्याचार किया जायेगा तो दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय जगह-जगह घोर विरोध करके सरकारपर अपना मत जाहिर करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-९-१९११

२१० नायडू

श्री थम्बी नायडू और श्री सोराबजी इन दोनों सत्याग्रहियोंकी जोड़ी अनोखी है। श्री सोराबजीको गिरफ्तार करते ही श्री थम्बी नायडूपर चोट की गई। जिस दिन उनके पुत्रकी रिहाई हुई उसी दिन वे गिरफ्तार किये गये यह कोई साधारण बात नहीं है।

चूँकि जनरल स्मट्सकी कुर्सी और भी पक्की हो गई है इसलिए अब वे जमकर हाथ दिखाने लगे हैं। इससे सत्याग्रही घबरानेवाले नहीं हैं। कष्ट सहना उनका धन्धा ही बन गया है इसलिए जेल उन्हें उसी तरह माफिक आ गया है, जैसे मछलीको पानी। जबतक ऐसे दृढ़ भारतीय मौजूद हैं तबतक भारतीय समाजकी जीत निश्चित है। फिर अन्य भारतीयोंको भी अपनी शक्तिके अनुसार अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिए इसके कई तरीके हैं जिनका उल्लेख हम समय-समयपर करते रहे हैं। हमें आशा है कि भारतीय समाजको भी थम्बी नायडू और अन्य सत्याग्रहियोंके उदाहरणोंसे प्रेरणा मिलेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-६-१९१०

२११ कैलेनबैककी भेंट

श्री कैलेनबैकने सत्याग्रहियोंके उपयोगके लिए अपना फार्म दे दिया है हम उनकी इस भेंटको बहुत मूल्यवान मानते हैं। यदि सत्याग्रहियोंके परिवार इसका ठीक उपयोग करेंगे तो संघर्ष चाहे जितना लम्बा चले हमें चिन्ता करनेकी जरूरत न होगी। इससे खर्चमें बहुत कमी हो जायेगी और फार्ममें जो लोग जायेंगे वे सुखी होंगे। उनका जीवन बाहरके गन्दे और निकम्मे जीवनकी अपेक्षा अच्छा बीतेगा। इसके अलावा वे फार्ममें जो-कुछ सीखेंगे वह उनके लिए सदा उपयोगी होगा। हम तो पहले भी लिख चुके हैं कि यदि भारतीय खेतीका धन्धा अपनायें तो उन्हें बहुत लाभ होगा और वे व्यापारसे होनेवाले दुःखोंसे छूट जायेंगे। हम इस अच्छे धन्धेको मान नहीं देते इसलिए बहुत हानि उठाते हैं।

हमें आशा है कि भारतीय नेता श्री कैलेनबैकको पत्र भेजकर आभार प्रदर्शित करेंगे। उनकी भेंटका समुचित लाभ हमें तभी दिखाई देगा जब बहुत-से भारतीय वहाँ जाकर रहें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-६-१९१०

२१२ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [जून ११, १९१]

टॉल्स्टॉय फार्म

श्री कैलेनबैकने सत्याग्रही परिवारोंके लिए जो फार्म खरीद कर दिया है उसका नाम उन्होंने टॉल्स्टॉय फार्म रखा है। श्री कैलेनबैक काउंट टॉल्स्टॉयकी शिक्षाओंमें बहुत विश्वास रखते हैं और उनके अनुसार आचरण करनेका प्रयत्न करते हैं। वे स्वयं भी फार्ममें रहना चाहते हैं और सादा जीवन बितानेका इरादा रखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री कैलेनबैक धीरे-धीरे अपना वास्तुकार (आर्किटेक्ट) का धन्धा छोड़ देंगे और बिलकुल सादगीसे रहेंगे।

श्री कैलेनबैकने फार्मको उपयोगके लिए देकर मूल्यवान सेवा की है परन्तु उन्होंने स्वयं हम लोगोंके साथ रहना पसन्द किया उनकी यह सेवा और भी मूल्यवान है। श्री कैलेनबैकने श्री गांधीकी अनुपस्थितिमें महिलाओंकी देखभालका दायित्व भी अपने ऊपर लिया है। किसी गोरेमें ऐसा उत्साह उत्पन्न होना केवल सत्याग्रहका ही प्रताप कहा जायगा।

इस फार्ममें लगभग १,१ एकड़ जमीन है। यह दो मील लम्बा और पौन मील चौड़ा है। यह जोहानिसबर्गसे बाईस मील दूर लॉली स्टेशनके निकट है। स्टेशनसे वहाँ २ मिनटमें पहुँचा जा सकता है। यहाँसे रेल द्वारा वहाँ पहुँचनेमें साधारणतः डेढ़ घंटा लगता है।

फार्मकी जमीन उपजाऊ दिखाई देती है। उसमें फलोंके लगभग एक हजार पेड़ हैं। उनमें आड़ू खूबानी, अंजीर, बादाम, अखरोट इत्यादि हैं। इसके अतिरिक्त यूकेलिप्टस और वाटलके¹ पेड़ भी हैं।

उसमें दो कुएँ और एक छोटा झरना है। यहाँका दृश्य भी सुन्दर है। इसके एक सिरेपर पहाड़ी है और पहाड़ीके नीचे समतल मैदान है।

श्री कैलेनबैक, श्री गांधी और उनके दो पुत्र तो ४ जूनसे ही वहाँ रहने चले गये हैं। सत्याग्रहियोंको ले जानेकी व्यवस्था की जा रही है। श्री कैलेनबैक और श्री गांधी सोमवार और गुरुवारको शहरमें जाते हैं और सप्ताहके शेष दिन फार्ममें बिताते हैं।

पिछले रविवारको कुछ मुख्य महिलाएँ श्री अम्बी नायडू और श्री गोपाल नायडू आदि फार्म देखनेके लिए गये थे। वे दिन-भर फार्ममें रहे। श्री कैलेनबैक श्री गांधी और उनके पुत्रोंने सबको रसोई बनाकर खिलाई। श्री कैलेनबैकने फार्म दिखाया और सब सन्तुष्ट हुए। श्री गोपाल नायडूने वहाँ रहनेका निश्चय कर ही लिया था इसलिए अब वे भी वहीं रहते हैं। उसी दिन श्री मूसा मवी भी जिनकी फार्मके पास

१. एक बहुत कठोर वृक्ष जिसकी छाल चमड़ा पकानेमें काम आती है।

दूकान है, वहाँ गये और उन्होंने यथासम्भव सहायता देनेका वचन दिया। अब इमारतें बनानेका काम शुरू किया गया है। उम्मीद है कि इस महीनेके अन्ततक कुछ मकान तैयार हो जायेंगे।

यह काम बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकी जड़ें गहरी हैं और इससे मीठे फल पाना वहाँ बसे हुए सत्याग्रहियोंके आचरणपर निर्भर है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-३-१९११

२१३ पत्र मगनलाल गांधीको

[जून १५, १९११ के लगभग][1]

चि० मगनलाल

मुझे जहाजवालेकी चिट्ठीका ध्यान है। अवकाश मिलनेपर मैं तार भेजूँगा।

छगनलालका पत्र रवाना होनेसे पहलेका लिखा हुआ है। उसके सम्बन्धमें अब मैं निश्चिन्त हो गया हूँ। इंग्लैंडमें उसका स्वास्थ्य ठीक रहेगा ऐसा मेरा अनुमान है।

चंचलको स्वदेश भेजना तय किया है। किसी संग जानेवालेकी तलाश करके फौरन भेज देना। मैं न आ सकूँगा। हरिलालने [उसके लिए] दूसरे दर्जेका टिकट लेनेकी सलाह दी है। वैसा ही करना। सुना है कि मोतीलालकी[2] पत्नी जानेवाली है। किसी अच्छे आदमीका साथ मिले तो भी ठीक होगा। उसमें ऐसा करनेका साहस हो तो मेरी प्रतीक्षा न की जाये।

चप्पलें भेजनेके लिए इधर आनेवालेको ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं है। मेरी चप्पलें बिलकुल घिस गई हैं। मणिलालकी चप्पलें वहाँ हों तो वे भी भेज देना। मणिलाल कहता है कि वहाँ उसका रेशमी सूट है, वह भी साथ भेज दिया जाये। शायद यह सब सामान मालगाड़ीसे आ सकता है। जिस प्रकार सामान कम खर्चमें पहुँचे वैसा करना ठीक होगा। अगर सीधे फार्मके पतेपर भेजो तो भी ठीक होगा।

शेष पीछे।

मोहनदासके आशीर्वाद

हस्तलिखित मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ४९३) से।

सौजन्य श्रीमती राधाबेन चौधरी।

[1] देखिए दूसरा अनुच्छेद; श्री छगनलाल, जून ८, १९११ को डरबनसे इंग्लैंडको रवाना हुए थे। डाकको वहाँसे दक्षिण आफ्रिका पहुँचनेमें लगभग २० दिन लगते थे।

[2] गांधीजीके ज्येष्ठ पुत्र हरिलालकी पत्नी।

[3] मोतीलाल एम० दीवान; वेरुलमके एक प्रमुख भारतीय।

जो छब्बीस सत्याग्रही निर्वासित किये गये थे और बम्बईसे तुरन्त रवाना होकर गत रविवारको डर्बन वापस पहुँचे थे उनमें से केवल तेरहको जहाजसे उतरने दिया गया है।[1] शेषमें से तीनका यह दावा फिलहाल अस्वीकार कर दिया गया है कि वे इस उपनिवेशके स्थायी निवासी हैं। मुख्य प्रवासी-अधिकारीको इस बातके लिए राजी करनेका प्रबल किया गया कि वे शेष सत्याग्रहियोंको भी जहाजसे उतरने दें और यह जमानत ले लें कि यदि ये लोग स्थायी निवासी होनेका अपना दावा सिद्ध न कर पायें तो वापस चले जायेंगे परन्तु उसने एक न सुनी और यह वाजिब सहूलियत देनेसे भी इनकार कर दिया। इसलिए इन लोगोंको बगैर विश्राम किए तीसरी बार यह कठिन यात्रा करनी पड़ी है। ये ब्रिटिश प्रजाजन हैं परन्तु उन्हें पहले एक ब्रिटिश उपनिवेशने और फिर दूसरे ब्रिटिश उपनिवेशने ठुकराया है। इस तरह उनको दुःखपर-दुःख और परेशानीपर-परेशानी उठानी पड़ी है। परन्तु वापस आनेपर विश्वास किये गये ये वीर पुरुष दूसरी ही धातुके बने हैं। इन परीक्षाओंसे उनका उत्साह टूटनेके बदले और भी दृढ़ हुआ है और वे जिस संकल्पके बलपर अबतक टिके रहे हैं उसीके बलपर अवश्य ही अपनी मंजिल तक पहुँच जायेंगे।

समाजको उनपर गर्व है। इस साम्राज्यको भी उनपर गर्व होना चाहिए जिसके नामपर नेटालने उनके साथ इतना बुरा बरताव किया है। उन्होंने अपने आचरणसे एक ऐसा ऊँचा उदाहरण पेश किया है जो दक्षिण आफ्रिकाके समस्त भारतीयोंके लिए अनुकरणीय है।

जिन लोगोंको जहाजसे उतरने दिया गया है उनका काम सरल है। उन्हें ट्रान्सवालकी सरकारको जो कि अब संघ-राज्यकी सरकारका अंग बन गई है फिर चुनौती देनी है कि वह या तो उन्हें फिर गिरफ्तार करके जेल भेजे या पुनः निर्वासित कर दें। कर्मवीरने सच्चे मोक्षका जो रूप बताया है उसके अनुसार सत्याग्रहीके सामने तो केवल एक ही लक्ष्य है कि वह अपने कर्तव्यका पालन करता रहे, चाहे उसे इसकी कुछ भी कीमत चुकानी पड़े।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-६-१९११

1. देखिए "लौटे हुए निर्वासित" पृष्ठ २०३।

२१५ सत्याग्रही

भारतसे जो छब्बीस सत्याग्रही वापस आये थे वे यहाँ [डर्बनमें] पहुँच गये किन्तु जहाजसे उनमें से एक नहीं उतर सके। इसमें कुछ दोष हमारा भी है। उनमें से जो व्यक्ति नेटालमें रहनेके अधिकारी होनेपर भी क्यों नहीं उतर सके? लेकिन यह समय दोष देखनेका नहीं है। सत्याग्रही लोग समाजके सच्चे सेवक और रत्न हैं यह मानकर जाति उनकी सार-सँभाल करे और उन्हें प्रोत्साहन दे ऐसी हमारी इच्छा है। सत्याग्रहियोंको मान-सम्मान और खान-पानकी चिन्ता न करनी चाहिए। उनका कर्तव्य तो केवल काम करना और कष्ट सहना है। किन्तु जातिका कर्तव्य उनकी सार-सँभाल करना है। वे हमारी सेना हैं, हमारे त्यागी हैं। हमने अनुभवसे जाना है कि सभी सत्याग्रही सत्यका पालन ही करते हों ऐसा नहीं है। हम इसका विचार नहीं कर सकते। फिलहाल तो जो सत्याग्रही होनेका दावा करते हैं उनका दावा मान लेना है। असलमें तो कोई भी व्यक्ति तबतक खरा सत्याग्रही नहीं माना जा सकता जबतक वह अपनी टेकपर कायम रह कर मर नहीं जाता।

जिन लोगोंको वापस लौटना पड़ा है वे भले ही वापस लौटें। वे तो मजे जा रहे हैं। यह उनकी एकके बाद एक तीसरी यात्रा है। उनको वापस लाना समाजका काम है। सत्याग्रहियोंका कर्तव्य तो धीरज रखना है। इसके अलावा हम यह कह सकते हैं कि हमें उनके वापस जानेपर दुःख नहीं मानना चाहिए, क्योंकि इस घटनासे संघ-सरकारका अन्याय प्रकट होता है। उसने उन्हें अपना हक साबित करनेका पूरा मौका क्यों नहीं दिया? उसने उन्हें डर्बनमें क्यों नहीं रहने दिया? हमपर जितने अधिक कष्ट आते हैं हमारा मामला उतना ही अधिक मजबूत होता है। लोग जितना कष्ट सहेंगे वे उतने ही ऊँचे उठेंगे और उतनी ही जल्दी मुक्त होंगे। इसलिए यद्यपि भारतीयोंका वापस भेजा जाना बुरा है, फिर भी हम इस [घटना]से लाभ उठा सकते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-६-१९११

२१६. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [जून २०, १९११]

सत्याग्रही फार्म

हम फार्मपर महिलाओंको बुलानेकी व्यवस्था सरगर्मीसे की जा रही है। श्री कैलेनबैक भवन-निर्माणमें व्यस्त हैं। मकानोंकी पचास फुट लम्बी कतार बनानेके लिए नींव खोद दी गई है। यह नींव पत्थरोंकी चिनी गई है और पत्थर ढोनेमें श्री पिल्ले, श्री कृष्णसामी नायडू, श्री मणिलाल गांधी, श्री गांधी और अन्य लोग काफिरोंके साथ काम करते हैं। पत्थर फार्ममें ही हैं, किन्तु उनको पहाड़ीपर से उस जगह तक ढोना पड़ता है जहाँ चिनाई की जा रही है। श्री गोपाल नायडू रसोईका काम करते हैं। कुल मिलाकर छः भारतीय और श्री कैलेनबैक साथ-साथ रहते और साथ-साथ भोजन करते हैं। भोजन पूर्णतया भारतीय ही होता है। जिनको आवश्यकता होती है वे प्रातःकाल भुने गेहूँकी कॉफी और डबल रोटी लेते हैं। रोटी हाथसे बनाई जाती है और बिना खमीरकी होती है। उसमें बोरमील और मोटा दला गेहूँ काममें लाया जाता है। बारह बजे भात, कढ़ी, रोटी और फार्मके सन्तरोंका वहींका बना मुरब्बा लिया जाता है। शामको गेहूँका दलिया, रोटी और मुरब्बा होता है। मक्खनका उपयोग बन्द कर दिया गया है। भोजन बनानेमें जितना घी काममें लाया गया हो उतना पर्याप्त माना जाता है। दोपहरको और रातको कुछ मेवा हो तो मेवा और मूँगफली दी जाती है। इस भोजनमें यदि महिलाओंके आनेके बाद परिवर्तन आवश्यक जान पड़ा तो किया जायेगा। ऐसी मण्डलीमें श्री कैलेनबैक परिवारके एक सदस्यके रूपमें रहते हैं यह मुझे तो बड़ा आश्चर्यजनक और आनन्दप्रद प्रतीत होता है।

डेविड ऐंड्रू

श्री डेविड ऐंड्रू, सैमुएल जोजेफ और श्री थोबी नायना आठ दिनके लिए रिहा किये गये हैं। आगामी शुक्रवारको उनको निर्वासित किया जायेगा।

श्री डेविड ऐंड्रू और श्री सैमुएल जोजेफको चीनी [संघके] अध्यक्षने आमंत्रित किया है, इसलिए वे लोग वहाँ रहते हैं। वे चीनी क्लबमें ठहराये गये हैं। यह क्लब बहुत अच्छे ढंगसे चलाया जाता है। भारतीयोंके पास ऐसा भवन नहीं है, यह सचमुच एक कमी है।

थम्बी नायडू

श्री थम्बी नायडूको यहाँ ले जायेंगे यह अबतक निश्चित नहीं हुआ है। उनके साथ चार दूसरे सत्याग्रही हैं।

नये दल

पहले ट्रान्सवाल ओरेंज कॉलोनी और केपमें क्रमशः हेट फोक, यूनियन और बौंड नामक राजनीतिक पार्टियाँ थीं। अब श्री बोथा और उनके मित्रगण तीनों

पार्टियोंको मिलाकर 'दक्षिण आफ्रिकी पार्टी' नामसे एक नई पार्टी बनानेका उद्योग कर रहे हैं। प्रगतिशील (प्रोग्रेसिव) पार्टीको संघवादी (यूनियनिस्ट) पार्टीका नया नाम दिया गया है।

हॉस्केन

श्री हॉस्केन नई संसदमें प्रवेश करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। उनके सफल होनेकी कुछ आशा की जा सकती है।

मदरसेके *विद्यार्थी*

मदरसेके विद्यार्थियोंकी परीक्षा इमाम साहब बावजीर और यहाँके मौलवी साहबने ली थी। इसमें उत्तीर्ण विद्यार्थियोंको इनाम बाँटे गये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-६-१९१०

२१७. संघ राज्यमें भारतीय

वतनियोंके प्रश्नको यथाशक्य राजनीतिसे अलग रखा जायेगा और रंगदार कौमोंके प्रति हमारा व्यवहार उदार और सहृदय होनेके साथ सहानुभूतियुक्त तथा न्याययुक्त होगा। यूरोपीयोंके प्रवास (इमीग्रेशन) को दक्षिण आफ्रिकामें प्रोत्साहन दिया जायेगा और एशियाइयोंके प्रवासपर रोक लगाई जायेगी।

— जनरल बोथाका घोषणापत्र।

दक्षिण आफ्रिकामें एशियाइयोंके आनेका विरोध करके यहाँके लोगोंकी सामाजिक स्थितिको सुधारना परन्तु जो एशियाई यहाँ कानूनके अनुसार बस गये हैं उनके साथ उचित व्यवहार करनेका प्रयत्न करना; जितनी जल्दी सम्भव हो एक ऐसे आयोगकी नियुक्ति करना जो देशभरमें मजदूरोंकी विशेष परिस्थितिकी जाँच करके अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा और उसमें इस सिद्धान्तका ध्यान रखेगा कि बसे हुए उद्योगोंको किसी प्रकारका नुकसान न हो।

— यूनियनिस्ट दलका कार्यक्रम।

हमने जनरल बोथाका घोषणापत्र और डॉ० जेमिसनके नये दलके कार्यक्रमका उद्धरण दोनों एक साथ ऊपर दे दिये हैं। पाठक देखेंगे कि दोनोंमें से एक भी पसन्द करने लायक नहीं है। दोनों समान निहायत पोलमपोल हैं। दोनों दस्तावेजोंके लेखक मानते हैं कि एशियाइयोंका प्रवेश दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए गोरोंकी सामाजिक स्थितिको सुधारनेमें बाधक है। दोनों दस्तावेजोंमें ऐसे प्रवासको बन्द करनेकी इच्छा प्रकट की गई है। हाँ यूनियनिस्ट दलके कार्यक्रममें इस इच्छाके साथ यह शर्त जरूर जोड़ दी गई है कि जो लोग यहाँ कानूनके अनुसार बस गये हैं उनके साथ न्यायका बरताव किया जाना चाहिए। इस कार्यक्रममें देशभरके मजदूरोंकी स्थितिकी जाँच करवानेकी

भी बात कही गई है। इस तरह समस्त दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको आनेवाले महीनोंमें अबतक की अपेक्षा कहीं बड़े पैमानेपर एशियाई-विरोधी हलचलके लिए तैयार रहना चाहिए। परन्तु यदि दक्षिण आफ्रिकामें समाजके यत्र-तत्र फैले विभिन्न वर्ग ऊपर प्रकट किये गये बयानोंके महत्त्वको ठीक तरहसे समझें और उनमें जिस प्रतिगामी नीतिका आभास है उसका मुकाबला करनेके लिए आवश्यक उपाय करें तो हमारी स्थिति अन्धकारपूर्ण या निराशाजनक कदापि नहीं होगी। हाँ ऐसा करते हुए उन्हें अपनी सुनिश्चित मर्यादाओंको भी जान लेना चाहिए। हमें एशियाइयोंके प्रवासपर नियन्त्रण तो बर्दाश्त करना और मानना ही होगा। परन्तु उनके प्रवासपर बिलकुल रोक लगानेका अर्थ होगा हमारे राष्ट्रका अपमान जिसे सहन करना किसी भी सच्चे भारतीयके लिए असम्भव है। हमारा खयाल है कि दक्षिण आफ्रिकामें बसे भारतीय समाजको यह संकट टालनेके लिए जितना भी त्याग करना पड़े थोड़ा है। हमारा मत है कि साम्राज्यकी इमारत इसी समानताकी नींवपर खड़ी है। इसलिए जो भारतीय इस समानताकी रक्षाके लिए कष्ट उठायेंगे वे न केवल भारत बल्कि समस्त साम्राज्यके आशीर्वादके पात्र होंगे। दोनों घोषणापत्र ट्रान्सवालमें चालू हमारे संघर्षकी महत्ताको प्रकट करते हैं। हम आशा करते हैं कि हमारे देशवासी दोनों दलोंके कार्यक्रमोंका ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे और दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए भारतीयोंके इतिहासमें जो यह नाजुक अवसर आया है उसमें अपने कर्तव्यका अवश्य ही पालन करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-९-१९१०

२१८. अमरल बोथाके विचार

जनरल बोथाने अपने दलका जो घोषणापत्र निकाला है, उसमें उन्होंने हमारे बारेमें अपने विचार दिये हैं। वे विचार समझने योग्य हैं। वे कहते हैं कि यूरोपीय लोगोंको दक्षिण आफ्रिकामें आनेके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और एशियाइयोंको आनेसे रोकना चाहिए।

इसी प्रकारके विचार डॉक्टर जेमिसनकी पार्टीने भी प्रकट किये हैं। अपने घोषणापत्रमें उन्होंने कहा है कि जो एशियाई दक्षिण आफ्रिकामें रह रहे हैं उनके प्रति सद्व्यवहार किया जाये। नेटालमें गिरमिटियोंके आनेके विषयमें विचार किया जाये और यदि चालू धन्धोंमें बाधा न पड़े तो उनके आनेपर रोक भी लगाई जाये।

इस प्रकार दोनों दलोंके नेता एशियाइयोंका आना बन्द करना चाहते हैं। लेकिन उनके घोषणापत्र इस प्रकारके हैं कि उनके मनमाने अर्थ निकाले जा सकते हैं। हम तो उसका एक ही अर्थ समझते हैं और वह यह कि हम लोगोंपर मुसीबत आ पड़ी है। यह बात कि भारतीय एक बड़ी संख्यामें दक्षिण आफ्रिकामें प्रवेश न कर सकें समझमें आ सकती है। इस परेशानीको तो स्वीकार करना ही होगा। परन्तु, जब यह कहा

जाता है कि हम एशियाई होनेके कारण ही प्रवेश नहीं पा सकते तो उससे समस्त भारतका अपमान होता है। हमारी धारणा है कि इस प्रकारका अपमान कोई भी भारतीय स्वीकार न करेगा। उस अपमानका विरोध करनेमें हमपर जो भी बीते उसे हमें सहन करना होगा। हम प्रत्येक भारतीयको समझाना चाहते हैं कि ऐसा करनेके लिए आजसे ही तैयारी करनी होगी। अगर यह न हुआ तो ऐसा कदम उठाना जायेगा कि सबके अन्तर्गत दक्षिण आफ्रिकासे भारतीयोंके पैर ही उखड़ जायेंगे।

इस मौकेपर हम सभी भारतीयोंको याद दिलाते हैं कि उन्हें ट्रान्सवालके वर्तमान संघर्षसे बड़ा सहारा मिल रहा है। इस संघर्षको जारी रखनेमें उनका स्वार्थ निहित है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-६-१९१

२१९. भाषण: सोशलिस्ट हॉलमें[1]

[जोहानिसबर्ग
जून २६, १९१]

श्री मो० क० गांधीने कल रातको मार्केट स्ट्रीट-स्थित सोशलिस्ट हॉलमें समाजवादी समितिके तत्वावधानमें एक मनोरंजक और सुविचारित भाषण दिया। उसका विषय था "आधुनिक सभ्यता और प्राचीन सभ्यताकी तुलना।" सभाभवन श्रोताओंसे भरा हुआ था।

श्री गांधीने अपने भाषणके प्रारम्भमें ही उन लोगोंसे क्षमा माँगी जो उनके विचारोंसे असहमत हों और इच्छा प्रकट की कि आतुर सत्यान्वेषी होनेके नाते उन्हें क्षम्य माना जाये। उन्होंने कहा, आधुनिक सभ्यताका सार दो बातोंमें आ जाता है। एक तो है निरन्तर भागदौड़ और दूसरा है देश-कालके व्यवधानको समाप्त करनेका प्रयास। आज सभी लोग अपनी-अपनीमें लगे हुए दिखाई देते हैं। मुझे यह बात खतरनाक लगती है। सभी लोग अपनी दाल-रोटी कमानेमें इतने जुटे हैं कि उन्हें किसी दूसरे कामके लिए फुरसत ही नहीं मिलती।

आधुनिक सभ्यता हमें भौतिक दृष्टिकोण देती है और हमारे विचारोंको शरीर और शरीर-सुखकी वृद्धिके साधनोंपर केन्द्रित करती है। हर्बर्ट स्पेन्सरने संक्षेपमें

१. इसकी एक संक्षिप्त रिपोर्ट २-७-१९१ के इंडियन ओपिनियनमें इस तरह छपी थी: "आधुनिक सभ्यताके लक्षण हैं काल और स्थानके व्यवधानको समाप्त करनेका प्रयत्न और भौतिकताको बढ़ावा देना। आधुनिक जीवनकी भाग-दौड़में उच्च विचारोंके लिए समय ही नहीं बचता। इसकी दृष्टि धीरे-धीरे बाहरकी ओर रहती है, इसके विपरीत प्राचीन सभ्यताकी दृष्टि अन्दरकी ओर रहती है। प्राचीन सभ्यतामें आत्माको शरीरसे अधिक महत्त्व दिया गया है। वह प्रेमके आधार पर आधारित है। वह स्पर्धाकी अपेक्षा सहयोगके द्वारा रहती है। और वह आधुनिक शहरी जीवनकी अपेक्षा गाँवके जीवनमें अधिक अच्छी तरह विकसित होती है।"

आधुनिक मनुष्यके बारेमें कहा है कि उसका जीवन जटिल होता है जबकि असभ्यका जीवन बिलकुल सीधा-सादा होता है। ट्रान्सवालमें एशियाइयोंके आन्दोलनका मूल कारण भी तो यही है कि एशियाइयोंकी जरूरतें बहुत सीधी-सादी हैं और इसके विपरीत यूरोपीयोंकी जरूरतें विविध और इसी कारण खर्चीली हैं। आधुनिक तरीकोंके मोहने वतनियोंके जीवनको पहलेसे ज्यादा जटिल बना दिया है। खालिस वतनीकी जरूरतें आसानीसे पूरी हो जाती हैं किन्तु जो वतनी अपेक्षाकृत सभ्य बन गये हैं उन्हें तो बड़ा ठाटबाट चाहिए। इस तरह उन्हें ज्यादा पैसेकी जरूरत पड़ती है और जब वे देखते हैं कि वे यह पैसा ईमानदारीसे नहीं कमा सकते तो बेईमानी करते हैं।

इस प्रश्नपर अपने १८ वर्षोंके अध्ययनके बाद मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि [आधुनिक सभ्यताके कारण] हालत सुधरनेके बजाय बिगड़ी ही है। (तालियाँ)। मैंने देखा है कि सादा जीवन जटिल जीवनसे अच्छा होता है, क्योंकि उसमें ऊँची प्रवृत्तियोंके लिए समय मिल जाता है। प्राचीन सभ्यतामें भाग-दौड़ थी ही नहीं। लोग आज इहलोककी चिन्ता करते हैं उन दिनों वे परलोककी चिन्ता रखते थे। वे अपना ध्यान शरीरपर नहीं आत्मापर केन्द्रित करते थे। वे शरीरको आत्मासे बिलकुल पृथक् मानते थे।

उनके लिए भोग-विलास ही सब-कुछ नहीं होता था और यह जीवनका चरम लक्ष्य भी नहीं था। जब शैतानकी सेवा की जाती है तब ईश्वरकी सेवा की जाती थी। यदि मैं यह न मानूँ कि आत्मा नित्य है और यदि मुझे हम सबमें एक ही आत्माके दर्शन न हों तो मैं तो इस संसारमें रहना ही पसन्द न करूँ। मैं मर जाना चाहूँगा। शरीर तो आत्माके नियन्त्रणमें चलनेवाला यन्त्र-मात्र है। यह बिलकुल हेय और अपावन मिट्टीका पुतला है।

प्राचीन सभ्यतामें हमारा ध्यान जीवनकी ऊँची प्रवृत्तियों ईश्वरके प्रति प्रेम पड़ोसियोंके प्रति शिष्टता और आत्माके अस्तित्वकी अनुभूतिपर जाता है। जीवनमें फिरसे इन गुणोंका जितनी जल्दी समावेश हो उतना ही अच्छा होगा।

[अंग्रेजीसे]

रैंड डेली मेल २७-१-१९११

२२० जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [जून २८, १९११]

नेटाली जत्थेके लोग

नेटाली जत्थेके सर्वश्री रामबिहारी रामकुमार, बरजोरसिंह, काजी बावामियाँ, ईसप कोकिया, पी॰ के॰ देसाई, छोटा मानजी और तुलसी भूठाको तीन-तीन महीनेकी कैद दी गई थी। वे रिहा कर दिये गये हैं। ये सभी लोग प्रसन्न थे।

लॉर्ड ग्लैड्स्टनके पास शिष्टमण्डल

लॉर्ड ग्लैड्स्टनके यहाँ आते ही श्री काछलियाने उन्हें एक शिष्टमण्डलको भेंट देनेके बारेमें लिखा था।[1] अब उसका उत्तर[2] आया है कि वे शिष्टमण्डलसे नहीं मिल सकते क्योंकि उन्हें उनके मन्त्रियोंने बताया है कि वे संघसे संघर्षके सम्बन्धमें कई बार बातचीत कर चुके हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सत्याग्रहियोंको अपने बलपर ही भरोसा करना है।

थम्बी नायडू

[आप] अभीतक प्रिटोरियामें हैं। उन्हें कहाँ भेजा जायगा यह तय नहीं हुआ है।

डेविड पॉलू

[श्री डेविड पॉलू] श्री सैमुएल जोज़ेफ और श्री नायनाको फिर निर्वासित करनेके लिए प्रिटोरिया ले गये हैं।

टॉल्स्टॉय फार्म

इस फार्ममें अब एक पाठशाला खुल गई है। इसमें श्री पांची सोमवार और बुधवारके अतिरिक्त नित्य दोसे पाँच बजे तक पढ़ाते हैं। फिलहाल विद्यार्थी हैं श्री गोपाल, श्री चिन्नन, श्री कुप्पुस्वामी और उनके दो पुत्र।

भवन-निर्माणका काम चल रहा है। इसमें सात भारतीय बढ़ई बिना मजदूरी काम करने आ चुके हैं। यह श्री काछलिया, श्री अस्वात और श्री फैंसी आदि लोगोंके प्रयाससे हुआ है। रविवारको लगभग ९ बढ़ई इकट्ठे हुए थे। तब एक निश्चय यह किया गया कि जो बढ़ई फार्मपर काम करने न आ सकें वे १२ १२ शिलिंग दें। इस तरह बहुत-से बढ़इयोंने १२ १२ शिलिंग दिये और ७ फार्ममें काम करनेके लिए चले गये। वे कुछ समय तक बिना मजदूरी लिए काम करेंगे। इस प्रकारकी जातीय-भावनाके लिए वे बधाईके पात्र हैं।

१. देखिए “पत्र : गवर्नर-जनरलके सचिवको” पृष्ठ १०५।
२. तारीख २१-६-१९११ का।

सर्वश्री रामविहारी राजकुमार, भीमजी देसाई, बरजोरसिंह[1] और कुमारी स्वामी पडियाची सोमवारको फार्ममें रहनेके लिए आ गये हैं। वे गिरफ्तार होने तक फार्मपर रहेंगे।

फार्ममें बहुत-सी चीजोंकी जरूरत पड़ती है। जब बच्चे आयेंगे तब और ज्यादा जरूरत होगी। जो लोग जेल जाकर संघर्षमें भाग नहीं लेते वे दूसरी तरहसे मदद कर सकते हैं। फार्ममें रहनेका उद्देश्य खर्चमें कमी करना है और जो वहाँ आयें उन्हें शिक्षा भी देनी है। यदि जेल न जानेवाले लोग थोड़ी-थोड़ी भी सहायता दें तो खर्चमें बहुत कमी हो सकती है। व्यापारी मुफ्त या कम दाममें चीजें दे सकते हैं। फल और साक बेचनेवाले समय-समयपर ये चीजें भेज सकते हैं। यदि वे थोड़ी-थोड़ी चीजें भेजते रहें तो उन्हें अखरेगा नहीं और संघर्षमें बहुत ही सहायता मिल जायेगी। कुछ फल-विक्रेताओंने इस तरहकी मदद देना स्वीकार किया है। इस समय फार्ममें मुख्य आवश्यकता इन चीजोंकी है

कम्बल या गद्दे
लकड़ीके तख्ते
मिट्टीके तेलके खाली टिन
साफ बोरियाँ या टाट या कनात
कोई भी औजार जैसे कुदाली फावड़ा सुई-धागा आदि।
किसी भी प्रकारका मोटा कपड़ा
पाठशालामें पढ़ाई जानेवाली पुस्तकें
फल और शाक-सब्जी
रसोईके बर्तन
सब तरहका अनाज।

यह तो जल्दीमें सूझी हुई चीजोंकी सूची है। इसी तरहकी काममें आनेवाली और बहुत-सी चीजें हैं। केवल दिलचस्पी और हमदर्दी हो तो बहुत-से भारतीय इन्हें आसानीसे भेज सकते हैं। फार्मके लिए सामान इस पतेसे भेजें

श्री गांधी टॉल्स्टॉय फार्म लॉली ट्रान्सवाल।

फार्मको देखनेके लिए गत रविवारको श्री मेढ़ी और श्री डी० पी० इब्राहीम आये थे।

सोशलिस्ट सोसाइटीमें श्री गांधीका भाषण

इस सोसाइटीके आमन्त्रणसे श्री गांधीने गत रविवारको सोसाइटीके हालमें भाषण दिया था। सभा नगर-कौंसिलके सदस्य श्री वायबर्गके प्रस्तावपर बुलाई गई थी। भाषणमें आधुनिक सभ्यता और प्राचीन सभ्यताकी तुलना की गई थी। हाल गोरोंसे खचाखच भरा था। कुछ भारतीय भी आये थे। भाषणका[2] सार डेली मेल में छपा

[1] देखिए "भाषण : सोशलिस्ट हालमें" पृष्ठ २१८-१९।

है। उसका सार यह है कि सच्ची सभ्यता आधुनिक सभ्यतासे अच्छी थी। आधुनिक सभ्यता तो स्वार्थसे भरी ईश्वरको भुलानेवाली और दम्भपूर्ण है। इसमें मनुष्य मुख्यतः शरीरके लिए ही उद्योग करता है। सच्ची सभ्यतामें मनुष्य दयावान ईश्वरपरायण और सरल होता था। वह शरीरको आत्मिक उन्नतिका साधन मानता था। इस प्राचीन सभ्यताको फिर ग्रहण करना आवश्यक है। इसके लिए मनुष्यको सादगी इख्तियार करनी चाहिए और गाँवका जीवन पसन्द करना चाहिए। भाषणके बाद बहुत सवाल-जवाब और विवेचन हुआ। ऐसा लगता है कि इसका श्रोताओंपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २–७–१९११

२२१ पत्र मगनलाल गांधीको

जेठ वदी २ [संवत् १९६८]
[जून २८, १९११]

चि मगनलाल

मैंने तुम्हें लम्बा पत्र भेजा है इसलिए मैं उसके बारेमें अधिक नहीं लिखता।

मुझे लगता है कि बोअर युद्धकी तारीखें मेरे पास कहीं-न-कहीं अखबारोंकी कतरनों इत्यादिमें जरूर हैं। अभी उन्हें खोजनेकी फुरसत नहीं है। यह पत्र भी मैं ट्रामसे लिख रहा हूँ। अगर तुम्हें उनकी खास जरूरत हो तो मैं उन्हें फिर ढूँढनेका प्रयत्न करूँगा। मुझे इतना ही स्मरण है कि यह दल १८९९ के नवम्बर मासमें संगठित किया गया था।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें लिखित मूल गुजराती प्रति (सी डब्ल्यू ४९२४) से।
सौजन्य श्रीमती राधाबेन चौधरी।

२२२ तार द० आ० ब्रि० भा० समितिको

जोहानिसबर्ग
जुलाई १, १९११

निर्वासितोंका नेटाल प्रवेश अस्वीकृत।[1] मंगलवार वापस लौटे वहाँ उतरनेसे रोके गये। पिल्ले नायडू और अन्य व्यक्ति निर्वासित किये गये और वंचित किये गये। रामप्पन रिहा निर्वासित किये जा रहे हैं।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

सी डब्ल्यू ५११२।

२२३ सत्याग्रह फार्म

सत्याग्रह फार्मका जो विवरण प्रकाशित किया गया है उसकी ओर हम सभी पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। सब लोग देख सकते हैं कि इस फार्ममें महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है। वहाँ जाकर बसनेवालोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। इस फार्मको प्रात्साहन देनेसे लड़ाईका अन्त शीघ्र हो सकता है यह बात भी समझने योग्य है। यह स्पष्ट है कि यदि लड़ाई लम्बी चलती है तो भी लोग बेफिक्रीसे लड़ सकें ऐसी व्यवस्था फार्ममें है।

ऐसे अवसरपर जो लोग जेल जाकर लड़ाईमें हाथ नहीं बँटाते उनका क्या कर्तव्य है? सत्याग्रही फार्ममें बहुत कम खर्चमें रह सकते हैं फार्मके काममें सहायता देकर प्रत्येक भारतीय वहाँके निवासियोंका जीवन सुविधाजनक बना सकता है। यदि प्रत्येक भारतीय सत्याग्रहियोंका अनुकरण करें तो खर्चमें बहुत बचत हो सकती है। बूँद बूँदसे सरोवर भरता है इस लोकोक्तिके अनुसार यदि काफी बड़ी तादादमें भारतीय थोड़ी-थोड़ी सहायता दें तो इसमें किसीपर कुछ बोझ न पड़ेगा। प्रत्येक भारतीयको इसपर विचार करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २-७-१९११

१. जूनमें ६ सत्याग्रही भारतीय निर्वासित किये गये थे। इनमें से २५ फिर गिरफ्तार होनेके लिए तत्काल वापस लौट आये। परन्तु पुर्तगाली अधिकारियोंने ९ सत्याग्रहियोंको उतरनेकी अनुमति नहीं दी थी और वे वापस भेज दिये गये। मार्गमें उन्होंने डर्बनमें उतरनेका प्रयत्न किया। देखिए "सत्याग्रह" पृष्ठ १९३-९४ और "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" पृष्ठ १ ।

२. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" पृष्ठ १०० ।

है। उसका सार यह है कि सच्ची सभ्यता आधुनिक सभ्यतासे अच्छी थी। आधुनिक सभ्यता तो स्वार्थसे भरी ईश्वरको भुलानेवाली और दम्भपूर्ण है। इसमें मनुष्य मुख्यतः शरीरके लिए ही उद्योग करता है। सच्ची सभ्यतामें मनुष्य दयावान, ईश्वरपरायण और सरल होता था। वह शरीरको आत्मिक उन्नतिका साधन मानता था। इस प्राचीन सभ्यताको फिर ग्रहण करना आवश्यक है। इसके लिए मनुष्यको सादगी इख्तियार करनी चाहिए और गाँवका जीवन पसन्द करना चाहिए। भाषणके बाद बहुत सवाल-जवाब और विवेचन हुआ। ऐसा लगता है कि इसका श्रोताओंपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २-७-१९१

२२१ पत्र मगनलाल गांधीको

जेठ बदी २ [संवत् १९६६]
[जून २९, १९१०]

चि मगनलाल

मैंने तुम्हें ठक्करका लम्बा पत्र भेजा है इसलिए मैं उसके बारेमें अधिक नहीं लिखता।

मुझे लगता है कि बोअर युद्धकी तारीखें मेरे पास कहीं-न-कहीं अखबारोंकी कतरनो इत्यादिमें जरूर हैं। अभी उन्हें खोजनेकी फुरसत नहीं है। यह पत्र भी मैं फार्मसे लिख रहा हूँ। अगर तुम्हें उनकी खास जरूरत हो तो मैं इन्हें फिर ढूँढनेका प्रयत्न करूँगा। मुझे इतना ही स्मरण है कि यह दल १८९९के नवम्बर मासमें संगठित किया गया था।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें लिखित मूल गुजराती प्रति (सी डब्ल्यू ४९२४) से।
सौजन्य श्रीमती राधाबेन चौधरी।

२२४ 'मर्क्युरी' में स्वामीजीका भाषण

डा० मा० मध्वकने[1] हमारे जातीय गौरवमें वृद्धि करनेवाला एक भोज दिया था। उस भोजके अवसरपर स्वामीजीने[2] जो भाषण दिया उसका सारांश किसीने [नेटाल] मर्क्युरी में भेजा है। मर्क्युरी ने उसका शीर्षक दिया है : बुद्धिमत्तापूर्ण भाषण। परन्तु वह भाषण मर्क्युरी में जिस रूपमें दिया गया है वह भारतीयोंके दृष्टिकोणसे तो ठीक नहीं है। मर्क्युरी में छपे विवरणको भेजनेवाले संवाददाताने समाजकी या स्वामीजीकी कोई सेवा नहीं की है। डा० मा० मध्वकके मन्त्रियोंने उस विवरणके खण्डनमें एक वक्तव्य निकाला है और उसको हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजा है। चूँकि हमने मर्क्युरी का विवरण प्रकाशित नहीं किया है, इसलिए डा० मा० मध्वकका पत्र प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। किन्तु यह कहना आवश्यक है कि डा० मा० मध्वकने विवरणके एक विशेष भागका ही खण्डन किया है। इसका अर्थ यह है कि उसने शेष भागको ठीक माना है। यदि हमारा यह विचार ठीक है तो वह भाग भी समाजके लिए हानिकर है, क्योंकि-ज्यों-का-त्यों कायम रहता है। इस भाषणको जिन लोगोंने सुना है उनका कहना है कि डा० मा० मध्वकने जिस भागका खण्डन नहीं किया उसमें स्वामीजीने सत्याग्रहकी आलोचना की है। अतः डा० मा० मध्वकके मन्त्री इससे अधिक कुछ नहीं कह सकते यह बात समझमें आने योग्य है। हमें दुःख है कि स्वामीजीने सत्याग्रहकी आलोचना की और कानूनके बारेमें लोगोंको [गलत] सलाह दी। परन्तु सत्याग्रही आलोचनाके कारण सत्यको अथवा अपनी प्रतिज्ञाको छोड़ दें इसकी सम्भावना दिखाई नहीं देती।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २–७–१९११

२२५ रंग-विद्वेष

अमेरिका स्वतन्त्र देश माना जाता है। कहा जाता है कि वहाँ प्रत्येक व्यक्ति पूरी तरह स्वतन्त्र है। बहुत-से लोग उसका अनुकरण करनेका प्रयत्न करते हैं। अमेरिकी उद्योग हमें चकित कर देता है। परन्तु अधिक गहराईसे सोचनेपर जान पड़ता है कि अमेरिकामें हमें अनुकरणके योग्य अधिक कुछ नहीं मिल सकता। वहाँके लोग स्वार्थ और सम्पत्तिके पुजारी हैं। वे पैसेके लिए चाहे जैसा निकृष्ट काम कर डालते हैं। यह बात हम कुछ समय पहले डॉक्टर कुकके सम्बन्धमें देख चुके हैं।

१ [illegible]; कांग्रेसमें सौराष्ट्रके भावी [illegible] देना।

२. स्वामी शंकरानन्द; एक हिन्दू धर्म-प्रचारक, जो १९०८ से १९११ तक दक्षिण आफ्रिकामें रहे थे।

समाचार मिला है कि अमेरिकी लोग जिस स्वतन्त्रताका गर्व करते थे अब वह भी खतम हो रही है। वहाँ रंग-विद्वेष बढ़ रहा है। अबतक वहाँ भारतीयोंको मताधिकार प्राप्त था। अब वहाँके एक अधिकारीने यह बात खोजी है कि एशियाई लोगोंको मताधिकार देना संविधान-निर्माताओंको कदापि अभीष्ट नहीं हो सकता था। वह यह मानता है कि भारतीयोंको ही नहीं बल्कि तुर्कोंको भी मताधिकार नहीं दिया जाना चाहिए। तुर्कोंके प्रायः सभी लोगोंकी चमड़ी गोरी होती है। फिर भी उक्त अधिकारीका कहना है कि तुर्कोंके लोग आखिरकार एशियाई हैं।

पश्चिममें एशियाई लोगोंके विरुद्ध जो आन्दोलन चल रहा है उसका परिणाम गम्भीर निकलनेकी सम्भावना है। चीन क्या करेगा या तुर्की क्या करेगा इस समय हम इन प्रश्नोंपर विचार नहीं करते। किन्तु भारत क्या करेगा यह विचार करना प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है। एक रास्ता जापानने बताया है और वह है गोला-बारूदसे लड़कर अपनी शक्ति दिखाना और अपने देशकी रक्षा करना। इस मार्गपर चलकर जापान अमेरिकाकी बराबरीका हो गया है और जो-कुछ कमी होगी आगे चलकर उसकी पूर्ति कर लेगा। हमें तो लगता है कि अमेरिकाकी वर्तमान स्थिति यदि वांछनीय नहीं है तो फिर अस्त्रशस्त्रोंके प्रशिक्षणसे हमें बचना चाहिए। अमेरिकाका उत्साह अस्त्रशस्त्रोंपर निर्भर है।

भारतको अपनी रक्षा करनेके लिए एक ही बातकी आवश्यकता है। और वह यह कि वह अपनी प्राचीन संस्कृतिको अक्षुण्ण रखे और उसमें जो दोष हों उनको दूर कर दे। अमेरिकामें जो रंग-विद्वेष बरता जा रहा है उसका प्रयोग हमने भारतमें अपने ही लोगोंके प्रति किया है। इस रंग-द्वेषसे पश्चिमके लोग बचे रहेंगे यह बहुत-से पाश्चात्य सुधारक मानते थे और वे ऐसा चाहते भी थे किन्तु अब वह बात गई। अब वे कहने लगे हैं कि काले लोगोंको पृथक किया जाना चाहिए और एशियाके कौमोंको दबाकर रखा जाना चाहिए। हमें प्रतीत होता है कि यह आन्दोलन कम होनेके बजाय बढ़ेगा बढ़ना ही चाहिए। जहाँ कौमोंकी निरन्तर अपना स्वार्थ ही दिखाई देता है वहाँ वे दूसरोंको प्रवेश कदापि नहीं करने दे सकते। उनका स्वार्थ बढ़ता जाता है इसलिए हमारे प्रति उनका द्वेष भी बढ़ेगा। स्वार्थके कारण वे आपसमें भी लड़ेंगे — इस समय भी लड़ते हैं। यह पश्चिमकी सभ्यताका प्रभाव है। यदि हम उनके समान बनें तो कुछ समय तक तो हम उनसे हेल-मेल अवश्य रख सकेंगे किन्तु पीछे हम भी स्वार्थान्ध हो जायेंगे उनके साथ लड़ेंगे और आपसमें भी लड़ मरेंगे।

कोई कहेगा कि हम आज भी आपसमें लड़ रहे हैं। यह बात ठीक है। परन्तु हमारी लड़ाई दूसरी तरहकी है। पर उस लड़ाईको भी हमें मिटाना होगा। परन्तु हम यह ध्यान रखें कि एक बुराईको दूर करनेके प्रयत्नमें दूसरी बर न कर लें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २–७–१९११

२२६. भाषण: टॉल्स्टॉय फार्ममें[1]

रविवार, जुलाई २, १९११

श्री गांधीने योजनाको सफल बनानेमें सभीका आह्वान करते हुए कहा कि सब फार्मवासी गरीब हैं, इसलिए उनके उपयोगके लिए लोग जो-कुछ भेज सकें, भेजें। उन्होंने कहा, ऐसा करके वे संघर्षको चलानेमें ठोस सहायता पहुँचायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-७-१९११

२२७. पत्र: ट्रान्सवालके गवर्नर जनरलके निजी सचिवको[2]

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई ४, १९११

महोदय,

मेरे संघकी समितिने निश्चय किया है कि परमश्रेष्ठको[3] निकट भविष्यमें उनके जोहानिसबर्ग आगमनके अवसरपर एक नम्रतापूर्ण और निष्ठापूर्ण मानपत्र भेंट किया जाये और इसके लिए उनकी अनुमति माँगी जाये। परन्तु मेरी समितिको लॉर्ड सेल्बोर्नको[5] मानपत्र भेंट करते समय जो बाधा पड़ी थी उसके कारण हिचक होती रही है। उस समय मेरी समितिको पहले तो यह सूचित किया गया था कि संघका मानपत्र अन्य सार्वजनिक संस्थाओंके मानपत्रोंके साथ उसी समय और उसी स्थानपर ग्रहण किया जायेगा, परन्तु ऐन वक्तपर संघके कार्यालयको खबर भेज दी गई कि लॉर्ड महोदय इस मानपत्रको निजी रूपमें ग्रहण करेंगे और अन्तमें वही किया भी गया। तब मेरे संघकी समझमें आया कि संघके मानपत्रको अन्य मानपत्रोंके साथ उसी समय और उसी स्थानपर ग्रहण करनेका निर्णय इस देशमें एशियाई और रंगदार लोगोंके विरुद्ध वर्तमान पूर्वग्रहोंके कारण ही बदला गया था। मेरे संघको बड़ा

१. इस सभामें श्री कैलेनबैकको धन्यवाद देनेका प्रस्ताव भी पास किया गया था। देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ १५१।

२. इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और यह ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष, श्री अ० मु० काछलियाके हस्ताक्षरोंसे भेजा गया था।

३. लॉर्ड ग्लैड्स्टन (१८५४-१९३०); दक्षिण आफ्रिकाके पहले गवर्नर जनरल और उच्चायुक्त (१९१०-१४)।

४. देखिए पिछला शीर्षक।

५. ट्रान्सवालके उच्चायुक्त और गवर्नर, १९०५-१०।

डर है कि कहीं फिर वैसी ही अशोभनीय और अपमानजनक स्थिति पैदा न हो जाये। इसलिए संघको भरोसा है कि यदि यह नम्रतापूर्ण मानपत्र अगले शुक्रवारको अन्य मानपत्रोंके साथ ग्रहण न किया जा सके तो परमश्रेष्ठ इसी पत्रको महामहिम सम्राट्के प्रतिनिधिकी हैसियतसे अपने प्रति सम्मानके प्रमाणस्वरूप स्वीकार करनेकी कृपा करें। यदि मेरे संघके मानपत्रको सार्वजनिक रूपसे ग्रहण करना सम्भव न हो तो मेरा संघ इस नाजुक स्थितिको भी भली-भाँति समझ और अनुभव कर सकता है। लेकिन यदि परमश्रेष्ठका आशय हो कि मेरे संघका नम्रतापूर्ण मानपत्र अन्य सभी मानपत्रोंके साथ आगामी शुक्रवारको सार्वजनिक रूपसे ग्रहण किया जा सकता है तो मुझे यह निवेदन करनेका निर्देश दिया गया है कि मेरा संघ औपचारिक रूपसे मानपत्र भेंट करना चाहता है। क्या मैं आशा करूँ कि आप तार द्वारा उत्तर देनेकी कृपा करेंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ९–७–१९१०

२२८. मानपत्र : लॉर्ड ग्लैड्स्टनको[2]

शुक्रवार [जुलाई ८, १९१०][3]

सेवामें
परमश्रेष्ठ परममाननीय वाइकाउंट ग्लैड्स्टन
दक्षिण आफ्रिका संघके गवर्नर जनरल
जोहानिसबर्ग

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले लोग जो ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघका प्रतिनिधित्व करते हैं, परमश्रेष्ठका और लेडी ग्लैड्स्टनका जोहानिसबर्ग आनेपर सादर स्वागत करते हैं।

हम *विश्वास करते हैं कि परमश्रेष्ठके शासनमें दक्षिण आफ्रिका संघ दक्षिण आफ्रिकामें* निवास करनेवाले सभी वर्गों और जातियोंके लिए हितकारी सिद्ध होगा।

हम आपसे निवेदन करते हैं कि आप अत्यन्त दयालु महामहिम सम्राट् और सम्राज्ञीके प्रति उस समाजकी राजभक्ति निवेदित कर दें जिसका प्रतिनिधित्व यह संघ करता है।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १६–७–१९१०

१. इसके उत्तरमें यह तार मिला था कि लॉर्ड ग्लैड्स्टनको अन्य सार्वजनिक मानपत्रोंके साथ ही संघका मानपत्र लेना स्वीकार है।

२. यह मानपत्र मसविदा 'अनुमानतः' गांधीजीने तैयार किया था और इसे भी काछलियाने भेज दिया था।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

२२९. श्री रायप्पन

श्री रायप्पन रिहा कर दिये जानेपर भी रिहा नहीं हुए। वे रिहा किये गये हैं किन्तु १४ तारीखको उन्हें निर्वासित किया जायेगा। इस उदाहरणसे हम संघर्षकी स्थितिका अनुमान कर सकते हैं। वे जब पिछली बार रिहा किये गये थे उस समय लोगोंसे मिलने-जुलनेकी कुछ दिनकी मोहलतके लिए उन्हें ५ पौंडकी जमानत देनी पड़ी थी। इस बार वे जेलसे अपनी निजी जमानतपर रिहा किये गये हैं। उन्हें किसी कागजपर दस्तखत भी नहीं करने पड़े। भारतीयोंकी साख इतनी बढ़ गई है। अब सत्याग्रहीकी बातपर इस तरह विश्वास किया जाने लगा है।

जेलमें भी अधिकारियोंके तरीके बदल गये हैं। वार्डर सत्याग्रहियोंको धमकी देनेमें डरते हैं क्योंकि सत्याग्रही अन्यायको चुप रहकर सहन नहीं करते।

कॉमन्स सभामें श्री ओ'ग्रेडीने जो प्रश्न पूछा था[1] इसके बारेमें भी साम्राज्य सरकारने आश्वासन दिया है कि इस मामलेमें लिखा-पढ़ी चल रही है। इतना होनेपर भी कौन कहेगा कि इस समय संघर्ष जीवित नहीं है? संघर्ष जीवित ही नहीं है, बल्कि जबतक उसमें श्री रायप्पन जैसे लोग हैं तबतक वह चमक रहा है और उसका प्रभाव फैलता जाता है।

प्रत्येक भारतीयको श्री रायप्पनके उदाहरणसे शिक्षा लेनी चाहिए। वे बैरिस्टर और विद्वान होनेपर भी मजदूरी करनेमें अपनी हीनता नहीं समझते। वे गठरियाँ लादे हुए भरे बाजारोंमें से निकलते हैं, लकड़ियाँ चीरते हैं, कपड़े धोते हैं और रेलवे-स्टेशनोंपर जाकर मजदूरी करते हैं। इस तरह वे वास्तवमें यह सिद्ध करते हैं कि उन्होंने सच्ची शिक्षा पाई है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-७-१९१

१. इंग्लैंडकी कॉमन्स सभामें मजदूर दलीय सदस्य श्री जे० ओ'ग्रेडीने ११ जुलाईको पूछा था कि समझौतेका भंग हुआ था और सुझाव दिया था कि समझौता करनेके लिए गांधीजी और स्मट्स आपसमें मिलें।

२३० जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सत्याग्रह फार्म

मुझे कहना ही पड़ेगा कि इस समय तो यह फार्म दिन प्रतिदिन तरक्की कर रहा है। बागकी काफ़ी बढ़ गई है और फार्म एक नये गाँव जैसा दिखता है। फर्म चारियों और सत्याग्रहियों तथा उनके परिवारोंके लिए जिस इमारतके सम्बन्धमें मैं लिख चुका हूँ उसके अतिरिक्त चार तम्बू हैं। उनमें से एक तम्बूमें श्री कैलेनबैक और सत्याग्रही रहते हैं। मकान स्त्रियोंको दे दिया गया है।

[नई] इमारत बनानेमें सत्याग्रही और श्री कैलेनबैक मजदूरोंका काम कर रहे हैं। वे पानी लाना लकड़ियाँ काटकर लाना गाड़ी लादना-उतारना और स्टेशनसे सामान ढोकर लाना इत्यादि सभी काम कर रहे हैं। इस समय तो पाठशालाके छात्रोंका भी यही काम है। सब लोग इतनी मेहनत करते हैं कि शाम होते-होते थक कर चूर हो जाते हैं।

श्री गोपाल नायडूने जिनके जिम्मे रसोईका काम है, तो हद कर दी है। वे सुबह सवा छः बजेसे रातके नौ बजे तक रसोईके काममें लगे रहते हैं। वे सामग्री को अपनी चीजकी तरह बहुत ही सावधानी और मितव्ययितासे काममें लेते हैं और कुछ भी बरबाद नहीं होने देते।

अन्य महिलाओं द्वारा निरीक्षण

रविवारको फार्मका निरीक्षण करनेके लिए कुछ अन्य महिलाएँ आई थीं। वे थीं श्रीमती सेबास्टियन श्रीमती फ्रांसिस श्रीमती चस्कन नायप्पन श्रीमती मारीमुत्तु पडियाची श्रीमती एस्कारि मुनसामी और श्रीमती कावा पिल्ले। ये सब फार्म [की व्यवस्था] से सन्तुष्ट होकर लौटी हैं। जान पड़ता है वे फार्ममें आनेका निश्चय करेंगी।

व्यापारियोंका आगमन

इनके अतिरिक्त श्री काछलिया इमाम साहब अब्दुल कादिर बावजीर, मौलवी महमूद मुख्तयार साहब श्री अस्वात श्री फैंसी श्री हाजी हबीब श्री नगदी श्री इब्राहीम कुवाडिया श्री अहमद मियाँ श्री सुलेमान मियाँ श्री मूसा इसाकजी श्री गुलाम मुंशी श्री अहमद बावा श्री मूसा भीखजी श्री अहमद करोडिया श्री मूसा इब्राहीम पटेल श्री अहमद ममडू, श्री मिर्जा श्री इब्राहीम बुखारी श्री प्रभु श्री गोसाई और श्री ऐंकनी आये थे। उन्होंने पूरा दिन वहाँ बिताया और सत्याग्रहियोंवाला खाना खाकर लौट गये। सभीने काममें भी थोड़ा-बहुत हाथ बँटाया।

कैलेनबैकका सम्मान

फिर [जो लोग आये थे] उनमें से बहुतोंका विचार हुआ कि श्री कैलेनबैकके प्रति आभार-प्रदर्शन किया जाये। इसलिए भोजनके बाद एक सभा की गई। इसमें

श्री हाजी हबीबके प्रस्ताव करने और श्री इमाम साहबके समर्थन करनेपर मौलवी साहब अध्यक्ष बनाये गये। मौलवी साहबने कहा कि श्री कैलेनबैकने जो काम किया है उसके लिए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके उद्देश्यसे यह सभा की गई है। वे हम सबकी कृतज्ञताके पात्र हैं। श्री पोलक और श्री कैलेनबैक हमारे देशभाई नहीं हैं फिर भी उन्होंने हमारे लिए बहुत बड़ा काम किया है।

श्री इब्राहीम कुवाड़ियाने प्रस्ताव रखा कि यह सभा श्री कैलेनबैकके प्रति उनकी उदारता और सहानुभूतिके लिए कृतज्ञता प्रकट करती है।

इमाम साहबने प्रस्तावका समर्थन और श्री हाजी हबीबने अनुमोदन किया।

इसके बाद श्री काछलिया और श्री रायप्पन बोले और प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत किया गया।

श्री कैलेनबैकने धन्यवाद देते हुए कहा कि मैं लड़ाईमें सहानुभूति प्रकट करके स्वयं कामान्वित हुआ हूँ और इसी प्रकार अन्य गोरे भी। यह लड़ाई ऐसी अच्छी है कि जो भारतीय इसमें सम्मिलित हैं उन्हें सबसे अधिक लाभ हो रहा है।

जोज़ेफ़ रायप्पन

श्री जोज़ेफ़ रायप्पन शुक्रवारको रिहा किये गये। रिहाईके बाद ही उन्हें निर्वासित किया जाना था। इसलिए उनको तीन बजे उपस्थित होनेका आदेश देकर जोहानिसबर्ग जेलसे छोड़ दिया गया। तीन बजे फार्ममें पहुँचते ही उनको आज्ञा दी गई कि वे १४ तारीखको निर्वासित किये जानेके लिए उपस्थित हों। इसलिए वे तुरन्त ही फार्ममें रहनेके लिए आ गये और पहले ही दिनसे काम करने लगे। उनके साथ श्री सॉलोमन अर्नेस्ट भी आ गये। इस तरह फार्ममें बहुत लोग भर्ती हो गये हैं और जितने लोग आते हैं वे सब काममें लग जाते हैं। श्री रायप्पनने लकड़ी काटने और ढोने स्टेशनके गोदामसे माल निकालने और गाड़ीमें लादने पानी भरने और कपड़े धोनेका काम रविवार तक किया है। वे स्वयं प्रसन्न रहकर दूसरोंको प्रसन्न रखते हैं।

कैदियोंका भोजन

कैदियोंके खानेमें बड़ा परिवर्तन हो गया है। चावल तो अौंस बढ़ा दिया गया है। शामको रोटी पुपु और एक औंस घी दिया जाता है। इसलिए अब खानेके बारेमें शिकायतके लायक कोई बात नहीं रह जाती।

जंजीबारमें नहीं उतारे गये

श्री कासमजी दिनशाने तार दिया है कि श्री पी० के० नायडू और उनके साथियोंको जो जंजीबारमें उतरनेवाले थे वहाँ नहीं उतारा गया है। जान पड़ता है कि अधिकारियोंने जंजीबारके किसी कानूनके द्वारा रोक लगा दी है। इसलिए वे सभी सत्याग्रही भारत चले गये हैं। जंजीबारमें भारतीय नहीं उतर सकते यह नियम कब बना है। यह कैसे बना सो ठीक मालूम नहीं हुआ है परन्तु यह नियम सब भारतीयोंको चौंका देनेवाला है। अंग्रेजी स्वतन्त्रता क्या है यह सब जाहिर हो रहा है।

सरल भाषामें लिखा जा सकता था, इसे मैं स्वीकार करता हूँ। लेकिन प्रायः सब लोग उसका अभिप्राय समझ सकते हैं ऐसा मैं मानता हूँ। भारतीय समाजमें सम्पादक स्वयं भी शामिल है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस बातसे भारतीय समाजको नीचा देखना पड़ता है उससे अवश्य ही हमें भी नीचा देखना पड़ता है। तुम मानते हो कि इससे सत्याग्रहमें बाधा पड़ती है, लेकिन मैं ऐसा नहीं समझता। तुम अपनी टिप्पणी एक बार फिर पढ़ जाओ, इस उद्देश्यसे मैं उसे वापस भेज रहा हूँ।

पार्सल मिल गया। उसे भाभाभाईसे क्यों नहीं भेजा?

मोड़[1] (चाँदीके) मुखियोंके नाम अपील छगनलालने भेजी है। इसे मैं तुम्हारे और पुरुषोत्तमदासके पढ़नेके लिए भेज रहा हूँ।

मनजी, अगर जल्दी आनेवाले हों तो उनका साथ मुझे पसन्द है। वह चंचलकी देखभाल ठीक तरहसे करेंगे। लेकिन चंचल किसी स्त्रीका साथ चाहती है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें लिखित मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ४९११) से।

सौजन्य: राधाबेन चौधरी।

२३२. ट्रान्सवालके निर्वासित

मद्रासके श्री जी० ए० नटेसनने ट्रान्सवालके गृहहीन निर्वासितोंकी बहुमूल्य सहायता की है। इसके लिए वे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके हार्दिक धन्यवादके पात्र हैं। हमारे पास कई पत्र आये हैं जिनमें उनकी सेवाओंकी बहुत प्रशंसा की गई है। उन्होंने निर्वासितोंके कष्टोंको बहुत हल्का और सह्य बना दिया है। मद्रासके समाचारपत्र भी उनकी प्रशंसासे भरे पड़े हैं। हम श्री नटेसनको उनकी इस महान लोक-भावना-पर बधाई देते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६-७-१९१०

१. पैरोंकी एक पादुका; जूतियाँ भी कहते हैं।
२. मनजी रामजी, केम्पबेल दर भारतीय व्यापारी।

२३३ परवाना कानून

मुहम्मद मुकाम और मैरित्सबर्ग नगर निगमके मामलेमें सर्वोच्च न्यायालयका फैसला (जिसे हम अंग्रेजीमें प्रकाशित कर चुके हैं) पढ़ने योग्य है।[1] उससे प्रकट होता है कि इस उपनिवेशमें भारतीयोंको कितने कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। उनका भाग्य परवाना-अधिकारीकी मुट्ठीमें रहता है। सर्वोच्च न्यायालयको उसके मनमाने निर्णयोंका भंडाफोड़ करनेका अवसर सदा नहीं मिलता। हर पीड़ित भारतीय व्यापारीकी हैसियत ऐसी नहीं होती कि वह अपना मामला सर्वोच्च न्यायालयमें ले जा सके। इसलिए भारतीय व्यापारियोंको किन-किन मुसीबतोंका सामना करना पड़ता है और कितनी बातें सर्वसाधारणकी नजरोंसे ओझल रह जाती हैं इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। कुछ दिन पहले हमने एस्टकोर्टके एक मामलेकी तरफ पाठकोंका ध्यान दिलाया था जो अभीतक सर्वोच्च न्यायालयमें नहीं पहुँचा है। भारतीय व्यापारी केवल यह एक काम कर सकते हैं कि जबतक उनके व्यापार-सम्बन्धी अधिकार मजबूत नींवपर नहीं स्थापित हो जाते तबतक वे अनवरत आन्दोलन करते रहें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६-७-१९११

२३४ नेटालके परवाने

मैरित्सबर्गके परवानेके मामलेमें सर्वोच्च न्यायालयमें जो अपील[2] की गई थी उससे प्रकट होता है कि [व्यापारी] परवाना कानून बराबर कष्ट देता रहता है। उसके सम्बन्धमें भारतीय व्यापारी इस ओरसे बिलकुल अविचल होकर नहीं बैठ सकते। जब वे बार-बार सरकारको तंग करेंगे और उचित उपाय करेंगे तभी यह कानून खत्म होगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६-७-१९११

१. मैरित्सबर्गके सुरत भारतीय श्री मुहम्मद मुकामने अप्रैल १९०९ में अपना परवाना नया करानेके लिए दरख्वास्त दी थी। उनके परवानेकी फीस मंजूर कर ली गई; लेकिन कोई निर्णय नहीं किया गया। वे सिर्फ एक व्यापार करते थे। दिसम्बरमें उनके परवाना-अधिकारीने उनकी दरख्वास्त नामंजूर कर दी। नगर-परिषद्ने भी यह निर्णय कायम रखा। तब मुहम्मद मुकामने सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की थी जो पर्याप्त हाल मंजूर हो गई।

२. देखिए पिछले शीर्षककी पाद-टिप्पणी।

२३५ प्रशासकसे शिष्टमण्डलकी भेंट

प्रशासक (एडमिनिस्ट्रेटर) से शिष्टमण्डलकी[1] भेंटके सम्बन्धमें हम दो मत बनाना सकते हैं। एक तो यह कि कांग्रेसकी अनुमतिके बिना अलगसे शिष्टमण्डल ले जाना उचित नहीं था। यह बात एक हद तक ठीक है। किन्तु हम अब उसी विचारपर अड़े नहीं रह सकते। समाजके पंख जम गये हैं और भारतीय स्वतन्त्र विचार करने लगे हैं। उनसे अनेक बार भूल भी हो जाती है किन्तु वे अपने पाँवों चलना चाहते हैं। हम उनके इस उत्साहको रोक नहीं सकते। हाँ उसे सही रास्तेपर जरूर ले जा सकते हैं। इसमें नेताओंको धीरज रखना चाहिए। यदि नेतागण युवक भारतीयोंको प्रोत्साहन दें तो इस प्रकारके उत्साहसे काम ही होगा। यदि उन्होंने सतर्कता नहीं बरती और युवक बुरे रास्ते चले गये तो यह साफ है कि इससे हानि होगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–७–१९११

२३६ पत्र जी० ए० नटेसनको

जोहानिसबर्ग
जुलाई २१, १९११

प्रिय श्री नटेसन

मैं आपके पिछले महीनेकी २ तारीखके पत्रके लिए और उसमें व्यक्त उद्गारोंके लिए आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। जो वीर सत्याग्रही भारतको निर्वासित किये गये हैं उन्हें आप अपना तमिल देशभाई कहते हैं। परन्तु जैसे वे आपके देशभाई हैं वैसे ही मैं उन्हें अपना देशभाई मानता हूँ। यहाँ हमने जो-कुछ काम किया है उसकी प्रेरणा हमें भारतके महान नेताओंसे मिली है। इसलिए, मैं ऐसा नहीं समझता कि दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहियोंके गुणोंको बढ़ा-चढ़ाकर कहनेकी जरूरत है। आपने जो बाकी रकम तारमें भेजी थी उससे बड़ा हर्ष हुआ। आपने जो विवरण भेजनेका वादा किया है, मैं उसकी प्रतीक्षा करूँगा। आपने श्री पोलककी जो प्रशंसा की है, वे निःसन्देह

[1] जुलाईके शुरूमें मैरित्सबर्ग और डर्बनकी भारतीय संस्थाओंने प्रान्तीय प्रशासकके पास एक शिष्टमण्डल भेजा था और व्यक्ति-कर, शैक्षणिक सुविधाओं और व्यापारिक परवानों आदिसे सम्बन्धित शिकायतें दूर करानेका प्रयत्न किया था।

उसके योग्य है। वे अत्यन्त अद्भुत व्यक्ति हैं। हमारे संघर्षके प्रति उनकी निष्ठा सराहनीय है। मैं बताना चाहता हूँ कि उनके जो पत्र मुझे मिलते हैं लगभग सभीमें आप वहाँ जो काम कर रहे हैं उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा रहती है।

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

गांधीजीके हस्ताक्षरोंसे युक्त टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२११) से।

२३७. असभ्य कौन?

अमेरिकामें एक हब्शी और एक अंग्रेजमें घूँसेबाजीका मैच[1] हुआ था। उसका विवरण हम दे चुके हैं। इस तमाशेको देखनेके लिए लाखों लोग गये थे। उनमें बूढ़े जवान औरत-मर्द अमीर-गरीब और सरकारी अधिकारी तथा जनसाधारण सभी थे। बहुत-से तो यूरोपसे भी देखने गये थे। उन लोगोंने क्या देखा? दो मनुष्य एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे और अपना पशुबल दिखा रहे थे। इस तमाशेके पीछे अमरीकी लोग पागल हो गये और अमरीका बहुत सभ्य देश माना जाता है। इस तमाशेसे तमाशबीनोंका क्या फायदा हुआ? इस प्रश्नका सन्तोषप्रद उत्तर हम तो नहीं दे सकते। कुछ लोग कहते हैं कि ऐसे खेलोंसे शरीर सुदृढ़ होता है और मनुष्य शरीरकी रक्षा करना सीखता है। हम कुछ गहराईसे सोचें तो देख सकते हैं कि यह खयाल बिलकुल गलत है। शरीरको सुदृढ़ बनाना अच्छी चीज है परन्तु वह घूँसेबाजी और उसके प्रदर्शनसे सुदृढ़ नहीं बनाया जा सकता। शरीरको बलवान बनानेके कई अन्य प्राकृतिक उपाय हैं। यह तो केवल बहाना है। वास्तविक बात तो यह है कि लोगोंको लड़ाई देखनेमें रस आता है और वे शरीरबलकी ही पूजा करते हैं। वे मानते हैं कि उसके बराबर कोई दूसरी चीज नहीं है और ऐसा मानकर वे आत्माके और इसीलिए ईश्वरके भी अस्तित्वसे इनकार करते हैं। ऐसे लोगोंके लिए बर्बर के अतिरिक्त अन्य कोई विशेषण प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। ऐसे लोगोंसे सीखने लायक कम ही होता है। हम यह नहीं कहना चाहते कि प्राचीन कालमें ऐसे खेल नहीं होते थे परन्तु सभी लोग इन खेलोंको बर्बरता समझते थे। समझदार लोग उनको देखने नहीं जाते थे। उनमें केवल लड़के और मूर्ख युवक ही शामिल होते थे। परन्तु अमरीकी तमाशेमें तो नामी-गिरामी माने जानेवाले लोग गये थे। तार द्वारा समाचारपत्रोंमें सैकड़ों पौंड खर्च करके लम्बे-लम्बे विवरण भेजे गये। लाखों लोगोंमें दिलचस्पी पैदा हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि यह तमाशा सभ्यताके विरुद्ध नहीं माना गया बल्कि इसे सभ्यताका एक चिह्न समझा गया। इसे हम अधःपतनकी हद मानते हैं। जबकि

[1] जेफ्रीज और जॉन्सनके बीच घूँसेबाजी जो रेनोमें जुलाई ४, १९१० को हुई।

और जॉनसनके शरीर कितने ही मजबूत हों फिर भी वे एक क्षणमें मिट्टीमें मिल जायेंगे। तब वे किसी भी काममें नहीं आयेंगे। शायद यह सीधा-सादा और अच्छा खयाल लाखों तमाशबीनोंके दिमागमें सपनेमें भी नहीं आया होगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २३–७–१९१०

२३८. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [जुलाई २५, १९१०]

एशियाई दफ्तरका नया खेल

अधिकारी अबतक भारतीय बालकोंके वयस्क होनेपर उनका पंजीयन कर लेते थे। अब जो बालक १९०८का कानून लागू होनेके बाद प्रविष्ट हुए हैं उनके वयस्क होनेपर भी उनका पंजीयन करनेसे इनकार किया जा रहा है। इसका नतीजा यह होगा कि सैकड़ों भारतीय बालकोंका पंजीयन नहीं होगा। इसलिए उनको भारत लौट जाना पड़ेगा। सत्याग्रही अदालतमें नहीं जा सकता। किन्तु यह एक बड़ा सवाल उठ खड़ा हुआ है। इसलिए कुछ भारतीय इसके सम्बन्धमें अपने अधिकारका निर्णय न्यायालयसे कराना चाहते हैं। परिणाम अच्छा ही होना चाहिए।

भेंट

स्वीपूर्टके श्री आदम अलीने एक कालीन और जर्मिस्टनके श्री देसाईने फलोंकी एक पेटी भेजी है। साग-सब्जीके विक्रेताओंसे मैं कहना चाहूँगा कि वे ऐसी साग-सब्जियाँ जैसे सेम बैंगन आदि भेज सकें तो बच्चोंके रुपयोंमें से खर्च बचेगा। महिलाओंकी माँग ऐसी साग-सब्जीकी है। व्यापारी छींट और फलालेन भेजेंगे तो वे बच्चोंके काम आयेंगी। इस समय इनकी जरूरत महसूस हो रही है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ३०–७–१९१०

२३९. पत्र : मगनलाल गांधीको

आषाढ़ बदी १ [जुलाई २५, १९१०][1]

चि० मगनलाल,

तुम सीधे फार्मके पतेपर जो पत्र लिखते हो वह मुझे जल्दी मिल जाता है।

येलके कष्टों और जहाजके कष्टोंकी कोई तुलना नहीं है। परन्तु हम दोनोंकी तुलना करते हैं और यदि हम उन्हें तुलनाके लिए अपनी तरफसे कोई अवसर देते हैं तो यह हमारे लिए शर्मकी बात है। ठक्करके कहनेका यही मतलब है, मुझे ऐसा लगा है और इसके अनुसार मुझे वह टीका उचित जान पड़ी है। तुम उसपर फिर विचार करना।

छगनलालका पत्र भेज रहा हूँ। उसे मेरे पास वापस भेजनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि मैंने उसका उपयोग कर लिया है। चंचीको[3] पत्नीके साथ भेजा जा सके तो बहुत ठीक होगा। मुझे उस समय अपने आ सकनेकी उम्मीद नहीं है।

सन्तोकके लड़की हुई है इसलिए यह सपना अब खतम हुआ। पोप-रचित [तमिल] व्याकरणके ऊपर छपा है "करका कसडर कपर्व।"[4] इसपर विचार करना। अपनी पत्नीके प्रति वासनाको वशमें करना सबसे कठिन काम है। तुम्हारी प्रकृति उग्र और है इसलिए तुम पार उतरोगे ही। प्रयत्न करते ही रहना। उसमें सफलताके लिए अनुकूल स्थितियाँ उत्पन्न करना। इस प्रकार आसानीसे पार उतर जाओगे। इस सम्बन्धमें मेरे [illegible] बार प्रयत्न करते रहनेपर भी रामदास और देवदास हुए। मेरी प्रारम्भिक असफलताओंसे तुममें हिम्मत आनी चाहिए। कवियोंने भी पुरुषको सिंहकी उपमा दी है। हाथियोंके वनका राजा बनकर रहनेकी सामर्थ्य हम सबमें है। बराबर चिन्तन करनेसे वह उभर आयेगी।

यहाँ अगर किसीके पास ज्यादा सब्जी हो तो पार्सलमें यहाँ भेजना। मात्रा यहाँ सुखानेके लिए छोड़ देना। यहाँ काशीफल मिर्चें आदि सभी काममें आती हैं। डर्बन और फीनिक्सके साग-भाजीवालोंको बता सको तो भेजना। वे समय-समयपर भाजकी पार्सलें भेजेंगे तो उतना पैसा यहाँ बच जायेगा। यहाँके अनेक अनुभव जानने योग्य हैं लेकिन लिखनेका समय नहीं है।

मोहनदासके आशीर्वाद

१ और २. देखिए "पत्र : मगनलाल गांधीको", पाद-टिप्पणी १ तथा २, पृष्ठ ३११।

३. चंचल।

४. यह सूत्र तमिल-लिपिमें है। इसका अर्थ है "जो कुछ पढ़ो, भलीभाँति पढ़ो। [पढ़नेके बाद उसपर अमल करो]।"

[पुनश्च :] श्री कैलेनबैकका कहना है कि पीपे कनस्तरोंमें न भेजे जायें बाल्टियोंमें भेजे जायें तो फिलहाल काम चल जायगा। अगर पीपे आते हैं तो अभी आने चाहिए। न आयें तो चिन्ता नहीं। परन्तु स्थिति जान लेनी चाहिए।

सेप्टिक टैंकों के सम्बन्धमें सारी रिपोर्ट डॉक्टर मेहताको भेजी है। इस सम्बन्धमें मेरी रायमें वेस्ट और कॉडिस जो-कुछ कहें उसे उचित मान लेना ठीक है। फिर अगर मैं उस समय वहाँ हुआ और कुछ रद्दोबदल करना पड़ा तो कर लेंगे।

बा का यहाँ आना निश्चित हो तो यह याद रखना कि फॉक्सी तक का तीसरे दर्जेका टिकट लेना है। पार्क स्टेशन और फॉक्सी दोनोंका किराया एक ही है।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ४९१२) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

२४० तार : द० आ० ब्रि० भा० समितिको[1]

जोहानिसबर्ग
जुलाई २८, १९१०

रायप्पन और अन्य जोग नटालको निर्वासित। फिर लौटे। तीन महीनेकी सख्त कैद मिली। अब सरकार अवयस्कोंको वयस्क होनेपर पंजीयनसे इनकार करके निषिद्ध प्रवासी बनानेके लिए प्रयत्नशील। इससे सनसनी।

ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीय संघ

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्सकी टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (सी० ओ० ५५१/७) से।

२४१ पत्र : मगनलाल गांधीको

आषाढ़ बदी ६ [जुलाई २८, १९१०][2]

चि० मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। चि० छगनलालकी हालत मैं समझ सकता हूँ। मेरी मनः स्थिति इस समय अधिक लिखनेकी नहीं है, नहीं तो मैं जेफरीज और जॉनसनके बीच हुई घूँसेबाजीके सम्बन्धमें बहुत-कुछ लिखना चाहता था। गुजरातीमें[3] उसका केवल एक अंश ही छपा है।

1. देखिए "पत्र और विज्ञापन" पृष्ठ ३११-२।
2. इस पत्रमें उल्लिखित घूँसेबाजीका यह मैच रेनो (संयुक्त राज्य अमेरिका)में ४ जुलाई १९१० को हुआ था। अतः इसमें आषाढ़ बदी ६, जुलाई २८ को पड़ती है।
3. देखिए "मनन योग्य" पृष्ठ ३१५-१६।

श्री कैलेनबैक कहते हैं कि यदि केस्टनसे पौंड एक सप्ताहमें न आयें तो सौदा रद कर देना। यदि यह सौदा रद हो जाये तो चिन्ताकी कोई बात नहीं। इसलिए तुम्हें इस सम्बन्धमें परेशान नहीं होना चाहिए। यदि पौंड एक सप्ताहमें भेज भी दिये जायें तो भी कैलेनबैकका कहना है कि जब वे यहाँ पहुँच जायें तभी उनका मूल्य चुकाया जाये। आशा है, सन्तोक और उसकी बच्ची सानन्द होंगे।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ४९३३) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

२४२. एक और विश्वासघात

ट्रान्सवाल सरकारकी नई चालके बारेमें बहुकि हमारे संवाददाताने जो समाचार भेजा है वह सचमुच हैरतमें डालनेवाला है। पाठकोंको याद होगा कि सन् १९०७ के एशियाई कानूनमें एक बहुत चुभनेवाली बात यह थी कि उसके अन्तर्गत सोलह सालसे कम उम्रके नाबालिगोंका स्वतन्त्र पंजीयन कराना जरूरी था। यह शिकायत सन् १९०८ के कानून द्वारा ऐसे बच्चोंको उनके माता-पिताओंके प्रमाणपत्रोंमें पंजीकृत करनेकी व्यवस्था करके दूर कर दी गई थी। और अगर अन्य सब बातें ठीक हुई होती तो ट्रान्सवालमें नाबालिग बच्चोंके पंजीयनके बारेमें इसके बाद कोई शिकायत सुनाई न पड़ती। ऐसा दिखता है कि अभी हालतक उन लोगोंके नाबालिग बच्चे जो सत्याग्रहसे अलग न बालिग होनेपर पंजीकृत कर लिए जाते थे फिर चाहे वे बच्चे १९०८ के अधिनियमके अमलमें आनेसे पहले उपनिवेशमें आये हों या बादमें। परन्तु मालूम होता है कि एशियाई विभागका काम भारतीयोंको सताना और तंग करके उपनिवेशसे चले जानेके लिए मजबूर करनेका उपाय ढूँढ़ना मात्र है। इसलिए किसी कानूनदाँ-अधिकारीने यह पता लगाया है कि सन् १९०८ के अधिनियममें जो कि एक ही दिनमें तैयार किया गया था एक दोष रह गया है। इस दोषका आश्रय लेकर सरकार अधिनियम लागू होनेके बाद देशमें आनेवाले नाबालिग बच्चोंको बालिग हो जानेपर निषिद्ध प्रवासी मान सकती है। यह स्पष्ट है कि विधान-मण्डलका मंशा यह कभी नहीं था। भारतीय माता-पिता ऐसी व्यवस्थाको कभी मंजूर नहीं कर सकते जिसके अनुसार उनके बच्चे सोलह बरसके होनेपर ट्रान्सवालसे निकाल दिये जायें। सन् १९०८ का अधिनियम बहुत हद तक समझौतेका परिणाम था। जिस समझौता-वार्ताके परिणामस्वरूप यह अधिनियम बना था उसका इतिहास स्पष्ट रूपसे प्रकट करता है कि सरकार और एशियाई लोग दोनों ही यह बात साफ तौरपर समझते थे कि पंजीकृत एशियाइयोंको जो अधिकार प्राप्त हैं वे अधिकार उनके नाबालिग बच्चोंको भी होंगे। अधिनियमका सही अर्थ क्या है, हमें नहीं मालूम न हमें उसकी कोई परवाह ही है। इस अधिनियमका कानूनी असर कुछ भी क्यों न हो हम इतना जरूर जानते हैं कि ट्रान्सवाल सरकारकी

इस नई कानूनसे और विश्वासघात प्रकट होता है। समाजने सरकारपर जिस बुरी नीयतका आरोप लगाया है इससे उसकी पुष्टि होती है। सत्याग्रहियोंने अपनी लड़ाई जारी रखनेका जो निश्चय किया है उसको इससे बल मिलता है और उसका औचित्य सिद्ध होता है। गैर-सत्याग्रही अदालतमें जाकर इस मुद्देको चलायेंगे। सम्भव है इस संघर्षमें वे हार जायें। अगर ऐसा हुआ तो वह सरकारके लिए और भी शर्मकी बात होगी। अगर अधिनियममें कोई दोष रह गया है तो सरकारका काम है कि वह उसे सुधारे, न कि नीचतापूर्वक उसका अनुचित लाभ उठाये।

परन्तु जो लोग ट्रान्सवाल सरकारकी इस चालको समझेंगे उनके लिए इसका एक और भी गहरा अर्थ है। वह यह कि हमारी आशाका बारम्बार अदालती फैसलोंके अनिश्चित परिणामोंके बजाय सत्याग्रहकी निश्चित सफलतापर निर्भर है। इसलिए हम विश्वास करते हैं कि जो भारतीय माता-पिता अपनी कमजोरीके कारण या निराश होकर कदाचित् असम हो गये हैं वे फिर कमर कसकर खड़े हो जायेंगे और जो लोग सत्याग्रह जारी रखे हुए हैं, उनका साथ देंगे।

प्रश्नके इस नवीनतम पहलूके बारेमें साम्राज्य-सरकार क्या सोचती है हम यह जाननेके लिए उत्सुक रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ३-७-१९१

२४३ जेलका व्यवहार

श्री चर्चिलने घोषणा की है[1] कि अब सत्याग्रही और मताधिकारके लिए लड़नेवाली स्त्रियोंके साथ [जेलमें] अपराधियों जैसा व्यवहार नहीं किया जायेगा और न उन्हें पतित लोगोंके साथ रखा जायेगा। यह सुधार सही दिशामें किया गया सुधार है। ध्यान देनेकी बात है कि श्री चर्चिलने मताधिकारके लिए लड़नेवाली स्त्रियों और सत्याग्रहियोंमें भेद किया है। मतलब यह है कि ये स्त्रियाँ जब सत्याग्रहियोंकी श्रेणीमें न रखी जा सकें — जैसे अपनी माँगकी ओर ध्यान दिलानेके लिए प्रधानमन्त्रीपर हमला करने और खिड़कियाँ वगैरह तोड़नेकी हालतमें — उस समय भी उनके साथ मामूली अपराधीका-सा व्यवहार नहीं किया जायेगा। श्रीमती पैंकहर्स्ट और उनके अनुयायियोंकी यह बहुत बड़ी विजय है। एक वर्ष पहले श्री रॉबर्टसन और अन्य प्रसिद्ध पत्रकारोंने जिस सिद्धान्तकी तरफ ब्रिटेनकी जनताका ध्यान दिलाया था उसकी यह एक विलम्बित स्वीकृति-मात्र है।

परन्तु ट्रान्सवालके सत्याग्रहियोंका क्या होगा? क्या वे वैसा ही व्यवहार पानेके योग्य नहीं हैं? जो हिंसाका प्रयोग कभी नहीं करते और जो शायद सबसे सच्चे सत्याग्रही हैं क्या उन्हें ऐसे सामान्य अपराधियोंकी ही श्रेणीमें गिना जायेगा जो किसी

1. लोकसभा में।

टीफवके हकदार नहीं हैं? क्या साम्राज्य-सरकार इस नये संघ-राज्यकी सरकारको ति वणिकके सुधारका अनुकरण करनेके लिए राजी नहीं कर सकती? अथवा क्या री जोज़ेफ रायप्पनके साथ जो बैरिस्टर हैं और अपनी अन्तरात्माकी खातिर जेल जाते हैं, किसी हत्यारे और चोर-जैसा व्यवहार करना ज़रूरी है?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १०-७-१९११

२४४ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [अगस्त १ १९११]

सत्याग्रही हरजोरसिंह

श्री हरजोरसिंह डर्बनसे रवाना होनेवाली सत्याग्रहियोंकी टुकड़ीमें थे और अभी हालमें ही तीन माहका कारावास भोग कर लौटे हैं। उन्हें अपने पिताकी बीमारीके कारण सत्याग्रही फार्मसे[1] एकाएक जाना पड़ा है। श्री रतिपालसिंह तथा निगमके अन्य भारतीयोंने उन्हें भोज दिया और उनकी प्रशंसा की। श्री हरजोरसिंह कुछ ही दिनोंमें ट्रान्सवाल आकर फिर गिरफ्तार होंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-८-१९११

२४५ उत्तर 'रैंड डेली मेल' को[2]

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त १ १९११

महोदय

सत्याग्रहकी लड़ाईके सम्बन्धमें लॉर्ड ऍम्टहिलने लॉर्ड-सभामें[3] जो काम किया है उसके बारेमें आपने अपने पत्रमें अग्रलेख[4] लिखा है। क्या आप मुझे इस अग्रलेखमें कही गई कुछ बातोंको सुधारनेकी इजाजत देंगे?

आप लिखते हैं कि जब सरकार पुरोहितों वकीलों डॉक्टरों आदिको अनुमतिपत्र देनेकी इच्छा प्रकट कर चुकी किन्तु जब उसने इससे अधिक कुछ और देनेसे इनकार कर दिया तब सत्याग्रह शुरू हो गया। क्या मैं आपको याद दिलाऊँ कि सत्याग्रह सन् १९०७में शुरू हो चुका था उस समय तक पुरोहितों, वकीलों और डॉक्टरोंका प्रश्न

१. टॉल्स्टॉय फार्म।

२. यह रैंड डेली मेलमें "भारतीय सत्याग्रही" (इंडियन पैसिव रेज़िस्टर्स) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

३. देखिए अगला शीर्षक।

४. १९ जुलाई; देखिए इंडियन ओपिनियन ५-८-१९११।

सार्वजनिक रूपसे नहीं उठाया गया था। और जब उठाया गया तब केवल इसलिए कि समाजकी माँगोंको सरकार द्वारा ठुकराये जानेके अन्यायका पर्दाफाश हो। इन माँगोंमें जैसा कि श्री पैट्रिक डंकनने बताया है, कभी परिवर्तन नहीं किया गया। प्रवासके बारेमें ब्रिटिश भारतीयोंकी माँग सदा यही रही है कि कानूनकी दृष्टिमें सबके साथ समानताका व्यवहार हो। उन्होंने एशियाइयोंका अनियन्त्रित आव्रजन कभी नहीं चाहा।[1] मैं दृढ़तापूर्वक इस कथनका खण्डन करता हूँ कि निर्वासित भारतीयोंमें से बहुत-से लोगोंने अपने दक्षिण आफ्रिकाके निवासी होनेके बारेमें जानकारी देनेसे इनकार किया था। सच तो यह है कि एशियाई विभाग स्वयं जानता था कि निर्वासितोंमें से अधिकांश दक्षिण आफ्रिकामें अधिवासका अधिकार प्राप्त कर चुके हैं। फिर, जिनमें शैक्षणिक योग्यता थी उनके लिए तो इस प्रकारके प्रमाणकी जरूरत ही नहीं थी। और ऐसे बहुत-से लोग थे। आप यह भी लिखते हैं कि सत्याग्रही ऐसा एक भी मामला सिद्ध नहीं कर सके जिससे मालूम हो कि उनके साथ ट्रान्सवालकी जेलोंमें कठोर व्यवहार हुआ है। मैं आपको और जनताको बताना चाहता हूँ कि खुराकका प्रश्न जो एक गम्भीर प्रश्न था सरकार और जनताके सामने बहुत उभारकर पेश किया गया था। मैं सधन्यवाद निवेदन करता हूँ कि यह शिकायत अब कहीं थोड़ी-बहुत रफा की गई है। साधारण अर्थमें सत्याग्रही अपराधी नहीं कहे जा सकते। उन्हें डीपक्लूफ-जैसे गुनहगारोंके लिए बनाये गये जेलमें भेजा गया है जहाँ कैदियोंको दी जानेवाली मामूली सहूलियतें भी नहीं दी जातीं। मेरी रायमें यह निःसन्देह कठोर व्यवहारका ज्वलन्त उदाहरण है। आप आगे लिखते हैं कि ब्रिटिश भारतीय अपनी वाजिब माँगोंको पूरा कराने के लिए नहीं बल्कि किसी दूसरे इरादेसे सत्याग्रह जारी रखे हुए हैं। इसके जवाबमें मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि संसारमें बहुत ही कम लोग होंगे जो किसी समुचित कारणके बिना ही अपनी जमीन-जायदादसे हाथ धो बैठनेके साथ-साथ दारिद्र्य अनाहार और अपने प्रियजनोंका वियोग आदि सहनेको तैयार हों। मैं इस बातमें आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि हमारे समाजकी माँगें सत्याग्रहके कारण नहीं बल्कि इसलिए मंजूर की जानी चाहिए कि वे मूलतः न्याय्य हैं। परन्तु मैं आशा करता हूँ कि आप इस बातसे सहमत होंगे कि सत्याग्रहको एक शक्तिशाली सरकारके न्याय करनेके मार्गमें रोड़ा नहीं होना चाहिए। आपका शायद यह खयाल है कि सत्याग्रह एक जबरदस्ती है। परन्तु मेरी नम्र रायमें समाजने सत्याग्रह नामक कष्ट-सहन तभी अंगीकार किया है जब प्रार्थनापत्र आदि सभी उपाय विफल हो चुके थे। और इसका मंशा यह था कि समाज जिस व्यथासे व्यथित और क्षुब्ध था उसकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित किया जाये।

आपका
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
रैंड डेली मेल ९-८-१९११
इंडियन ओपिनियन, ९-८-१९११

१ देखिए पिछला शीर्षक।

२४६. लॉर्ड-सभामें ट्रान्सवालके भारतीयोंकी चर्चा

लॉर्ड ऍम्टहिलने दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी और हम तो यहाँतक समझते हैं कि इसके द्वारा साम्राज्यकी भी वास्तविक हितके लिए अनुपम परिश्रम किया है। अब उन्होंने लॉर्ड-सभामें यह प्रश्न फिर उठाया है।[1] लॉर्ड एम्टहिलके प्रश्नके जवाबमें अर्ल क्रू साम्मने जो उत्तर दिया रायटरने तारसे उसका सारमात्र भेजा है। यदि तारमें दिया हुआ विवरण सही है, तो उससे प्रकट होता है कि साम्राज्य-सरकारको गुमराह करनेकी ट्रान्सवाल सरकारकी नीति ज्यों-की-त्यों जारी है। खबरके मुताबिक जब लॉर्ड ऍम्टहिलने भारतीयोंके भारत निर्वासित किये जानेका विरोध किया तब अर्ल क्रू साम्मने कहा ब्रिटिश भारतीयोंको इस बातका पूरा अवसर दिया गया था कि वे दक्षिण आफ्रिकामें अपना अधिवास (डोमिसाइल) सिद्ध करें परन्तु बहुतोंने इस सम्बन्धमें जानकारी देनेसे बिल्कुल इनकार कर दिया। सच तो यह है कि ज्यादातर लोगोंके बारेमें तो अधिकारी स्वयं जानते थे कि वे दक्षिण आफ्रिकाके निवासी हैं। और एक-आधके अलावा सभीने धृढ़तापूर्वक अपने आपको अधिवासी घोषित किया। इससे अधिक तो वे कुछ कर नहीं सकते थे। परन्तु अधिकारी अड़ गये कि उन्हें अधिवासी होनेके प्रमाणपत्र पेश करने चाहिए, जोकि बहुतोंके पास नहीं थे। सभी जानते हैं कि ऐसे प्रमाणपत्रका होना कानूनकी दृष्टिसे आवश्यक नहीं है। कुछ भारतीय एशियाटिक से प्रमाणपत्र ले लिया करते हैं। नवयुवक माणिकम् पिल्लेके मामलेको अधिकारी जानते थे। वे नेटालमें विद्यार्थी थे शिक्षित होनेके नाते वे उपनिवेशमें आ सकते थे एशियाई विभाग उनके पिताको अच्छी तरह जानता है फिर भी यह नवयुवक भारतको निर्वासित कर दिया गया। हमें ज्ञात हुआ है कि नौजवान पिल्लेने सारी जानकारी दे दी थी। परन्तु उसका कुछ काम नहीं हुआ। असलियत यह है कि ट्रान्सवालकी सरकार साम्राज्य-सरकारको सरासर धोखा दे रही है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण युवक पिल्ले और अन्य भारतीयोंका निर्वासन भारतसे लौटनेपर पुनः नेटालमें उनका प्रवेश और डीपक्लूफकी जेलमें उनका बन्द कर दिया जाना है। ये प्रमाण उपयुक्त सचाईको हमारी किसी भी दलीलकी अपेक्षा अच्छी तरह सिद्ध कर रहे हैं।

और फिर, खबर है कि अर्ल क्रू साम्मने यह भी कहा कि संघ-राज्य भारतीयोंके अबाध प्रवेश को मंजूर नहीं कर सकता। ट्रान्सवालके भारतीय अनेक बार कह चुके हैं कि वे अबाध प्रवेश नहीं चाहते। सत्याग्रह एस किसी हेतुको सिद्ध करनेके लिए नहीं छेड़ा गया है। इतना ही नहीं वे जानते हैं कि यदि वे अबाध प्रवेश के लिए लड़ेंगे तो आज लॉर्ड ऍम्टहिल और अन्य प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ उदारतापूर्वक उनकी

१. जुलाई २६, १९१ को।

२. दिसंबर जुलाई २० को, जवाबमें; बिसे १०-७-१९१ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत किया गया था।

जो हिमायत कर रहे हैं, इससे वे वंचित हो जायेंगे। दक्षिण आफ्रिकाके बाहर सभीसे उनको सहानुभूति और समर्थन केवल इसलिए प्राप्त हुआ है कि उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि उनकी माँगें उचित तथा मर्यादित हैं और ऐसी हैं जिन्हें अन्तमें पूरा करना ही होगा। जहाँतक उपनिवेशमें प्रवेशका सम्बन्ध है उनकी माँग केवल इतनी ही है कि कानूनमें जाति या रंगको लेकर कोई भेदभाव न हो और वर्तमान कानूनसे भारतीयोंका कौमके रूपमें होनेवाला अपमान न हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १–८–१९११

२४७ एक दिलचस्प चित्र

हमारा इस सप्ताहका फोटो पत्र टॉल्स्टॉय फार्मके — ट्रान्सवालमें लॉलीके पास बसाई गई सत्याग्रहियोंकी बस्तीके — पहले-पहल निवासियोंका एक दिलचस्प फोटोग्राफ[1] है। पाठकोंको फोटोग्राफ इसलिए और भी पसन्द आयेगा कि श्री कैलेनबैक भी उसमें मौजूद हैं। श्री कैलेनबैककी उदारताको तो सभी जानते और सराहते हैं। उन्होंने सत्याग्रहियोंके परिवारोंके उपयोगके लिए फार्मकी सारी जमीन तो दी ही है हमारे संघर्षको अपनी सम्पूर्ण सहानुभूति भी प्रदान की है। लेकिन भारतीय समाजके मनपर शायद सबसे ज्यादा प्रभाव तो इस बातका पड़ेगा कि श्री कैलेनबैक जिस ध्येयको अपना लेते हैं उसे पूरा करनेमें अक्षरशः आस्तीन चढ़ाकर जुट जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १–८–१९११

२४८ लॉर्ड ऍम्टहिलकी सहायता

लॉर्ड ऍम्टहिल भारतीयोंकी सहायता कर रहे हैं। लॉर्ड-सभामें उनके सवालपर जो बहस हुई उसका तारसे प्राप्त विवरण [का सारांश] हम दे ही चुके हैं।

उस सारांशसे प्रकट होता है कि ट्रान्सवालकी सरकार साम्राज्य-सरकारको भुलावेमें डालती ही रहती है। यह दोषारोपण कि निर्वासित लोगोंने पूरी जानकारी नहीं दी, निराधार है। इसी प्रकार उसका यह कहना भी असत्य है कि हम भारतीयोंके

1. देखिए टॉल्स्टॉय फार्मके प्रारम्भिक निवासियोंका चित्र (१–८–१९११ के इंडियन ओपिनियनका परिशिष्ट)।

2. देखिए इंडियन ओपिनियन १०–६–१९११ और "लॉर्ड-सभामें ट्रान्सवालके भारतीयोंकी चर्चा" पृष्ठ १२१-२४।

अनियन्त्रित प्रवेशकी माँग करते हैं। परन्तु लॉर्ड-सभामें हुई बहससे प्रकट होता है कि अभी उस सम्बन्धमें साम्राज्य-सरकारकी कोशिश जारी है। प्रश्न सिर्फ समयका है और जीतका दारमदार सत्याग्रहियोंपर है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-८-१९११

२४९. उत्तर 'रैंड डेली मेल' को[1]

जोहानिसबर्ग
अगस्त ९, १९११

महोदय

एशियाटिक एक्जाजरेशन (एशियाई अत्युक्ति) शीर्षकसे आपने इस प्रान्तमें तथा एक जहाजपर, जिसमें कुछ महीने हुए साठ सत्याग्रहियोंको ले जाया गया था सत्याग्रहियोंके साथ किये गये दुर्व्यवहारके प्रश्नको फिर उठाया है। सत्याग्रही कमसे-कम दो बातोंसे बिलकुल परे रहे हैं — एक तो अत्युक्ति और दूसरे किसी भी तरहकी हिंसा। ये दोनों बातें सत्याग्रहकी आत्मासे सर्वथा विपरीत मानी जाती हैं। कोई कितना ही खण्डन क्यों न करे, दुर्व्यवहारकी शिकायतें तबतक बराबर की जाती रहेंगी जबतक जलमें सत्याग्रही कैदियोंके साथ असाधारण दुर्व्यवहार होता रहेगा। उन्हें न केवल अपराधकर्मियोंके समकक्ष समझा जा रहा है बल्कि उन्हें ऐसी जेलोंमें रखा जाता है जो पक्के मुजरिमोंके लिए हैं। आपका कथन है कि सत्याग्रहियोंने मारे-पीटे जानेकी बार-बार शिकायतें की हैं। परन्तु वास्तवमें उन्होंने इतना ही कहा है कि कुछ इक्के-दुक्के मामलोंको छोड़कर कैदियोंको मारा-पीटा नहीं गया है। लॉर्ड मॉर्ले-जैसे उच्च पदाधिकारी द्वारा जहाजपर हुए दुर्व्यवहारका खण्डन किये जानेपर भी हम यह पूछना चाहेंगे कि क्या लॉर्ड साइबने कभी स्वयं मुसाफिरोंसे पूछताछ करनेका आदेश दिया था? मुझे पता चला है कि ऐसी कोई बात नहीं की गई। ऐसी सूरतमें भारतीय समाज तो मुसाफिरोंकी बातको ही सच मानेगा। लेकिन इस घटनाके बारेमें भी लोग यही सोचते जान पड़ते हैं कि जब भी कोई भारतीय दुर्व्यवहारकी शिकायत करता है तो उस दुर्व्यवहारका अर्थ मार-पीट ही होना चाहिए। अगर मारा-पीटा न गया हो तो वह दुर्व्यवहार ही नहीं है। सत्याग्रहियोंको डेकपर सफर करनेके लिए मजबूर किया गया और ठीक भोजन भी उन्हें एक दिन अनशन करनेपर दिया गया। आपकी रायमें शायद ये बातें विचार और जाँचके लायक नहीं हैं, परन्तु सम्बन्धित लोगोंके लिए ये बातें काफी महत्व रखती हैं। सत्याग्रहियोंके साथ होनेवाले दुर्व्यवहारोंके समाचार भारतमें पहुँचने और फैलने न पायें — इसका उपाय केवल यही है कि पहले तो अधिकारी अच्छे

1. यह रैंड डेली मेलमें "पैसिव रेजिस्टर्स" (सत्याग्रही) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

२५२ पत्र : लिओ टॉल्स्टॉयको[1]

जोहानिसबर्ग
अगस्त १५, १९१

प्रिय महोदय

आपके गत ८ मईके उत्साहवर्धक और स्नेहपूर्ण पत्रके[2] लिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ। मेरी 'इंडियन होम रूल' पुस्तिका आपको कुल मिलाकर पसन्द आई, यह मेरे लिए बड़ी बात है। आपने अपने पत्रमें समय मिलनेपर उसकी विस्तृत आलोचना करनेका वचन दिया है। मैं उसकी प्रतीक्षा करूँगा।

श्री कैलेनबैकने आपको टॉल्स्टॉय फार्मके[3] बारेमें लिखा है। श्री कैलेनबैक और मेरी बरसोंसे मित्रता है। आपने अपनी कृति — माई कन्फेशन्स — में अपने जिन अनुभवोंको सजीव चित्रित किया है मैं कहना चाहता हूँ कि श्री कैलेनबैक उनमें से ज्यादातर अनुभवोंमें से गुजर चुके हैं। श्री कैलेनबैकको आपकी कृतियोंने जितना प्रभावित किया है उतना अन्य किसी औरकी कृतियोंने नहीं। और आपने संसारके सामने जो आदर्श रखे हैं उनपर चलनेके प्रयासको बल देनेके लिए ही उन्होंने मुझसे सलाह लेकर अपने फार्मका नामकरण आपके नामपर करनेकी धृष्टता की है।

उन्होंने अपना फार्म सत्याग्रहियोंके इस्तेमालके लिए देनेकी उदारता दिखाई है। मैं आपके पास 'इंडियन ओपिनियन' का सम्बन्धित अंक भेज रहा हूँ जिससे आपको पूरी जानकारी मिल जायेगी।

यदि आप ट्रान्सवालके वर्तमान सत्याग्रह-संघर्षमें व्यक्तिगत रुचि न ले रहे होते तो मैं इस तमाम तफसीलका बोझा आपपर न डालता।

आपका सच्चा सेवक,
मो० क० गांधी

काउन्ट लिओ टॉल्स्टॉय
यास्नाया पोल्याना।

श्री बी० जी० तेन्दुलकर-कृत महात्मा, खण्ड १ में प्रकाशित गांधीजीके हस्ताक्षरयुक्त टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रतिके ब्लॉकसे।

1. इसके उत्तरमें श्री चेर्टकोव और टॉल्स्टॉय द्वारा गांधीजीको लिखे गये पत्रोंके लिए, देखिए परिशिष्ट ६।
2. देखिए परिशिष्ट ३।
3. मई ८, १९१० का।

गांधीजी और कलेनबैक : टॉल्स्टॉय-फार्म परिवारके साथ (१९१)

(देखिए पृष्ठ १२४)

पिछले पृष्ठपर इंडियन ओपिनियन का मुखपृष्ठ

(देखिए पृष्ठ १३५)

व्यवहारके बारेमें निर्वासितोंका मापदण्ड स्वीकार कर लें और दूसरे, भारतीय समाजकी न्यायोचित मांगें पूरी करके इस दुःखजनक लड़ाईको समाप्त किया जाये।

आपका

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

रैंड डेली मेल ९–८–१९११

इंडियन ओपिनियन ११–८–१९११

२५० श्री रिचका आगमन स्थगित

अखबारोंमें समाचार छपा था कि श्री रिच शीघ्र ही दक्षिण आफ्रिका आ रहे हैं और अपने साथ सत्याग्रहियोंके लिए सहानुभूति और प्रोत्साहनका सन्देश ला रहे हैं। उन्होंने इंग्लैण्डमें बड़े ही परिश्रम और योग्यताके साथ प्रभावशाली कार्य किया है। इसलिए यहाँ तदनुरूप स्वागतकी तैयारियाँ शुरू हो गई थीं। परन्तु जैसा कि हमारा ट्रान्सवालका संवाददाता सूचित करता है, श्रीमती रिचके ऑपरेशनके कारण श्री रिचका आगमन एकाएक स्थगित हो गया है। पाठकोंको याद होगा कि श्रीमती रिच अभी-अभी एक खतरनाक बीमारीसे उठी हैं जिसमें उन्हें कई ऑपरेशन कराने पड़े थे। इस विपत्तिमें समस्त दक्षिण आफ्रिकामें बसनेवाले भारतीयोंकी सहानुभूति श्री और श्रीमती रिचके साथ है। हम आशा करते हैं कि श्रीमती रिचका यह नया ऑपरेशन सफल होगा और वे अच्छी हो जायेंगी। इस परिवारके जो मित्र यह जानते हैं कि श्रीमती रिच बड़ी साहसी महिला हैं और उनमें अपना खोया स्वास्थ्य पुनः प्राप्त करनेकी आश्चर्यजनक शक्ति है, उन्हें भरोसा है कि श्रीमती रिच इस संकटको पार कर जायेंगी और उन बच्चोंका स्नेहपूर्ण संरक्षण करते हुए बहुत वर्ष जीवित रहेंगी जिनके लिए वे जी रही हैं और जो परस्पर एक दूसरेको जी-जानसे चाहते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११–८–१९११

जिन लोगोंने सोचा था कि दक्षिण आफ्रिकाका भारतीय समाज संघ-राज्य (यूनियन) के मातहत अधिक सुखी रहेगा उनका भ्रम अब तेजीसे दूर हो रहा है। ट्रान्सवालमें सत्याग्रहियोंका उत्पीड़न जारी है। ऑरेंज फ्री स्टेटने उनके विरुद्ध द्वार बन्द कर रखा है। केपमें बचे-खुचे ही सही लेकिन उनके विरुद्ध एक आन्दोलनको निश्चय ही प्रोत्साहन दिया जा रहा है और नेटालके अनुमतिपत्र-सम्बन्धी कानून हालके संशोधनके[1] बावजूद अबतक भारतीय दूकानदारों और व्यापारियोंके लिए एक स्थायी संकट बने हुए हैं। एस्टकोर्टका मुकदमा[2] जिसकी ओर हम कुछ समय पहले ध्यान आकृष्ट कर चुके हैं अब एक नई मंजिलपर जा पहुँचा है। प्रान्तीय अदालतने फैसला दिया है कि सरकार द्वारा निकायके कतिपय सदस्योंकी नियुक्ति वैध थी। इसलिए हमारा अनुमान है कि पीड़ित पक्ष फिर अपील-बोर्डकी शरण लेगा। बेजार कर देनेवाली इस कार्रवाईके खतम होने तक सम्बन्धित पक्ष अर्थात् श्री सुलेमान एक लम्बी रकमसे हाथ धो बैठेगा। उपनिवेशमें कितने भारतीय व्यापारी ऐसे हैं जो इतनी लम्बी लड़ाईका बोझ बरदाश्त कर सकें?

एक और उदाहरण श्री मोसाका लीजिए। श्री मोसा बीस साल पुराने एक प्रतिष्ठा-प्राप्त व्यक्ति हैं अनेक प्रतिष्ठित यूरोपीय उनके ग्राहक हैं और लेडीस्मिथके प्रतिष्ठित यूरोपीय निस्संकोच उनका समर्थन करते हैं। और दूकानकी जगह भी उनकी अपनी है, फिर भी उन्हें अनुमतिपत्र मिलना दुश्वार हो रहा है।[3] श्री मोसा किसी यूरोपीयको अपनी दूकान किरायेपर भी नहीं दे सकते और न उसे बेच ही सकते हैं अनुमतिपत्र अधिकारीको इसकी कोई परवाह नहीं है। क्योंकि वे भारतीय हैं इसलिए उन्हें चुपचाप हानि सह लेनी चाहिए।

प्रश्न उठता है अन्यायके ऐसे स्पष्ट मामलोंमें भी संघ भारतीयोंकी क्या सहायता करता है? इसका उत्तर तो यह है कि संघके मातहत भारतीयोंको किसी भी प्रकारकी सुविधा नहीं मिलेगी बल्कि बहुत मुमकिन है, उनकी हालत और भी ज्यादा खराब हो जाये और उनके विरुद्ध समस्त प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ एक हो जायें। समाजको सावधान हो जाना चाहिए। ऐसे शक्तिशाली गुटसे लड़नेका कारगर रास्ता एक ही है कि हम एक हों और आत्मनिर्भर बनें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १३-८-१९१०

१ देखिए "विक्रेता परवाना अधिनियम" पृष्ठ १४।

२. एस्टकोर्टके अनुमतिपत्र-अधिकारीने सुलेमानको अनुमतिपत्रका स्थानान्तर करनेकी मंजूरी देनेसे इनकार कर दिया था। उसपर सुलेमानने एस्टकोर्ट अनुमतिपत्र निकायमें अपील की। वहाँ जब अपीलने निकायके निर्णयको रद कर दी और कार्यवाही भंग होनेसे इनकार कर दिया। फिर भी अनुमतिपत्र निकायने निर्णय दे दिया। इस निर्णयपर पुनर्विचार करनेकी बाबत सर्वोच्च न्यायालय (नेटाल डिवीजन) ने २ अगस्तको घोषित कर दी थी।

३ अनुमतिपत्र अधिकारीने मोसा मायात को मुराद व कर्मकी बारी ही दूकानसे बाहर करनेका अनुमतिपत्र देनेसे इनकार कर दिया गया था, १९०८ और उसके बाद १० दूकानोंके अनुमतिपत्र-अधिकारीको अर्जी भेजा था।

२५२. पत्र : लियो टॉल्स्टॉयको'

प्रिय महोदय,

आपके गत ८ मईके उत्साहवर्धक और स्नेहपूर्ण पत्रके' लिए मैं
हूँ। मेरी 'इंडियन होम रूल' पुस्तिका आपको कुल मिलाकर
लिए सही बात है। आपने अपने पत्रमें समय मिलनेपर उस
करनेका वचन दिया है। मैं उसकी प्रतीक्षा करूँगा।

श्री कैलेनबैकने आपको टॉल्स्टॉय फार्मके' बारेमें लिखा
मेरी अरसेसे मित्रता है। आपने अपनी कृति — 'माई कन्फ
अनुभवोंको हूबहू चित्रित किया है, मैं कहना चाहता हूँ कि श्री कैले
अनुभवोंमें से गुजर चुके हैं। श्री कैलेनबैकको आपकी कृतियोंसे
है उतना अन्य किसी औरकी कृतियोंसे नहीं। और आपने सत्य
रखे हैं उनपर चलनेके प्रयासको बल देनेके लिए ही उन्होंने म
फार्मका नामकरण आपके नामपर करनेकी धृष्टता की है।

उन्होंने अपना फार्म सत्याग्रहियोंके इस्तेमालके लिए दे
मैं आपके पास 'इंडियन ओपिनियन'का सम्बन्धित अंक भ
पूरी जानकारी मिल जायेगी।

यदि आप ट्रान्सवालके वर्तमान सत्याग्रह-संघर्षमें व्यक्तिगत
मैं इस तमाम तफसीलका बोझा आपपर न डालता।

काउन्ट लियो टॉल्स्टॉय
यास्नाया पोल्याना।

टी॰ जी॰ तेन्दुलकर-कृत 'महात्मा', खण्ड १ में प्रकाशित
टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रतिके फोटो-नकलसे।

१. [illegible] गैलरोन और टॉल्स्टॉय तथा गांधीजीको लिखे ग
२. देखिए परिशिष्ट १।
३. जून ११, १९१० का।

२५३ पत्र मगनलाल गांधीको

[टॉल्स्टॉय फार्म]
श्रावण वदी १ [अगस्त २१, १९११][1]

चि. मगनलाल,

वहाँतक बने हफ्तेमें एक पत्र तो लिख ही दिया करो।

मैं आनन्दलालका पत्र तुम्हें भेज चुका हूँ।

जो शाक-सब्जी तुमने भेजी है उसका मूल्य यहाँ [सत्याग्रह-कोषमें से] देनेका प्रबन्ध करूँगा। तुमने जितनी सब्जी भेजी है उतनी यहाँ खरीदें तो भी उतनी ही रकम लगेगी। सब्जियाँ कम खर्चमें कैसे भेजी जा सकती हैं इसकी ज्यादा जानकारीके लिए वहाँकी शुल्क-सूची (टैरिफ बुक) देख जाना। किन्तु तुमने जो शाक-सब्जी आदि भेजी है उसके पीछे जो भावना है उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता। दूसरे लोग सत्याग्रहियोंके लिए आवश्यक वस्तुएँ जुटा देते हैं, यह एक महत्त्वकी बात है। अगर य लोग [ये वस्तुएँ] मिलकर भेजें तो रेलभाड़ा बहुत न पड़े। उन्हें ऐसा समझाना कि जो खासी कमाई करते हैं उनका थोड़े-बहुत भाड़ेसे डर जाना तो लज्जाजनक है।

बाबू तालेवन्तसिंहने क्या भेजा है, सो मेरे देखनेमें नहीं आया है। मूँगफलियाँ और शाक बनजीकी ओरसे तथा कम्बल और फलालेन रावजीकी ओरसे मिले हैं। इन चीजोंमें से कुछ बाबू तालेवन्तसिंहकी ओरसे आई हों तो उसके अनुसार शुमार कर लेना। मुझे बापूजीका जो पत्र मिला था उसमें भी उपर्युक्त व्यक्तियोंकी ओरसे ही सामान भेजे जानेकी बात लिखी थी।

बच्चीको पढ़ानेके लिए हरिलालका [भारत] जाना ठीक नहीं। हम गरीब हैं। पैसा इस प्रकार नहीं खर्च किया जा सकता। और फिर, [सत्याग्रह] संघर्षमें लगा हुआ व्यक्ति इस तरह तीन माहके लिए नहीं जा सकता। बच्चीको अच्छा साथ मिल जाये तो वह चली जाये इसमें कोई हर्ज नहीं है। बहुतेरी गरीब स्त्रियाँ यही करती हैं। हम अपने परिवारकी स्त्रियोंको नाजुक नहीं बनाना चाहते। मैं तो किसान हूँ और चाहता हूँ कि तुम सब भी किसान बन जाओ और अगर हो सके तो हमेशा किसान ही बने रहो। मेरी दिनचर्या यहाँ बिलकुल बदल गई है। सारा दिन लिखने और लोगोंको समझानेके स्थानपर अब जमीनकी खुदाई इत्यादि मेहनत-मजूरीके काम करनेमें बीतता है। यह मुझे अधिक अच्छा लगता है। मैं इसीको अपना कर्तव्य मानता हूँ। रामदासने आज एक बजेतक तीन फुट चौड़े और उतने ही गहरे गड्ढे खोद डाले

१. अनुच्छेद ४ में जिस [illegible] उल्लेख आया है उसकी प्राप्ति-सूचना २०-८-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें दी गई थी। १९११ में श्रावण वदी १ अगस्त २१ को पड़ी थी।

२. गांधीजीके चचेरे भाई खुशालचन्द गांधीके पुत्र।

२५४. पत्र : नारणदास गांधीको

श्रावण बदी १
[अगस्त २१, १९११][1]

चि॰ नारणदास,

तुम्हारे पत्रको उत्तर देनेके इरादेसे संभालकर रख लिया था।

जो समय तुम्हें मिलता है उसमें यदि यहाँके संघर्षका रहस्य समझनेमें और दूसरोंको समझानेमें व्यतीत करोगे तो उचित हुआ मानूँगा। कोई वस्तु तभी मिलती है जब हम उसमें तन्मय हों, यह नियम है, इसमें सन्देह करनेकी कोई बात नहीं है। सत्याग्रहकी लड़ाई तन्मय होने योग्य है। इसीलिए उसके विषयमें यह सलाह दे रहा हूँ।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी॰ डब्ल्यू॰ ५११५) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी।

२५५. गिरमिटियोंके संरक्षककी रिपोर्ट

गिरमिटियोंके तथाकथित प्रोटेक्टर अर्थात् संरक्षककी वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। उसके मुख्य अंश हम इसी अंकमें अन्यत्र दे रहे हैं। यह रिपोर्ट समझदार भारतीयोंके लिए अभ्यास्य है। कितने भारतीय आये, कितने मर गये और क्यों, यह सब जान लेना चाहिए। रिपोर्टके उद्धृत अंशोंसे यह जानकारी मिल जायेगी।

श्री पोलकने गिरमिटियोंके कष्टोंकी जो हूबहू तसवीर खींची है, संरक्षक ने उसका उत्तर दिया है। उत्तर पढ़ने लायक है। संरक्षक का यह उत्तर कोई उत्तर ही नहीं है। यह तो 'रक्षक के भक्षक बन बैठने'का मामला है। समुद्रमें ही आग लग जाये तो उसे किस पानीसे बुझाया जाये?

परन्तु हम इसे लेकर बहुत चिन्तित हैं कि गत वर्ष २,४८० गिरमिटिये मद्राससे आये थे। उनमें छोटे-बड़े सब मिलाकर १७६ लड़के और १९५ लड़कियाँ थीं। उसी रिपोर्टमें २७० से ऊपर भारतीय नेटालमें जन्मे हुए हैं। इन सब लड़कों और लड़कियोंका क्या हुआ सरकारने इसकी खबर तक नहीं ली। संरक्षकने उनके विषयमें एक शब्द भी नहीं लिखा। गिरमिटियोंके लिए उनके मालिक कुछ नहीं करते और इन बच्चोंको भी वे गिरमिटिया ही मानते हैं। इस व्यवहारकी तुलना ढोरोंके साथ होनेवाले व्यवहारसे की जा सकती है। [किन्तु] क्या हम सचमुच अपने ढोरोंको [भी]

१. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", पृष्ठ ३११-१४।

है। अगर ऐसा ही करता रहा तो यह लड़का बहुत सँभल जायेगा। फीनिक्समें यह विचारोंमें डूबा रहता था अब उसकी वैसी दशा नहीं है। यह शारीरिक परिश्रमका प्रताप है। हमें यह जो मोटा-ताजा शरीर मिला है हम उसका दुलार करते हुए बुद्धि-बलसे अपनी जीविका कमानेका ढोंग करते हैं इसीसे हम पाप-कर्मी बन जाते हैं और हमें हजारों ऐब सूझते हैं। काफिर लोगोंको जिनके साथ मैं [आजकल] रोज काम करता हूँ, मैं अपनेसे बढ़कर मानता हूँ। जो काम वे अज्ञानपूर्वक करते हैं वही हमें ज्ञानपूर्वक करना है। बाह्य रूपसे तो हमारा काम भी काफिरों-जैसा ही होगा। हरिलाल न जाने — इसके अन्य कारण भी इसीमें से निकाल सकोगे।

मेरे खयालसे तुम्हारी पुरुषोत्तमदासकी भी इलाज यही है। शरीर तो बैल अथवा गधे-जैसा है उसे तो जोतते ही रहना चाहिए। ऐसा करनेसे क्रोध आदि दोष दूर हो जाते हैं। मैं इस फार्मसे फीनिक्सकी त्रुटियाँ दूर करनेके उपाय ढूँढ़ता रहता हूँ। इसीलिए यहाँ अमुक नीति रखी है। हरएक अपना-अपना खेत जोते-बोये इसकी अपेक्षा यदि सब मिलकर सारी जमीन जोतें तो हम बहुत जल्दी ज्यादा अच्छी फसल पैदा कर सकते हैं। अभी तो इसके हो सकनेकी सम्भावना मैं नहीं देखता। लेकिन मैंने यह सुझाव दिया था कि जिनके मन आपसमें मिलते हों वे यह कदम उठायें तो अच्छा होगा। यह सुझाव मैंने [खासकर] तुम्हारे और पुरुषोत्तमदासके विषयमें दिया था। इसमें अन्य अनेक विचार निहित हैं। किन्तु मेरे मनमें आजकल क्या चल रहा है, यह बतानेके लिए इतना लिख दिया है।

प्रेसका स्टॉक बेचनेसे होनेवाली आयको नफा नहीं माना जा सकता। उसे तो पूँजीके खातेमें ही डालना चाहिए। बाहरका काम (जॉब वर्क) छोड़ देनेसे पैसेका लाभ हुआ या नहीं इसकी जाँचमें पड़नेकी जरूरत नहीं उसे छोड़ देनेसे एक झंझट खतम हुई।[1]

[गुजरातीसे]

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ४९३४) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

१. पत्र अधूरा है।

है। परन्तु इसका असर बहुत-से भारतीय बच्चोंपर पड़ता है और यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है इसलिए आशा है कि साम्राज्य-सरकार अब हस्तक्षेप करेगी।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्सकी टाइप की हुई दफ्तरी प्रति (सी० ओ० ५५१/७)से।

२५७. पत्र : मगनलाल गांधीको

[जोहानिसबर्ग]
बुधवार [अगस्त ३१, १९१०][1]

चि० मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। छगनलालका भी मिला है।

जन्माष्टमीका व्रत रखा सो ठीक किया। मैंने भी रखनेका विचार किया था किन्तु फिर छोड़ दिया। सोचा कि एकादशीका व्रत ही ठीक पालता रहूँ तो फिलहाल यही बहुत है। ईश्वरका प्रसाद प्राप्त करनेका एक ही सुगम मार्ग है और वह यह कि अभ्यास, विवेकपूर्वक सत्य आदि सद्गुणोंका सेवन करना और अपनी आसक्ति अन्य सब विषयोंसे हटाकर एकके ही प्रति रखना। "कागा सब तन खाइयो और चुगियो मास[2] दो नैना मत खाइयो पिया मिलनकी आस" — ये शब्द प्रेमी और प्रेमिकाके विषयमें कहे गये हैं, परन्तु वास्तवमें वे प्रभु-रूपी प्रीतमसे मिलनेके लिए आत्मा-रूपी प्रेमिकाकी उत्कट भावना बताते हैं। शरीरादि चाहे खा जाये उसकी चिन्ता नहीं। वासना-रूपी काग ज्ञान-रूपी आँखोंको न खा जाये तो प्रीतम मिलेगा ही।

छगनलालके पत्र अभीतक उसकी भीरुता जाहिर करते हैं। गोकुलदासके[3] विषयमें उसने जो लिखा है उससे ऐसा जान पड़ता है कि कहीं तुम और हम सब अपने बड़ोंकी उपेक्षा तो नहीं कर रहे हैं। गोकुलदास देश नहीं जाना चाहता इससे उसका अज्ञान ही प्रकट होता है। उसके लिए वहाँ कोई कर्तव्य तो है नहीं। वह वहाँ परमानन्दभाईकी स्पष्ट आज्ञासे आया हो सो भी नहीं है। फिर, परमानन्दभाई उसे केवल देखना चाहते हैं। फिर भी वह जानबूझकर रुका हुआ है। तुम सब जिन्हें अपने माता-पिताकी सेवा इष्ट है यहाँ बैठकर भी सेवा कर रहे हो। तुम्हारे धन-संग्रहका यही हेतु है। तुम उनके पास रहो तो उन्हें उतना सन्तोष अवश्य होगा किन्तु उसके सिवा उन्हें तुम्हारी और कोई जरूरत नहीं है। मेरा इस बातमें पूर्ण विश्वास है कि जो बालक अपने माता-पिताकी अवहेलना करते हैं वे दुनियामें और कोई भी कर्तव्य करके

१. ऐसा प्रतीत होता है कि यह पत्र उस दिन लिखा गया था जब जन्माष्टमी १९१० में दक्षिण आफ्रिकामें नहीं थी; दूसरे पञ्चांगमें उल्लिखित जन्माष्टमी का दिन रविवार, २८ अगस्तको पड़ी थी।

२. प्रचलित पाठ है "चुन-चुन खइयो मास"।

३. गोकुलदास, गांधीजीके भानजे; परमानन्ददासके पुत्र।

इस तरह रखते हैं? यह सरासर गुलामी है। जो बच्चे गत वर्ष आये वे कहींके न रहे। कोई भी हरामखोर उनके प्रति क्रूरता बरत सकता है। माता-पिता तड़के उठकर पशुओं-जैसी कठिन मजदूरी करने चले जाते हैं, और उनके फूल-से बच्चे मारे मारे फिरते हैं और यदि ये कुछ काम करने लायक दिखें तो उन्हें लगभग १ शिलिंग देकर मजदूरीपर लगा दिया जाता है। हम लोग भी तो गिरमिटियोंके खूनसे बनी हुई शक्कर इत्यादि खाकर मौज उड़ाते हैं। हममें से बहुतेरे समझते हैं कि गिरमिटियोंको यहाँ लानेसे लाभ होता है और [भारतमें] भूखों मरनेके बदले वे नटालमें सुख भोगते हैं। इस प्रकारकी दलील हम अपनेपर लागू करनेकी बात सोच तक नहीं सकते। हम भूखों मर जाना भले स्वीकार कर लें परन्तु हमें गिरमिट-जैसी दासता स्वीकार नहीं करनी चाहिए और अपने बच्चोंको इस प्रकारकी गुलामीमें न डालना चाहिए। इन बच्चोंका ईश्वरके सिवा कोई सहारा नहीं है। आस्तिक भारतीय तो समझ ही सकते हैं कि ऐसी गुलामीके लिए हम भी जिम्मेदार हैं और इस पापके फलस्वरूप अपनेको स्वतन्त्र माननेवाले भारतीय भी अत्याचारके शिकार बनते हैं। यदि हमारी नस-नसमें बल होता अथवा हमारे समझानेमें शक्ति होती तो हम सोते हुए भारतीयोंको उनकी घोर निद्रासे जगाते और समाजसे गिरमिट प्रथाको फौरन बन्द करानेके लिए उपयुक्त और कारगर कदम उठानेका अनुरोध करते। कदम उठानेका यही उत्तम अवसर है। जो लोग संघ-संसद (यूनियन पार्लियामेंट) में जाना चाहते हैं उनके पास हम नेताओंकी सहियोंसे युक्त इस आशयका पत्र भेज सकते हैं कि गिरमिट प्रथा तुरन्त बन्द होनी चाहिए। हम यकीन दिलाते हैं कि गिरमिट प्रथाके बन्द होते ही भारतीयोंके कष्ट समाप्त होनेमें देर न लगेगी।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन २७–८–१९११

२५६. तार द० आ० ब्रि० भा० समितिको[1]

जोहानिसबर्ग
अगस्त २९, १९११

मजिस्ट्रेटका फैसला कि जो नाबालिग ट्रान्सवालमें नहीं जन्मे और जो १९०८ का अधिनियम लागू होनेके समय वहाँके निवासी नहीं थे उन्हें एशियाई अधिनियम संरक्षण नहीं देता। मामला सर्वोच्च न्यायालयके सामने जा रहा

१. यह श्री एल० डब्ल्यू० रिच द्वारा उपनिवेश-कार्यालयको ३०–८–१९११ को भेजा गया था।

२. छोटाभाईके बेटे मुकदमेके मामलेमें मजिस्ट्रेट श्री जॉर्डनने फैसला सुनाया था कि जिसके पंजीयन प्रमाणपत्रमें जिसका नाम दिया होता कोई अर्थ नहीं है और उसको पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र देनेका कोई अधिकार नहीं मिलता और न जिसका अधिवास-प्रमाण अनुमतिपत्र ही जारी किया जा सकता है। इसी आधारपर लड़केकी अपील खारिज कर दी गई और निर्वासनका हुक्म जारी किया गया।

श्री दादाभाई नौरोजी भारतीयोंमें ब्रिटिश संसदके सबसे पहले सदस्य थे। उनका जन्म सितम्बर ४ १८२५ को बम्बई नगरमें हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा एलफिन्स्टन स्कूल और कॉलेजमें हुई और २९ वर्षकी अवस्थामें वे गणित तथा भौतिक विज्ञानके प्रोफेसर बना दिये गये। यह सम्मान पानेवाले पहले भारतीय भी वे ही थे। सन् १८५५ में श्री नौरोजी इंग्लैंडमें स्थापित होनेवाली प्रथम भारतीय व्यावसायिक संस्थाके एक साझेदारके रूपमें इंग्लैंड गये। लन्दनके यूनिवर्सिटी कॉलेजने उनको गुजरातीका प्रोफेसर नियुक्त करके सम्मानित किया। श्री नौरोजीने भारतके लिए जो अनेक सुविधाएँ प्राप्त कीं उनमें से एक थी १८७० से भारतीयोंको प्रशासनिक सेवा (सिविल सर्विस) में प्रवेश करनेकी अनुमति। सन् १८७४ में वे बड़ौदाके प्रधानमन्त्री हुए और उसके एक वर्ष बाद ही वे बम्बई निगम और नगरपालिका परिषद्के सदस्य चुन गये। इस सस्थाकी उन्होंने पाँच वर्ष तक बहुमूल्य सेवा की। श्री नौरोजी १८८५ से १८८७ तक बम्बई विधान-परिषद्के सदस्य रहे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने १८८६, १८९३ और फिर १९ ६ में अध्यक्षपदपर चुनकर उनको सम्मानित किया। श्री नौरोजी लन्दनके सेन्ट्रल फिन्सबरी निर्वाचन क्षेत्रके उदारदलीय प्रतिनिधिके रूपमें १८९२ से १८९५ तक ब्रिटिश लोक-सभामें रहे और भारतीय व्यय इत्यादिसे सम्बन्धित शाही आयोग (रॉयल कमीशन) के सदस्यके रूपमें उन्होंने अपने देशके लिए काफी काम किया। सन् १८९७ में उन्होंने वेल्बी आयोगके सामने बयान दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने जो ब्रिटिश समिति स्थापित की थी उसके वे प्रारम्भसे ही एक उद्यमशील सदस्य और कर्मठ कार्यकर्ता रहे। श्री दादाभाई नौरोजीने जो पुस्तकें लिखी वे ये हैं इंग्लैंड्स डयूटी टु इंडिया एडमिशन ऑफ एजूकेटेड नेटिव्स इनटु द इंडियन सिविल सर्विस पावर्टी ऐंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया। यह अन्तिम पुस्तक उनकी कृतियोंमें कदाचित् सर्वाधिक प्रसिद्ध है। सन् १९ ६ में भारतीय दादाभाईने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी अध्यक्षता करनेके लिए स्वदेश-यात्रा की। इसमें उन्हें जो परिश्रम करना पड़ा वह उन जैसे लौह-शरीर और अदम्य उत्साहशील व्यक्तिके लिए भी बहुत अधिक सिद्ध हुआ। सन् १९ ६ के कलकत्ता अधिवेशनके बाद श्री दादाभाईने सार्वजनिक जीवनसे लगभग अवकाश ले लिया और सन् १९ ७ में वरसोवामें जाकर बस गये। वरसोवा बम्बईमें मछुओंका एक छोटा-सा गाँव है। वहाँ बैठे हुए वे अब भी भारतके भविष्यको बनाने अथवा बिगाड़नेवाली घटनाओंको गहरी दिलचस्पीके साथ देखा करते हैं। उन्हें जो भारतके पितामह कहकर सम्मानित किया जाता है वो निःसन्देह सर्वथा उचित है।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन १-९-१९११

१ पॉवर्टी ऐंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया ।

नहीं दिखा सकते। तुम्हारे या छगनलालके व्यवहारमें मैं माता-पिताकी सेवाकी इस वृत्तिके विरुद्ध कुछ नहीं पाता। अतः मैं निश्चिन्त हूँ।

छगनलालने प्रदर्शनीके बारेमें जो लिखा है, वही छाप सबपर पड़ी है। यह सोनेका मृग है। सीताजीका मन जब ऐसे मृगके प्रति ललचा गया तब भला हमारी क्या चलाई? यह चमक-दमक पश्चिमकी सभ्यताकी कृपा है। वह हमें मोहित न कर पाये हमारी जीत इसीमें है। मेरे कहनेका आशय यह नहीं है कि छगनलाल मोहमें पड़ गया है परन्तु उससे उसे चकाचौंध जरूर हुई है। और शुरू-शुरूमें सभीका यही हाल होता है।

सन्तोकको न भेजनेकी छगनलालकी सलाहसे मैं सहमत हूँ। मेरा ऐसा खयाल है कि वह देशमें सुखी न होगी। हमारी ऐसी करुणाजनक स्थिति है। वहाँ उसे जो आत्मिक और शारीरिक स्वतन्त्रता प्राप्त है, वह उसकी स्थितिकी स्त्रियोंके लिए देशमें सुलभ नहीं है। फीनिक्समें रहते-रहते उसका मन परिष्कृत होकर दृढ़ हो जाये उसमें इतना साहस भी आ जाये कि वह अपने विचारों और व्यवहारकी — जो शुद्ध है — निडर होकर देशमें भी रक्षा कर सके तभी उसे देशमें अच्छा लगेगा। और तब उसका वहाँ रहना देशके लिए कल्याणकारी होगा और वह देशकी तथा अपनी आत्माकी सेवा करेगी। परन्तु मेरा खयाल है कि अगर चंचीकी तरह ही सन्तोकके लिए भी आग्रह किया जा रहा हो तो उसे जाने देना ठीक होगा। वेणी[1] अपने प्रत्येक पत्रमें लिखती है कि भारतमें उसकी स्थिति ऐसी है मानो वह किसी कारागारमें पड़ी हो। यह बात स्त्रियोंपर ही लागू होती हो सो नहीं है।

इस पत्रका कोई भी भाग परोक्ष रूपसे भी छगनलालपर प्रकट न करना क्योंकि उससे मनस्ताप होनेकी सम्भावना है। मैं उसके पत्रोंपर विचार करता ही रहता हूँ। जब आवश्यक समझूँगा मैं स्वयं ही उसे लिखूँगा। मैं जो आलोचना करता हूँ सम्भव है, वह गलतफहमीका परिणाम हो। जैसा हो तो भी उसकी विचारधारामें कोई व्यवधान नहीं होने देना चाहिए क्योंकि छगनलालके विषयमें मेरा यह विश्वास तो है ही कि किसी भी मामलेमें वह अपनी ही बुद्धिके द्वारा ठीक रास्तेपर आ जायेगा।

तुमको मैंने विस्तारसे इसीलिए लिखा है कि तुम्हारा मन किसी प्रकारसे क्षुब्ध अथवा खिन्न न हो।

आनेवालेने मुझे यह नहीं बताया था कि घड़ी टिपनिसकी है। उसने कहा था कि यह तुम्हारी भेजी हुई है। इसीलिए मैंने [जोहानिसबर्गकी चिट्ठीमें] उसका नाम नहीं लिया। अगर तुमने वहाँ अबतक संशोधन न किया हो तो मैं अगले सप्ताहमें संशोधन कर दूँगा। ताम्बिनायडूका भेजा सामान नहीं मिला है। मैं पता लगाऊँगा। मुझे पता लगता है कि डेमरेज भरना पड़ेगा। उन्होंने मुझे यह भी सूचित नहीं किया कि क्या-क्या सामान है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ४९१५) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

१. फीनिक्सके प्रमुख भारतीय और सत्याग्रही श्री गौरीशंकर व्यासकी पत्नी।

समाप्त होनेसे पहले जनरल बोथा और उनके सहकर्मी जिनका भाग्य अभी अधरमें ही लटक रहा है, कोई निश्चित कदम नहीं उठा सकते। इस बीच सत्याग्रहियोंको यह जानकर और अधिक बल मिलेगा कि लॉर्ड ऐम्टहिल और उनकी समिति[1] उनके हितोंके प्रति जागरूक हैं और साम्राज्यकी राजधानी [लन्दन] का लोकमत उनके पीछे है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-९-१९१

२६१ गिरमिटिया मजदूर

रैंड डेली मेल ने एक बहुत ही सुन्दर सुझाव दिया है। वह यह है कि मतदाता प्रत्येक उम्मीदवारसे प्रतिज्ञा करवायें कि वे भारतसे गिरमिटिया मजदूरोंका आना तुरन्त बन्द करवायेंगे। जबतक यह कलंक बना रहेगा तबतक ट्रान्सवालसे मुट्ठी-भर भारतीयोंको बाहर निकालनेका यत्न करना गुड़ खाकर गुलगुलोंसे परहेज करने जैसा होगा। गिरमिटिया मजदूरोंका आवागमन पूर्णतया रोकनेका आग्रह करनेमें रैंड डेली मेल का उद्देश्य चाहे जो हो उसके निष्कर्षसे सहमत होनेमें किसी भी भारतीयको आपत्ति नहीं हो सकती।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-९-१९१

२६२ भर्त्सना

रैंड डेली मेल ने अपने एक अग्रलेखमें गिरमिटिया मजदूरोंके आनेकी प्रथाको पूर्णतया बन्द करनेका अनुरोध किया है। इसका जवाब श्री हैगरने एक पत्र द्वारा इस अखबारको भेजा है। श्री हैगर हालमें ही उस आयोगके सदस्य बना दिये गये हैं जो गिरमिटिया मजदूरोंके प्रश्नपर विचार करनेके लिए नियुक्त किया गया है। श्री हैगर लिखते हैं

> एक यह बात आयोगके ध्यानमें बार-बार लाई गई है कि नेटालमें पैदा हुआ भारतीय मजदूरके रूपमें निकम्मा है। वह फुटबाल खेलेगा, अखबार बेचेगा या दफ्तरमें मौजी बाबूगीका काम करेगा; परन्तु जिसमें कुछ करना होता है इस तरहके किसी कामका जिम्मा वह नहीं लेगा। पढ़े-लिखे भारतीयोंने स्वीकार किया है कि नेटालमें पैदा हुए भारतीयोंको प्राथमिक शिक्षा मजदूरीकी

१. दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति।

२५९. पितामह चिरंजीवी हों

कल भारतके पितामह और भारतीय राष्ट्रीयताके जनक श्री दादाभाई नौरोजीकी ८६ वीं वर्षगाँठ है। प्रत्येक वर्षके साथ हम उस दिनके और निकट पहुँचते चले जाते हैं जब हमें उनके पार्थिव शरीरसे बिछुड़ना पड़ेगा। उनका सम्मान करनेका सर्वोत्तम मार्ग हमारे लिए यही है कि हम उनके आदर्श जीवनका अनुकरण करें और अपना सर्वस्व मातृभूमिकी सेवामें लगा दें। प्रथम पृष्ठपर हम इस वयोवृद्ध देशभक्तकी संक्षिप्त और सचित्र जीवनी दे रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-९-१९११

२६०. लन्दनकी बृहत् सभा

गत १ अगस्तको लन्दनमें जो बृहत् सभा हुई थी उसका विवरण[1] अब मिल गया है। उसका सभापतित्व श्री मंचरजी भावनगरीने किया जो उचित ही था क्योंकि प्रारम्भसे ही वे इस संघर्षमें प्रमुख भाग लेते रहे हैं। श्री रिच और उनके सहायकोंके अथक प्रयत्नोंके फलस्वरूप ही सभा इतनी सफल हुई। वक्ताओंके[2] नाम देखनेसे पता चलता है कि सभा कितनी अधिक प्रातिनिधिक थी। सर मंचरजीने [सभाके] प्रस्ताव[3] लॉर्ड क्रू और लॉर्ड मॉर्लेके पास भेज दिये हैं। रायटरका समाचार है कि साम्राज्य-सरकार अभी भी संघ-सरकारके साथ लिखा-पढ़ी कर रही है। श्री रिचने जनरल बोथासे अपील की है कि संघ संसदका अधिवेशन शुरू होनेसे पहले-पहले वे इस संघर्षको समाप्त कर दें। अब देखना है कि अगला महीना सत्याग्रहियोंके लिए क्या लाता है। हम मानते हैं कि चुनाव

१. इस विषयपर रैवेड हाउसमें की गई इस सभाका विवरण २-९-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित हुआ था।

२. वक्ताओंमें शेख हुसैन किदवाई, सम्पूर्ण भी पारसी संसद-सदस्य, सर मंचर के मिलन, विलियम् वाल आदि थे।

३. पहले प्रस्तावमें दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी शिकायतोंका ज़िक्र करते हुए भारतीयोंको निर्वासित करके भौगोलिक दृष्टिसे भारत भेजनेका ज़ोरदार विरोध किया गया था; दूसरे प्रस्तावमें लॉर्ड क्रू से संरक्षणके लिए अपील की गई थी; तीसरे प्रस्तावमें लॉर्ड मॉर्लेसे अपील की गई थी कि जबतक मौजूदा कठिनाइयोंका निवारण न हो तबतक भारतसे और प्रवासन न होने दिया जाये; चौथेमें शिकायतें सुलझानेके लिए बहादुर बहनों और भाइयोंके लिए ... सत्याग्रह और बलिदानका समर्थन था और पाँचवें प्रस्तावमें निश्चय किया गया था कि प्रस्तावोंको उपनिवेश-कार्यालय भारत कार्यालय (इंडिया ऑफिस) और दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति भेजा जाये।

समाप्त होनेसे पहले बनरल बोथा और उनके सह-मन्त्री जिनका नाम अभी अधरमें ही लटक रहा है, कोई निश्चित कदम नहीं उठा सकते। इस बीच सत्याग्रहियोंको यह जानकर और अधिक बल मिलेगा कि लॉर्ड ऍम्टहिल और उनकी समिति[1] उनके हितोंके प्रति जागरूक हैं और साम्राज्यकी राजधानी [लन्दन] का लोकमत उनके पीछे है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ३-९-१९११

२६१ गिरमिटिया मजदूर

रैंड डेली मेल ने एक बहुत ही सुन्दर सुझाव दिया है वह यह है कि भारतीय प्रत्येक उम्मीदवारसे प्रतिज्ञा करवायें कि वे भारतसे गिरमिटिया मजदूरोंका आना तुरन्त बन्द करवायेंगे। जबतक यह कलंक बना रहेगा तबतक ट्रान्सवालसे मुट्ठी-भर भारतीयोंको बाहर निकालनेका यत्न करना युद्ध जाकर गुब्बारोंसे परहेज करने जैसा होगा। गिरमिटिया मजदूरोंका आव्रजन पूर्णतया रोकनेका आग्रह करनेमें रैंड डेली मेल का उद्देश्य चाहे जो हो उसके निष्कर्षोंसे सहमत होनेमें किसी भी भारतीयको आपत्ति नहीं हो सकती।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-९-१९११

२६२ भर्त्सना

रैंड डेली मेल ने अपने एक अग्रलेखमें गिरमिटिया मजदूरोंके आनेकी प्रथाको पूर्णतया बन्द करनेका अनुरोध किया है। इसका जवाब श्री हैमरने एक पत्र द्वारा इस अखबारको भेजा है। श्री हैमर हालमें ही उस आयोगके सदस्य बना दिये गये हैं जो गिरमिटिया मजदूरोंके प्रश्नपर विचार करनेके लिए नियुक्त किया गया है। श्री हैमर लिखते हैं

> एक यह बात आयोगके ध्यानमें बार-बार लाई गई है कि नेटालमें पैदा हुआ भारतीय मजदूरके रूपमें निकम्मा है। वह पुस्तपाल बनेगा, अखबार बेचेगा या दफ्तरमें नीची श्रेणीका काम करेगा; परन्तु जिसमें कुछ करना होता है इस तरहके किसी कामका जिम्मा वह नहीं लेगा। बड़े-बड़े भारतीयोंने स्वीकार किया है कि नेटालमें पैदा हुए भारतीयोंको प्राथमिक शिक्षा मजदूरीकी

१. दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति।

बुद्धिसे निकम्मा बना देती है। खेतीके काममें उनसे कोई आशा नहीं की जा सकती।

श्री हैगरका भारतीय इतनी अच्छी तरह जानते हैं कि वे उनके इन शब्दोंको कोई बड़ा महत्त्व नहीं देंगे। उन्होंने पहले भी इसी तरहके इल्जाम इस कौमपर लगाये थे जिन्हें वे सिद्ध नहीं कर सके थे। लोग इस बातको अभी भूले नहीं हैं। परन्तु कभी-कभी हम अपने कट्टर विरोधियोंसे भी बहुत-कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हमने ऊपर जो वाक्य उद्धृत किये हैं उनमें थोड़ी सचाई भी है। मजेकी बात है कि हालमें ही हमें एक संवाददाताका पत्र मिला है जिसमें कहा गया है कि हम इस पत्रमें नियमित रूपसे भारतीय खिलाड़ियोंके समाचार दिया करें। हम खेलोंके विरुद्ध नहीं हैं। और यदि हमारा पत्र लगभग पूरी तरह दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके संघर्षके लिए समर्पित न होता और यदि खिलाड़ी भारतीयोंकी ओरसे हमें पर्याप्त समर्थन मिला होता तो नियमित रूपसे खेलोंके समाचारोंके लिए कुछ स्थान रखनेको हम तैयार न होते सो बात नहीं है। परन्तु हम अपने इन नौजवान मित्रोंसे पूछना चाहते हैं कि आज वे खेलोंमें जितना समय और ध्यान देते हैं क्या उतना ध्यान उन्हें इसपर देना चाहिए? सच तो यह है कि हमारे आसपास जो कुछ हो रहा है उसे जो भारतीय जानते हैं उनका मन खेलोंकी तरफ जा ही नहीं सकता। आजके शौकिया (फैशनेबल) खेलोंके बगैर भी हमारे पूर्वजोंका काम बड़ी अच्छी तरह चलता था। शरीरको सुदृढ़ बनानेके लिए जो खेल खेले जाते हैं उनका तो कुछ उपयोग है। परन्तु हम सुझाना चाहते हैं कि खेतीबारी भारतीयोंका ही नहीं सारी मानव-जातिका सनातन पेशा है वह फुटबाल क्रिकेट और दूसरे तमाम खेलोंसे भी अच्छा खेल है। इसके अलावा वह उपयोगी गौरवशाली और धन देनेवाला है। फुटबाल और क्रिकेट उन लोगोंके लिए अच्छे खेल हो सकते हैं जिन्हें प्रतिदिन लिखने-पढ़नेका मानसिक नीरस परिश्रम करना होता है। परन्तु किसी भारतीयको इसकी जरूरत नहीं है। इसलिए अपने इन नौजवान खिलाड़ी मित्रोंको हमारी सलाह है कि वे श्री हैगरके शब्दोंका बुरा न मानें और कारकुनी अखबार बेचने आदिके तिरस्कार-युक्त कामको छोड़कर स्वतन्त्र और पुरुषोचित कृषि-कार्य अपनायें। उनके सामने श्री जोजफ रायप्पनका ज्वलन्त उदाहरण है, जिन्होंने बैरिस्टर होनेपर भी फेरी लगानेका काम किया और बादमें सत्याग्रह-आश्रममें[1] शरीर-श्रम करते रहे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १–९–१९११

१. टॉल्स्टॉय फार्म।

२६३ विलायतकी सभा

विलायतमें ट्रान्सवालकी लड़ाईके सम्बन्धमें जो सभा हुई और लॉर्ड-सभामें लॉर्ड ऍम्टहिलने जो चर्चा आरम्भ की थी उसका विवरण अब मिल गया है। ये दोनों बातें हमारे लिए बहुत उत्साहवर्धक हैं। उपर्युक्त सभाके सभापति सर मंचरजी भावनगरी थे। ये महोदय प्रारम्भसे ही हमारी बड़ी सहायता करते आये हैं इसलिए उनका सभापति होना उपयुक्त ही था। न्यायमूर्ति (जस्टिस) अमीर अली और सर चार्ल्स श्वूसने इस सभाको जो सन्देश भेजे थे वे जानने योग्य हैं। सभामें प्रत्येक पक्ष तथा प्रत्येक समाजके नेता उपस्थित थे। इन नेताओंके भाषण भी ओजस्वी और प्रभावोत्पादक थे। इस सबसे हम समझ सकते हैं कि विलायतमें हमारे संघर्षको अच्छा समर्थन मिल रहा है। परन्तु हमारी अपनी शक्तिके आगे इस समर्थनका कोई महत्त्व नहीं है। यदि हममें शक्ति न हो तो विलायतमें मिलनेवाला समर्थन हमारी निर्बलताका ही द्योतक होगा। सच तो यह है कि अगर लॉर्ड ऍम्टहिल हमारे लिए लड़ रहे हैं, सर मंचरजी जुटे हुए हैं और श्री रिच अथक परिश्रम कर रहे हैं — तो यही समझकर कि हम लोग कष्ट-सहन करते हैं हमने देशकी खातिर गरीबी अपनाई है, और अपनी इज्जतके लिए हम मौतकी भी परवाह नहीं करते। इस सभाकी सफलताका श्रेय श्री रिच और उनके स्वयंसेवक दलको है और इसलिए इसके लिए वे ही बधाईके पात्र हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ३–९–१९१

२६४ पत्र छगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म

भाद्रपद सुदी १ [सितम्बर ४, १९१॰][1]

चि० छगनलाल,

यह पत्र मैं दुःखी मनसे लिख रहा हूँ। तुम्हारा हिन्दुस्तान जाना ठीक नहीं हुआ ऐसा लगता रहता है।

डॉक्टर [मेहता]के नाम लिखे गये तुम्हारे पत्रको पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ। तुम्हें क्षय रोग हो जाये यह मैं कैसे सहन कर सकता हूँ? यह सोचकर कि तुम अभी वहीं [इंग्लैंडमें] हो यह पत्र लिखा है। अगर तुम स्वदेश चले गये होगे तो मॉड[2] तुम्हें यह पत्र वहाँ भेज देगी।

१. यह पत्र छगनलाल गांधीको दक्षिण आफ्रिकासे इंग्लैंडके दिनोंमें सन् १९१ में लिखा गया था।

२. मॉड पोलक, श्री एच० एस० एल० पोलककी बहन, जो एल० डब्ल्यू० रिचकी अनुपस्थितिमें लन्दन स्थित दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिकी सचिवके रूपमें काम कर रही थीं।

तुम जैसी मर्जी हो वैसा करना। मैं जो नीचे लिख रहा हूँ उसे तुम मेरी सलाह मात्र मानना। मैं तुम्हारे स्वास्थ्यको सुधरा हुआ देखना चाहता हूँ।

स्वास्थ्यका ही विचार करते हुए मुझे लगता है कि तुम्हारा फीनिक्समें आना उत्तम रहेगा। वहाँ तुम्हें खुली हवा मिल सकेगी। बढ़ईका काम क्षय रोगीके लिए अच्छा है उसे भी तुम फीनिक्समें कर सकोगे। इसके अतिरिक्त यह मोह भी है कि मैं जरूर तुम्हारी मदद कर सकूँगा और तुम्हारी कुछ देखभाल भी कर सकूँगा। पर यह तभी सम्भव है, जब तुम फीनिक्समें रहो। इसके अलावा अगर भगवानकी मर्जी हुई तो तुम इस फार्ममें रह सकोगे। वहाँकी आबोहवा तो फीनिक्ससे भी अच्छी है। तुम-जैसे लोगोंके लिए तो ब्रह्मचर्यकी विशेष आवश्यकता है और उसका पालन यहाँ सहज ही हो सकता है। अतः मुझे लगता है कि तुम्हारा यहाँ आ जाना ठीक रहेगा। यहाँ आराम न हो तो तुम स्वदेश चले जाना। यदि स्वदेश जानेका ही आग्रह हो तो मैंने डॉक्टर [मेहता] को लिखा है कि तुम्हें हर महीने रु[1] देते रहें। वैसे भी तुम बम्बईमें रहकर मेरी देखरेखमें सार्वजनिक कार्य कर सकते हो। अभी तो मुख्य कार्य वहाँकी अकालके सम्बन्धमें ही होगा। ऐसा करनेसे तुम जीविकाकी ओरसे निश्चिन्त हो जाओगे और अपना शेष जीवन सहज ही परमार्थमें व्यतीत कर सकोगे। रोग रहे या न रहे तुम्हारा जीवन वैद्य-अस्पतालमें व्यतीत हो मैं नहीं चाहता हूँ।

और भी बहुत-कुछ लिखनेको है लेकिन लिखनेका मन नहीं होता। तुम स्वदेश पहुँच गये हो तो भी यहाँ आनेकी मेरी सलाहको स्थिर समझना। यहाँ आनेका विचार न हो तब भी तुम डॉक्टर [मेहता] के विषयमें कही गई मेरी बातपर विचार करना।

लेकिन अगर इन दोनोंमें से तुम्हें एक भी रास्ता पसन्द न आये और तुम स्वतन्त्र रूपसे ही जीविकोपार्जन करना चाहो तो मैं दखल नहीं दूँगा ऐसा समझना। जिस किसी मार्गके अपनानेसे तुम्हारा मन विशेष प्रसन्न रहे वही मार्ग तुम अपनाओ यही मेरी इच्छा है।

आनेवाले सप्ताहमें मैं तुम्हारे पत्रकी उसी प्रकार प्रतीक्षा करूँगा जिस प्रकार चातक वर्षा ऋतुकी बाट देखता रहता है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ४९११) से।

सौजन्य : छगनलाल गांधी।

१. रकम नहीं दी गई है।

२६५ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [सितम्बर ५, १९११]

नाबालिग

श्री छोटाभाईके पुत्रके मुकदमेसे बहुत मिलता-जुलता श्री सैयद हाजी खान मुहम्मदके पुत्रका एक मुकदमा प्रिटोरियामें पेश हुआ है। इसमें भी मजिस्ट्रेटने अपना फैसला [बालकके] विरुद्ध दिया है। सम्भव है ये दोनों मामले सर्वोच्च न्यायालयमें जायें।

जनरल बोथा तथा अन्य लोगोंके वक्तव्य

इस [प्रश्न] से सम्बन्धित जनरल स्मट्स, जनरल बोथा और श्री डी' विलियर्सके वक्तव्योंका[1] सार मैंने 'इंडियन ओपिनियन' के अंग्रेजी विभागको भेजा है। इन तीनोंने ही अपने व्याख्यानों या लेखोंमें नाबालिग बालकोंकी स्थितिकी चर्चा की है। परन्तु इनमें से किसीने यह नहीं कहा कि इन बालकोंको बालिग होनेपर, निर्वासित किया जा सकता है। जनरल बोथाने अपने लिखित वक्तव्यमें कहा है कि नाबालिगोंके बारेमें एशियाइयोंकी माँग सरकारने स्वीकार कर ली है। यही बात जनरल स्मट्सने अपने भाषणमें कही है। एशियाइयोंने अपने बच्चोंका निर्वासन स्वीकार करनेकी बात स्वप्नमें भी नहीं सोची थी। उपर्युक्त तीनों व्यक्तियोंमें से भी कोई ऐसा नहीं कहता। कानूनका यह मनमाना अर्थ तो ट्रान्सवाल सरकारने अब लगाया है।[2]

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १०-९-१९११

२६६ छोटाभाईका मुकदमा

श्री छोटाभाईके लड़केका मुकदमा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसका विवरण इन स्तम्भोंमें[3] पहले दिया जा चुका है। ट्रान्सवालके समूचे भारतीय समाजपर उसका असर पड़ता है। श्री सैयद हाजी खान मुहम्मदके लड़केका मामला भी इसी प्रकारका है। नाबालिगकी उम्रमें आये हुए लड़के अगर ट्रान्सवालमें नहीं रह सकते तो सैकड़ों भारतीय माता-पिताओंको ट्रान्सवाल छोड़ देना पड़ेगा क्योंकि यदि सोलह सालके हो जानेपर बच्चोंको जबरदस्ती वालिद कहकर उनके स्वाभाविक संरक्षकोंके बगैर भारतमें

१. देखिए परिशिष्ट ७।
२. देखिए "एक और मिरगाजाल" पृष्ठ ३१९-२।
३. देखिए "ट्रान्सवालकी स्थिति" इंडियन ओपिनियन २७-८-१९११।

निर्वासित कर दिया गया तो क्या उनके माता-पिता इतने कठोर होंगे कि अपने बच्चोंको छोड़कर ट्रान्सवालमें रह जायें? हम तो ऐसा सोच ही नहीं सकते। माता और पिता अपने गोदीके बच्चोंको लेकर ट्रान्सवाल आये थे। अब मान लीजिए कि वे बच्चे १६ वर्षके होने तक कभी भारत नहीं गये और उनके माता और पिता दोनों यहीं ट्रान्सवालमें हैं तो १९०८का कानून बन जानेके बाद अब वे १६ वर्षके बच्चे कहाँ निर्वासित किये जायेंगे? और मान लीजिए कि ट्रान्सवाल-निवासी भारतीय माता-पिताके कोई बच्चा जहाजपर पैदा होता है। यदि वह बच्चा लड़का है तो ट्रान्सवालकी बालिगीकी आयु, अर्थात् सोलह वर्ष का होनेपर उसे कहाँ भेजा जायेगा? सोचा तो नहीं जा सकता है कि ट्रान्सवाल सरकार अधिनियमकी अपनी व्याख्याके सम्भाव्य परिणामोंको देखकर सचमुच दंग रह जायेगी।

परन्तु ऊपर शुद्ध मानवतावादी दृष्टिसे जो विचार किया गया है उसे छोड़ दें। तत्कालीन एशियाई कानूनको पेश करते समय जनरल स्मट्स द्वारा दिया गया भाषण[1] एशियाई परिषद्के बारेमें जनरल बोथाकी टिप्पणी[2] और एशियाई कानूनके सम्बन्धमें (तत्कालीन महान्यायवादी) श्री लिओनर्ड द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन[3] हम अन्यत्र दे रहे हैं। इन सभीसे ज्ञात होगा कि एक शब्द भी उनमें ऐसा नहीं है जिससे यह प्रकट हो कि जो नाबालिग बच्चे ट्रान्सवालमें पैदा नहीं हुए वे यदि कानून जारी होनेके बाद यहाँ आयें तो उनको निर्वासित कर दिया जायेगा। बल्कि उनमें कहा तो यह गया है कि इस सम्बन्धमें एशियाइयोंकी माँग पूरे तौरपर मान ली गई है। एशियाइयोंको कभी यह सन्देह भी नहीं हुआ कि उनके नाबालिग बच्चे बालिग होनेपर निषिद्ध-प्रवासी करार दिये जायेंगे। इस कानूनका चाहे जो अर्थ लगाया जाये परन्तु यहाँ तीन-तीन मन्त्रियों द्वारा दिये गये वचनकी प्रतिष्ठाका प्रश्न भी तो है।

यदि यह मान लिया जाये कि सर्वोच्च न्यायालयका निर्णय हमारे विरुद्ध होगा तब भी प्रश्न इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसे सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयसे ही तो निर्णीत नहीं माना जा सकता। हम उसके निर्णयकी पहलेसे कल्पना नहीं करना चाहते। परन्तु हम यह कहे बिना भी नहीं रह सकते कि ट्रान्सवालके भारतीयोंके लिए यह जीवन-मरणका प्रश्न है। हम तो चाहते हैं कि इसे ट्रान्सवालकी ही नहीं बल्कि समस्त दक्षिण आफ्रिकाकी जनताकी प्रतिष्ठाका प्रश्न माना जाये। क्या दक्षिण आफ्रिकाकी जनता गवारा करेगी कि बच्चोंके विरुद्ध इस प्रकार लड़ाई चलती रहे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-९-१९११

१, २ और ३ देखिए परिशिष्ट ७।

२६७. सर्वश्री रिच और पोलक

समाचारपत्रोंमें प्रकाशित तारोंके अनुसार, सर्वश्री रिच और पोलक शीघ्र ही हमारे बीच होंगे। दक्षिण आफ्रिकाके समाजके इन दो मित्रोंने जिस तरह हमारे लिए खून-पसीना एक किया है वैसा हमारे अपने देशवासियोंमें से भी कम लोगोंने ही किया होगा। उन्होंने अपने आपको हमारे ध्येयके साथ एक-रूप कर लिया है। सचमुच वे हमारे संकटके साथी हैं। इन दोनोंके कामकी तुलना करना सम्भव भले ही हो किन्तु कठिन अवश्य है। प्रत्येकने अपने विशेष क्षेत्रमें भरसक काम किया है। श्री रिच लॉर्ड ऍम्टहिलकी समितिके प्राण हैं। श्री पोलकके शानदार कामकी तो बम्बईमें सार्वजनिक रूपसे प्रशंसा भी की गई और प्रोफेसर गोखलेने उन्हें चायका एक चाँदीका सेट भेंट किया।[1] उक्त माननीय सज्जनने सत्याग्रहियोंकी सहायताके लिए ६, पौंडका उल्लेखनीय चन्दा इकट्ठा करनेका श्रेय भी पोलकको ही दिया उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं थी। आशा है कि सर्वश्री रिच और पोलकका समाजकी ओरसे ऐसा स्वागत सत्कार होगा जैसा आजतक हमने किसीका नहीं किया। वे सचमुच इसके पात्र हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १०-९-१९११

२६८. भारतीयोंको सुझाव

१५ सितम्बरको पता चल जायेगा कि दक्षिण आफ्रिकामें निकट भविष्यमें कौन राज्य करेगा — जनरल बोथा भी मेरीमैन या डॉक्टर जेमिसन। सम्भावना तो यह है कि जनरल बोथा राज्य करेंगे। हमारा खयाल है, अबतक हरएक भारतीय समझ चुका होगा कि जनरल बोथाको खुशामदसे सही रिझाया जा सकता।

भारतीय चारों ओर आगसे घिरे हैं। अमेरिकाके कुछ प्रदेशोंके जंगलोंमें ऐसी आग लग जाती है कि वह बुझायें नहीं बुझती। उसे बुझानेके लिए सेनाएँ निकल पड़ती हैं, तिसपर भी उसको बुझाना कठिन होता है। सैकड़ों लोग जल मरते हैं। आस-पासके गाँव उजड़ जाते हैं। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके चारों ओर ऐसी ही आग सुलग रही है। फिर भी हम सचेत नहीं होते। यह हमारे घोर आलस्य और स्वार्थका चिह्न है।

केप टाउनमें अबतक डॉक्टर अब्दुर्रहमान और उनके मित्रोंके प्रयत्नसे भारतीय व्यापारियोंको अनुमतिपत्र मिलनेमें कोई अड़चन नहीं आती थी किन्तु अब स्थिति बदल गई है। परिषदने कुछ क्षेत्रोंमें अनुमतिपत्रोंको देनेसे कतई इनकार कर दिया है। इनका

[1] देखिए "बम्बईमें विदाई भाषण", इंडियन ओपिनियन, १-९-१९११।

विरोध केवल श्री अलेक्ज़ैंडरने किया। श्री क्लिवरमैनने जो कभी हमारे पक्षमें थे कहा कि वाणिज्य-परिषदके प्रतिवेदनके बाद उनकी आँखें खुल गई हैं। दूसरे सदस्योंने भी ऐसे ही भाषण दिये और अनुमतिपत्र नहीं दिये गये।

नेटालके कानूनमें परिवर्तन हुआ है फिर भी लेडीस्मिथमें श्री बोसा-बैसोंको अपने ही मकानके लिए अनुमतिपत्र देनेसे इनकार कर दिया गया है। एस्टकोर्टमें भी ऐसी ही ज्यादती देखी जा रही है।

ट्रान्सवालका तो कहना ही क्या? वहाँ जिन लोगोंने कानूनको स्वीकार कर लिया है उनको अनुमतिपत्र मिल जाते हैं परन्तु यह ज्यादा दिनों तक निभनेवाला नहीं है। जो स्वर्ण-क्षेत्र माना जाता है, उस इलाकेमें तो अनुमतिपत्र मिलता ही नहीं। अन्यत्र भी दूसरे उपायोंसे बाधाएँ खड़ी करके यदि अनुमतिपत्रोंके न देनेकी गुंजाइश होती है तो वे नहीं दिये जाते। यह भारतीय व्यापारियोंको ध्यानमें रखना चाहिए कि संघ-संसद बन जानेपर उन्हें व्यापारिक अनुमतिपत्रोंके विषयमें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा।

इस बीच हम लोग क्या कर रहे हैं? हमें दुःखके साथ कहना चाहिए कि हम एक तो आलस्य और विलासमें समय खोते हैं दूसरे, अपना स्वार्थ पूरा हुआ नहीं कि दूसरोंकी परवाह करना छोड़ देते हैं तीसरे, आपसमें ईर्ष्या करके एक-दूसरेसे लड़ते हैं और चौथे कभी-कभी हिन्दुओं और मुसलमानोंमें भी छोटे-मोटे झगड़े देखनेमें आते हैं। यदि ये झगड़े नहीं होते तो हिन्दू-हिन्दू और मुसलमान-मुसलमान आपसमें लड़ते हैं। इस प्रकार किसीको किसीकी परवाह नहीं है।

यदि हमारे चारों ओर ऐसी आग लगी हुई न होती तो ऐसी स्वार्थपूर्ण और अस्त-व्यस्त स्थितिके सम्बन्धमें हमारा अधिक कहना कदाचित् उचित न माना जाता और हम कहते भी तो हमारी बातपर कोई कान न देता। थोड़ा-सा भी विचार करनेपर भारतीय देख सकेंगे कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना वर्तमान स्वार्थ ही देखता रहे तो कुछ ही समयमें प्रत्येक व्यक्तिपर संकट आ जायेगा। अब यह बात समझानेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि समाजका हित ही प्रत्येक भारतीयका हित है।

हमें लगता है कि पहला वार व्यापारियोंपर होगा। कुछ भारतीय व्यापारी सोचते होंगे कि यदि हम अन्य भारतीयोंसे अलग रहें तो हमें हानि नहीं पहुँचेगी। स्पष्ट ही यह बिलकुल ओछी बुद्धिकी बात है। जबसे भारतीयोंके विरुद्ध लड़ाई आरम्भ हुई है तभीसे गोरोंकी दृष्टि भारतीयोंके व्यापारपर लगी है। और वे परेशान भी केवल व्यापारियोंको करते हैं। अलबत्ता कुछ स्वार्थी गोरे उन्हें अपने ही हाथों अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मारनेके लिए कहते हैं अर्थात् यह सलाह देते हैं कि वे लोग अलग रहें तो उनको हानि नहीं पहुँचेगी। फिर कुछ यह भी कहेंगे कि दूसरोंके मामलोंमें न पड़ें तो हानि नहीं होगी। तभीसे ऐसी बात कही जाती है। तब क्या इससे यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि किसीको हानि न पहुँचेगी? सच तो यह है कि यदि वे हम लोगोंको फुसलाकर और झूठा लालच दिखाकर हमारा नाश कर सकें तो वे इसे तरजीह देंगे। यदि इस रीतिसे नहीं कर सकें [तो फिर किसी] [दूसरी रीतिसे] करेंगे।

१ और २. देखिए "लंदनमें भारतीय" पृष्ठ ३२७।

ऐसे जालसे बचनेका रास्ता एक ही है। वह यह कि हम लोग सचेत रहें, आलस्य छोड़ें, स्वार्थ त्यागें और अपने भीतरी झगड़े छोड़कर समुचित उपाय करें।

इन उपायोंमें अर्जियाँ भेजना, लगा हो तो अदालतमें जाना, इंग्लैंडमें जितना कहा जा सके उतना कहना — ये सब तो ठीक ही हैं परन्तु अकसीर इलाज एक ही है — सत्याग्रह। उसके बिना सब बेकार है। सत्याग्रह वास्तवमें स्वबल है। और स्वबलके बिना अन्य किसी भी बलके सहारे हम लोग अधिक देर तक टिक ही नहीं सकेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-९-१९११

२६९. पत्र : छगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म

भाद्रपद सुदी ७ [सितम्बर ११, १९११][1]

चि० छगनलाल,

तुम्हारे विषयमें तार[2] किये पाँच दिन हो गये। अभीतक उत्तर नहीं आया। इससे अनुमान करता हूँ कि अभी तुम वहीं[3] हो और कुछ तय नहीं कर पाये हो। यहाँ न आनेके जो कारण तुम बताते हो वे सब कच्चे हैं। उनसे पता चलता है कि तुम्हारा मन दुर्बल हो गया है। तुम्हारा शरीर हिन्दुस्तानमें ही दुर्बल हो चुका था। फीनिक्समें तुम्हारी सेवा-शुश्रूषामें तनिक भी कठिनाई नहीं होगी। सम्भव है, वहाँ मेरे रहनेका अवसर भी आये या हो सकता है तुम ही यहाँ आ जाओ। फिर तुम्हारा स्वास्थ्य कुछ ऐसा खराब तो है नहीं कि किसीको सारे दिन तुम्हारे पास बैठना पड़े और तबीयत वैसी हो भी जाये तो जितनी सुविधा फीनिक्समें है उतनी फिलहाल देशमें नहीं है, ऐसा मेरा विचार है। तुम देश जाकर खुशालभाईको कष्ट ही दोगे ऐसा प्रतीत होता है। यदि तुम स्वदेशमें किसी गाँवमें जाना चाहते हो तो फीनिक्समें वह है ही। अगर तुम्हारा मन फीनिक्समें न लगे अथवा फीनिक्स स्वास्थ्यके अनुकूल न पड़े तो तुम सरलतासे भारत जा सकते हो। पैसेकी दृष्टिसे भी तुम्हारा फीनिक्समें ही रहना अधिक उचित है। वैसा करनेसे डॉक्टर [मेहता]को मेहनत नहीं करनी पड़ेगी और तुम्हें भी देशमें दूसरा कोई काम ढूँढ़ते भटकना नहीं पड़ेगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ४९१७) से।

सौजन्य : छगनलाल गांधी।

1. यह पत्र छगनलाल गांधीकी दक्षिण आफ्रिकासे अनुपस्थितिके दिनोंमें सन् १९११ में लिखा गया था।
2. यह उपलब्ध नहीं है।
3. इंग्लैंडमें।

२७० सम्राट्से प्रार्थना

दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय संघने सम्राट्से तार[1] द्वारा प्रार्थना की है कि महामहिम ट्रान्सवालमें सत्याग्रहियोंकी तरफसे हस्तक्षेप करनेकी कृपा करें। यह एक साहस-भरा कदम है। यह तार और उसके साथ ही 'मद्रास मेल' को भेजा गया श्री नटेसनका ओजस्वी पत्र — जिसके उद्धरण हम अन्यत्र दे रहे हैं — देखनेसे जाहिर हो जायेगा कि मद्रासमें इस प्रश्नको लेकर कितनी जागृति है। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के मालिक, श्री बैनेटने तो इतना तक कहा है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके कष्टोंसे जितना भारतकी जनताका मन विचलित हुआ है उतना अन्य किसी प्रश्नसे नहीं। अब 'टाइम्स' के संवाददाताने इस वक्तव्यकी पुष्टि कर दी है। सम्राट्से व्यक्तिगत तौरपर प्रार्थनाएँ विरले ही अवसरोंपर की जाती हैं। संघको प्रार्थनाका कुछ उत्तर तो दिया ही जायेगा। इसके लिए हमें बहुत अधिक राह नहीं देखनी पड़ेगी। उत्तर कुछ भी आये हमें तो सबसे अधिक सन्तोष यह जानकर हो रहा है कि सत्याग्रही जिनके सम्मानके लिए लड़ रहे हैं उनकी इस संघर्षके साथ पूरी और सक्रिय सहानुभूति है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १६-९-१९११

२७१ लड़ाईका जोर

हमने बहुत-से लोगोंको कहते सुना है कि ट्रान्सवालकी लड़ाईमें अब कुछ दम नहीं रहा। हम तो बहुत बार कह चुके हैं कि जबतक एक भी सत्याग्रही [illegible] शेष तबतक हमें यही मानना चाहिए कि संघर्षमें हमारी जीत निश्चित है। सत्याग्रहकी यही कसौटी है।

हमारी इस बातका समर्थन करनेवाले दो तार हमें इस सप्ताह मिले हैं। उनसे पता चलता है कि हमारी मद्रासकी समितिने[1] वहाँ निर्वासित होकर पहुँचनेवाले लोगोंके सम्बन्धमें सम्राट्को तार[2] भेजा है और न्यायकी माँग की है। समिति हमारी सहायता करती रही है। इंग्लैंडके 'टाइम्स' में भारतकी मौजूदा अशान्तिके सम्बन्धमें एक लेख-माला प्रकाशित हो रही है। उसमें कहा गया है कि भारतीयोंको दिये जानेवाले कष्ट अंग्रेजी राज्यके लिए लज्जाजनक हैं। इन दोनोंसे प्रकट है कि ट्रान्सवालकी लड़ाईका

१ देखिए "निर्वासित भारतीयोंकी सम्राट्से अपील" इंडियन ओपिनियन १६-९-१९११।
२ देखिए "[illegible] के विचार" इंडियन ओपिनियन १६-९-१९११।
३ टाइम्स लन्दन [illegible]।
४ देखिए इंडियन ओपिनियन १६-९-१९११।

तेज ज्योति-स्वरूप बना हुआ है। और हमारे लिए भिन्न-भिन्न स्थानोंमें बराबर प्रयत्न किये जा रहे हैं। श्री मेरीमैन जैसे व्यक्तिको भी इस सम्बन्धमें विचार प्रकट करते समय हमारे पक्षमें ही बोलना पड़ा। और, उनके विचारोंके सम्बन्धमें टिप्पणी लिखते हुए ट्रान्सवाल लीडर ने भी न्यायकी माँग की है।

ऐसी सहायताका मिलना हमें प्रोत्साहित करता है और निर्बलोंको भी सबल बनाता है। परन्तु साथ ही हम यह भी कहेंगे कि सत्याग्रह दूसरोंके प्रोत्साहनपर निर्भर नहीं करता। वह तो तलवारकी धार है। उसपर चलनेवाला दूसरोंकी सहायताका विचार करने नहीं बैठता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १७-९-१९११

२७२ सोराबजीकी रिहाई

श्री सोराबजी छूट गये हैं। किन्तु [उन्हें] इससे क्या? संघर्षका दूसरा चरण जबसे आरम्भ हुआ तभीसे उन्होंने अपना अधिकांश समय जेलमें बिताया है। जिस प्रकार नींवपर ही अधिकांश बोझ पड़ता है, उसी प्रकार [संघर्षका] अधिकांश बोझ श्री सोराबजीपर पड़ा और वे उसे उठाते रहे हैं। निःस्वार्थ-भावसे मौन रहकर लड़नेवाले श्री सोराबजी-जैसे रत्न समाजमें कम ही हैं। ऐसे रत्नसे कौमकी शोभा बढ़ती है उसका नाम रोशन होता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १७-९-१९११

२७३ भाषण डर्बनमें[1]

सितम्बर २, १९११

प्रारम्भमें श्री गांधीने ट्रान्सवाल-संघर्षकी वर्तमान स्थितिपर प्रकाश डाला। संघर्षमें यद्यपि मुट्ठी-भर सत्याग्रही ही भाग ले रहे हैं फिर भी संघर्षकी शक्ति कितनी प्रबल है, इसका अनुमान उन्होंने श्रोताओंको कराया। उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि चूँकि निर्वासित किये जानेवाले लोग समस्त भारतीय समाजके लिए संघर्ष करनेवाले सैनिक हैं इसलिए यह जरूरी है कि जब वे डर्बनमें उतरें तब डर्बनके सभी भारतीय उनका हार्दिक स्वागत-अभ्यर्थना करें। उन्होंने कहा, चूँकि श्री पोलकने भी भारतमें महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, इसलिए उनका स्वागत करना भी [भारतीयोंका] कर्तव्य है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-९-१९११

1. कांग्रेसमें हुई भारतीयोंकी एक सभामें।

२७४. भाषण : काठियावाड़ आर्य-मण्डलमें[1]

डर्बन
सितम्बर २०, १९११

श्री गांधी ... उपनिवेशोंमें अन्य भारतीयोंकी पिछली सभामें जो बातें कह चुके थे उन्हीं बातोंपर उन्होंने यहाँ भी प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि डर्बनके सब भारतीयोंका कर्तव्य है कि वे देशसे निर्वासित होनेवालोंका तथा श्री पोलकका हार्दिक अभिनन्दन करें और प्रत्येक मण्डल अपनी ओरसे उन्हें अलग-अलग मानपत्र भेंट करे, प्रीतिभोज दे और उनके स्वागत-समारोहके लिए चन्दा करे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-९-१९११

२७५. एक उल्लेखनीय घटना

रेवरेंड डॉ० रुबुसानाका केप प्रान्तीय परिषदके सदस्यके रूपमें टेम्बूलैंडसे अपने दो प्रतिपक्षियोंके मुकाबलेमें २५ के बहुमतसे चुना जाना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। रंगभेद सम्बन्धी धाराकी दृष्टिसे यह चुनाव संघ-संसदके लिए सचमुच एक चुनौती है। डॉ० रुबुसाना[2] प्रान्तीय परिषदमें तो बैठ सकते हैं, परन्तु संघ-संसदमें नहीं। यह स्पष्ट ही एक ऐसी असंगति है जिसे अगर दक्षिण आफ्रिकियोंको मिलकर भविष्यमें सचमुच एक राष्ट्र बनना है तो दूर किया जाना चाहिए। हम डॉ० रुबुसाना और रंगदार कौमोंको उनकी इस विजयपर बधाई देते हैं। हमारा विश्वास है कि परिषदमें वे ऐसा काम करेंगे जो उनके और जिनका वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं उनके लिए भी गौरवकी बात होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-९-१९११

1. यह सभा पोलक-दम्पती निर्वासित भारतीयोंके मामलेके सम्बन्धमें विचार करनेके लिए बुलाई गई थी।
2. देखिए पिछला शीर्षक।

२७६. बालकके मुकदमेका फैसला

जस्टिस वेसेल्सका फैसला भी छोटाभाईके पुत्रके विरुद्ध हुआ है। यदि यह फैसला कायम रहता है, तो भारतीय समाजकी स्थिति अत्यन्त विषम हो जायेगी और थोड़े ही समयमें उसकी जड़ें उखड़ जायेंगी। इस निर्णयके विरुद्ध अपील दायर कर दी गई है। उसका परिणाम इस टीकाके प्रकाशित होनेके दो या तीन दिनके भीतर ही मालूम हो जायगा। अपील-अदालतका निर्णय कुछ भी हो हमें उससे खास सरोकार नहीं। जस्टिस वेसेल्सकी अदालतके इस मुकदमेका विवरण हम अन्यत्र दे रहे हैं। वह गौरसे पढ़ने लायक है। जस्टिस वेसेल्सका कहना है कि सरकारका यह कार्य अन्यायपूर्ण और अमानवीय है और यदि इस नीतिपर आग्रह रहा तो उसके खिलाफ सम्य संसारमें चीख-पुकार मच जायेगी। सम्य संसार क्या कहता है सो हमें देखना है। परन्तु इतना तो निश्चित है कि जैसा जजने कहा है, सरकारने जुल्म किया है।

यदि बात ऐसी है, तो फिर न्यायाधीशने अपना निर्णय क्यों खिलाफ दिया? हरएकके मनमें यही प्रश्न उठेगा। यह आजकलकी अदालतोंकी अधम स्थितिका सूचक है। अदालतें न्यायकी जगह अन्याय कर सकती हैं। यदि कानूनका शाब्दिक अर्थ उनके न्यायके विरुद्ध पड़ता हो तो भी अदालतें शाब्दिक अर्थका ही अनुसरण करती हैं और उसीको अदालतोंका इन्साफ माना जाता है। दूसरे शब्दोंमें जस्टिस वेसेल्स इन्सानकी हैसियतसे जिस बातको अन्यायपूर्ण ठहराते हैं उसीको न्यायाधीशकी हैसियतसे न्यायो-चित मानते हैं।

इस प्रकारके न्याय अथवा अन्यायके होते हुए हम खामोश नहीं बैठ सकते। स्थान-स्थानपर इस सम्बन्धमें सभाएँ करनी होंगी और प्रस्ताव पास करने होंगे। जबतक इस मामलेका निपटारा सन्तोषजनक रीतिसे न हो जाये तबतक हम निश्चिन्त होकर नहीं बैठ सकते।

निर्णय और रिपोर्टको पढ़नेपर देखा जा सकता है कि ट्रान्सवालके बाहर जन्मे बच्चे १९०७ के कानूनके अन्तर्गत भी ट्रान्सवालमें प्रवेश नहीं पा सकते। इस मुद्देपर ग्रेगरोवस्कीने बहुत लम्बी बहस की किन्तु जस्टिस वेसेल्सका निश्चित मत था कि ऐसे बालकोंको १९०७ के कानूनके अन्तर्गत कोई संरक्षण प्राप्त नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-९-१९११

२७७ पत्र गो० कृ० गोखलेको

फीनिक्स,
नेटाल
सितम्बर १ १९१०

प्रिय प्रोफेसर गोखले

मैं यहाँ पोलकको लेने आया हूँ।[1] कुछ ही दिनोंमें मैं स्थितिके बारेमें आपको लिखूँगा।

यह पत्र बैरिस्टर श्री मणिलाल डॉक्टर एम० ए० का परिचय देनेके लिए लिख रहा हूँ। श्री डॉक्टर कुछ समयसे मारिशसमें वकालत कर रहे हैं। मेरी रायमें वे कोई भी पेशा करनेवाले लोगोंमें उस वर्गमें से हैं जो निजी स्वार्थकी अपेक्षा राष्ट्रीय हित-साधनके लिए ही अपने पेशेका उपयोग करते हैं, या वैसा करनेका प्रयत्न करते हैं। वे एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे कांग्रेस [के अधिवेशन] में जा रहे हैं और आपकी सलाह और आपका मार्गदर्शन उनके लिए बहुमूल्य होगा।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८ १) से।

२७८ रिचका सम्मान

ब्रिटिश भारतीय संघने श्री रिचको मानपत्र देनेका निर्णय करके बहुत उचित कार्य किया है। समितिका काम अच्छा हुआ है। इसका बहुत-कुछ श्रेय उनको जाता है। श्री रिचने अपनी चतुराई, लगन और सचाईसे समितिका नाम उजागर किया है और अब ब्रिटिश सरकारको समितिकी बात सुननी पड़ती है। श्री रिच पहले केप टाउनमें उतरेंगे। वहाँ वे भारतीय समाजके अतिथि होंगे। हमें विश्वास है कि समाज उनका उचित सम्मान करेगा और स्वयं मानका भागी बनेगा। आपके अंकमें श्री रिचका चित्र प्रकाशित किया जा रहा है।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन १–१०–१९११

१. पोलक एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे भारत गये थे और २८ सितम्बर, १९११ को सुल्तान नामक जहाज द्वारा डर्बन वापस पहुँचे थे।

२७९. गिरमिटिया भारतीयोंकी दुर्दशा

हमारा खयाल है कि अगर हम सावधान न रहे होते और हमने विरोधमें आवाज न उठाई होती तो 'नटाल मर्क्युरी' में 'स्पॉटेड फीवर' शीर्षकसे जो लेख छपा है वह न छपा होता। वस्तुस्थिति इस प्रकार है: इस मासके प्रारम्भमें 'उम्कोटी' नामक जहाजमें कुछ गिरमिटिया भारतीय आये। ये लोग खास तौरपर सर लीज हुलेटके कामके लिए भारतसे लाये गये थे। उनमें मर्दम-दाग बुखार (स्पॉटेड फीवर) फैल गया। समाचार मिला है कि फलस्वरूप अनेक भारतीय मर गये हैं। जब यह समाचार हमें मिला तब हमने भारतीयोंके संरक्षकको पत्र लिखकर हकीकत जाननी चाही। उत्तरमें टाल-मटोलसे भरा हुआ पत्र मिला। हमने फिर लिखा। उत्तरमें कहा गया कि हम 'मर्क्युरी' को देख लें। 'मर्क्युरी' में जो विवरण प्रकाशित हुआ था उसे पढ़कर भी हमें सन्तोष नहीं हुआ। सच तो यह है कि संरक्षक महोदयको चाहिए था कि वे हमें पूरी जानकारी देते। हम यहाँ उनकी अशिष्टताके बारेमें कुछ नहीं लिख रहे हैं। 'मर्क्युरी' में प्रकाशित विवरणसे जिसे संरक्षक का विवरण ही माना जा सकता है, यह स्पष्ट है कि संरक्षक महोदयको अपने रक्षितोंकी कोई चिन्ता नहीं है; चिन्ता केवल इस बातकी है कि कहीं यूरोपीयोंमें यह ज्वर न फैल जाये। इसलिए वे कहते हैं कि ऐसी आशंकाका कोई कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त इस भयसे यदि यह बात फैल गई कि इस प्रकारकी बीमारियाँ केवल गिरमिटिया भारतीयोंमें ही फैला करती हैं तो शायद गिरमिटिया भारतीयोंका आना ही बन्द हो जायगा, संरक्षक महोदयने अपनी रिपोर्टमें ऐसी चतुराईसे लिखवाई है कि यह सभी भारतीयोंपर लागू हो जाती है। असल बात यह है कि गिरमिटिया भारतीयोंको छोड़कर अन्य भारतीयोंमें शायद ही कभी यह बीमारी फैलती है। उन्होंने यह कैफियत तो बतलाई ही नहीं कि कितने गिरमिटिया आये, किस कामके लिए आये, उनमें से कितने बीमार हुए और जो बीमार नहीं पड़े वे कहाँ हैं। हम यह मामला छोड़नेवाले नहीं हैं। हम इसके लिए अन्त तक लड़ेंगे। आशा है कि कांग्रेस भी इस बातको उठायेगी।

इसके अतिरिक्त संरक्षक कहता है कि यह बीमारी उन जगहोंमें हुआ करती है जो गन्दगीके घर हैं और जहाँ धूप और रोशनी नहीं पहुँचती। लेकिन जब तो यह बीमारी जहाजमें फूट निकली। वहाँ देखरेख और जिम्मेदारी संरक्षककी या उसके एजेंटकी थी। उसने लोगोंको गन्दी अँधेरी और स्वच्छ वायु-विहीन जगहमें रहने ही क्यों दिया? साफ है कि इस बारेमें दोष संरक्षकका ही है। ऐसी दुर्दशा तो केवल उन्हींकी हो सकती है जो गिरमिटमें — गुलामीमें — जकड़े हुए हैं। जो भारतीय ऐसी

१. यह विवरण तथा इस लेखमें दर्ज-किये गये और अन्य अंश १-१-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित किये गये थे।

निकलनेवाले हैं। श्री पोलक अभी-अभी मद्राससे लौटे हैं। उन सभीका खयाल है कि उनको फोक्सरस्टमें रोक लिया जायेगा। वे उसके परिणाम भुगतनेके लिए तैयार हैं।

श्री गांधीने आज एक भेंटमें कहा कि मुझे प्रिटोरियाके एक समाचारपत्रमें प्रकाशित इस खबरकी कोई भी जानकारी नहीं है कि संघ-सरकारने एशियाइयोंके मामलेमें बरती जानेवाली नीतिके बारेमें चुनावोंके बाद विचार किया है और उसका इरादा अधिवासी भारतीयोंको कुछ रियायतें देनेका है। मेरा खयाल है कि प्रतिबन्धक धाराओंको पहलेकी तरह ही जोर-शोरसे लागू किया जायेगा। उन्होंने बतलाया कि मुझे जोहानिसबर्गसे एक तार मिला है जिसमें कहा गया है कि वहाँके सबसे पक्के सत्याग्रहीको आठवीं बार गिरफ्तार किया गया है।

[अंग्रेजीसे]

रैंड डेली मेल, ५-१०-१९११

२८२ भाषण: स्वागत-समारोहमें[1]

डर्बन
अक्तूबर ४, १९११

(गांधीजी) बोलनेके लिए खड़े हुए। उन्होंने भाषण अंग्रेजीमें शुरू किया ही था कि श्रोताओंने 'तमिल' की आवाज लगाई। गांधीजीने कहा कि यथासमय यह भी होगा बशर्ते कि जनरल स्मट्स मुझे जेलमें भेज दें। इसके बाद उन्होंने श्री बी० एम० नायडू, श्री रुस्तमजी तथा और लोगोंकी, जिन्होंने इस आयोजनकी सफलताके लिए परिश्रम किया था, प्रशंसा की और पुराने सत्याग्रहियोंको संघर्षमें सम्मिलित होनेको आमन्त्रित करते हुए उनके मनपर यह बात अंकित की कि इस संघर्षमें से हमें विजयी होकर ही निकलना है। उन्होंने यह भी कहा कि निर्वासित व्यक्तियोंका दूसरा जत्था जब आये तब आप उन लोगोंकी सार-सँभाल करें। उन्होंने यह बताते हुए कि श्री रिचने केप टाउनमें काम सँभाल लिया है, सलाह दी कि समाजकी ओरसे श्री रिचको उनके सम्मानार्थ निमन्त्रित किया जाये।[2]

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१०-१९११

१. श्री पोलकके सम्मानमें
२. इसके बाद गांधीजी गुजरातीमें बोले। इस भाषणका पाठ उपलब्ध नहीं है।

२८३. भाषण : स्वागत-समारोहमें[1]

डर्बन
अक्तूबर ५, १९१

स्वागत-समारोह तो ठीक है, परन्तु वास्तविक कार्य तो संघर्षमें भाग लेना है। श्री रिच जरा भी आराम किये बिना काममें जुट गये हैं और इस प्रकार उन्होंने भारतीयोंके सामने एक उदाहरण उपस्थित किया है। श्री सोराबजी गिरफ्तार हो गये हैं। उनकी यह आठवीं गिरफ्तारी है और वे थोड़े समयके लिए भी संघर्षसे हटे नहीं हैं। आप लोगोंके लिए यह उदाहरण भी अनुकरणीय है। जबतक आप सब सच्चे सत्याग्रही बनना नहीं सीख जाते तबतक आप लोगोंको संघर्षमें होनेवाली विजयका पूरा लाभ मिल ही नहीं सकता। विजयी वे होंगे जो संघर्षमें भाग लेंगे और वे ही वास्तवमें जीवित हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९१

२८४. भेंट : रायटर और साउथ आफ्रिका प्रेस एजेन्सीको

फोक्सरस्ट
[शुक्रवार, अक्तूबर ७, १९१]

जोहानिसबर्गके भारतीय समाजके नेता मो० क० गांधी ब्रिटिश भारतीय संघके मंत्री श्री पोलकसे मिलने डर्बन गये थे। चूंकि मेल गाड़ी द्वारा रैंडको वापस जाते हुए वे कल शाम फोक्सरस्टसे गुजरे। उनकी गिरफ्तारी न होनेपर सभीको आश्चर्य हुआ।[2] यह है भी विचित्र क्योंकि श्री गांधीके पास अनुमतिपत्र नहीं था।

मैंने श्री गांधीसे भेंट की तो उन्होंने बतलाया कि आजसे दो वर्ष पहले — भारतीयोंके मतानुसार — सरकार द्वारा १९०७ के एशियाई अधिनियमको रद करनेका अपना वचन पूरा न करनेपर, उन्होंने जोहानिसबर्गमें लगभग २,१००[3] भारतीयोंके साथ अपना अनुमतिपत्र जला दिया था।[4] गांधीने कहा कि वे स्वयं नहीं समझ पाते कि

1. यह भाषण श्री पोलक तथा अन्य सत्याग्रहियोंके भारतसे दक्षिण आफ्रिका वापस आनेके उपलक्ष्यमें पारसी रुस्तमजीके निवास-स्थानपर [illegible] द्वारा आयोजित समारोहमें दिया गया था।
2. इसे “सत्याग्रही [illegible]” शीर्षकसे प्रकाशित किया गया था।
3. देखिए “[illegible]” पृष्ठ १५२-५३।
4. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ३५।

उनको ऐसे बेरोकटोक कैसे पकड़ने दिया जा रहा है जबकि आज (शनिवार) शामको तीस अन्य सत्याग्रहियोंके साथ फोक्सरस्टसे गुजरनेवाले उनके पुत्रको तो निःसन्देह गिरफ्तार कर लिया जायेगा। उन्होंने कहा कि भारतीय समाजकी माँगें इतनी न्यायोचित हैं कि उनका स्वीकार न किया जाना समझमें नहीं आता। वे यह नहीं चाहते कि एशियाइयोंको मनमानी संख्यामें निर्बाध रूपसे आने दिया जाये। वे केवल इतना चाहते हैं कि भारतीयोंपर प्रवेशका प्रतिबन्ध सिर्फ इसीलिए न लगाया जाये कि वे भारतीय हैं। प्रवासी कानून कड़ी शैक्षणिक परीक्षाकी व्यवस्था करके ट्रान्सवालमें चन्द उच्च शिक्षा-प्राप्त भारतीयोंके सिवाय अन्य सभी भारतीयोंका प्रवेश रोक सकता है।

गांधीने कहा कि उन्होंने तो अभीतक किसीको ऐसे प्रस्तावपर आपत्ति उठाते नहीं सुना। फिर भी जबतक इतनी सीधी-सी बातको मंजूर नहीं किया जाता, तबतक सत्याग्रह जारी ही रहेगा। अन्तमें उन्होंने बड़े रोषके साथ इस बातका खण्डन किया कि फोक्सरस्टकी दाण्डिक कोर्टमें २६ दिसम्बरको पेश हुए जाली अनुमतिपत्रोंके मामलोंके साथ सत्याग्रहियोंका कोई भी सम्बन्ध है।

[अंग्रेजीसे]

रेंड डेली मेल १०-१०-१९११

२८५ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

छोटाभाईका मुकदमा

इस मुकदमेकी अपीलकी[1] सुनवाईका विवरण अब प्राप्त हो चुका है। इसमें बहुत बहस हुई। न्यायाधीश थे — श्री डी' विलियर्स, श्री मैसन और श्री विस्टो। श्री ग्रेगरो-वस्कीने जमकर बहस की। और न्यायाधीशोंके साथ उनका जो वाद-विवाद हुआ उसमें न्यायाधीशोंकी सहानुभूति भी छोटाभाईकी ओर दिखाई दी। इस बार भी चर्चा १९०७ और १९०९ के दोनों कानूनोंके सम्बन्धमें चली। न्यायाधीश श्री मैसनको तो महसूस हुआ कि कानून किसी बालकको अप्रत्यक्ष रूपसे ऐसे अधिकारसे वंचित नहीं कर सकता जो उसे १९०७ से पहले मिला हुआ हो।

न्यायाधीश श्री विस्टोने श्री वैसलके इकतरफा बयानकी आलोचना करते हुए कहा कि श्री छोटाभाई ट्रान्सवालके अधिवासी माने जायें या नहीं इसका निर्णय श्री वैसलकी रायके आधारपर नहीं किया जा सकता। [उन्होंने कहा] श्री वैसलने इस बातको क्या समझा?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१०-१९११

१. न्यायाधीश वेसेल्सके निर्णयके लिए देखिए "छोटाभाईके मुकदमेका फैसला", पृष्ठ ३४९।
२. यहाँ १९०८ होना चाहिए।

२८६. पत्र : गृह-मन्त्रीको

[जोहानिसबर्ग]
अक्तूबर ८, १९१०

महोदय,

मैं डर्बनसे अभी-अभी लौटा हूँ। वहाँ मैं उन ब्रिटिश भारतीयों और चीनियोंके सिलसिलेमें गया था जिन्हें इस प्रान्तसे भारत निर्वासित कर दिया गया था और जो प्रवेशका दावा करनेके लिए वापस आये हैं। मुझे मालूम है कि चीनियोंने पंजीयन-प्रमाणपत्र पेश किये थे, परन्तु प्रशासकीय आज्ञाके मातहत निर्वासित किये जानेके कारण आपके महकमेने इन चीनियोंके पुनः प्रवेश करनेके अधिकारको माननेसे और डर्बनके प्रवासी-अधिकारीने इन्हें अभ्यागत-पास (विज़िटर्स पास) देनेसे इनकार कर दिया — उक्त पासोंके बिना वे ट्रान्सवाल नहीं जा सकते थे। क्या मैं जान सकता हूँ कि मुझे जो जानकारी मिली है वह सही है, और क्या सरकारका इरादा उन व्यक्तियोंको जिन्होंने प्रमाणपत्र पेश किये हैं इस कारण निषिद्ध प्रवासी माननेका है कि उनके विरुद्ध निर्वासनकी एक प्रशासकीय आज्ञा जारी है? क्या मैं यह भी जान सकता हूँ कि इन लोगोंके सरकार द्वारा निषिद्ध प्रवासी करार दिये जानेकी हालतमें क्या सरकार उन्हें दक्षिण आफ्रिकामें जहाजसे उतरनेकी अनुमति देकर अदालतके सामने अपने अधिकारकी जाँच करानेकी सुविधा देगी? चूँकि यह मामला बहुत जरूरी है और चूँकि ऐसे मामले बहुत जल्द डर्बनमें भी खड़े हो सकते हैं इसलिए मैं कृतज्ञ होऊँगा यदि आप शीघ्र उत्तर देनेकी कृपा करें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-१०-१९१०

२८७ मानपत्र एच० एस० एल० पोलकको[1]

जोहानिसबर्ग
अक्तूबर ९, १९११

प्रिय महोदय

आपको अपने बीच पुनः पाकर हम संघकी ओरसे आपका हार्दिक स्वागत करते हैं। भारतमें आपके कार्यको हम बहुत ध्यानसे देखते रहे हैं। प्रत्येक भारतीय मानता है कि वहाँ आपने जो शानदार काम किया उससे प्रकट है कि इस कामके लिए आपसे बढ़कर शायद ही कोई मिलता। आपने अनुपम परिश्रम करके समस्त भारतको इस प्रान्तकी सही-सही स्थितिसे अवगत कराया है। सत्याग्रही भारतीयोंके संकटापन्न परिवारोंकी तथा सत्याग्रह-संग्राममें सहायताके लिए भारतमें जो चन्दा एकत्र किया गया है, वह एक अनूठी बात हुई है।

दक्षिण आफ्रिकाका समस्त भारतीय समाज चाहता है कि गिरमिटिया मजदूरोंकी प्रथा बन्द हो और इस सम्बन्धमें आपने जो कार्य किया है उससे आशा बँधती है कि इस कष्टपूर्ण प्रथाका शीघ्र ही अन्त हो जायेगा।

इस उद्देश्यके लिए आपने तथा श्रीमती पोलकने एक-दूसरेसे विलग रहकर जिस त्यागका परिचय दिया है उसे हम कभी नहीं भूलेंगे। हमें भरोसा है कि आप जो मानवतापूर्ण कार्य कर रहे हैं उसे जारी रखनेके लिए परमात्मा आपको तथा आपके परिजनोंको दीर्घायु करेगा।

आपके विश्वस्त
अ० मु० काछलिया
अध्यक्ष
मो० क० गांधी
अवैतनिक मंत्री

[अंग्रेजीसे]
रैंड डेली मेल, १०-१०-१९११

१ पोलकके स्वागतार्थ फोर्ड्सबर्ग मस्जिदमें एक सभा हुई थी। उसमें विभिन्न भारतीय संघ द्वारा पेश किये गये इस मानपत्रको जोहानिसबर्गके पत्र था और फिर वह रैंड डेली मेलमें "भारतीय और गिरमिटिया मजदूर" तथा १४-१०-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें "जोहानिसबर्गमें श्री पोलकका स्वागत" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२८८. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

मंगलवार [अक्तूबर ११, १९१०]

'ट्रान्सवाल लीडर' द्वारा समर्थन

ट्रान्सवाल लीडर'ने एक बहुत कड़ा लेख लिखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह लेख समझौता निश्चित है यह समझकर लिखा गया है। लेखकने उसमें कहा है कि जनरल स्मट्सकी भूलसे ही लड़ाई लम्बे अर्सेतक चली। उसमें यह भी कहा गया है कि भारतीयोंकी माँग उचित है। लेखमें श्री छोटाभाईके मुकदमेके सम्बन्धमें बहुत कड़ी आलोचना की गई है और सिफारिश की गई है कि कानूनमें दोष हो तो उसे जल्दीसे-जल्दी सुधारा जाना चाहिए। इसके सिवा लेखमें सरकारी वकीलकी खूब छीछालेदर की गई है।

श्री रिच

श्री रिच सोमवारको केप टाउनसे रवाना हुए। वे बुधवारको जोहानिसबर्ग पहुँचेंगे और ११ भारतीयोंके मामलेकी सुनवाई होनेके दिन तक फिर केप टाउन लौट जायेंगे।

केपमें सत्याग्रही

केपमें श्री रिच थे इसलिए १२ में से ११ सत्याग्रही उतर सके।[1] वे अभी तो अपना अधिकार सिद्ध करनेके लिए उतारे गये हैं। इसे [न्यायालयमें] सिद्ध करना शेष है।[2] इसका प्रयत्न किया जा रहा है। सत्याग्रही भारतीय समाजके अतिथि हैं और श्री आदम गुल उनका एवं श्री रिचका स्वागत-सत्कार कर रहे हैं। किम्बर्लेके भारतीय संघने श्री रिच और श्री पोलकको समर्पित करनेके लिए मानपत्र भेजे हैं।

मानपत्रोंके लिए चन्दा

मानपत्रोंके लिए तीन चन्दे किये जा रहे हैं। एक तो संघकी ओरसे दिये जानेवाले मानपत्रके लिए श्री काछलिया श्री सोराबजी श्री मेढ और श्री सोढा कर रहे हैं दूसरा तमिल मानपत्रके लिए श्री थम्बी नायडू कर रहे हैं और तीसरा हिन्दू मण्डलके मानपत्रके लिए किया जा रहा है। हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके मानपत्र तैयार हो गये हैं। यदि श्री पोलक शनिवार[3] तक आ जायेंगे तो तमिल समाजकी ओरसे रविवारको मानपत्र और भोज दिया जायेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-१०-१९१०

१. देखिए "तार: एल० डब्ल्यू० रिचको" पृष्ठ ३५२।

२. देखिए पत्र: गृह-मन्त्रीको पृष्ठ ३५२।

३. अक्तूबर १५। पोलक अक्तूबर ९ को जोहानिसबर्ग पहुँचे थे और उसी सप्ताह फिर डर्बन चले गये थे।

२८९. दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिको लिखे गये पत्रसे उद्धरण

[जोहानिसबर्ग
अक्तूबर १६, १९१०के बाद][1]

आपको यह सुनकर गहरा दुःख होगा कि एक और सत्याग्रहीकी मृत्यु हो गई है। उसका नाम ए० नारायणस्वामी था। वह उन लोगोंमें से था जो भारतसे श्री पोलकके साथ लौटे थे और जिनको डर्बनमें उतरनेकी अनुमति नहीं दी गई थी। वह अपने ११ अन्य साथियोंके साथ पहले पोर्ट एलिजाबेथ और फिर केप टाउन गया। वहाँ भी उसे और उसके साथियोंको जहाजसे उतरनेसे रोक दिया गया। इस बातकी पूरी संभावनाके बावजूद कि अन्ततः वह भारत वापस भेज दिया जायेगा विवश होकर उसे डर्बन लौटना पड़ा। श्री रिचका कहना है कि उसके और अन्य सत्याग्रहियोंके पास न तो जूते थे और न हैट ही, यहाँतक कि तन ढँकनेके लिए पूरे कपड़े भी नहीं बचे थे, क्योंकि पोर्ट एलिजाबेथमें उनका सामान चोरी चला गया था। यदि केप टाउनके स्थानीय भारतीयोंने कृपा न की होती तो उनको भूखा-प्यासा ही डर्बन लौटना पड़ता। इस प्रकार ये लोग असाधारण रूपसे कठिन परिस्थितियोंमें लगातार लगभग दो महीनेसे जहाजपर ही हैं। फिर इसमें आश्चर्य ही क्या कि बेचारा नारायणस्वामी मृत्युका शिकार हो गया। मैं नहीं मानता कि यह मृत्यु स्वाभाविक है। निस्सन्देह यह कानूनकी आड़में हत्या है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया, १८-११-१९१

२९०. पत्र: अखबारोंको[2]

जोहानिसबर्ग
अक्तूबर १७, १९१

महोदय,

कुछ रोज पहले अधिकांश समाचारपत्रोंने प्रिटोरियासे भेजा हुआ इस आशयका एक तार प्रकाशित किया था कि ब्रिटिश एशियाई प्रश्नने सारे उपनिवेशको पिछले चार वर्षोंसे क्षुब्ध कर रखा है, वह अन्ततः अब सन्तोषजनक रीतिसे सुलझनेको है। लोगोंने

1. पत्रमें उल्लिखित नारायणस्वामीकी मृत्यु १६-१ १९१ को हुई थी।

2. यह "डेथ ऑफ ए डिपोर्टी" (एक निर्वासितकी मृत्यु) शीर्षकसे [illegible] १५-१०-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें सम्पादकके नाम एक पत्रके रूपमें प्रकाशित हुआ था। यह अक्तूबर १८ १९१ के ट्रान्सवाल लीडरमें भी प्रकाशित हुआ था।

समझा था कि इस समाचारका मूल कहीं सरकारी हलकोंमें होगा। परन्तु इसके तुरन्त बाद ही इस प्रान्तके सबसे अधिक वृद्ध और समादृत भारतीयोंमें से एक अर्थात् श्री सोराबजी, गिरफ्तार कर लिये गये। और इसके साथ ही उनके उतने ही बहादुर तीन साथी सत्याग्रही — सर्वश्री दाजी नायडू, सोढा और मेढ — भी गिरफ्तार कर लिये गये।

परन्तु केवल यही जानकारी देनेके लिए मैं आपके सौजन्यका अनुचित लाभ उठाकर जनताका ध्यान इधर नहीं दिला रहा हूँ। मेरी नम्र रायमें यहाँकी जनताको उन भारतीयों और चीनियोंके कष्टोंकी कुछ जानकारी दे देना जरूरी है जो भारतको निर्वासित कर दिये गये थे और जो पिछले मासके लगभग अन्तमें गुस्तान नामक जहाजसे दक्षिण आफ्रिका लौटे हैं। ये सारे लोग ट्रान्सवालके वैध निवासी हैं और इनमें तो पैदाइश भी दक्षिण आफ्रिकाकी ही है।

इस दुःखद प्रकरणका अन्त नारायणस्वामी नामक एक अत्यन्त सरल और न्यायभीरु भारतीयकी मृत्युमें हुआ है। एक निर्वासितके रूपमें जब वह यह प्रान्त छोड़कर भारतके लिए रवाना हुआ था तब उसकी तन्दुरुस्ती अच्छी थी। परन्तु छः हफ्तोंसे अधिक समय तक उन्हें भिन्न-भिन्न जहाजोंकी डेकपर रहना पड़ा और उसके मौसमकी विभीषिकाएँ सहनी पड़ीं और यह उनकी-जैसी तन्दुरुस्तीवालेके लिए भी बहुत भारी पड़ गया। श्री रिचने बताया है कि जब उनका जहाज टेबल-बेमें पड़ा हुआ था उस समय उन्हें तथा उनके निर्वासित साथियोंको अपने मित्रों और कानूनी सलाहकारों तक से एक हफ्ते तक नहीं मिलने दिया गया। और अन्तमें जब श्री रिच सर्वोच्च न्यायालयसे हुक्मनामा लाये तब जाकर उन्हें (श्री रिचको) उन लोगोंसे मिलने दिया गया। श्री रिचने केपके समाचारपत्रोंको भेजे गये अपने एक पत्रमें बताया है कि उन्होंने देखा कि इन सत्याग्रहियोंके पैरोंमें न तो जूते थे और न सिरपर टोपियाँ। इनके पास तो शरीर-रक्षाके लिए पर्याप्त कपड़े भी नहीं थे। और ये सब उस जहाजके खुले डेकपर ठंडसे काँप रहे थे। उन्हें पहले तो डर्बनमें फिर पोर्ट एलिजाबेथमें उसके बाद केपमें और अन्तमें दूसरी बार फिर डर्बनमें जहाजसे उतरनेसे रोक दिया गया। इस बार तो प्रवासी-अधिकारीके नाम सर्वोच्च न्यायालयकी इस स्पष्ट आज्ञाकी भी अवहेलना की गई कि इन सत्याग्रहियोंको नेटालके प्रान्तीय विभाग (प्रॉविंशियल डिवी-जन) के अधिकार-क्षेत्रसे बाहर न भेजा जाये। यह अधिकारी सीधे गृह-मन्त्रीके आदेशोंके अनुसार काम कर रहा था। उसने अपने प्रमादको पुष्ट करनेके लिए अति उत्साहमें आकर अदालतके हुक्मका ऐसा अर्थ लगाया जैसा कि कोई साधारण बुद्धिवाला आदमी भी नहीं लगा सकता था और इस तरह अपनी बेतुकी चालबाजीमें इन लोगोंको डेलागोआ-बे भेज दिया जिसके परिणामस्वरूप जैसा कि ऊपर कहा गया है नारायण-स्वामीकी मृत्यु हो गई।

नारायणकी मृत्युको कानूनकी आड़में हत्या कहनेमें मुझे कुछ संकोच और हिच-किचाहट नहीं मालूम हुई। मुझे लगता है कि नारायणस्वामीकी मृत्यु भी निश्चय ही उसी श्रेणीकी है। हमारे अपने न्यायालयका प्रमाण मेरे पास है जिसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि सार्वभौम आज्ञासे किया जानेवाला नारायणस्वामी-जैसा

निर्वासन गैर-कानूनी है। श्री कॉटन के० सी०,ने ऐसी आज्ञाको स्पष्ट जोरजबरदस्तीभरी मनमानी कहा है। यदि नारायणस्वामी और उनके साथी ऐसे निर्वासनकी उपेक्षा करके उस देशमें वापस लौटनेकी कोशिश करते हैं जो उनकी जन्मभूमि है या जिसे उन्होंने स्वदेश माना है तो इसे मैं उचित ही कहूँगा। मैं समझता हूँ कि न्याय और औचित्यका हर प्रेमी यही कहेगा कि अपनी इस कोशिशमें उन्हें दर-दर भटकाया जा रहा है। कल्पनातीत कठिनाइयाँ उनके मार्गमें डाली जा रही हैं। क्या ऐसा करना जरूरी है? सत्याग्रहियोंसे कहा जाता है कि देशका कानून तोड़ते हुए यदि उन्हें तकलीफें उठानी पड़ें तो उसकी शिकायत नहीं करनी चाहिए। सत्याग्रही इस सलाहको कद्र करते हैं। जो कानून उनकी अन्तरात्माको अग्राह्य है उनकी अवज्ञा वे जानबूझकर कर रहे हैं और इसके साधारण परिणामोंसे बचनेकी उनकी कोई इच्छा नहीं है। परन्तु जिन मामलोंकी तरफ मैंने अभी ध्यान दिलाया है, उनमें दी गई तकलीफें तो लगभग मृत्युदण्ड देनेके समान हैं और मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि जनता ऐसे कार्योंका समर्थन कभी नहीं करेगी। इस देशमें शीघ्र ही बादशाहके प्रतिनिधि आनेवाले हैं और संघ राज्यके पहले संसदका उद्घाटन भी होने जा रहा है। मुझे विश्वास है कि इस अवसरपर दक्षिण आफ्रिकाके लोग चाहेंगे कि इस संघके प्रदेशोंमें रहनेवाली सभी कौमोंके मनमें आनन्द और सद्भावका वातावरण हो। किन्तु क्या आज दक्षिण आफ्रिकाके किसी भी भागमें बसनेवाले भारतीयोंसे अपेक्षा की जा सकती है कि वे इस मासके अन्तमें होनेवाले आनन्दोत्सवमें भाग लें और जो सद्भाव अन्य सब वर्गोंमें व्याप्त है वह उनमें भी दिखाई दे?

आपका
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
रैंड डेली मेल, १८-१०-१९१०

२९१. पत्र : मगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म
आश्विन वदी १ [अक्तूबर १९, १९१०][1]

चि० मगनलाल,

फार्म पहुँचनेपर तुम्हारा पत्र पढ़ा। फिलहाल तो मुझे रोज जोहानिसबर्ग जाना पड़ता है। तुम अपना पत्र फार्मके पतेसे ही भेजते रहना। चि० छगनलालका पत्र पढ़ा। कल उनके पत्रसे कुछ अधिक समाचार प्राप्त होगा। [सांसारिक सुखोंके प्रति] चि० नारणदासके मनकी उदासीन स्थिति शुभ लक्षण है। उसे प्रोत्साहन मिलना

1. ऐसा लगता है कि यह पत्र १९१० में, जब छगनलाल गांधी दक्षिण आफ्रिकासे बाहर गये हुए थे लिखा गया था। १९१० में आश्विन वदी १ अक्तूबर १९ को पड़ी थी।

चाहिए। इसके लिए बम्बई उचित स्थान नहीं है। परन्तु नारणदासकी ओर पूज्य खुशालभाईके[1] हाथमें है। जब तुम भाइयोंमें से कोई विनयपूर्वक उनका मोह तोड़ देगा तभी नारणदासको परमार्थका अवसर प्राप्त होगा। परन्तु शायद इस जन्ममें न मिले तो भी यदि उसकी इच्छा होगी तो दूसरे जन्ममें उसे ऐसा अवसर सहज ही प्राप्त हो जायेगा।

चि॰ छगनलालके बारेमें डॉक्टर [मेहता]का पत्र आया है, उसे तुम्हारे पढ़नेके लिए इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ। पढ़कर फाड़ डालना।

बा लिखवा रही है कि दो छोटे ताले लेकर पानीकी टंकीमें लगा देना। उसका कहना ठीक मालूम होता है। पानीका उपयोग जिसे उसकी आवश्यकता हो कर सकता है। परन्तु हर कोई [टंकीका] नल न खोला करे — बा यही चाहती है। इसके सिवा बा पुछवा रही है कि तुमने सब सामान — चारपाई, इत्यादि — ठिकानेसे रख दिया है या नहीं। अगर न रखा हो तो रख देना। सोमवारको जो सभा हुआ करती है वह यदि उस घरमें हुआ करे तो इस बहाने वह हर आठवें दिन साफ किया जा सकता है। वीरजीके लिए तो यही ठीक लगता है कि वे बिहारीवाले घरमें रहें। बड़े घरको साफ करनेकी रोजकी परेशानी मोल लेना ठीक नहीं है। कौन-कौन-सी पुस्तकें आई हैं उनकी तफसील अवकाश मिलनेपर भेजना। बा कहती है कि रसोईघरके दरवाजेके पीछे बोरीमें [कुछ] चावल अवश्य है। उसकी खोज फिर करना।

शुक्रवारको डिका भागा[2] बहुत देर हो जाया करती है सो ठीक नहीं है। पुरुषोत्तमदासका खयाल है कि यह किसीका आलस्य है। तुम सब मिल-जुलकर विशेष सतर्कताके साथ समयपर काम पूरा करनेका प्रयत्न किया करो। चूँकि अब लम्बे दिन आये हैं इसलिए शुक्रवारको सवेरे [छापाखाना] जल्दी चालू करो तो भी ठीक होगा।

तमिलका अभ्यास न छोड़ना। मकोर गड्ढे किस कामके लिए खोद रहा है? जो काम तुम्हें निरर्थक मालूम हो उसमें उसे न लगाना। श्री पोलक कहते हैं कि मुनु यहाँ शुक्रवारको आया था। श्री वेस्टके पास क्षय-रोगके सम्बन्धमें एक लेखांश है उसे उनसे लेकर मेरे पास भेज देना। यहाँ एक क्षयसे पीड़ित रोगीको पढ़वाना है।

जॉर्मिस्टन सेठको आज तार[3] भेजा है। मुझे खबर सेठ रुस्तमजीसे मिली थी। ट्रान्सवाल लीडर में किसीने टॉल्स्टॉय फार्मके सम्बन्धमें कुछ लिखा है, उसे पढ़ जाना। यह लेख आज १९ ता॰ के अंकमें प्रकाशित हुआ है। इसका लेखक कौन है सो मालूम नहीं हो पाया है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी॰ डब्ल्यू॰ ४९१८) से।
सौजन्य: श्रीमती राधाबेन चौधरी।

१. गांधीजीके चचेरे भाई और श्री नारणदासके पिता।
२. इंडियन ओपिनियनकी प्रतियोंको डाक द्वारा भेजनेकी व्यवस्थासे मतलब है।
३. यह तार अपनी पुत्रीकी मृत्यु, जो कि [illegible] रोगसे ग्रस्त हो जानेके कारण हुई थी, के सम्बन्धमें दिया गया था। तार उपलब्ध नहीं है।

२९२ नारायणस्वामी

नारायणस्वामीकी मृत्यु[1] हो चुकी है परन्तु वे मरकर भी जीवित हैं। उन्होंने देह तो त्याग दिया परन्तु वे अपना नाम अमर कर गये। मरना-जीना सबके साथ लगा हुआ है। अगर हम जरा गहराईसे सोचें तो पता चलेगा कि मृत्यु जल्दी आये या देरसे उसमें हर्ष या शोककी कोई बात नहीं है। परन्तु समाजकी सेवा करते हुए अथवा कोई दूसरा परोपकार करते हुए मरना जीवित रहनेके समान है। क्या ऐसा भी कोई देशभक्त भारतीय होगा जो देशके लिए मरनेको तैयार न हो? इस प्रसंगमें इतना गृहीत है कि सभी देशप्रेमी भारतीय अपने देशके लिए मरनेको तैयार ही होंगे। जबतक हममें यह [भावना] न हो तबतक हम स्वदेशाभिमानी नहीं माने जा सकते।

नारायणस्वामीने बहुत कष्ट सहे। [जहाजके] डेककी यात्रा बहुत ही परेशान करनेवाली होती है और उसमें अगर किसीके पास पर्याप्त कपड़े न हों और अन्य असुविधाएँ हों तब तो यह यात्रा बहुत कष्टकर हो जाती है। नारायणस्वामीने ऐसी यात्रा देशके हितके लिए की। वह दुःख भोगता हुआ चल बसा। हम नारायणस्वामीको सच्चा सत्याग्रही मानते हैं। बड़े-बड़े सत्याग्रहियोंके विषयमें जो बात हम नहीं कह सकते वह नारायणस्वामीके विषयमें कही जा सकती है। उसकी मृत्यु पक्के सत्याग्रहीकी भाँति हुई है। और सत्याग्रहीकी प्रशंसा भी तभी की जा सकती है जब वह अपनेको पूर्ण रूपसे उसका पात्र सिद्ध कर चुकता है।

नागप्पन अपना नाम अमर करके चला गया। नारायणस्वामीने भी वैसा ही किया है। उसकी मृत्युके लिए हम उसके कुटुम्बियोंके साथ समवेदना प्रकट करते हैं साथ ही हम उनको बधाई भी देते हैं। धन्य हैं नागप्पन और नारायणस्वामीकी माताएँ, जिन्होंने उन्हें जन्म दिया।

यद्यपि इस प्रकार हम नारायणस्वामीकी मृत्युको पवित्र मानते हैं तथापि ट्रान्स-वाल सरकारको हम कानूनकी आड़में उसके खूनका दोषी ठहरा सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्तिको ऐसी स्थितिमें डाल दे जिससे उसकी मृत्यु हो जाये तो पहला व्यक्ति दूसरेकी हत्याका दोषी माना जायेगा। नारायणस्वामीके बारेमें भी ऐसा ही हुआ है। नारायणस्वामी और उसके साथियोंको डर्बनसे पोर्ट एलिज़ाबेथ वहाँसे केप टाउन केप टाउनसे फिर डर्बन — इस प्रकार भटकाया गया। उन्हें पहनने ओढ़ने और खाने-पीनेका कष्ट बहुत था। यदि पहनने और खानेका सामान भारतीय समाज उन्हें न पहुँचाता तो अन्य भारतीयोंकी भी ऐसी ही दशा होती। ट्रान्सवालकी सरकारका यह व्यवहार बहुत कठोर हुआ और उसकी इस कठोरताके कारण ही नारायणस्वामीकी

१. देखिए "द० आ० ब्रि० भा० समितिको लिखे गये पत्रसे उद्धरण", पृष्ठ ३५९ और "पत्र : अखबारोंको" पृष्ठ ३९६-९९।

मृत्यु हुई है। इसलिए हम इस खूनका दोषी सरकारको ठहराते हैं। उसने खून किया है। फिर भी हम उसके खिलाफ कानूनी कार्रवाई नहीं कर सकते। इसलिए हम इसे कानूनकी आड़में हत्या कहते हैं।

नागप्पन और नारायणस्वामी तो इस प्रकार चले गये। अन्य भारतीयोंपर तमिल समाजका ऋण बढ़ता जा रहा है। तमिल समाज दिन-ब-दिन चमकता जा रहा है। तमिल समाजकी सेवाओंका बदला किस प्रकार चुकाया जा सकेगा? अन्य भारतीयोंको उचित है कि वे तमिल समाजसे सबक सीखें और उनका अनुकरण करके बिना शोर-गुल किये देशके लिए चुपचाप कष्ट-सहन करें। यदि [भारतीय] समाज ऐसा न करेगा तो वह अपना मान गँवा बैठेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-१ -१९१

२९३ भारतीयोंका क्या होगा?

हम पिछले सप्ताह खबर दे चुके हैं कि संसदकी आगामी बैठकमें एक ऐसा प्रवासी कानून स्वीकृत किया जायेगा जो समूचे दक्षिण आफ्रिकापर लागू होगा। यह समाचार हमें अधिकृत रूपसे मिला है। उसपर पूर्ण विश्वास करनेका कारण नहीं तो भी इतना निश्चित है कि भारतीय समाजका सतर्क रहना आवश्यक है। सम्भवतः संसद प्रवासी कानूनमें कुछ लुभावनी बातें जोड़ देगी और [इस तरह] समाजको भ्रममें डालकर उक्त कानून पास कर देगी। कदाचित् इस कानूनकी धारा थोड़ी आपत्ती कि दक्षिण आफ्रिकाके निवासी भारतीय फिरसे आयेंगे नहीं तथा भारतीय प्रविष्ट हो सकेगा। यदि केप या नेटाल या ट्रान्सवालके भारतीय इस जालमें फँस गये तो समाजकी नाक कट जायेगी और भारतीयोंको कलंक लग जायेगा। हमें यह पूरी तरह याद रखना चाहिए कि जिस कानूनके द्वारा भारतीयोंके विरुद्ध इसलिए प्रतिबन्ध लगे कि वे भारतीय हैं तो ऐसे कानूनको हमें स्वीकार नहीं करना है। जब समस्त दक्षिण आफ्रिकाके लिए कानून बनाया जाये तब समाजको यह उचित है कि वह दक्षिण आफ्रिकाके सभी भारतीयोंको इकट्ठा करे, उनसे परामर्श करे और फिर जो कदम उठाना उचित हो वह उठाये। इसमें यदि कोई उतावली करेगा अथवा भारतीयोंकी कोई सभा या कोई भारतीय नेता किसी प्रकारकी स्वीकृति दे देगा तो उसे पीछे पछताना पड़ेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-१०-१९१०

२९४. ट्रान्सवालमें व्यापारका अनुमतिपत्र

ट्रान्सवालकी सरकार और ट्रान्सवालके गोरे एसे नहीं है कि ट्रान्सवालके भारतीय व्यापारियोंको मुफ्त बैठन दें। ट्रान्सवालकी नगरपालिकाएँ इस आशयके प्रस्ताव पास कर रही है कि भारतीय व्यापारियोंको नुकसानका मुआवजा देकर उन्हें इस देशसे निकाल दिया जाय। हमने कुछ भारतीयोंको इन विचारोंपर पसन्दगी जाहिर करते हुए सुना है। उनका खयाल है कि यदि इतना [मुआवजा] दे दिया जाये कि उसमें उनका नफा भी आ जाय तो इस मुल्कको छोड़कर चले जानेमें कोई नुकसान नहीं है। यह विचार अल्प बुद्धिका द्योतक है। पहली बात तो यह है कि हम जितना समझते है उसका चौथाई हिस्सा नफा भी हमें मिलनेवाला नहीं है। जो कानून बनाया जायेगा उससे [मालके] दाम बाजार-भावसे ज्यादा शायद ही मिलें। उस हालतमें भारतीय चौपट हो जायेंगे। दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंमें से शायद ही कोई देशमें जाकर अधिक कमाई करता है। सभी इस देशमें लौट आते हैं। इस स्थितिमें मुआवजा लेकर इस देशको छोड़कर चले जानेका खयाल करना साफ नासमझी है। फिर, सरकार हमें इस तरह जबर्दस्ती निकाले और हम चले जायें तो हम कायर माने जायेंगे — यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए। हम मानते हैं कि इस देशमें गोरोंको जितना अधिकार है उतना ही हमारा भी है। एक दृष्टिसे हमारा अधिकार अधिक है। इस देशके मूल निवासी तो केवल हब्शी ही कहे जा सकते हैं। हमने मारपीट करके उनसे इस देशको नहीं छीना है बल्कि हम उनको प्रसन्न करके इसमें रह रहे हैं। गोरोंने तो इस देशको उनसे छीन लिया है और वे इसे अपना बनाकर बैठ गये हैं। इससे इसपर उनका अधिकार तो नहीं हो जाता। यहाँ अधिकार बनाये रखनेके लिए उन्हें फिर कहना पड़ता यह बात उन्हींमें से बहुत-से लोग मानते हैं। परन्तु यह बात जाने दें। जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। हमें तो यही बताना है कि यदि भारतीय थोड़े-से पैसेकी खातिर मुआवजा लेकर चले जायेंगे तो वे स्वार्थी माने जायेंगे। यदि डरसे चले जायेंगे तो कायर माने जायेंगे। हमें आशा है कि कोई भारतीय इनमें से एक भी विशेषण स्वीकार करनेके लिए तैयार न होगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१०-१९०१

मृत्यु हुई है। इसलिए हम इस खूनका दोषी सरकारको ठहराते हैं। उसने खून किया है। फिर भी हम उसके खिलाफ कानूनी कार्रवाई नहीं कर सकते। इसलिए हम इसे कानूनकी आड़में हत्या कहते हैं।

नागप्पन और नारायणस्वामी तो इस प्रकार चले गये। अन्य भारतीयोंपर तमिल समाजका ऋण बढ़ता जा रहा है। तमिल समाज दिन-ब-दिन चमकता जा रहा है। तमिल समाजकी सेवाओंका बदला किस प्रकार चुकाया जा सकेगा? अन्य भारतीयोंको उचित है कि वे तमिल समाजसे सबक सीखें और उनका अनुकरण करके बिना शोर-गुल किये देशके लिए चुपचाप कष्ट-सहन करें। यदि [भारतीय] समाज ऐसा न करेगा तो वह अपना मान गँवा बैठेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-१०-१९१०

२९३. भारतीयोंका क्या होगा?

हम पिछले सप्ताह खबर दे चुके हैं कि संसदकी आगामी बैठकमें एक एक्य प्रवासी कानून स्वीकृत किया जायेगा जो समूचे दक्षिण आफ्रिकापर लागू होगा। यह समाचार हमें अधिकृत रूपसे मिला है। उसपर पूर्ण विश्वास करनेका कारण नहीं तो भी इतना निश्चित है कि भारतीय समाजका सतर्क रहना आवश्यक है। सम्भवतः संसद प्रवासी कानूनमें कुछ लुभावनी बातें जोड़ देगी और [इस तरह] समाजको भ्रममें डालकर उक्त कानून पास कर देगी। कदाचित् इस आशयकी धारा जोड़ी जायेगी कि दक्षिण आफ्रिकाके निवासी भारतीय जिसे चाहेंगे वही नया भारतीय प्रविष्ट हो सकेगा। यदि केप या नेटाल या ट्रान्सवालके भारतीय इस जालमें फँस गये तो समाजकी नाक कट जायेगी और भारतीयोंको कलंक लग जायेगा। हमें यह पूरी तरह याद रखना चाहिए कि जिस कानूनके द्वारा भारतीयोंके विरुद्ध इसलिए प्रतिबन्ध लगे कि वे भारतीय हैं तो ऐसे कानूनको हमें स्वीकार नहीं करना है। जब समस्त दक्षिण आफ्रिकाके लिए कानून बनाया जाये तब समाजको यह उचित है कि वह दक्षिण आफ्रिकाके सभी भारतीयोंको इकट्ठा करे, उनसे परामर्श करे और फिर जो कदम उठाना उचित हो वह उठाये। इसमें यदि कोई उतावली करेगा अथवा भारतीयोंकी कोई सभा या कोई भारतीय नेता किसी प्रकारकी स्वीकृति दे देगा तो उसे पीछे पछताना पड़ेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-१०-१९१०

२९६. पत्र : एशियाई-पंजीयकको

डर्बन
अक्तूबर २९, १९११

महोदय,

सैलिसबरी द्वीपके भारतीयोंके सम्बन्धमें आपका आजका पत्र मिला।

नहीं कह सकता कि ये लोग फोक्सरस्ट पहुँचनेपर क्या करेंगे? उनको बता दिया गया है कि उन्हें सन् १९०८ के अधिनियम ३६ के अनुसार पंजीयन-प्रमाणपत्रोंकी नकलोंके लिए अर्जियाँ देनेका और यदि अर्जियाँ नियमानुसार हों तो नकलें पानेका कानूनी अधिकार है। यदि यह सूचित करनेकी कृपा करें कि आप सन् १९०८ के अधिनियम ३६ और विनियमोंके अनुसार उनको वहाँ अर्जियाँ देनेकी सहूलियत दे सकेंगे या नहीं तो मैं आपका आभार मानूँगा।[1]

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २९-१०-१९११

२९७. दीवाली

हम पाश्चात्य संस्कृतिमें इतने अधिक डूब गये हैं कि हिन्दू, मुस्लिम अथवा पारसी मत-धर्मका हम अपना नया वर्ष नहीं कह सकते। हम इस लेखका शीर्षक 'नया वर्ष' दें तो उसका अर्थ कुछ भी न होगा। किन्तु यदि जनवरीके [पहले] अंकमें हम 'नया वर्ष' शीर्षक दें तो सब समझ लेंगे कि १९११ की बात है। ऐसा होनेका कोई समुचित कारण नहीं है। यदि हम अपनी संस्कृतिको भूल न बैठे हों तो हम तीनों नये वर्ष मनायें और चाहें तो पश्चिमका भी नया वर्ष मनाकर चार नये वर्ष मनायें। मुसलमानोंका वर्ष बदले तब सब भारतीय उसको मनायें। पारसियोंका वर्ष बदले तब उसको भी मनायें और हिन्दू वर्ष बदले तब उसको भी मनायें। यह हमारे भाईचारेका और एक-राष्ट्रीयताका चिह्न होगा। वस्तुतः हमें दिखाई यह देता है कि एक-दूसरेके नये वर्षके सम्बन्धमें एक-दूसरेकी हम बहुत परवाह नहीं करते। सब भारतवासी एक-राष्ट्र हैं ऐसी भावना उत्पन्न करनेके लिए किसी बड़े प्रयासकी आवश्यकता नहीं है। हम एक-राष्ट्र और भाई-भाई तो हैं ही। केवल हमारा मन सरल हो जाये और हम दम्भपूर्ण अभिमान छोड़ दें तो तत्काल ही हमें यह ज्ञान फिर प्राप्त हो जाये।

[1] चैमनेने उसी दिन गांधीजीको इसका यह उत्तर दिया था कि उनको अर्जियाँ देने और, यदि वे नियमानुसार हों तो, नकलोंकी अनुमति देनेकी हिदायत मिली है।

२९५. पत्र : एशियाई-पंजीयकको

डर्बन
अक्तूबर २६, १९११

श्री एम० चैमने
एशियाई-पंजीयक
डर्बन भवन

महोदय,

श्री पेरुमल पिल्ले और अदालतकी आज्ञासे सेंटहेलेना टापूमें रोक लिये गये १८ अन्य ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें निवेदन है कि उक्त भारतीय यह दावा करते हैं कि उन्होंने ट्रान्सवालमें स्वेच्छया पंजीयन कराया था और उनमें से १५ व्यक्ति अपने पंजीयन-प्रमाणपत्रोंकी नकलें पानेके लिए अर्जी देना चाहते हैं।

मैंने आज तीसरे पहर मुख्य प्रवासी प्रतिबन्धक अधिकारी श्री हैरी स्मिथसे भेंट की। मेरी जानकारीके अनुसार आपने इन्हें १९०८ के अधिनियमके अन्तर्गत स्वीकृत विनियमोंके खण्ड १ के अन्तर्गत अर्जियाँ आदि लेनेके लिए अधिकारी नियुक्त किया है। श्री स्मिथने मुझे सूचित किया है कि वे इन लोगोंकी अर्जियाँ नहीं ले सकते क्योंकि वे एक बार निर्वासित किये जा चुके हैं। इन लोगोंका कहना है कि उन्हें इस कानूनके अर्थके अनुसार निर्वासित नहीं किया गया है, और यदि ऐसा हो तो भी अर्जियाँ देनेपर आप १९०८ के इस अधिनियम और विनियमोंके अन्तर्गत इनकी अर्जियाँ लेनेके लिए, और यदि वे अर्जियाँ अधिनियमकी शर्तोंके अनुसार दी गई हों तो उन्हें स्वीकार करनेके लिए बाध्य हैं।

इसलिए मैं अपने मुवक्किलोंकी ओरसे आपसे पूछना चाहता हूँ कि क्या आप श्री स्मिथ या किसी अन्य अधिकारी या व्यक्तिको प्रमाणपत्रोंकी नकलें देनेके बारेमें उनकी अर्जियाँ लेनेकी सलाह देनेको तैयार हैं?

मैं आपको यह पत्र डर्बनके पतेपर भेज रहा हूँ क्योंकि इस मामलेका निपटारा तुरन्त होना जरूरी है, कारण आपका निर्णय प्रतिकूल होनेकी स्थितिमें मेरे मुवक्किलोंका इरादा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई मोहलतके अन्दर ही इस सिलसिलेमें उसके ट्रान्सवाल प्रान्तीय विभागको अर्जी देनेका है।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २९-१०-१९११

२९९. पत्र: मगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म
कार्तिक सुदी २ [नवम्बर ४, १९११][1]

चि॰ मगनलाल,

> सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
> मुनि मन अगम यम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को॥
> दुख दाह दारिद दम्भ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
> कलिकाल तुलसीसे सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

यह अयोध्याकाण्डका अन्तिम छन्द है। इसपर विचार करना। इसकी ध्वनि मेरे कानोंमें गूंजती ही रहती है। इस कठिन समयमें भक्तिको प्रधान पद मिला है। भक्ति करनेके लिए भी यम-नियम आदि तो चाहिए ही। वे हमारी शिक्षाके मूल हैं। उनके बिना सारी चतुराई व्यर्थ है। मैं तो इसका अनुभव क्षण-क्षण कर रहा हूँ। अन्य आशीर्वाद तुम्हें क्या दूं?

चि॰ आनन्दलालके पुत्रकी मृत्यु हो गई, इससे दुःख होता है, लेकिन यह तभी जब उसका खयाल करता हूँ, यों भावनाएँ तो मर ही चुकी हैं।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी॰ डब्ल्यू॰ ४११९) से।
सौजन्य: राधाबेन चौधरी।

३००. प्रस्तावित नया प्रवासी विधेयक

गत मासकी ११ तारीखके ट्रान्सवाल लीडर में उसके केप टाउन-स्थित संवाददाताका निम्न तार छपा था:

> मुझे मालूम हुआ है कि उपनिवेश-सचिव [संसद्के] इस अधिवेशनके आरम्भिक दौरमें ही एक विधेयक प्रस्तुत करेंगे जिसका उद्देश्य ट्रान्सवालकी वर्तमान स्थितिमें सुधार करनेके अतिरिक्त संघीय प्रान्तोंमें प्रवासी कानूनका काफी हद तक एकीकरण करना भी होगा।

१. इस पत्रके लिखनेसे पता चलता है कि यह १८ जनवरी, १९११ को मगनलाल गांधीके नाम लिखे पत्र (देखिए पृष्ठ १४०) के बाद लिखा गया था; क्योंकि उस पत्रमें आनन्दलाल गांधीकी अस्वस्थताका उल्लेख है। सन् १९११ में कार्तिक सुदी २, नवम्बरकी ४ तारीखको पड़ी थी।

दीवाली मंगलवारको आ रही है। यह हिन्दुओंका बड़ा त्योहार है। हम इस अवसरपर प्रत्येक हिन्दूके लिए सुख-शान्तिकी कामना करते हैं। परन्तु जिस उपायसे हमारी कामना फलीभूत हो यह उपाय हमें नहीं सूझता। हिन्दुओंके पड़ोसियोंको सुख-शान्ति न होगी तो हिन्दू स्वयं उसका उपभोग नहीं कर सकेंगे। नया वर्ष उसीके लिए अच्छा सिद्ध होता है जिसने पिछले वर्षका अच्छा उपयोग किया हो। चौमासा ठीक न गया हो तब भी हम जाड़ोंकी फसल अच्छी होनेकी आशा रखें तो यह हवाई किले बनानेके समान होगी। ईश्वरीय नियम यह नहीं है कि जो हम चाहें वही हमें मिल जाये। नियम तो ऐसा है कि हम जिसके योग्य होते हैं वही मिलता है। अर्थात् हमारी इच्छा तभी पूरी होगी जब उसके पीछे उस इच्छाके अनुरूप करनीका बल हो।

इसलिए हम प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि जिन हिन्दुओंने इस वर्षमें सत्कर्मकी पूँजी संचित की हो जिन्होंने भारतीय-मात्रको अपना भाई समझा हो और उससे प्रेम रखा हो जिन्होंने ईमानदारीसे अपनी आजीविका अर्जित की हो और जिन्होंने दुखियोंका दुख बँटाया हो उन हिन्दुओंकी दीवाली सफल हो और नया वर्ष उनकी सद्भावनाओंको बल प्रदान करे। हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि जिन हिन्दुओंने जानते या अनजाने अपने कर्तव्यका पालन न किया हो जिन्होंने अपना स्वार्थ-मात्र सिद्ध करनेमें समय बिताया हो जिन्होंने भारतके प्रति प्रेम-भावके बजाय द्वेष-भाव रखा हो, उन हिन्दुओंमें पश्चात्तापकी भावना जाग्रत हो और नये वर्षमें उनको सद्बुद्धि प्राप्त हो जिससे उन्हें अपने कर्तव्यका ज्ञान हो। अपनी इस इच्छाको फलवती बनानेमें हम अपने पाठकोंकी सहायता चाहते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१०-१९१०

२९८ नवम्बरमें भारतीयोंका कर्तव्य

श्री दाउद मुहम्मदने जनरल बोथाको तार दिया है कि उन्हें लड़ाईका अन्त कराना चाहिए और यदि वे उसका अन्त नहीं करा सकते तो नवम्बरमें संघ-संसदके अधिवेशनके समय जो खुशियाँ मनाई जायेंगी उनमें भारतीय समाज भाग नहीं ले सकेगा। यह बात ठीक है। नवम्बर मासमें लड़ाई समाप्त न हो तो हमें शोक मनाना है। समझदार भारतीय जानते हैं कि नारायणस्वामीकी मृत्युके कारण हमें शोक मनाना चाहिए। हम उन लोगोंके राग-रंगमें भाग न लें उनके खेल-तमाशे देखने न जायें राग-रंगके समय घरमें ही बैठे रहें और अपनी दुकानोंको न सजायें तो राज्यकर्ताओंपर उसका प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। ऐसा करके हम उन्हें बता सकते हैं कि लड़ाईकी समाप्ति न होनेके कारण सारा भारतीय समाज खिन्न और अप्रसन्न है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१०-१९१०

और केपके लिए और अधिक कड़ा कानून बनानेका समर्थन करें। ईमानदारीकी बात तो यह है कि जैसा कि केप और नेटालके सर्वोच्च न्यायालयके अभी हालके निर्णयोंसे सिद्ध भी हो गया है, वहाँका कानून ऐसे ही बहुत कड़ा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९११

३०१. केपके भारतीयोंकी दशा असन्तोषजनक

हमें केरीबोनसे एक भारतीयने अंग्रेजीमें एक पत्र लिखा है। उसका कहना है कि ट्राम्सकाई आदि वतनी ताल्लुकोंमें जो केपके अधीन है, भारतीयोंको प्रवेश ही नहीं करने दिया जाता। उनमें केवल गोरे व्यापारियोंको ही जाने दिया जाता है। गोरे व्यापारी वतनियोंको लूटते हैं। एक भारतीय वेटर बनकर ट्राम्सकाईमें गया था। मजिस्ट्रेटने उसे कुत्तेकी तरह निकाल बाहर किया। उससे अनुमतिपत्र माँगा गया वह तो उसके पास था नहीं। उसको यह तक मालूम न था कि अनुमतिपत्र होता क्या है क्योंकि उसने तो यह समझ रखा था कि केपमें भारतीय जहाँ चाहें वहाँ घूम-फिर सकते हैं। इस लेखकने लिखा है कि ट्रान्सवालमें संघर्ष चल रहा है इसलिए अभी उतनी सख्ती नहीं बरती जा रही है अन्यथा केपमें हालत बिलकुल ही बिगड़ जाती।

इस पत्रपर केपके भारतीयोंको विचार करना चाहिए। केपके भारतीय संघको इस सम्बन्धमें सरकारसे लिखा-पढ़ी करना चाहिए और पूछना चाहिए कि सरकार वतनियोंके प्रदेशमें किस कानूनके आधारपर नहीं जाने देती।

इतना करके ही बैठ नहीं जाना है। संघ-संसदकी गतिविधिका अध्ययन करके हमें अपना काम बहुत सावधानीसे चलाना होगा। श्री रिच केपमें है, इसलिए केपके भारतीयोंको उनकी सहायता मिल ही सकती है। इसका लाभ उठाकर समुचित कार्रवाई की जानी चाहिए।

सुननेमें आया है कि सरकार पंजीयन कानूनको समस्त दक्षिण आफ्रिकामें लागू करना चाहती है और उसका इरादा यह है कि समस्त दक्षिण आफ्रिकामें प्रतिवर्ष केवल छ: भारतीय प्रवेश कर सकें। हमारा खयाल है कि यह बात केप और नटाल कदापि स्वीकार न करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९११

जहाँतक ट्रान्सवालका सम्बन्ध है, मुझे मालूम हुआ है कि ब्रिटिश भारतीयों-को कतिपय काफी महत्त्वपूर्ण रियायतें देनेका विचार है। इनसे दक्षिण आफ्रिकाके कानूनको कमजोर किये बिना कानून वर्तमान नियमोंकी अपेक्षा अधिक व्याव-हारिक और युक्तिसंगत बन जायेगा। इन रियायतोंमें विशेष योग्यता-प्राप्त भार-तीयोंका एक निश्चित संख्यामें प्रतिवर्ष प्रवेश भी शामिल होगा (पहले यह संख्या प्रतिवर्ष छः सुझाई गई थी किन्तु यह इससे अधिक भी रखी जा सकती है।) यह और अन्य सुधार उन सुधारोंमें से हैं जिन्हें लीडर ने कुछ पहले प्रवासी कानूनके एकीकरणके सम्बन्धमें प्रवास-सम्बन्धी प्रतिबन्धोंको सम्बन्धित सारे लोगोंके लिए अधिक सन्तोषप्रद बनानेकी दृष्टिसे आवश्यक बताया था।

इसका अर्थ जैसा कि स्वाभाविक है, यह नहीं है कि सब उपनिवेशोंमें कानून एक-जैसे हो जायेंगे क्योंकि नेटालकी स्थिति विशेष रूपसे कठिन है। नेटालमें समयसे जानेवाले प्रतिबन्धोंके सम्बन्धमें वहाँ बहुत चिन्ता अनुभव की जा रही है, क्योंकि उस प्रान्तके अधिकतर प्रतिनिधियोंका कहना है कि [यहाँके] चीनी-उद्योगका अस्तित्व बागानके मालिकों (प्लान्टर्स) द्वारा भारतीय गिरमिटियोंको लगातार पाते रहनेपर निर्भर है। नेटालके कुछ लोगोंसे यह सुझाव दिया गया है कि समुद्रतटके पास बहुत ही सीमित क्षेत्रमें इन मजदूरोंको लानेकी छूट दी जाये जिसमें गन्नेके खेत और दूसरे बागान भी हैं। सरकार वास्तवमें क्या प्रस्ताव रखेगी यह तो जनरल स्मट्स द्वारा अपना विधेयक प्रस्तुत करनेपर ही प्रकट होगा; किन्तु प्रत्येक व्यक्ति यही अनुभव करेगा कि पिछले प्रवासी कानूनके फलस्वरूप देश जिन कठिनाइयोंमें फँस गया था उन्हें देखते हुए नये विधेयकका विवरण समय रहते संसदके सदस्यों और जनता दोनोंके सम्मुख रख दिया जाना चाहिए, जिससे वे उसपर बहुत सावधानीसे विचार कर सकें।

हम नहीं जानते कि ट्रान्सवाल लीडर के संवाददाता द्वारा लगाया हुआ अनुमान ठीक है या नहीं। यदि उसका अनुमान ठीक है और नये प्रवासियोंके सम्बन्धमें बरतनेवाली व्यवस्था लॉर्ड ऍम्टहिलके सुझाये हुए आधारोंपर की गई तथा कानूनमें कोई रंगभेद नहीं किया गया तो सत्याग्रह समाप्त हो जायेगा बशर्ते कि १९०७ का अधिनियम २ भी साथ-ही-साथ वापस ले लिया जाये।

किन्तु समस्त दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंमें अन्य प्रान्तोंके प्रवासी कानूनोंके प्रस्तावित एकीकरणके सम्बन्धमें घबराहट है। केप और नेटालके भारतीय ट्रान्सवाल पंजीयन अधिनियमको स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि तटवर्ती प्रान्तोंके लिए पंजीयन बिलकुल अनावश्यक है। वे अनावश्यक रूपसे कठोर उस शैक्षणिक परीक्षाको भी स्वीकार नहीं कर सकते जो कि ट्रान्सवालकी विशिष्ट परिस्थितियोंको देखते हुए वहाँके भारतीयोंको मान्य हो सकती है। समस्त दक्षिण आफ्रिकामें प्रतिबन्धकी नीतिको ब्रिटिश भारतीयोंने स्वीकार कर लिया है किन्तु उनसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे नेटाल

और केपके लिए और अधिक कड़ा कानून बनानेका समर्थन करें। ईमानदारीकी बात तो यह है कि जैसा कि केप और नेटालके सर्वोच्च न्यायालयके अभी हालके निर्णयोंसे सिद्ध भी हो गया है, वहाँका कानून ऐसे ही बहुत कड़ा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-११-१९१

३०१ केपके भारतीयोंकी दशा असन्तोषजनक

हमें करीवोवसे एक भारतीयने अंग्रेजीमें एक पत्र लिखा है। उसका कहना है कि ट्रान्सकाई आदि वतनी तालुकोंमें जो केपके अधीन है, भारतीयोंको प्रवेश ही नहीं करने दिया जाता। उनमें केवल गोरे व्यापारियोंको ही जाने दिया जाता है। गोरे व्यापारी वतनियोंको लूटते हैं। एक भारतीय वेटर बनकर ट्रान्सकाईमें गया था। मजिस्ट्रेटने उसे कुत्तेकी तरह निकाल बाहर किया। उससे अनुमतिपत्र माँगा गया वह तो उसके पास था नहीं। उसको यह तक मालूम न था कि अनुमतिपत्र होता क्या है क्योंकि उसने तो यह समझ रखा था कि केपमें भारतीय जहाँ चाहें वहाँ घूम-फिर सकते हैं। इस लेखकने लिखा है कि ट्रान्सवालमें संघर्ष चल रहा है, इसलिए अभी उतनी सख्ती नहीं बरती जा रही है अन्यथा केपमें हालत बिलकुल ही बिगड़ जाती।

इस पत्रपर केपके भारतीयोंको विचार करना चाहिए। केपके भारतीय संघको इस सम्बन्धमें सरकारसे लिखा-पढ़ी करना चाहिए और पूछना चाहिए कि सरकार वतनियोंके प्रदेशमें किस कानूनके आधारपर नहीं जाने देती।

इतना करके ही बैठ नहीं जाना है। संघ-संसदकी मतिविधिका अध्ययन करके हमें अपना काम बहुत सावधानीसे चलाना होगा। श्री रिच केपमें हैं, इसलिए केपके भारतीयोंको उनकी सहायता मिल ही सकती है। इसका लाभ उठाकर समुचित कार्रवाई की जानी चाहिए।

सुननेमें आया है कि सरकार पंजीयन कानूनको समस्त दक्षिण आफिकामें लागू करना चाहती है और उसका इरादा यह है कि समस्त दक्षिण आफिकामें प्रतिवर्ष केवल छः भारतीय प्रवेश कर सकें। हमारा खयाल है कि यह बात केप और नेटाल कदापि स्वीकार न करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-११-१९१

३०२ सत्याग्रही किसे कहना चाहिए?

श्री अलीभाई पीरभाई, जो हमेशा सत्याग्रहियोंकी सेवा और सहायता करते रहते हैं, लिखते हैं कि श्री मेढ जिस दिन गिरफ्तार किये गये थे उसी दिन उन्हें तीन पत्र मिले थे। उन्हें पढ़कर वे तुरन्त फोक्सरस्ट गये। वहाँ श्री मुस्साकी दूकानपर स्नानादि करनेके बाद वे गिरफ्तार होनेके लिए रवाना हो गये। लगता है [उन्हें खबर लग चुकी थी कि] उनकी बहन तीन बच्चे छोड़कर चल बसी है। [वे आगे लिखते हैं], यदि वे चिट्ठियाँ मुझे दिखाई गई होतीं तो मैं श्री मेढको न जाने देता। खैर, सत्याग्रहीकी नजरमें खुशी और गम दोनों एक-से हैं। यदि श्री अलीभाई पीरभाईको पता होता और वे मेढको रोकते तो यह उनके लिए शोभनीय होता। अपनी बहनकी मृत्युका समाचार पानेपर भी रुक रहनेकी बात मनमें न लाते हुए, अपने कर्तव्यको समझकर श्री मेढ जेल चले गये। इस प्रकार उन्होंने अपने सच्चे सत्याग्रही होनेका एक और सबूत दिया है। श्री मेढ बहुत दृढ़ और मँजे हुए सत्याग्रहियोंमें से हैं। कारावासके कष्टोंको वे घोलकर पी गये हैं। हम उन्हें जितनी भी मुबारकबादी दें थोड़ी है। श्री मेढने समाजका मस्तक ऊँचा किया है।

हम कह आये हैं कि सत्याग्रही वही है जो सत्यके लिए सब-कुछ त्याग देता है — धन जाने देता है, जमीन जाने देता है, सगे-सम्बन्धियों, माता-पिता, पुत्र-कलत्र सबको छोड़ देता है और अपने प्रिय प्राण भी न्यौछावर कर देता है। जो व्यक्ति इस प्रकार सत्यकी खातिर देता है, वह पाता भी है। प्रह्लादने सत्यकी खातिर अपने पिताकी आज्ञाकी अवज्ञा की। ऐसा करके उसने न केवल सत्याग्रहकी शान रखी बल्कि पुत्रकी हैसियतसे अपने कर्तव्यका पालन भी किया। सत्याग्रही बनकर उसने अपना साथ-ही-साथ अपने पिताका भी उद्धार किया। जिसमें प्रह्लादकी-जैसी अटल निष्ठा न हो वह सत्याग्रहमें अन्ततक टिक ही नहीं सकता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९११

३०३ प्रागजी देसाईकी प्रतिज्ञा

श्री प्रागजीभाई देसाईने[1] लिखा है कि इस बार जेलमें अधिकारियोंने बहुत अत्याचार किया है। "परन्तु ज्यों-ज्यों अत्याचार किये जाते हैं, त्यों-त्यों मेरा मन मजबूत होता जाता है।" इस समय जेलमें उन कैदियोंको जिनकी सजा तीन महीनेसे कमकी है घी देना बिलकुल बन्द कर दिया गया है। इसलिए उन्होंने जिस भोजनके साथ घी दिया जाता था उसे लेना बन्द कर दिया। इस सम्बन्धमें प्रागजीने ही अन्त तक मानी

१. प्रागजी खंडूभाई देसाई; एक सत्याग्रही, जो इंडियन ओपिनियनमें प्रायः गुजरातीमें लिखा करते थे।

प्रतिज्ञा निभाई और उस प्रकारका भोजन नहीं लिया। फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया किन्तु उन्होंने इसकी परवाह नहीं की। हम श्री प्रागजीको अपनी टेक रखनेके लिए बधाई देते हैं। श्री प्रागजीने यह भी लिखा है कि श्री डीसलको मैत्रेकी बाल्टी न उठानेके सम्बन्धमें दो बार सजा दी गई थी। इस समय उनको रसोईके काममें रखा गया है।

श्री प्रागजीको जेलसे रिहा होते ही अपनी बहनकी मृत्युका समाचार मिला। इससे उन्हें बहुत दुःख हुआ परन्तु तिसपर भी उन्होंने संघर्षसे अलग न होनेका निश्चय प्रकट किया है। उन्होंने लिखा है, "जबतक लड़ाईका निपटारा नहीं होता तबतक सत्याग्रही कोई भी अन्य कार्य हाथमें नहीं ले सकता।"

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९११

३०४. बीकानेरके महाराजा

समाचार मिला है कि मैसूरके महाराजाकी भाँति बीकानेरके महाराजाने भी सत्याग्रह-संघर्षकी सहायता की है। यह सहायता हमारे लिए बहुत मूल्यवान है। नीचेसे ऊपर तक सारा भारत यह समझने लगा है कि ट्रान्सवालमें किस प्रकार हमारा अपमान किया जा रहा है। फलस्वरूप सम्भव है संघर्षका अन्त जल्दी आ पहुँचे। परन्तु इस स्थितिमें दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका दायित्व बढ़ जाता है। ट्रान्सवालके संघर्षके वास्तविक मूल्यको समझते हुए अधिकाधिक भारतीयोंको जाग उठना चाहिए। इस संघर्षमें प्रतिष्ठा ही नहीं वरन् यहाँके भारतीयोंका स्वार्थ भी निहित है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९११

३०५. तार : मुख्य प्रवासी-अधिकारीको

[डर्बन
नवम्बर ६, १९११ से पूर्व]

श्री गांधीने प्रिटोरिया-स्थित प्रवासी अधिकारीको तार भेजा था कि उनके साथ श्रीमती सोजा और उनके बच्चे भी आयेंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-११-१९११

1. देखिए "पत्र : अखबारोंको" पृष्ठ ३७८।

३०६. तार : मुख्य प्रवासी-अधिकारीको

[फोक्सरस्ट [?]
नवम्बर ७, १९१][1]

श्री गांधीने प्रवासी अधिकारीके नाम एक तार भेजा था जिसमें कहा गया था कि वे उस परिस्थितिको, जो पहलेसे ही काफी उलझी हुई है, और अधिक नहीं उलझाना चाहते। तारमें यह भी कहा गया था कि श्रीमती सोढा ट्रान्सवालमें स्थायी निवासका अधिकार नहीं चाहतीं; टॉल्स्टॉय फार्ममें उनकी देखभाल की जायेगी और संघर्ष समाप्त होते ही वे ट्रान्सवालसे चली जायेंगी।[2]

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९१

३०७. पत्र : मगनलाल गांधीको

[नवम्बर ७, १९१ के बाद][3]

चि० मगनलाल,

मनमें एक ही बात घूम रही है कि सबकी रसोई साथमें बना करे। इस काममें जबर्दस्ती नहीं करनी है। यदि तुम सन्तोक और अमीसे बराबर कहते-सुनते रहोगे तो बात बन जायेगी; यदि यह न हो पाया तो मेरे आनेपर हो जायेगा। तुम जिस तरह इस बार मेरे कमरेमें सोते थे, चाहता हूँ कि हमेशा ऐसा ही किया करो। अच्छा हो सन्तोक और अमी एक ही कमरेमें सोया करें। साथ [रसोई और] भोजन करनेकी योजना आरम्भ होनेसे पहले साथ-साथ सोनेकी योजना शुरू हो जाये तो भी ठीक होगा। मुझे इस बातका पता नहीं कि वहाँ साँपोंका कितना भय रहा करता है, परन्तु कुछ मिलाकर [फर्शपर ही] बिस्तर बिछाकर सोनेका अभ्यास अच्छा है।

1. यह तार ७ नवम्बरको प्रिटोरियामें श्रीमती सोढापर अभियोग चलाये जानेके तुरन्त बाद भेजा गया था; देखिए "पत्र : अखबारोंको", पृष्ठ ३०९।

2. मुख्य प्रवासी-अधिकारीने अपने उत्तरमें श्रीमती सोढाको ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेकी अनुमति देनेसे इनकार करते हुए कहा था कि यदि वे [illegible] नहीं और वहाँ ही [illegible] तो उनके साथ एक निषिद्ध प्रवासीका-सा बर्ताव किया जायेगा।

3. इस पत्रके प्रथम अनुच्छेदमें [illegible] की चर्चा की गई है, उससे पता चलता है कि यह [illegible] श्री पुरुषोत्तमदास देसाईको ७ नवम्बर, १९१२ को [illegible] पश्चात् लिखा गया होगा।

मैंने तुमपर बड़ा बोझ डाल रखा है; किन्तु मैं देखता हूँ कि तुम उसे उठा सकते हो। यदि यह सब निश्चिन्त मनसे किया करो तो बोझ प्रतीत नहीं होगा।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी॰ डब्ल्यू॰ ४९४) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

३०८. तार : गृह-मन्त्रीको[1]

[जोहानिसबर्ग
नवम्बर ८, १९११]

ट्रान्सवालके अपंजीकृत निवासी आर॰ एम॰ सोढा सत्याग्रहीकी हैसियतसे जेलमें। प्रवासी अधिकारीको समुचित सूचना देनेके बाद श्रीमती सोढाने अठारह महीने, ९ वर्ष और १२ वर्षके तीन बच्चोंके साथ नेटालसे टॉल्स्टॉय फार्म जाते हुए सीमा पार की। उन्हें फोक्सरस्टमें रोका गया। श्रीमती सोढापर निषिद्ध प्रवासी होनेका अभियोग। मुकदमेकी पेशी मुल्तवी कर दी गई। पति बरबाद हो गये और उनका नेटालका घर चौपट हो गया। श्रीमती सोढा स्थायी रूपसे नहीं बल्कि अपने पतिकी निरन्तर कारावासकी अवधि तक ही रहेंगी। उलझी हुई स्थितिको संघ और नहीं उलझाना चाहता। अभीतक भारतीय स्त्रियाँ नहीं सताई गई थीं। संघको भरोसा है कि मुकदमा उठा लिया जायेगा।[2]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–११–१९११

---

१. ब्रिटिश भारतीय संघ द्वारा भेजे गये इस तारका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था; देखिए "पत्र : अखबारोंको", १०९।

२. गृह-मन्त्री स्मट्सकी ओरसे ९–११–१९११ को उत्तर दिया गया : "आपका कलका तार। चूंकि न तो सोढा और न उनके परिवारको ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेका हक है, इसलिए उन्हें खेद है कि वे निषिद्ध प्रवासियोंके प्रवेशको मना करनेवाले कानूनकी व्यवस्थाको कमजोर नहीं कर सकते।"

३०९ भाषण : चीनियोंकी सभामें[1]

[नवम्बर ८, १९११]

श्री गांधीने कहा कि श्री रिच तथा श्री पोलककी मददके बिना भारतीयोंके लिए इस संघर्षको अबतक चला सकना असम्भव होता। उन्होंने कहा कि एशियाई पुरुषोंकी बात तो छोड़िए, अब तो सरकारने उनके बच्चों और स्त्रियों तक से लड़ाई छेड़ दी है। उन्होंने इस कारण इस संघर्षमें भारतीयोंको अधिक शक्ति लगानेकी आवश्यकता बताई।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-११-१९११

३१० तार : गृह-मन्त्रीको[2]

[जोहानिसबर्ग]
नवम्बर १०, १९११

श्रीमती सोढा सम्बन्धी तारके[3] सिलसिलेमें। क्या मन्त्री महोदय अधिनियमके अन्तर्गत अस्थायी अनुमतिपत्र देने और मुकदमा वापस लेनेकी कृपा करेंगे? संघकी हार्दिक इच्छा है कि संघर्षमें महिलाओंको न घसीटा जाये।[4]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-११-१९११

१. जोहानिसबर्गमें; श्री रिच और श्री पोलकके प्रति सम्मान प्रकट करनेके लिए।

२. ब्रिटिश भारतीय संघ द्वारा गृह-मन्त्रीको भेजे गये इस तारका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था; देखिए "पत्र : अखबारोंको", पृष्ठ १७९।

३. देखिए "तार : गृह-मन्त्रीको", पृष्ठ १७५।

४. उत्तरमें मन्त्री महोदयने ११-११-१९११ को निम्नलिखित तार दिया था : "आपके १० तारीखके तारके सिलसिलेमें। रोडेशिया-स्थित प्रवासी-अधिकारीको हिदायत दे दी गई थी कि श्रीमती सोढाको रोकें और आनेपर प्रवासी अधिनियमके अन्तर्गत उनके विरुद्ध कार्रवाई की जाये — अब तो मजिस्ट्रेटने उन्हें मुकदमेके लिए बुला भेजा है। खेद है कि अस्थायी अनुमतिपत्रकी मंजूरी नहीं दी जा सकती।"

२११ पत्र मगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म
कार्तिक सुदी ९ [नवम्बर ११ १९११][1]

चि मगनलाल

तुमने मुझसे जिस पत्रका जिक्र किया था उसे मैंने आज देखा।

नारणदासने तुम्हारी मार्फत पत्र भेजनेको लिखा इस बातपर मैंने ऐसी कोई टीका नहीं की कि यह भौंडा है। मेरे मनमें ऐसा खयाल तक न था। उसने इस प्रश्नके उत्तरमें कि उसे क्या करना चाहिए, मैंने उसे यह लिखा था[2] कि सबसे पहले "अभयं सत्त्वसंशुद्धि[3] के अनुसार अभय सिद्ध करना चाहिए। मैंने यह बात ऐसा समझकर लिखी थी कि यदि वह कोई सार्वजनिक कार्य करना चाहता हो तो उसे सबसे पहले इसी गुणको साधना चाहिए। सच्ची सार्वजनिक सेवा तभी सम्भव है जब मान-मर्यादा धन-सम्पत्ति आदि स्त्री कुटुम्बीजन और मृत्युके सम्बन्धमें निर्भयता आ जाती है। और तभी मोक्ष-रूपी पुरुषार्थ सिद्ध किया जा सकता है।

चूँकि नारणदासको आजकल पत्र लिखनेका अवकाश नहीं है इसलिए इसीको उसके पास भेज देना। प्रेसके सम्बन्धमें समय मिलनेपर बादमें लिखूँगा।

मणिलालका क्या हाल है, सूचित करना।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी डब्ल्यू ४९४१) से।
सौजन्य राधाबेन चौधरी।

१ यह पत्र २९-१०-१९११ को नारणदास गांधीके नाम लिखे पत्र (देखिए पृष्ठ २१३-१४) के पश्चात् लिखा गया जान पड़ता है; क्योंकि उस पत्रमें गांधीजीने अभय पर अपने विचार प्रकट किये थे। १९११ में कार्तिक सुदी नवमी अंग्रेजी तारीख ११ नवम्बरको पड़ी थी।

२ देखिए "पत्र नारणदास गांधीको" पृष्ठ २१३-१४।

३ भगवद्गीताके १६ वें अध्यायमें अभय को दैवी गुणोंमें प्रथम स्थान दिया गया है।

३१२. पत्र : अखबारोंको[1]

[जोहानिसबर्ग]
नवम्बर १४, १९११

महोदय,

पूनियाके प्रसिद्ध मामलेके बाद भारतीय समाज समझ रहा था कि सीमा-पार करनेवाली स्त्रियोंको रोका-टोका नहीं जायेगा। मैं ऐसी स्त्रियोंको जानता हूँ जिनको निर्विरोध सीमा-पार करने दिया गया था। किन्तु अभी एक महीनेसे कुछ पहले जब श्रीमती मायी अकेली यात्रा कर रही थीं और उनको रोका गया मैं समझ गया कि अब नीति बदल गई है। इसलिए जब-कभी सत्याग्रहियोंकी पत्नियों अथवा अन्य महिला रिश्तेदारोंने नेटालसे सरहदके इस पार आना चाहा तब सावधानीके विचारसे मैं प्रिटोरिया-स्थित मुख्य प्रवासी-अधिकारीको जो एशियाइयोंके पंजीयक भी हैं इन बहनोंकी गतिविधि सूचित करता रहा हूँ और साथ ही सम्बन्धित सत्याग्रहियोंसे उनका रिश्ता क्या है, यह भी बताता रहा हूँ। और अभीतक इसमें कोई वास्तविक कठिनाई पैदा नहीं हुई थी। मैं आठ दिन पहले श्रीमती सोढाके साथ नेटालसे लौटा। वे इस समय डीपक्लूफ जेलमें कैद एक सत्याग्रहीकी पत्नी हैं। उनका अपराध यह है कि स्वतन्त्र ब्रिटिश प्रजाजनके नाते और एशियाई कानूनसे भिन्न इस प्रान्तके प्रवासी अधिनियममें बताई गई योग्यता रखनेके नाते उन्होंने इस प्रान्तमें प्रवेश पानेके अपने अधिकारकी परीक्षा करनी चाही।

नेटालसे रवाना होनेसे पहले हमेशाकी भाँति इस बार भी प्रवासी अधिकारीको मैंने तार द्वारा सूचना भेज दी थी कि मैं श्रीमती सोढाके साथ सरहदको पार कर इधर आ रहा हूँ।[2] परन्तु फोक्सरस्ट पहुँचनेपर मुझे ज्ञात हुआ कि पुलिसको हिदायतें मिल चुकी हैं कि वह श्रीमती सोढाको रोक ले। मेरे साथ कुछ अन्य सत्याग्रही भी थे। उनके सहित श्रीमती सोढाको लेकर मैं गाड़ीसे उतर गया। श्रीमती सोढाके साथ उनका एक गोदका एक तीन सालसे कम उम्रका और एक आठ सालका बच्चा भी है। मैं उन्हें और उनके बच्चोंको चार्ज दफ्तर में ले गया जहाँ मुझे श्रीमती सोढाको लेकर दूसरे दिन सुबह हाजिर होनेके लिए कहा गया। जब मैंने इसका जिम्मा लिया तब उन्हें मेरे साथ जानेकी इजाजत मिली। कहनेकी जरूरत नहीं कि इससे पहले श्रीमती सोढाने अपने जीवनमें न तो चार्ज दफ्तर देखा था और न कभी पुलिसके सिपाहीने उनसे बातचीत की थी।

एक भारतीय दूकानदारने कृपापूर्वक उनके और उनके बच्चोंके रहने तथा खानेका प्रबन्ध किया। दूसरे दिन उनपर निषिद्ध प्रवासी होनेका अभियोग लगाया गया और

१. यह इंडियन ओपिनियनमें "श्रीमती सोढाका मुकदमा" शीर्षकसे दक्षिण आफ्रिकी समाचारपत्रोंके नाम एक पत्रके रूपमें प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए "तार: मुख्य प्रवासी-अधिकारीको" पृष्ठ २०१।

मामलेकी पेशीकी अगली तारीख २१ मुकर्रर करके निजी मुचलकेपर उन्हें छोड़ दिया गया। यह सोचकर कि शायद श्रीमती सोढा किसी गलतफहमीके कारण गिरफ्तार की गई हैं मैंने मुख्य प्रवासी-अधिकारीको फिर तार[1] दिया जिसमें उनके बच्चोंके बारेमें जानकारी देते हुए बताया कि वे टॉल्स्टॉय फार्म जा रही हैं और लड़ाई समाप्त होते ही वे ट्रान्सवालसे चली जायेंगी। मैंने तारमें यह भी बता दिया कि अपने पतिके जेलसे छूटने तक ही वे टॉल्स्टॉय फार्ममें रहेंगी। इसका जवाब मुझे फोक्सरस्टमें यह मिला कि यदि श्रीमती सोढा तुरन्त नेटाल नहीं लौट जायेंगी तो उनपर एक निषिद्ध प्रवासी होनेके नाते मुकदमा चलाया जायेगा। परन्तु चूँकि मामलेकी तारीख आगे बढ़ा दी गई थी इसलिए उन्होंने और मैंने अपनी यात्रा जारी रखी। कोई और नई उलझनें पैदा न हो जायें इसलिए ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री काछलियाने गृह-मन्त्रीको तार[2] द्वारा गिरफ्तारीसे सम्बन्धित सारी परिस्थिति बताकर उनसे प्रार्थना की कि श्रीमती सोढापर से मामला उठा लिया जाये। परन्तु मन्त्रीने नकारात्मक जवाब दिया और कहा कि श्रीमती सोढाके पति निषिद्ध प्रवासी हैं। चूँकि ब्रिटिश भारतीय संघ इस विवादमें स्त्रियोंको नहीं लाना चाहता था इसलिए उसने मन्त्री महोदयसे फिर प्रार्थना[3] की कि श्रीमती सोढाको अस्थायी अनुमतिपत्र ही दे दिया जाये। परन्तु मन्त्रीने ऐसा करनेसे इनकार कर दिया।

चूँकि श्री सोढा अब अठारह महीनोंसे लगभग लगातार जेलमें हैं उनका परिवार बिखर गया है और दारिद्र्यावस्थामें पहुँच गया है और चूँकि सत्याग्रहियोंके परिवारोंका पालन टॉल्स्टॉय-आश्रममें ही सार्वजनिक चन्देसे किया जा रहा है इसीलिए श्रीमती सोढाने अस्थायी रूपसे ट्रान्सवालमें प्रवेश किया है।

यह मामला अभी अदालतके विचाराधीन है। इसलिए इसके कानूनी पहलुओंके बारेमें मैं अभी कुछ नहीं कहना चाहता। सम्भव है श्रीमती सोढाने प्राविधिक रूपसे कानून भंग किया हो। यदि ऐसा हो तो जहाँतक सरकारका सम्बन्ध है यह अपराध उन तमाम भारतीय महिलाओंने भी किया है जिनको ट्रान्सवालमें आने दिया गया है और जिनका मैंने जिक्र किया है क्योंकि सरकारका दावा तो निःसन्देह यही है कि वे सारे भारतीय जिन्हें पंजीयन अधिनियमके मातहत निर्वासित किया गया है निषिद्ध प्रवासी हैं। परन्तु ऐसा लगता है कि सरकार श्री सोढा और अन्य सत्याग्रहियोंमें कुछ भेद कर रही है, क्योंकि श्री सोढा ट्रान्सवालके युद्ध-पूर्व कालके अपंजीकृत निवासी हैं और दूसरे सत्याग्रही पंजीकृत निवासी हैं। इसीलिए दूसरे सत्याग्रहियोंकी पत्नियों और परिवारोंको जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, बगैर रोक-टोक प्रान्तमें आने दिया गया है।

एक सत्याग्रहीकी पत्नी होनेके नाते श्रीमती सोढाके सामने अब इसके सिवा *कोई चारा नहीं है कि कानूनकी दृष्टिसे अपराधी सिद्ध होनेपर वे या तो जेल जायें* या निर्वासित हों। परन्तु भारतीय स्त्रियोंको इस तरह एकाएक सताना क्यों शुरू किया गया है? यह सताना ही है इसे कानूनी कार्रवाई तो नहीं कहा जा सकता। सरकारकी

1. देखिए "तार : मुख्य प्रवासी-अधिकारीको" पृष्ठ ३०४।
2. देखिए "तार : गृह-मन्त्रीको" पृष्ठ ३०५।
3. देखिए "तार : गृह-मन्त्रीको" पृष्ठ ३०८।

पुरुषोंसे तो लड़ाई है ही। अब यह पंजीकृत माता-पिताओंके एक खास वर्गके बच्चोंको उपनिवेशसे बाहर निकालनेकी कोशिश कर रही है। परन्तु हम अपने स्त्री-समाजके विरुद्ध ऐसे अपुरस्कृत आक्रमणके लिए तैयार नहीं थे। श्रीमती सोढ़ाकी किसीसे कोई व्यापारिक प्रतिस्पर्धा नहीं है। उनकी प्रकृति निस्सन्देह निर्दोष है। समस्त दक्षिण आफ्रिकामें शायद ही उनसे अधिक शान्त और सौम्य महिला मिले। देशके आम कानून (कॉमन लॉ) के खिलाफ भी उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है। अधिकारियोंको सन्तुष्ट करनेका हर सम्भव उपाय किया जा चुका है। मालूम होता है अब वे स्त्रियोंको सजा देनेपर तुल गये हैं क्योंकि उन्होंने देख लिया है कि उनके पतियोंको दी गई सजाएँ अपने उद्देश्यमें निष्फल साबित हुई हैं। स्त्रियोंके विरुद्ध छेड़ गये इस युद्धके समाचार जब बाहर पहुँचेंगे तब समस्त दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयों और भारतकी जनतापर विशेषतर इसका कितना भयानक असर होगा, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। गृह-मन्त्रीको स्पष्ट ही इस बातकी कोई चिन्ता नहीं दीख पड़ती। किन्तु यह कल्पनातीत है कि श्रीमती सोढ़ाके खिलाफ की जा रही इस अन्यायभरी अत्यन्त निर्दयतापूर्ण और अनावश्यक कार्रवाईको दक्षिण आफ्रिकाकी जनता पसन्द करेगी। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसपर राजनिष्ठ महिला संघ (लॉयल विमेन्स गिल्ड) तथा इसी तरहकी अन्य संस्थाओंको विचार करना चाहिए। एशियाइयोंके आव्रजनके प्रश्नपर अथवा सामान्य सत्याग्रहके प्रश्नपर उनके कुछ भी विचार हों लेकिन क्या दक्षिण आफ्रिका संघके ईसाई स्त्री-पुरुष सरकार द्वारा शासनका मजाक बनानेके इस नवीनतम प्रयासकी एक स्वरसे निन्दा नहीं करेंगे?

मुझे विश्वास है कि श्रीमती सोढ़ाका यह कार्य शासनकी अवज्ञा नहीं गिना जायेगा। इस देशके विचित्र कानूनोंसे वे उतनी ही अनजान हैं जितना कि एक नवजात शिशु हो सकता है। अगर कोई अपराधी है तो वह इस पत्रका लेखक ही है जिसकी सलाह और सहायतासे उक्त महिलाने संघके इस भागमें प्रवेश किया है। जो हो जिस समय यह प्रवेश एक शाही उपनिवेश या मुक्त राज्य समझकी सरकारका एक कृपापूर्ण कार्य माना जा रहा है। बात सन् १९ ९की है। केप टाउनके डॉ॰ अब्दुर्रहमान बगैर अनुमतिपत्र ट्रान्सवालमें चले आये। इसकी खबर लॉर्ड सेल्बोर्नको लगी। उन्होंने डॉ॰ अब्दुर्रहमानके कार्यकी वैधताका कोई सवाल उठाये बिना कैप्टन हैमिल्टन फाउलको जो उस समय अनुमतिपत्रोंके [महकमेके] मुख्य सचिव थे आदेश दिया कि डॉ॰ रहमानके पास अनुमतिपत्र भेज दिया जाये। परन्तु आजकी कल्याणी और उत्तरदायी संघ-सरकारमें इतनी शालीनता और स्त्रियोंके प्रति इतना दाक्षिण्य कहाँ कि वह एक निर्दोष भारतीय महिलाको भी तंग करनेसे बाज आये!

आपका

मो॰ क॰ गांधी

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, १५-११-१९११

३१३ छगनलाल गांधीको लिखे पत्रका अंश

[नवम्बर १५, १९१ के आसपास][1]

[सो] देख सकता हूँ। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यदि वह स्थान तुम्हें अनुकूल न पड़ता हो तो तुम्हारा यहाँ आ जाना ही ठीक होगा। काशीको[2] यहाँ अमीतक बुलाया जा सकता है और वह तुम्हारी अनुपस्थितिमें भी यहाँ रह सकती है। मेरी इच्छा है कि तुम स्वस्थ-चित्त हो जाओ।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ५०७१) से।
सौजन्य : छगनलाल गांधी।

३१४ पत्र : मगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म
कार्तिक सुदी ११ [नवम्बर १५, १९१][3]

चि० मगनलाल,

देशकी स्थिति बहुत खराब हो चली है। प्लेगके बारेमें मैंने बहुत सोचा है। मुझे लगता है कि उसका आना ठीक ही हुआ। अन्य सब देशोंसे वह समूल नष्ट किया जा सकता है परन्तु भारतसे नहीं। हमने भारतको जो पुण्यभूमि है, धर्मका मक्का अर्थ लगाकर या धर्मको पूर्णतया छोड़कर अधर्म-भूमि बना दिया है। इसीलिए [प्लेग] वहाँसे [समूल] नहीं जाता। लोगोंने इधर-उधर भागते फिरना तो सीखा है, परन्तु वे अपने मनकी एक भी वृत्ति नहीं बदलते। वे अधममय आचरण करते ही रहते हैं और अपने इर्द-गिर्द स्वच्छता बनाये रखने आदिके नियमों तक का नहीं सीखते। उन्हें जो भी अन्धविश्वास पूर्ण उपाय बता दिया जाता है, बस वही करनेको तत्पर रहते हैं। यह बात किसीको नहीं सूझती कि पीछे रह जानेवाले उन गरीबोंका क्या हाल होगा जो भाग कर नहीं जा सकते। इस तरह हम कैसे सुधर सकते हैं? हमारा कुटुम्ब भी इस आरोपसे मुक्त नहीं है। फिर यदि स्वदेशमें ज्वर इत्यादिके समाचार मिलते हैं तो उसमें अचरजकी कौन-सी बात है?

१. इसकी सामग्रीसे यह प्रतीत होता है कि यह अंश उसी समय लिखा गया था जब मगनलाल गांधीको अगला पत्र लिखा था; देखिए अगला शीर्षक।

२. छगनलाल गांधीकी पत्नी जो उन दिनों भारतमें थीं।

३. लगता है कि यह पत्र १९११ में दक्षिण आफ्रिकामें छगनलाल गांधीकी अनुपस्थितिमें लिखा गया था। कार्तिक सुदी ११ उस वर्ष नवम्बर १५ तारीखको पड़ी थी।

ऐसी परिस्थितिमें काशीको यहाँ बुलानेमें तुम्हारा मन हिचकता है या लगता है कि अविनय हो जायगी सो सब समझमें आ सकता है। फिर भी यह बात विचार करने योग्य है। छगनलाल काशीको ले जाकर अब पूछ रहा है और हरिकी ऐसी ही इच्छा थी ऐसा उद्गार प्रकट करके अपनी सफाई दे रहा है। हम अपनी भूल स्वीकार करनेके पश्चात् ही हरिकी इच्छा की बात कर सकते हैं। अन्य प्रकारसे हरि इच्छा की बात करना मुझे अज्ञानसूचक प्रतीत होता है। [हमें मनन करना चाहिए कि] यह हरि-इच्छा क्या वस्तु है।

काशीको यहाँ बुला लेनेमें तुम्हें आना-पीछा नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसके बिना दूसरे आयेंगे ही नहीं और आना भी चाहें तो उनके सामने कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी। तुम इस बातपर गौर करनेकी कोशिश करना कि काशीसे कोई वास्तविक सहायता मिल सकेगी या नहीं।

मुझे ऐसा लगा करता है कि तमिलका अध्ययन तुमसे बन पड़ेगा और किसीसे नहीं। इसलिए तुम उसके अध्ययनमें लगे ही रहना।

यहाँ बहुत बच्चे हो गये हैं उनमें से बहुतेरे तो बिना माँके हैं। यह प्रयोग कठिन है — भयावह भी है। रामा[1] और देवाका[2] क्या होगा इसका कुछ निश्चय नहीं।

ठक्करने आकर अपना काम सँभाल लिया है, इसलिए मेरा खयाल है कि तुम्हारा बोझ कुछ हल्का हो जायेगा। उससे भी कहना कि टॉल्स्टॉयकी पुस्तक ले।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती (सी डब्ल्यू ४९४२) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

३१५ पत्र : मगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म
[नवम्बर १८, १९१ के बाद][3]

चि० मगनलाल,

साथमें वन्दे मातरम् की स्वरलिपि है। बने तो सीख लेना।

स्वामीजीके सम्बन्धमें नेटाल ऐडवर्टाइज़र के आधारपर लिखना मरे हुएको मारनेके समान है। लिखनेका अवसर तब था जब उनका पत्र [नेटाल] विटनेस में प्रकाशित हुआ था। वह अवसर तो यों ही निकल गया। अगर लिखनेसे उसका

१. गांधीजीके तृतीय पुत्र रामदास।
२. गांधीजीके चतुर्थ पुत्र: देवदास।
३. पत्रमें पोलकके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र नवम्बर १८, १९१ को उनकी रिहाईके बाद लिखा गया था।

अथवा किसीका भला हो सके तभी हम लिखें। लेकिन ऐसा अवसर अब नहीं रहा। आया था पर निकल गया। लोगोंने यदि धीरज रखी तो यह मनुष्य तो अपने ही हाथों मर मिटेगा। उसके काम ही उलटे हैं। मौलवीके विरुद्ध हमने क्यों नहीं लिखा? ऐसे तो अनेक उदाहरण हैं। तुम्हें कोई कुछ सुनाये तो उसके साथ धीरजसे बात करना। इस्माइल गोराके पीछे पड़ना। न दें तो फिर मुझे सूचित करना। मैं पत्र लिखूंगा। इसपर भी न दें तो विज्ञापन बन्द कर देना। तुम्हारा पत्र पानेपर मैं लिखूंगा। यह व्यक्ति अव्यवस्थित है और उसके मनमें तनिक भी सन्तुलन नहीं है यह हम जानते हैं।

'रिसेशन ऑफ द सेन्सेज'[1] नामकी अमूल्य पुस्तक भेज रहा हूँ। हिन्दू शास्त्र जाननेवालोंके लिए उसमें एक भी विचार नया नहीं है। तुम इसे तत्काल पढ़ डालना। और मगनलालको भी समझाना। बादमें भी वेस्टको दे देना।

पोलकके कथनसे पता चलता है कि इस बार हरिलालने जेलमें कमाल किया है। उपवास उसने पहल करके ही शुरू किया और बादमें अन्न लोपोल भी किया। ज्यों ही घी मिलन लगा त्यों ही वह स्वेच्छासे दूसरी जेलमें चला गया। लोग उसकी बहुत प्रशंसा करते हैं और प्रागजी देसाई भी। वह तो मुझसे भी बढ़ गया जान पड़ता है। होना भी यही चाहिए।

कुमारस्वामीकी[2] पुस्तक भी बालककी किताबोंमें या रुस्तमजी सेठके यहाँ पड़ी है। उसे निकालकर फुरसत मिलनेपर पढ़ जाना। पढ़ने योग्य है। उसमें शासन और शालाके विषयमें जो-कुछ लिखा है वह ठीक ही जान पड़ता है। दूसरी बातें भी पढ़ने लायक हैं।

पुरुषोत्तमदास भी हड़तालमें शामिल था। वह पहली ही जेल-यात्रामें आधी लपेटमें आ गया।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४९४२) से।

सौजन्य: राधाबेन चौधरी।

१. किंग [illegible] द्वारा रचित।

२. डॉ० आनन्द के० कुमारस्वामी (१८७७-१९४७), एक प्रमुख कला समीक्षक तथा भारतीय शिल्प विशेषज्ञ; भारतीय कला पर ... 'भारतीय राष्ट्रीयता', 'शिव', 'हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म' आदि ग्रन्थोंके लेखक। यहाँ जिस पुस्तकका उल्लेख है वह सम्भवतः 'एसेज इन नेशनल आइडियलिज़्म' है।

३१६ मगनलाल गांधीको लिखे पत्रका अंश[1]

टॉल्स्टॉय फार्म

[नवम्बर १६, १९११ के बाद]

पुस्तकालयके लिए है। श्री वेस्टको दिखाना। उसमें पहले पृष्ठपर कौमी सम्बन्धमें जो कविता है उसे उतार लेना और इंडियन ओपिनियन में सुविधा होने प्रकाशित करनेके लिए कहना। दूसरी [पुस्तिका] सम्यतापर लिखी हुई एक छोटी पुस्तिका है। उसे पढ़ जाना और श्री वेस्टसे कहना कि उसमें से भी कुछ ले लें। पुअीवर्स ट्रैक्ट्स के आधारपर है। कमनलालने भेजी है। स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्ध टॉल्स्टॉयकी पुस्तक कल भेज चुका हूँ।

हैजेके सम्बन्धमें तुमने बीरजी मेहताका जो उदाहरण दिया है वह ठीक है जहाँ बाह्य स्वच्छताका ध्यान रखा जाता हो वहाँ यह रोग न होता हो ऐसी तो बात नहीं है। केवल यही देखनेमें आता है कि जहाँ अपने शरीरकी और आसपास स्वच्छता रखी जाती हो वहाँ यह रोग कम फैलता है। लेकिन यह निश्चित है कि जहाँ पूर्ण रूपसे आन्तरिक शुचिता हो वहाँ हैजा या दूसरे रोग नहीं फटकते। पर शुचिताको तो विरला ही पुरुष महा प्रयत्न करनेपर भी शायद ही पहुँचता है। पहुँचनेके लिए हमें   ।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी॰ डब्ल्यू॰ ४९४४) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

३१७ जोहानिसबर्गको चिट्ठी

[नवम्बर १७, १९११ के पूर्व]

श्रीमती रम्भाबाई सोढा

इस मुकदमेकी सुनवाई शायद २२ तारीखको होगी इसमें गवाही देनेके लिए श्री सोढाके नाम समन्स जारी किये गये हैं। श्रीमती सोढाके उपनिवेशमें वैध रूपसे प्रविष्ट होनेका प्रश्न न उठे और जमरुल स्मट्सको कोई बहाना न मिले इसलिए श्री काछलियाने उनको तार[3] दिया कि रम्भाबाई लड़ाई समाप्त होने

१. इस पत्रके पहले दो पृष्ठ और चौथे पृष्ठके नीचेका भाग अप्राप्य है। पत्रके पृष्ठके ऊपर श्री छगनलाल मगनलाल गांधीको लिखा गया था।

२. इसमें टॉल्स्टॉयका जैसा उल्लेख आता है उससे लगता है कि यह पत्र ... गया था।

३. देखिए "तार : पूर्व-मन्त्रीको", पृष्ठ १०५।

सौन्द आर्येगी। उनका उत्तर आया है कि रम्भाबाई भिधिपिद्ध प्रवासी भारतीयकी पत्नी हैं इसलिए वे प्रवेश नहीं कर सकतीं। अतः मैं श्री काछलियाने तार[1] दिया कि लड़ाईमें स्त्रियोंको सम्मिलित करनेका इरादा नहीं है इसलिए हम प्रवासी अधिनियमके अनुसार मर्यादित अवधिका अनुमतिपत्र लेनेके लिए तैयार हैं। स्मट्स साहबने इसका उत्तर भी नकारात्मक दिया है। रम्भाबाईने जेल जानेका निश्चय किया है और उनके पीछे बहुत सी तमिल स्त्रियाँ भी जानेके लिए तैयार हो रही हैं। अब देखना है क्या होता है। इस सम्बन्धमें श्री गांधीने अखबारोंको पत्र लिखा है।[2]

समझौतेकी कोशिश

अफवाह है कि कुछ दिनोंमें समझौता हो जायेगा। सोमवारको स्टार में एक लम्बा लेख छपा है। इसमें भी कहा गया है कि समझौता होनेका अवसर आ पहुँचा है। समझौतेमें भारतीय नेताओंके बुलाये जानेकी सम्भावना तो कम ही है। इसलिए ऐसा जान पड़ता है कि जो होना होगा ब्रिटिश सरकारके साथ सीधे परामर्शसे ही होगा।

समझौतेका स्वरूप क्या होगा ?

इस प्रश्नपर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। जान पड़ता है कि यहाँ भारतीयोंकी जो माँग है वह मान ली जायेगी अर्थात् कानूनमें तो आने-जानेके अधिकार जैसे भारतीयोंके हैं वैसे ही गोरोंके होंगे। अर्थात् प्रवेश दोनों यूरोपीय भाषाकी परीक्षा देकर ही कर सकेंगे। किन्तु साथ ही परीक्षामें उत्तीर्ण हो जानेपर भी विभिन्न जातियोंके कितने लोग आ सकते हैं इसका निर्णय गवर्नर जनरलकी इच्छापर निर्भर रहेगा। १९०७ का काला कानून रद कर दिया जायगा। इतना हो जानेसे तो भारतीयोंकी प्रतिष्ठाकी रक्षा हो जायेगी और उनका मान रह जायेगा।

परन्तु बात इतनी ही नहीं है। इसमें एक गाँठ यह जान पड़ती है कि सरकार ट्रान्सवाल जैसा ही केप और नेटालमें करना चाहेगी अर्थात् वह नेटाल और केपमें भी शिक्षाकी परीक्षाको अधिक कठोर बनायेगी और सभी भारतीयोंका पंजीयन करना चाहेगी। मुझे तो लगता है कि नेटाल और केपके भारतीयोंका इन दोनोंमें से एक भी बात मानना उचित न होगा। नेटाल और केपमें ट्रान्सवालकी तरह पंजीयनकी प्रथा नहीं होनी चाहिए, क्योंकि वहाँ वैसा करनेकी आवश्यकता नहीं है और शिक्षा-सम्बन्धी [परीक्षाके] नियमको अधिक कठोर बनाना तो स्पष्ट ही बुरा माना जायेगा।

फिर बच्चोंका क्या हो ?

ट्रान्सवालमें बच्चोंपर बाधा हो रहा है इस सम्बन्धमें ट्रान्सवालको सावधान रहना चाहिए। बच्चोंका सवाल ऐसा है कि न्याय प्राप्त न हो तो सत्याग्रह किया जा सकता है किया जाना चाहिए।

१. देखिए "तार : गृह-मन्त्रीको" पृष्ठ २०८।
२. देखिए "पत्र : अखबारोंको" पृष्ठ १७८-८।

इस प्रकार समझौतेके रास्तेमें विघ्न है। समाजकी प्रतिज्ञा पूरी होनेपर भी दूसरी तरहसे हानिकी सम्भावना है। इसकी सावधानी पहलेसे ही रखनी आवश्यक है।

उपाय

इसके कई उपाय हैं। पहला तो यह कि केप, नटाल और ट्रान्सवालके भारतीयोंको इकट्ठे होकर लड़ना चाहिए। दूसरा यह कि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके नेता उतावलीमें कोई स्वतन्त्र कदम न उठायें और तीसरा यह है कि नगर-नगरमें सभाएँ बुलाकर प्रस्ताव पास करें और सरकारको भेजें। संघ और ब्रिटिश सरकार तथा भारत सरकारके पास प्रार्थनापत्र दिये जाने चाहिए। इसपर भी कुछ न हो तो चौथा उपाय सत्याग्रह करना है।

पोलकका पत्र

श्री पोलकने सब समाचारपत्रोंको एक पत्र भेजा है, वह पढ़ने योग्य है।

प्रवास कैसे बन्द हो?

ड्यूक ऑफ मार्लबरो एक सुविख्यात अंग्रेज सामन्त हैं। उन्होंने इसपर भाषण देते हुए कहा है कि उपनिवेशोंमें नये लोगोंके प्रवेशपर नियन्त्रण रखनेके लिए किसी व्यक्तिके पास कितना रुपया है, इस बातका विचार करना उचित नहीं है। बल्कि यह चाहिए कि उसका आचरण कैसा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह धर्म, जाति अथवा रंग-भेदके विरुद्ध हैं।

छोटाभाईका मुकदमा

अब बहुत दिन बाद इस मुकदमेका न्यायाधीशोंने निर्णय दे दिया है। तीन न्यायाधीश थे। तीनोंने अपना-अपना मत प्रकट किया है। दो न्यायाधीशोंने श्री छोटाभाईके विरुद्ध मत प्रकट किया, इससे अपील खारिज हो गई। न्यायाधीश मेसनने श्री छोटाभाईके पक्षमें मत प्रकट किया है। निर्णयके विरुद्ध श्री छोटाभाईने अपील दायर की है इसलिए उनके पुत्रको [फिलहाल] निर्वासित नहीं किया जा सकता। इस अपीलकी सुनवाई दक्षिण आफ्रिकाके सर्वोच्च न्यायालयमें होगी। न्यायपीठपर पाँच न्यायाधीश होंगे और बहुत सम्भव है कि उनमें तीन सर हेनरी डी' विलियर्स, सर जेम्स रोज़-इन्स और श्री सॉलोमन होंगे। अपीलमें सम्भवतः श्री छोटाभाई जीतेंगे। न्यायाधीशोंमें मतभेद हो जानेसे यह माना जा सकता है कि ऊपरकी अदालतका निर्णय छोटाभाईके पक्षमें होगा

प्रधान न्यायाधीश

[आपका] मत यह है कि अधिनियम ३६ भी छोटाभाईके पुत्रका संरक्षण नहीं करता और १९०७ के अधिनियमके अनुसार अधिकार मिलता हो तो भी वह अधिनियम ३६ से समाप्त हो जाता है। उनका कहना यह है कि दोनों कानून एक साथ नहीं चल सकते।

न्यायाधीश ब्रिस्टो

[आपका] मत यह है कि १९ ७ के अधिनियमके अनुसार श्री छोटाभाईके पुत्रको [प्रवेशका] अधिकार मिलना सम्भव था किन्तु १९ ८ के अधिनियमके अनुसार यह सम्भावना समाप्त हो गई। वे यह भी मानते हैं कि दोनों अधिनियम बुरे हैं। उनका अर्थ करना कठिन है। लड़कोंको निकाल बाहर करना स्पष्ट अन्याय है और ऐसा कानून बनाना [उनके कथनानुसार] कदापि उचित नहीं था। उन्होंने कहा है कि मैंने अपना निर्णय तो दिया है फिर भी मुझे उसके ठीक होनेका निश्चय नहीं है। जो निर्णय मैंने दिया है वह दुःखके साथ दिया है।

न्यायाधीश मेसन

न्यायाधीश मेसनका खयाल है कि पंजीयक छोटाभाईके पुत्रको १९ ७ के अधिनियमके अन्तर्गत रियायतके रूपमें पंजीयन प्रमाणपत्र दे सकता है। १९ ८ के अधिनियममें उस अधिकार [रियायतके रूपमें प्रमाणपत्र पानेके अधिकार] की रक्षा नहीं की गई है, किन्तु १९ ७ का अधिनियम उस सम्बन्धमें [१९ ८ के अधिनियम द्वारा] रद नहीं होता। इसलिए पंजीयकको उस बालकके मामलेपर पुनर्विचार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त न्यायाधीशका यह भी कहना है कि दोनों कानूनोंका अर्थ करनेमें बहुत उलझन महसूस होती है और यह स्थिति तो सर्वथा असह्य है कि ऐसे बालकोंको सोलह वर्षका होते ही निष्कासित कर दिया जाये।

क्या समझौता निकट है?

श्री पोलकने भारतमें जो भाषण दिये उनके सम्बन्धमें लॉर्ड क्रू से जनरल स्मट्सने कहा था कि श्री पोलकने भारतमें गलत बातें कही हैं। इसपर श्री पोलकने जनरल स्मट्ससे पूछा[1] कि उन्होंने किस जगह भूल की है। जनरल स्मट्सने इसका उत्तर दिया है। उसमें उन्होंने कहा है कि यद्यपि वे श्री पोलककी भूल बता सकते हैं परन्तु अब इस प्रकारकी चर्चा करनेसे कुछ लाभ न होगा। [और यह कि] उनका इरादा एशियाइयों और सरकारके बीच कड़वाहट बढ़ानेका नहीं है और वे मानते हैं कि कुछ समयमें समझौता हो जायेगा।

स्थानीय पत्रोंमें एक तार[2] प्रकाशित हुआ है। उससे भी इस बातको बल मिलता है। इसमें बताया गया है कि सर फ्रांसिस होपवुडने संघ-सरकारसे बातचीत की है और सब बातें तय हो जायेंगी। १९ ७ का अधिनियम रद कर दिया जायेगा और प्रवासी अधिनियममें शिक्षा-सम्बन्धी भेद रहेगा रंग और जाति-सम्बन्धी भेद हटा दिया जायेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-११-१९१

1. पोलकका नवम्बर ४, १९१ का यह पत्र जनरल स्मट्सके १२-११-१९१ के उत्तरके साथ इंडियन ओपिनियनमें १९-११-१९१ को प्रकाशित हुआ था।
2. १४-११-१९१ को भेजी गई रायटरकी रिपोर्ट; इसे १९-११-१९१ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत किया गया था।

इस प्रकार समझौतेके रास्तेमें विघ्न हैं। समाजकी प्रतिज्ञा पूरी होनेपर भी दूसरी तरहसे हानिकी सम्भावना है। इसकी सावधानी पहलेसे ही रखनी आवश्यक है।

उपाय

इसके कई उपाय हैं। पहला तो यह कि केप, नेटाल और ट्रान्सवालके भारतीयोंको इकट्ठे होकर लड़ना चाहिए। दूसरा यह कि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके नेता स्थानोंमें कोई स्वतन्त्र कदम न उठायें। और तीसरा यह है कि नगर-नगरमें सभाएँ बुलाकर प्रस्ताव पास करें और सरकारको भेजें। संसद और ब्रिटिश सरकार तथा भारत सरकारके पास प्रार्थनापत्र दिये जाने चाहिए। इसपर भी कुछ न हो तो चौथा उपाय सत्याग्रह करना है।

पोलकका पत्र

श्री पोलकने सब समाचारपत्रोंको एक पत्र भेजा है। वह पढ़ने योग्य है।

प्रवास कैसे बन्द हो?

ड्यूक ऑफ़ मार्लबरो एक सुविख्यात अंग्रेज सामन्त हैं। उन्होंने इंग्लैंडमें भाषण देते हुए कहा है कि उपनिवेशोंमें गये लोगोंके प्रवेशपर नियन्त्रण रखनेके लिए किसी व्यक्तिके पास कितना रुपया है इस बातका विचार करना उचित नहीं है। जानना यह चाहिए कि उसका आचरण कैसा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सम्मति वर्ण जाति अथवा रंग-भेदके विरुद्ध है।

छोटाभाईका मुकदमा

अब बहुत दिन बाद इस मुकदमेका न्यायाधीशोंने निर्णय दे दिया है। तीन न्यायाधीश थे। तीनोंने अपना-अपना मत प्रकट किया है। दो न्यायाधीशोंने भी छोटाभाईके विरुद्ध मत प्रकट किया। इससे अपील खारिज हो गई। न्यायाधीश वेसल्सने भी छोटाभाईके पक्षमें मत प्रकट किया है। निर्णयके विरुद्ध भी छोटाभाईने अपील दायर की है, इसलिए उनके पुत्रको [फिलहाल] निर्वासित नहीं किया जा सकता। इस अपीलकी सुनवाई दक्षिण आफ्रिकाके सर्वोच्च न्यायालयमें होगी। न्यायपीठपर पाँच न्यायाधीश होंगे और बहुत सम्भव है कि उनमें तीन सर हेनरी डी' विलियर्स, सर जेम्स रोज़-इन्स और श्री सोलोमन होंगे। अपीलमें सम्भवतः श्री छोटाभाई जीतेंगे। न्यायाधीशोंमें मतभेद हो जानेसे यह माना जा सकता है कि ऊपरकी अदालतका निर्णय छोटाभाईके पक्षमें होगा

प्रधान न्यायाधीश

[आपका] मत यह है कि अधिनियम ११ भी छोटाभाईके पुत्रका संरक्षण नहीं करता और १९०७ के अधिनियमके अनुसार अधिकार मिलता हो तो भी वह अधिनियम ११ से समाप्त हो जाता है। उनका कहना यह है कि दोनों कानून एक साथ नहीं चल सकते।

३१८ पत्र : एशियाई सम्मेलनके सदस्योंको[1]

जोहानिसबर्ग
[नवम्बर १८, १९१ के पूर्व]

प्रिय महोदय,

मैं आपको एशियाई सम्मेलनके एक सदस्यके रूपमें सम्बोधित करनेकी स्वतन्त्रता ले रहा हूँ। सम्मेलन अगस्त १९ ८में हुआ था और आपने उसमें भाग लिया था।

आपने समाचारपत्रोंमें देखा होगा कि एशियाई विभागने १९ ८के एशियाई अधिनियमकी — जो अंशतः उपर्युक्त सम्मेलनका परिणाम था — व्याख्या यह की है कि पंजीयित एशियाइयोंके जिन नाबालिग पुत्रोंकी पैदाइश ट्रान्सवालकी न हो या जो जब यह अधिनियम लागू हुआ उस समय ट्रान्सवालमें न रहते रहे हों उनको १६ वर्षका होते ही आवश्यक रूपसे निष्कासित किया जा सकता है, भले ही वे अधिनियमके अनुसार पंजीयन करानेके लिए प्रार्थनापत्र देनेको तैयार हों और भले ही उनके पिताओंके पंजीयन प्रमाणपत्रोंमें ऐसे नाबालिगोंके नाम दर्ज हों।

अब इस सम्बन्धमें एक मामला सामने आया है। यह मामला क्रूगर्सडॉर्पके एक प्रमुख भारतीय व्यापारी ए० ई० छोटाभाईके पुत्रका है। उसका नाम पिताके पंजीयन प्रमाणपत्रपर दर्ज है। उसने १६ वर्ष पूरे कर चुकनेपर, अधिनियमके अनुसार, पंजीयनके लिए अर्जी दी। वह जब नाबालिग था तभी अपने पिताके साथ अधिकारियोंकी पूर्ण जानकारीमें और उनकी सहमतिसे उपनिवेशमें प्रविष्ट हुआ था क्योंकि प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत उसे प्रवेश करनेका कानूनी हक था। पंजीयकने उसकी अर्जी नामंजूर कर दी। उसने मजिस्ट्रेटसे अपील की। मजिस्ट्रेटने पंजीयकके ही निर्णयको बहाल रखते हुए उसे ट्रान्सवालसे तुरन्त निकाल देनेका आदेश दिया। लेकिन सर्वोच्च न्यायालयमें अपील विचाराधीन होनेके कारण तबतक के लिए यह आदेश स्थगित कर दिया गया। जस्टिस श्री वेसेल्सके इजलासमें मुकदमा पेश हुआ। उन्होंने सरकारके कदमको 'अमानुषिक' बतलाया और कहा कि "जब लोगोंको इसका पता चलेगा तब समूचे सभ्य संसारमें इसे लेकर चीख-पुकार मच जायेगी।" लेकिन विद्वान न्यायाधीशने निर्णय दिया कि अधिनियममें ऐसे बालकोंके पंजीयनकी व्यवस्था नहीं है और इसीलिए उन्होंने अनिच्छापूर्वक अर्जी खारिज कर दी है। तब मामला सर्वोच्च न्यायालयकी पूर्ण-पीठ (फुल बेंच) के सामने ले जाया गया जिसने बहुमतसे जस्टिस श्री वेसेल्सके निर्णयकी ही ताईद की। अब अपील अदालत (अपीलेट कोर्ट) में अपील करनेका नोटिस दिया जा चुका है। इसलिए मामला अभी अदालतके विचाराधीन है।

१. यह पत्र अन्य कागजोंके साथ १९-११-१९११ के अंकमें "छोटाभाईका मुकदमा" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

परन्तु इस पूरी कार्रवाईके कुछ उल्लेखनीय परिणाम निकले हैं जिनकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। न्यायाधीशोंने निर्णय दिया है कि बादवाले अधिनियमसे १९०७ का अधिनियम एक तरहसे रद हो जाता है, इसलिए यद्यपि १९०७ के अधिनियमके अन्तर्गत श्री छोटाभाईके पुत्रको स्थितिके एशियाई नाबालिगोंको संरक्षण मिल सकता था पर १९०८ के अधिनियममें यह संरक्षण समाप्त कर दिया गया है। जस्टिस श्री मैसनने दूसरे न्यायाधीशोंसे मतभेद प्रकट करते हुए अर्जीके पक्षमें निर्णय दिया है लेकिन इतना उन्होंने भी कहा है कि यद्यपि बालकको १९०८ के अधिनियमके अन्तर्गत संरक्षण नहीं दिया जा सकता तथापि १९०७ के अधिनियमकी नाबालिगोंसे सम्बन्धित धाराएँ रद नहीं हुई हैं। इसके अलावा जस्टिस श्री मैसन और जस्टिस श्री विस्टोने सरकार द्वारा उठाये गये कदम और अधिनियमोंकी भी कठोर शब्दोंमें भर्त्सना की है।

निःसन्देह आपको उस काफी विवादास्पद बहसका स्मरण होगा जो सम्मेलनके कई सदस्यों और श्री क्विन तथा मेरे बीच १९०७ के अधिनियम २ को रद करनेके प्रस्तावके बारेमें हुई थी। परन्तु जनरल स्मट्सने उसे रद करनेके प्रश्नपर विचार तक करनेसे इनकार कर दिया। आपको उस बहसका भी स्मरण होगा जो नाबालिगोंके सम्बन्धमें इस विषयपर हुई थी कि उनकी पैदाइश कहींकी भी हो उनके नाम उनके पिताओंके पंजीयन-प्रमाणपत्रोंमें दर्ज कर देनेपर उन्हें संरक्षण मिल जायगा। १९०७ के अधिनियम २ के अन्तर्गत पहलेसे मिले हुए ठोस अधिकारोंको छोड़नेका तो कभी कोई सवाल ही नहीं था।

इसके आगे मुझे यह भी कहनेकी अनुमति दीजिए कि (१) जनरल स्मट्सने विधानसभामें नया विधेयक पेश करते समय यह कभी नहीं कहा था कि उससे किसी भी वर्गके नाबालिगका उपनिवेशमें निवासका अधिकार खत्म हो जायेगा (२) श्री डी'विलियर्सने महान्यायवादी (अटर्नी जनरल) की हैसियतसे गवर्नरको भेजी गई अपनी टिप्पणीमें यह भी कहा था कि अन्य बातोंके अलावा नाबालिगोंके पंजीयनसे सम्बन्धित एशियाइयोंकी माँग मान ली गई है और यह भी कि दोनों अधिनियम एक साथ चलेंगे (३) ब्रिटिश साम्राज्यके किसी भी भागमें वैध एशियाई निवासियोंके बच्चोंको किसी भी आयुमें अपने माता-पितासे अलग नहीं किया जाता फिर १६ वर्षकी नाबालिग उम्रमें अलग करना तो दूरकी बात हुई। यहाँ मैं यह कहनेकी अनुमति चाहता हूँ कि सम्मेलनका एक सदस्य होनेके नाते आपका इस सवालसे सीधा सम्बन्ध है मेरी तरह आपकी निगाहमें भी यह बात आ जायेगी कि हमारे न्यायालयोंका यह निर्णय सर्वथा अप्रत्याशित है और इसके जरिये एशियाई नाबालिगोंका अधिकार छीना जा रहा है।

आशा है मेरा यह कथन ठीक माना जायेगा कि सम्मेलन द्वारा अंगीकृत सिद्धान्तोंकी रक्षाका प्रश्न सम्मेलनके सदस्योंकी प्रतिष्ठाका प्रश्न है और इसीलिए मुझे भरोसा है कि आप यदि अधिक नहीं तो सार्वजनिक रूपसे यह घोषणा अवश्य कर देंगे कि आपने इस पत्रमें उल्लिखित वर्गके एशियाई नाबालिगोंको उनके अधिकारोंसे वंचित किये जानेकी बात कभी नहीं सोची थी।

मेरी रायमें तो यह मामला इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसे उच्चतम न्यायाधिकरणके निर्णयपर भी नहीं छोड़ा जा सकता, क्योंकि हमारे संविधानके अनुसार कोई भी न्यायाधिकरण उन बातोंपर विचार कर ही नहीं सकता जिनके कारण कोई कानून पास किया गया हो, वे बातें अपने-आपमें कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्यों न रही हों। यह तो कठोरसे कठोर या नैतिकताकी दृष्टिसे हर दर्जे तक अनुचित कानूनको भी कारगर बनानेके लिए बाध्य है।[1]

आपका
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
स्टार, १९-११-१९११

३१९. पत्र: 'स्टार'को

जोहानिसबर्ग
नवम्बर १८ [१९११]

महोदय,

आपसे मेरा अनुरोध है कि निम्नलिखित पत्र[2] प्रकाशित करनेकी कृपा करें। मैंने यह पत्र उन सज्जनोंके नाम लिखा है जो अगस्त १९०८के एशियाई सम्मेलनके सदस्य थे।

आपका
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
स्टार, १९-११-१९११

१. श्रमिक पार्टीकी संसदमें विरोधी पक्षके नेता सर्वश्री — चार्ल्स क्रेसवेल, ड्रमंड चैपलिन — और अन्य लोगोंने गांधीजीको इसके उत्तर भेजे थे। उन्होंने इस बातसे सहमति प्रकट की थी कि यदि नाबालिगोंके नाम "इनके पिताओंके प्रमाणपत्रोंमें दर्ज हों" तो उनके अधिकार अपने-आप सुरक्षित रहेंगे और १६ वर्षके होनेपर उनको पंजीयन करानेका अधिकार रहेगा। रिचने इनके उत्तर जनवरी ८, १९११ को उपनिवेश-सचिवको भेज दिये थे।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३२० पत्र : ड्यूक ऑफ़ कनॉटके निजी सचिवको[1]

जोहानिसबर्ग
[नवम्बर १८, १९१ के बाद]

महोदय

हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके भवनमें इसी माहकी १८ तारीखको ब्रिटिश भारतीय संघकी समितिकी एक विशेष बैठक हुई थी। उसमें निम्नलिखित प्रस्ताव सर्व-सम्मतिसे पास हुआ था मैं उसे आपकी सेवामें भेज रहा हूँ

> ब्रिटिश भारतीय संघकी समितिकी यह बैठक अत्यन्त खेदके साथ इस निष्कर्षपर पहुँची है कि निर्वासित नारायणस्वामीकी मृत्यु, धर्म-विषयके मामलेमें अन्यायपूर्ण कानूनी कार्रवाइयाँ, श्रीमती सोढापर निकट भविष्यमें चलाया जानेवाला मुकदमा और भारतीय समाजकी उन माँगोंको जिन्हें सब न्यायसम्मत और उचित मानते हैं संघ-राज्य द्वारा अस्वीकार किये जानेके कारण उत्पन्न सत्याग्रहियोंकी सतत कष्टपूर्ण परिस्थिति — इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए समाजके लिए यह सम्भव नहीं है कि वह उस सार्वजनिक स्वागत-समारोहमें जिसमें महाविभव ड्यूक ऑफ कनॉटको मानपत्र दिया जानेवाला है भाग ले और इस प्रकार संघ-राज्यके उद्घाटनके अवसरपर सार्वजनिक रूपसे मनाये जानेवाले उत्सवको अपना उत्सव माने। संघ-राज्यके निर्माणसे [उसके] एशियाई ब्रिटिश प्रजाजनोंकी स्थिति और भी अधिक विषम हो गई है और वे अपने भविष्यके विषयमें अधिक चिन्तित हो गये हैं। समितिकी यह बैठक इस प्रस्ताव द्वारा अध्यक्षको अधिकार देती है कि वह महाविभवके नाम एक आदरपूर्ण पत्र लिखे जिसमें सम्राट्के प्रति इस समाजकी निष्ठा व्यक्त की जाये और जिसमें सम्राट्के प्रतिनिधिके रूपमें व्यक्तिगत रूपसे उनका स्वागत किया जाये।

मेरा संघ जिस समाजका प्रतिनिधित्व करता है उसका यह दुर्भाग्य है कि उपर्युक्त कारणोंसे उसके प्रतिनिधि महाविभवके ट्रान्सवाल आगमनके अवसरपर स्वयं बाहर उपस्थित होकर उनका स्वागत करने और राजसिंहासनके प्रति समाजकी भक्ति प्रदर्शित करनेसे वंचित हैं।

१ इस पत्रका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था। इसपर ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष अ० मु० काछलियाके हस्ताक्षर हैं। पत्रका गुजराती अनुवाद इंडियन ओपिनियनके २-१२-१९१ के अंकमें छपा था। इसका प्रथम अनुच्छेद यहाँ गुजराती अनुवादसे, अन्यथा २९-११-१९१ के इंडियन ओपिनियनसे और अन्तके दो अनुच्छेद फिर इंडियन ओपिनियनके २-१२-१९१ के अंकके गुजराती अनुवादसे लिए गये हैं।

इसलिए सार्वजनिक रूपसे संघ द्वारा मानपत्र पेश न किये जा सकनेकी स्थितिमें मैं विनयपूर्वक इस पत्रके द्वारा महाविभवका स्वागत करता हूँ और उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे हमारे समाजकी भक्तिकी यह अभिव्यक्ति महामहिम सम्राट् और सम्राज्ञी तक पहुँचा दें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-११-१९११ और २-१२-१९११

३२१ पत्र : ड्यूक ऑफ़ कनाटके निजी सचिवको[1]

[नवम्बर १८, १९११ के बाद]

मैं हमीदिया इस्लामिया अंजुमनकी [कार्यकारिणी] समितिकी ओरसे आपसे प्रार्थना करता हूँ कि ड्यूक महोदयके ट्रान्सवाल पधारनेके अवसरपर आप उनकी सेवामें हमारा मानपूर्ण अभिनन्दन पहुँचा दें और उनसे हमारी ओरसे यह भी कहें कि वे सम्राट्को हमारी अंजुमनके सदस्योंकी राजभक्तिसे परिचित करानेकी कृपा करें।

हमें इस बातका बहुत खेद है कि ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षके पत्रमें बतलाये हुए कारणोंसे[2] जिनसे हमारी समिति पूर्णतया सहमत है, हम लोग इस सप्ताह होनेवाले उत्सवोंमें सार्वजनिक रूपसे भाग न ले सकेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २-१२-१९११

३२२ समझौता ?

ऐसा लगता है कि शायद ट्रान्सवालके भारतीयोंकी माँगें स्वीकृत हो जायेंगी। हमारे द्वारा अन्यत्र प्रकाशित 'टाइम्स' के तार[3] और श्री पोलकके नाम जनरल स्मट्सके पत्रसे[4] यही बात प्रकट होती है। इसके सिवा यह भी जान पड़ता है कि एशियाइयोंके लिए अपमानजनक कानून अब बनाये ही नहीं जायेंगे। यदि हमारा यह खयाल सही सिद्ध हो तो माना जायेगा कि सत्याग्रहियोंकी पूरी जीत हुई। इस जीतका अर्थ समझना प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है। लड़नेवालोंके व्यक्तिगत स्वार्थोंकी रक्षा इसका उद्देश्य नहीं है। लड़ाईका सच्चा उद्देश्य तो विचारवान् ही समझ सकेंगे। एशियाइयोंपर

१. सम्भवतः इस पत्रका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था और इसे हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अध्यक्ष इमाम अब्दुल कादिर बावजीरके हस्ताक्षरसे भेजा गया था। अंग्रेजी पाठ उपलब्ध नहीं है।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३ और ४. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ३८४-८७।

एशियाइयोंके नाते कानूनी रोक नहीं होगी। फिर भी हम तो जिस स्थितिमें थे उस स्थितिमें रहेंगे। ऐसा भी नहीं है कि सैकड़ों भारतीय प्रवेश कर सकेंगे। अनुमतिपत्रों और प्रमाणपत्रोंका कष्ट भी बना रहेगा। इन कष्टोंका दूर होना स्वयं हमपर निर्भर होगा। हम लोभ न करें, सच्चे रहें और सबके तथा अपने सम्मानकी रक्षा करते हुए धैर्यसे काम करें तो उन कष्टोंको दूर किया जा सकेगा। समान-कानून-रूपी वृक्ष हमें [अवश्य] प्राप्त होगा उसकी छायामें बैठना या न बैठना तो अपनी इच्छापर निर्भर होगा।

उक्त शुभ समाचारके प्राप्त होनेपर भी भारतीयोंको कोई आशा नहीं बाँधनी है। सब कुछ ठीक है सही किन्तु बात अब भी बिगड़ सकती है। तारसे प्राप्त अधिकृत समाचार प्रकाशित होनेपर भी विषयक दूसरे ही प्रकारका हो सकता है। हमें तो जैसा दिखाई देता है, वैसा बताते हैं और यह प्रयत्न करते हैं कि समझौता हो जाये तो लोग उसका सही अर्थ समझ सकें।

इसके सिवा पाठकोंसे हम यह तो कह ही चुके हैं[1] कि जिस कानूनके बननेकी सम्भावना है उसमें केप और नेटालमें स्थिति क्या होगी इसपर विचार किया जाना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-११-१९११

३२३. रम्भाबाईका मामला

रामचन्द्रजीकी ओरसे अंगदने रावणसे समझौतेकी बहुत बातचीत की किन्तु रावण अपने मदमें मस्त रहा और उसने एक न सुनी। उसने सीताजीको कैदसे मुक्त नहीं किया। अन्तमें उसे मरना पड़ा। जनरल स्मट्सका भी यही हुआ है। रम्भाबाईकी ओरसे श्री काछलियाने जनरल स्मट्ससे प्रार्थना की और अनुरोध किया कि उनपर चलाया जानेवाला मामला वापस ले लिया जाये। किन्तु जनरल स्मट्सने अपने मदमें उनकी इस प्रार्थनाका उद्धत होकर अनुचित जवाब दिया है। रामचन्द्रजीने रावणको धराशायी कर दिया और सीताजीको छुड़ाया। श्री काछलियाके समझौतेके प्रयत्नोंका भी स्मट्सने तिरस्कार किया है। अब भारतीय समाज क्या करेगा? जनरल स्मट्सको धराशायी करनेका भारतीय समाजके पास एक ही सुन्दर और सीधा रास्ता है—उनको यह दिखा दे कि वे रम्भाबाईपर जो अन्याय करना चाहते हैं, समाज उसे सहनेके लिए तैयार नहीं है। और इसका एक ही तरीका है। दूसरी भारतीय स्त्रियाँ रम्भाबाईके उदाहरणका अनुकरण करें और जेल जानेका रास्ता अख्तियार करें। और जब स्त्रियाँ

१. देखिए "सोराबजीकी चिट्ठी" पृष्ठ १८४-८०।
२. देखिए "तार : गृह-मन्त्रीको" पृष्ठ १७५ और पृष्ठ १७८।

और मालपत्र भी नहीं ले सकते। राजभक्ति प्रकट करनेका कार्य पत्र लिखकर निपटाया जा सकता है। श्री० रम्भाबाई सोढाको जेल हो जाये तो हमें जेल भरनेके लिए निकल पड़ना चाहिए। और यदि बने तो दुकानें बन्द करके सभा करके और प्रस्ताव पास करके इस अन्यायके खिलाफ अपनी नाराजी प्रकट करनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-११-१९११

३२५. पत्र : प्रिटोरियाके जेल-निदेशकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
नवम्बर १९, १९११

मेरा संघ यह जानकर बड़ा चिन्तित हो उठा है कि डीपक्लूफ जेलमें बन्द भारतीय सत्याग्रही कैदियोंके साथ निरन्तर होनेवाले अनुचित व्यवहारके कारण कई भारतीय कैदियोंको उसका विरोध करने और जोहानिसबर्ग जेलमें अपना तबादला कराने के लिए अनशनका तरीका अपनाना जरूरी जान पड़ा है। कुछ कारणोंसे उनका यह खयाल है कि जोहानिसबर्ग जेलमें गवर्नरकी ज्यादा सीधी देखरेख होनेसे उनके साथ बेहतर सलूक होने लगेगा। मुझे मालूम हुआ है कि सर्वश्री हरिलाल गांधी और आर० एन० सोढाका तो जोहानिसबर्ग जेलमें तबादला हो भी चुका है। मुझे यह भी पता चला है कि श्री एम० बी० मडने अपने तबादलेके लिए अर्जी दी है और पिछले छः दिनोंसे वे अनशन कर रहे हैं। मामलेमें देरकी जरा भी गुंजाइश नहीं है; अतः यदि आप इसकी ओर तत्काल ध्यान दें तो मैं आपका बड़ा आभार मानूँगा। आपको यह बतानेकी जरूरत नहीं है कि यदि हालत वैसी बताई जाती है, वैसी ही बनी रही तो कैदियोंके स्वास्थ्यपर इसका क्या गम्भीर परिणाम होगा और उसका भारतीय समाजके लोगोंपर कैसा प्रभाव पड़ेगा।[2]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-१२-१९११

१. इस पत्रका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था और इसे ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षके हस्ताक्षरसे भेजा गया था।

२. इस पत्रके उत्तरमें जेल-निदेशकने २१-११-१९११ को लिखा कि उनसे वर्णित डीपक्लूफ जेलके अन्तर्गत सत्याग्रहियोंके साथ होनेवाले अनुचित बर्ताव के सम्बन्धमें कुछ और जानकारी माँगी।

३२६. पत्र : प्रिटोरियाके जेल निदेशकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
नवम्बर २२, १९११

आपके इसी २१ तारीखके पत्रके उत्तरमें मेरे संघको यह जानकारी देनी है कि भारतीय कैदियोंको कुछ वार्डरोंके अपमानजनक रवैयेके खिलाफ सख्त शिकायत है। लगता है ये वार्डर ठीक नहीं जानते कि मजाक किसे कहते हैं और वे जिसे मजाक समझते हैं उसका भारतीय कैदियोंको उपयुक्त पात्र समझते हैं। उदाहरणके तौरपर वे उनको कुली सामी और बनाना [अर्थात् केले या केले वालेवाले] जैसे नामोंसे पुकारते हैं। इसकी और अन्य तरीकोंसे सताये जानेकी शिकायतें मुख्य वार्डरसे लगातार की जाती रही हैं लेकिन वह या तो अनसुनी कर देता है या फिर बड़े अपमानजनक ढंगसे उनका उत्तर देता है। पीर्योंकी देखरेखके लिए तैनात प्रधान वार्डर, मैक्काउडके रवैयेके बारेमें तो विशेष तौरपर शिकायत की गई है। संघको पता चला है कि इस अधिकारीका तो कैदियोंको तंग करनेका एक ढंग ही है कि वह उनसे ताकतसे बाहरके काम करनेको कहता है और फिर शिकायतें करके उनको दण्ड दिलानेके मौकेकी टोहमें रहता है। इस अधिकारीके बारेमें गवर्नरसे बार-बार शिकायतें की जाती रही हैं। मेरे संघको मालूम हुआ है कि एकसे अधिक बार उसे तलब किया जा चुका है और कमसे-कम दो मौकोंपर भारतीय कैदियोंपर लगाये गये उसके आरोप जाँच-पड़तालके बाद बिलकुल गलत सिद्ध हो चुके हैं। पर लगता है कि इतनी शिकायतोंके बावजूद भारतीय कैदियोंके प्रति श्री मैक्काउडके रवैयेमें कोई सुधार नहीं हुआ है और अब भारतीय कैदी उसके और मुख्य वार्डरके बरतावसे तंग आ गये हैं।

यदि सम्बन्धित अधिकारी इन आरोपोंको सही माननेसे इनकार करें तो मेरे संघको कोई अचम्भा नहीं होगा। पहले भी कई बार ऐसा हुआ है। यह मानकर कि इस बार भी नहीं होगा हम यही कहना चाहते हैं कि जबतक कोई कैदी खुद बहुत ज्यादा कष्ट महसूस न करे तबतक वह श्री मेककी तरह, सात-सात दिन तक खाना खानेसे इनकार नहीं करेगा।

इसलिए आप इस मामलेकी तुरन्त जाँच करानेकी कृपा करें। मेरा संघ इसके लिए आपका कृतज्ञ रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-१२-१९११

[1] ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षके हस्ताक्षरसे भेजे गये इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था। देखिए पिछला शीर्षक।

३२७. स्वर्गीय महान टॉल्स्टॉय

महान् टॉल्स्टॉयने लगभग बियासी वर्षकी पकी अवस्थामें देहत्याग किया है।[1] वे मर गये हैं — उसकी अपेक्षा यह कहना कि उन्होंने देहत्याग किया है अधिक उचित जान पड़ता है। टॉल्स्टॉयकी आत्मा — रूह — का मरण तो हो ही नहीं सकता। टॉल्स्टॉयका नाम तो अमर ही है। केवल उनका शरीर, जो मिट्टीसे पैदा हुआ था मिट्टीमें जा मिला है।

टॉल्स्टॉयका नाम सारा संसार जानता है परन्तु सैनिककी तरह नहीं यद्यपि वे एक समय कुशल सैनिकके रूपमें मशहूर थे। एक बड़े लेखककी भाँति भी नहीं यद्यपि लेखकके रूपमें उनकी बड़ी ख्याति है। एक रईसकी तरह भी नहीं यद्यपि उनके पास अपार सम्पत्ति थी। उन्हें तो संसार एक साधु-पुरुषके रूपमें जानता था। भारतमें हम ऐसे व्यक्तिको महर्षि अथवा फकीर कहेंगे। उन्होंने अपनी दौलत छोड़ी ठाट-बाट छोड़ा और गरीब किसानकी जिन्दगी अपनाई। टॉल्स्टॉयका एक बड़ा गुण यह था कि उन्होंने जो कुछ सिखाया उसपर स्वयं भी अमल करनेका प्रयत्न किया है। इसलिए हजारों लोगोंने उनके वचनों — उनके लेखोंपर — निष्ठा रखी।

हमारा विश्वास है कि ज्यों-ज्यों समय बीतेगा त्यों-त्यों टॉल्स्टॉयके उपदेशोंका अधिकाधिक मान होगा। उनकी शिक्षा धर्मपर आधारित थी। वे स्वयं ईसाई थे और इसलिए हमेशा यही मानते थे कि ईसाई धर्म सर्वश्रेष्ठ है परन्तु उन्होंने अन्य धर्मोंका खण्डन नहीं किया। उन्होंने तो यह कहा है कि सभी धर्मोंमें सत्य तो है ही। साथ ही यह भी कहा है कि स्वार्थी पादरियों स्वार्थी ब्राह्मणों और स्वार्थी मुल्लाओंने ईसाई और इसी तरह दूसरे धर्मोंको गलत रूप दे दिया है और मनुष्योंको भ्रमित किया है।

टॉल्स्टॉयका विशेष रूपसे यह कहना था कि शरीर-बलकी अपेक्षा आत्म-बल अधिक शक्तिशाली होता है यही सब धर्मोंका सार है। संसारसे दुष्टता मिटानेका मार्ग यही है कि बुरेके साथ हम बुराईके बदले भलाई करें। दुष्टता अधर्म है। अधर्मका इलाज अधर्म नहीं हो सकता धर्म ही हो सकता है। धर्ममें तो दयाका ही स्थान है। धर्मी व्यक्ति अपने शत्रुका भी बुरा नहीं चाहता। इसलिए सदा धर्म-पालन करते रहना इष्ट हो तो नेकी ही करनी चाहिए।

इस महान् पुरुषने अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें 'इंडियन ओपिनियन' के अंक स्वीकार करते हुए श्री गांधीके नाम एक पत्र[2] लिखा था। उसमें यही विचार व्यक्त किये गये थे। पत्र रूसी भाषामें है। उसके अंग्रेजी अनुवादका[3] गुजराती रूपान्तर

१. टॉल्स्टॉयका देहावसान नवम्बर २०, १९१० को हुआ था।

२. देखिए परिशिष्ट ९।

३. पॉलिन पादरबुक द्वारा मूल रूसीसे किया गया अंग्रेजी अनुवाद २६-११-१९१० के इंडियन ओपिनियनके पहले पृष्ठपर छपा था।

इस अंकमें प्रकाशित किया जा रहा है। वह पढ़ने योग्य है। उसमें उन्होंने सत्याग्रहके बारेमें जो-कुछ लिखा है, उसपर सबको मनन करना चाहिए। वे कहते हैं कि ट्रान्सवालका संघर्ष संसार भरमें अपनी छाप छोड़ जायगा। इस संघर्षसे सबको बहुत-कुछ सीखना है। पत्र-लेखक सत्याग्रहियोंका उत्साह बढ़ाते हुए कहते हैं कि अगर शासकोंसे न्याय प्राप्त न हुआ तो ईश्वरसे अवश्य प्राप्त होगा। शासकोंका अपनी शक्तिका मोह होता है, उन्हें सत्याग्रह पसन्द आ ही नहीं सकता, किन्तु सत्याग्रहियोंको धैर्यपूर्वक संघर्ष चलाते रहना चाहिए। टॉल्स्टॉय रूसकी मिसाल देते हुए कहते हैं कि वहाँ भी सैनिक अपना फौजी पेशा त्यागते जा रहे हैं। उनको दृढ़ विश्वास है कि यद्यपि इस आन्दोलनका परिणाम फिलहाल दिखाई नहीं पड़ता, किन्तु आग चलकर यह महान् रूप धारण कर लेगा और रूसकी बेड़ियाँ कटेंगी।

हमारे आन्दोलनको टॉल्स्टॉय जैसे महान् पुरुषका आशीर्वाद है, यह हमारे लिए कुछ कम प्रोत्साहनकी बात नहीं। उनका चित्र हम आगके अंकमें दे रहे हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २६-११-१९११

३२८ छोटाभाईका मुकदमा

इस अपीलका फैसला छोटाभाईके खिलाफ जरूर हुआ है, फिर भी हम इसे उनकी तथा भारतीय समाजकी जीत मानते हैं। न्यायाधीश श्री विलियर्सका फैसला स्पष्टरूप है। उनका कथन है कि १९०७ का कानून १९०८ के कानूनसे बहुत अंश तक रद हो गया है। और १९०७ के कानूनके अन्तर्गत भी छोटाभाईके पुत्रका संरक्षण होता है या नहीं, उन्हें इस बारेमें सन्देह है। इन्हीं महाशयने जब वे अटर्नी जनरल थे कोर्ट रूमें कहा था कि १९०८ का कानून एशियाई नाबालिगोंके पक्षमें है और इसके लिए १९०७ के कानूनका भी उपयोग किया जा सकता है। यदि १९०७ का कानून १९०८ के कानूनसे बहुत अंश तक रद होता था तो जनरल स्मट्सने अबतक उसे रद क्यों नहीं किया? दूसरे दो न्यायाधीशोंका मत बहुत अच्छा है। जज विसेलकी राय भी यही है कि १९०८ के कानूनसे १९०७ का कानून अधिकांशमें रद हो जाता है। उनका खयाल है कि छोटाभाईके पुत्रका बचाव १९०७ के कानूनसे हो सकता था। वे यह भी कहते हैं कि ये दोनों कानून दोषपूर्ण हैं और यह कि जिस कानूनसे नाबालिगोंकी रक्षा नहीं होती वह कानून अत्याचारपूर्ण ही कहा जायेगा। आगे चलकर वे यह भी कहते हैं कि उन्होंने जो फैसला दिया है उसके विषयमें उन्हें कुछ भी सन्देह है।

न्यायाधीश मेसनने तो कहा है कि अपीलका फैसला छोटाभाईके पक्षमें होना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा है कि १९०७ के कानूनसे जिन अधिकारोंकी रक्षा होती है वे अधिकार १९०८ के कानूनसे रद हुए नहीं माने जा सकते। १९०८ का कानून

ट्रान्सवालके बाहर पैदा होनेवाले बच्चोंके अधिकारके विषयमें अस्पष्ट है परन्तु १९०७ अधिनियमके अन्तर्गत रजिस्ट्रारको ऐसे मामलोंमें प्रमाणपत्र देनेका अधिकार है और यह मामला ऐसा है कि प्रमाणपत्र दिया जा सकता है। न्यायाधीश मेसनके कथनानुसार रजिस्ट्रारने यह मानकर कि १९०७ के कानूनके अनुसार उन्हें ऐसा विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है, भूल की है। जिस कानूनके द्वारा नाबालिगोंको निकाल बाहर किया जा सकता है उस कानूनकी उक्त न्यायाधीश महोदयने घोर निन्दा की है।

इन सारी बातोंसे हमें तो ऐसा लगता है कि सर्वोच्च न्यायालय अपना निर्णय श्री छोटाभाईके ही पक्षमें देगा।

न्यायाधीशों द्वारा की गई आलोचना बताती है कि दोनों कानून बहुत उलझे हुए हैं और इस कारण वे रद होने ही चाहिए। न्यायाधीश मेसनने जैसा निर्णय दिया है वैसा निर्णय हो जाये यह काफी नहीं होगा। श्री छोटाभाईके लड़के-जैसी स्थितिवाले बालकोंको प्रमाणपत्र दिया जाये या नहीं — यह रजिस्ट्रारके हाथमें है इसका अर्थ यह हुआ कि वह उसकी मेहरबानीपर निर्भर है। किन्तु नाबालिगोंको प्रमाणपत्र मिले या नहीं *इस बातका अधिकार भारतीय प्रजा किसी व्यक्तिकी मेहरबानीपर नहीं छोड़ सकती।* जिस बातका अधिकार माता-पिताको प्राप्त है उसका अधिकार बच्चोंको अनिवार्य रूपसे मिलना चाहिए। और यदि भारतीय समाजमें बल होगा तो वे उन्हें मिलेंगे ही भले अदालत चाहे जो निर्णय दे।

[*गुजरातीसे*]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९११

३२९. हमीद गुल

खबर मिली है कि केप टाउनवासी श्री यूसुफ गुलके सुपुत्र श्री हमीद गुल इंग्लैंडमें डॉक्टरीकी अन्तिम परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये हैं। हम इसके लिए श्री हमीद गुल और श्री यूसुफ गुलको बधाई देते हैं। ऐसी ऊँची परीक्षामें उत्तीर्ण होना श्री हमीदकी उद्यमशीलता और कुशाग्र बुद्धिका द्योतक है। हम आशा रखेंगे कि श्री हमीदके ज्ञान और गुणोंका लाभ भारतीय समाजको मिलेगा। मालूम हुआ है कि वे कुछ ही दिनोंमें इंग्लैंडसे दक्षिण आफ्रिका लौटनेवाले हैं।

[*गुजरातीसे*]

इंडियन ओपिनियन २६-११-१९११

३३० मारिशसके दुखी गिरमिटिया

कुछ दुखी भारतीयोंके कष्टोंका विवरण हमने अन्यत्र[1] छापा है। वह ध्यान देने योग्य है। उसे पढ़कर पाठकोंके मनमें गिरमिट प्रथाके बन्द किये जानेकी आवश्यकताके बारेमें सन्देह नहीं रह जाना चाहिए। बार-बार होनेवाली ऐसी घटनाएँ हर बार यही स्पष्ट करती हैं कि इस प्रथाको गुलामीसे भिन्न न मानना ठीक ही है। अपने देशवासियोंके ऐसे कष्टोंके बारेमें पढ़कर किस भारतीयका हृदय काँप न उठेगा? इसे दूर कराये बिना भारतीय प्रजा चैनसे नहीं बैठ सकती।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-११-१९११

३३१ पत्र: मगनलाल गांधीको

कार्तिक बदी १ [नवम्बर २६, १९११][2]

चि० मगनलाल,

कन्हैयालालकी निराशापर मुझे ताज्जुब नहीं हुआ। फिर भी ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है कि अंग्रेजोंकी संस्थाएँ अधिक अच्छी तरह चलती हैं। यह ठीक है कि उनकी संस्थाएँ ठीक चलती हुई जान पड़ती हैं। उसका कारण यह है कि इस प्रकारकी संस्थाएँ आधुनिक सभ्यताकी उपज हैं। उस प्रकारकी सभ्यतामें वे अधिक कुशल हैं इसलिए उस तरहकी संस्थाओंको भी अधिक अच्छी तरह चला सकते हैं। हमारा आर्य-समाज आम लोगोंके लिए नहीं है। वह तो केवल पढ़े-लिखे लोगोंके लिए है। कहा जा सकता है कि अंग्रेजी संस्थाएँ एक हद तक आम जनताके लिए होती हैं क्योंकि वहाँकी आम जनता भी आधुनिक सभ्यताके दायरेमें आ गई है। इस कारण उनकी संस्थाओंमें एक तरहका अनुशासन रह पाता है। इसके सिवा वे ऑनेस्टी को बेस्ट पॉलिसी की तरह मानते हैं और पॉलिसी के विचारसे ऑनेस्टी का पालन करते हैं। हम तो ऑनेस्टी के लिए ही ऑनेस्ट रहनेवाले लोग हैं। किसी नीतिके विचारसे ईमानदार बना रहना हमारे बसकी बात नहीं है। और फिर हम लोगोंमें अर्थात् शिक्षित समुदायमें यह वृत्ति जरूर पाई जाती है कि यदि हम किसी पदपर हैं और उसके बलपर तत्काल स्वार्थ-साधन किया जा सकता हो तो हम जल्दीसे-जल्दी

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

२. पत्रके अन्तिम अनुच्छेदमें उल्लिखित [illegible] कानूनसे सम्बन्धित विधेयक फरवरी १९११ में संसदमें पेश किया गया था। इसके बाद कार्तिक बदी १ नवम्बर २६, १९११ को पड़ी थी।

भीखू से। मैं उसे पत्र[1] लिख रहा हूँ। [शायद] वह गुजराती पढ़ लेता है। यदि नहीं तो उसे पढ़कर सुना देना। उसका भाव बहुत शीघ्रतासे भरा। तभी मेरे मनमें शंका हुई थी कि यह सुधार तो विलक्षण है।

श्री पोलक कल केपके लिए रवाना होंगे। वहाँसे वे फीनिक्स पहुँचेंगे तथा पैसा उगाहनेके लिए भी निकलेंगे। पुरुषोत्तमदासके बारेमें विचार करनेपर ऐसा लगता है कि उसके लिए [सत्याग्रह] फंडमें से कुछ न निकाला जाये। अमीको जितनेकी जरूरत हो उतना उसे लेने दिया जाये और जो कुछ ले सो फिलहाल मेरे नाम डाल दिया जाये। तुम अमीसे मालूम करना कि उसे कितना चाहिए। अब जब कि उसके बाल बच्चे टोंगाटमें हैं तब खर्च कम होना चाहिए। फिर भी जितना वह माँगे उतना उसे दे दिया करो। वीरजीके हाल-चाल लिखना। चूँकि उनके विषयमें मैं श्री वेस्टको लिख चुका हूँ इसलिए यहाँ नहीं लिख रहा हूँ। इस्माइल बावजी मियाँको लिखना कि इस समय पाठशालाकी दशा गड़बड़ है। उसकी देखभाल पुरुषोत्तमदास कर रहे थे वे देश चले गये हैं। फिर भी वे अपने पुत्रको भेजें तो हम उसकी सार-संभाल करनेको तैयार हैं। अलबत्ता उसके लिए उन्हें २ पौंड प्रति मास देना पड़ेगा। इसमें उसके खाने पीने और पढ़ाईका खर्च आ जायेगा। पढ़ाईमें छोटी प्रेसका काम तथा अंग्रेजी गुजराती और गणित सिखाये जायेंगे। यह सब लिखनेपर भी यदि वे अपने पुत्रको भेजें तो उसे तुम अपने साथ रखना।

श्री डोक लौट आये हैं। श्री वेस्टको कहना कि वे उनका स्वागत करते हुए उन्हें एक पत्र लिख दें। मैं अपने पत्रमें वेस्टको यह लिखना भूल गया था।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें लिखित मूल गुजराती प्रति (सी॰ डब्ल्यू॰ ४९४५) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

१२३. मगनलाल गांधीको लिखे पत्रका अंश[3]

[नवम्बर १, १९११ के बाद][4]

जैसे हो सो ठीक करते हो। उस ओर अपनी प्रबल वृत्ति रखना। जिन कारणोंको तुम उलझनमें डालनेवाले बतलाते हो उनमें कुछ नहीं है। तुम्हारी जमीन तुम्हारी ही रहेगी। तुम उसे आबाद कर सकोगे। फिलहाल तो सबको रखो

१. उपलब्ध नहीं है।
२. यह उपलब्ध नहीं है।
३. इस पत्रके प्रारम्भके कुछ पृष्ठ प्राप्त नहीं हैं। मजमूनसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मगनलाल गांधीको लिखा गया था।
४. पत्रमें आये हुए उल्लेखसे प्रकट है कि यह पत्र मगनलाल गांधीको नवम्बर १, १९११ के पश्चात् लिखा गया था।

उचित है। एक भी पाठकको यह बात ठीक जान पड़े कि उसे तो खादी ही करनी है तो उसे किसी दूसरेकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१२-१९११

३३६. भारतीय और ड्यूक महोदय[1]

दक्षिण आफ्रिकामें एक अपूर्व घटना घटी है। भारतीय समाज हमेशा शाही मेहमानोंको मानपत्र भेंट करता आया है और [उनके अभिनन्दनके] सार्वजनिक समारोहोंमें भाग लेता रहा है।

इस अवसरपर माननीय ड्यूकके [आगमनके] विषयमें केपने पहली बार एक नई रीति अपनाई। वहाँके भारतीयोंने यह किया कि उनके पास मानपत्र तो भेजा परन्तु समारोहमें शरीक नहीं हुए।

ट्रान्सवाल इस उदाहरणका अनुसरण करते हुए एक कदम और आगे बढ़ गया। उसने मानपत्र न भेजनेका कारण बताते हुए ड्यूक महोदयको अपने कष्टोंसे परिचित कराया तथा पत्रके द्वारा अपनी राजभक्ति व्यक्त की। ड्यूकके सौजन्यपूर्ण उत्तरसे प्रकट है कि केपके भारतीयोंका यह कार्य अनुचित नहीं था। भारतीय समाज पीड़ित है और मातमकी मनःस्थितिमें है फिर भला वह सार्वजनिक अवसरोंमें भाग कैसे ले सकता है? अगर उनमें भाग लेता भी है तो वह सच्चे हृदयसे किया गया भाग नहीं हो सकता। जो हो यह तो सभी मानेंगे कि श्री काछलिया और इमाम साहबके पत्र वाजिब थे। नेटाल कांग्रेसने भी वैसा ही कदम उठाया है और ठीक किया है।

अब इस कदमका असर आगे चलकर मालूम होगा। हमारी प्रामाणिकताके विषयमें लोगोंके दिलमें अधिक गहरा विश्वास पैदा होगा और हम जो-कुछ करेंगे उसे महत्त्व मिलेगा। लोग जान जायेंगे कि हम 'हाँ जी हाँ जी' करनेवाले न होकर ऐसे लोग हैं जो अपना मन्तव्यको उचित मात्रामें किसी सम्राट् तक के समक्ष रखनेमें नहीं हिचकिचाते।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१२-१९११

[1] देखिए "शाही मेहमानोंका आगमन" पृष्ठ ४१०-४१।

३३७. सेसिलके भारतीय

भारतीय जहाँ जाते हैं वहीं उभरने लगते हैं। परदेशमें कुछ समय रहनेके बाद वे ज्योंही व्यापार-व्यवसायमें भाग लेकर आगे बढ़े कि उनपर भारी बोझ दिया जाता है। सेसिल टापूमें भारतीयोंकी आबादी खासी है और उसमें हर साल वृद्धि होती जा रही है। मानेवालोंमें ज्यादातर मजदूर होते हैं। इस टापूमें दुकानें प्रायः भारतीयोंकी हैं। थोड़े चीनी व्यापारी भी देशमें आते हैं। बन्दरगाहमें अचल सम्पत्तिका बड़ा भाग भारतीयों द्वारा खरीदा और आबाद किया हुआ है। नेटालके समान ही यहाँकी खेती-बाड़ीका विकास भी भारतीयोंके द्वारा हुआ है। इस प्रकार भारतीय उपनिवेशको समृद्ध बनाकर स्वयं समृद्ध होते हैं। परन्तु इस सम्बन्धमें गोरोंकी भावना जानने योग्य है। इस टापूके गवर्नरने गत वर्षके विवरणमें लोगोंको चेतावनी दी है कि भारतीय व्यापारी जमींदार बनते जा रहे हैं। और कहा है कि भारतीय सामान्यतः निकृष्ट किसान हैं क्योंकि वे जमीनका सारा कस एक साथ निकालकर, धनी बनकर स्वदेश चले जानेकी मनोवृत्ति रखते हैं। इस देशमें जमीनकी कीमत बीसियन सौ रुपया प्रति एकड़ है। यद्यपि उपजाऊ जमीन प्राप्त करनेमें बड़ी कठिनाई होती है। इस विवरणसे तो यही पता चलता है कि भारतीय मामूली जमीनपर मेहनत करके देशको समृद्ध बनाते हैं और स्वयं समृद्ध होते हैं। तो फिर इसमें चेतावनी देने-जैसी क्या बात है? अंग्रेज कवि गोल्डस्मिथने लिखा है कि राजा और रईसोंकी अपेक्षा उद्योगी किसान देशकी बड़ी और सच्ची निधि हैं। देश और जनताका कल्याण इस निधिसे भय खानेमें नहीं है बल्कि उसको प्रोत्साहन देनेमें है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-१२-१९११

३३८. पत्र: मगनलाल गांधीको

[शुक्रवार, दिसम्बर ९, १९११ के पूर्व][1]

चि॰ मगनलाल,

आज इतना ही भेज रहा हूँ। शेष तुम्हें शुक्रवारको मिलेगा। यदि यह सामग्री अधिक जान पड़े तो उसे मुल्तवी रखना। उसे छापनेकी फिक्रमें अंकमें देरी न करना। मैं बहुत नहीं भेजूँगा।

१. टॉमस केम्पके लेख डीकैसी ऑफ क्राइस्टका गुजराती अनुवाद, जिसका उल्लेख इस पत्रमें किया गया है, १०-१२-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित हुआ है। यह पत्र ९ दिसम्बर, १९११ को पड़नेवाले शुक्रवारसे पूर्व लिखा गया होगा।

यदि कर सको तो 'फैंसी ऑफ सीड' का अनुवाद कर डालो। पुस्तक साधारण है, परन्तु हमारे मतलबकी है। मेरा विचार कुमारस्वामीकी पुस्तकका सारांश प्रकाशित करनेका है। देखूँ कर पाता हूँ कि नहीं।

मोहनदासके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ४९४७) से।
सौजन्य: राधाबेन चौधरी।

३३९. पत्र: जी० ए० नटेसनको

टॉल्स्टॉय फार्म
दिसम्बर ९, १९१

प्रिय श्री नटेसन,

आपको एक विस्तृत पत्र लिखनेका कर्ज मुझपर अब तक बना है। परन्तु भाग-दौड़ इतनी रहती है और संघर्षसे सम्बन्धित कार्योंमें इतना व्यस्त रहना पड़ता है कि शान्तिसे बैठकर आपको लिखनेका समय नहीं निकाल पाता।

चार सौ पौण्ड भेजनेकी सूचनाके तारके लिए अनेक धन्यवाद। सहायता बड़े मौकेकी रही। वापस आनेवाले निर्वासितोंको जहाजसे उतारनेमें अप्रत्याशित कठिनाइयाँ आईं, जिनके कारण पाँच सौ पौण्ड खर्च हो गये और चालू खर्चके लिए कुछ भी नहीं बचा। इसलिए मुझे रुपये-पैसेके लिए आपको तार[1] भेजना पड़ा था। इसी प्रकारका एक तार[2] श्री पेटिटको भी भेजा गया था। जिस दिन आपका तार आया उसी दिन पच्चीस हजार रुपयेके एक चैकके साथ श्री रतन टाटाका भी एक पत्र मिला था। इसलिए अब पैसेके बारेमें कोई चिन्ता नहीं रही। मैं श्री टाटाके पत्रकी नकल साथमें भेज रहा हूँ।

वापस आनेवाले सभी निर्वासित आपकी कृपाकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। वे मुझे बतलाते हैं कि आपने उनकी सुख-सुविधाका ख्याल रखनेमें कुछ उठा नहीं छोड़ा। आपने उनके लिए जो कुछ किया उस सबके लिए मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिये।

आपने देखा होगा कि निर्वासित भारतीयोंमें से मेरा मतलब उनके दूसरे जत्थेसे है, एकको भी भारत नहीं लौटना पड़ा। खेदका विषय है कि सभीको चीनियोंको लौट जाना पड़ा। परन्तु उसमें एक हद तक चीनी संघका भी दोष था। वह इस अप्रत्याशित घटनाके लिए तैयार नहीं था।

आपने यह भी देखा होगा कि जो लोग यहाँ वापस आये उनमें से प्रत्येक ट्रान्सवालकी जेलोंमें या तो सजा काट चुका है, या काट रहा है। इनमें वे पाँच शामिल नहीं हैं, जो अभी तक कैम्पमें हैं। किन्तु आशा है कि वे जल्दी ही सीमाका उल्लंघन करेंगे।

१ और २. उपलब्ध नहीं हैं।

निर्धन परिवारोंको आर्थिक सहायता दिये जानेके सम्बन्धमें आपकी आशंका स्वाभाविक किन्तु निराधार थी। इससे आपकी उदारता प्रकट होती है। आप जानते हैं कि उन लोगोंके साथ मेरा तार[1] द्वारा सम्पर्क था इसलिए मैंने अदायगी स्थगित की थी। चूंकि उनमें से अधिकांश लोग जानते थे कि परिवारोंके लिए सहायता प्राप्त करनेके बारेमें बातचीत चल रही है और चूंकि उनको बतला दिया गया था कि फार्ममें आकर रहनेवाले परिवारोंकी ही सहायता की जा सकेगी इसलिए मुझे पूरी आशा थी कि वे लोग तारसे अपने परिवारोंको फार्मपर भेजनेकी सहर्ष सहमति देंगे। लेकिन मैंने जैसे ही देखा कि वे सहमति नहीं भेज रहे हैं, वैसे ही फार्म आनेके लिए सहमत न होनेवाले परिवारोंको अक्तूबर ७ तक की अदायगी कर दी गई, क्योंकि अन्तिम निर्धारित तिथि यही थी। मैंने दर्बनके लोगोंसे परामर्श कर लिया था सभी बातें उनके सामने रख दी गई थीं और उनको बतला दिया गया था कि परिवार या तो फार्ममें रहने चले जायें या फिर अपना निर्वाह स्वयं करें।' मैंने उनसे यह भी कह दिया था कि जितना पैसा हाथमें है उससे फार्मसे अलग रहनेवाले परिवारोंका खर्च अनिश्चित काल तक नहीं उठाया जा सकेगा। फिर भी पुरुषोंने जेल जाना पसन्द किया। कुछ परिवार तो फार्मपर आ गये हैं लेकिन अधिकांश जोहानिसबर्गमें अपने ही पैरोंपर खड़े हैं। फार्मकी दोहरी उपयोगिता है। एक तो यह कि यहाँ परिवारोंका निर्वाह काफी कम खर्चमें हो जाता है और इस प्रकार संघर्षको अनिश्चित काल तक चलानेकी व्यवस्था हो जाती है और हम धोखाधड़ीसे भी बच जाते हैं। हमें यह तो मानना ही पड़ता कि संघर्षमें भाग लेनेवालोंमें से कुछ ऐसे भी हैं जो दूसरोंके अज्ञानका अनुचित लाभ उठानेका लोभ संवरण नहीं कर पाते। फार्म इस प्रकारकी बातोंको नहीं चलने देता। इसलिए जो लोग सचमुच ही अपने पैरोंपर खड़े न हो सकते हों उनको अनिवार्यतः फार्ममें आ जाना चाहिए। जो ऐसा नहीं करते उनमें किसी-न-किसी प्रकारसे अपना निर्वाह करनेकी सामर्थ्य है। और यह संघर्ष तो मुख्यतः लोगोंको प्रशिक्षित करनेके लिए है इसका मंशा संघर्षके जरिए लोगोंको ऊँचा उठाना है। यह तबतक नहीं किया जा सकता जबतक हम समाजसे कूड़ा-करकट साफ न कर दें। फार्ममें रहनेपर हम परिवारोंको एक तरहकी शिक्षा भी दे सकते हैं।

लोगोंको सन्तुष्ट करनेकी हर कोशिश की गई है। इसके बावजूद लोगोंमें शिकायत बनी ही रहती है। हमें जिस प्रकारके लोगोंके साथ काम करना पड़ता है और हमें जो सामग्री उपलब्ध है, उसे देखते हुए यह अनिवार्य है। आश्चर्य तो इस बातका है कि सही शिकायतोंकी संख्या बहुत ही कम रही है। इसका सारा श्रेय उन लोगोंको है जो इतनी शालीनता और धीरताके साथ बिना कोई शिकायत किये संघर्ष कर रहे हैं। इन भले लोगोंने जो कर दिखाया है वह निःसन्देह हमारे देशके अर्ध-शिक्षित लोगोंके लिए सम्भव नहीं था। अब देखना यह है कि यदि संघर्ष और लम्बा खिंचता है तो इनमें से कितने लोग अन्तिम परीक्षाकी घड़ी तक टिक पाते हैं।

1. उपलब्ध नहीं है।

लेकिन लक्षण कुछ ऐसी तरहके दिखाई पड़ रहे हैं कि समके वर्षके प्रारंभिक चरणमें संघर्ष कदाचित् समाप्त हो जायेगा। इस बार लगता है कि समाजके नेताओंसे कोई परामर्श नहीं किया जायेगा। जो भी हो बात बिलकुल साफ है और संघर्ष तो माँगें स्वीकृत होनेपर ही समाप्त हो सकेगा।

श्री रिच यहाँ कुछ दिन ठहरनेके बाद लन्दन चले गये हैं। श्री पोलक केपसे सम्बन्धित अपीलकी आखिरी तैयारियोंकी देखभालके लिए केप चले गये हैं।[1]

मैसूर, बीकानेर और निजामसे आपने चन्दा प्राप्त किया यह आपकी बड़ी सफलता रही।[2]

आपने 'इंडियन ओपिनियन' में श्रीमती सोलाके मुकदमेके बारेमें पढ़ा होगा। वह अभी फर्द-जुर्म लगाकर अदालतमें दायर नहीं किया गया है। बहुत मुमकिन है कि कभी दायर ही न किया जाये। यदि किया गया तो वे जरूर जेल जायेंगी और शायद उनकी कई बहिनें भी उनका अनुसरण करें।

नाबालिग बच्चोंका मामला भी अभी तय नहीं हुआ है। मैं आपका और-अधिक समय नहीं लेना चाहता और अपनी रामकहानी यहीं बन्द करता हूँ।

यह लिखते समय सर्वश्री थम्बी नायडू और गोपाल नायडू मेरे पास बैठे हैं। मेरे साथ वे भी आपको सादर अभिवादन भेजते हैं और गरीब निर्वासितोंको दी गई आपकी सराहनीय सहायताके लिए फिर धन्यवाद देते हैं।

हृदयसे आपका

मो॰ क॰ गांधी

[पुनश्च]

यहाँ मुझे इसका उल्लेख भी अवश्य करना चाहिए कि आपके भेजे हुए सुन्दर फोटोग्राफ और हरिश्चन्द्र की प्रतियोंके लिए सत्याग्रही आपके बड़े आभारी हैं। आप जानते ही होंगे कि ये दोनों चीजें श्री रुस्तमजीके घरपर सार्वजनिक रूपसे भेंट की गई थीं। आपने मेरे लिए अपना एक चित्र और कई लोगोंके साथ अपना फोटोग्राफ और साथमें हरिश्चन्द्र की एक प्रति भेजी। उसके लिए अनेक धन्यवाद। हरिश्चन्द्र की प्रतिकी भेंट तो बड़ी ही उपयुक्त रही।

मो॰ क॰ गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी॰ एन॰ २२२१) से।

१. निर्वासितोंके मुकदमेके सिलसिलेमें।

२. मैसूरके दीवानके मारफत (१,०), मैसूर महाराजासे २,) और निजाम हैदराबादसे २५) इसमें दी रकमें प्राप्त की थीं।

३४० धीरजका फल मीठा

जबसे समझौतेकी बात चली है तबसे भारतीय अधीर हो उठे हैं। अभी विधेयक क्यों प्रकाशित नहीं हुआ? अब वह कब प्रकाशित होगा? क्या वह जनवरी तक के लिए टल गया? फरवरी तक के लिए तो नहीं टल जायेगा? कहीं बिलकुल ही प्रकाशित न हुआ तो? ऐसी अधीरता तो निर्बलता और कायरताका लक्षण है। हमें जो मिलना चाहिए वह तो ठीक समयपर मिलेगा ही। अधीर तो हम तब होते हैं जब हम किसी चीजको पानेके लायक न होते हुए भी उसे पाना चाहते हैं। पर इस प्रकार हम अपनी अयोग्यता भी सिद्ध कर देते हैं। जिस वस्तुके बारेमें हम यह जानते और मानते हैं कि वह हमें मिलनी ही चाहिए, उसके लिए व्यग्र होनेकी कोई बात नहीं है।

विधेयक तुरन्त प्रकाशित हो या देरसे चाहे प्रकाशित ही न हो इससे क्या? वास्तवमें तो ज्यों-ज्यों विलम्ब होता है, त्यों-त्यों हमें दोहरा लाभ होता है। एक तो यह कि जो सच्चे भारतीय हैं उनको अबतक निखरनेका अवसर मिलता जा रहा है। दूसरे, जो लड़ाईमें भाग नहीं ले रहे हैं उन्हें भी विदित हो जायेगा कि यदि एक भी जूझनेवाला शेष रहा तो हमारी माँग पूरी होकर ही रहेगी। ऐसा समझनेवाला भारतीय चाहे सत्याग्रही हो चाहे न हो अधीर न होगा। हमें समझना चाहिए कि अधीर होनेसे ही कार्य सम्पन्न होनेमें देरी होती जा रही है। हम साधारण कामोंमें भी उतावली करते हैं तो बौरा जाते हैं और फिर कुछ सूझ नहीं पड़ता। यही कारण है कि हमारे यहाँ उतावला सो बावला और धीर सो गम्भीर कहा जाता है।[1] और इसीलिए हम सभी भारतीयोंसे धीरज रखनेका अनुरोध करते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-१२-१९११

३४१ पत्र: मगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म

मगसिर सुदी ११ [दिसम्बर १२, १९११][2]

चि० मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला।

मॉरिशसवालोंमें दिये गये मानपत्रोंके बारेमें कुछ कहना उचित नहीं जान पड़ता। दोनों निन्दाके योग्य हैं। मैं टिप्पणी लिखनेवाला तो था किन्तु ऐसा सोचकर कि शायद

१. एक गुजराती कहावत।

२. कुमारस्वामीकी पुस्तकमें ... यह "पत्र: मगनलाल गांधीको" (पृष्ठ २८१-८२) के बाद दिया गया था। १९११ में मगसिर सुदी ११ दिसम्बरकी १२ तारीखको पड़ी थी।

३४२ पत्र ऑलिव डोकको

टॉल्स्टॉय फार्म
दिसम्बर १५, १९११

प्रिय ऑलिव

रामदासको संगीत न सिखा सकनेके लिए आपको क्षमा माँगनेकी आवश्यकता नहीं है। [मकानकी] रंगाई-पुताईके दिनोंमें यह कितना दुस्तर है यह बात मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ। आपके पिताजी[1] अभी-अभी आये हैं, इसलिए [भी] आपके कार्यक्रममें कुछ हफ्ते तकके व्यवधानका मेरे मनमें विचार तक नहीं आ सकता।

आपने रामदासको प्रति सोमवार [संगीत] सिखानेकी बात कही है। अनेक धन्यवाद। परन्तु मेरा खयाल है कि वह अबसे सोमवारको तो जोहानिसबर्ग नहीं आ सकेगा और मैं हफ्तेमें केवल तीन दिन जोहानिसबर्गमें रहता हूँ किन्तु उन दिनों दफ्तरसे हिलने तकका समय नहीं मिल पाता इसलिए मैं शायद बड़े दिनसे पहले आपसे मिलने नहीं आ पाऊँगा। कामना है कि ग्राफ रीनेटमें[2] आपका और क्लीमेंटका[3] समय बड़े आनन्दपूर्वक बीते।

कृपया अपनी माताजी और पिताजीसे मेरा अभिवादन कहें।

स्पष्ट है कि कोम्बर[4] आपके साथ नहीं जा रहा है। बेचारेको बहुत सूना-सूना लगेगा। आप जब भी उसे पत्र लिखें तो कृपया मेरी ओरसे उसे और विलीको[5] प्यार लिखें।

आपका सच्चा
मो० क० गांधी

कुमारी ऑलिव डोक
सदरलैंड एवेन्यू
हॉस्पिटल हिल
जोहानिसबर्ग

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४९२७) से।
सौजन्य : सी० एम० डोक।

१. रेवरेंड जे० जे० डोक यूरोप और अमेरिकाका लम्बा दौरा करनेके बाद दक्षिण आफ्रिका लौटे थे। देखिए "एम० के० गांधी" पृष्ठ ४२।

२. केप प्रान्तमें पोर्ट एलिजाबेथसे १८५ मील दूर २,५०० फीटकी ऊँचाईपर स्थित एक कस्बा।

३, ४ और ५. कुमारी ऑलिवके भाई।

३४३ पत्र : मगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म
मगसिर सुदी १५ [दिसम्बर १५, १९१][1]

चि० मगनलाल,

तुमने डायरीके लिए जो कुछ भेजा है वह ठीक है। मैं उसमें कोई परिवर्तन न करूँगा। केवल इतना ही लिखना कि रम्भाबाई गिरफ्तार कर ली गई है। परिणाम शुक्रवारको मालूम होगा। यह भी लिखना कि उसकी गिरफ्तारीके बाद अन्य स्त्रियोंने भी जेल जानेका निश्चय किया है।

लड़केके मुकदमेके बारेमें जो फैसला सुनाया गया है, केवल उतना ही छापना है।

एक और एकड़के[2] बारेमें मैं लिख ही चुका हूँ। श्री वेस्टसे बातचीत करके ले लेना।

[गुजरातीसे]

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें लिखित मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ४९४९) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

३४४ श्री टाटा और सत्याग्रही

श्री रतन टाटाने सत्याग्रह-संघर्षके लिए दूसरी बार २५,   रुपयोंकी रकम देकर दिखा दिया है कि हमारे प्रति उनकी बहुत गहरी सहानुभूति है और यह कि वे संघर्षके महत्त्वको भली प्रकार समझते हैं। श्री टाटासे प्राप्त हुई अन्य रकमको मिलाकर भारतमें कुल सवा लाख रुपए एकत्रित हुए हैं। इस धन-राशिका त्रिपंचमांश अकेले श्री टाटाने दिया है। यह कोई मामूली दान नहीं है।

जैसी उनकी उदारता है, वैसा ही उत्साहवर्धक उनका पत्र है। श्री टाटा भली भाँति जानते हैं कि यह संघर्ष स्वार्थमूलक नहीं है, बल्कि समूचे भारतकी प्रतिष्ठाकी

१. पत्रमें उल्लिखित रम्भाबाई सोढाका मुकदमा शुक्रवार, २२ दिसम्बर १९१ को होनेवाला था। स्पष्ट है कि यह पत्र १९१ में लिखा गया। उस वर्ष मगसिरकी पूर्णिमा १५ दिसम्बरको पड़ी थी।

२. फीनिक्स आश्रमका प्रत्येक सदस्य केवल तीन दो एकड़ जमीन ले सकता था। मालूम होता है कि मगनलाल उससे और उससे भाई छगनलालके बीच एक एकड़ जमीन और चाहते थे। यह सब स्पष्ट नहीं है।

रक्षाके लिए लड़ा जा रहा है। उन्होंने साफ शब्दोंमें कहा है कि इस संघर्षका प्रतिफल दुनिया-भरमें ब्रिटिश साम्राज्यके प्रत्येक हिस्सेपर पड़ेगा। अवश्य ही ऐसा होगा। जनरल स्मट्स जैसे व्यक्ति भी अब रंग-भेदकी बात भूल गये हैं। उनके दो अधिनियम बतला रहे हैं कि कानूनकी नजरमें तो सभी प्रजाजन एक-से माने जाने चाहिए। जो भारतीय ऐसे महत्त्वपूर्ण संघर्षमें पूर्ण रूपसे भाग ले रहे हैं वे बड़े भाग्यशाली हैं। उनकी दौलत बरबाद हुई, वे अपने बाल-बच्चोंसे जुदा भूखों मर रहे हैं वे जेलोंमें सड़ रहे हैं, किन्तु इस सबसे क्या होता है? देशके मानकी खातिर वे अपना सर्वस्व खो दें तो भी उनका यह खोना सब-कुछ पानेके बराबर है। ऐसे उद्देश्यके लिए मरना जीनेके समान है। तो फिर श्री टाटा जैसा कोई धनाढ्य भारतीय इस प्रकारके संघर्षके लिए धन अर्पित क्यों न करे? उन्हें इस बातका दुःख है कि अन्य भारतीय पर्याप्त उत्साह नहीं दिखा रहे हैं। बात दुःखी होनेकी है फिर भी दुःख माननेकी जरूरत नहीं है। ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा—ज्यों-ज्यों संघर्ष लम्बा होता जायेगा—त्यों-त्यों हमारे संघर्षकी महिमा बढ़ेगी।

श्री टाटा चाहते हैं कि यथा-संभव शीघ्र ही ऐसा रास्ता ढूँढ़ निकालें जिससे हमारे मानकी रक्षा हो। हमारी भी यही इच्छा है। और थोड़े ही समयमें इस प्रकारके समझौतेकी सम्भावना भी है।

फिर भी भारतीय समाजको कोई बड़ी आशा न रखनी चाहिए। जनरल स्मट्ससे पाला पड़ा है। ये महाशय ऐसे हैं कि क्षण-भरमें अपनी बातसे मुकर जा सकते हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है त्यों-त्यों उनका यह खयाल बनता जा रहा है कि सत्याग्रही घुटने टेक देंगे। और यदि हम सब घुटने टेक ही देंगे तो वे समझौता क्यों करने लगे? परन्तु उनकी यह अपावन इच्छा सफल होनेवाली नहीं है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि एक भी सत्याग्रही डटा रहा तो अधिनियममें संशोधन होकर ही रहेगा। महात्मा थोरोका कथन है कि किसी भी अच्छे संघर्षमें जबतक शुद्ध अन्तःकरण वाला एक भी व्यक्ति होगा तबतक उस संघर्षमें पराजय हो ही नहीं सकती उसमें विजय अवश्यम्भावी है। हकीकत तो यह है कि चाहे अभी कुछ और भी सत्याग्रही घुटने टेक दें तो भी कुछ तो अवश्य ही ऐसे बच रहेंगे जो मरते दम तक लड़ेंगे। प्रीतमने[1] कहा है कि मरनेके लिए तैयार गोताखोर ही मोती ला सकते हैं। यहाँ भी यही बात है। यह संघर्ष ऐसा-वैसा नहीं है। आइए, इसमें प्राणोंकी आहुति दें और इस प्रकार मरकर जियें। तिलका बीज पेरे जानेपर तेल देता है इसमें तिलका कुछ बिगड़ता नहीं प्रत्युत उसका मूल्य बढ़ता है। जब मनुष्य समझ-बूझकर अपनेको पिरने देता है, तब उसमें से नैतिक शक्ति-रूपी तेल झरता है और उससे जगतका पोषण होता है। तिलकी भाँति इस प्रकार स्वेच्छासे कष्ट झेलनेवाले मनुष्यकी कीमत की जाती है। अन्यथा पैसे के लिए अथवा विषय-वासनामें फँसकर घुल-घुलकर मरना तो कीड़े मकोड़ोंकी तरह मरना है। ऐसे व्यक्तिको कोई नहीं पूछता।

१ (१७७१-१८२५); एक गुजराती कवि।

श्री टाटाके पत्र तथा उनके इस दानके फलस्वरूप हमारे कन्धोंपर दुगना बोझ आ पड़ा है। सत्याग्रहियोंको अपने निश्चयमें और दृढ़ होना चाहिए और जो उस हद तक नहीं जा सकते उन्हें चाहिए कि जितना हो सके उतना द्रव्य दें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १७-१२-१९१०

३४५. कलकत्तेमें दंगा

कलकत्तेमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच जो दंगा हुआ उससे प्रत्येक भारतीयके मनमें तरह-तरहके विचार पैदा हो रहे होंगे। यह स्वाभाविक है। इस दंगेको हम धार्मिक दंगा नहीं मानते अधार्मिक दंगा मानते हैं। संसारमें धर्मके नामपर कम अधर्म नहीं होता। थोड़ा विचार करें तो समझा जा सकता है कि मुसलमान गोवध करता है इसपर मारवाड़ी उसे मारने क्यों जाये? अपने भाई, मुसलमानको मारनेसे गाय तो बचती नहीं पाप दोहरा हो जाता है। अंग्रेज रोज गाय मारते हैं हिन्दुओंको इससे क्यों क्षोभ नहीं आता? इसका उपाय मारधाड़ नहीं है, यह सहज ही समझमें आ जाता है। फिर मुसलमान भी गायको ही क्यों मारते हैं? किन्तु जहाँ आपसमें खींचतान चलती है वहाँ ऐसा ही होता है। हम इतने गिर गये हैं और अदालतों और वकीलोंके पंजेमें इस हद तक आ गये हैं कि हमारे दिमागमें यह साधारण विचार तक नहीं आ पाता। यदि आये तो तुरन्त समझमें आ जाय कि मारवाड़ियोंको मुसलमानोंसे लड़नेकी जरूरत नहीं है। उन्हें उनसे एक बार, दो बार और वे न मानें तो हजार बार भी विनती ही करनी चाहिए। परन्तु यह विनती सच्ची विनती तभी कही जायगी जब हमने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली हो कि वे न मानेंगे तो भी हम न लड़ेंगे और न अदालतमें जायेंगे। हम यह मामूली बात न समझ सकें और दंगा करें तो फिर इसे धर्मके नामपर झगड़ा ही कहा जायगा।

जिस प्रकार धर्मपरायण हिन्दुओंका लड़ना कर्तव्य नहीं है उसी प्रकार धर्मपरायण मुसलमानोंका कर्तव्य भी नहीं है। उन्हें भी लड़ना नहीं चाहिए। उनका भी जहाँ गोवध धार्मिक दृष्टिसे कर्तव्य न माना जाता हो वहाँ गोवध नहीं करना चाहिए।

किन्तु दोनों पक्षोंको एक-दूसरेकी प्रतीक्षा करने रहनेकी आवश्यकता नहीं है। कोई भी पक्ष दूसरा क्या करेगा इसका खयाल किये बिना सही कदम उठा सकता है।

कुछ लोग ऐसा मानकर लड़ना ठीक नहीं समझते कि जबतक हम इस तरह लड़ते रहेंगे तबतक दूसरेके अधीन ही रहेंगे फिर चाहे इंग्लैंडके अधीन रहें चाहे किसी अन्य बलवान् देशके। कुछ गहराईमें जानेसे समझमें आ जाता है कि यह खयाल बिलकुल गलत है। वास्तवमें देखें तो दंगोंका कारण ही पराधीनता है और जबतक हम यह मानते हैं कि यदि हम ज्यादा पिटेंगे तो सरकार हमारी रक्षा करनेके लिए बैठी ही है, तबतक हमें जो एकमात्र धर्मयुक्त और सच्चा रास्ता है वह सूझ ही नहीं सकता अर्थात् हम

लोग घानीमें जुते हुए अन्धे बैलकी तरह उसी गोल घेरेमें चक्कर काटते रहेंगे और मनमें समझते रहेंगे कि हम आगे बढ़ रहे हैं। इस विषम स्थितिमें भी मुक्त मार्ग एक ही है कि परतन्त्र होते हुए भी हम ऐसा व्यवहार करें मानो स्वतन्त्र ही हों। ऐसा व्यवहार करते हुए जान भी देनी पड़े तो दे दें। यही अन्तिम कसौटी है। जिसने इस शरीरको दुत्कारा है इस लोक अथवा परलोकमें उसका कोई हित नहीं रुक सकता। अगर पुलिसने आकर हमारी रक्षा की तो यह बात हमारे लिए लज्जाजनक है। पुलिस क्या रक्षा करती है? पुलिस तो हमें नामर्द ही बनाती है। दूसरेसे रक्षाकी आशा रखना शोभा नहीं देता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १७-१२-१९११

३४६ पत्र आलिव डोकको

[जोहानिसबर्ग]

सोमवार [दिसम्बर १९, १९११ को या उसके बाद][1]

प्रिय ऑलिव

रामदास और देवदासने मुझे अभी-अभी बतलाया कि पिताजी बीमार हैं। सुनकर दुःख हुआ। मैं अभी इस समय तो दफ्तर नहीं छोड़ सकता। और फिर सीधा फार्म लौट जाऊँगा। मुझे वहीं सूचना भेजो कि पिताजीकी हालत कैसी है और उनको क्या कष्ट है। पता तो तुम जानती ही हो—टॉल्स्टॉय फार्म लॉली स्टेशन।

तुम्हारा

मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४९२८) से।
सौजन्य सी० एम० डोक

३४७ समाचारपत्रोंके नाम पत्रसे उद्धरण

[दिसम्बर २४, १९११ से पहले]

यह दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि जनरल स्मट्सने (उनके अपने वक्तव्यके अनुसार) एशियाई प्रश्नके सिलसिलेमें समझौतेके बारेमें अनकरीब पार्लियामेंटमें दिये गये अपने वक्तव्यमें ऐसी बातें कही जो सही नहीं है।[2]

इंडियन ओपिनियन २४-१२-१९११

१. लगता है यह पत्र ऑलिव डोकको (पृष्ठ ४१२) के बाद लिखा गया था।
२. यह पत्र इतना ही उपलब्ध है।

३४८. द० आ० ब्रि० भा० समितिके नाम पत्रसे उद्धरण[१]

[दिसम्बर १, १९१ से पूर्व]

मन्त्रीगण गवर्नर महोदयको आश्वस्त करना चाहते हैं कि ट्रान्सवालकी जेलोंमें तथाकथित भारतीय सत्याग्रहियोंके साथ कोई भेदभाव नहीं बरता जाता।

श्री गांधी इसका खण्डन करते हैं। वे कहते हैं

> सत्याग्रह आरम्भ होनेसे पहले उन भारतीय कैदियोंको जो सचमुच भारतीय थे जेलकी बाल्टियाँ उठानेके बारेमें उनकी सर्वविदित आपत्तिके कारण सामान्यतः उस कामसे छुटकारा मिल जाता था। मुझे जब जोहानिसबर्गमें १५१ कैदियोंके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था तब वहाँ ऐसा ही होता था और फोक्सरस्टमें भी — जब वहाँ ७५ से अधिक कैदी थे — ठीक यही प्रथा थी। सत्याग्रहकी प्रगति बढ़नेके साथ-साथ जेल-अधिकारियोंका बर्ताव अधिकाधिक सख्त होता गया है और जब सभी सत्याग्रहियोंको डीपक्लूफ जेल भेज दिया गया तब तो उसकी पराकाष्ठा ही हो गई। कैदी-बस्ती होनेके कारण वहाँके नियम कहीं अधिक सख्त हैं। उदाहरणके लिए फोक्सरस्ट या जोहानिसबर्ग जेलमें हत्याका प्रयत्न करनेके लिए सजा पाये भारतीय कैदी और वतनी कैदियोंको भी मुलाकातियोंसे मिलने और पत्र लिखनेकी सुविधाएँ दी जाती हैं लेकिन डीपक्लूफ जेलमें नियम द्वारा इसकी मनाही रहती है। वहाँ कोई भी कैदी तीन महीनेसे पहले मुलाकातियोंसे नहीं मिल सकता उसे चाहे किसी जघन्य अपराधमें सजा मिली हो या वह सत्याग्रही हो। और अधिकांश सत्याग्रहियोंको तीन ही महीनेकी सजा काटनी पड़ती है।
>
> प्रत्येक व्यक्तिको दक्षिण आफ्रिकाके अन्य किसी भी भागमें अपना अधिवास सिद्ध करनेका पूरा-पूरा अवसर दिया गया था लेकिन उनमें से कोई भी वैसा नहीं कर सका । जब भी किसी व्यक्तिके बारेमें यह मालूम हुआ कि वह दक्षिण आफ्रिकाके अन्य किसी भागका निवासी रहा था या वहीं पैदा हुआ था तो उसे निर्वासित करके भारत भेजनेके बजाय [दक्षिण आफ्रिकाके] उसी प्रदेशमें वापस भेज दिया गया। ट्रान्सवालके सर्वोच्च न्यायालयने पिछली मईमें विलियम चिनग तथा एक अन्य बनाम अटर्नी जनरलवाले मुकदमेमें और उसके बाद नायडू बनाम सम्राट्वाले मामलेमें निर्णय दिया था कि यदि कोई एशियाई उसके किये जानेपर अपना पंजीयन प्रमाणपत्र पेश न कर सके तो उसे गिरफ्तार

१. गांधीजीने कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स सी० ओ० ५५१/२३ से उद्धृत करते हुए, दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति, लन्दनको एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने ट्रान्सवाल सरकार द्वारा ट्रान्सवालके गवर्नरको भेजी गई रिपोर्टमें कही गई कई बातोंका खण्डन और उसमें गलत बातोंकी टीका की थी। दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिके मन्त्री, एल० डब्ल्यू० रिचने १ दिसम्बर, १९१ को उपनिवेश कार्यालयके उपनिवेश-मन्त्रीके पास जब पत्र भेजा तो कुछ संशोधित अंश रिपोर्टके गलत-बयानोंके संशोधित रूप भेजे थे।

करके १९०८ के अधिनियम ३६ की धारा ७ के अन्तर्गत मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया जा सकता है और यदि वह अपने पंजीयित होनेके बारेमें मजिस्ट्रेटको सन्तुष्ट न कर सके तो मजिस्ट्रेटके सामने सिवा इसके कोई विकल्प नहीं रह जायगा कि वह उस एशियाईको उपनिवेशसे निकाल देनेका आदेश दे।

श्री गांधी इस बातका खण्डन करते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें अधिवास या यहाँकी पैदाइश सिद्ध करनेका पूरा-पूरा अवसर दिया गया था। वे कहते हैं:

> मैं पहला ही मामला लेता हूँ सरकारने पृष्ठ १३ पर जिसका हवाला दिया है। वह मामला है मणिकम् पिल्लेका। मैं कह सकता हूँ कि पंजीयन-अधिकारी मणिकम् पिल्ले और उनके पिताको भी जानते थे। इतना ही नहीं मणिकम् पिल्ले धारा-प्रवाह अंग्रेजी बोलता है। उसने साबित किया था कि वह विद्यार्थी है और उसका दावा था कि उसकी पैदाइश दक्षिण आफ्रिकाकी है और उसे अपनी शैक्षणिक योग्यताके आधारपर मेटाकमें प्रवेश करनेका अधिकार है। दूसरा मामला आर० सी० एस० पिल्लेका है। उसने भी बताया था कि उसके पास पर्याप्त शैक्षणिक योग्यता है। इसी प्रकारका मामला टी० ए० एस० आचार्यका है। इसके सम्बन्धमें सरकारी रिपोर्टमें स्वीकार किया गया है कि उसने अपनी शैक्षणिक योग्यताके आधारपर ही दक्षिण आफ्रिकाके किसी भागमें निवास करनेका अधिकार चाहा था। मेरे पास उसके कुछ पत्र हैं जो उसने प्रिटोरियामें अपनी नजरबन्दीके दिनोंमें लिखे थे। उनमें मुझे बतलाया गया है कि उसने अपनी योग्यताके बारेमें सभी अपेक्षित विवरण जुटा दिया था। परन्तु उक्त सभी व्यक्तियोंको निर्वासित करके भारत भेज दिया गया था। मैं दो पिल्ले भाइयोंको जानता हूँ जिन्होंने मजिस्ट्रेटके सामने पेश होनेसे पहले मुझसे पूछा था कि क्या किम्बर्लेमें उनकी पैदाइशके बावजूद उनको निर्वासित कर दिया जायेगा। मैंने उनसे कहा था कि होना तो नहीं चाहिए, पर फिर भी उनको चाहिए कि वे मजिस्ट्रेटको अपनी ओरेंज कॉलोनी की पैदाइश बतला दें। फिर मैं उनसे तब मिला जब उनको निर्वासनका आदेश दे दिया गया था। दोनोंने मुझे बतलाया कि उन्होंने किम्बर्लेकी अपनी पैदाइशकी बिनापर उसका विरोध किया था लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। मुझे भली-भाँति याद है कि वे दोनों भाई मुझपर नाराज हुए थे। उनका खयाल था कि मैंने उनको गुमराह कर दिया था। मैं ऐसे अनेक उदाहरण पेश कर सकता हूँ।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत जिन मुकदमोंका हवाला ऊपर दिया गया है उनके बारेमें भी गांधी लिखते हैं:

> पता नहीं जानकर या अनजानेमें लेकिन सरकारने यह कहकर लॉर्ड क्रू को निश्चित गुमराह किया है कि सिंगेन पिल्ल तथा एक अन्य बनाम एटर्नी जनरल और नायडू बनाम सम्राट् दोनों मुकदमें सिद्ध करते हैं कि पंजीयन-प्रमाणपत्र पेश न कर पानेवाले एशियाईको गिरफ्तार करके धारा ७ के अनुसार उनका निर्वासन करानेके लिए किसी मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया जा सकता है। श्री सिंगनवाले मुकदमेमें

विचारका विषय इतना ही था कि क्या निर्वासनके पश्चात् भी त्रिलनको जितने काल तक नजरबन्द रखा गया उतने काल तक नजरबन्द रखना उचित था। श्री नायडूवाले मुकदमेमें कुछ वैधानिक आपत्तियोंके प्रश्नपर निर्णय किया जाना था। वैधानिक आपत्तियाँ ये थीं कि जिन विनियमोंके अन्तर्गत श्री नायडूपर अभियोग लगाया गया था क्या वे उनके मामलेपर लागू होते थे और क्या पंजीयन-अधिकारीकी नियुक्ति विधि-सम्मत ढंगसे की गई थी। इस प्रकारकी गलतबयानीसे साधारणतया कुछ बनता-बिगड़ता नहीं लेकिन जिस सरकारी रिपोर्टमें यह गलतबयानी की गई है वहाँ इसका मन्शा सरकारके असाधारण आचरणका औचित्य सिद्ध करना है इसलिए उसका खण्डन करना आवश्यक हो गया है। सत्याग्रही जब अनेक बार दोषी हो चुके हैं अतः सरकारने उन्हें अदालतके जरिये सजा दिलानेकी अपेक्षा उनको एक प्रशासकीय बोर्डके सामने पेश करनेका जो प्रयत्न किया है, वह असाधारण आचरण ही है। इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि संघर्षके आरम्भिक दिनोंमें इनमें से कई निर्वासितोंपर कहा जाता है कि मुकदमे चलाये गये थे और उनको केवल जेलकी सजा दी गई थी। पुलिस उनको ट्रान्सवालके पंजीयित निवासियोंके रूपमें जानती थी। फिर बादमें उनके विरुद्ध प्रशासकीय तौरपर कार्रवाई क्यों की गई और उनको निर्वासनका आदेश क्यों दिया गया?

आगे किये जानेवाले निर्वासनोंके सम्बन्धमें पुलिसको हिदायत कर दी गई है कि जो एशियाई पंजीयित हो चुके हैं उनपर अधिनियमके उस खण्डके अन्तर्गत कार्रवाई न करनेकी पूरी सावधानी बरती जाये जिसमें निर्वासनकी व्यवस्था है।

इसपर श्री गांधी टीका करते हैं

यह सावधानी बरतनेके लिए अभी ही क्यों कहा जा रहा है? क्या यह सही नहीं है कि अधिनियमकी जिस धारामें निर्वासनकी व्यवस्था है उसके अन्तर्गत कार्रवाई शुरू करनेकी जिम्मेदारी कानून विभागकी थी पुलिसकी नहीं? मैंने अटर्नी जनरल द्वारा सरकारी वकीलोंके पास भेजकी प्रस्थापनाएँ पहले भजी गई एक टिप्पणी पढ़ी थी। उसमें कहा गया था कि सत्याग्रहियोंपर पहलेकी भाँति पंजीयन प्रमाणपत्र पेश न कर पानेसे सम्बन्धित धाराओंके अन्तर्गत नहीं बल्कि निर्वासनकी व्यवस्थावाली धाराओंके अन्तर्गत फर्द-जुर्म लगाया जाना चाहिए। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अब यह कहना कि पुलिसको बहुत अधिक सावधानी बरतने इत्यादिकी हिदायत दे दी गई है, यदि बदनीयती नहीं तो एक बड़ा ही भ्रामक कथन अवश्य है। मैं कुछ उदाहरण पेश करता हूँ। आर० एम० एल० मूडलेका मुकदमा संख्या ४५ लीजिए। कहा गया है कि उन्होंने अपनी शिनाख्तका कोई भी साधन देनेसे इनकार कर दिया था। मुझे मालूम है कि निर्वासनका आदेश देनेवाला मजिस्ट्रेट स्वयं जानता था कि मूडले लगभग बीस वर्षोंसे यहाँ निवास कर रहे हैं इसलिए यह आदेश देते हुए वह कुछ हिचकिचाहट महसूस कर रहा था। उसने मूडलेको पहचान भी लिया था। उसे याद आ गया था कि वे

पुराने अपराधी (सत्याग्रही) और वैध रूपसे पंजीयित एक भारतीय हैं। फिर उनको निर्वासनका आदेश क्यों दिया गया? एक और पुराने अपराधी हैं — अम्बी नायडू। उनको पंजीयित निवासीके रूपमें पुलिस मजिस्ट्रेट पंजीयन-अधिकारी और सभी सम्बन्धित लोग जानते थे। इतना ही नहीं वे उन लोगोंमें से थे जिन्होंने स्वेच्छया पंजीयनके दिनों (१९०७)में पंजीयन विभागकी सहायता की थी और उसके लिए पंजीयन-अधिकारीने उनको धन्यवाद भी दिया था। चीनी संघके नेता श्री क्विनने मजिस्ट्रेटके सामने अपना पंजीयन-प्रमाणपत्र तो पेश नहीं किया परन्तु उन्होंने अपने पंजीयित होनेका प्रमाण अवश्य पेश किया था। उन्होंने निर्वासनसे बचनेकी बहुत कोशिश की। जनरल स्मट्स और पंजीयन-अधिकारी दोनों ही उनको जानते थे फिर उनको निर्वासित क्यों किया गया था? श्री गांधी यह भी कहते हैं

ट्रान्सवाल सरकारसे और भी कई बातें ऐसी कही हैं जिनका खण्डन किया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्सकी टाइप की हुई प्रति (सी० ओ० ५५१/७) की फोटो-नकलसे।

३४९. रम्भाबाई आर० सोढाका मुकदमा

[जोहानिसबर्ग]
दिसम्बर १, १९१

श्रीमती रम्भाबाई आर० सोढाके विरुद्ध स्थगित मुकदमेकी सुनवाई गत मासकी १ तारीख शुक्रवारको जोहानिसबर्गके 'बी' न्यायालयमें श्री डी० जे० शूरमैनकी अदालतमें हुई। उनपर १९०७के कानून १५ (प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम)के खण्ड ५ तथा खण्ड २ — उपखण्ड १ — दोनोंके संयुक्त अभिप्रायके — उल्लंघनका आरोप लगाया गया था और कहा गया था कि निषिद्ध प्रवासी होनेपर भी वे ट्रान्सवालमें प्रविष्ट हुईं अथवा ट्रान्सवालकी सीमाके अन्दर पाई गईं। जोहानिसबर्गमें वैध रूपसे अधिकार-प्राप्त एक अफसर द्वारा जब उनसे कहा गया कि वे ट्रान्सवाल उपनिवेशमें प्रविष्ट होनेकी अनुमतिके लिए किसी यूरोपीय भाषाकी लिपिमें प्रार्थनापत्र लिखकर अपना दस्तखत कर दें तो वे अपनी स्वल्प शिक्षाके कारण ऐसा न कर सकीं।

श्री क्रमरने सम्राट्की ओरसे मुकदमा पेश किया और श्री मो० क० गांधी बचाव-पक्षकी ओरसे खड़े हुए।

१. यह अक्तूबर ९ को गिरफ्तार की गई थीं; अक्तूबर ७ को उनका मुकदमा १४ दिनोंके लिए स्थगित कर दिया गया था; उसके बाद उन्हें जोहानिसबर्ग भेज दिया गया था।

मुकदमेके प्रारम्भ होते ही श्री कमर (पब्लिक प्रॉसीक्यूटर) ने श्री गांधीको प्रवासी अधिकारी (श्री एम्फीज)के साथ अभियुक्ताकी शैक्षणिक परीक्षा लेनेके लिए साथवाले कमरेमें जानेकी अनुमति दी।

गवाहीके भाषान्तरके सम्बन्धमें कुछ कठिनाई उपस्थित हुई। श्री कैमरने अपनी बातको समझाते हुए सुझाया कि श्री गांधी दुभाषियेका काम करेंगे। न्यायाधीशने इस सुझावपर एतराज किया।

श्री कमर बात गवाहीकी नहीं है। कठिनाई [आरोपके] आशयकी है कारण यह है कि अनेक बोलियाँ हैं।

न्यायाधीश व्यक्तिगत रूपसे मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु क्या यह सब बिलकुल बाकायदा है?

श्री गांधी मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

श्री कमर और मुझे उससे भी कम।

फलस्वरूप श्री गांधीसे कहा गया कि अभियुक्ताको आरोपका आशय समझा दिया जाये।

उत्तरमें अभियुक्ताने कहा कि मैं कोई भी यूरोपीय भाषा नहीं जानती लेकिन मैं दोषी नहीं हूँ।

दुभाषियेका शेष काम करनेके लिए श्री प्रागजी के॰ देसाईको शपथ दिलाई गई।

श्री कमरने कहा कि इस मामलेपर श्री गांधी और अटर्नी जनरलके कार्यालयके बीच पत्रव्यवहार हो चुका है और मुझे आशा हुई है कि मुकदमा जारी रखा जाये। इसके पश्चात् उन्होंने ट्रान्सवालके प्रवासी अधिकारी तथा खुफिया पुलिसके सदस्य श्री एम्फीजको बुलाया। उसने कहा कि मैंने श्री गांधीके जरिए अभियुक्तासे यह पूछा था कि वह कोई यूरोपीय भाषा बोल या लिख सकती है या नहीं। उसने श्री गांधीके द्वारा नकारात्मक उत्तर दिया। उसने यह भी कहा कि मुझे नहीं मालूम कि मेरे पतिका अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन हुआ था या नहीं।

श्री गांधीने इस गवाहीका समर्थन करते हुए कहा कि मुझे भी मालूम है कि अभियुक्ता किसी भी यूरोपीय भाषामें बोल या लिख नहीं सकती।

यहाँ सरकारी पक्षका काम समाप्त हुआ।

श्री गांधीने अभियुक्ताके पति श्री सोढाको जो कि फिलहाल फोर्ट जेलमें एक सत्याग्रही कैदी हैं तलब करवाया। उन्होंने कहा कि मैं पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत तीन माहकी सजा भुगत रहा हूँ। मेरे स्त्री है और तीन बच्चे हैं मैं दक्षिण आफ्रिकामें लगभग १४ सालसे रह रहा हूँ। मैं ट्रान्सवाल १८९७ में आया था। मैं प्रिटोरियामें व्यापार करता था। परन्तु लड़ाईके दिनोंमें सरकारकी हिदायतसे नेटाल चला गया। लड़ाई समाप्त हो जानेपर ७ अक्तूबर १९०८को फोक्सरस्टमें शैक्षणिक परीक्षा पास करनेके बाद ट्रान्सवाल लौट आया। तबसे मैं पंजीयन अधिनियमकी अवज्ञा करनेके कारण बीच-बीचमें जेल जाता रहा। जब मैं जेलमें था तब मेरी दुकानमें चोरी हो गई और मैं अपनी सारी मिल्कियतसे हाथ धो बैठा।

मजिस्ट्रेट द्वारा प्रश्न किये जानेपर उन्होंने कहा : कप्तानके पहले मुझे पंजीकरण-प कोमाटीपूर्टमें दिया गया था। बादवाले कानूनके अन्तर्गत मैंने पंजीयन नहीं करवा क्योंकि मेरी अन्तरात्मा उसके लिए राजी नहीं थी।

श्री गांधीने पुनः गवाही देते हुए कहा कि लगभग दो माह हुए जब मैं नेटाल था श्रीमती सोढा भी वहाँ थी। मुझसे सलाह-मशविरा करनेके पश्चात् और केवल मेरी ही जिम्मेदारीपर अभियुक्ता ट्रान्सवाल आई थी। मैंने प्रवासी अधिकारीको ता द्वारा सूचित किया था कि फलां तारीखको अभियुक्ता अपने नाबालिग बच्चोंके सा प्रान्तमें प्रवेश कर रही है। मुझे इसका उत्तर नहीं मिला और अभियुक्ता व उस बच्चे मेरे साथ जोहानिसबर्गके लिए रवाना हो गये। निषिद्ध प्रवासीके रूपमें व सीमापर गिरफ्तार कर ली गई।

जिरहके दौरान उन्होंने कहा : मेरा खयाल है कि श्री सोढाका असली व ट्रान्सवालमें है। ट्रान्सवाल आते वक्त उन्होंने अपनी स्त्रीको नेटालमें छोड़ दिया था अभियुक्ता ट्रान्सवाल तब आई थी जब उनके पतिको सजा हो गई। पतिने अपनी स्त्री लिए नेटालमें आरामदेह मकान छोड़ा था; किन्तु दुर्भाग्यवश वह मकान बहुत दिनों त उस हालतमें न रह सका।

श्री क्रेमर[१]: मैं आपसे एक साफ और सीधा सवाल पूछता हूँ। क्या उसे या एशियाई कानूनके खिलाफ आन्दोलन करनेकी नियतसे नहीं लाया गया था?

गांधी : बिलकुल गलत है।

गवाह : वह यहाँ क्यों लाई गई?

महज इसलिए कि सत्याग्रहियोंके कुटुम्बियोंका पालन सार्वजनिक चन्देकी रकमसे किया जाना जरूरी था और ट्रान्सवालमें श्रीमती सोढाका घर-खर्च चलाना तथा उनके परिवारकी देखभाल करना सुविधाजनक था।

उसका खर्च चलाना किसके लिए सुविधाजनक था?

उनके लिए जो सत्याग्रहियोंके परिवारोंकी देखभाल कर रहे हैं।

ट्रान्सवालमें?

जी हाँ, ट्रान्सवालमें।

तो क्या सोढा यहाँ सत्याग्रहीके रूपमें आये थे?

जी हाँ, वे सत्याग्रहीकी हैसियतसे प्रविष्ट हुए थे। वे यहाँ निःसन्देह अपने स्वत्वोंकी जाँच करनेके लिए आये थे।

और आपको इस बातसे कि सत्याग्रही लोग सोढाकी स्त्रीको अधिक अच्छी तरह रख सकें आपने उसको यहाँ बुला लिया।

जी हाँ।

श्री गांधीने कहा कि अभियुक्ताको नेटालमें रखना असम्भव न था परन्तु उनके स्वास्थ्यके हितमें तथा उनके सबसे छोटे बीमार बच्चेकी खातिर यह बहुत असुविधाजनक

१. देखिए "तार : मुख्य प्रवासी अधिकारीको", पृष्ठ ३०२।

होता। वहाँ [नेटालमें] श्रीमती सोढ़ाके रहनेका स्थान निर्जनमें था और उनकी रक्षा सबसे अच्छे ढंगसे टॉल्स्टॉय फार्ममें ही सम्भव थी।

न्यायाधीशके प्रश्नोंके उत्तरमें श्री गांधीने कहा कि मैं यह बात साफ तौरपर कह देना चाहता हूँ कि श्रीमती सोढ़ा यहाँ जिसे एशियाई आन्दोलनका नाम दिया गया है उसे बल पहुँचानेके उद्देश्यसे कदापि नहीं लाई गई। श्रीमती सोढ़ाके प्रवेशमें देशके कानूनकी अवज्ञा करनेका कोई भी इरादा न था प्रत्युत अधिकारियोंको ऐसी बातोंमें भी सन्तुष्ट करनेका भरसक प्रयत्न किया गया जिनके सम्बन्धमें मेरा खयाल था कि अधिकारीगण कानूनकी दृष्टिसे भूल कर रहे हैं।

मजिस्ट्रेटके प्रश्नोंके उत्तरमें श्री गांधीने आगे कहा कि अगर सत्याग्रहियोंके आश्रितोंको दी गई सहायता ही पारिश्रमिक या वेतन न मान लिया जाय तो किसी भी सत्याग्रहीको जेल जानेके एवजमें वेतन या पारिश्रमिकके रूपमें एक कौड़ी भी नहीं दी गई है।

मजिस्ट्रेट नहीं मेरा मतलब यह हरगिज नहीं है सत्याग्रही जेलसे रिहा होनेके पश्चात् क्या करते हैं?

श्री गांधी जो अपनी इच्छा प्रकट करते हैं उन्हें टॉल्स्टॉय फार्ममें ले जाया जाता है और वहाँ उनके निर्वाहकी व्यवस्था कर दी जाती है।

मजिस्ट्रेट क्या उन्हें कुछ वेतन नहीं दिया जाता?

श्री गांधी एक छदाम भी नहीं।

श्री गांधी इसके बाद अपनी कुर्सीपर जा बैठे।

श्री केमरने न्यायाधीशको सम्बोधित करते हुए कहा केवल एक ही प्रश्न है —वह यह कि अभियुक्ताको किसी यूरोपीय भाषाका ज्ञान है या नहीं। यह साबित किया जा चुका है कि उसे ज्ञान नहीं है। यह दुःखकी बात है कि यह महिला कटघरेमें पेश है परन्तु उसकी एशियाई पैदाइशसे मुकदमेका कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

श्री गांधीने अदालतको सम्बोधित करते हुए सौजन्यपूर्ण शब्दोंमें मजिस्ट्रेट और सरकारी वकीलको उनकी शिष्टताके लिए धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा कि यदि मुकदमेका दारमदार शैक्षणिक परीक्षापर ही समाप्त होता है तो सरकार अभियुक्ताको सजा दिलानेमें अवश्य सफल होगी। परन्तु मेरा नम्र निवेदन है कि अधिनियमके अन्य खण्डोंके अनुसार श्रीमती सोढ़ाका बचाव किया जा सकता है। वह दोषी नहीं है क्योंकि वह एक ऐसे व्यक्तिकी पत्नी है जो निषिद्ध प्रवासी नहीं हैं। श्री सोढ़ा निषिद्ध प्रवासी इसलिए नहीं है कि गवाहीके अनुसार प्रवेश होनेके अवसरपर वे फोक्सरस्टमें शैक्षणिक परीक्षा पास कर चुके थे। इसके अतिरिक्त श्री सोढ़ा लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालके निवासी थे। इसलिए एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत उन्हें प्रवेशका अधिकार है और वे निषिद्ध प्रवासी नहीं हैं। श्री सोढ़ाकी सजासे मेरी दलीलपर कोई असर नहीं पड़ता क्योंकि उनको सजा केवल इस कारण हुई थी कि उन्होंने अपना पंजीयन प्रमाणपत्र नहीं दिखाया था। इसके आधारपर वे किसी भी प्रकार निषिद्ध प्रवासी नहीं कहे जा सकते।

श्री गांधीने आगे दलील पेश की कि श्रीमती सोढा विवाहिता स्त्री होनेके नाते दक्षिण आफ्रिकाके सामान्य कानूनके अन्तर्गत वैधानिक अपराधकी दोषी नहीं ठहराई जा सकतीं। इस कानूनकी रूसे वे अपने पतिके साथ जा सकती हैं। जब उनके पति ट्रान्सवालमें हैं तो उनको भी वहाँ रहनेका हक हासिल है। श्री गांधीने कहा कि इस परिस्थितिमें श्रीमती सोढाको रिहा कर दिया जाना चाहिए।

अदालतने ९ जनवरी तक के लिए फैसला मुल्तवी कर दिया।[1]

भारतीय समाजमें इस मुकदमेकी कार्रवाईके प्रति बड़ी उत्सुकता दिखाई दी। अनेक भारतीय महिलाएँ अदालतमें उपस्थित थीं। श्रीमती बॉयल कुमारी श्लेसिन रेव. श्री डोक तथा श्री कैलेनबैक भी मौजूद थे। भारतीय महिलाएँ श्रीमती सोढाके साथ दिन-भर रहीं और उनका पूरा खयाल रखा। श्रीमती सोढाका अपनी गोदमें छोटा-सा बच्चा और साथमें ३ सालका बालक लिए हुए अदालतके अन्दर हाजिर रहना एक करुणाजनक दृश्य था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-१-१९११

३५० पत्र एल० डब्ल्यू० रिचको

[जनवरी ९, १९११ या उसके बाद][2]

ब्रिटिश भारतीयोंकी रक्षा समितिके[3] मन्त्री श्री एल० डब्ल्यू० रिच तीन सप्ताह पहले दक्षिण आफ्रिकासे लौटे हैं। लौटनेपर, उनको श्री गांधीका एक पत्र मिला था जिसमें कहा गया था कि जनरल स्मट्ससे बातचीत करनेपर उनको विश्वास हो गया है कि जिस नये विधेयकका वचन दिया गया है उससे भारतीय सन्तुष्ट हो जायेंगे। विधेयक शायद इसी महीनेके मध्य तक सामने आ जायेगा। स्पष्ट है कि भारतीयोंको उससे तभी सन्तोष होगा जब उसमें पंजीयन कानूनको रद करनेकी ही नहीं बल्कि प्रवासी कानूनसे जातीय भेदभाव हटानेकी व्यवस्था भी की जाये। दक्षिण आफ्रिकी मन्त्रियोंका मन्शा क्या है—इसका काफी अच्छा आभास जनरल स्मट्सके उस भाषणसे मिल जाता है, जो उन्होंने एक पखवारे पहले केपकी संसदके सामने दिया था। उन्होंने स्पष्ट कहा कि

१. मिसेज सोढाका मुकदमा ११ जनवरी १९११ को सुनाया गया था। उन्हें तीनको १० पौंड जुर्माना और १ महीनेकी सख्त कैदकी सजा दी गई थी। परन्तु उनकी ओरसे अपील दायर की जा चुकी थी, इसलिए २५ तारीखकी अपीलकी सुनवाई तक छोड़ दी गई थीं।

२. इसमें जनरल स्मट्सके केप संसदमें दिये गये भाषणका उल्लेख है। यह भाषण उन्होंने ११ दिसम्बर, १९१० को दिया था। नये विधेयककी "इस सत्रके मध्यमें प्रकाशित होनेकी सम्भावना" थी। भाषणका सारांश ७-१-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित हुआ था। इस तरह इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह जनवरीकी किसी प्रारम्भिक तारीखमें लिखा गया।

३. यहाँ "दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति, लन्दन" होना चाहिए था।

"दक्षिण आफ्रिकाकी यह नीति जारी ही रहेगी कि एशियाइयोंको देशमें न आने दिया जाये। शिक्षित ब्रिटिश भारतीय एशियाई प्रवासियोंका भारी संख्यामें प्रवेश रोकनेके लिए उठाये जानेवाले समुचित कदमोंका विरोध नहीं करेंगे। वे केवल इतना चाहते हैं कि कानूनकी नजरमें अवांछनीय बनाकर उनको लांछित करना बन्द किया जाये। जनरल स्मट्सने उसीमें आगे चलकर कहा है कि उनको आशा है कि शीघ्र ही समस्या हल हो जायेगी और जो लोग देशमें अधिवासी बन चुके हैं उनके साथ उचित बरताव होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया २०-१-१९११

३५१. महत्त्वपूर्ण निर्णय

रायटरके कलकत्ता-स्थित संवाददाताने तारसे यह शुभ समाचार भेजा है कि भारत सरकारने इस आशयकी एक विज्ञप्ति अप्रैलमें प्रकाशित करनेका निश्चय किया है कि आगामी १ जुलाईसे गिरमिटिया भारतीय नेटाल नहीं भेजे जायेंगे। केन्द्रीय विधान-परिषदके गैर-सरकारी सदस्योंके प्रतिनिधि माननीय प्रोफेसर गोखलेने इस निर्णयके लिए भारतीयोंकी ओरसे गहरी कृतज्ञता प्रकट की है। रायटरने यह भी लिखा है कि इस निर्णयसे भारतको अत्यधिक सन्तोष हुआ है। मजदूरोंके न भेजे जानेसे जिनके स्वार्थोंको कुछ हानि पहुँचेगी उनको छोड़कर कोई कारण नहीं कि दक्षिण आफ्रिकामें भी इससे सब इसी प्रकार सन्तुष्ट न हों। यदि दक्षिण आफ्रिकामें गुलाम-मजदूर रखे गये — और गिरमिटिया मजदूर निश्चय ही गुलाम हैं — तो वह कभी एक स्वतन्त्र और सुसंस्कृत राष्ट्रका जन्म नहीं दे सकता। कुछ भी हो दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको एक उल्लेखनीय विजय प्राप्त हुई है। श्री गोखले जब वे भारत गये थे तब गिरमिटिया मजदूरोंकी प्रथा बन्द करानेकी दिशामें अपनी सारी ताकत लगा दी थी और इस अत्यन्त सन्तोष जनक परिणामका श्रेय उन्हींको है।

माननीय प्रोफेसर गोखलेके प्रति तो हम जितना अधिक आदर व्यक्त करें कम है। उन्होंने अपने ऊपर अनेक दुःसाध्य कामोंका भार ले रखा है। उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता फिर भी उन्होंने इस प्रश्नके अध्ययनमें जितना समय दिया उतना किसी अन्य भारतीयने नहीं। हमारे लिए किये गये उनके इस महान कार्यने हमें उनके प्रति बहुत ऋणी बना दिया है। हम आशा करते हैं कि स्वतन्त्र भारतीय आबादीकी हालत सुधारनेके लिए क्या कुछ किया जा सकता है इसपर बिना कोई विचार किये भारत सरकार अपने इस निश्चयसे पीछे नहीं हटेगी। गिरमिटिया प्रथाका विरोध हम इस लिए नहीं कर रहे हैं कि नेटालमें गिरमिटिया मजदूरोंको आम तौरपर बहुत कष्ट दिया जा रहा है, बल्कि इसलिए कर रहे हैं कि यह प्रथा अपने-आपमें बुरी है। भले ही इन मजदूरोंके मालिक संसारके सबसे अधिक दयालु व्यक्ति हों लेकिन यह प्रथा

तो बुरी है ही। इसके बन्द होते ही इस उपमहाद्वीपमें रहनेवाले भारतीयोंका प्रश्न अपने-आप हल हो जायगा। इस दुःस्वप्नके दूर हो जानेके बाद यदि धीरजसे काम किया जाये तो कालान्तरमें संघ-राज्यके अन्तर्गत भारतीयोंकी स्थिति निरन्तर सुधरती जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-१-१९११

३५२ कैनेडाके भारतीय

हमने अपने एक पिछले अंकमें[1] कैनेडाके श्री सुन्दरसिंहकी जो चिट्ठी इंग्लैंडके एक अखबारसे उद्धृत की थी वही चिट्ठी अब उन्होंने हमें भेजी है। इसमें उन्होंने श्री हरनामसिंह और श्री रहीमके मामलोंका विवरण दिया है। श्री हरनामसिंहको निर्वासित करनेकी आज्ञा दे दी गई थी और श्री रहीमको यही आज्ञा दी जानेवाली थी। बादमें हिन्दुस्तानी-एसोसिएशनने इसका विरोध किया था।

फिर, हमारे संवाददाताने लिखा है कि भारतीय कैनेडासे संयुक्त राज्यमें भी नहीं जा सकते जबकि जापानी और चीनी व्यापारियों और विद्यार्थियोंको इसकी छूट है।

एक बार किसी यहूदी ब्रिटिश-प्रजासे हमारी बातचीत हो रही थी। बातचीतमें जब मैंने उससे यह कहा कि आप तो ब्रिटिश-प्रजा हैं तो उसने मुसकाकर कहा "नहीं मैं तो ब्रिटिश कीड़ा-मकोड़ा हूँ। उसके इस तरह खीझकर कहनेका कारण था उसका भुक्तभोगी होना। अगर उपनिवेशोंमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीय भी अपने-आपको ब्रिटिश कीड़े-मकोड़े कहें तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं होगी। समझदार मनुष्य बराबर इस बातकी सावधानी रखेगा कि कहीं कोई कीड़ा-मकोड़ा कुचल न जाये। किन्तु बहुत-से गोरे हमारे सम्बन्धमें इतने सावधान भी नहीं रहते। इतना ही नहीं वे हमें जान-बूझकर कुचलते हैं।

ऐसा क्यों है? यही शिकायत दक्षिण आफ्रिकामें है। ब्रिटिश आफ्रिकामें भी यही हाल है। मॉरिशसमें बदलाकी मची हुई है। हमने कुछ ही दिन पहले किसीकी[2] चिट्ठी छापी थी। और अब कैनेडामें स्थिति भी सुखी नहीं है।

क्या इस स्थितिके लिए हम गोरोंको ही दोष देंगे? हम तो ऐसा नहीं कर सकते। यदि हम कीड़े-मकोड़ोंकी तरह रहते हैं और वे हमें कुचलते हैं तो ठीक ही है। यदि हम कीड़े-मकोड़ोंकी तरह न रहें तो फिर मुमकिन नहीं कि हमें कोई कुचले।

यह बात आसानीसे समझमें आ सकती है कि हम जिस स्थितिमें हैं वह स्वयं हमारी ही पैदा की हुई है। गुलामोंपर भी यही नियम लागू होता है। सभी देशोंमें हमारे

१. इंडियन ओपिनियन २४-१२-१९१०। इस अंकको प्रकाशित इतिहासमें भी छपा था।
२. देखिए इंडियन ओपिनियन १०-१२-१९१०। जिसमें यहाँ पर उसमें नहीं छपा है। "मॉरिशसमें भारतीयोंकी दुर्दशा" शीर्षकसे यह पत्र प्रकाशित हुआ है।

सामने एक ही उपाय है और वह उपाय सीधा-सादा है। शेष उपाय मृग-मरीचिकाके समान हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-१-१९११

३५३. पत्र : चंचलबेन गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म
रविवार, पौष सुदी ७ [जनवरी ८, १९११][1]

चि. चंचल,

तुम्हारी लम्बी और मजेदार चिट्ठी पढ़कर बड़ी खुशी हुई। बा ने भी उसे रस लेकर पढ़ा। हरिलाल जब छूटेगा तब पढ़ेगा। मुझे दफ्तरमें समय नहीं मिलता इसलिए आज ही लिखे डालता हूँ। इस समय मैं फार्मपर हूँ। रातके नौ बजे हैं।

'इंडियन ओपिनियन' तुम्हें नियमसे मिलता होगा। क्या तुम कभी घूमने भी जाती हो? तुमने पढ़नेका अभ्यास रखा है, यह अच्छा है।

मैं चाहता हूँ कि लोकलाजके खयालसे भी तुम गहने न पहनो। गहनोंमें कोई शोभा नहीं है। स्त्री-पुरुष दोनोंका पहला और सच्चा आभूषण आचरण-निष्ठा है। वह तुम्हारे पास है और यही बड़ा आभूषण है। रही कान-नाकमें पहननेके हमारे रिवाजकी बात सो वह तो मुझे पागलपन ही लगता है और ऐसा गोरों आदिकी नहीं अपनी ही [सभ्यताकी] दृष्टिसे लगता है। मेरा खयाल है कि कवियोंने रामचन्द्रजी सीताजी आदिके बारेमें आभूषण पहननेकी जो बात कही है वह उस [कविके] कालकी रूढ़िकी ही द्योतक है। नहीं तो मुझे तो भरोसा नहीं होता कि परदुःखभंजन रामचन्द्रजी अथवा अतिपवित्र सीताजी अपने शरीरपर रत्तीभर भी शोभा रखती होंगी। चाहे जो हो हम यह बात तो सहज ही समझ सकते हैं कि नाक-कान छेदकर उसमें कुछ पिरोने अथवा गले या हाथमें कुछ पहन रखनेमें कोई शोभा नहीं है। किन्तु हाथमें न पहनना अशुभ माना जाता है इसलिए उसके बारेमें मैं कुछ नहीं कहता। छेदा पटाव रोकनेके लिए कनाईमें कुछ डाल लिया जाये यह काफी है। ये मेरे विचार हैं। इनपर सोचो और जो ठीक जान पड़े सो करो। मेरा लिहाज करके कुछ करनेकी जरूरत मत समझना।

रामदास और देवदास खेलते-कूदते रहते हैं। २ लड़के हैं। इसलिए यहाँ उनका जी ठीक रम गया है। बा को भी दूसरी महिलाओंका संग मिल गया है, इसलिए देखता हूँ कि वह भी प्रसन्न है। उसने अभी तो चाय छोड़ दी है और उसे ठंडे पानीसे नहानेकी आदत पड़ गई है।

१. इसमें हरिलाल गांधीके छूटनेका उल्लेख है; वे ९ जनवरीको छूटे थे।

ऐसी चर्चा चल रही है कि संघर्षका अन्त इस महीनेमें नहीं फरवरीमें हो सकेगा। देखें क्या होता है। अभी गिरफ्तारियाँ नहीं हो रही हैं इसलिए जान पड़ता है हरिलाल बाहर ही रहेगा। मैं जानता हूँ कि जोहानिसबर्ग जेलमें उसकी तबीयत अच्छी रही।

पुरुषोत्तमदास भी जेलसे छूटनेके बाद फिलहाल तो नहीं है। रामीबाईको[1] चुम्मा। बालक मामीको[2] दण्डवत्। मैं बहनोंके[3] पत्रकी राह देखूँगा। कुमी[4] तो लिखती नहीं है, इसलिए उससे क्या आशा?

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (एस. एन. ५५२८) की फोटो-नकलसे।

३५४. पत्र : नारणदास गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म
पौष सुदी १ [जनवरी १, १९११]

चि. नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम इस बातको खूब समझकर कंठस्थ कर लो कि एक भी सत्याग्रही बचा तो विजय मिलेगी। इस संघर्षमें कई चीजें तो मिल ही चुकी हैं। लेकिन हम मूर्तिपूजक ठहरे। जीत हुई, यह बात सभी लोग तब मानेंगे जब कानून रद हो जाये और रंग-भेद दूर हो जाये। नहीं तो वैसे ही जीत तो हो चुकी है।

बुनाईकी बाबत मैंने चि. मगनलालके पत्रमें तुम्हारे विचार पढ़े। वे ठीक ही हैं। फिलहाल एकदम तो जरूरत इस बातकी है कि हर समझदार आदमी यह काम सीख ले। मेरी मान्यता है कि मजदूर रखकर काम कराने आदिकी झंझटमें पड़नेसे कोई लाभ नहीं है। इसलिए तुमने जो कहा कि उस [उलझन]में नहीं पड़ेंगे सो ठीक ही है। जरूरत इतनी ही है कि लोग सीखकर कपड़े बुन सकें और उन्हें खरीदनेके लिए सम्पन्न व्यक्ति मिल सकें। वे सम्पन्न व्यक्ति उसपर नफा न कमायें, नुकसान उठानेकी हिम्मत करें। इतना हो जाये तो मेरा खयाल है कि बुनाईका काम करनेवाले हजारों लोग तैयार हो जायेंगे।

फीनिक्सके विषयमें तुम जो-कुछ कहते हो वह कुल मिलाकर ठीक है। किन्तु दूसरे तुम्हारे मनपर जो छाप पड़ी है पाससे भी नहीं पड़ेगी, ऐसा मत सोचना। इतना निश्चित है कि आजकी परिस्थितिमें फीनिक्स उत्तम स्थान है।

१. पोलककी बच्ची।
२. पोलककी माता।
३ और ४. पोलककी बहनें।
५. मिसेज मिली पोलक अपनी भारत यात्रासे जनवरी १९११के प्रथम सप्ताहमें वापस आनेवाली थीं।

मेरे विषयमें भी विनम जो-कुछ कहा वह तो अतिशयोक्ति ही हुई। उसका यह अर्थ नहीं है कि मैं किसी खास ऊँची स्थितिमें पहुँच गया हूँ। बल्कि भी विनम किसी साधारण सदाचारी व्यक्तिके सम्पर्कमें नहीं आये इसलिए मुझसे मिलकर मुग्ध हो गये हैं। जहाँ वृक्ष नहीं होता वहाँ एरंड ही द्रुम हो जाता है — यहाँ यह कहावत ठीक बैठती है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू ५ ७४)से।

सौजन्य नारणदास गांधी।

१५५ डॉक्टर गुल

हम भी मुसुफ गुलको उनके पुत्रके डॉक्टर हो जानेपर बधाई देते हैं। उनको अन्य अनेक स्थानोंसे बधाईके तार मिले हैं। डॉक्टर गुलने इंग्लैंडमें अच्छा नाम कमाया है। वे सदा पढ़ाईमें मशगूल रहते थे। डॉक्टरीकी परीक्षा कोई सामान्य परीक्षा नहीं है। फिर भी डॉक्टर गुलने अपनी सभी परीक्षाएँ पहली बार ही में पास कर ली।

अब डॉक्टर गुल अपनी उपाधिका क्या उपयोग करेंगे? उनके पिता सार्वजनिक कार्यकर्ताके रूपमें अपरिचित नहीं हैं। डॉक्टर गुल उतना तो कर ही सकते हैं। किन्तु भारतीय समाज उनसे अधिककी आशा करता है।

डॉक्टर गुलके सामने दो रास्ते हैं। वे अपनी उपाधिका उपयोग केवल पैसा कमानेमें कर सकते हैं। इसे हम विद्याका दुरुपयोग मानेंगे। दूसरा मार्ग है कमाई करते रहकर भी अपनी जातिकी सेवा कर सकनेका। यह उसका सदुपयोग माना जायेगा।

डॉक्टर गुलके बारेमें हमारा जो अनुभव रहा है उसके आधारपर यही कहा जा सकता है कि वे अपनी योग्यताका सदुपयोग ही करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-१-१९११

३५६ 'ट्रान्सवालकी टिप्पणी' से

बुधवार, १८ जनवरी १९११

मुझे एक उड़ती हुई खबर[1] मिली है उसे नीचे दे रहा हूँ। इसे देते हुए मुझे बड़ी हिचक हो रही है, और मैं इसलिए पाठकोंको चेतावनी देता हूँ कि वे इसपर बहुत भरोसा न करें। ऐसा कहा जाता है कि जनरल स्मट्सने ट्रान्सवालके झगड़ेके बारेमें कोई समझौता करनेसे पहले यह शर्त रखी थी कि जिन गिरमिटियोंकी अवधि पूरी हो चुकी है उनका [स्वदेश] लौट जाना अनिवार्य कर दिया जाये। यह कहना है कि १९०७ के कानून २ और १९०८ के कानून ३६ को रद करने तथा प्रवासके मामलेमें कानूनी समानता स्थापित करनेके बदलेमें उनकी इच्छा ऐसी कुछ अन्य शर्तें थोपनेकी थी जो साम्राज्य-सरकारको स्वीकार नहीं हुई। कहा जाता है कि इसी कारण लगभग गतिरोधकी स्थिति बनी हुई है, और सम्भव है कि आखिरकार सामान्य प्रवासी विधेयक संसदके चालू सत्रमें पेश न किया जाये। इस खबरमें कोई सचाई हो या न हो मैं इतना निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि संघर्ष चाहे जितना ही लम्बा क्यों न चले हम उसके लिए पूरी तरह तैयार हैं।

भारतीय व्यापारियों द्वारा टॉल्स्टॉय फार्मके निवासियोंके लिए खाद्य-सामग्री भेजनेका जो एक आन्दोलन चल रहा है यह इन सम्भावनाओंको देखते हुए शुभ ही है। खाद्य सामग्रीके ऊपर होनेवाला व्यय सत्याग्रह-कोषके लिए हमेशासे एक बहुत बड़ा बोझ रहा है। जर्मिस्टनके श्री हंसजी मोरार पटेल और श्री बुकन भूला भगतने फार्मको एक बोरा भीमड़ी चावल और आधा पीपा घी भेजा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-१-१९११

३५७ जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

[बुधवार, जनवरी १८, १९११]

भेंट

जर्मिस्टनके श्री हंसजी मोरार पटेल तथा श्री बुकन भूला भगतने भीमड़ी चावल और एक पीपा घी (४१ रतल) भेजा है। यदि बहुत-से भारतीय इस तरह चीजें भेज दिया करें तो सत्याग्रह-कोषमें काफी बचत हो सकती है।

शायद समझौता न हो!

मैं यह लिखनेपर विवश हो गया हूँ कि शायद समझौता न हो। मुझे कुछ खबरें मिली हैं जिनसे मालूम होता है कि समझौतेकी जो बात चल रही थी वह अब

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

हो गई है। साम्राज्य-सरकारने जनरल स्मट्सकी कुछ बातें स्वीकार नहीं कीं। खयाल है कि स्मट्सने माँग यह की है कि गिरमिटियोंकी गिरमिटकी अवधि भारतमें समाप्त हो अर्थात् भारत सरकार इस तरहके नियमको स्वीकार करे कि वे अनिवार्य रूपसे वापस चले जायें तभी वे [स्मट्स] ट्रान्सवालके संघर्षको समाप्त करेंगे। यह भी जान पड़ता है कि जनरल स्मट्सने खूनी कानून रद करना और कानूनकी नजरमें नये भारतीयोंको एक जैसे अधिकार देना स्वीकार करते हुए अन्य शर्तोंको सख्त बनाने के लिए कहा। साम्राज्य-सरकारने इसे नहीं माना। इस कारण नया विधेयक रुक गया जान पड़ता है। यह खबर उड़ती हुई और मनगढ़न्त-सी है इसलिए बहुत विश्वासके योग्य नहीं है। फिर भी जो सत्याग्रह-संघर्षके समर्थक हैं जो इस संघर्षको बहुमूल्य समझते हैं उन्हें मैं सावधान कर देता हूँ कि यदि इस समय समझौता न हुआ तो संघर्ष शायद वर्षों चले। यदि यह हुआ तो जो रुपया-पैसा है वह खुट जायेगा और सत्याग्रहियोंकी स्थिति बहुत ही खराब हो जायेगी तथा वे केवल समाजके सम्पन्न लोगोंपर निर्भर रह जायेंगे। ऊपरकी बात मैंने इसीलिए कही है कि यदि खान-पीनकी चीजें विभिन्न भारतीय सज्जन भेजते रहें तो बहुत मदद हो सकेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-१-१९११

३५८. पत्र : छगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म
पौष बदी ६ [जनवरी २ १९११][1]

चि. छगनलाल,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। मुझे लगता है कि तुम्हें वहाँ छः महीनेसे ज्यादा समय हो चुका है। चि. मगनलालने पूछा है कि मैं तुम्हें वहाँ कबतक रखना चाहता हूँ। इसलिए तुम्हारे लौटनेके विषयमें चर्चा करना चाहता हूँ। डॉक्टर [मेहता] क्या कहते हैं इसे एक ओर रखकर यह लिखो कि तुम खुद क्या सोचते हो। यह मान लेता हूँ कि तुम्हारी तबीयत सुधर गई है और अब तो तुम बैरिस्टर ही आओगे। किन्तु मेरे खयालमें इस मामलेमें तुम अब भी स्वतन्त्र हो। डॉक्टर [मेहता]का और मेरा — दोनोंका खयाल है कि तुम्हें जो अच्छा लगे वही करो। मेरे मनमें तो यह बात थी कि तुम लन्दनमें एक बरस रहो और जो अनुभव प्राप्त करना हो उसे प्राप्त करो और जो सीखना चाहो सीखो। पढ़ना-लिखना तो जिन्दगी-भर चलेगा। यदि तुमने वहाँके विशिष्ट वातावरणका आनन्द ले लिया तो मेरे विचारमें विलायतकी मुसाफिरी पूरी हो गई। किन्तु इस बारेमें तुम्हारा जो खयाल हो सो निःसंकोच मुझे लिखना।

१. यह पत्र छगनलाल गांधीके इंग्लैंड-निवास (जुलाई, जून १९१० से जनवरी १९११) के अन्तिम दिनोंमें लिखा गया था। सन् १९११ में पौष बदी ६, जनवरी २ को पड़ी थी।

बच्चे हरिलाल वगैरा फार्मसे जोहानिसबर्ग [२ मील] पैदल गये और आये। मैंने पैसेकी बचतके विचारसे पैदल जाने-आनेकी बात सुझाई थी उसे उन्होंने माना और उनकी आजमाइश हो गई। देवा[1] भी गया-आया, पुरुषोत्तमदास भी। यहाँ बच्चोंका स्वास्थ्य तो बहुत अच्छा हो गया है। नैतिकता आदिका भी विकास हुआ है या नहीं इसकी परख नहीं हो सकती। यहाँ बहुत विचित्र खिचड़ी हो गई है।

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च]

अब मुझे नहीं लगता कि समझौता होगा। मैंने इस विषयमें इंडियन ओपिनियन में जो लिखा है पढ़ लेना।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ५७५) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी।

३५९. छोटाभाईका मुकदमा

श्री छोटाभाईको हम उनकी जबरदस्त जीतपर बधाई देते हैं। उन्होंने अपने बेटेके लिए लड़ाई लड़कर अप्रत्यक्ष रूपसे समस्त जातिकी लड़ाई भी लड़ी है। यदि वे केवल अपने बेटेका ही बचाव करना चाहते तो वे सरकारके पैरों पड़कर भी सम्भवतः अपने अधिकारकी रक्षा कर लेते। किन्तु उन्होंने तो बहादुरीके साथ लड़नेका ही निर्णय किया।

श्री छोटाभाईने कानूनको मान लिया है और इस मुकदमेमें बात भी इतनी ही थी कि लड़केको भी कानूनके अधीन मान लिया जाये। यह निःसन्देह दुःखजनक बात है फिर भी लड़केका प्रश्न बड़ा प्रश्न था। उस प्रश्नका निर्णय जल्दी या देरीसे करना ही पड़ता। इसलिए उन्होंने कानूनकी व्याख्या करवाकर उस हद तक सत्याग्रहकी सेवा की है। हम आशा करते हैं कि अब माँ-बाप अपने बेटोंके प्रमाणपत्र लेनेके लिए जल्दी नहीं मचायेंगे। जो निर्णय दिया गया है,[3] यह कुछ माना नहीं जाता, समझौता होनेपर सभी बच्चोंके अधिकारोंकी रक्षा हो जायेगी।[4]

न्यायालयका निर्णय किस प्रकारका है इसका पता हमें बादमें लगेगा। इतना तो निश्चित हो गया है कि सरकारने लड़कोंपर प्रहार करनेमें अपने तईं कुछ उठा नहीं रखा किन्तु उसमें वह असफल रही है।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, २८-१-१९११

१. देवदास।
२. देखिए "[illegible]" पृष्ठ ४३ और "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" पृष्ठ ४२०-२१।
३. न्यायालय द्वारा दिया गया जनवरी २५, १९११ का निर्णय।
४. मई १९११ के अस्थायी समझौतेमें बच्चोंके अधिकारोंकी रक्षाकी व्यवस्था की गई थी।

३६० जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

बुधवार [फरवरी १, १९११]

प्रवासी विधेयक

स्टार का संवाददाता सूचित करता है कि सरकार प्रवासी-विधेयक तैयार कर रही है। उसका कहना है कि यह विधेयक महत्त्वपूर्ण होगा और इससे सरकारकी एशियाई-नीति जाहिर होगी। ट्रान्सवालकी धारासभामें श्री स्टैर्कके प्रस्तावपर[1] जो बहस हुई, उससे जाहिर होता है कि एशियाई प्रश्न बहुत गम्भीर रूप धारण करेगा। श्री स्टैर्क कहते हैं कि यूरोपीय और एशियाई आपसमें कभी मिल ही नहीं सकते। उन्होंने व्यापार इत्यादिका सवाल नहीं उठाया। उन्होंने तो एक ही बात कही कि एशियाइयोंका विरोध सिर्फ इसलिए किया जाना चाहिए कि वे एशियाई हैं। १९ सदस्योंने उनके प्रस्तावका समर्थन किया। इनमें अधिकांश लोग अंग्रेज थे। [दक्षिण आफ्रिकामें] जन्मे हुए भारतीयोंको निकाल बाहर करनेकी बातको उस प्रस्तावमें से अलग कर दिया गया।

अधिकांश डच सदस्योंने इस प्रस्तावका विरोध किया। उनका इस प्रकार विरोध करना समझमें नहीं आता। यह माननेका कोई कारण नहीं है कि वे हमारे पक्षमें हैं।

प्रवासी विधेयक जब प्रकाशित होगा तब ज्यादा बातें समझमें आयेंगी।

सत्याग्रहकी सफलता

माननीय ड्यूक-जैसे व्यक्तिपर भी सत्याग्रह-संघर्षका प्रभाव पड़ा है। उन्होंने इस संघर्षका महत्त्व समझा है। रायटरकी खबर है कि जब विलायतमें उनका सम्मान किया गया तब उन्होंने इस संघर्षका उल्लेख करते हुए कहा कि मेरी समझमें भारतीय प्रश्नका हल निकल आयेगा।

छोटाभाईका मामला

श्री छोटाभाईको बधाईके बहुत-से तार और पत्र मिले हैं। लोकमान्यकी[2] मद्रास-सफेद-उल-इस्लामसे भी एक तार मिला है।

श्री छोटाभाई इन सब बधाई देनेवालोंका आभार मानते हैं और सूचित करते हैं कि उन्होंने मामला दायर करनेमें जो जोखिम उठाई, वह तो उनका केवल कर्तव्य ही था। समाजने उसे इतना उल्लेखनीय माना इसपर उन्हें बहुत सन्तोष है।

१. प्रस्तावमें "संघीय संसदसे ... प्रदेशमें एशियाइयोंके प्रवासको बिलकुल रोक देने और जो उसमें पैदा नहीं हुए हैं उन सभी एशियाइयोंको दक्षिण आफ्रिकासे धीरे धीरे देशोंको वापस भेज देने" की सिफारिश की गई थी।

२. जनवरी ३१, १९११ को निमोनियासे मौत।

३. गुजराती मित्र सूरतसे निक।

[ट्रान्सवाल] लीडर स्टार आदि अखबारोंने सरकारकी कार्रवाईकी निन्दा की है। उनका कहना है कि जिन नाबालिगोंके माँ-बापको ट्रान्सवालमें रहनेका हक है, उन्हें बालिग होनेपर देशसे बाहर कर देना समझमें नहीं आता।

जज महोदयके फैसलेकी नकल अभी हम तक नहीं पहुँची है। जैसे ही हमें मिलेगी हम उसे प्रकाशित कर देंगे। जान पड़ता है केप टाउनसे उसके मिलनेमें कुछ समय लगेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ४-२-१९११

३६१ पत्र : मगनलाल गांधीको

माघ सुदी २, [फरवरी १, १९११][1]

चि० मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। देशमें जमीन लेना अभी उतावली कहलायेगा। नारणदासको उसका अनुभव नहीं है। जमीन खरीदनेमें स्वार्थका भाव आ जानेकी सम्भावना है। उतावलीकी जरूरत नहीं है। मुझे ऐसा लगता है कि यदि कोई अनुभवी आदमी जाये तो कुछ बन सकता है। मेरा तो यह खयाल है कि जब देशमें जमीनकी जरूरत होगी तब वह सुभीतेसे मिल ही जायेगी। फिर भी अगर इस विषयमें नारणदासके मनमें बहुत उत्साह हो तो उसे तोड़ना नहीं है। काकी नहीं आयेगी यह तो लगता है, बुरा हुआ। तुमने प्रयत्न करके देख लिया इसलिए फिलहाल तो उसके आनेकी बात भूल ही जानी है।

बलवन्तरायका[2] लेख क्या नहीं है? तुमने मुझे जो-कुछ भेजा है उसमें तो नहीं है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ५०७६) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

१. इसमें श्री छगनलाल गांधीकी पत्नी काशीबहनके उल्लेखसे जान पड़ता है कि यह जनवरी १९, १९११ को छगनलाल गांधीको लिखे पत्रके बाद (पृष्ठ ३८१-८२) लिखा गया होगा। सन् १९११ में माघ सुदी २ को फरवरीकी पहली तारीख थी।

२. बलवन्तराय कल्याणराय ठाकुर (१८६९–१९५२); गुजरातीके कवि, निबन्धकार और समालोचक।

३६२ छोटाभाईका मामला

जैसे-जैसे समय बीतता है, इस मामलेके बारेमें नई-नई बातें सूझती जाती हैं। मुख्य न्यायाधीशकी टिप्पणीपर विचार करें तो उससे जनरल स्मट्सका मनसूबा भली भाँति प्रकट हो जाता है। उन्होंने तो कानूनमें नाबालिगोंको निष्कासित करनेकी गुंजाइश रखी ही थी। किन्तु वह गुंजाइश खत्म हो गई। "यदि धारासभाका इरादा प्रजाकी सुविधा छीन लेनेका हो तो उसे वैसा स्पष्ट शब्दोंमें कहकर करना चाहिए। बात गोलमटोल नहीं रखनी चाहिए। ऐसा नहीं हुआ तो हम उस कानूनपर अमल नहीं करा सकेंगे।" ये शब्द हैं मुख्य न्यायाधीशके। बात इतनी ही नहीं है कि कानूनमें नाबालिगोंका अधिकार छीन लेनेका इरादा स्पष्ट नहीं है, बल्कि जनरल स्मट्सने विधेयक पेश करते समय अपने भाषणमें भी यह नहीं कहा कि इरादा नाबालिगोंको वैध अधिवासी न गिननेका है। यह तो साफ रहा है। दूसरोंके लिए खाई खोदनेवाला स्वयं उसमें गिरता है, सो ट्रान्सवालकी सरकार भी अपनी खोदी हुई खाईमें आप जा पड़ी है।

इसलिए समाजने अदालतके फैसलेको अधिक महत्व देकर ठीक ही किया। छोटाभाईके नाम भेजे गये तारों और सन्देशोंमें लोगोंने कहा है कि आपने बड़े साहसका काम हाथमें लिया था। उन्हें जो प्रशंसा मिली है निस्सन्देह वे उसके योग्य हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ४-२-१९११

३६३ पत्र नारणदास गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म

माघ सुदी १ [फरवरी ८, १९११][2]

चि० नारणदास

माघ बदी ७ का[3] तुम्हारा पत्र मिला। तुमने प्लेगके बारेमें ठीक सवाल[4] किये हैं। जब राजकोटमें चूहे मरे थे तब मैंने सबको घर या शहर छोड़नेकी सलाह दी थी। ये मेरे उस समयके विचार हैं। अब मुझे लगता है कि वह भूल हुई थी। मेरे बहुत-से

१. देखिए "छोटाभाईका मामला" पृष्ठ ४३२।

२. पत्रमें छगनलाल गांधीके भारत पहुँचनेकी बातका उल्लेख है। इससे पता चलता है कि यह पत्र छगनलालके जनवरी १, १९११ को डर्बनसे रवाना हो जानेके बाद लिखा गया होगा। सन् १९११में १ माघ सुदीको फरवरीकी ८ तारीख पड़ती थी।

३. जनवरी २४, १९११।

४. सन् १९०२ के राजकोटके प्लेगके बारेमें। उन दिनों गांधीजी भारतमें अवकाश पर आये हुए थे।

विचारोंमें ऐसा परिवर्तन हुआ है। हेतु हर वक्त एक ही था — सत्यकी खोज। अब देखता हूँ कि इस तरह घर बदलनेमें आत्माके [अमरता विषयक] गुणका अज्ञान है। इसका अर्थ यह नहीं कि चाहे जो हो जाये घर कभी छोड़ना ही नहीं चाहिए। घर जल रहा हो तो उसे खाली करना ही चाहिए। उसमें साँप बिच्छू इतने निकलने लगें कि उसमें रहना तत्काल मृत्युके मुँहमें जाना हो जाये तब उसे छोड़ना ही पड़ेगा। यद्यपि मैं यह भी नहीं कहता कि ऐसा करनेमें दोष है ही नहीं। जिसने आत्माको पूरी तरह पहचाना है, उसका अनुभव किया है, उसके सिरपर छप्पर केवल आकाशका है। वह जंगलमें रहता हुआ साँप और बिच्छूको भी मित्रके समान समझता है। हम जो इस स्थिति तक नहीं पहुँचे हैं सर्दी-गरमी आदिसे डरकर घरोंमें रहते हैं और इसलिए वहाँ भय उत्पन्न हो जानेपर उन्हें भी छोड़ देते हैं। फिर भी मनमें ऐसी आशा बनाये रखनी चाहिए कि हमें जल्दीसे-जल्दी आत्माके दर्शन होंगे। कमसे-कम मैं तो इसी तरह सोचता हूँ।

प्लेगके वक्त मोतीलाल जोषजी[1] घरकी देखरेखका काम अपने मुनीमपर छोड़कर [राजकोटसे] चले गये। किसी आदमीके लिए ऐसा करना अनुचित है। अगर घरमें आग लगी होती तो मुनीम भी चला जाता। इस उदाहरणसे तुम दोनों बातोंका अन्तर समझ सकते हो। मैं प्लेग वगैराके डरको साधारण मानता हूँ। मुसलमान घर नहीं छोड़ते पर भगवान्‌पर भरोसा रखकर पड़े रहते हैं। वे अगर प्लेगसे बचनेके जरूरी उपाय भी करें तो और अच्छी बात हो। जबतक हम डरकर इधर-उधर भागते फिरेंगे तबतक प्लेगके दूर होनेकी सम्भावना थोड़ी ही है। प्लेग जहाँ फैलता है वहाँ उसका कारण खोजनेके बजाय भाग खड़ा होना दीनताकी निशानी है। लेकिन इस उत्तरसे जब स्वयं मुझे ही सन्तोष नहीं हुआ है, तब तुम्हें कैसे हो सकता है?

मेरे मनमें क्या-कुछ है यह तो तुम तभी समझ सकते हो जब तुम्हारा और मेरा मिलना हो और प्रश्न अनायास ही छिड़े। पूरी बात न समझा सकनेके दो कारण हैं। फिलहाल मैं दूसरे कुछ ऐसे कामोंमें लगा हूँ कि बहुत सोचकर लिखनेका मुझे अवकाश नहीं है। दूसरा कारण यह है कि मेरी अपनी कथनी और करनीमें अन्तर है। उसमें जैसी चाहता हूँ वैसी एकरूपता हो तो ऐसे शब्द हाथ लगें कि तत्काल बात समझमें आ जाये।

अगर आदरणीय खुशालभाई प्लेगके भयसे घर या गाँव छोड़नेको कहते हैं तो तुम्हारा छोड़ना यथार्थ है। जहाँ नीतियुक्त जीवनपर आँच नहीं आती वहाँ बुजुर्गोंकी आज्ञाका पालन करना हमारा धर्म है। उसमें कल्याण है। तुम्हें मौतका भय नहीं है, किन्तु माता-पिताको प्रसन्न रखनेके लिए प्लेगवाले गाँवको छोड़नेमें बिलकुल दोष नहीं है। कुछ बातोंमें कुछ लोगोंके लिये समय ऐसा कठिन है कि बुजुर्गोंकी आज्ञापालनके बारेमें भी विचार कर लेना उचित है। मुझे तो ऐसा लगता है कि माता और पिताका प्रेम ऐसा गूढ़ है कि जबतक कारण बहुत सबल न हों उन्हें अप्रसन्न नहीं करना चाहिए। किन्तु अन्य बुजुर्गोंके बारेमें मन इतना नहीं स्वीकार करता। जहाँ नीतिके प्रश्नोंको लेकर हमारे मनमें संघर्ष हो वहाँ अपेक्षाकृत कम दर्जेके बुजुर्गोंकी आज्ञाका

१. राजकोटके मोतीचन्द जोशजी सराफ।

उल्लंघन किया जा सकता है बल्कि उल्लंघन करना कर्तव्य है। जहाँ नीति-विषयक संयम न हो वहाँ तो माता-पिताकी आज्ञाका उल्लंघन भी किया जाता है, करना कर्तव्य है। मुझसे मेरे पिता चोरी करनेको कहें तो वह नहीं करनी चाहिए। मेरा इरादा ब्रह्मचर्य पालन करनेका हो और वे विपरीत आज्ञा दें तो मुझे विनयपूर्वक उनकी आज्ञाका उल्लंघन करना चाहिए। जबतक रामदास और देवदास सयाने नहीं हो जाते उनका विवाह न करना मैं धर्म मानता हूँ। यदि माता-पिता जीवित होते और उनका विचार विपरीत होता तो भी मैं बहुत विनयपूर्वक उनका विरोध करता। और मैं यह भी मानता हूँ कि इस विषयमें मेरा मन इस हद तक निर्मल हो चुका है कि वे मेरी बात मान लेते।

इतना काफी है। विशेष शंका हो तो पूछना। मैंने उक्त बातें यह जानकर लिखी हैं कि तुममें सद्बुद्धि है और तुम [इसका] अनर्थ नहीं करोगे। पाखण्डी व्यक्ति ऐसा लिखनेपर या तो मुझे उद्धत समझेगा या मेरी बातोंपर मूढ़ विश्वास करके उनका गलत अर्थ निकालकर गलत कारणोंसे बुजुर्गोंकी आज्ञाका उल्लंघन करेगा और जो-कुछ मैंने प्लेगके बारेमें लिखा है, उसमें ऐसे अर्थका आरोप करेगा कि उसके उचित इलाजकी दृष्टिसे शराब, मांस आदि लिये जा सकते हैं।

चि॰ छगनलालका पत्र आया है। उससे मालूम होता है कि वह अब कुछ दिनोंमें वहाँ पहुँच जायेगा। कल्याणदाससे[1] कहना कि यदि वह मुझे पोस्ट कार्ड भी लिखता तो मुझे सन्तोष होता। उसे याद दिलाना कि उसने मुझे जो वचन दिये थे उनमें से एकका भी पालन नहीं किया है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी॰ डब्ल्यू॰ ५०७०) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

३६४. पत्र : मगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म
माघ बदी १ [फरवरी १४, १९११][2]

चि॰ मगनलाल,

चि॰ छगनलाल यहाँ आना चाहता है इसलिए [पहले] स्वदेश जाकर उसने बुद्धिमानी ही की। यहाँ न जाता तो गलत होता। जब उसका विचार यहाँ आनेका नहीं था तब हमारा आग्रह यह था कि वह यहाँसे होता हुआ [भारत] जाये। अब

1. कल्याणदास जगमोहनदास मेहता; इन्होंने गांधीजीके साथ दक्षिण आफ्रिकामें काम किया था। देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ४६ और खण्ड ६, पृष्ठ ४०५।
2. पत्र पहला है पर यह छगनलाल गांधीके ६-२-१९११ को इंग्लैंडसे भारत रवाना होनेके बाद लिखा गया था। सन् १९११ में माघ बदी १ को फरवरीकी १४ तारीख थी।

वह यहाँ आ जायेगा इसलिए मैं उसके स्वास्थ्यके बारेमें निश्चिन्त हूँ। देशमें उसका स्वास्थ्य कभी ठीक नहीं रहेगा।

करामत दर्शन आ सकता है। हम जो कर सकते थे कर चुके। अब वह अच्छी तरह समझ गया है कि क्या इलाज करवाना चाहिए। यदि वह वैसा न करे, तो उसकी इच्छा।

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च]

मैं तो फिलहाल मुख्यतया चप्पलें बनानेके काममें लगा रहता हूँ। मुझे यह काम पसन्द है और जरूरी भी है। करीब पन्द्रह जोड़ियाँ बन चुकी हैं। वहाँ जब जरूरत पड़े तब नाप भेजना। नाप भेजते समय जहाँ पट्टियाँ चाहिए, वहाँ निशान लगा देना — यानी पैरके अँगूठे और छँगुलीकी बाहरी तरफ।[1]

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ५०७८) से।

सौजन्य: राधाबेन चौधरी।

३६५. पत्र: दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके कार्यकारी जनरल मैनेजरको[2]

[जोहानिसबर्ग]
फरवरी २, १९११

मेरे संघका ध्यान उन रेलवे विनियमोंकी ओर आकृष्ट किया गया है जो इस माहकी पहली तारीखवाली एस० ए० आर० ऑफिशियल टैरिफ बुक संख्या १ में छपे हैं। इस पुस्तकमें लगता है एशियाई यात्रियोंसे सम्बन्धित वे विनियम प्रकाशित किये गये हैं[3] जो तत्कालीन जनरल मैनेजर श्री वेल[4] मेरे संघके प्रतिनिधियों और आपके बीच होनेवाली बातके फलस्वरूप इस प्रान्तमें हद तक रद कर दिये गये थे। अतः आप मुझे यह सूचित करनेकी कृपा करें कि जिन नये विनियमोंका मैं जिक्र कर रहा हूँ क्या वे रद कर दिये गये हैं और क्या पुराने विनियम फिर जारी कर दिये गये हैं। इसके लिए मैं आपका आभारी होऊँगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-२-१९११

१. इसके बाद गांधीजीने पैरका नमूना देते हुए एक नाप अंकित किया है।

२. इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था और इसे ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षके हस्ताक्षरसे भेजा गया था।

३. इनमें से सम्बन्धित अंश २८-१-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित हुए थे।

४. देखिए "पत्र: जनरल दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके महाप्रबन्धकको", पृष्ठ ३११।

३६६. नेटालके भारतीयोंका कर्तव्य

जान पड़ता है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके भविष्यका दारमदार नेटालके भारतीय क्या करते हैं इसपर है। इस अनुमानके दो कारण हैं: एक तो नेटालमें भारतीय बहुत हैं और उनकी जड़ें मजबूत हैं। दूसरे, नेटाल आकारमें छोटा है, इसलिए वह ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेटके पीछे खिंच जाता है। इन दोनों जगहोंके लोग तुलनात्मक दृष्टिसे अधिक भारतीय-विरोधी हैं। जो नये रेलवे-विनियम विज्ञापित हुए हैं वे केपमें नहीं किन्तु नेटालमें अब भी लागू होंगे। ट्रान्सवालमें उनपर अब भी अमल किया जा रहा है यद्यपि जैसा कि हम देख चुके हैं कानूनन वे रद हो गये हैं। श्री काछलियाके पत्रका[1] उत्तर मिलनेपर अधिक बातें ज्ञात होंगी। पिछले कुछ समयसे ऑरेंज फ्री स्टेटमें ये नियम अमलमें लाये जा रहे हैं। इसलिए नेटालका पक्ष नया और मजबूत भी है। यदि हम विरोधमें आवाज उठायें तो ये विनियम वहाँ क्षण-भरको नहीं टिकेंगे। हमारा खयाल है कि उनकी यह विज्ञप्ति हमें टटोलनेकी दृष्टिसे प्रकाशित की गई है। यदि हमने इनका सख्तीसे विरोध नहीं किया तो धीरे-धीरे और भी बुरे विनियम सामने आयेंगे। हमारा खयाल है अभी चूँकि ये विनियम कानून नहीं बन गये हैं, हम प्रार्थनापत्र पेश करनेके अलावा इन्हें अदालतमें भी चुनौती दे सकते हैं। आशा है कि कांग्रेस[2] तत्काल मामलेको अपने हाथमें लेगी।

इन विनियमोंसे हमें विचार करनेकी प्रेरणा मिलनी चाहिए। जैसे-जैसे समय बीतेगा हमारे प्रति संघ-संसदका रुख नरम होनेके बजाय सख्त होता जायेगा और उसके साथ ही हमारी शक्ति उत्साह एकता तथा स्वदेशाभिमान भी बढ़ते जाने चाहिए। यदि इस समय हम उचित परिश्रम करें तो पार लग जायेंगे। ऊपर कही गई बातें नेटालके भारतीयोंके लिए मनन करने योग्य हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-२-१९११

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. नेटाल भारतीय कांग्रेस।

३६७ नया प्रवासी विधेयक[1]

जोहानिसबर्ग
बुधवार, मार्च १, १९११

चिर अपेक्षित प्रवासी विधेयक[2] अब प्राप्त हो गया है। यह अत्यन्त जटिल है और इसका दायरा व्यापक है। मुझे इसके जो अर्थ समझमें आते हैं मैं उन्हें ही यहाँ दे रहा हूँ:

(१) सन् १९०७ का कानून २ एक बातके अलावा — अर्थात् जहाँतक उससे नाबालिगोंके अधिकारोंकी रक्षा होती है — अन्य सभी बातोंमें रद कर दिया जायेगा।

(२) १९०८ का कानून ३६ रद नहीं किया जायेगा।

(३) हालाँकि यह साफ नहीं है पर ऐसा लगता है कि जो लोग शैक्षणिक परीक्षा पास कर लेंगे वे ट्रान्सवालमें प्रवेश कर सकेंगे और उन्हें पंजीयन नहीं कराना पड़ेगा। (यदि ऐसा ही है तो सत्याग्रह समाप्त हो जायेगा।)

(४) अधिवासी एशियाइयोंकी पत्नियों और बच्चोंको संरक्षण नहीं प्रदान किया गया है ऐसा लगता है।

(५) नेटाल और केपमें एशियाइयोंको अधिवासका प्रमाणपत्र देना या न देना अधिकारियोंकी मर्जीपर निर्भर करेगा।

(६) शैक्षणिक परीक्षा इतनी कठोर होगी कि सम्भव है, एक भी भारतीय संघमें प्रवेश करनेकी अनुमति न पा सके।

(७) किसी अधिकारी द्वारा अनुचित रूपसे निषिद्ध ठहराये गये लोगोंको अपने बचावकी कोई सुविधा शायद नहीं दी गई है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४-३-१९११

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. देखिए परिशिष्ट ८।

३६८. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

बुधवार [मार्च १, १९११]

नया विधेयक

आखिरकार नया विधेयक[1] प्रकाशित हो गया।[2] उसका अनुवाद देनेका समय नहीं है और विस्तारसे उसकी समीक्षा करनेका भी समय नहीं है। लेकिन मुझे उसके निम्न लिखित परिणाम निकलते दिखाई देते हैं :

(१) सन् [१९०७ का] कानून २ एकदम रद हो जाता है, किन्तु उसमें एशियाई नाबालिगोंके जो अधिकार थे वे रक्षित रहे हैं।

(२) पंजीयनका दूसरा कानून [१९०८का कानून ३६] रद नहीं होगा।

(३) अधिकारी जिस भाषामें कहे उसमें ५० शब्द लिख सकनेवाले व्यक्तिको आनकी इजाजत है। इसमें भारतीय भाषाएँ भी आ जाती हैं, तथापि इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि काफी भारतीय आ सकेंगे।

(४) अधिवासी भारतीयोंकी पत्नियों तथा नाबालिग बच्चोंके अधिकार सुरक्षित नहीं दीखते।

(५) केप और नेटालमें पुराने अधिवासियोंके अधिकारोंपर सख्त आँच आती है।

(६) पाँचवीं धारामें उल्लिखित भारतीयोंको अधिवास प्रमाणपत्र दिया जायेगा या नहीं यह पूरी तरह सरकारकी मर्जीपर निर्भर करेगा।

(७) अधिकारी जिनके अधिकारको अमान्य कर दे उन्हें अपील करनेका हक कहीं दिया गया है, सो दिखाई नहीं पड़ता।

परिस्थिति इस प्रकारकी है। जनरल स्मट्सके भाषणमें[3] जान पड़ता है कि प्रत्येक प्रान्तमें रहनेवाले भारतीयको प्रान्तसे सम्बन्धित अधिकार ही मिलेगा और प्रतिवर्ष नये व्यक्ति तो बहुत थोड़े दाखिल किये जायेंगे।

यदि विधेयकके अनुसार ट्रान्सवालमें शिक्षित भारतीयोंको बिना पंजीयन कराये नये सिरेसे प्रवेश मिल सका तो इस विधेयकसे सत्याग्रहका संघर्ष बन्द हो सकता है। अभी पूरी तरहसे नहीं कहा जा सकता कि विधेयकका यह अर्थ है अथवा नहीं। लेकिन नेटाल और केपका क्या होगा? यह तो विचारणीय है। यदि कानून बन जाये तो शिक्षित व्यक्ति यहाँ आज जिस प्रकार निर्बन्ध आ सकते हैं, फिर उस प्रकार नहीं आ सकेंगे और वहाँके अधिवासियोंकी रक्षा भी उससे नहीं होगी। नेटाल और केपको तत्काल कदम उठाना चाहिए। मुझे लगता है कि पहले तो जनरल स्मट्सको लिखा जाये और बादमें असेम्बलीसे प्रार्थना की जाये।

१. देखिए परिशिष्ट ८।

२. फरवरी २८, १९११ को संघ विधानसभामें पेश किया गया।

३. देखिए "[illegible]", पृष्ठ [illegible]।

यह बड़ा नाजुक समय है। अभीतक विधेयक प्रकाशित होकर सबके सामने नहीं आया है।[1] फिर भी ऊपरका सारांश[2] मुद्रित विधेयकके आधारपर दिया गया है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ४-३-१९११

३६९. भेंट 'ट्रान्सवाल लीडर' को[3]

जोहानिसबर्ग
मार्च १, १९११

पिछली शामको एक पत्र-प्रतिनिधिने श्री गांधीसे [प्रवासी-प्रतिबन्धक] विधेयकके विषयमें उनके विचार जानने चाहे। उन्होंने कहा:

यह विधेयक इतना व्यापक और जटिल है कि मैं अभीतक उसकी तह तक नहीं पहुँच पाया हूँ। अनाक्रामक प्रतिरोध तो केवल सन् १९०७ के अधिनियम २ को रद करवाने और ट्रान्सवालमें एशियाइयोंको सिद्धान्त रूपमें प्रवेशके सम्बन्धमें कानूनी समानता दिलानेके लिए जारी रखा गया है। नाबालिगोंके अधिकारोंकी बातको छोड़कर अन्य सभी दृष्टियोंसे सन् १९०७ के कानून २ के रद हो जानेसे पहला उद्देश्य पूरा हो जाता है। परन्तु शैक्षणिक परीक्षाका अमल किस तरह होगा यह मैं ठीक नहीं समझ पाया हूँ। अगर विधेयकका मन्शा यह है कि उसके अन्तर्गत नियुक्त अधिकारी द्वारा तय की गई शैक्षणिक कसौटीपर खरा उतरनेवाला व्यक्ति ट्रान्सवालमें प्रवेश कर सकेगा — दूसरे प्रान्तोंमें तो जैसा मैं मानता हूँ वह इस प्रकार प्रवेश कर ही सकेगा — और इसके लिए उसे सन् १९०८ के कानून ३६ के अनुसार, जो मेरी समझमें रद नहीं किया जा रहा है, अपना नाम दर्ज करानेकी जरूरत नहीं रहेगी तो अनाक्रामक प्रतिरोध बन्द हो जायेगा। अगर पहले खण्डका यही अर्थ है और यदि इस अर्थसे स्थिति सन्तोषजनक रहती है तो उस स्थितिको विधेयकमें बिलकुल स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए। जो लोग शैक्षणिक जाँचके अन्तर्गत संघ-राज्यमें प्रवेश करेंगे विधेयकमें मुझे उनकी पत्नियों और नाबालिग बच्चोंके लिए कोई संरक्षण दिखाई नहीं दिया। आज अखबारोंमें जनरल स्मट्सका जो भाषण आया है उससे मैंने यह समझा है कि जिन एशियाइयोंको संघ-राज्यमें प्रवेश मिलेगा वे वैसे अध्यादेशोंके रहते हुए भी, जैसा कि ऑरेंज फ्री स्टेटमें एशियाइयोंपर लागू है, केवल निवासके लिए दूसरे सभी

१ मार्च ४, १९११ के इंडियन ओपिनियन के पूरक अंकके रूपमें पूरा विधेयक छपा था।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३ यह भेंट इंडियन ओपिनियनमें "मिस्टर गांधीज व्यूज़" (श्री गांधीके विचार) शीर्षकसे प्रकाशित हुई थी।

४ देखिए परिशिष्ट ८।

प्रवासियोंकी भाँति सारे संघमें कहीं भी बेरोकटोक जा सकेंगे। केप और नेटालमें बहुत-से ब्रिटिश भारतीय इस विधेयकके अर्थके बारेमें मुझसे तरह-तरहके सवाल पूछेंगे। परन्तु इन प्रान्तोंमें एशियाइयोंपर चाहे जो भी प्रतिबन्ध लगाये जायें उनके कारण वर्तमान अनाक्रमक प्रतिरोधको जारी नहीं रखा जा सकेगा। इस विधेयककी व्याख्याके बारेमें उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयोंकी तरफ अगर मैं सरकारका ध्यान दिलाऊँ[1] तो मैं मानता हूँ कि सरकार बुरा नहीं मानेगी। मैं जानना चाहता हूँ कि इन प्रान्तोंमें अभी जो एशियाई बसे हुए हैं उनके अधिकारोंकी रक्षाके लिए क्या किया गया है। नेटाल और केप दोनोंके कानूनोंमें अधिवासी एशियाइयोंको प्रतिबन्धक धाराओंसे बरी कर दिया गया है। परन्तु नवीन विधेयकमें यह धारा तथा ऐसे एशियाइयोंकी पत्नियों और नाबालिग बच्चोंको छूट देनेवाली धारा निकाल दी गई है। और मुझे विवश होकर सोचना पड़ता है कि विधेयककी धारा २५ की उपधारा २ उन एशियाइयोंकी स्थितिको संकटपूर्ण बना देती है, जो अपने प्रान्तसे कुछ समयके लिए बाहर जाना चाहें। जनरल स्मट्सने कहा है कि उनका इरादा दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले एशियाइयोंको परेशान करनेका नहीं है। इसे देखते हुए मैं आशा करता हूँ कि विधेयकमें इस तरहका संशोधन कर दिया जायेगा जिससे उनकी स्थिति आजकी भाँति सुरक्षित बनी रहे। मुझे कहीं वह धारा भी नजर नहीं आई जो आम तौरपर ऐसे विधेयकोंमें होती है अर्थात् जो जिन व्यक्तियोंको प्रवासी अधिकारी निषिद्ध व्यक्ति ठहरा दे उन्हें यथाशक्ति अपने प्रवेश या पुनः प्रवेशके अधिकारको सिद्ध करनेकी सुविधा देती है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–३–१९११

३७० पत्र : ई० एफ० सी० लेनको[2]

[जोहानिसबर्ग]
मार्च २, १९११

श्री अर्नेस्ट सी० लेन
जनरल स्मट्सके निजी सचिव
केप टाउन

प्रिय श्री लेन,

मैंने सरकारी गज़ट के गत मासकी २५ तारीखके विशेष अंकमें प्रकाशित प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयकको अभी-अभी पढ़ा है। चूँकि यह मुझे अत्यन्त जटिल प्रतीत होता है, इसलिए मैं निश्चयके साथ नहीं कह सकता कि उसका क्या अर्थ लगाया जाये। मैं ट्रान्सवालमें लम्बे अरसेसे चलनेवाले एशियाई संघर्षको समाप्त करनेमें यथाशक्ति

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. इस पत्रका मसविदा गांधीजीने पहले तैयार किया गया था; देखिए "पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको", पृष्ठ ४४६।

सहायता देनेको अत्यन्त इच्छुक हूँ इसलिए अनरल स्मट्सके समक्ष निम्नलिखित बातें प्रस्तुत करनेकी धृष्टता करता हूँ।

सत्याग्रहको जारी रखनेका उद्देश्य १९०७ के कानून २ को रद कराना और ट्रान्सवालमें प्रवासकी हद तक एशियाइयोंको कानूनकी दृष्टिमें सैद्धान्तिक समानताका स्थान दिलाना है फिर व्यवहारमें भले ही प्रतिवर्ष प्रवेश पानेवाले उच्च शिक्षा-प्राप्त ब्रिटिश भारतीयोंकी संख्या घटाकर, मान लीजिए, ६ निश्चित कर दी जाये।

देखता हूँ कि १९०७ का कानून २, एशियाई नाबालिगोंके अधिकारोंकी धाराको छोड़कर अन्य सभी बातोंमें रद कर दिया जायेगा। इसलिए व्यवहारतः इससे हमारा पहला उद्देश्य तो पूरा हो जाता है। परन्तु शैक्षणिक जाँच-सम्बन्धी धारा और उसका प्रभाव मेरी समझमें ठीक-ठीक नहीं आ सका। चूँकि [विधेयकका] खण्ड १ पहली अनुसूचीमें वर्णित कानूनोंको रद करनेके साथ-साथ दूसरे कानूनोंको भी उस हद तक रद करता है जिस हद तक वे विधेयककी व्यवस्थाओंके प्रतिकूल हैं इसलिए मुझे लगता है कि जो शिक्षित एशियाई प्रवासी-अधिकारी द्वारा निर्धारित परीक्षा पास कर लेंगे वे ट्रान्सवालमें प्रवेश कर सकेंगे और रह सकेंगे तथा वे १९०८ के कानून ३६ के अन्तर्गत पंजीयन करानेके लिए बाध्य नहीं होंगे। यदि विधेयकके प्रथम खण्डका यही अर्थ हो तो ट्रान्सवालके संघर्षका सुखमय अन्त हो सकता है। किन्तु मैं यह सुझानेकी धृष्टता करता हूँ कि स्वयं विधेयकमें यह अर्थ साफ-साफ और असन्दिग्ध रूपसे व्यक्त कर दिया जाना चाहिए। कृपया यह भी बतायें कि पंजीकृत एशियाइयोंकी पत्नियोंको विधेयककी किस धाराके अन्तर्गत संरक्षण दिया गया है।

आपका विश्वस्त

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२२२) की फोटो-नकल और १८-३-१९११ के इंडियन ओपिनियन से भी।

३७१. पत्र : आर० ग्रेगरोवस्कीको

जोहानिसबर्ग
मार्च २, १९११

प्रिय श्री ग्रेगरोवस्की[1]

मुझे मानना पड़ेगा कि संलग्न विधेयकने[2] जिसकी प्रति शायद केवल मेरे ही पास है, मुझे चकरा दिया है। उलझन इसलिए और बढ़ गई है कि मुझे जनरल स्मट्सकी नीयतपर शक है। इसीलिए मुझे भरोसा नहीं होता कि मैं इसकी सही व्याख्या कर पाऊँगा। अतः मैं इसमें आपकी मदद चाहता हूँ।

१. जोहानिसबर्गके एक वकील; कानूनी तथा वैधानिक मामलोंमें गांधीजी अक्सर इनसे सलाह लिया करते थे।

२. प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयक (१९११); देखिए परिशिष्ट ८।

मैंने इसका अर्थ इस प्रकार समझा है

(१) चूँकि सभी कानूनोंसे इस विषयकी व्यवस्थाओंके प्रतिकूल पड़नेवाली बातें हटा दी जायेंगी इसलिए कोई भी शिक्षित एशियाई, सम्बन्धित अधिकारी द्वारा निर्धारित शैक्षणिक कसौटीपर खरा उतरनेपर, ट्रान्सवालमें प्रवासी होनेके योग्य माना जायेगा और उसे १९ ८ के पंजीयन कानून ३६ के अन्तर्गत पंजीयन करानेकी कोई आवश्यकता नहीं होगी। (देखिए खण्ड १ और ४)।

(२) पीड़ित पक्षको यह अधिकार नहीं है कि वह शैक्षणिक कसौटी लागू करनेवाले अधिकारीके निर्णयको किसी न्यायालयके समक्ष विचारार्थ ले जाये भले ही निर्धारित कसौटी हास्यास्पद रूपसे सख्त हो। (देखिए खण्ड ४)।

(३) शैक्षणिक कसौटीके अन्तर्गत प्रवेश पानेवाला प्रत्येक एशियाई प्रवासी ऑरेंज री स्टेटमें भी यद्यपि निषिद्ध एशियाई अध्यादेशके बावजूद वैध प्रवासी माना जायेगा। (देखिए खण्ड १)।

(४) ट्रान्सवालका कोई भी एशियाई यदि उसे नेटाल या केपमें अधिवासके अधिकार प्राप्त न रहे हों तो खण्ड ४ के अन्तर्गत सख्त शैक्षणिक कसौटीके कारण वहाँ प्रवेश नहीं पा सकेगा।

(५) एक बार इस कानूनके अन्तर्गत शैक्षणिक परीक्षा पास कर लेनेके बाद किसी भी एशियाईको विभिन्न प्रान्तोंमें रोका-टोका नहीं जा सकता। उसे इतना बता-भर देना होगा कि उसकी परीक्षा ली जा चुकी है।

(६) ऐसा नहीं लगता कि वर्तमान अधिवासियोंको अपने-अपने प्रान्तोंमें किसी प्रकारका संरक्षण मिला है या वे शैक्षणिक धाराके प्रयोगसे मुक्त हैं। उनकी कानूनी स्थिति क्या है?

(७) इस विधेयक द्वारा अधिवासी एशियाइयों या शैक्षणिक कसौटीके अन्तर्गत भविष्यमें प्रवेश पानेवाले एशियाइयोंकी पत्नियों और नाबालिग बच्चोंको भी कोई विशेष संरक्षण नहीं दिया गया। उनका दर्जा क्या होगा? और यदि वे सामान्य कानून (कॉमन लॉ) के अन्तर्गत सुरक्षित हैं, तो क्या इसका अर्थ यह है कि किसी अधिवासी एशियाईका २१ वर्षसे कम अवस्थाका पुत्र प्रवेशके अधिकारका दावा कर सकता है?

(८) सन् १ ७ के कानून २ की मंसूखीके बाद विधेयककी पहली अनुसूचीकी व्यावृत्ति धाराके अन्तर्गत ट्रान्सवालमें पंजीकृत एशियाइयोंके १६ वर्षसे कम आयुके नाबालिग लड़के ट्रान्सवालमें अवैध प्रवेश कर सकेंगे और १६ वर्षके हो जानेपर वे "छोटाभाई फैसले" के आधारपर अधिकारपूर्वक पंजीयनकी माँग कर सकते हैं।

( ) लगता है कि खण्ड २५ के उपखण्ड २ के अन्तर्गत मन्त्रीको यह अधिकार है कि वह अंतिम वाक्यांश या अपने अधिकारका प्राप्त छोड़नेवाले प्रत्येक एशियाईको अधिवास प्रमाणपत्र देनेसे इनकार करके उसे निषिद्ध प्रवासी बना दे।

कृपया इसे मामलेका संक्षिप्त विवरण मानकर इस पत्रपर विचार करेंगे। मेरा खयाल है मुझे आपके पास नेटालके प्रवासी कानूनोंकी प्रतियाँ भेजनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि रद कर दिये जानेके कारण उनका इस प्रश्नपर कोई असर नहीं पड़ता।

आपका विश्वस्त
मो० क० गांधी

गांधीजीके हस्ताक्षरयुक्त टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२२१) की फोटो-नकलसे।

३७२. पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च २, १९११

प्रिय श्री रिच,

आप कार्य-स्थलपर ऐन वक्तपर ही पहुँचे हैं[1] और 'टाइम्स' के संवाददाताके अनुसार आप ब्रिटिश भारतीयोंकी माँगोंका समर्थन करनेवाले स्थानीय लोगोंके साथ तुरन्त सहयोग प्रारम्भ कर देनेवाले हैं। यहाँ आपको नया विधेयक देखनेको मिलेगा। मैंने ग्रेगरोवस्कीके नाम अपने पत्रमें उसकी जो व्याख्या की है वह भी संलग्न कर रहा हूँ। स्मट्सके नाम मेरा पत्र[2] और 'लीडर' को दी गई भेंट-वार्ता[3] भी भेजी है। पहले तो मेरा खयाल था कि इसी भेंट-वार्ताके आधारपर स्मट्सको पत्र लिखूँ। यह भेंट-वार्ता वास्तवमें स्मट्सको भेजनेके लिए पहले लिखे गये पत्रपर ही आधारित है। कार्टराइटकी[4] राय थी कि मुझे पत्रको प्रकाशित करके स्थिति स्पष्ट कर देनी चाहिए। मैंने उनको बताया कि वैसा करना अक्लमंदी नहीं होगी। इसीलिए उन्होंने उसके खास-खास मुद्दोंको एक भेंट-वार्ताके रूपमें प्रकाशित करा दिया। बादमें मैंने अपनी राय बदल दी और सोचा कि मुझे स्मट्सको केवल संघर्षके सम्बन्धमें ही लिखना चाहिए, ताकि आगे चलकर कोई विवाद उठनेपर मसला और अधिक न उलझाया जा सके। सैद्धान्तिक दृष्टिसे तो यह विधेयक सराहनीय है, क्योंकि इस विधेयकमें भारतीय भाषाओंका दर्जा यूरोपीय भाषाओंके बराबर मान लिया गया है। लेकिन मेरा खयाल है कि व्यवहारमें केप और नेटालके एशियाइयोंपर इसका प्रभाव बड़ा अनर्थकारी होगा। मेरे विश्लेषणसे आपको यह स्पष्ट हो जायेगा। आप केप प्रवासी

1. श्री रिच अगस्त मार्च ७, १९११ को केप टाउन पहुँचे।
2. देखिए "पत्र : ई० एफ० सी० लेनको" पृष्ठ ४४३-४४।
3. देखिए "भेंट : ट्रान्सवाल लीडरको" पृष्ठ ४४२-४३।
4. ट्रान्सवाल लीडरके सम्पादक, और गांधीजी तथा श्री स्मट्सके मित्र। भारतीयोंके प्रति इनकी बड़ी सहानुभूति थी और समझौता करानेमें इनकी दिलचस्पी थी।

अधिनियमसे इस विधेयकका मिलान करके देखें तो दोनोंमें जो स्पष्ट अन्तर है वह सामने आ जायेगा। लीडर ने नेसर द्वारा प्रस्तुत संशोधनके सम्बन्धमें स्मट्सके भाषणकी जो रिपोर्ट प्रकाशित की थी उसे मैं संलग्न कर रहा हूँ।[1] इसमें स्मट्सने स्पष्ट रूपसे कहा था कि हम एशियाई व्यापारका मुकाबला करनेके लिए साम्राज्य सरकार तथा संघ-सरकार द्वारा निर्धारित संख्यामें एशियाई प्रवासियोंके प्रवेशके सिवाय उनके प्रवासको पूर्णतः बन्द करनेका तरीका अपनाना चाहते हैं। यह उसूल ट्रान्सवालके लिए भले ही ठीक हो लेकिन केप और नेटालमें बसे हुए एशियाई अपने अधिकारोंमें इतनी बड़ी कटौतीके लिए कैसे राजी हो जायेंगे। मैं समझता हूँ कि शैक्षणिक जाँचके बाद मामूली पढ़े-लिखे भारतीय तरुणोंको तो शायद ही प्रवेश मिले इसलिए केप और नेटालके भारतीयोंको हिसाब-किताब तथा अन्य कामोंके लिए भी भारतसे सहायक मिलनेमें अड़चन होगी। इसीलिए मेरा सुझाव है कि पहले तो केपका एक शिष्टमण्डल लिखित प्रतिवेदनके साथ गृह-मन्त्रीसे भेंट करे और यदि उनका उत्तर असन्तोषजनक हो तो संसदको एक याचिका भेजी जाये। साथ ही केपके उन संसद-सदस्योंसे भेंट भी करनी चाहिए, जिनका रवैया अबतक सहानुभूतिपूर्ण रहा है और जिनको [चुनावमें] भारतीयोंके वोट मिलते हैं। मेरा खयाल है कि हमें आम तौरपर केपके संसद-सदस्योंकी सहानुभूति प्राप्त होगी। इसकी सम्भावना बहुत ही कम है कि शैक्षणिक जाँचके बारेमें आप विधेयकमें कोई खास संशोधन करानेमें सफल हों किन्तु सम्भव है कि आप शैक्षणिक जाँचका इस तरह लागू करानेका वचन पा जायें जिससे भारतीयोंको आवश्यक संख्यामें शिक्षित सहायक प्राप्त हो सकें। किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण धारा तो २५ है और मेरे विचारसे उसमें आपकी सफलता लगभग निश्चित है। इस धारामें निवास-सम्बन्धी अधिकारोंकी निश्चित व्याख्या हो जानी चाहिए, जैसा कि केप और नेटाल दोनोंके वर्तमान प्रवासी कानूनोंमें किया गया है। केपका कानून कहता है कि अधिवासी एशियाई उनकी पत्नियाँ तथा नाबालिग बच्चे प्रतिबन्धक धाराओंसे मुक्त हैं, और नेटालके कानूनमें अधिवास-सम्बन्धी एक सर्वसामान्य धाराके साथ-साथ यह भी कहा गया है कि इस कानूनके प्रयोजनके लिए नेटालमें तीन वर्षके निवासको अधिवासके अधिकारके लिए पर्याप्त माना जायेगा और ऐसे किसी एशियाई प्रार्थीका अधिवास-प्रमाणपत्र जारी करना मन्त्रीकी मर्जीपर निर्भर न होकर, अनिवार्य होगा। मैं समझता हूँ कि इस मामलेमें आपको केपके संसद-सदस्योंकी सहानुभूति मिलेगी। जहाजपर मैंने सावरसे केप एशियाई कानूनकी चर्चा की थी। उन्होंने कहा कि केपमें मौजूद न रहनेवाले एशियाइयोंको अधिवासके स्थायी प्रमाणपत्र देनेके बदले केवल अस्थायी अनुमतिपत्र देना बहुत बड़ा अन्याय है। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि इसके बारेमें उन्हें कोई जानकारी नहीं थी।[2] मेरा खयाल है कि यदि प्रवासी कानूनमें उक्त संशोधन कराया जा सके तो वह बहुत अच्छा बन जायेगा। मेरा यह भी खयाल है कि यूरोपीय

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।
२. देखिए परिशिष्ट ९।
३. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ५८४।

विद्यार्थियोंके मनमें भारतीय समाजके प्रति जितना बने उतना सद्भाव उत्पन्न करनेके विचारसे यह स्वीकार करना ठीक होगा कि अन्तर्प्रान्तीय आवागमनकी सुविधाकी माँग वर्तमान दुर्भाग्यपूर्ण पूर्वग्रहोंको देखते हुए नहीं की जा सकती। किन्तु साथ-ही-साथ यह भी कह देना चाहिए कि संघमें एक स्थानसे दूसरे स्थानपर आने-जानेकी इच्छा करनेवालोंपर बहुत कड़ी शैक्षणिक कसौटी लागू नहीं की जानी चाहिए।

मैंने वेस्टसे 'इंडियन ओपिनियन' की गत मासकी १८ तारीख और उससे आगेके अंकोंकी प्रतियाँ भेजनेको कहा है।[1] शायद वे आपको मिल गई होंगी। आपके पत्रसे ऐसा लगता है कि आप भी कोहेनको अपने साथ नहीं लाये हैं। मैं समझता हूँ कि विधेयकके प्रकाशनके कारण आपको अब वहाँ कुछ समय तक रुकना पड़ेगा। शेष फिर।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२१९) की फोटो-नकलसे।

३७३. तार: आदम गुलको

जोहानिसबर्ग,
मार्च २, १९११

सेवामें
आदम गुल
८, वाल्फ स्ट्रीट
केप टाउन

श्री रिचके आगामी मंगलवारको पहुँचनेकी सम्भावना। कृपया समुचित सम्मानसहित अगवानी करें। प्रवासी विधेयक प्रकाशित। देखिए पत्र समाचारका असाधारण गजट। विधेयक केप नेटालके लिए बुरा। घोर विरोध आवश्यक। पत्रकी प्रतीक्षा करें। तार दीजिए प्रतिलिपि मिली या नहीं?

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२२२) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।
२. श्री रिचके [illegible]।
३. आदम हाजी गुल मुहम्मद, केप ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष।

३७४ पत्र डा० अब्दुल हमीद गुलको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च २, १९११

प्रिय डॉ० गुल[1]

आपको आज जो काम सौंपा जा रहा है वह केवल मुझसे मिलना या अन्य लोगोंके शारीरिक मार्गोकी परीक्षा करना नहीं है। श्री रिच मंगलवारको पहुँच रहे हैं। मुझे आशा है आप उनके हार्दिक स्वागतके आयोजनमें कुछ उठा नहीं रखेंगे। परन्तु यह तो कुछ नहीं है, मैं आपसे बहुत अधिककी आशा रखता हूँ। मुझे आशा है कि इस पत्रके पहुँचते तक आप नये प्रवासी विधेयकका अध्ययन कर चुके होंगे। जहाँ एक ओर इसके द्वारा ट्रान्सवालके सत्याग्रहियोंकी मांगें पूरी होनेकी सम्भावना है वहाँ दूसरी ओर यह केप और नटालके भारतीयोंको बहुत-सी बातोंसे वंचित कर देता है। मेरा खयाल है कि यदि उचित ढंगसे लगातार आन्दोलन चलाया जाये तो हमें कुछ सफलता तो मिल ही सकती है। शैक्षणिक जाँच अकारण बहुत कड़ी है। जहाँतक नटाल और केपका सम्बन्ध है सरकार वर्तमान स्थितिको बदलनेका कोई ठीक कारण नहीं बता सकती। फिर, इससे अधिवासी एशियाइयोंके अधिकार बहुत ही अरक्षित हो जायेंगे और वैध एशियाई निवासियोंकी पत्नियों और छोटे बच्चोंके दर्जेके बारेमें विधेयकका अभिप्राय क्या है सो भी समझमें नहीं आता। ये सब बातें ऐसी हैं कि जिनमें राहत दी जा सकती है और सुधार हो सकते हैं। आप कृपया श्री रिचको अपना सक्रिय सहयोग दें और जो-कुछ भी सम्भव और आवश्यक हो सो करें। और क्या हाल है?

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२२१) की फोटो-नकलसे।

३७५ पत्र एच० एस० एल० पोलकको

जोहानिसबर्ग
मार्च २, १९११

प्रिय श्री पोलक,

संलग्न मानपत्र[2] आप समझ जायेंगे कि विधेयककी मेरी व्याख्या क्या है। इस विधेयकपर मैं जितना ही विचार करता हूँ मेरी यह धारणा उतनी ही दृढ़ होती जाती है कि ट्रान्सवालका संघर्षका अन्त हो जायगा। विधेयकके प्रथम खण्डका मैंने जो अर्थ

१. केप सिविल सर्जन भंडलीत केपके भारतीय संयुक्त समितियोंमें से एक।
२. देखिए "एक नया प्रेषणपत्र", पृष्ठ ४४४-४५।

लिया है, मुझे लगता है कि श्री स्मट्सने भी उसे यही अर्थ देना चाहा है। किन्तु यह केप और नेटालके लिए कितने दुर्भाग्यकी बात है। केपके लिए क्या किया जाना चाहिए, इसपर मेरे सुझाव आपको रिचके नाम लिखे गये पत्रमें[1] मिलेंगे। मेरे विचारसे नेटालके बारेमें भी आवश्यक परिवर्तनोंके साथ यही कदम उठाया जा सकता है। मैं सोचता हूँ कि नेटालके लोग तत्काल एक अभिवेदन भेजकर पत्नियों और नाबालिग बच्चोंके बारेमें तथा अधिवासके अधिकारोंके सम्बन्धमें विधेयकके अर्थका स्पष्टीकरण करा लें। अभिवेदनका मसविदा संलग्न है; यह तारसे भेजा जाये। जवाब मिलनेपर एक अभिवेदन गृह-मन्त्रीको दिया जाये और यदि उसका सन्तोषजनक उत्तर न मिले तो सर डेविड हंटरकी मार्फत संसदमें एक याचिका[2] पेश कराई जाये। मेयर[3] द्वारा प्रारम्भ किये गये वाद-विवादके समय हुगरन[4] जो मिथ्या आरोप लगाये और जो बदज़बानियाँ कीं उनका उत्तर देते हुए प्रधानमन्त्रीके नाम एक खुला पत्र भेजा जाना चाहिए[5] और इसकी एक-एक नकल संघ-संसदके सभी सदस्योंको डाकसे भेज दी जाये। आपकी सुविधाके खयालसे पत्रका मसविदा बनाकर भेजनेका प्रयत्न करूँगा।

हृदयसे आपका

[संलग्न]

मसविदा

कांग्रेस-समितिने प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयक देखा। सरकारके सामने अपना मत रखनेसे पहले समिति विनयपूर्वक सरकारसे निम्नलिखित मुद्दोंपर जानकारी पानेका अनुरोध करती है: मौजूदा अधिनियममें किसी विशेष धाराके अभावमें इस प्रान्तके ब्रिटिश भारतीयोंके अधिवास अथवा निवास-सम्बन्धी कानूनी अधिकार क्या हैं और वैध एशियाई निवासियोंकी

१. देखिए "पत्र: अर्नेस्ट रिचको" पृष्ठ ४४६-४८।

२. [illegible]।

३. देखिए "मेमोरेण्डम [illegible]" पृष्ठ ५०५-०८।

४ और ५. [illegible]।

६. लगता है, ऐसा कोई तार नहीं भेजा गया। [illegible]

७. [illegible] मार्च ४ को भेजा गया था। [illegible] मार्च ६ को दूसरा तार भेजा गया था। मार्च ७ को [illegible] १९०० के [illegible] नहीं होंगे।

३७८. पत्र : जेल-निदेशकको[1]

जोहानिसबर्ग
मार्च ३, १९११

महोदय

श्री डैनियल आरमुगमने जिन्हें सत्याग्रहीके रूपमें इसी १ तारीखको डीपक्लूफ जेलसे रिहा किया गया था, मेरे संघको सूचित किया है कि रिहा होनेके कोई एक पखवारा पहलेकी बात है, जिस कोठरीमें वे अपने साथी कैदियोंके साथ रहते थे उसमें रातके एक बजे अधजगी अवस्थामें देखा कि एक साँप उनकी गर्दनपर रेंग रहा है। जैसा कि स्वाभाविक था, वे भयभीत होकर उठ बैठे और झटका देकर साँपको नीचे गिरा दिया। सौभाग्यवश कोठरीमें एक बत्ती थी। उन्होंने अपने पड़ोसीको जगा दिया क्योंकि साँप उसीकी तरफ जा रहा था। देखते-ही-देखते उस कोठरीमें रहनेवाले सभी लोग जग गये। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी एक कैदीको अपनी डौंगिल लेकर कोठरीमें प्रवेश करनेकी अनुमति दे दी गई थी और इन्हीं डौंगिलोंसे साँपको मारा गया। श्री आरमुगम और उनके साथ रिहा होनेवाले अन्य भारतीय कैदियोंने मेरे संघको सूचित किया है कि डीपक्लूफ जेलकी कोठरियाँ जमीनसे लगी हैं, और उनमें साँप आदिसे कोई बचाव नहीं है। कुछ अन्य सत्याग्रहियोंने भी बताया है कि उस कोठरीमें रातके समय साँप निकलना कोई असाधारण घटना नहीं है। कुछ समय पहले वहाँ एक साँप निकलनेकी घटनाका उन्हें भी अनुभव था। इसलिए मैं नम्रतापूर्वक आपका ध्यान इस मामलेकी ओर आकृष्ट कर रहा हूँ ताकि कोठरियाँ इस ढंगकी बनाई जायें जिससे ऊपर उल्लिखित खतरेकी पुनरावृत्ति न हो सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–३–१९११

---

१. श्री मु. कछलियाके हस्ताक्षरसे भेजे गये इस पत्रका मसविदा अनुमानतः गांधीजीने तैयार किया था।

२. जेल-निदेशकने इस पत्रके उत्तरमें लिखा था कि वह मामलेकी जाँच कर रहा है।

३७९. पत्र : ए० एच० वेस्टको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ३, १९११

प्रिय वेस्ट,

यह पत्र सोमवारको आपके हाथमें होगा। मेरा खयाल है पोलक शायद डर्बनमें होंगे। रिचके बारेमें मुझे जो आवश्यक लगा उसे मैंने संक्षेपमें लिख दिया है।[1] लन्दनसे प्राप्त अन्य सब पत्र आदि भेज रहा हूँ। पोलकके वहाँ पहुँचनेपर आप उन्हें यह सामग्री दिखा दें। मैंने जो-कुछ तैयार किया है, उसके आगे वे उसका जो उपयोग चाहें कर सकते हैं। फिलहाल तो मैं शहरमें ही रहूँगा किन्तु यदि विधेयकके प्रथम खण्डकी प्रतिकूल व्याख्या की गई तो कदाचित् मुझे केप टाउन भी जाना पड़े। सब कुछ मामला किस तरह आगे बढ़ता है, इसपर निर्भर करेगा। यदि विधेयक-विषयक सामग्रीके कारण पत्रमें स्थानाभाव अधिक हो तो मैं समझता हूँ कि छोटाभाईके मुकदमेके फैसलेका प्रकाशन स्थगित कर देना ही ठीक होगा।[2] विधेयकके सामने उस फैसलेका महत्त्व नगण्य है। मैं आपके पास कलके स्टार का अग्रलेख[3] भी भेज रहा हूँ। इसे संक्षिप्त करके प्रकाशित किया जाना चाहिए। आपको परिवर्तनमें प्राप्त होनेवाले समाचारपत्रोंसे विधेयककी प्रेस-विज्ञप्तियाँ मिल ही जायेंगी। यदि विधेयक विधानसभामें पेश ही न हो अथवा उसमें महत्त्वपूर्ण प्रतिकूल परिवर्तन हो जाये तो वैसी दशामें हम समाचारपत्रोंमें प्रकाशित उन विज्ञप्तियोंका उपयोग करना चाहेंगे।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२२५) की फोटो-नकलसे।

१. श्री रिचकी मामला क्लेके किन लन्दनमें आयोजित उनकी रिपोर्ट इंडियन ओपिनियनके मार्च ११, १८ और २५ के अंकोंमें प्रकाशित हुई थी।

२. यह फैसला क्रमशः २२-४-१९११ और २९-४-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित हुआ था।

३. इसे ११-३-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत किया गया था।

३८०. पत्र : ऑलिव डोकको

जोहानिसबर्ग
मार्च ६, १९११

प्रिय ऑलिव,

आशा है, तुमने अपनी छुट्टियाँ आनन्दसे बिताईं। तुम्हारे पिताजीने[1] मुझे बताया कि तुम लौट आई हो और मैंने यह बात रामदासको भी बता दी है। मैं अब दोनों लड़कोंको[2] बृहस्पतिवारको भेजनेकी कोशिश करूँगा। लॉलीसे यहाँतक की यात्रामें खर्च काफी पड़ेगा और फार्मपर जो दूसरे लड़के हैं उनकी भी सुगम-संगीत सीखनेकी इच्छा स्वाभाविक ही है। विधेयक प्रकाशित हो गया है इसलिए मेरा विचार एक-दो सप्ताह प्रतीक्षा करनेका है। तथापि तुम्हारे स्नेहपूर्ण निमन्त्रणके लिए धन्यवाद।

माताजीको मेरा स्मरण दिला देना।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

कुमारी ऑलिव डोक
११ सदरलैंड एवेन्यू
हॉस्पिटल हिल
जोहानिसबर्ग

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ४९२९) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : सी० एम० डोक।

३८१. तीन महिलाओं द्वारा सहायता

हमें ट्रान्सवालकी लड़ाईमें केवल प्रमुख पुरुषोंकी ही नहीं बल्कि प्रमुख स्त्रियोंकी भी उतनी ही सहायता मिली है। भारतमें भी पोलकको श्रीमती रमाबाई रानडे और श्रीमती पेटिटके नेतृत्वमें जो सहायता मिली उससे इंडियन ओपिनियन के पाठक परिचित हैं।

अभी इंग्लैंडमें श्रीमती मेयोने जो प्रभावपूर्ण लेख लिखा है, उसका रायटर द्वारा प्रेषित विवरण हम देख चुके हैं।[3] हमें उक्त लेखकी पेशगी प्रतिलिपि मिली है

1. रेवरेंड जे० जे० डोक।
2. रामदास गांधी और देवदास गांधीको संगीत-शिक्षाके लिए भेजनेका प्रश्न था।
3. श्रीमती पॉल बार, मेयो-श्रीमती मेरी फ्लेचर ... मेरेथ ने इस मामलेमें लिखा करती थीं। यह लेख मिडनेर मन्थलीके मार्च अंकमें प्रकाशित हुआ था।

और उससे हम श्रीमती मेयोके लेखको ज्यादा अच्छी तरह समझ सके हैं। उन्होंने लेखमें समस्त दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमें चर्चा की है। हम उनके लेखका अनुवाद देना चाहते हैं, इसलिए उसके सम्बन्धमें अधिक नहीं लिखना चाहते। हम केवल श्रीमती मेयोका परिचय देंगे। श्रीमती मेयो लगभग ६ वर्षकी बूढ़ी महिला हैं। वे लेखिका हैं और अखबारोंमें लिखती रहती हैं। स्व. टॉल्स्टॉयने अपनी रचनाओंके अनुवादकोंमें उनको भी चुना था। इसलिए हम समझ सकते हैं कि श्रीमती मेयोके लेखका इतना प्रभाव क्यों हुआ।

श्रीमती मेयोके अलावा एक हैं कुमारी हिल्डा हाउजिन। इन बहनने ईस्ट इंडिया असोसिएशनमें जो भाषण दिया उसकी रिपोर्ट पठनीय है। इसमें उन्होंने ट्रान्सवालके प्रश्नसे सम्बन्धित मामलोंका विवेचन किया है। उनके भाषणके विवेचकोंमें से बहुतोंने सत्याग्रह-संघर्षकी प्रशंसा की है और उसके प्रति सहानुभूति दिखाई है।

जिस समय ये दोनों बहनें इस प्रकार लिख या बोल रही थीं लगभग उसी समय कुमारी पोलककी नियुक्ति समितिकी मन्त्राणीके रूपमें हुई।

इस प्रकार जब हमें बिना माँगे सहायता मिल रही है, हमारी लड़ाई प्रख्यात हो रही है, दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका नाम संसारमें फैल रहा है और जब उसी प्रकार भारतकी कीर्ति भी बढ़ रही है तब हमारे निराश होनेकी क्या बात है? यह देखते हुए कि ये सारी बातें लड़ाई लम्बी चलनेका सुपरिणाम हैं हमें और अधिक उत्साहके साथ और जोरसे जूझना उचित है।

श्रीमती मेयोका लेख[1] और कुमारी हाउजिनके व्याख्यानकी[2] रिपोर्ट हम अपने अंकोंमें देनेका विचार करते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–३–१९११

३८२ रम्भाबाई सोढा

रम्भाबाईके मामलेमें अभीतक बखेड़ा चल रहा है। ट्रान्सवालके उच्च न्यायालयने मजिस्ट्रेटके निर्णयको बहाल रखा इसलिए अब आगे अपील की गई है।[3] स्त्रियोंका यह पहला मामला है इसलिए रम्भाबाई जेल जायें इससे पहले प्रत्येक कार्रवाई करना लौकिक बुद्धिमत्ता मानी जायगी। ऐसा करनेसे पारलौकिक बुद्धिमत्तापर भी आँच नहीं आती। इसलिए यह कहा जा सकता है कि अपील करना ठीक ही

1. इस लेखके गुजराती अनुवादके लिए इंडियन ओपिनियनके २२ और २९ अप्रैल, तथा ६, १३ और २० मई १९११ के अंक देखिए।

2. देखिए इंडियन ओपिनियनके अप्रैल २९, मई ६, १३, २० तथा जून ३ और १०, १९११के अंक।

3. मजिस्ट्रेटने जनवरी १, १९११को रम्भाबाईको १० पौंड जुर्माना तथा जुर्माना अदा न करनेपर सादी कैदकी सजा दी थी। उच्च न्यायालयने इस निर्णयको बदलकर १० पौंड जुर्माना और जुर्माना अदा न करनेपर सादी कैदकी सजा कर दिया।

हुआ। फिर अपील करनेसे हम हर तरहसे दोषमुक्त हो जाते हैं। इससे लाचार हुए बिना स्त्रियोंको जेलमें भेजनेका हमारा आग्रह भी प्रमाणित हो जाता है। इसके बाद जनरल स्मट्स यह नहीं कह सकते कि हम स्त्रियोंको जान-बूझकर जेल भेजना चाहते हैं।

मिट्टीका पिंड चाकपर चढ़ा दिया गया है। देखें उससे क्या बनता है कि मटका। तबतक हम सब भारतीय स्त्री-पुरुषोंको रम्भाबाईके उदाहरणका अनुसरण करनेका परामर्श देते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ४-३-१९११

२८३. तार: टॉल्स्टॉय फार्म और एच० कैलेनबैकको

जोहानिसबर्ग
मार्च ४, १९११

सेवामें
(१) गांधी
लॉली
(२) एच० कैलेनबैक

सबको सूचित करें। स्मट्ससे अत्यन्त सन्तोषजनक तार मिला है।[1] शामको दोनों सोराबजी[2] आ रहे हैं।

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२११) की फोटो-नकलसे।

२८४. तार: गृह-मन्त्रीके निजी सचिवको

जोहानिसबर्ग
मार्च ४, १९११[3]

कृपया जनरल स्मट्सको चार तारीखके तार और उसमें दिये गये आश्वासनोंके लिए धन्यवाद दें। परन्तु वकीलोंकी सलाह है कि जबतक विधेयक विशेष रूपसे उल्लेख न करेगा कि शैक्षणिक परीक्षा पास करके

१. देखिए पृष्ठ ४५७ की पाद-टिप्पणी १।
२. तात्पर्य शायद सोराबजी अडाजानिया और सोराबजी रुस्तमजीसे है।
३. फोटो-नकलमें यह तारीख मार्च ६ है, लेकिन इंडियन ओपिनियनमें मार्च ४ है, जो ठीक है।
४. देखिए अगला शीर्षक।

प्रवेश करनेवाले शिक्षित एशियाई ट्रान्सवाल पंजीयन अधिनियम और फ्री स्टेट एशियाई अध्यादेशसे मुक्त रहेंगे तबतक वे उक्त विशेष कानूनोंके अन्तर्गत निषिद्ध रहेंगे। वकीलकी यह भी सलाह है कि कानूनी अधिवासियोंके ट्रान्सवालसे बाहर रहनेवाले नाबालिग बच्चे और पत्नियाँ सामान्य कानून द्वारा संरक्षित नहीं हैं। यदि जनरल स्मट्स कृपापूर्वक आश्वासन दें कि विधेयकमें परिवर्तन करके अनिश्चितता दूर कर दी जायगी तो मैं सहर्ष समाजको सत्याग्रह बन्द करने और विधेयकको कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करनेकी सलाह दूँगा।

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२१४) की फोटो-नकलसे और १८-३-१९११ के इंडियन ओपिनियन से भी।

३८५. पत्र: ई० एफ० सी० लेनको

जोहानिसबर्ग
मार्च ४, १९११

प्रिय श्री लेन,

मुझे अभी-अभी जो उत्साहवर्धक तार[1] मिला है उसके लिए मेरी ओरसे जनरल स्मट्स तक मेरा धन्यवाद पहुँचानेकी कृपा करें। मैंने गत २ तारीखके अपने पत्रमें कहा था कि इस संघर्षको समाप्त करनेमें सहायक होनेकी मेरी हार्दिक इच्छा है। मैं उसे दोहरानेकी आवश्यकता नहीं समझता। इसलिए मैं इस आश्वासनका स्वागत करता हूँ कि यद्यपि ट्रान्सवालका १९०८का पंजीयन कानून ३६ रद नहीं किया जायेगा फिर भी जो एशियाई शैक्षणिक परीक्षा पास कर लेंगे उनपर वह लागू नहीं किया जायगा।

जाहिर है कि इस महत्त्वपूर्ण मामलेमें मैंने विधेयककी केवल अपनी ही व्याख्यापर भरोसा नहीं रखा है। मुझे अब अपने वकीलकी[2] राय मिल गई है। उसके अनुसार मेरी व्याख्या सर्वथा गलत है और विधेयकका खण्ड १ शिक्षित एशियाइयोंकी कानून ३६ से रक्षा नहीं करता। मेरे सामने जो सम्मति है उसमें स्पष्ट कहा गया है कि

१. इसमें कहा गया था: "... मेरे मतानुसार विधेयकके अन्तर्गत प्रवेश पानेवाले शिक्षित एशियाई पंजीयन कानूनसे बरी रहेंगे और प्रान्तीय सीमाओंसे मुक्त होंगे। केवल अधिकारियों और प्रान्तोंके बन्द [?] निवासियोंके बीच अन्तर करनेके लिए, जो पंजीयन करानेके लिए बाध्य हैं, यह आवश्यक होगा कि उनकी [अधिकारियों] पर कड़ी रखी जाये। लेकिन चूँकि वे प्रवासी शिक्षित व्यक्ति होंगे इसलिए प्रवेश करते समय उनके हस्ताक्षर लेना ही पर्याप्त होगा ...।" यह तार इंडियन ओपिनियनके १८-३-१९११ वाले अंकमें उद्धृत किया गया था।

२. श्री आर० ग्रेगरोवस्की; देखिए "पत्र: एच० एस० एल० पोलकको" पृष्ठ ४६०-६१ और पृष्ठ ४७४।

खण्ड ७ कमसे-कम ऐसी व्यवस्थाके एकदम प्रतिकूल है। इसलिए मेरा निवेदन है कि [प्रवर] समितिमें विधेयकको इस प्रकार संशोधित कर दिया जाये कि यह मुद्दा बिलकुल साफ हो जाये। मुझे विश्वास है कि जनरल स्मट्स मेरी इस बातसे सहमत होंगे कि जहाँतक विधेयकके मर्म और सरकारके इरादेका सम्बन्ध है, इस बार कुछ भी गृहीत अथवा अनिश्चित न छोड़ा जाये।

वकीलकी इस रायसे एक और समस्या उत्पन्न होती है जिसकी मैंने पहले कल्पना नहीं की थी। समस्या यह है कि पंजीकृत एशियाइयोंके जो नाबालिग बच्चे इस समय ट्रान्सवालमें नहीं हैं, उन्हें छोटाभाईके मुकदमेके फैसलेके[1] बावजूद किसी प्रकार संरक्षण नहीं दिया गया है। इस विधेयकसे अधिवासी एशियाइयोंकी पत्नियों और नाबालिग बच्चोंको सामान्यतः कानूनका संरक्षण भी नहीं मिलेगा। इसलिए मुझे आशा है कि विधेयकमें ये मुद्दे [प्रवर] समिति द्वारा पूर्ण रूपसे स्पष्ट कर दिये जायेंगे।

इस पत्रमें मैंने जो प्रश्न उठाये हैं, उनके बारेमें सन्तोषजनक आश्वासन मिलनेपर मैं ट्रान्सवालके भारतीय समाजको सलाह दे सकूँगा कि वह सरकारको औपचारिक रूपसे अपनी स्वीकृति दे दे[2] और तब सत्याग्रह स्वाभाविक रूपसे समाप्त हो जायेगा। हमने जिस आश्वासनकी प्रार्थना की है यदि वह हमें दे दिया गया तो मैं यह आशा भी करता हूँ कि जो लोग इस समय जेलमें हैं वे रिहा कर दिये जायेंगे और जो लोग अपनी आत्माकी आज्ञापर सही या गलत कष्ट-सहन करते रहे हैं दण्डित नहीं किये जायेंगे बल्कि १९०८के कानून ३६के अन्तर्गत प्रत्येक सत्याग्रहीको मिलनेवाले अधिकारोंकी कद्र की जायेगी।

आपका विश्वस्त

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२२७) की फोटो-नकलसे।

३८९. पत्र: एल० डब्ल्यू० रिचको

जोहानिसबर्ग
मार्च ४, १९११

प्रिय श्री रिच,

आशा है कि इस पत्रके साथ ही आपको मेरा पत्र बृहस्पतिवारका लिफाफा[3] भी मिल जायेगा। उस लिफाफेको बन्द कर चुकनेके बाद मैंने स्टार में देखा कि विधेयकका प्रथम वाचन तो किया जा चुका है। इसलिए मैंने शुक्रवारको जनरल स्मट्सके नाम निम्नलिखित तार भेजा:

> कृपया सूचित करें क्या हालमें पेश प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयकके खण्ड एकके अनुसार शैक्षणिक परीक्षा पास कर लेनेवाले एशियाई १९०८के

१. देखिए "छोटाभाईका मुकदमा" पृष्ठ ४३१।
२. देखिए "[illegible]" पृष्ठ ४८३-८४।
३. देखिए "पत्र एल० डब्ल्यू० रिचको" पृष्ठ ४४९-५०।

कानून समितिके अन्तर्गत पंजीयन कराये बिना ट्रान्सवालमें प्रवेश पा सकेंगे? अधिक ब्योरेवार पत्र कल भेजा था। विधेयकका प्रथम वाचन हो चुका है अतः तार द्वारा सूचित करनेकी कृपा करें।[1]

इस सम्बन्धमें उनका जो उत्तर आज मिला उसकी प्रतिलिपि संलग्न है। यह उत्तर अनेक दृष्टियोंसे सन्तोषजनक है। इससे साफ जाहिर हो जाता है कि लन्दनमें आपके कार्य और भारतमें पोलकके कार्यका समस्त साम्राज्य और भारतीय सरकारपर क्या असर हुआ है, और संघ सरकारपर भारत सरकारका कैसा दबाव पड़ा है। परन्तु हमें इस आश्वासनसे सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। हम किसी प्रकारकी कोई गुंजाइश नहीं रहने देना चाहते। इसलिए जिन मुद्दोंका सत्याग्रहियोंपर असर पड़ता है उनके सम्बन्धमें विधेयकमें अब भी क्या परिवर्तन होते हैं इसपर नजर रखना आवश्यक होगा। पोलकका बड़ा आग्रह है कि ग्रेगरोवस्कीके नाम अपने पत्रमें[2] मैंने जो मुद्दे उठाये हैं उनके बारेमें आप श्राइनरसे[3] सलाह करें। मैं उनसे पूर्णतया सहमत हूँ और यह अच्छा ही होगा कि हम उसी तरफके लोगोंकी सम्मतियाँ प्राप्त कर लें। मैं पोलकको लिख रहा हूँ कि वे लॉगिनसे[4] भी परामर्श कर लें। आपने देखा ही होगा कि अगले हफ्ते सोमवारसे[5] विधेयकका द्वितीय वाचन निश्चित किया गया है। इसलिए हमारे सभी मुख्य-मुख्य निवेदनपत्र उससे पहले ही सरकार अथवा संसदके समक्ष पहुँच जाने चाहिए। लगता है कि ट्रान्सवालके प्रश्नपर कोई कठिनाई उपस्थित न होगी इसलिए यदि आप सहमत हों तो मेरा इरादा यहीं बने रहनेका है। पोलक तो डर्बनमें काम करेंगे ही आप विधेयकपर विचार समाप्त होने तक यहीं रहूँ। प्रोफेसर गोखलेने कल निम्नलिखित तार भेजा है:[6]

> नये प्रस्तावोंपर अपने विचार तारसे भेजें। नेटालकी बातको स्थगित करनेकी यहीं व्यवस्था कर रहा हूँ। गोखले।

उनको निम्नलिखित उत्तर भेजा गया है:

> नेटाल-सम्बन्धी आश्वासनके लिए धन्यवाद। नये विधेयकके बारेमें तार बादको।

मैं सोचता हूँ कि इस नये विधेयकपर विचारोंके बारेमें तार भेजनेसे पहले हमें अभी थोड़ी प्रतीक्षा कर लेनी चाहिए। वहाँ आपके काममें खर्च तो होगा ही। मुझे

१. देखिए "तार : जनरल स्मट्सके निजी सचिवको" पृष्ठ ५४१।

२. देखिए पाद-टिप्पणी १, पृष्ठ ५४०।

३. यह पत्र ३-३-१९११ को लिखा गया था। देखिए पृष्ठ ४४४-४५।

४. विलियम फिलिप श्राइनर (१८५७-१९१९); राजनीतिज्ञ और वकील। सन् १९१४ में वे दक्षिण आफ्रिका संघके हाई कमिश्नर थे; रोड्सके १८९३ के द्वितीय मन्त्रिमण्डलमें एटर्नी जनरल और दो बार जनरल नियुक्त हुए। १८९८ से ९९ तक केप कालोनीके प्रधानमन्त्री रहे।

५. केपके एक वकील।

६. मार्च १३, १९११।

७. यह तार मार्च ८, १९११ को प्राप्त हुआ था।

आशा है कि आन्दोलन चलानेके लिए केपके भारतीय धनकी व्यवस्था कर देंगे। उन्हें यह आशा कदापि नहीं रखनी चाहिए कि केप प्रायद्वीपमें दशा सुधारनेके लिए सत्याग्रह-कोषका उपयोग किया जायेगा और न हम केवल उनके वादोंपर निर्भर रह सकते हैं। यदि वे यह नहीं चाहते कि आप डीनरकी राय लें तो मुझे लगता है कि हमें खेदपूर्वक उसे छोड़ देना चाहिए। किन्तु यदि वे चाहते हों तो उन्हें इसके लिए कुछ पैसा देना होगा।

आपका हृदयसे

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२११) की फोटो-नकलसे।

३८७. पत्र एच० एस० एल० पोलकको

जोहानिसबर्ग
मार्च ४, १९११

प्रिय श्री पोलक,

रिचके नाम मेरे पत्रकी[1] प्रतिलिपिसे आपको अधिकांशतः यह जानकारी मिल जायेगी जो मैं आपको भी देना चाहता हूँ। कल मैंने इंडियन ओपिनियन के लिए बहुत सारी सामग्रीका एक पुलिन्दा सीधे वेस्टको भेजा है[2] क्योंकि मैंने सोचा कि आप सोमवारको डर्बनमें होंगे। मैंने उसे आपके पास इसलिए नहीं भेजा कि उसका नये विधेयक-सम्बन्धी आन्दोलनसे कोई वास्ता नहीं है और मैं नहीं चाहता आपको आन्दोलनपर एकाग्र मनसे सोचनेमें बाधा पड़े। मैं आपको समाचारपत्रोंकी कुछ और सम्बन्धित कतरनें भेज रहा हूँ। प्रिटोरिया न्यूज[3] की कतरन संक्षिप्त कर दी जानी चाहिए, और डेली मेल[4] की भी। खर्चके बारेमें मैंने रिचको जो-कुछ लिखा है, वही बात आप जो काम कर रहे हैं उसमें होनेवाले खर्चपर भी लागू होती है। इस खास मामलेमें बिलकुल स्पष्ट रहना चाहिए। यदि वे लोग कुछ खर्च न करना चाहें तब भी जहाँतक वे हमारी सलाह मानेंगे हम लड़ाई जारी रखेंगे। परन्तु उस कामके लिए सत्याग्रह-कोषके पैसोंका उपयोग करना असम्भव है।

हृदयसे आपका

[पुनश्च]

जब मैं इतना लिख चुका तब मुझे वेमरोमस्कीकी सम्मति मिली। जैसा कि आप देखेंगे यह विधेयकके सर्वथा विरुद्ध है। उनकी सम्मतिके कुछ मुद्दोंसे मैं सहमत नहीं

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. देखिए "पत्र ए० एच० वेस्टको", पृष्ठ ४५१।

३ और ४. ये ११-३-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत किया गया था।

५. देखिए "पत्र ई० एफ० सी० लेनको", पृष्ठ ४५०-५८ और "पत्र जे० जे० डोकको", पृष्ठ ४६७-६८। विमरोसरकी सम्मति पूरा पाठ उपलब्ध नहीं है।

हूँ। परन्तु हमें इस सम्मतिको इस प्रकार ग्रहण करना चाहिए, मानो यह सभी बातोंमें सही हो; क्योंकि यह मामला इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसे किसी भी दृष्टिसे अनिश्चित नहीं छोड़ा जा सकता।

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२२८) की फोटो-नकलसे।

३८८. पत्र : हरिलाल गांधीको

फाल्गुन सुदी ५ [मार्च ५, १९११][1]

चि० हरिलाल,

जब तुम्हारी चिट्ठी मिलनेकी कोई आशा नहीं थी, यह मिली। तुम्हारी चिट्ठी आती है तभी हम सबको आश्चर्य होता है। साधारणतया तुम्हारी चिट्ठी न आनेकी ही उम्मीद रहती है।

बा के बारेमें तुमने जो लिखा है, वह ठीक नहीं है। बा ने आना तय किया होता तो मेरी शर्तसे किस लिए रुकती। और मेरी शर्त निरर्थक थी। बा अगर वापस आना चाहती तो चाहे जिससे पैसा लेकर आ सकती थी। सच तो यह है कि बा को अपने मनकी खबर नहीं थी। फिर भी तुम बा की वकालत करते रहते हो, इसमें मुझे आपत्ति नहीं है।

तुम्हारा अंकगणित और भाषाका ज्ञान कम है, इसमें मुझ शर्मकी कोई बात नहीं दिखाई देती। मैंने यदि तुम्हें इन्हें [अच्छी तरह] सीखनेका अवसर दिया होता तो तुम सीख लेते। बच्चे जो व्यवहारनीति जानते हैं सो शिक्षाका प्रताप नहीं है, भाण्डकी अनुपम जीवन-पद्धतिका प्रभाव है। लोगोंपर आधुनिक शिक्षाके हमले होते रहते हैं, उनमें दुराचार दिखाई देता है और स्वार्थबुद्धि बढ़ती जाती है। फिर भी तुम जो सत्प्रवृत्ति मितव्ययिता आदि देखते हो, उससे हमारे पूर्वजोंका पुण्य प्रकट होता है। मैं इतना तुम्हें धीरज देनेके लिए और इस इरादेसे लिखता हूँ कि तुम अधिक गहराईसे विचार करो। ऊपर-ऊपरसे देखकर कार्य-कारणका मेल बैठा लेना ठीक नहीं है।

यदि उसमें स्पष्ट रूपसे अनीति न हो तो मैं तुम्हारी पढ़ाई या अन्य किसी मनोरथके बीचमें नहीं आऊँगा। इसलिए तुम निश्चिन्त होकर, तुम्हें जबतक रुचे, पढ़ते रहो। भले ही मुझे तुम्हारे कुछ विचार नापसन्द हैं, किन्तु तुम्हारे आचरणके बारेमें मुझे शंका नहीं है, इसलिए मैं बेफिक्र रहता हूँ।

१. पत्रके अन्तिम वाक्यसे मालूम होता है कि यह मसाली-मलिकन्दर विधेयकके दूसरे वाचन (१३-३-१९११) से पहले लिखा गया था। इस तारीखसे पहले पड़नेवाली फाल्गुन सुदी ५ को मार्चकी भी ५ तारीख थी।

यह पत्र लिखते समय श्री सोराबजी मेरे सामने बैठे हैं। दोस्त श्री फार्मर आये हैं।

अभीतक विधेयकका दूसरा वाचन नहीं हुआ।

बापूके आशीर्वाद

नवजीवन ट्रस्टके सौजन्यसे प्राप्त मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ११३) की फोटो-नकलसे।

३८९. पत्र: एच० एस० एल० पोलकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ६, १९११

प्रिय श्री पोलक,

आपके दो पत्र मिले। मुझे खुशी है कि आपने हमारे डर्बनके मित्रोंको अच्छी तरह फटकार दिया। मैं जानता था कि आप ऐसा करेंगे। कमसे-कम आपकी इस फटकारका वे आदर करते हैं।

मेरी रायमें किसी भी शिक्षित व्यक्तिको प्रवासी अधिकारी द्वारा कहीं भी रोका-टोका जा सकता है, संघ राज्यकी सीमा तक में। यदि ऐसी दशा है तो ट्रान्सवालसे नेटालमें प्रवेश करनेपर किसी शिक्षित भारतीयको क्यों नहीं टोका जा सकता? यदि आप कहते हैं कि उसे टोका नहीं जा सकता तब तो ऐसे भारतीयको ट्रान्सवालकी ओरसे नेटालकी सीमामें प्रवेश करनेसे भी नहीं रोका जा सकता और उस दशामें विधेयककी धारा ७ के बावजूद प्रान्तीय प्रतिबन्ध व्यर्थ हो जायेगा। इस समय ऐसा कोई कानून विद्यमान नहीं है जो नेटालमें ऐसे व्यक्तियोंका प्रवेश रोकता हो। जोसेफके[1] नेटालकी ओरसे प्रवेश करनेके बारेमें आपका कहना ठीक जान पड़ता है। यह विश्वास करना कठिन लगता है कि पत्नियों और नाबालिग बच्चोंकी बात जान बूझकर छोड़ दी गई है और यदि ऐसा है तो हमारे लिए इस विधेयककी धज्जियाँ उड़ा देना सम्भव होना चाहिए। मैं सोचता हूँ कि हमें नेटाल और केपकी तरह शैक्षणिक कसौटीका तीव्र विरोध करना चाहिए और इस सम्बन्धमें हमें अन्तर प्रान्तीय आवा-गमनका प्रश्न उठाना चाहिए। यदि स्मट्स सार्वजनिक रूपसे आश्वासन दे दें कि अन्तर शैक्षणिक कसौटी प्रान्तीय आवागमनके लिए होगी तो यह मानते हुए कि सीमाके अन्दर रोकटोक की जा सकती है हम आपत्ति वापस ले लेंगे अन्यथा आग्रहपूर्वक आपत्ति उठाते रहना चाहिए। अधिवासके बारेमें आंगलिया जो प्रश्न उठा रहे हैं, वह बुरा नहीं है। मैं समझता हूँ कि किसी आदमीके लिए कानूनमें गुंजाइश नहीं है दोहरे अधिवासका दावा करनेकी। अबतक ट्रान्सवालके निवासियोंने अधिवासके जो प्रमाणपत्र पेश किये हैं

१. जोसेफ रायप्पन; देखिए, खण्ड ८ पृष्ठ २५७।

वे ठीक मान गये हैं। इसलिए मुझे इस मामलेमें सदा ही एक कानूनी कठिनाईकी आशंका रही है। और पूरी सम्भावना है कि जो लोग ट्रान्सवालमें पंजीकृत हुए हैं उनके बारेमें भविष्यमें ऐसा माना जाये कि वे नेटालमें अधिवासका अधिकार खो चुके हैं। नेटाल-अधिवासका प्रमाणपत्र उपस्थित किया जाना अधिकसे-अधिक इस बातका प्रमाण है कि सम्बन्धित व्यक्तिका नेटाल छोड़नेके दिन तक वहाँ अधिवास था। किन्तु यह इस बातका सबूत नहीं है कि नेटालमें पुनः प्रवेश करते समय अधिवासका अधिकार ज्यों-का-त्यों कायम है। मेरा सुझाव है कि ट्रान्सवालके उन भारतीयोंको जो पंजीकृत हैं परन्तु जो नेटालमें अपना अधिवास कायम रखना चाहते हैं और जिनके पास तत्सम्बन्धी प्रमाणपत्र भी हैं फिलहाल नेटालमें ही बने रहना चाहिए। यदि वे नेटालमें न हों तो उन्हें ट्रान्सवालमें रुके रहनेके बजाय नेटाल वापस चला जाना चाहिए, क्योंकि ट्रान्सवालमें अधिवासका प्रश्न उठाया नहीं जा सकता और जो आदमी नया विधेयक लागू होनेके समय नेटालमें हो उसपर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। केपके भारतीयोंके बारेमें भी ये ही बातें लागू होती हैं।

विधेयकपर मैं कल एक अग्रलेख भेजनेकी आशा रखता हूँ।[1] यह फीनिक्स भेजा जायेगा और एक प्रति डर्बनमें आपके पास। अधिक जानकारीके लिए रिचके नाम लिखा गया मेरा संलग्न पत्र[2] देखिए।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी प्रति (एस० एन० ५२१५) की फोटो-नकलसे।

३९० पत्र : मॉड पोलकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ६, १९११

प्रिय मॉड

संलग्न कागजात अपनी कहानी आप कहते हैं। विधेयकका पूरा पाठ *इंडियन ओपिनियन* में मिल जायेगा।[3] मैं जानता हूँ कि तुम्हें जो विधेयकका अध्ययन करना पड़ रहा है यह कोई मुखकर काम नहीं है। किन्तु मेरा सुझाव है कि जबतक मैं तार देकर कुछ सूचित न करूँ तबतक तुम इस विधेयकके बारेमें कुछ भी न लिखो। विधेयकका निश्चित अर्थ मेरे निकट स्पष्ट नहीं है और लगता है ऐसा कोई भी नहीं है जिसे शंका न हो। स्वाभाविक है कि जबतक अर्थ निश्चित नहीं होता तबतक हमारी सभी धारणाएँ विधेयकके विरोधमें ही हों। यहाँ जब आन्दोलन अवश्यम्भावी

1. यहाँ नहीं दिया गया; देखिए "पत्र: एच० एस० एल० पोलकको" पृष्ठ ४४३-४४।
2. देखिए "पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको" पृष्ठ ४४५-४६।
3. इंडियन ओपिनियनके ४-३-१९११ के अंकमें।

हो जायगा तब सरकारको उसका कोई-न-कोई निश्चित अर्थ सामने रखना ही पड़ेगा। और तभी मैं तुम्हारे पास उसपर अपनी आपत्तियाँ निश्चित रूपमें भेजूँगा। तबतक तुम पूछ-ताछ करनेवालोंको केवल साधारण जानकारी-भर देती रह सकती हो। मैंने अभीतक तुम्हें जानबूझकर तारसे कोई खबर नहीं दी क्योंकि हम इस समय वहाँ कोई आन्दोलन नहीं चाहते। भारतसे अनेक लोगोंने चिन्ता प्रकट करते हुए तार द्वारा पूछताछ की है। किन्तु मैंने इतना ही उत्तर दिया[1] कि इसपर बादमें तार दूँगा। अभी तो इतना ही कहना चाहिए कि सत्याग्रहियोंको किसी भी विधेयकसे तबतक सन्तोष नहीं होगा जबतक दो माँगें बिना किसी शर्तके स्वीकार नहीं की जातीं — एक तो यह कि १९०७ का कानून २ रद किया जाये और दूसरी यह कि शैक्षणिक कसौटीपर खरे उतरनेवाले भारतीयोंको पंजीयनके कानूनोंसे मुक्त रखकर प्रवेश करने दिया जाये। यह विधेयक १९०७ के एशियाई [कानून] २ को जितने स्पष्ट रूपसे रद करता है यदि वह दूसरी बातको भी उतने ही स्पष्ट रूपमें मान ले तो फिर चाहे अन्य बातोंमें वह कितना ही बुरा क्यों न हो हम अपने हथियार रख देंगे। इसका यह अर्थ नहीं कि हम यहाँ या वहाँकी सरकारको अपनी अन्य कठिनाइयोंके बारेमें परेशान करना बन्द कर देंगे परन्तु हम उनके कारण सत्याग्रह शुरू नहीं करेंगे। फिलहाल हमारी कोशिश भी यही है कि हम अपना आन्दोलन इन्हें हदमें चलाते रहें। याचिकाएँ भेजनेके आन्दोलनको हम वैधानिक आन्दोलन कहते हैं सो इसलिए नहीं कि इस तरह सत्याग्रहसे उसका कोई अन्तर सूचित होता हो सत्याग्रह भी उतना ही वैधानिक है जितना कि केवल याचिकाएँ भेजना। यह कैसा शुभ संयोग है कि श्री रिच ऐन मौकेपर वहाँ हैं। मैं समझता हूँ कि वे स्वयं इस बातसे सहमत होंगे कि इस समय उनका वहाँ रहना यहाँ रहनेकी अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यक है। तुम निःसंकोच अपनी यह सम्मति प्रकट कर सकती हो कि केप और नेटालके लिए तो यह विधेयक इससे ज्यादा बुरा है। वहाँ भारतीयोंके लिए सैद्धान्तिक समानताका प्रश्न उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि वह तो वहाँ प्राप्त ही है। इसलिए इस विधेयकके अन्तर्गत व्यावहारिक अधिकारोंका छीन लिया जाना एक बहुत ही गम्भीर और वास्तविक शिकायतकी बात है उसका निराकरण आवश्यक है और जैसा कि तुमने देखा होगा केप और नेटालमें हलचल शुरू हो गई है। मैं यही उम्मीद करता हूँ कि यह हलचल कमसे-कम इतनी तो होगी ही कि उसका सरकारपर असर पड़ सके। श्री रिच और श्री पोलक उक्त दोनों स्थानोंमें हैं। यह देखकर मैं बिलकुल बेफिक्र हूँ। श्री रिच-वाला मानपत्र[2] मिलनेपर मैं तुम्हारे सुझावके मुताबिक वस्तुतः लकड़ीका एक फ्रेम खरीद लूँगा और मुख्यकी पर्ची तुम्हारे पास भेज दूँगा तथा मढ़ा हुआ मानपत्र उनको भेंट कर दूँगा। इस बार मैं समितिके लिए १५ पौंडके बजाय १८ पौंड भेज रहा हूँ।

१. देखिए "पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको", पृष्ठ ५५१। श्री गोपालकृष्ण गोखलेको भेजा गया तार उसमें उद्धृत किया गया है।

२. दक्षिण आफ्रिकाके लिए लगन पूर्वक सेवा करनेके लिए श्री रिचको यह मानपत्र ब्रिटिश भारतीय और अंग्रेज समर्थकोंने भेंट किया था। यह १८-३-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत किया गया था।

चाहता हूँ कि श्री लेन श्री मेरीमैनके[1] साथ पत्र-व्यवहार कर रहे हैं। स्मट्स विधेयकका जो अर्थ लगाते हैं, उसे स्पष्ट करनेकी दृष्टिसे यदि वे विधेयकमें संशोधन करनेपर राजी न हों तो वैसी दशामें क्या आप केप टाउनमें मेरी उपस्थितिकी कोई जरूरत समझते हैं? अगर आप जरूरत समझें तो तार कर दें। जबतक नितान्त आवश्यक न हो मैं यात्रा नहीं करना चाहूँगा। पोर्ट एलिजाबेथ और किम्बर्लेसे निवेदनपत्र[2] भेज जाने चाहिए या आपको अथवा लीगको[3] उनकी ओरसे प्रतिवेदनका अधिकार मिलना चाहिए।

क्या आपने श्री कोहेनको श्रीमती रिचके पास छोड़ दिया था? आशा है आप कुमारी पोलकको जो भी आवश्यक समझें लिखते रहेंगे। उसको लिखे पत्रकी प्रतिलिपि[4] संलग्न है।

आपका शुभचिन्तक

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२१९) की फोटो-नकलसे।

३९३. तार: अब्दुल कादिरको[5]

जोहानिसबर्ग
मार्च ७, १९११

सेवामें
अब्दुल कादिर[6]
वेस्ट स्ट्रीट
डर्बन

स्वीकार कुछ नहीं किया। कुछ स्वीकार करना मेरे अधिकारमें नहीं। नेटालकी मार्फत कड़ा विरोध करनेकी सलाह पहले ही दे चुका हूँ।[7] मर्क्युरी

१. जान जेवियर मेरीमैन; देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ५०२।

२. जान पड़ता है, इन बस्तियोंसे कोई प्रतिवेदन नहीं भेजा गया। तथापि, पोर्ट एलिजाबेथके ब्रिटिश भारतीय संघ और किम्बर्लेके भारतीय राजनीतिक संघने केप टाउनमें मार्च १९, १९११ को होनेवाली ब्रिटिश भारतीयोंकी आम सभाको सन्देश भेजकर अपनी सहानुभूति और समर्थन प्रकट किया था।

३. ब्रिटिश इंडिया लीग; उस समय केप टाउनमें दो भारतीय संगठन थे — ब्रिटिश इंडिया लीग और साउथ आफ्रिकन ब्रिटिश इंडियन कौंसिल। गांधीजी और रिचके प्रयत्नोंसे ये दोनों संगठन मिल गये और इस मिले-जुले संगठनका नाम केप ब्रिटिश इंडियन यूनियन रखा गया।

४. देखिए "पत्र: मॉड पोलकको", पृष्ठ ४९३-९५।

५. यह अब्दुल कादिरके द्वारा उसी दिन भेजे गये निम्न तारके उत्तरमें भेजा था: "प्रवासी विधेयक स्वीकार्य नहीं है। मालूम हुआ कि आप कानूनको मंजूरीकी बात मानते हैं। यदि आप मानेंगे तो पूरे समाजको दुःख होगा। मेहनत और पैसे बरबाद, जबकि आप कानूनके पीछे पड़ रहे हैं। इस तरह तो सत्याग्रह ही नाश। अन्तिम मंजूरी देनेमें जल्दी न करें। उत्तर दें।" (पृष्ठ ५१४)।

६. एम० अब्दुल कादिर; देखिए खण्ड ९, पृष्ठ २८।

७. देखिए "तार: आदम गुलको", पृष्ठ ४४८; "पत्र: एम० अब्दुल कादिरको", पृष्ठ ४४९ और "पत्र: एच० एस० एल० पोलकको", पृष्ठ ४४९-५०।

करता हूँ कि श्री जोसफ श्री मेरीमैनके[1] साथ पत्र-व्यवहार कर रहे हैं। स्मट्स विधेयकका जो अर्थ लगाते हैं उसे स्पष्ट करनेकी दृष्टिसे यदि वे विधेयकमें संशोधन करनेपर राजी न हों तो वैसी दशामें क्या आप केप टाउनमें मेरी उपस्थितिकी कोई जरूरत समझते हैं? अगर आप जरूरत समझें तो तार कर दें। जबतक नितान्त आवश्यक न हो मैं जाना नहीं चाहता। पोर्ट एलिजाबेथ और किम्बर्लेसे निवेदनपत्र[2] भेजे जाने चाहिए या आपको अथवा लीगको[3] उनकी ओरसे प्रतिवेदनका अधिकार मिलना चाहिए।

क्या आपने श्री कोहेनको श्रीमती रिचके पास छोड़ दिया था? आशा है, आप वहाँसे मॉडको भी आवश्यक समझें लिखते रहेंगे। उसको लिखे पत्रकी प्रतिलिपि[4] संलग्न है।

आपका हृदयसे

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२१९) की फोटो-नकलसे।

३९३. तार : अब्दुल कादिरको[5]

जोहानिसबर्ग
मार्च ७, १९११

सेवामें
अब्दुल कादिर[6]
वे स्ट्रीट
डर्बन

स्वीकार कुछ नहीं किया। कुछ स्वीकार करना मेरे अधिकारमें नहीं। नेटालकी मार्फत कड़ा विरोध करनेकी सलाह पहले ही दे चुका हूँ। मर्क्युरी

1. जान वेब्स्टर मेरीमैन; देखिए खण्ड ९, पृष्ठ २०२।
2. जान पड़ता है इन व्यक्तियोंसे कोई प्रतिवेदन नहीं भेजा गया। तथापि, पोर्ट एलिजाबेथके ब्रिटिश भारतीय संघ और किम्बर्लेके भारतीय राजनीतिक संघने केप टाउनसे मार्च १८, १९११ को तारमें ब्रिटिश भारतीयोंकी आम सभाको सन्देश भेजकर अपनी सहानुभूति और समर्थन प्रकट किया था।
3. ब्रिटिश इंडिया लीग; इस समय केप टाउनमें दो प्रतिद्वन्द्वी संगठन थे — ब्रिटिश इंडिया लीग और साउथ आफ्रिकन ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन। गांधीजी और रिचके प्रयत्नोंसे ये दोनों संगठन मिल गये और इस मिले-जुले संगठनका नाम केप ब्रिटिश इंडियन यूनियन रखा गया।
4. देखिए "पत्र : मॉड पोलकको", पृष्ठ ४९३-९५।
5. यह अब्दुल कादिरके द्वारा उसी दिन भेजे गये निम्न तारके उत्तरमें भेजा था: "प्रवासी विधेयक दुर्भाग्यपूर्ण कानून है। मालूम हुआ कि आप कानूनकी मंजूरीकी बात मानते हैं। यदि आप मानेंगे तो पूरे समाजको दुःख होगा। नेटाल और केपका अधिकार छोड़कर आप समाजके पीछे भाग रहे हैं। कृपया सावधान हो जायें। अन्तिम मसविदा दुबारा गलती न करें। उत्तर दें।" (एस० एन० ५२२४)।
6. एम० सी० अब्दुल कादिर; देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ५८।
7. देखिए "तार : [illegible] गुलको" पृष्ठ ४४८ तथा "तार : अब्दुल हमीद गुलको" पृष्ठ ४४९ और "पत्र : एच० एस० एल० पोलकको" पृष्ठ ४९४-५।

सर डेविड हंटर अथवा जिस किसी सज्जनके पास चाहें भेज सकते हैं और यह भी कि वे [श्री रिच] आवश्यक समझें तभी यह याचिका पेश की जाये।[1] सीनेटके लिए मैं अभी कुछ नहीं भेज रहा हूँ। क्योंकि विधेयकके[2] पेश होनेमें अभी अधिक नहीं तो एक सप्ताह लग ही जायेगा। इसलिए सम्भव है, सीनेटके समक्ष भेजी जानेवाली याचिकामें परिवर्तन करना पड़े। अब्दुल कादिर और मैंने एक-दूसरेको जो तार भेजे थे उनकी प्रतियाँ भेज रहा हूँ।[3]

आपका हृदयसे

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२४६) की फोटो-नकलसे।

३९६. पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ७, १९११

प्रिय रिच,

जितनी जानकारी मेरे पास है वह सभी पोलकको लिखे पत्रसे[4] आपको मिल जायेगी। मैं ब्रिटिश भारतीय संघकी ओरसे इसी समय तार[5] द्वारा आपके लिए अधिकारपत्र भेज रहा हूँ। ट्रान्सवालके मामलेमें आप काम कर रहे हैं यह सूचित करते हुए एक तार स्मट्सको भी दिया जा रहा है।[6] पोलकसे अभी-अभी टेलीफोनपर बात की है। आपको उनका भी एक तार मिलेगा। मैं नेटालकी याचिकाके बारेमें कौन-सा मार्ग अपनाना उचित मानता हूँ आप इससे समझ लीजिए। जो मुद्दे उठाये गये हैं यदि जनरल स्मट्स उन्हें किसी भी रूपमें मान लेते हैं तो हम याचिका नहीं भेजना चाहेंगे। यदि [प्रवर] समिति द्वारा इसपर विचार करते समय वे लिखित वचन दे देते हैं तो संसदके समक्ष याचिका पेश करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यदि मैं आपकी जगह होता तो जनरल स्मट्ससे यह भी पूछ लेता कि वे याचिकाका पेश किया जाना ठीक समझते हैं या नहीं, अलबत्ता अगर वे सुनने-समझनेके लिए तैयार हों जैसा कि लगता है वे हैं। नेटालके तारका[7] उन्होंने यह उत्तर दिया है कि जो

१. याचिकापर ९-३-१९११ की तारीख पड़ी थी, किन्तु उसे १५-३-१९११ को विधान सभामें पेश किया गया था।

२. मूलमें यहाँ यह शब्द छूट गया है।

३. देखिए "तार : अब्दुल कादिरको", पृष्ठ ४८९-९० और पृष्ठ ४९६, पाद-टिप्पणी ५।

४. देखिए पिछला शीर्षक।

५. देखिए अगला शीर्षक।

६. देखिए "तार : जनरल स्मट्सके निजी सचिवको", पृष्ठ ४०१।

७. देखिए "पत्र : एच० एस० एल० पोलकको", पृष्ठ ४८०-८१; शीर्षक साथ संलग्न पत्रक और उसकी पाद-टिप्पणी भी।

कमसे-कम वहाँतक शिक्षित भारतीयोंके दर्जेका सम्बन्ध है आवश्यक संशोधन करानेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। कारण मेरे एक प्रश्नके[1] उत्तरमें जनरल स्मट्ससे गत शनिवारको एक तार प्राप्त हुआ है, जिसमें उन्होंने कहा है कि शिक्षित एशियाइयोंपर ट्रान्सवाल अथवा ऑरेंज फ्री स्टेटके पंजीयन कानून लागू नहीं किये जायेंगे।

इसलिए मैंने ऊपर जो मुद्दे उठाये हैं उनके अनुसार यदि विधेयक प्रवर समितिमें संशोधित हो जाता है तो सत्याग्रह तुरन्त समाप्त हो सकता है और अन्त:करणकी प्रेरणासे आपत्ति करनेवालोंको और अधिक कष्ट सहनेसे बचाया जा सकता है।

आपका सच्चा

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२४४) की फोटो-नकलसे।

३९५. पत्र: एच० एस० एल० पोलकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ७, १९११

प्रिय श्री पोलक,

स्मट्ससे प्राप्त जिस तारके बारेमें आपसे टेलीफोनपर बात की थी वह इस प्रकार है:

७ मार्च। आपके २ और ४ मार्चके पत्र[2] और ४[3] मार्चका तार, सभी यथासमय मिले। आपके वकीलने जो कानूनी सवाल उठाये हैं उनपर अभी कानूनी सलाहकारोंके साथ विचार कर रहे हैं।

मैंने वेस्टके पास जो सामग्री सीधे भेजी है उसकी प्रतियाँ[4] यहाँ संलग्न हैं। यदि आप कोई परिवर्तन सुझाना चाहें तो या तो विशेष सन्देशवाहक भेजें या फीनिक्स चले जायें अथवा जो उचित समझें करें। और यदि आप किसी चीजका प्रकाशन रोकना चाहें तो इस बारेमें भी वेस्टको सूचित कर दें। विधानसभाको दी जानेवाली याचिका और उसकी प्रतिलिपि[5] भी संलग्न कर रहा हूँ। इसकी एक-एक प्रति रिच और वेस्टके पास भी भेजी गई है। आपकी प्रतिपर चालोंसे हस्ताक्षर हो जानेके बाद उसे कार्यवाहक अधिकारियों द्वारा लिखे गये एक आवरक-पत्रके साथ रिचके पास भेज दिया जाये। आवरक पत्रमें रिचको यह अधिकार लिख भेजा जाये कि वे याचिका

१. देखिए "तार: जनरल स्मट्सके निजी सचिवको", पृष्ठ ४५१।
२. देखिए "पत्र: ई० एफ० सी० लेनको", पृष्ठ ४५०-५८।
३. देखिए "पत्र: ई० एफ० सी० लेनको", पृष्ठ ४५३-५४।
४. देखिए "पत्र: ई० एफ० सी० लेनको", पृष्ठ ४५७-५८।
५. दफ्तरी नकलमें ६ मार्चकी तिथि है; देखिए "तार: गृह-मन्त्रीके निजी सचिवको", पृष्ठ ४५९-६०।
६. उपलब्ध नहीं है।
७. देखिए "मसविदा: प्रार्थनापत्र: विधानसभाको", पृष्ठ ४०५-०६।

३९८. तार : गृह-मन्त्रीके निजी सचिवको

जोहानिसबर्ग
मार्च ८, १९११

संघने दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति लन्दनके मन्त्री बैरिस्टर श्री एल० डब्ल्यू० रिचको, जो अभी-अभी लौटे हैं, प्रवासी विधेयकके बारेमें ट्रान्सवालके भारतीय समाजका प्रतिनिधित्व करने और जनरल स्मट्ससे भेंट करनेके लिए नियुक्त किया है।[1]

काछलिया
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२५७) की फोटो-नकलसे।

३९९. तार : एल० डब्ल्यू० रिचको

जोहानिसबर्ग
मार्च ८, १९११

अपना निजी खर्च मत माँगिए। उसका प्रबन्ध यहाँसे होगा। अपनी आवश्यकताएँ मुझे बताइए। वकीलकी राय और अपनेसे सम्बन्धित अन्य बातोंका खर्च केप और नेटालको स्वयं उठाना चाहिए। आशा है आप ग्रीनरसे अविलम्ब मिलेंगे। ट्रान्सवाल और नेटालके सम्बन्धमें स्मट्ससे भेंट लेनेका प्रयत्न कीजिए। आप केपको धन नहीं उनकी सहायताका वचन दें। यदि केपके लोग पैसेकी व्यवस्था नहीं करते तो आप ग्रीनर या अन्य किसीकी कानूनी सलाह प्राप्त नहीं कर सकते। अधिकारियोंसे सम्पर्क स्थापित करनेमें कुछ भी समय जाया न करें। कल स्मट्सने तार दिया है[2] कि वे अपने कानूनी सलाहकारोंसे मेरे द्वारा उठाये गये कानूनी मुद्दोंके बारेमें सलाह कर रहे हैं। श्री काछलियाने आपके प्राधिकारके बारेमें स्मट्सको तार भेजा है।[3]

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी (एस० एन० ५२४०) फोटो-नकलसे।

१. जनरल स्मट्सने रिचको ब्रिटिश भारतीय संघका प्रतिनिधि मानना स्वीकार कर लिया। देखिए "तार : एल० डब्ल्यू० रिचको" पृष्ठ ४००।

२. देखिए "तार : ई० एफ० सी० लेनको" पृष्ठ ४९८ तथा "पत्र : जे० जे० डोकको" पृष्ठ ४०१।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

भोग अधिवासी हैं उनके अधिकारोंपर विधेयकका कोई असर नहीं पड़ेगा और अधिवासियोंके अधिकारोंसे सम्बन्धित एशियाई कानून बरकरार रहेंगे। यह तार सन्तोषजनक है क्योंकि इससे स्मट्स बात सुननेकी मन:स्थितिमें जान पड़ते हैं। परन्तु सम्भवतः उन्हें कुछ भ्रम है, और वे समझते हैं कि एशियाइयोंके निवास सम्बन्धी हकोंके बारेमें नेटालमें भी कुछ कानून है। नेटाल और केप दोनोंके बारेमें यह धारणा निःसन्देह गलत है। इसलिए मेरा सुझाव है कि स्मट्सका रुख बिलकुल ठीक हो तो भी आपको चाहिए कि आप विधानसभा या सीनेटमें मित्रोंसे अथवा जिन्हें आप मित्र समझें उनसे मिलें और जो-कुछ हो रहा है उसका सार उन्हें बता दें ताकि वे तैयार रहें। मुझे आशा है कि आप तारका खुलकर उपयोग करेंगे और जो कुछ होता है उसकी मुझे प्रतिदिन सूचना देंगे। आपकी निगाहमें जो समाचार आदि आयें कृपया उनकी कतरनें मेरे पास भेजते रहें और आप जो-कुछ भी प्रकाशित कराना चाहें उसे सीधा पोलक या वेस्टके पास फीनिक्स भेजें।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२४८) की फोटो-नकलसे।

३९७. तार: एल० डब्ल्यू० रिचको

जोहानिसबर्ग
मार्च ७, १९११

सेवामें
रिच
मार्फत आरम बुक
८, क्लूफ स्ट्रीट
केप टाउन

संघका अनुरोध है कि आप जहाँतक ट्रान्सवालका सम्बन्ध है, संघ-संसदमें पेश प्रवासी विधेयकके सम्बन्धमें साधिकार कार्यवाही करें। मन्त्रियों, अधिकारियों और संसद-सदस्योंसे भेंट करनेके लिए यह तार आपका अधिकारपत्र होगा।

काछलिया
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२४२) की फोटो-नकलसे।

३९८. तार : गृह-मन्त्रीके निजी सचिवको

जोहानिसबर्ग
मार्च ८, १९११

संघने दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति लन्दनके मन्त्री बैरिस्टर श्री एल० डब्ल्यू० रिचको, जो अभी-अभी लौटे हैं, प्रवासी विधेयकके बारेमें ट्रान्सवालके भारतीय समाजका प्रतिनिधित्व करने और जनरल स्मट्ससे भेंट करनेके लिए नियुक्त किया है।[1]

काछलिया
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२५७) की फोटो-नकलसे।

३९९. तार : एल० डब्ल्यू० रिचको

जोहानिसबर्ग
मार्च ८, १९११

अपना निजी खर्च मत माँगिए। उसका प्रबन्ध यहाँसे होगा। अपनी आवश्यकताएँ मुझे बताइए। कमिश्नरकी राय और अपनेसे सम्बन्धित अन्य बातोंका खर्च केप और नेटालको स्वयं उठाना चाहिए। आशा है, आप ग्रीनरसे अविलम्ब मिलेंगे। ट्रान्सवाल और नेटालके सम्बन्धमें स्मट्ससे भेंट लेनेका प्रयत्न कीजिए। आप केपको धन नहीं उनकी सहायताका वचन दें। यदि केपके लोग पैसेकी व्यवस्था नहीं करते तो आप ग्रीनर या अन्य किसीकी कानूनी सलाह प्राप्त नहीं कर सकते। अधिकारियोंसे सम्पर्क स्थापित करनेमें कुछ भी समय जाया न करें। कल स्मट्सने तार दिया है कि वे अपने कानूनी सलाहकारोंसे मेरे द्वारा उठाये गये कानूनी मुद्दोंके बारेमें सलाह कर रहे हैं। श्री काछलियाने आपके प्राधिकारके बारेमें स्मट्सको तार भेजा है।[3]

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी (एस० एन० ५२४९) फोटो-नकलसे।

१. जनरल स्मट्सने रिचको ब्रिटिश भारतीय संघका प्रतिनिधि माननेसे इनकार कर दिया। देखिए "तार : एल० डब्ल्यू० रिचको" पृष्ठ ४७०।

२. देखिए "एच० एस० एल० पोलकको" पृष्ठ ४६८ तथा "जे० जे० डोकको" पृष्ठ ४७३।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

४०० तार 'इंडियन ओपिनियन' के सम्पादकको

जोहानिसबर्ग
मार्च ८, १९११

स्मट्ससे हुआ पत्र-व्यवहार प्रकाशित मत कीजिए।[1]

गांधी

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२५२) की फोटो-नकलसे।

४०१ तार 'इंडियन ओपिनियन' के सम्पादकको[2]

जोहानिसबर्ग
मार्च ८, १९११

मेरा खयाल है कि संघ उपनिवेशमें जन्मे भारतीयोंके अधिकारोंको केपमें रद नहीं करता और न उनकी रक्षा ही करता है। मुझे लगता है, केपमें समुद्र-मार्गसे प्रवेश करनेवालोंको शैक्षणिक परीक्षा देनी होगी। रिचसे कहिए वे उनकी कानूनी स्थितिके बारेमें स्मट्ससे स्पष्टीकरण प्राप्त करें।

गांधी

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२५१) की फोटो-नकलसे।

४०२ पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ८, १९११

प्रिय रिच,

संलग्न सामग्री अपने-आपमें काफी स्पष्ट है। आशा है, मेरे तारको[3] आपने अच्छी तरह समझ लिया होगा। जहाँतक हम तीनोंकी व्यक्तिगत कोशिशोंका सम्बन्ध है

१. इस अनुलिपिके अनुसार यह पत्र-व्यवहार इंडियन ओपिनियनके ११-३-१९११ वाले अंकमें प्रकाशित नहीं किया गया। वरन्, उसे १८-३-१९११ के अंकमें प्रकाशित किया गया।

२. यह तार रिचके द्वारा मार्च ७ को दिये निम्न तारके उत्तरमें भेजा गया था : "क्या संघ [illegible] क्षेत्रमें पैदा हुए भारतीयोंको केपमें प्रवेश करनेके अधिकारसे वंचित करता है [illegible]।" देखिए "पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको", पृष्ठ ४०४।

३. देखिए "तार : एल० डब्ल्यू० रिचको", पृष्ठ ४०१।

हमें केप और नेटालके भारतीयोंके लिए काम करना है फिर वे इसके लिए धन जमा करें या न करें। केप टाउनमें आपके रहनेका व्यय यहाँकी निधिसे दिया जायेगा। इसलिए केप और नटालके कार्योंको जो पैसा जुटाना है, सो केवल कानूनी सलाह और ऐसे ही अन्य मामलोंके लिए। आप उन्हें जो तार भेजते होंगे यदि उनका खर्च वे नहीं चुकाना चाहते तो उसके लिए हमें चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। यदि वे इनकी व्यवस्था नहीं करेंगे तो हमें धनिकोंकी सम्मति जो मूल्यवान हो सकती है के बगैर काम करना होगा। बहरहाल हम जानते हैं कि स्थिति क्या है और कुछ भी हो हमें यथा सम्भव आवश्यक संशोधन कराना ही है, ताकि उसका अर्थ सुनिश्चित हो जाये और कोई बात अस्पष्ट न रहे। आज कोई और समाचार नहीं है। तुम अबतक क्या क्या कर चुके हो इसे जाननेकी प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकताके साथ कर रहा हूँ। आदमके[1] तारसे मुझे पता चला कि तुम उनके साथ ठहरे हुए हो।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२५४) की फोटो-नकलसे।

४०३. पत्र : जे० जे० डोकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ८, १९११

प्रिय श्री डोक,

जनरल स्मट्सकी ओरसे निम्नलिखित तार मिला है, जिससे कदाचित् उनके रुखपर थोड़ा और प्रकाश पड़ता है :

७ मार्च। आपके ३[2] और ४ मार्चके पत्र और ४ मार्चका तार[3] सभी यथासमय मिले। आपके वकीलने जो कानूनी सवाल उठाये हैं मन्त्री उनपर कानूनी सलाहकारोंके साथ विचार कर रहे हैं।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२५५) की फोटो-नकलसे।

१. आदम गुल; देखिए "तार : आदम गुलको", पृष्ठ ४४८।
२. और ३. देखिए "पत्र : ई० एफ० सी० लेनको", पृष्ठ ४४३-४४ और पृष्ठ ४५०-५८।
४. देखिए "तार : गृह-मन्त्रीके निजी सचिवको", पृष्ठ ४५६-५७।

४०४ पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ८, १९११

प्रिय पोलक,

आज मेरे पास कार्यकी प्रगतिके बारेमें सूचित करने लायक कोई बात नहीं है। मैं आपके प्रश्नके सम्बन्धमें अपनी राय तार द्वारा आपको भेज चुका हूँ।[1] मैंने कल शाम और आज सवेरे भी विधेयकके सातवें खण्डपर बड़ी सावधानीसे विचार किया था। इसलिए मैं आपके तारका उत्तर देनेकी स्थितिमें था। मैं श्री ग्रेगरोवस्कीकी इस रायसे सहमत नहीं हूँ कि नये विधेयकके अन्तर्गत संघके भीतर शैक्षणिक कसौटी नहीं रह जायेगी। लेकिन यदि यह सच हो तो भी खण्ड ७ के अन्तर्गत ट्रान्सवालसे नेटाल या केप जानेवाले भारतीय उन प्रवासी कानूनोंमें जिनको अब रद किया जाता है, रखी गई शैक्षणिक कसौटीके आधारपर रोक दिये जायेंगे। पर यदि वर्तमान विधेयकके पास हो जानेपर ये कानून प्रभावहीन हो जायेंगे और यदि ग्रेगरोवस्कीकी बात ही सही हो, तो ट्रान्सवालके भारतीय बिना किसी बाधाके केप या नेटालमें प्रवेश पा सकेंगे क्योंकि बहाँके एशियाई कानून सिर्फ चीनियोंके और किसीपर लागू नहीं होंगे। मुझे नहीं लगता कि सातवें खण्डके द्वारा नेटालके उन भारतीयोंके अधिकार सुरक्षित होते हैं जिनका जन्म उपनिवेशमें हुआ है। यदि केपका प्रवासी कानून रद हो जाता है तो उपनिवेशमें जन्मे वे भारतीय जो उस समय तक केपमें प्रवेश नहीं कर चुके हों, शैक्षणिक कसौटीपर खरे उतरे बिना केपमें निश्चय ही प्रवेश नहीं पा सकेंगे क्योंकि केपके प्रवासी कानूनके अन्तर्गत प्राप्त होनेवाले अधिकार उन्हें नहीं मिल सकेंगे और इसलिए प्रवासी विधेयकके अन्तर्गत बच रहनेवाला अधिवासका अधिकार कोई सम्भाव्य अधिकार नहीं बल्कि एक ऐसा अधिकार है जिसका वास्तवमें उपयोग हो रहा है। कह नहीं सकता कि मैं कानूनी स्थितिकी स्पष्ट व्याख्या कर पाया हूँ या नहीं। आज मैं वेस्टको कुछ भी नहीं भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२५६) की फोटो-नकलसे।

[1] देखिए "पत्र : इंडियन ओपिनियनके सम्पादकको", पृष्ठ ४७९।

४०५. नेटालका प्रार्थनापत्र : संघ विधानसभाको[1]

डर्बन
मार्च ९, १९११

सेवामें
संघमें एकत्रित
दक्षिण आफ्रिका संघकी सम्माननीय विधानसभाके
माननीय अध्यक्ष तथा सदस्यगण
केप टाउन

नेटाल भारतीय कांग्रेसके अध्यक्ष दाउद मुहम्मद और अवैतनिक संयुक्त मन्त्री दादा उस्मान तथा मुहम्मद कासिम आंगलियाका पवेन पेश किया गया प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि

(१) नेटाल भारतीय कांग्रेसके तत्वावधानमें ९ मार्च १९११ को ब्रिटिश भारतीयोंकी जो सार्वजनिक सभा हुई थी उसमें आपके प्रार्थियोंको इस बातका अधिकार दिया गया था कि वे सम्माननीय सदनकी सेवामें विधेयकके सम्बन्धमें प्रार्थनापत्र भेजें। सदनके विचारार्थ प्रस्तुत इस विधेयकका मन्शा संघके विभिन्न प्रान्तोंमें प्रवासपर प्रतिबन्ध लगानेवाले वर्तमान कानूनोंको एकत्र करना और संशोधन करना संघीय प्रवासी-विभागकी स्थापना करना और संघमें अथवा उसके किसी भी प्रान्तमें होनेवाले आवागमनका नियमन करना है।

(२) आपके प्रार्थी इसे एक दुर्भाग्यकी बात समझते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें बसने वाले सम्राट्के भारतीय प्रजाजन संघकी स्थापनासे होनेवाले लाभोंसे वंचित रहेंगे क्योंकि उनके आने-जानेकी स्वतन्त्रतापर पहलेकी भाँति अब भी प्रान्तीय प्रतिबन्ध लागू रहेंगे परन्तु आपके प्रार्थियोंको उपर्युक्त सभा द्वारा यह कहनेका अधिकार दिया गया है कि संघके बहुत-से भागोंमें एशियाइयोंके विरुद्ध जो पूर्वग्रहकी भावना है, उसको देखते हुए वे लोग जिनका प्रतिनिधित्व आपके प्रार्थी करते हैं, फिलहाल इस प्रतिबन्धपर कोई आपत्ति नहीं उठाना चाहते।

(३) फिर भी प्रार्थियोंसे कहा गया है कि वे इस विधेयकके विरुद्ध निम्नलिखित आपत्तियोंकी ओर सम्माननीय सदनका ध्यान आकर्षित करें

(क) इस प्रान्तमें जो प्रवासी कानून आज प्रचलित है उसके अन्तर्गत शैक्षणिक कसौटी-सम्बन्धी धाराके अनुसार प्रवासकी इच्छा करनेवाला कोई भी व्यक्ति उस यूरोपीय भाषामें परीक्षा दे सकता है, जिसे वह जानता है। किन्तु वर्तमान विधेयकमें परीक्षाकी भाषा चुननेका हक प्रवासी अधिकारीको सौंपा गया है।

[1] इसका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था। देखिए "पत्र: एच० एस० एल० पोलकको", पृष्ठ ४८८-८९। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रार्थनापत्र ७-३-१९११ को तैयार हो चुका था।

इस प्रकार उस अधिकारीके लिए यह सम्भव हो जाता है कि वह जिस व्यक्ति अथवा व्यक्तियोंको चाहे, प्रवेश करनेसे रोक सकता है — फिर चाहे वे व्यक्ति किसी भी जाति धर्म या वर्गके हों और चाहे वे ब्रिटिश प्रजा हों अथवा न हों। आपके प्रार्थियोंकी विनम्र रायमें पिछले अनुभवोंको देखते हुए ऐसे नियमका कोई औचित्य नहीं है।

(ख) नये विधेयकमें नेटालके अधिवासियों या निवासियोंकी जो पत्नियाँ और नाबालिग बच्चे प्रान्तमें उपस्थित नहीं हैं उन्हें संरक्षण नहीं दिया गया है जबकि इस विधेयककी अनुसूची १ के परिणामस्वरूप रद किये जानेवाले इस प्रान्तके प्रवासी कानूनमें उन्हें संरक्षण प्राप्त था।

(ग) जान पड़ता है कि नेटाल प्रान्तके वर्तमान निवासियोंके तथा अस्थायी रूपसे अनुपस्थित अधिवासियोंके अधिकार उस प्रकार सुरक्षित नहीं हैं जैसे कि वे पूर्व उल्लिखित प्रान्तीय कानूनोंके अन्तर्गत थे।

(घ) विधेयकके खण्ड २५ के उपखण्ड (ख) के अन्तर्गत थोड़े समयके लिए अनुपस्थित रहनेकी इच्छा रखनेवाले वैध निवासियोंको अनुमतिपत्र देने या न देनेका अधिकार पूर्ण रूपसे मन्त्री महोदयकी मर्जीपर छोड़ दिया गया है। अबतक इस प्रकारके अनुमतिपत्र जिन्हें अब अधिवास-प्रमाणपत्र कहा गया है, पानेका अधिकार निर्विवाद था और आपके प्रार्थियोंकी विनम्र रायमें इस अधिकारका अब छीन लिया जाना नेटाल प्रान्तके भारतीयोंके प्रति बहुत बड़ा अन्याय होगा।

(ङ) जिन लोगोंको प्रवासी-अधिकारी निषिद्ध प्रवासी घोषित कर दे या जिन्हें संघमें अथवा इस प्रान्त-विशेषमें दुबारा प्रवेश करनेसे रोक दे उन लोगोंको वर्तमान कानूनके अन्तर्गत अपना मामला न्यायालयमें ले जानेका अधिकार है। किन्तु नये विधेयकमें उन्हें संघके अन्तर्गत स्थापित न्यायालयोंमें अपना मामला ले जानेका अधिकार नहीं है।

(४) अंतमें आपके प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि यह सम्माप्य सदन इस प्रार्थनापत्रमें उल्लिखित आपत्तियोंपर विचार करे और विधेयकको इस तरह संशोधित करे कि ये आपत्तियाँ दूर हो जायें अथवा इस सम्माप्य सदनकी रायमें जो उचित हो वैसी कोई दूसरी राहत देनेकी कृपा करे। और इस न्याय और दयापूर्ण कार्यके लिये आपके प्रार्थी कृतज्ञतावश दुआ करेंगे।

(ह०) दाउद मुहम्मद
अध्यक्ष
नेटाल भारतीय कांग्रेस
(ह०) दादा उस्मान
(ह०) एम० सी० आंगलिया
संयुक्त अवैतनिक मन्त्रिगण
नेटाल भारतीय कांग्रेस

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन १८-३-१९११

४०६. तार : एल० डब्ल्यू० रिचको

जोहानिसबर्ग
मार्च ९, १९११

जनरल स्मट्सका तार। वे आपको प्रतिनिधि माननेसे इनकार करते हैं। कहते हैं वे भारतीय समाजसे सदैव बराबर मिलते-जुलते और लिखा-पढ़ी करते रहे हैं। जनरल स्मट्सके तारकी नकल भेज रहा हूँ।[1]

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२१) की फोटो-नकलसे।

४०७. तार : गृह-मन्त्रीके निजी सचिव और रिचको

जोहानिसबर्ग
मार्च ९, १९११

सेवामें
(१) निजी सचिव
गृह-मन्त्री
(२) रिच
८ लूप स्ट्रीट
केप टाउन

आपका तार मिला। सबको विदित है कि जनरल स्मट्स दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजसे बराबर मिलते-जुलते और लिखा-पढ़ी करते रहे हैं और वह इसके लिए अत्यन्त कृतज्ञ है। श्री रिचको प्रतिनिधि नियुक्त करनेका कारण केवल यह है कि वे केप टाउनमें हैं और इस समय ट्रान्सवालके भारतीयोंके प्रतिनिधि बहुत दूर हैं। श्री रिच स्वयं तीन वर्षसे अधिक दक्षिण आफ्रिकामें रह चुके हैं। वे भारतीय समाजके विश्वासपात्र हैं। उनसे व्यक्तिगत रूपमें संघका प्रतिनिधित्व करनेकी बात समयकी बचतके ख्यालसे कही गई है। विधेयककी प्रस्तावित धारा शासनकी दृष्टिसे नहीं। क्योंकि संघ जहाँतक हो सके सरकारकी सहायता करना चाहता है। संघ यह भी कहना चाहता है कि श्री रिच लन्दनमें खास तौरपर नहीं बुलाये गये हैं परन्तु चूँकि सभामें विधेयक पेश होनेके समय व दक्षिण आफ्रिकामें लौट हैं इसीलिए उनसे प्रार्थना की गई है कि वे [सदनमें] विधेयकपर विचार होते

१. देखिए अगला शीर्षक।

समय केप टाउनमें रहें। अतः संघका विनम्र विश्वास है कि जनरल स्मट्स अपने फैसलेपर पुनः विचार करेंगे और श्री रिचसे भेंट करेंगे।

ब्रिटिश भारतीय संघ

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२११) की फोटो-नकलसे।

४०८. पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ९, १९११

प्रिय रिच,

आपका तार[1] मिला। उससे मुझे बड़ी आशा बँधती है। आपको याद होगा कि हम लन्दनमें टार्ऑटो स्कूलके एक नवयुवक छात्रसे मिले थे। उसके पिता हाजी सुलेमान शाह मुहम्मदने मुझे लिखा है कि वे जो भी सहायता कर सकते हैं करेंगे। मुझे आशा है कि आपको मेरे सभी तार और पत्र नियमित रूपसे मिलते रहे हैं। आज मैं आपके नाम लन्दनसे आये तीन पत्र आपके मौजूदा पतेपर भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

[पुनश्च]

अभी-अभी मैंने जो तार[2] भेजे हैं, उनकी प्रतियाँ संलग्न कर रहा हूँ।
स्पष्टतः जनरल जान [स्मट्स][3] के लिए रिच हौएकी तरह डरावने लगते हैं।

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२११) की फोटो-नकलसे।

४०९. पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

मार्च ९, १९११

प्रिय पोलक,

मुझे अभी-अभी रिचका एक तार[4] मिला है, जिसमें वे कहते हैं कि आखिरकार केपके भारतीय समाजमें एकता स्थापित हो गई है। इसके लिए ईश्वरको धन्यवाद! मुझे आश्चर्य है कि आखिर वे लोग एक हो गये और जो लोग अभीतक बिल्ली-चूहेकी लड़ाईके आदी थे, वे अब हँसी-खुशीसे काम चलायेंगे।

1. इसमें कहा गया था : "समस्त भारतीय समाज अन्ततः एक होकर संगठित"।
2. देखिए पिछले दोनों शीर्षक।
3. मूलमें ‘जान’ प्रयुक्त हुआ है।
4. देखिए पिछला शीर्षक।

आप कृपया श्री उमरको स्मरण दिला दें कि मुझे चर्च स्ट्रीटवाली जायदादका पट्टा चाहिए। प्रिटोरियासे कर्ज प्राप्त करनेके लिए मैंने कैसेनबैंकके पट्टेका उपयोग किया है। उस समय उसकी बड़ी जल्दी थी। श्री दादा उस्मान तारपर-तार भेज रहे थे और मैं यह जानने तक के लिए नहीं रुका कि श्री उमरके पासका मूल पट्टा कहाँ है। अब कैलनबैकका पट्टा बन्धपत्रों (बॉण्ड-होल्डर्स) के पास है। इसलिए हमें चाहिए कि हम अपना मूल पट्टा उनके बन्धपत्रोंका दे दें। अतः कृपया मालूम कीजिए कि वह किसके पास है श्री उमर या किसी औरके। मोर्टगेज यूनियन कम्पनी जिसके पास इस पट्टेका बन्धक है, के वकीलोंसे मेरी बात हुई थी। मैं शनिवारको भी शहरमें पहुँचूँगा हालाँकि मैं सवा बजेकी गाड़ीसे रवाना होनेकी कोशिश करूँगा किन्तु, यह तो इस बातपर निर्भर करेगा कि आप और रिच मुझे क्या लिखते हैं।

आपके पत्र फीनिक्सके पतेपर भेज दिये गये हैं। म्यूनसमायर्ससे आया हुआ पत्र मैं साथ नत्थी कर रहा हूँ। इस पत्र-लेखकको मैं बिलकुल नहीं जानता। सम्पूर्ण पत्र प्रकाशित करनेकी हमारी इच्छा नहीं है। और जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, आप यदि इसे बिलकुल ही न छापें तो मुझे कोई एतराज नहीं है। परन्तु यदि आप सोचें कि इसमें कुछ तत्त्व है तो आप इससे उद्धरण दे सकते हैं। भारतीय मर्चेन्ट्स इनमें जाकर बसें इस विचारने मुझे तनिक भी आकर्षित नहीं किया है।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२६४) की फोटो-नकलसे।

४१०. पत्र : मगनलाल गांधीको

फाल्गुन सुदी ९ [मार्च ९, १९११][1]

चि० मगनलाल,

तुम शमिलकी ओर जो ध्यान दे रहे हो उससे मुझे लगता है कि किसी दिन तुम उसे अच्छी तरह सीख लोगे।

सरस्वती का एक अंक और दादाका जीवन-चरित्र आज भेज रहा हूँ। पहले अंकमें प्रकाशित रामदासजीका[3] जीवन-वृत्तान्त मैंने पढ़ लिया है। बहुत अच्छी तरह लिखा गया है। क्या तुम्हें पक्का भरोसा है कि इसके बादका अंक तुमने मुझे भेजा है? वहाँ देखना। हो तो भेजना। मेरे पास तो दिखाई नहीं देता। पुरुषोत्तमदाससे पूछना कि क्या उत्तर देना है? बोरोका जीवन पढ़ने योग्य है। मकानमें पड़ जाना। यह पुस्तकालयमें दिया जायेगा इसलिए भी वेस्ट भी देख लेंगे। फिर भी उनका ध्यान इस तरफ खींचना।

१. यह पत्र इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित नहीं किया गया।

२. [illegible] १९११ में [illegible] लिखा गया होगा।

३. स्वामी रामदास।

जान पड़ता है संघर्ष तो समाप्त होगा ही। किन्तु फिलहाल मेरे फीनिक्समें रहनेकी सम्भावना कम ही दीखती है। संघर्ष समाप्त हो जानपर टॉल्स्टॉय फार्मपर एक भी आदमीके रहनेकी सम्भावना नहीं है। श्री कैलनबैकका मकानोंपर ही लगभग ६ पौंड खर्च हुआ होगा। यह सब उनके सिर पड़ता दीखता है। ऐसा न हो, इसलिए मेरा खयाल है कि फार्मपर रहकर शरीर-श्रम करके जितना बने उतना कुछ किया जाये। संघर्ष समाप्त होते ही मैं श्री कैलेनबैकको छोड़ दूँ यह कैसे हो सकता है? दूसरी ओर वहाँ [फीनिक्स] आना जरूरी है लेकिन समझमें भी नहीं आता यह कैसे बन सकेगा। संघर्ष समाप्त हो जानेसे मेरा संघर्ष तो समाप्त नहीं होता। और यही ठीक भी है। श्री कैलेनबैकके फार्मपर किसी कारणसे बने रहना पड़ेगा यह धारणा नहीं था। वैसे मुझे तो इससे भी काफी अनुभव प्राप्त होगा और कौन जाने उसीमें कल्याण भी हो।

लड़ाई समाप्त होते ही श्री पोलकको तो तुरन्त विलायत भेज देना पड़ेगा। उन्हें वापस आनेमें छः महीने लगेंगे। मैं चाहता हूँ कि वे भारत होते हुए लौटें। श्री पोलकके जानेके पहले अगनलाल आ जाये तो बहुत ठीक हो। मुझे लगता है, वह भी जरूर आ जायेगा।

मेरी इच्छा है, हरिलाल ठक्करको तुम अपने रास्तेपर ले आओ।

मणिलालका ध्यान रखना। वह कुछ पढ़ाई-लिखाई कर रहा है अथवा कर सकता है, या नहीं?

सन्तोककी तबीयत कैसी है?

मैंने तुम्हें एक खबर नहीं दी थी जब दे रहा हूँ। बा को जब जोरोंका दर्द उठा तो वह बहुत घबरा गई। मैं काममें लगा था और दुबारा खबर लेने नहीं जा सका इसलिए वह खिन्न हो गई होगी। जब मैं गया तो वह रो पड़ी और कुछ ऐसा दिखाया मानो अब वह मर जायेगी। मैं थोड़ा घबरा गया लेकिन तुरन्त ही सँभला और हँस कर कहा "मर जाओगी तो चिन्ता क्या है? लकड़ियोंकी कमी नहीं है। इसी फार्ममें फूँक दूँगा। इसपर वह भी हँस पड़ी। आधा दर्द तो उसी वक्त चला गया। बादमें मैंने सोचा कि कोई बहुत सख्त इलाज करना पड़ेगा। सिर्फ मिट्टीसे काम नहीं चलेगा। इसलिए मैंने कहा कि सब्जी और नमक एकदम बन्द कर दो और केवल गेहूँ और मेवा लिया करो। अगर गीला भात लेना चाहो तो थी डालकर ले सकती हो। उसने कहा यह तो तुमसे भी नहीं बन सकता। मैंने कहा आजसे मैंने नमक सब्जी वगैरह छोड़ दिया। फिर तो वह लाचार हो गई। नतीजा यह हुआ कि हम दोनों आज लगभग एक महीनेसे नमक दाल-सब्जी और साग नहीं ले रहे हैं। मुझे तो दूसरी किसी खुराककी इच्छा भी नहीं होती। बा का मन हो जाता है। एक बार उससे नहीं रहा गया और उसने थोड़ा ग्वारफलीका साग ले लिया। वैसे तो यही जान पड़ता है कि उसने बाकीके दिन इसी खुराकपर गुजारे हैं। दर्दमें तो आश्चर्यजनक फर्क पड़ गया। रक्तस्राव होता रहता था सो तुरन्त बन्द हो गया। मुझे अनायास ही अधिक आत्मसंयमका काम मिल रहा है। मेरा तर्क

यह है कि नमक एक तेज पदार्थ है। किसी भी चीजमें जरा-सा छोड़ दो तो उसका रूप और स्वाद बदल देता है। उसके असरसे खून बहुत पतला हो जाता होगा। मेरा खयाल है, बीमार आदमीपर तो इसका असर तत्काल ही होता होगा और सो भी ज्यादातर खराब ही। पहले जब मैंने श्रीमती वैलेस वगैरहके लिए पढ़े थे तब उनका इतना असर नहीं हुआ था किन्तु इस बार मनमें यही विचार चलता रहता था कि डॉक्टरको न बुलाना ही ठीक होगा। तभी यह बात सूझी कि देखना चाहिए, नमक छोड़ देनेसे क्या होता है। या बहुत हुआ तो यह महीना निकाल देगी इससे ज्यादा नहीं चला पायेगी। किन्तु मेरा विचार आगे भी जबतक बन प्रयोगको चलाते रहनेका है।

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

पत्र पुरुषोत्तमदासको भी पढ़नेको दे देना।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें लिखित मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ५०७९) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

४११. ट्रान्सवालका प्रार्थनापत्र : संघ-विधानसभाको[1]

जोहानिसबर्ग
मार्च १, १९११

सेवामें
माननीय अध्यक्ष महोदय और सदस्यगण
विधानसभा, दक्षिण आफ्रिका संघराज्य
केप टाउन
ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षकी हैसियतसे अहमद मुहम्मद काछलियाका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि

१. संघके सदस्योंने सरकारी *गज़ट* के २५ फरवरीके असाधारण अंकमें प्रकाशित उस विधेयकको पढ़ा है, जिसका उद्देश्य है संघके विभिन्न प्रान्तोंमें प्रवासको नियन्त्रित करनेके लिए लागू विभिन्न कानूनोंका एकीकरण और संशोधन करना एवं संघीय प्रवासी विभागकी स्थापनाकी व्यवस्था करना और संघके किसी भी प्रान्तमें प्रवासका नियमन करना।

२. प्रार्थी संघकी विनम्र सम्मतिमें इस समय दक्षिण आफ्रिकाके विभिन्न प्रान्तोंमें निवास करनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंको विषयमें प्रान्तीय सीमाओं तक सीमित करनेकी जो व्यवस्था की गई है उसका प्रान्तोंके संघीकरणके साथ

[1] इसकी प्रति रिचको भी भेजी गई थी, देखिए "पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको" पृष्ठ ४८५-८६।

मेल नहीं बैठता और यह दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए अन्याय-पूर्ण है। तथापि प्रार्थी संघ जिस समाजका प्रतिनिधित्व करता है उसके विरुद्ध दक्षिण आफ्रिकामें जो पूर्वग्रह विद्यमान है उसको ध्यानमें रखते हुए हमने निश्चय किया है कि फिलहाल उपर्युक्त प्रतिबन्ध स्वीकार कर लिया जाये परन्तु प्रार्थी संघ सम्माननीय सदनके समक्ष सविनय निवेदन करता है कि उपर्युक्त विधेयक ट्रान्सवालमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंके हितोंको बहुत अधिक प्रभावित करने वाली कतिपय आवश्यक बातोंमें भ्रामक है। ये बातें नीचे लिखे अनुसार हैं :

(क) यह विधेयक अपनी वर्तमान शब्दावलीके अनुसार उक्त विधेयकके खण्ड ४ में निर्धारित शैक्षणिक परीक्षा पास कर सकनेवाले शिक्षित भारतीयोंको भी ट्रान्सवालमें निवासकी अनुमति नहीं देता। इसका कारण १९०८ के एशियाई पंजीयन कानून ३६ का बरकरार रहना है। संघको कानूनी तौरपर सलाह दी गई है कि विधेयकमें किसी विशेष उल्लेखके अभावमें ऐसे एशियाई उक्त एशियाई पंजीयन कानूनकी धाराओंके अधीन होंगे और इसलिए ट्रान्सवालमें प्रवेश पानेमें समर्थ न होंगे या यदि उन्हें इसके लिए अनुमति मिल भी गई तो उन्हें उक्त कानूनके मुताबिक पंजीयन करानेके लिए बाध्य होना पड़ेगा। प्रार्थी संघ सादर निवेदन करता है कि शैक्षणिक कसौटीपर खरे उतरनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंकी शिनाख्तके लिए यह परीक्षा ही काफी होगी और इसलिए विधेयकमें ऐसा संशोधन होना चाहिए कि परीक्षा पास करनेवाले शिक्षित एशियाइयोंके प्रवेशाधिकारके बारेमें कुछ भी अनिश्चितता बाकी न रह जाये और वे पंजीयन कानूनों या विभिन्न प्रान्तोंके वैसे ही अन्य कानूनोंसे बरी रहकर ट्रान्सवालमें और संघ-राज्यके अन्य प्रान्तोंमें प्रवेश कर सकें और बसे रह सकें।

(ख) प्रार्थी संघ विनम्रतापूर्वक सम्माननीय सदनका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकृष्ट करता है कि पंजीकृत एशियाइयोंकी पत्नियों और नाबालिग बच्चोंको जो संरक्षण ट्रान्सवालके १९०७ के कानून १५ और उसके साथ पंजीयन कानूनकी मौजूदगीके कारण अबतक मिलता रहा है उसका विधेयकमें उसकी कोई व्यवस्था नहीं जान पड़ती। उक्त विधेयक द्वारा ट्रान्सवालके १९०७ का कानून १५ रद कर दिया जानेवाला है।

१ अन्तमें प्रार्थी संघ सम्माननीय सदनसे इस निवेदनपर विचार करने और विधेयकमें वांछित संशोधन करने या ऐसी कोई अन्य राहत जिसे सम्माननीय सदन ठीक समझे देनेकी प्रार्थना करता है। न्याय और दयाके इस कार्यके लिए आपके प्रार्थी कर्तव्य मानकर आपके लिए दुआ करेंगे।

अध्यक्ष

ब्रिटिश भारतीय संघ

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२७१) की फोटो-नकल और १८-३-१९११ के इंडियन ओपिनियन से।

मेरे संघके लिए यह कह देना उचित होगा कि श्री रिच ऐसे व्यक्ति हैं जिनका इस विवादसे एक लम्बे अर्सेसे सम्बन्ध रहा है। उन्होंने विषयका पूरी तरह अध्ययन किया है और वे कई वर्षों तक जोहानिसबर्गमें रह चुके हैं। इसलिए वे सरकारके सामने संघका प्रतिनिधित्व करनेके लिए विशेष रूपसे उपयुक्त हैं। उन्हें समाजका पूर्ण विश्वास प्राप्त है। संघने महसूस किया कि व्यक्तिगत मुलाकातोंके द्वारा संघर्षको समाप्त करनेकी दिशामें बहुत-कुछ किया जा सकता है। इसीलिए श्री रिचको यदि आवश्यक हो तो जनरल स्मट्ससे मिलनेके लिए नियुक्त किया गया। मेरा संघ आशा करता है कि विषयका इस प्रकार संतोषित कर दिया जायेगा कि अन्तमें यही जान पड़े कि श्री रिचको भेजना अनावश्यक था।

मेरे संघने जनरल स्मट्स और श्री गांधीके बीच हुए पत्र-व्यवहारको पढ़ा है। संघकी इच्छानुसार मैं जनरल स्मट्सको लिखे गये श्री गांधीके इस निवेदनकी[1] पुष्टि करता हूँ कि संघर्ष उस दिन समाप्त हो जायेगा जिस दिन [प्रवर] समिति विधेयकमें इस प्रकार संशोधन कर देगी कि शैक्षणिक कसौटीके अन्तर्गत प्रवेश पानेवाले शिक्षित भारतीय विभिन्न प्रान्तोंके पंजीयन कानूनों, खासकर ट्रान्सवालके १९ ८के कानून ३६, से बरी हो जायेंगे और यदि ऐसे एशियाइयोंकी पत्नियों और छोटे बच्चोंके संरक्षणकी स्पष्ट व्यवस्था की जायेगी जो पंजीकृत हैं या पंजीयन करानेके अधिकारी हैं या जो शैक्षणिक कसौटीके आधारपर इस प्रान्तमें रहनेके अधिकारी हैं। इन एशियाइयोंकी पत्नियाँ और छोटे बच्चे ट्रान्सवालमें हों अथवा ट्रान्सवालसे बाहर, कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।

मेरे संघको भरोसा है कि यदि यह संघर्ष जो इतना लम्बा खिंच गया है अच्छे ढंगसे समाप्त हो जाता है तो वे लोग जो इस समय सत्याग्रहीके रूपमें जेल भोग रहे हैं छोड़ दिये जायेंगे और जिन लोगोंने अपने धार्मिक विश्वासोंके कारण कष्ट सहे हैं उन्हें दण्डित नहीं किया जायेगा बल्कि उनके उन अधिकारोंका सम्मान किया जायेगा जो उन्हें १९ ८के कानून ३६के अन्तर्गत प्राप्त होवें।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

अध्यक्ष

ब्रिटिश भारतीय संघ

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस एन ५२९७) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "खण्ड ८ परि० सी मेमो" पृष्ठ ४५०-५८।

४१४ पत्र एच० एस० एल० पोलकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १ १९११

प्रिय पोलक

मैं नहीं समझता कि पुलिस अधिकारीको लेकर चिन्ता करनेकी आवश्यकता है। यदि विनियमोंमें काफिर पुलिस रखनेकी व्यवस्था है तो हम इन विनियमोंके विरुद्ध लड़ सकते हैं। मैं सोचता हूँ कि हमें विधेयककी तफसीलोंकी आलोचना करते समय भी बहुत सावधान रहना चाहिए, और जो बातें विनियमों द्वारा ठीक की जा सकती हों उन्हें लेकर परेशान न होना चाहिए। हाँ मेरी रायमें दूसरे खण्डका आपने ठीक अर्थ लगाया है। परन्तु बेनरोबस्कीका खयाल है कि सातवें खण्डसे वह अर्थ कट जाता है और उनकी बात सही हो सकती है। आपका यह कहना बिलकुल ठीक है कि पंजीयनके कारण ट्रान्सवालके अधिकार नहीं छीने जा सकते परन्तु नेटालके अधिवासका अधिकार, जो अत्यधिक पारिभाषिक शब्द है स्थानान्तरणके फलस्वरूप रद हो जा सकता है। परन्तु मैं आपसे सर्वथा सहमत हूँ कि यह प्रश्न इस समय नहीं उठाया जाना चाहिए। नेटाल विटनेस के नाम आपका पत्र[1] मुझे शानदार लगा। मैं समझता हूँ कि उन बहुत-सी बातोंपर, जिनका आपने अपने पत्रमें उल्लेख किया है, भारत सरकारने कभी विचार नहीं किया। परन्तु यह पत्र अपने-आपमें इतना उत्तम और युक्तिपूर्ण है कि इसे इंडियन ओपिनियन के स्तम्भोंमें उद्धृत किया जाना चाहिए। कदाचित् आपके पास इसकी प्रति न हो इसलिए मैं इसे आपके पास वापस भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२७१) की फोटो-नकलसे।

४१५ पत्र एल० डब्ल्यू० रिचको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १० १९११

प्रिय रिच

मैं संसदके समक्ष प्रस्तुत किये जानेवाले प्रार्थनापत्र[2] और जनरल स्मट्सके नाम लिखे गये पत्रकी[3] प्रतिलिपि इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ। यदि आप समझें कि यह

१. पत्र १८-३-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत किया गया था।
२. देखिए "ट्रान्सवालके भारतीयोंका प्रार्थनापत्र: लोकसभाको" पृष्ठ ४८१-८२।
३. देखिए "पत्र: गृह-मन्त्रीके निजी सचिवको" पृष्ठ ४८२-८४।

प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए — और मेरा खयाल है कि यदि कोई खास कारण न हो तो किया ही जाना चाहिए — तो अच्छा हो कि इसे सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिक, फेरार, ड्रमंड चैपलिन या एमली नैथन प्रस्तुत करें और यदि ट्रान्सवालके इन सदस्योंमें से कोई भी इसको प्रस्तुत करनेके लिए राजी न हो जिसकी मैं कल्पना नहीं करता तो यह मि० व्हीनर या अलेक्जैंडर या जिस-किसीको भी आप उचित समझें उसके जरिये किया जा सकता है।[1] मुझे आशा है कि आप विस्तृत तार भेजेंगे जिससे पता चले कि द्वितीय वाचनके समय और [प्रवर] समितिमें भी क्या हुआ। मैं समझता हूँ कि आप विधेयकके द्वितीय वाचनके समय सदनमें उपस्थित रहेंगे। और कुछ नहीं कहना है।

हृदयसे आपका

[संलग्न][2]

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२७२) की फोटो-नकलसे।

४१९. तार: एल० डब्ल्यू० रिचको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १, १९११

स्मट्सका तार[3] कि अब इस समय वे आप-जैसे सर्वथा अजनबीसे भेंट नहीं करना चाहते अलबत्ता प्रतिवेदनोंपर सावधानीके साथ विचार किया जा रहा है। आपकेके प्रतिवेदनोंपर भी इसी प्रकार विचार किया जायेगा। यह भी कहा है कि यहाँसे किसीको नहीं जाना चाहिए। इसलिए मेरा जाना व्यर्थ है। मेरा सुझाव है कि आप यथासम्भव प्रत्येक सदस्यसे मिलें। चाहें तो कौमोंकी ओरसे प्रार्थनापत्रपर उनके अध्यक्षके हस्ताक्षर करा कर पेश करें। क्या आप अबतक किसीसे मिले हैं?

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२७४) की फोटो-नकलसे।

१. प्रार्थनापत्र श्री पैट्रिक डंकन द्वारा १८ मार्चको पेश किया गया।
२. देखिए "ट्रान्सवालका प्रार्थनापत्र: संघ-विधानसभाको" पृष्ठ ४८१-८२।
३. देखिए "पत्र: गृह-मन्त्रीके निजी सचिवको" पृष्ठ ४८३-८४।

४१७. रिचका आगमन

श्री रिच विलायतसे लौट आये हैं। आते ही वे काममें जुट गये हैं। उनका इस समय आना बिल्कुल प्रसंगानुकूल हुआ है। उन-जैसे व्यक्तिकी इस समय जितनी आवश्यकता यहाँ है उतनी विलायतमें नहीं है। विलायतमें उनका काम कुमारी पोलक देख सकती हैं।

समाजका श्री रिचके प्रति यह कर्तव्य है कि वह उन्हें प्रोत्साहन दे। वे थोड़े ही दिनोंमें अपना धन्धा शुरू करनेवाले हैं। यदि समाज उन्हें उसमें सहायता पहुँचाई तो वे अपनी जीविकाके योग्य कमा ही लेंगे। सभीको स्मरण रखना चाहिए कि श्री रिच गरीब आदमी हैं।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, ११-३-१९११

४१८. तार: संसद-सदस्योंको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ११, १९११

मेरा संघ आपका ध्यान प्रवासी विधेयककी ओर आकृष्ट करना चाहता है जिसका द्वितीय वाचन सोमवारको[2] होनेवाला है। संघको प्राप्त कानूनी सलाहके अनुसार विधेयक शिक्षित एशियाइयोंको जो शैक्षणिक कसौटीपर खरे उतर सकें एशियाई पंजीयन कानूनोंके प्रभावसे बरी नहीं करता और न यह पंजीकृत एशियाइयों अथवा शैक्षणिक कसौटीके अन्तर्गत आनेवाले एशियाइयोंके नाबालिग बच्चों और पत्नियोंकी रक्षा करता है। आशा है विधेयकका संशोधन इस प्रकार किया जायेगा कि आपत्तियोंका निराकरण हो जायेगा। इससे उस कष्टदायक संघर्षका सुखद अन्त हो जायेगा जिसके फलस्वरूप तीन हजारसे ऊपर गिरफ्तारियाँ हुईं और बहुत-से एशियाइयोंके घर बरबाद हो गये। नटाल और केपकी स्थितिपर विधेयकके प्रभावके बारेमें संघको कुछ नहीं कहना है।

काछलिया
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२०६) की फोटो-नकल और १८-३-१९११ के इंडियन ओपिनियन से भी।

१. यह तार भारतीयोंके हिमायती संसद-सदस्योंको भेजा गया था और इसकी एक प्रति रिचको भी भेजी गई थी। देखिए अगला शीर्षक।

२. मार्च १३, १९११।

आशा नहीं की जा सकती कि वे कानूनी समानता पानेके लिए माता-पिताओंके अधिकारोंको विशेषकर अपनी पत्नियों और बच्चोंको अपने साथ लाने आदिके सहज अधिकारोंको छोड़ देंगे। मैं नहीं समझता कि यहाँ यह आवश्यक संशोधन करना उसमें कोई कठिनाई होगी। परन्तु मान लें कि यह कठिनाई पैदा हो जाये और जनरल स्मट्स फिर कहने लगें कि मैं नये मुद्दे उठा रहा हूँ तो उस परिस्थितिमें क्या करना चाहिए, सो तुम जानती ही हो। यदि कोई नया मुद्दा उठाया जा रहा है तो उसे जनरल स्मट्स ही उठा रहे हैं। अभी तो मैं यह मानता हूँ कि मसविदा तैयार करने वालोंका इस बातकी ओर ध्यान नहीं गया और जनरल स्मट्स समिति द्वारा विधेयक पर विचार होते समय इसे दुरुस्त करवा देंगे। और यही मानकर मैं जनरल स्मट्सको इस बातका भी श्रेय देता हूँ कि उन्होंने कोई विवादग्रस्त प्रश्न नहीं उठाया। अब रही केप और नेटालकी बात। वहाँ स्थितिमें सुधार हो अथवा न हो यदि विधेयक मेरे सुझावके मुताबिक संशोधित कर दिया गया तो ट्रान्सवालका वर्तमान सत्याग्रह समाप्त कर दिया जायेगा। यहाँ संसद-सदस्योंको जो प्रार्थनापत्र[1] दिया गया है, उसे और अन्य कागजोंको तुम सावधानीसे पढ़ लेना। मैं भी रिचको लिख रहा हूँ कि वे तुम्हें केप टाउनसे लिखें ताकि मैं तुम्हें जो जानकारी दे रहा हूँ वह अद्यावधि हो जाये।

हृदयसे तुम्हारा

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२८१) की फोटो-नकलसे।

४२४. पत्र: एल० डब्ल्यू० रिचको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ११, १९११

प्रिय रिच,

आपका पत्र मिला। मुझे लगता है कि लिखावट हेरॉल्डकी[3] है। मैं उन्हें बधाई देता हूँ, और आपको भी। वे आपकी शैली अपना रहे हैं। जिस होटलके कागज पर पत्र लिखा गया है क्या आप उसी होटलमें ठहरे हैं? आशा है आपको मेरे पत्र प्रतिदिन नियमित रूपसे मिल रहे होंगे। मैं आपसे सर्वथा सहमत हूँ कि हमारा प्रतिनिधि कौन हो इस बातमें हमें स्मट्सका कहना स्वीकार नहीं करना चाहिए। और मुझे हर्ष है कि उन्होंने तार भेजकर यहाँसे भी किसी प्रतिनिधिको न आनेको कहा है। केप आर्गस में छपा आपका पत्र उतना सख्त तो नहीं है। आशा है, इस

1. देखिए "ट्रान्सवाल संसदके सदस्योंको प्रार्थनापत्र" पृष्ठ ४८१-८२।
2. देखिए "पत्र: एल० डब्ल्यू० रिचको" पृष्ठ ४८०-८१।
3. श्री एल० डब्ल्यू० रिचका पुत्र।
4. देखिए "पत्र: श्रीमती मिली पोलकको" ४८३-८४।

मामलेमें घनिष्ठ ठोस सहायता मिलेगी। इसके समाचारपत्रोंसे मैं बड़ी आशाएँ रखता हूँ। केपके भारतीयोंकी ओरसे उन्हें जोरदार लड़ाई लड़नी चाहिए। केप आर्गस के अग्रलेखसे ऐसा लगता है कि विधेयकमें यथेष्ट परिवर्तनों द्वारा शासनके विवेकाधिकारोंको कम कर दिया जायेगा। ऐसा होना भी चाहिए। मैं आपके पास १ पौंडका चैक भेज रहा हूँ। कमसे-कम सिल्वरटाउन द्वारा इसे भुनवानेमें आपको कोई कठिनाई नहीं होगी। मैं लॉटनकी सम्मति साथ भेज रहा हूँ।[1] मेरे निष्कर्ष आपके पास हैं ही।[2]

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२८२) की फोटो-नकलसे।

४२५. पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ११, १९११

प्रिय श्री पोलक,

आप अपनी तरफसे रिचको पैसे भेजें या न भेजें, मैंने यहाँसे १ पौंड भेज दिए हैं। रिचका प्राप्त करनेमें इस तथाकथित मामलेमें मैं रहा हूँ कि शायद आपने उन्हें या उनमेंसे कुछको न देखा हो। मैं उपनिवेशमें रहनेवाले भारतीयोंका रुख समझ सकता हूँ। इसका कारण मुख्यतः उनका अज्ञान है। और इस अज्ञानका कारण है उनकी उदासीनता और आलस्य। उन्होंने न तो विधेयकपर ध्यान दिया है और न वे भारतीयोंसे सम्बन्धित कानूनोंका अध्ययन ही करते हैं। आफ्रिकन क्रॉनिकल के अग्रलेखमें जिस मैंने आपकी चेतावनीके बाद पढ़ा, उसमें मिरेकी सूचना परिलक्षित होती है। कोई भी यह बात देख सकता है। वह मूर्खतापूर्ण ही नहीं, शरारतभरा हुआ भी है। इसके लेखकने कानूनको पढ़नेका भी कष्ट नहीं उठाया और उसने ऐसे शब्दोंको इस कानूनके एक खण्डके मत्थे मढ़कर उद्धृत किया है जो वस्तुतः उसमें हैं ही नहीं। कुछ भी हो, हम भरसक उनके दिमागसे भ्रान्तधारणायें दूर करनेके प्रयत्नके सिवा कर ही क्या सकते हैं? मेरी रायमें आप एक आवश्यक वादा निभाकर ऐसा कर सकते हैं और शायद यह काम हमें करना भी होगा। वह यह है कि जब ही मामलेका निबटारा हो, और विधेयक यथाविधि-पुस्तकपर आ जाये, हम तुरन्त संघके प्रत्येक भागमें अपना अधिकारपत्र पेश करें और उनके लिए काम करना शुरू कर दें। तो मुझे उस कामसे खुशी ही होगी।[3] लेकिन इस सम्बन्धमें बादमें लिखूँगा।

१. उपलब्ध नहीं है।

२. देखिए "पत्र : [illegible]" पृष्ठ [illegible]।

३. [illegible]

श्री उमरको स्मरण दिलाना न भूलिए।[1] यह आवश्यक है कि पट्टा जल्दीसे जल्दी मिल जाये। विधेयकके सम्बन्धमें कोई अग्रलेख मैंने अभी तक नहीं लिखा है। जबतक मैं द्वितीय वाचनके विवरणको न देख लूँ तबतक कुछ लिखना नहीं चाहता।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२८१) की फोटो-नकलसे।

४२६. पत्र: एल० डब्ल्यू० रिचको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १४, १९११

प्रिय रिच,

लगता है कि बहस[2] कोई बुरी नहीं रही। आपका अलेक्जैंडरको[3] सिखाना-पढ़ाना बड़ा कारगर सिद्ध हुआ। हम आशा कर सकते हैं कि अब आवश्यक संशोधन हो जायेंगे। मैं सोचता था आप बहसके बारेमें अपने विचार मुझे तार द्वारा सूचित करेंगे। यहाँ जो विवरण प्राप्त हुआ है वह अधूरा ही है। मुझे आशा है कि प्रार्थनापत्र[4] कल पेश कर दिये गये होंगे।[5] क्या मैंने आपको सिल्वरटाउनसे टीमका प्रमाणपत्र और वे अन्य सभी प्रमाणपत्र ले लेनेके लिए लिखा था जो उनके पास निर्वासितोंके मामलोंके बारेमें भेजे गये थे? यदि न लिया हो तो कृपया अब ले लीजिए। मैं आपके सम्बन्धमें हुआ पत्र-व्यवहार[6] और साथ ही आपके बारेमें एक अग्रलेख[7] भी प्रकाशित कर रहा हूँ। यदि आप सोचें कि यह उचित नहीं है तो कृपया तार सीधे फीनिक्स भेज दें। यह पत्र आपको बुधवारको सुबह या उससे भी पहले ही मिल जायेगा। और यदि आपका तार १ बजेसे पहले फीनिक्स भेज दिया गया तो वह सामग्री रोकी जा सकेगी। परन्तु मेरा खयाल है कि इसे छपना चाहिए। यदि संशोधन

1. देखिए "पत्र: [illegible]", पृष्ठ ४०८-०९।
2. विधेयकके द्वितीय वाचनका प्रस्ताव मार्च १३, १९११ को आरम्भ हुआ था।
3. विधेयकके द्वितीय वाचनके समय जनरल स्मट्सके भाषणके बाद श्री अलेक्जैंडरने एशियाइयोंकी [illegible] आकर [illegible] किया। गांधीजीने स्वयं श्री अलेक्जैंडरको एक तार भेजा था। देखिए "तार: अलेक्जैंडरको", पृष्ठ ४८०।
4. देखिए "[illegible] प्रार्थनापत्र: [illegible]", पृष्ठ ४७९-८०, तथा "[illegible] प्रार्थनापत्र: [illegible]", पृष्ठ ४८१-८२।
5. मार्च १८, १९११ के इंडियन ओपिनियनमें गुजराती भाषामें प्रकाशित समाचारके अनुसार केप, नेटाल और ट्रान्सवालके प्रार्थनापत्र १५-३-१९११ को संसदके समक्ष प्रस्तुत किये गये थे।
6. अंग्रेजी और गुजरातीमें [illegible]; देखिए इंडियन ओपिनियन, १८-३-१९११।
7. देखिए "[illegible]" ("[illegible]"), इंडियन ओपिनियन, १८-३-१९११।

नहीं किये गये तो हमें इस मामलेमें आगे जाना होगा और इस घटनाका प्रयोग जनरल स्मट्सके विरुद्ध करना पड़ेगा।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२८५)की फोटो-नकलसे।

४२७. पत्र : 'रैंड डेली मेल' को[1]

जोहानिसबर्ग
मार्च १८, १९११[2]

महोदय,

आपके आजके अग्रलेखकी एक ही बातपर कुछ शब्द कहनेकी अनुमति चाहता हूँ। यदि मुझे अपने देशवासियोंकी आकांक्षाओंको व्यक्त करनेका अधिकार है तो मैं कह सकता हूँ कि विभिन्न प्रान्तोंमें बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंको प्रभावित करनेवाली वर्तमान स्थितिको चुपचाप स्वीकार कर लेनेका प्रश्न न तो इस समय है और न पहले ही कभी था। जहाँतक ट्रान्सवालका सम्बन्ध है वर्तमान विधेयक इतना ही कर सकता है कि इससे सत्याग्रह स्थगित हो जाये। और यह भी तब, जब विधेयकमें इस बातको स्पष्ट करनेके लिए आवश्यक संशोधन कर दिये जायें कि अधिवासी एशियाइयोंके नाबालिग बच्चे और पत्नियाँ, चाहे वे इस समय ट्रान्सवालमें हों या उसके बाहर, इस समय जिन अधिकारोंका उपभोग कर रही हैं वे उनसे छीने नहीं जायेंगे और जो थोड़े-से उच्च शिक्षा-प्राप्त एशियाई शैक्षणिक कसौटीके अन्तर्गत प्रवेश करेंगे प्रान्तीय पंजीयन कानूनोंसे बरी रहते हुए वे संघ-राज्यके किसी भी भागमें निवास कर सकेंगे। सत्याग्रहके साथ-साथ भारतीयोंने और साम्राज्य तथा भारतीय सरकारोंने भी सदा उन कानूनोंको रद करनेपर जोर दिया है जो उनके लिए भू-सम्पत्ति रखना वर्जित करते हैं और जिनसे उनकी आवागमन आदिकी स्वतन्त्रतामें खलल पहुँचता है। मुझे पूरा यकीन है कि केप और नेटालके भारतीय अपने वर्तमान अधिकारोंको सीमित करनेवाले कानूनोंका भरसक मुकाबिला करेंगे और किसी भी हालतमें उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे। इस युगमें जिसे हम मोहवश प्रगतिका युग मानते हैं, कोई भी बात पत्थरकी लकीर नहीं कही जा सकती। जबतक यूरोपीय निवासी मेरे देशवासियोंके प्रति अबतक का व्यवहार करते रहे हैं मेरे देशवासियोंको चाहिए कि वे उससे अधिक अच्छा व्यवहार पानेकी पूरी कोशिश करें। यदि वे ऐसा नहीं करते तो आत्मसम्मानसे गिर जायेंगे। वर्तमान विधेयकमें शैक्षणिक कसौटी बाधा-कारी नहीं है

१. यह २५-३-१९११ के *इंडियन ओपिनियन*में जनरल स्मट्सके एक भेंटके साथ उद्धृत किया गया था।

२. साधन-सूत्रमें तारीख मार्च १८ है; लेकिन देखिए "पत्र : ए० इ० डब्ल्यू० ग्रिगरी", पृष्ठ ४९५।

यदि आप समूचे ब्रिटिश विधानको ही धोखा-धड़ी कह दें तो बात अलग है। अलबत्ता स्मट्सका लोर्ड कू द्वारा प्रतिपादित नीतिको ग्रहण करना समानताके विचारको स्वीकार करना है फिर भी यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि इस कानूनके लागू करनेमें निश्चय ही असमानता बरती जायेगी। इस प्रशासनिक असमानताको दक्षिण आफ्रिकामें व्याप्त पूर्वग्रह और मानव-स्वभावकी दुर्बलताके प्रति एक रियायत समझिए। स्वाभिमानी एशियाई इस पूर्वग्रहको हटानेका सच्चा प्रयत्न करनेके लिए बाध्य है। इसके लिए पहले तो वे उन कारणोंको दूर करेंगे जिनके चलते ऐसा पूर्वग्रह उत्पन्न हुआ और फिर वे यह सिद्ध करेंगे कि यह पूर्वग्रह मुख्यतया अनभिज्ञतापर आधारित है।

आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१९१) की फोटो-नकलसे।

४२८. तार: एल० डब्ल्यू० रिचको

जोहानिसबर्ग
मार्च १५, १९११

प्रवर समितिमें होनेवाली बहसके सम्बन्धमें अपने विचार तार द्वारा सूचित करें।

मो० क० गांधी

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२९२) की फोटो-नकलसे।

४२९. पत्र: एल० डब्ल्यू० रिचको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १५, १९११

प्रिय रिच,

सोमवारके बादसे आपका न कोई पत्र आया है और न तार। मैं इसका यह अर्थ लगाता हूँ कि आप संसद-सदस्योंमें अपने पक्षका प्रचार करनेमें बहुत व्यस्त रहे हैं। मेल के आगामी अंकमें प्रकाशित होनेवाले एक अग्रलेखका अपना उत्तर[1] मैं संलग्न कर रहा हूँ। उक्त अग्रलेख मैं आपको कल भेजूँगा। मैंने सोचा कि इसकी टीका करना आवश्यक है। जब मेल ने पहले-पहल इस प्रश्नपर लिखा था तभी मुझे ऐसा-कुछ करनेकी इच्छा हुई थी परन्तु लोरावकी उस सम्बन्धमें बहुत घबराये हुए थे

१. देखिए "पत्र: 'रैंड डेली मेल'को" पृष्ठ ४९५-९६।

और इसलिए मैं रुक गया था। मुझे विश्वास है कि आप पैदा होनेवाले संशोधन और उनकी प्रगति समय-समयपर तार द्वारा मुझे सूचित करते रहेंगे। हम पत्नियों और नाबालिग बच्चोंसे सम्बन्धित व्यवस्थामें कोई भी अनिश्चितता बरदाश्त नहीं कर सकते। साम्राज्य-सरकार और संघ-सरकारके बीच हुए पत्र-व्यवहारकी एक प्रति यदि आप मेरे पास भेज न चुके हों तो कृपया अब भेज दें। आज मैं आपसे इसकी एक प्रति पानेकी आशा कर रहा था।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन ५२९) की फोटो-नकलसे।

४३० पत्र एच० एस० एल० पोलकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १५, १९११

प्रिय पोलक

रिचको लिखे गये पत्रमें मैंने रैंड डेली मेल के जिस लेखका उल्लेख किया है वह लेख और व्यंग्य-चित्र बेस्टको भेज दिया गया है। इस पत्रके लिखनेके समय तक केप टाउनसे कोई तार नहीं आया। मुझे आशा है कि इस पत्रके पहुँचने तक वहाँ हमारे मित्र काफी रकम जमा कर लेंगे। प्राथमिक अवस्थाओंमें सत्याग्रहके लिए भी पहली आवश्यक वस्तु निधि ही होगी।

हृदयसे आपका

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस एन ५२९२ क) की फोटो-नकलसे।

४३१ पत्र 'प्रिटोरिया न्यूज' को

जोहानिसबर्ग
मार्च १६, १९११

महोदय

आपने मेरे साथ हुई जो भेंट-वार्ता प्रकाशित की है, देखता हूँ उसमें कतिपय ऐसी भूलें हैं जिनके परिणामस्वरूप जनतामें काफी भ्रम फैल गया है और भेंट-वार्ताका उपयोग उस उद्देश्यको हानि पहुँचानेकी दिशामें किया जा रहा है जो मुझे बहुत प्रिय है। जिसने भेंट की थी उसने संशोधन करवाए बिना भेंट-वार्तामें भूलोंका रह जाना अनिवार्य है और खासकर उस दशामें जब भेंट-वार्ता टेलीफोनपर हुई हो

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. उपलब्ध नहीं है।

जैसी कि यह हुई थी। इसलिए आशा है कि आप मुझे अपने स्तम्भों द्वारा उपर्युक्त भेंट-वार्तासे उत्पन्न भ्रमका निवारण करनेकी अनुमति देंगे।

मेरी स्थिति यह है: यदि यह नया विधेयक शैक्षणिक कसौटीमें पास हुए एशियाइयोंको एशियाई पंजीयन कानूनोंके अधीन हुए बिना संघमें आने देता है, और यदि इसके द्वारा जो व्यक्ति पंजीकृत हैं या ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेपर पंजीयनके अधिकारी हैं उनकी पत्नियों और नाबालिग बच्चोंके अधिकारोंका अपहरण नहीं होता — इसकी वर्तमान धाराओंसे ऐसे अपहरणकी आशंका होती है — तो अवश्य ही सत्याग्रह अन्त हो जाना चाहिए। मैं इस विधेयकको इस दृष्टिसे सन्तोषजनक मानता हूँ। जहाँतक केप और नेटालके एशियाइयोंका सवाल है, इस विधेयककी धाराओंको मैं कितने ही तीव्र रूपसे नापसन्द क्यों न करूँ, ट्रान्सवालके एशियाई विभिन्न प्रान्तोंमें मेरे देशवासियोंपर लादी जानेवाली इन दोनों निर्योग्यताओंके कारण सत्याग्रह जारी नहीं रख सकते। इस तरह विधेयकके बारेमें मेरा सन्तोष केवल ट्रान्सवाल और सत्याग्रह संग्राम तक ही सीमित है।

जो भारतीय इस समय गिरमिटियोंके रूपमें चाकरी कर रहे हैं उनकी संख्या १५ नहीं है बल्कि लगभग २१ है।

आपका,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५३ १) की फोटो-नकलसे।

४३२. तार: एच० एस० एल० पोलकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १८, १९११

सेवामें
पोलक
मार्फत रुस्तमजी
डर्बन

रिचका तार कि डंकन[1] हंटर[2] जैगर[3] द्वारा अपने-अपने प्रान्तोंके प्रार्थनापत्र प्रस्तुत। सभाके विचारमें प्रार्थना उचित। जवाब अत्यन्त उत्साहवर्धक। आज नहीं [प्रार्थनापत्र] समितिमें कल पहुँचेंगे। केपसे तार द्वारा परिस्थितिकी सूचना आई है।

गांधी

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२९६) की फोटो-नकलसे।

१. पैट्रिक डंकन; ट्रान्सवालसे संसद-सदस्य।
२. सर डेविड हंटर; नेटालसे संसद-सदस्य।
३. जे० डब्ल्यू० जैगर; केप कालोनीसे संसद-सदस्य।

४३३. पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको

मार्च १६, १९११

प्रिय रिच,

आपका पत्र मिला और तार भी।[1] आपने निश्चय ही जो कुछ सम्भव था किया। यदि आपके चले जानेके बाद भी विभिन्न भारतीय संघोंका वर्तमान एकीकरण जारी रहता है तो यह बहुत बड़े लाभकी बात होगी। यदि यह युवक डॉक्टर, पुत्र त्यागकी भावनासे अच्छी तरह काम करे, तो बहुत कुछ कर सकता है। मैं आपके नाम आये सात पत्रोंको आपके वर्तमान पतेसे भेज रहा हूँ। मॉडने कोई नई खबर नहीं दी है। मुझे आशा है कि आप [प्रवर] समितिमें पेश होनेवाले प्रत्येक संशोधनको सावधानीके साथ देखेंगे और यह ध्यान रखेंगे कि जनरल स्मट्स इस आशयका संशोधन पेश करके कि जो लोग शैक्षणिक कसौटीके अन्तर्गत प्रवेश करेंगे ट्रान्सवालके पंजीयन कानूनके अधीन नहीं होंगे कहीं इससे रंगभेद न पैदा कर दें। संशोधन यह होना चाहिए कि ऐसे व्यक्तियोंपर किसी भी प्रान्तके पंजीयन कानून लागू नहीं होंगे क्योंकि यदि ऐसा नहीं किया जाता तो ऑरेंज फ्री स्टेटमें प्रवेश निषिद्ध हो जायगा और प्रवास-सम्बन्धी समानताका सिद्धान्त खण्डित हो जायेगा। ट्रान्सवालके किसी प्रवासी कानूनमें ट्रान्सवालके पंजीयन कानूनसे मुक्ति ही यथेष्ट होती परन्तु संघके प्रवासी कानूनमें तो समस्त पंजीयन कानूनोंसे मुक्ति मिलना नितान्त आवश्यक है। कृपया यह भी समझ लीजिए कि जो एशियाई पंजीकृत है या पंजीयनके हकदार हैं या प्रवासकी कसौटीके अन्तर्गत प्रवेश करते हैं उनके नाबालिग बच्चोंकी रक्षा होनी ही चाहिए, फिर चाहे वे संघके बाहर हों या भीतर। जनरल स्मट्स निःसन्देह इस आशयका संशोधन पेश कर सकते हैं कि केवल वे ही एशियाई नाबालिग ट्रान्सवालमें प्रवेश कर सकेंगे जो ट्रान्सवालके बाहर परन्तु संघके भीतर हैं। *इंडिया* ने आपके प्रतिवेदनका पूरा विवरण छापा है।[2] पत्रमें वह बहुत अच्छा लगता है। जान पड़ता है कि कॉर्ड ऐम्टहिलने अपना फर्ज अच्छी तरह अदा किया है और यह देखकर मुझे हर्ष हुआ कि तुमने इतनी अच्छी तरह बोले। स्पष्ट है कि सारा मामला बहुत ही सफल रहा। मैं उन सबके नाम जानना चाहूँगा जो उपस्थित थे।[3] मॉडने मेरे पास ये नाम नहीं भेजे। लगता है साउथ आफ्रिकन न्यूज के लेखकसे कोई आशा नहीं की जा सकती। उसके रवैयेको देखते हुए यही कहना पड़ेगा कि उसके प्रति शिष्टाचार बरतना बेकार है। परन्तु आपके पत्रने उसे विचार करनेपर बाध्य किया।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२१९) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पाद-टिप्पणी १, पृष्ठ ४२६।
२. फरवरी २४, १९११ के अंकमें।
३. जब भारतीय श्री ऐम्टहिलसे मिलने गये थे।

४३४ पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १६, १९११

प्रिय पोलक,

रिचसे प्राप्त मानपत्र भेज रहा हूँ। मुझे आशा है कि रिचको मानपत्र दिये जानेका विवरण शीघ्र ही किसी अंकमें पूरा-पूरा छपेगा। अभी इस समय वह बड़ा प्रसंगानुकूल होगा। मैं अखिल भारतीय मुस्लिम लीगसे प्राप्त सामग्री संलग्न कर रहा हूँ।[2] इसके पीछे विज्ञापनका जो भाव है, उसे मैं पसन्द नहीं करता। परन्तु छपना है, इसे हमें प्रकाशित करना पड़ेगा। नायडूने मेरे पास सुधारके लिए एक प्रार्थनापत्र भेजा है। यह ३ पौंडी करके बारेमें है और इसका मसविदा या तो स्वयं उन्होंने या अय्यरने तैयार किया है। आपने अपने एक पत्रमें अय्यरके बारेमें जो-कुछ कहा था उसके बावजूद मैं उनकी नेकनीयतीपर भरोसा नहीं करता। वे स्वार्थसेवी व्यक्ति हैं अर्थात् आज वे एक बात लिखेंगे तो कल उसके ठीक विपरीत लिखेंगे। वे सर्वथा सिद्धान्तहीन आदमी हैं और सार्वजनिक महत्त्वके किसी भी मामलेमें उनके दखल देनेसे मुझे बेचैनी होती है — खासकर उस दशामें जब वे मेरा पक्ष लेते जान पड़ते हैं। वे मुझे सबसे अच्छे उस समय लगते हैं जब मुझपर इल्जाम लगाते हैं और खुलकर मेरा विरोध करते हैं, क्योंकि तब मैं जान जाता हूँ कि इस समय वे अपने किसी सार्वजनिक कार्यमें मुझसे सहायता करनेके लिए नहीं कहेंगे। मुझे भय है कि अब वे अपने ब्राह्मण होने और श्री पी० के० नायडूकी अपेक्षा अंग्रेजीका अधिक ज्ञान रखनेके बलपर उन्हें चकमा दे रहे हैं। पी० के० नायडूको मैंने जो सलाह दी है, उसे आप अब और अच्छी तरह समझ सकेंगे। उनके नाम अपने पत्रकी[4] प्रतिलिपि मैं आपके पास भेज रहा हूँ। मुझे उनके लिए दुःख होता है, क्योंकि मेरे लेखे वे चरित्रमें अय्यरकी अपेक्षा कई गुना अच्छे हैं। आश्रमके अधिकांश बच्चे और सत्याग्रही आज जोहानिसबर्गमें हैं। मैं उन्हें एक विशेष गाड़ीसे ले आया हूँ। यातायात प्रबन्धकने खास रियायती दरें लगाईं। छब्बीस आदमियों और बच्चोंके आने-जानेका किराया १ पौंड, १२ शिलिंग और ९ पेंस पड़ा। यदि आप या रिचने मुझे जोहानिसबर्गमें नहीं रोका तो मेरा इरादा उनके साथ शनिवारको १ बजेकी गाड़ीसे वापस चले जानेका है।

१. लन्दन-स्थित दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिके मन्त्री श्री रिचको यह मानपत्र लन्दनके क्राइटेरियन रेस्त्रॉमें आयोजित एक समारोहमें १६-२-१९११ को भेंट किया गया था। उसकी कार्यवाहीकी रिपोर्ट २५-३-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित हुई थी।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

३. पी० एस० अय्यर; डर्बनसे प्रकाशित आफ्रिकन क्रॉनिकलके सम्पादक।

४. यह उपलब्ध नहीं है।

वैसे मैं हर रोज शामको तो आश्रम लौट ही आया करूँगा। आज इस बातसे बड़ी खुशी हुई कि टेलीफोनपर आपकी आवाज पहलेसे काफी बुलन्द और बेहतर हो गई है। आशा है, अब जुकाम बिलकुल अच्छा हो गया होगा। प्रिटोरिया न्यूज़ के नाम अपने पत्रकी[1] प्रतिलिपि संलग्न कर रहा हूँ। यह पत्र इसलिए लिखा है कि मैंने लिखनेका वादा किया था। परन्तु भेंट-वार्ताको पुनः पढ़नेपर मुझे लगता है कि इसके लिखनेकी जरूरत नहीं थी। स्टेंटने मेटाल्फ और केपके बारेमें मेरे विचारको यथेष्ट रूपसे स्पष्ट कर दिया है। आँकड़ों और मेरे सन्तोषसे सम्बन्धित अन्तिम अनुच्छेदमें जो भूल रह गई है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बहरहाल मुझे आशा है कि आप मेरे पत्रको पर्याप्त समझेंगे।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१२) की फोटो-नकलसे।

४३५. पत्र : जे० जे० डोकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १७, १९११

प्रिय डोक,

मुझे लगता है कि एक छोटी-सी बातके कारण — यूरोपीयोंके लिए यह छोटी ही है — संघर्षको लम्बा करना पड़ेगा। श्री रिचने इस आशयका तार भेजा है कि जनरल स्मट्स एक संशोधन पेश करेंगे जो भावी प्रवासियोंको ट्रान्सवालके एशियाई कानूनसे बरी रखेगा। कहनेका तात्पर्य यह है कि वे तब भी ऑरेंज फ्री स्टेटके एशियाई अध्यादेशके अधीन तो रहेंगे ही और इसलिए प्रवासी कानूनमें रंगभेद फिर भी बना रहेगा। मुझे लगता है कि हमारे लिए ऐसी कोई रियायत स्वीकार करना सम्भव नहीं होगा। जहाँतक नवप्रवासियोंका सम्बन्ध है, सम्पूर्ण संघसे रंगभेदको हटा देनेसे भी ऑरेंज फ्री स्टेटको हद तक कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि स्थानीय निर्योग्यताएँ तब भी बनी रह सकती हैं और रहेंगी। [संघीय प्रवासी कानूनमें] जबतक छूटवाली धारा नहीं शामिल की जाती तबतक कोई भी शिक्षित भारतीय प्रवासी फ्री स्टेटमें पैर ही नहीं रख सकेगा। व्यवहारमें फ्री स्टेटमें किसी शिक्षित भारतीयके बसनेकी गुंजाइश ही नहीं है, क्योंकि वहाँ ऐसे भारतीय बहुत कम हैं जिन्हें उनकी सेवाओंकी आवश्यकता हो। इस विषयपर जो पत्र-व्यवहार[2] हुआ है, उसकी प्रतियाँ मैं आपके पास भेज रहा हूँ। मैं यह जाननेके लिए उत्सुक हूँ कि इस सारे मसलेपर आपकी प्रतिक्रिया क्या है? मुझे लगता है कि यदि ट्रान्सवालके प्रवासी कानूनमें रंगभेद स्वीकार

१. देखिए "पत्र : प्रिटोरिया न्यूज़को", पृष्ठ ४९७-९८।
२. गांधीजी और स्मट्सके बीच हुआ पत्र-व्यवहार।

करना पड़ता है तो उसका स्थान लेनेवाले संघके प्रवासी कानूनमें भी इसे स्वीकार करना अवश्य होगा। मैं इस समय कार्यालय नहीं छोड़ना चाहता, नहीं तो मैं आपके पास आ जाता।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१ ४) की फोटो-नकलसे।

४३६. तार: एल० डब्ल्यू० रिचको[1]

जोहानिसबर्ग
मार्च १७, १९११

संविधान अधिनियम अध्याय तैंतीस।[2]

गांधी

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१ ६) की फोटो-नकलसे।

४३७. तार: जनरल स्मट्सके निजी सचिवको

जोहानिसबर्ग
मार्च १७, १९११

अभी मालूम हुआ कि जनरल स्मट्स प्रवासी विधेयकमें संशोधन पेश करनेवाले हैं जिसके अनुसार भावी एशियाई प्रवासी १९०८के कानून छत्तीससे बरी हो जायेंगे। किन्तु इसका यह अर्थ हुआ कि ऐसे प्रवासियोंपर फ्री स्टेटका एशियाई कानून लागू होगा ही। यदि ऐसा हुआ तो इससे संघके प्रवासी कानूनमें रंगभेद प्रविष्ट हो जायेगा जो विधान तौरपर मुख्यतः भारतीयोंके लिए बेहद अपमानजनक होगा। इसलिए आशा है कि एशियाई प्रवासी समस्त पंजीयन कानूनोंसे बरी किये जायेंगे। जनरल स्मट्सने अपना यही इरादा मेरे नाम अपने एक तारमें व्यक्त किया था। नम्र निवेदन है कि सत्याग्रहियोंको सन्तुष्ट करनेके लिए संघ विधेयकमें एकरूपता बिलकुल न होगा और पत्नियों तथा नाबालिग बच्चोंको पूर्ण संरक्षण देना

१. यह रिचके उस तारके उत्तरमें भेजा गया था जिसमें उन्होंने लिखा था: "[illegible] एशियाई पंजीयन कानूनसे [illegible] बरी [illegible] आवश्यक था। [illegible] कानून [illegible] भी [illegible] नहीं होंगे। [illegible] [illegible]।" (एस० एन० ५१०५)

२. ४ मार्च [illegible] इंडियन ओपिनियन १ पृष्ठ ४५०।

जैसा कि अबतक था आवश्यक। इसलिए अनुरोध है कि यदि फ्री स्टेटके सदस्य फ्री स्टेटकी सीमाके भीतर एक भी शिक्षित एशियाईको सहन नहीं कर सकते और यदि पत्नियों और नाबालिगोंकी रक्षा नहीं हो सकती तो अच्छा होगा कि यह विधेयक पास ही न किया जाये और ट्रान्सवालकी स्थितिका स्थानीय विधानमें संशोधन करके निपटारा कर दिया जाये।

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५३९९) की फोटो-नकल और २५-३-१९११ के इंडियन ओपिनियन से।

४३८. तार : एल० डब्ल्यू० रिचको

जोहानिसबर्ग
मार्च १७, १९११

स्मट्सके नाम मेरे तारकी[1] प्रति आपको मिलेगी। कार्टराइटसे अभी-अभी मिला हूँ। वे मुझसे सहमत हैं। सहमत हैं। जहाँ सिद्धान्त ही खतरेमें हो वहाँ जातकी बात निकालनेका प्रश्न ही नहीं है।[2]

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५३९८) की फोटो-नकलसे।

४३९. पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको

मार्च १७, १९११

प्रिय रिच,

आपके पत्र और तार मिले। आजका दिन बड़ा घटनापूर्ण रहा। आपने जो समाचार[3] दिये हैं उससे मेरा मन हिल गया है। मैंने जैसे ही इस समाचारका कार्टराइटसे जिक्र किया उन्होंने कहा :

यह है स्मट्स। यदि एक भी गोरा आपके आदमियोंको कोई अधिकार दिये

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. यह रिचके उस तारके जवाबमें था जिसमें कहा गया था : "किन्हें जातकी बात निकालना और समझौतेकी अनिश्चितता समाप्त करना था छोड़, ऐसी बातें हमारे समर्थकोंको पसन्द नहीं। मदी उनमें हरेक बाबत ठीक नहीं।" (एस० एन० ५३००)।

३. देखिए "पत्र : जे० जे० डोकको", पृष्ठ ५०१-०२।

जानपर आपत्ति उठाये तो मैं उसे तुच्छ करनेकी चेष्टा करूँगा ताकि ही उसको इसके बदले एक सामान्य बोझा पड़े।

आपके दूसरे तारसे[1] यह जानकर कि हमारे समर्थक हमारे आग्रहको बालकी खाल निकालना समझकर उसकी निन्दा करते हैं मैं विचलित हो उठा था। मैंने सोचा था कि हमें अपने समर्थकोंको यह तथ्य समझानेके लिए बहुत श्रम करना पड़ेगा कि हम कोई नई वस्तु नहीं माँग रहे हैं और फ्री स्टेटके रंगभेदका विरोध अनिवार्य है, क्योंकि यह कानून समूचे संघके लिए है। लेकिन अब मैं देखता हूँ कि आपने कुमारी श्लेसिनके तारका गलत अर्थ समझनेके कारण ही वैसा तार भेजा था। उन्होंने सोचा कि आप कभी ऐसा तो सोचेंगे नहीं कि हम इस समय दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले शिक्षित भारतीयोंके फ्री स्टेटमें अबाधित प्रवेशकी माँग करेंगे। यदि हम सत्याग्रह आन्दोलनका एक भाग मानकर वैसी माँग करते तो यह स्पष्ट रूपसे विश्वासघात होता। परन्तु यदि फ्री स्टेटमें शिक्षित प्रवासियोंका प्रवेश निषिद्ध करनेके प्रयत्नका विरोध न किया जाये तो सत्याग्रही कायर ठहराये जायेंगे। हम रंगभेदके विरुद्ध लड़ रहे हैं और चाहे वह ट्रान्सवालके कानूनमें हो चाहे संघके कानूनमें हमें उससे लड़ाई जारी रखनी है। मुझे आशा है कि आप समर्थकोंको यह दृष्टिकोण अपनानेपर राजी कर सकेंगे। मैंने अभीतक यह मालूम नहीं किया है कि इसके बारेमें सभी सत्याग्रहियोंकी भावना क्या है। श्री काछलिया और दूसरे लोग इस समय यहाँ कार्यालयमें हैं उनके और मेरे विचार तो एक ही जान पड़ते हैं। व्यक्तिगत रूपसे मैं चाहूँगा कि यह विधेयक अनिश्चित कालके लिए स्थगित कर दिया जाये और ट्रान्सवालके प्रवासी कानूनमें वांछित परिवर्तन कर दिया जाये तब फ्री स्टेटके बारेमें हमें कोई प्रश्न उठानेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी केप और नेटालके बारेमें कोई प्रश्न उठेगा नहीं और सब-कुछ पूरी तरह सन्तोषप्रद होगा। यदि जनरल स्मट्स नहीं मानते तो मुझे आशा है कि केपके मित्र भी सत्याग्रह करेंगे क्योंकि प्रश्न तब प्रान्तीय नहीं रह जायेगा। संघके किसी कानूनमें रंगभेदका विरोध करनेमें उनका भी उतना ही हित है जितना कि ट्रान्सवालके भारतीयोंका। और यदि वे सत्याग्रहको अपना लेंगे तो सारा मामला आनन-फानन खत्म हो जायेगा। मैं गुल और दूसरोंको जानेके बारेमें लिख रहा हूँ। लॉर्ड क्रू और मॉर्लेके वार्तायें[4] उनके लिए प्रशंसाकी चीज हैं। उनसे प्रकट होता है कि दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिने कितना बड़ा और उपयोगी काम किया है। वार्ताओंमें सभी तर्क या मुद्दे आ गये हैं। सभी जगहोंके एशियाइयोंको सन्तुष्ट करनेके लिए सरकार क्या-कुछ करे, इससे सम्बन्धित आपका संक्षिप्त लेख प्रशंसनीय है। मुझे

१ देखिए पिछला शीर्षक।

२. देखिए "तार: जनरल स्मट्सके निजी सचिवको" पृष्ठ ५२०-२१।

३ यह उपलब्ध नहीं है।

४ लॉर्ड्स सभामें विधेयक पेश करते समय [illegible] उसका समर्थन भी "[illegible]" ("[illegible] पुलिस") प्रस्तुत की थी, जिसमें वे बातें भी शामिल थे। देखिए "पत्र [illegible]" पृष्ठ ५२२-२३।

आशा है कि संसदके सभी सदस्योंने इसे पढ़ा होगा। क्या आप महर्षि और मेटाक्से अलेक्जैंडरको' एक-एक पत्र भेजना ठीक समझते हैं? मेरा ख्याल है कि उनकी सहायता बहुत मूल्यवान होगी।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५११२) की फोटो-नकलसे।

४४० पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

मार्च १७, १९११

प्रिय पोलक,

मुझे आशा है आपको वहाँके हमारे मित्रोंमें कर्तव्यकी भावना जगानेमें सफलता मिली होगी। यद्यपि मैं अभी भी आशा करता हूँ कि स्मट्सके नाम हमारे तारका' अनुकूल उत्तर मिलेगा, तथापि यहाँ हम संघर्ष पुनः प्रारम्भ करनेकी पूरी तैयारी कर रहे हैं। कार्टराइट अपना रुख और स्मट्स दोनोंसे बहुत खिन्न हैं। मुझे मालूम हुआ है कि वे जिस बातकी आशा कर रहे हैं वह न हुई तो लगभग एक सप्ताहमें कीडर को छोड़ देंगे।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५११३) की फोटो-नकलसे।

४४१ प्रवासी विधेयक

इस विधेयकके द्वितीय वाचनपर जो बहस हुई उससे प्रकट होता है कि इस नाजुक मौकेपर श्री रिचका केप टाउनमें होना हमारे लिए कितना शुभ हुआ है। टाइम्स' ने कहा था कि श्री रिच उन व्यक्तियोंकी मदद करनेके लिए दक्षिण आफ्रिका आ रहे हैं जो एशियाई प्रश्नका कठिन सवाल हल करनेकी कोशिशमें लगे हैं। घटना-चक्रको देखते हुए ये शब्द बिलकुल सही निकले। ऐडवोकेट श्री अलेक्जैंडरने बहसमें जो प्रभावशाली हिस्सा लिया उसमें भी रिचका हाथ जान पड़ता है। भारतीयोंने तीनों प्रान्तोंमें जो-जो मुद्दे उठाये थे उनमें से एक भी मुद्दा उन्होंने [अलेक्जैंडरने] नहीं छोड़ा और यह बात स्पष्ट कर दी कि यदि विधेयक किसी संशोधनके बिना पास हो गया तो सत्याग्रहियोंको शान्तिकी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। नेटाल और केपके भारतीयोंने जो आपत्तियाँ उठाई हैं यदि उन्हें दूर करनेकी दृष्टिसे संशोधन करके वहाँके भारतीयोंकी स्थितिमें परिवर्तन नहीं किया गया और यदि सत्याग्रही

१. देखिए "प्रवासी विधेयक", पृष्ठ ५०५-०६।
२. देखिए "तार : जनरल स्मट्सके निजी सचिवको", पृष्ठ ५१९।

अपनी मांगोंकी पूर्तिपर तत्काल संघर्ष बन्द कर देनेके लिए नैतिक रूपसे बँधे हुए नहीं हैं तो निःसन्देह इस विधेयकको सम्मानजनक समझौतेके रूपमें स्वीकार न करना उनके लिए सर्वथा उचित होगा। परन्तु हमें आशा है कि सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिक द्वारा दी गई सलाहको जनरल स्मट्स मान लेंगे और केप तथा नेटालके भारतीयों द्वारा की गई उचित प्रार्थनाओंको स्वीकार कर लेंगे। वे कोई नई चीज नहीं चाहते। वे तो केवल इतना ही चाहते हैं कि मौजूदा अधिकारोंमें फेरफार न करनेका वचन दे दिया जाय। कहा जाता है कि जनरल स्मट्स चाहते हैं कि प्रतिवर्ष केवल बारह एशियाइयोंको शैक्षणिक कसौटीके अन्तर्गत प्रविष्ट होने दिया जाय। हमारी रायमें यह बिलकुल बेतुकी बात है। ट्रान्सवालके भारतीयोंने सुझाया था कि ट्रान्सवालमें प्रतिवर्ष ६ [भारतीय] आने दिये जायें। निःसन्देह केप और नेटालके लिए यह संख्या बहुत छोटी है। कानूनका सुचारु रूपसे कार्यान्वित होना बहुत-कुछ उस भावनापर निर्भर करेगा जिससे जनरल स्मट्स विनियमोंको गढ़नेकी प्रेरणा लेंगे और कानून तथा विनियम जिसके अनुसार लागू किये जायेंगे। सत्याग्रहियोंके मामलेका फैसला अगले चन्द दिनोंमें ही हो जायेगा। जनरल स्मट्सने कहा है कि इस विधेयकका मन्शा शैक्षणिक कसौटीके अन्तर्गत प्रवेश करनेवाले भारतीयोंको पंजीयन कानूनसे मुक्त करना है। अतएव विधेयकमें इस अभिप्रायको स्पष्ट करनेके उद्देश्यसे जनरल स्मट्सको केवल यही करना है कि वे मामूली शाब्दिक संशोधन कर दें। हम यह विश्वास तो कर ही नहीं सकते कि वे सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके विपरीत जाना चाहते हैं और [इस प्रकार] नाबालिग एशियाइयोंको उन अधिकारोंसे वंचित रखना चाहते हैं जिन्हें अदालत मंजूर कर चुकी है अथवा वे विधिसम्मत निवासियोंकी स्त्रियोंको पूरा संरक्षण नहीं देना चाहते।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-३-१९११

४४२ नया विधेयक संसदमें

इस विधेयकके दूसरे वाचनके समय जो बहस हुई, उसे सभी भारतीयोंको पढ़ना चाहिए। उसमें बहुत-कुछ जानने योग्य मिल जायेगा। नये विधेयकमें उचित संशोधन हों या न हों किन्तु उक्त विधेयकके सम्बन्धमें क्या कहा गया और उसमें केवल एशियाई प्रश्नपर कितना जोर दिया गया यह देखने योग्य है। सभी देख सकते हैं कि यह सारा प्रभाव सत्याग्रहकी लड़ाईका है। लॉर्ड क्रू ने १९ ९में एक सुझाव दिया और बादमें फिर दूसरा सुझाव दिया और जनरल बोथासे अनुरोध किया कि उन्हें भारतीयोंकी माँग स्वीकार कर लेनी चाहिए। ज्यों-ज्यों सत्याग्रह लम्बा खिंचता गया त्यों-त्यों ब्रिटिश सरकार और उसी प्रकार स्थानीय सरकारके विचार भी बदलते चले गये। [पहले कहा गया था कि] १९ ७का कानून २ कभी रद नहीं किया जायेगा लेकिन [बादमें] उसे रद करना स्वीकार किया। [पहले] स्वेच्छया पंजीयन स्वीकार

नहीं किया था। लेकिन [बादमें] किया। [पहले कहा था कि] शिक्षितोंको कभी न आने देंगे लेकिन फिर एक अलग कानूनके मातहत आने देनेकी बात मानी। फिर कहा अब इससे आगे तो बढ़ेंगे ही नहीं यदि एशियाइयोंकी माँग स्वीकार करेंगे तो यह अनीति होगी लेकिन अनीतिकी बात अब खत्म हो गई है और एशियाइयोंकी माँग मंजूर कर ली गई है। पूछा जा सकता है इस माँगके मंजूर किये जानेसे मिला क्या? विधेयक हमारे मनोनुकूल रीतिसे पास हो जाये तो हम इसका जवाब सोचेंगे।

महत्त्वकी बात तो इतनी ही है कि ज्यादा या कम जो-कुछ माँगा था वह मिल गया है। सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिक जो कभी हमें धमकाते थे अब यह कहते हैं कि जनरल स्मट्सको चाहिए कि वे एशियाइयोंको सन्तुष्ट करें। वे डरते हैं कि सत्याग्रह कहीं समस्त दक्षिण आफ्रिकामें न फैल पाये। श्री डंकन जिन्होंने काला कानून बनाया था अब उसे रद कर देनेकी बात करते हैं और सोचते हैं कि इस नये कानूनके फलस्वरूप सत्याग्रह बन्द हो जाय तो अच्छा हो। एक भी सदस्यने सत्याग्रहके विरुद्ध भाषण नहीं दिया। इससे अधिक बड़ी जीत दूसरी क्या होगी?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-३-१९११

४४३. तार: एल० डब्ल्यू० रिचको

जोहानिसबर्ग
मार्च १८, १९११[1]

कलके तारकी पुष्टि करता हूँ। यदि शिक्षित एशियाई फ्री स्टेट कानूनसे विमुक्त नहीं किये जाते तो रंगभेदके विरुद्ध हमारा संघर्ष समाप्त नहीं हो सकता। इस अत्यन्त अपमानजनक रूपमें रंगभेद बढ़ता रहा तो सत्याग्रहका क्षेत्र विस्तृत हो जायेगा। जैसा कि सर पर्सीने स्पष्ट कहा है इस मुद्देपर समझौता नहीं हो सकता। आशा है केप और नेटालके एशियाई अब अवश्य ही हमारा साथ देनेकी जरूरत महसूस करेंगे। परन्तु वे साथ दें या नहीं मेरी सलाह साथी सत्याग्रहियोंको यह है कि वे दृढ़तासे संघर्ष जारी रखें। इस समय उनसे सलाह कर रहा हूँ। उनके निर्णयकी सूचना आपको तारसे दूँगा। केपके आपत्तियोंपर वन इमस्ठ करनेके लिए जोर डालिए। क्या मैं कुछ लिख सकता हूँ?

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५३११) की फोटो-नकलसे।

1. इसमें यद्यपि मार्च १० है पर लगता है यह गलत है। रिचके नाम भेजे गये कलके तार (पृष्ठ ५ ३) की पुष्टि करते हुए यह तार भेजा गया, वह १७-३-१९११ को भेजा गया था। अतः इस तारकी तारीख मार्च १८ होनी चाहिए

४४४ पत्र एल० डब्ल्यू० रिचको

मार्च १८, १९११

प्रिय रिच,

"सभी तरहके संकटकी आशंका" — का क्या अर्थ है?[1] मैंने इसका अर्थ यह लगाया है कि विधेयकका केवल हम ही नहीं बल्कि आम तौरपर पूरे समाजकी ओरसे [संसदके] सदस्य भी कड़ा विरोध करेंगे। मैं स्वीकार करता हूँ कि यदि यह विधेयक वापस ले लिया जाये और ट्रान्सवालका प्रवासी कानून संशोधित कर दिया जाये तो मुझे खुशी होगी। परन्तु यदि विधेयकपर बहस होती है तो फ्री स्टेटके बारेमें आपको सब प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर देना होगा। उदाहरणके लिए, क्या भावी एशियाई प्रवासी नियन्त्रणोंसे मुक्त रहेंगे, क्या वे भू-सम्पत्ति रख सकेंगे इत्यादि। हम ऐसा कुछ नहीं चाहते। हम तो इतना ही कहते हैं कि प्रवासके बारेमें और चूँकि निवास प्रवासका ही अंग है इसलिए निवासके बारेमें भी हमारा वही दर्जा होना चाहिए जो यूरोपीयोंका है। जहाँतक नागरिक अधिकारोंका प्रश्न है, हम भी अन्य एशियाइयोंपर लागू नई निर्योग्यताएँ मान्य कर लेंगे। अपनी बात स्पष्ट करनेके लिए दृष्टान्त देता हूँ। ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेवाले शिक्षित भारतीयपर पंजीयन कानून लागू नहीं होगा परन्तु १८८५ का कानून ३ उसपर फिर भी लागू होगा। अब ऑरेंज फ्री स्टेटके विधानका अध्याय ३३ न केवल एशियाइयोंके निवासकी शर्तें निश्चित करता है बल्कि वह उनसे दूसरे सामान्य कानूनी अधिकार भी छीन लेता है। खण्ड ७ और ८ से ऐसे अधिकार प्रभावित होते हैं। इसलिए संशोधनके द्वारा एशियाइयोंको खण्ड १, २, ३, ४, ५, ६, ९, १० और ११ के प्रयोगसे मुक्त किया जा सकता है। यदि आप इस अध्यायको पढ़ें तो आप मेरा अभिप्राय और अच्छी तरह समझ जायेंगे। हम जनताके सामने हर तरहसे निष्कलंक दिखना चाहते हैं और मेरा दावा है कि हम वास्तवमें निष्कलंक हैं। वर्तमान सत्याग्रहका किसी व्यक्ति-विशेषके निजी लाभसे कुछ भी वास्ता नहीं है। यदि हम यह बात स्पष्ट कर दें और उसपर भी यदि हमारा प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया जाये तो हम अपने विरोधियोंको हर मानेमें दोषी ठहरायेंगे। ऐसे संकट कालके मौकेपर जनरल स्मट्स जिनके बारेमें कार्टराइटकी राय है कि या तो वे पूर्ण रूपसे विश्वासघाती हैं या अत्यन्त मूर्ख हैं, आपसे मिलनेसे इनकार करके इन दोनोंमें से कोई एक गुण प्रकट कर रहे हैं। इनकी एक ही मुलाकातसे सारे प्रश्न तय किये जा सकते हैं, और फ्री स्टेटवालोंको भी यह दिखाकर शान्त किया

१. श्री आल्स रिचके १८ मार्चके तारसे है जिसमें कहा गया था : "समितिमें कैसे विरोध [illegible]। [illegible] सूचित कीजिए [illegible] क्या अर्थ लिया। [illegible] सभी ओरसे [illegible] आशंका है।" (एस० एन० ५३१)।

जा सकता है कि उनका भय सर्वथा निराधार है। मैं आशा करता हूँ कि आप अपनी ओरसे मौडको फिर हिदायत कर देंगे। उसके नाम अपने पत्रकी[१] एक प्रतिलिपि मैं आपके पास सोमवारको भेजूँगा। किन्तु आप उसे क्या लिखें इसमें मेरा पत्र मार्गदर्शन नहीं कर सकेगा क्योंकि जिस समय तक आपको अपना पत्र डाकमें छोड़ देना चाहिए यह पत्र उसके बाद पहुँचेगा।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५११७) की फोटो-नकलसे।

४४५. पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

मार्च १८, १९११

प्रिय पोलक,

मुझे रिच या स्मट्स किसीका भी कोई तार नहीं मिला है इसलिए आपको टेलीफोनसे देने योग्य कोई खबर नहीं है। नटेसनका पत्र संलग्न है। मैंने आपके नाम उनका पत्र और डॉक्टर मेहताका भी पत्र खोल लिया था। नटेसनने मुझे जो पत्र लिखा है वह भी मैं आपके पास भेज रहा हूँ। एक पार्सल जिसमें उनके प्रस्तावकी[२] प्रतियाँ हैं फीनिक्स भजी जा रही है। मेरे नाम लिखा गया नटेसनका पत्र कृपया वापस कर दीजिएगा क्योंकि मैंने अभी उसका उत्तर नहीं दिया है। ट्रान्सवालकी समस्याका रिच द्वारा सुझाया गया समाधान[३] जो केप आर्गस में छपा है और जिसे मैंने कल आपके पास भेजा था इंडियन ओपिनियन में भी उद्धृत होना चाहिए।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१२०) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र : मौड पोलकको", पृष्ठ ४९०-९१।

२. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके इलाहाबाद अधिवेशनमें दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमें किया गया प्रस्ताव; इसे ८-४-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत किया गया था।

३. इसे "श्री रिचका सुझाव" शीर्षकसे २५-३-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत किया गया था।

४४६. तार : गृह-मन्त्रीके निजी सचिवको[1]

२१, कोर्ट स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
मार्च १८, १९११

चीनी समितिकी ओरसे मेरा निवेदन है कि संसदमें विचाराधीन प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयकके बारेमें ब्रिटिश भारतीय संघके निवेदनमें समिति भी शामिल है। मुझे विश्वास है कि इस विधेयकमें समुचित संशोधन द्वारा संघ या प्रवासि-मंत्रकी जो भी सम्भावनाएँ प्रतीत होती हैं वे सब दूर हो जायेंगी और वैध निवासियोंकी पत्नियों और नाबालिग बच्चोंको पूर्ण संरक्षण प्रदान किया जायगा। समितिका यह भी विश्वास है कि यदि यह विधेयक कानून बन जाये तो सरकार इसके प्रशासनमें यह व्यवस्था करेगी कि सुशिक्षित चीनी एक सीमित संख्यामें संघके अन्दर प्रवेश पा सकें और ऐसे चीनी एशियाई चीनी नियम कानूनके अधीन न रहेंगे।

मार्टिन ईस्टन
कार्यकारी अध्यक्ष
चीनी संघ
पोस्ट बॉक्स ६५२२

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१२१) की फोटो-नकलसे।

४४७. चीनी सत्याग्रहियोंकी सूची[2]

[मार्च १८, १९११ या उसके बाद]

गिरफ्तार चीनी सत्याग्रही जिन्हें सख्त कैदकी सजा दी गई

सी० एफ० जे० फेंक	(१ मास सख्त कैद)
की कॉग	(१ मास सख्त कैद)
लुक माल लिमसन	(१ मास सख्त कैद)
हो लो	(१ दिन सख्त कैद)

१. इसके अन्तमें लिखा हुआ पोस्ट-बॉक्स नम्बर गांधीजीका था। अतः अनुमान है कि यह तारका मसविदा उन्होंने ही तैयार किया होगा।

२. इस दस्तावेज पर कोई तारीख नहीं दी है, लेकिन इसे पिछले शीर्षक (एस० एन० ५१२१) के बाद रखा गया है जिसपर १८ मार्चकी तारीख है, और जिसका सम्बन्ध चीनियोंकी सत्याग्रहसे ही है।

थाम यू (१ मास सख्त कैद)
चौंग आह् की (१ मास सख्त कैद)
वो किम (१ मास सख्त कैद)
आह् वी (१ मास सख्त कैद)
इस्माइल इसाक
लई बेंजामिन
ये या तो फोर्ट [जेल] में हैं या डीपक्लूफ [जेल] में।

हस्तलिखित मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१२२) जिसमें अन्तिम तीन पंक्तियाँ गांधीजीके स्वाक्षरोंमें हैं, की फोटो-नकलसे।

४४८. पत्र : मगनलाल गांधीको

टॉल्स्टॉय फार्म
फाल्गुन बदी ४ [मार्च १९, १९११][1]

चि० मगनलाल,

इस पत्रके साथ जो कागजात भेज रहा हूँ उनपर उचित कार्रवाई करना।

मुझे भरोसा है यहाँ आते ही छगनलालका स्वास्थ्य ठीक हो जायेगा। मैं चाहता हूँ कि वह तुरन्त आ जाये।

मैं आनन्दीलालसे कोई उम्मीद नहीं रखता। अगर वह मनमें ठान ले तो आदरणीय अमृतलाल भाईको प्रसन्न कर सकता है। उसने श्री कॉर्डिजपर जो आक्षेप किया है उससे सिर्फ यही मालूम होता है कि वह वहमी और उतावले स्वभावका है। यही कारण है कि उसी डाकसे प्राप्त उनके भाषणकी कतरन तुम्हें भेज रहा हूँ। सार यह है कि हमें अपना मन निर्मल रखना चाहिए और दूसरोंके कामोंका सीधा अर्थ लेना चाहिए। ऐसा करें तो उनके काम अपने-आप असली रूपमें दिखाई देने लगेंगे।

अब हरिलालके बारेमें। तुम्हें उसमें जितने अधिक दोष दिखाई दें तुम उसपर उतना अधिक प्रेम-भाव रखो। बड़ी आग बुझानेके लिए ज्यादा पानीकी जरूरत होती ही है। उसकी तामसी प्रवृत्तिको पराजित करनेका उपाय तुम्हारी सात्त्विक वृत्तियोंकी विजय प्रबलता ही है। अगर वह छुट्टी माँगे तो उसे अंगरखा दिये छुटकारा है।

तुम तमिलमें अच्छी प्रगति कर रहे हो। कुछ तमिल लोगोंसे बोलनेकी आदत रखो तो अच्छा रहे।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ५८०) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी।

१. स्पष्ट है कि यह पत्र मार्च १९११ में छगनलाल गांधीके आफ्रिका पहुँचनेके बाद लिखा गया था। उस वर्ष फाल्गुन बदी ४ को, मार्चकी १९ तारीख पड़ती थी।

४४९. तार : जनरल स्मट्सके निजी सचिवको

जोहानिसबर्ग
मार्च २, १९११

बहुत भय है कि यदि जनरल स्मट्स आपके १६ तारीखके पत्रमें[2] जो कहा गया है उससे आगे बढ़नेका रास्ता नहीं निकाल सकते तो यह दुःखद संघर्ष जारी रहेगा। अध्याय तैंतीसको रद करानेका कोई अनुरोध नहीं किया गया। उसका केवल यह भाग जिसके अनुसार निवासके लिए गवर्नरको प्रार्थनापत्र भेजना जरूरी है, शिक्षित एशियाई प्रवासियोंपर लागू नहीं होना चाहिए। इसपर कोई आपत्ति नहीं कि शिक्षित एशियाई प्रवासियोंपर वे अन्य निर्योग्यताएँ लागू हों जो एशियाई निवासियोंके लिए सामान्य हैं। ट्रान्सवालके पंजीयन कानूनसे पूर्ण विमुक्ति दी जानी चाहिए। ट्रान्सवालमें शिक्षित भारतीय प्रवासियोंके अधिकार अन्य एशियाई निवासियोंके अधिकारोंसे कम नहीं होने चाहिए। ट्रान्सवाल[3] और नेटालके[4] जो वकीलोंने लिखित राय दी है कि विधेयकके वर्तमान स्वरूपके अनुसार निवासी एशियाइयोंकी पत्नियों और नाबालिग बच्चोंको यदि इस समय वे अपने-अपने प्रान्तोंमें न हों कोई संरक्षण नहीं। आशा है कि संघर्ष बन्द करनेके लिए जो छोटी राहत अपेक्षित है मंजूर की जायेगी।

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस॰ एन॰ ५१२१) की फोटो-नकल और २५-३-१९११ के इंडियन ओपिनियन से भी।

४५०. पत्र : ई॰ एफ॰ सी॰ लेनको

मार्च २, १९११

प्रिय श्री लेन,

प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयकको लेकर आपके और मेरे बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ उसके बारेमें आपके १६ तारीखके पत्रके[5] उत्तरमें मैंने आज तार[6] भेजा है। अब मैं अपने

१. अक्सर २१ ता॰ के टाइम्स ऑफ़ इंडियामें ता॰ १९ का तार छपकर [illegible] करते हैं। (पा॰ टि॰ ४ पृष्ठ ५१०); देखिए "यूनियन समितिकी बैठककी रिपोर्ट" पृष्ठ ५२१ भी।
२. देखिए परिशिष्ट १।
३ और ४. आर॰ [illegible] और [illegible]; देखिए "[illegible] रिपोर्ट" पृष्ठ ५१५-१६।
५. देखिए परिशिष्ट १।
६. देखिए पिछला शीर्षक।

तारमें सूचित बातोंका विस्तारके साथ लिखता हूँ। ऑरेंज फ्री स्टेटके संविधानके अध्याय ३३ को रद करनेकी कोई जरूरत नहीं है और न ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे इसकी माँग ही की गई है। परन्तु मैं जनरल स्मट्सके विचारार्थ सविनय यह सुझाव रखता हूँ कि वे जो संशोधन पेश करना चाहते हैं, उसके अन्तर्गत शिक्षित भारतीय प्रवासी जिस प्रकार १९०८के ट्रान्सवाल कानून संख्या ३६ के मातहत पंजीयन करानेसे मुक्त रहेंगे ठीक वैसे ही वे ऑरेंज फ्री स्टेट संविधानके अध्याय ३३के खण्डोंसे उस बातमें मुक्त रहेंगे जिसका अर्थ पंजीयन कराने-जैसा होता है। आपने अपने १९ तारीखके पत्रमें ४ तारीखके जिस तारका उल्लेख किया है उसे भेजते समय आम पड़ता है जनरल स्मट्सका यही इरादा था। उसमें कहा गया है कि

> नये प्रवासी विधेयकके मातहत जो एशियाई प्रवेश पायेंगे वे पंजीयनके कानूनोंके मातहत नहीं होंगे और प्रान्तीय सीमाओंसे बँधे नहीं रहेंगे।

यही बात लॉर्ड क्रू को भेजे गये उस खरीतेमें भी कही गई है जो नीली पुस्तिका यू० ७/११ में प्रकाशित हुआ है। एशियाई केवल इतना ही माँग रहे हैं कि विधेयकके अधीन उन्हें कानूनी तौरपर प्रवासका पूर्ण अधिकार बिना रंगभेदके प्राप्त हो। यदि किसी शिक्षित भारतीयको ऑरेंज फ्री स्टेटमें बसनेकी अनुमतिके लिए अध्याय ३३के अन्तर्गत अर्जी देनी पड़े तो इसका अर्थ होगा कि प्रवासी विधेयकमें रंगभेद है। यदि विधेयकमें संशोधन करके उन्हें खण्ड १, २, ३, ४, ५, ६, ९, १० और ११ से छूट दे दी जाये तो हम सन्तुष्ट हो जायेंगे हालाँकि ऐसे प्रवासियोंपर अचल सम्पत्ति न रख सकने आदि जैसी वे निर्योग्यताएँ फिर भी लागू रहेंगी जो सभी एशियाइयोंपर सामान्य रूपसे लागू हैं।

मैं कहना चाहूँगा कि आपके पत्रका अनुच्छेद २ स्पष्ट नहीं है। आप कहते हैं कि जो संशोधन पेश किया जानेवाला है उसके फलस्वरूप शिक्षित भारतीय प्रवासी १९०८ के ट्रान्सवाल कानून संख्या ३६ के अधीन पंजीयन करानेसे बरी होंगे। इसका यह अर्थ हो सकता है कि शिक्षित भारतीय प्रवासी १९०८के अधिनियम ३६ के प्रभावसे पूर्णतया मुक्त नहीं होगा किन्तु उसे पंजीयन करानेकी आवश्यकता नहीं होगी। हो सकता है कि उस दशामें शिक्षित प्रवासियोंकी स्थिति निवासी-एशियाइयोंसे बदतर हो। यह स्थिति भारतीय समाजको कदापि मान्य नहीं होगी।

तीसरे अनुच्छेदके बारेमें मैं कहना चाहूँगा कि ट्रान्सवाल और नेटालके दो बहुत पुराने और बहुत अनुभवी वकीलोंने अपना यह मत प्रकट किया है कि अधिवासी एशियाई निवासियोंकी पत्नियाँ और नाबालिग बच्चे बाहरसे आकर उनके साथ रह सकते थे किन्तु आपसे वैसा नहीं हो सकेगा क्योंकि यदि वे शैक्षणिक कसौटीपर खरे नहीं उतरे तो निषिद्ध प्रवासी करार दिये जायेंगे। यदि विधेयकका उद्देश्य ऐसे एशियाई वासी पत्नियों और नाबालिग बच्चोंपर रोक लगानेका नहीं है तो मेरा निवेदन है कि विधेयकमें छूट दी जानी चाहिए।

यहाँ मैंने जो बातें कही हैं वे यूरोपीयोंके हितकी दृष्टिसे वास्तविक महत्व नहीं रखतीं और, मैं सोचता हूँ वे किसी तरह विवादास्पद भी नहीं हैं। किन्तु एशियाइयोंके

लिए उसका अत्यधिक महत्त्व है। इसलिए मुझे आशा है कि जनरल स्मट्स इसपर कृपापूर्वक विचार करेंगे और राहत बख्शेंगे।

आपका विश्वस्त

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस एन ५३२७) की फोटो-नकल और २५–३–१९११ के इंडियन ओपिनियन से।

४५१ पत्र मॉड पोलकको

मार्च २ १९११

प्रिय मॉड

मुझे लगता है कि अन्तत विधेयकके बावजूद कोई समझौता नहीं होगा। इतना अवश्य है कि इस बार साम्राज्य-सरकारको जनरल स्मट्स क्या हैं और क्या हो सकते हैं इस बातका बहुत ही साफ सबूत मिल जायेगा। साम्राज्य-सरकारके नाम अपने पत्रमें उन्होंने कहा कि शिक्षित प्रवासी यदि वे एशियाई होंगे तो संघके किसी भी प्रान्तमें बसनेको स्वतन्त्र होंगे। तथापि उनके हालके पत्रसे[1] आप देखेंगी कि मामला ऐसा है नहीं। संलग्न कागजोंसे आपको ज्ञात हो जायेगा कि ऑरेंज फ्री स्टेट और ट्रान्सवालके बारेमें हमारी माँग[2] मेरे खयालसे वस्तुतः क्या है? श्री रिच बुधवारको केप टाउनसे लिखेंगे कि आपको क्या करना है।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस एन ५३२८) की फोटो-नकलसे।

१ देखिए परिशिष्ट १ ।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

४५२ तार एल० डब्ल्यू० रिचको

जोहानिसबर्ग
[मार्च २ १९११][1]

सेवामें
रिच
८, बर्क स्ट्रीट
केप टाउन

स्मट्स अपने पत्रमें[2] कहते हैं कि उनके तारका मन्शा यह नहीं था कि ऑरेंज फ्री स्टेटके कानूनोंका अध्याय तैंतीस रद कर दिया जायेगा। पत्रमें यह भी स्पष्ट नहीं है कि [शिक्षित एशियाई] प्रवासी पंजीयन कानूनसे सर्वथा बरी रहेंगे। अपने समर्थकोंको तुरन्त सुझाइये कि सत्याग्रहकी समाप्तिके लिए संघके पंजीयन कानूनोंसे पूर्ण विमुक्ति आवश्यक है। पत्नियों और नाबालिग बच्चोंके बारेमें भी पत्रमें बिलकुल टालमटोल की गई है। उनका कहना है कि विभाग नहीं मानता कि ऐसी कोई कठिनाई है।

१५२२[3]

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१ क) की फोटो-नकलसे।

४५३ पत्र एल० डब्ल्यू० रिचको

मार्च २ १९११

प्रिय रिच

जनरल स्मट्सका पत्र[4] और अपने उत्तरकी[5] प्रति संलग्न कर रहा हूँ। जान पड़ता है हम किसी बदतरहाल संघर्षके बीच आ फँसे हैं। वे फ्री स्टेटवालोंका समर्थन नहीं खोना चाहते और साफ है, इसीलिए पीछे हटना चाहते हैं। पूरा पत्र हर तरहसे उनके अनुरूप ही है। इसे उन्होंने केवल अपना अभिप्राय छिपानेके उद्देश्यसे लिखा है। प्रथम अनुच्छेद मुझपर एक ऐसी इच्छाका आरोप करता है, जो मैंने कभी नहीं की। उसके दूसरे अनुच्छेदका उद्देश्य असल इस इरादेको छिपाना है कि शिक्षित प्रवासी

१ जान पड़ता है, यह तार उसी दिन भेजा गया जिस दिन "पत्र: ई० एम० सी० केमरो" (पृष्ठ ५२३-२४) और "तार: जनरल स्मट्सके निजी सचिवको" (पृष्ठ ५२५) भेजे गये थे।
२. देखिए परिशिष्ट १ ।
३ यह [illegible] नम्बर था।
४ देखिए परिशिष्ट १ ।
५. देखिए "पत्र: ई० एम० सी० केमरो" पृष्ठ ५२३-२४।

चाहें भी तो व्यापार करनेके अनुमतिपत्र न ले सकें। अब यदि वे स्वाभिमानी हैं और व्यापारिक अनुमतिपत्र नहीं लेना चाहते तो यह एक अलग बात है। परन्तु कानूनी निर्योग्यताका शिकार बना रहना सर्वथा दूसरी बात है। हम शिक्षित प्रवासियोंके लिए उससे अच्छे दर्जेकी माँग कर रहे हैं जो निवासियोंको आज प्राप्त है। हम उनके लिए निवासियोंको प्राप्त दर्जेसे घटिया कानूनी दर्जा भला अब कैसे स्वीकार कर सकते हैं? उनके पत्रके तीसरे अनुच्छेदसे यह इरादा प्रकट होता है कि वे पत्नियों और बच्चोंको बरी करनेवाली बात विधेयकमें स्पष्ट शब्दोंमें नहीं कहना चाहते ताकि वे हमारे मार्गमें तरह-तरहकी कठिनाइयाँ उपस्थित कर सकें। यदि आवश्यकता पड़े तो आप इन मुद्दोंको लोगोंके गले उतारनेमें ग्रेगरोवस्की और लौटनकी रायोंका उपयोग करनेसे न झिझकें क्योंकि जो-कुछ हो रहा है उसे देखते हमें जहाँतक हमारे उठाये हुए मुद्दोंका सम्बन्ध है, इस बातका आग्रह करना चाहिए कि विधेयकका लिखित अर्थ बताया जाये। जबतक प्रगतिवादीदल ठोस रूपसे अपने कर्तव्यका पालन नहीं करना चाहता और जबतक मेरीमैन जैसे राष्ट्रवादी और कतिपय अन्य व्यक्ति हमारे पक्षका समर्थन न करें, विधेयक सन्तोषजनक नहीं होगा। उस अवस्थामें मुझे लगता है उसे शाही स्वीकृति नहीं प्राप्त होगी।

हृदयसे आपका,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१२९) की फोटो-नकलसे।

४५४. पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

मार्च २, १९११

प्रिय पोलक,

रिचके पत्रमें मैंने जो-कुछ कहा है, मेरे पास उससे अधिक कहनेको नहीं है। केपके प्रार्थनापत्रकी[2] एक प्रति मैंने सीधे वेस्टके पास भेज दी है। आपका पत्र-व्यवहार भी जो मैं आपके पास भेज रहा हूँ छपना चाहिए। आशा है कल इसपर मैं एक अग्रलेख लिख सकूँगा। मैं मान लेता हूँ कि रिचके स्वागतके समय लॉर्ड ऍम्टहिल और अन्य लोगोंके जो भाषण[3] हुए थे वे छपेंगे। आज एक तार इस आशयका मिला कि रिचके श्वसुरकी मृत्यु हो गई है। यह दुःखका विषय तो है, लेकिन इससे उतना ही हर्ष भी होना चाहिए क्योंकि श्री कोहेन जीते-जी जो मौत भोग रहे थे उससे मुक्त हो गये हैं।

हृदयसे आपका,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१२५) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको", पृ० ५१५-१६।
२. यह इंडियन ओपिनियनके २५-३-१९११ वाले अंकमें प्रकाशित हुआ था। देखिए परिशिष्ट ९।
३. ये इंडियन ओपिनियनके २५-३-१९११ के अंकमें प्रकाशित हुए थे।

४५५ तार : जोहानिसबर्ग कार्यालयको

लॉली स्टेशन
मार्च २१, १९११

सेवामें
गांधी
जोहानिसबर्ग

गाड़ी छूट गई। सोराबजीकी[1] परिचर्या कर रहा हूँ। अब बेहतर है। ऑरेंजिया अध्याय ३३[2] की प्रति पोलक केपको भेजिए। महत्त्वपूर्ण समाचार तारसे भेजिए। सोराबजीके[3] साथ कागजात रवाना भेजे हैं।

गांधी

प्राप्त मूल अंग्रेजी तार (एस० एन० ५३३०) की फोटो-नकलसे।

४५६ तार : जनरल स्मट्सके निजी सचिवको

जोहानिसबर्ग
मार्च २२, १९११

आपका २१ तारीखका तार[4] मिला। पत्नियों नाबालिगोंके बारेमें राहतके वादेके लिए कृपया जनरल स्मट्सको धन्यवाद कहें। दुःख है कि फ्री स्टेट सम्बन्धी निषेधको वे अनुचित समझते हैं। निवेदन है कि जनरल स्मट्सका ध्यान जनरल बोथाके बीच दिसम्बरवाले खरीतेकी ओर आकृष्ट करें जिसमें उन्होंने लॉर्ड क्रू को विश्वास दिलाया था कि एक सीमित संख्यामें शिक्षित भारतीयोंको जो विधेयकके अधीन प्रवेश पा सकेंगे प्रवेशके बाद संघके किसी भी

१. सोराबजी शापुरजी अडाजानिया।

२. ऑरेंज फ्री स्टेट ऑरेंजिया अध्याय ३३; इसे २५-३-१९११ के इंडियन ओपिनियनमें उद्धृत किया गया था।

३. पारसी रुस्तमजीके पुत्र।

४. उत्तर मिला था : "२२ मार्च। तारीख २० और २१ का मिला। मंत्री चाहते हैं कि यह वैध विवाहोंकी पत्नियों और बच्चोंकी बाबत प्रवासीके अनुकूल मानी जाये किन्तु फ्री स्टेटके कानूनमें बाधा देना अनुचित मानते हैं। एशियाइयोंने उस प्रान्तमें जानेकी मांग कभी नहीं की है, और अब ऐसा किसी तरहकी व्यवस्थाके बारा छूटी मिलना एक समस्या हो जायगा। अब इसी विधान-सभामें इसे प्रशासनिक रूप देना सिद्ध करना है।"

प्रान्तमें स्थायी निवासका अधिकार मिलेगा। परन्तु उसके अतिरिक्त जनरल स्मट्सका ध्यान इस तथ्यकी ओर दिलाऊँ कि सारा संघर्ष ही सिद्धान्तके लिए और रंगभेदके विरुद्ध है। यदि सत्याग्रहियोंको ट्रान्सवाल प्रवासी कानूनमें रंगभेद पर आपत्ति हो तो वे उसे संघके प्रवासी कानूनमें कैसे स्वीकार कर सकते हैं जिसमें कि ट्रान्सवालका कानून समाहित हो जायेगा? यह सही है कि सत्याग्रहियोंने यह माँग न पहले की थी और न अब करते हैं कि शिक्षित या अन्य एशियाई फ्री स्टेटमें प्रवेश पायें। निवेदन करना चाहूँगा कि प्रचुर संख्यामें प्रवेशका प्रश्न ही नहीं उठता। वहाँकी अन्य स्थितियाँ और भारतीय जनसंख्याका प्रचुर संख्यामें वहाँ न होना उन स्वतन्त्र शिक्षित एशियाइयोंके [फ्री स्टेट] में प्रवेशको रोकनेमें कारगर होगा जिन्हें वर्तमान विधेयकके अन्तर्गत [उपनिवेशमें] प्रवेश करने दिया जायेगा। संघ-संसद फ्री स्टेटकी नीतिकी पुष्टि करके संसारको जो यह बता रही है कि कोई भी भारतीय चाहे वह कोई राजा ही क्यों न हो संघके किसी प्रान्तमें कानूनी तौर पर न तो प्रवेश पा सकता है और न निवास कर सकता है भारतीय केवल उसीका विरोध कर रहे हैं। केप और नेटालके एशियाइयोंके वर्गमें जबरदस्त परिवर्तन किये गये हैं। अतः संघ-संसद यदि भारतके बड़ेसे-बड़े सपूतको अपमानित करनेसे इनकार करे और फ्री स्टेटके [संसद] सदस्य इसपर आपत्ति करें तो यह अनुचित होगा। किन्तु दुर्भाग्यसे यदि वे आपत्ति करें और सरकार उनको नाराज न करना चाहे, तो सादर निवेदन है कि यह विधेयक वापस लिया जाये और ट्रान्सवाल प्रवासी कानूनमें समुचित संशोधन कर दिया जाये जिससे एशियाइयोंकी भावनाके प्रति न्याय हो सके और इस दुखद संघर्षका अन्त हो।

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१४) की फोटो-नकल और ८-४-१९११ के इंडियन ओपिनियन से।

४५७. तार : एल० डब्ल्यू० रिचको

जोहानिसबर्ग
मार्च २२, १९११

अगरचे स्मट्सका तार[1] कि वे स्त्रियों और बच्चोंके प्रश्नपर अनुकूल ढंगसे विचार करेंगे परन्तु फ्री स्टेट [सम्बन्धी सुझाव] इसको सर्वथा अनुचित समझते हैं। कहते हैं एशियाइयोंने उस प्रान्तमें प्रवेशका दावा कभी नहीं किया और अब ऐसा कोई दावा उनके लिए सन्तोषजनक हलतक पहुँचना असम्भव बना देगा। अपने उत्तरको दोहरा रहा हूँ। आपकी समालोचनापर विचार किया।[2] सावधान लोगोंके लिए यह अच्छी है और चेतावनी दे देना आपका कर्तव्य था। सत्याग्रहियोंके स्वीकार करने योग्य नहीं है। सुझाव है कि आप केपके भारतीयोंको सलाह दें कि वे भी स्टेटके मामलेको उठायें। क्या आप समझते हैं कि मुझे आपके पास आ जाना चाहिए?

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५३३९) की फोटो-नकलसे।

४५८. तार : एल० डब्ल्यू० रिचको[3]

जोहानिसबर्ग
मार्च २२, १९११

सोचता हूँ कि अब स्मट्ससे आपको भेंट देनेके लिए कहना प्रतिष्ठाके अनुकूल नहीं। इस मामलेका उत्तरदायित्व उन्हींपर है। परन्तु यदि आप अब भी सोचते हैं कि तार भेजा जाना चाहिए तो तुरन्त भेजा जायेगा।

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५३४१) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पाद-टिप्पणी ४, पृष्ठ ५१७।
२. देखिए पाद-टिप्पणी १, पृष्ठ ५२२।
३. यह भी रिचके २२ मार्चके तारके जवाबमें है, जिसमें उन्होंने लिखा था : "सुझाव है कि मुझे फिर स्मट्सके लिए तार द्वारा फिर अनुरोध करें। विधेयक सम्भवतः आज और कल तक पेश न होगा।" (एस० एन० ५३२४)

४५९. पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

मार्च २८, १९११

प्रिय पोलक,

इस पत्रके साथमें उन प्रस्तावोंकी[1] प्रतियाँ भेज रहा हूँ जिन्हें, मेरा सुझाव है आप सभामें पास कर सकते हैं। यदि दूसरा प्रस्ताव जैसाका-तैसा पास हो जाये तो यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। मैं जनरल स्मट्सके नाम अपना उत्तर[2] भी आपके पास भेज रहा हूँ। श्री फिलिप्स[3] विधेयकके बहुत खिलाफ हैं क्योंकि उनका खयाल है कि ऑरेंज फ्री स्टेटकी निर्योग्यतामें रंगभेद निहित है और इसका अर्थ "स्वयं उनके शब्दोंमें एक राष्ट्रको निषिद्ध करना" है। उनके कहनेसे यूरोपीय समितिकी एक सभा कल भी हॉस्केनके कार्यालयमें बुलाई जा रही है। मेरा खयाल है कि समिति इस मामलेमें जनरल स्मट्सको सख्तीसे लिखेगी। मुझे सन्देह नहीं कि सब सदस्य हमारा समर्थन करेंगे। मैं आपके अवलोकनार्थ रिचका पत्र[5] भेज रहा हूँ। विधेयकके बारेमें उनके तर्क प्रत्येक दृष्टिसे विचारणीय हैं। स्वयं मैं उनके साथ पूर्णतया सहमत नहीं हो पाया हूँ। हम कोई नया मुद्दा नहीं उठा रहे हैं और मुझे लगता है कि यदि हम संघर्ष समाप्त करेंगे तो यह अपनी आत्माको बेच देना होगा। मेरे बताने पर गैर-सत्याग्रही भारतीयोंने भी इस मुद्देको समझा और संघर्ष जारी रखनेके विरुद्ध मैंने जो तर्क पेश किये उनका खण्डन करनेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। यद्यपि अधिकांश सत्याग्रही इस बातके लिए बहुत उत्सुक हैं कि संघर्ष समाप्त हो जाये तथापि वे बेहिचक कहते हैं कि यदि फ्री स्टेटका प्रतिबन्ध बना रहता है तो संघर्ष जारी रहना चाहिए।

हृदयसे आपका

[संलग्नपत्र][6]

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१३४) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "प्रस्ताव : ब्रिटिश भारतीय संघकी सभामें", पृष्ठ ५२९-१।
२. देखिए "तार : जनरल स्मट्सके निजी सचिवको", पृष्ठ ५१७-१८।
३. चार्ल्स फिलिप्स; यूनियनके संसद-सदस्य।
४. देखिए अगला शीर्षक।
५. यह उपलब्ध नहीं है।
६. यह उपलब्ध नहीं है। प्रस्तावोंके लिए देखिए "प्रस्ताव : ब्रिटिश भारतीय संघकी सभामें", पृष्ठ ५२९-३।

४६० यूरोपीय समितिकी बैठककी रिपोर्ट

[मार्च २१, १९११][1]

परिस्थितिपर विचार करनेके लिए गत मासकी २१ तारीखको श्री हॉस्केनके कार्यालयमें जोहानिसबर्गवासी यूरोपीय हितैषियोंकी समितिकी बैठक हुई। अध्यक्षका आसन श्री हॉस्केनने ग्रहण किया। उपस्थित व्यक्तियोंमें ये सज्जन शामिल थे रेवरेंड जे जे डोक रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स रेवरेंड बी होवर्ड रेवरेंड टी पेरी श्री ए कार्टराइट श्री टी पी हैरॉन श्री डी पोलॉक श्री ई० डेको तथा श्री मो० क गांधी। निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास किया गया

> यूरोपीय ब्रिटिश भारतीय समितिकी यह सभा गृह-मन्त्री और श्री गांधीके बीच हुए पत्र-व्यवहार (विशेषतया श्री गांधीके मार्च १७ और १९ के तारों और मन्त्री द्वारा उनके २२ मार्चके उत्तर) पर विचार करनेके पश्चात् कहना चाहती है कि वह श्री गांधी द्वारा लिखी गई बातोंसे पूर्ण रूपसे सहमत है। उसकी सम्मतिमें श्री गांधीका २२ मार्चका तार मामलेको स्पष्ट और निष्पक्ष रूपसे प्रस्तुत करता है। यह सभा साग्रह निवेदन करती है कि सरकार उसमें सुझाये गये हलको स्वीकार कर ले। समितिको यह जानकर दुःख हुआ है कि गृह-मन्त्रीने फ्री स्टेटके बारेमें एक नया मुद्दा उठाया मुतालिब समझा है। यह मुद्दा प्रधान मन्त्रीके २ दिसम्बर १९१ के उस तारीखके खिलाफ पड़ता है जिसमें कहा गया है, "परन्तु इस कसौटीके होते हुए भी इरादा यह है कि इन अधिकारियोंको हिदायत कर दी जाय कि वे शिक्षित भारतीयोंको एक सीमित संख्यामें प्रवेशकी अनुमति दें। इस प्रकार प्रवेश करनेके पश्चात् इन लोगोंको संघके किसी भी प्रान्तमें स्थायी निवासका अधिकार प्राप्त रहेगा। यह श्री गांधीके नाम गृह-मन्त्रीके ४ मार्चके इस तारके भी खिलाफ पड़ता है जिसमें कहा गया है, कि प्रवासी विधेयकके अन्तर्गत प्रवासीके रूपमें प्रवेश करनेवाले एशियाई पंजीयन कानूनोंके अन्तर्गत नहीं आयेंगे और व प्रान्तीय सीमाओंसे भी बँधे नहीं रहेंगे।"

अप्रैल ८, १९११ के इंडियन ओपिनियन के अंग्रेजी अंक और अंशतः गांधीजीकी लिखावटमें प्राप्त मूल अंग्रेजी मसविदे (एस एन ५२९६ ख) की फोटो-नकलसे।

[1] इस रिपोर्टके मसविदेमें यह प्रस्ताव सम्मिलित है जो २१ मार्चको पास किया गया था, और जिसमें किये गये संशोधन गांधीजीकी लिखावटमें हैं।

४६१. तार : एल० डब्ल्यू० रिचको[1]

[जोहानिसबर्ग
मार्च २१, १९११]

हॉस्केन कार्टराइट डोक फिलिप्स हॉवर्ड पेरी हैरोम पोलॉक डेविड उपस्थित। यूरोपीय समितिने श्री स्टेंटके बारेमें हमारे पक्षका पूर्ण रूपसे समर्थन करते हुए व्यापक प्रस्ताव पास किया है और सरकारसे आग्रह किया है कि वह मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया हल स्वीकार करे। हॉस्केनने प्रस्ताव तारसे स्मट्स मेरीमन कमिशनर हटरको भेजा है।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ५३९९ ए) की फोटो-नकलसे।

४६२. पत्र : एल० डब्ल्यू० रिचको

मार्च २१, १९११

प्रिय रिच,

आपके पत्र मिले हैं। काश मुझे आपको और अधिक विस्तारके साथ लिख सकनेका समय होता। मैं इस समय गाड़ी पकड़नेके लिए स्टेशन जा रहा हूँ।[2] मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं आपसे बातें करके इस बातकी प्रतीति करा सकता कि श्री स्टेंटवाला मुद्दा हम किसी प्रकार नहीं छोड़ सकते। यूरोपीय समितिके सदस्योंने जिनके नाम[3] आपके पास हैं बिना किसी कठिनाईके पूरे मुद्देको समझ लिया है। यद्यपि श्री डोकने कल रातको साथ मुझसे जिरह की और जैसा कि मैं आपको बता चुका हूँ मैंने आपकी सम्पूर्ण आपत्तियाँ भी उन्हें पढ़कर सुनाईं, तथापि अब वे भी अपने साथियोंकी ही तरह इस मुद्देपर दृढ़ हैं। हम अध्याय ११ को रद करनेकी माँग नहीं कर रहे हैं हम केवल संघीय विधेयकमें शिक्षित भारतीयोंके लिए छूटकी माँग कर रहे हैं क्योंकि ट्रान्सवालका रंगभेद अब संघके विधेयकमें लाया जा रहा है। नया मुद्दा तो जनरल स्मट्स उठा रहे हैं क्योंकि वे अपने भाषण और अपने तारोंमें शिक्षित एशियाइयोंके संघके किसी भी भागमें प्रवेश और निवास करनेकी योग्यताको

[1] सम्भवतः यह वह तारका मसविदा है जो गांधीजीने यूरोपीय समितिकी बैठकके बाद श्री रिचको भेजा था। देखिए पिछला शीर्षक।

[2] सम्भवतः यूरोपीय समितिकी बैठकके बाद फीनिक्स जानेके लिए।

[3] देखिए "यूरोपीय समितिकी बैठककी रिपोर्ट", पृष्ठ ५२१।

सिद्धान्त रूपमें मान चुके हैं। आप यह भी देखेंगे कि स्वयं लॉर्ड क्रू ने पहलेसे ही अन्दाज लगा लिया था कि उसके विधेयकमें किसी भी प्रकारके रंगभेदपर हम आपत्ति उठायेंगे इसीलिए उस विषयमें उन्हें बड़ी चिन्ता थी और इसलिए जनरल बोथाने जोरदार शब्दोंमें घोषणा[1] की थी कि विधेयकके अन्तर्गत प्रवेश करनेवाले शिक्षित एशियाई संघके किसी भी भागमें बस सकते हैं। मैं आपके इस मतसे सहमत नहीं हूँ कि लॉर्ड ऍम्टहिलको राजी करना कठिन होगा। इस समय मेरी एक-मात्र कठिनाई है आपको राजी करना। जबतक आपमें मेरे-जैसा उत्साह और विश्वास पैदा नहीं होता तबतक आप उसे अलेक्जैंडर और दूसरे व्यक्तियोंमें कैसे पैदा कर सकते हैं? समय मिलनेपर फिर लिखूँगा।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१४५) की फोटो-नकलसे।

४६३. तार : एच० एस० एल० पोलकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च २१, १९११

रिचने तार किया है कि संघ-सीमामें जन्मे व्यक्तियों और अधिवासियोंकी पत्नियों और बच्चोंको शिक्षा जाँचसे छूट देनेके लिए मन्त्री संशोधन पेश कर रहे हैं। अधिकारी जो प्रमाण माँग सकते हैं उसका स्वरूप गवर्नर-जनरल निर्धारित करेगा।

मो० क० गांधी

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१४८) की फोटो-नकलसे।

४६४. तार : गृह-मन्त्रीके निजी सचिवको

जोहानिसबर्ग
मार्च २४, १९११

आपका इसी चौबीस तारीखका तार।[2] मेरे बारह मार्चके पत्रके समय जनरल स्मट्सने फ्री स्टेटका प्रश्न नहीं उठाया था यदि वहाँ प्रवेश करनेपर शिक्षित एशियाई प्रवासियोंपर फ्री स्टेट एशियाई पंजीयन कानून सफलताके साथ लागू हो गया तो निश्चय ही रंगभेदका प्रश्न पैदा हो

१. देखिए "यूरोपीय समितिकी बैठककी रिपोर्ट", पृष्ठ ५२१।
२. देखिए परिशिष्ट ११।

जायेगा। ट्रान्सवालके कानून पन्द्रह १९०७में कोई प्रत्यक्ष रंगभेद दिखाई नहीं पड़ता परन्तु जैसा कि जनरल स्मट्स अच्छी तरह जानते हैं, एशियाइयोंपर इसका कानूनी प्रभाव ऐसा ही है और वकील द्वारा दी गई तथा आखिर तौरपर जनरल स्मट्स द्वारा स्वीकृत व्याख्याके अनुसार नये विधेयकका असर भी ऐसा ही होगा। यही कारण है ट्रान्सवाल कानूनमें संशोधन आवश्यक होगा। इसलिए ऐसे संशोधनको कोई नई रियायत मानना सम्भव नहीं है हालांकि जनरल स्मट्स प्रस्तावित संशोधनके बारेमें ऐसा ही सोचते प्रतीत होते हैं। परन्तु जैसे विधेयकसे रंगभेदका कलंक हटानेके लिए ट्रान्सवालके बारेमें संशोधन आवश्यक है ठीक उसी प्रकार फ्री स्टेटके कानूनपर भी संशोधन आवश्यक है। मेरा निवेदन है कि सत्याग्रहियोंका रुख सदा एक ही रहा है वे वर्तमान ट्रान्सवाल विधानमें रंगभेदपर आपत्ति करते हैं और अब उसको रद करनेवाले कानूनमें ऐसा कोई भेदभाव हुआ तो उसका विरोध करनेके लिए उन्हें अनिच्छापूर्वक विवश होना पड़ेगा। यदि वे फ्री स्टेटके कारण किसी प्रान्तीय कानूनपर आपत्ति करते तो उनपर नया मुद्दा उठानेका इल्जाम लगाया जा सकता था। इस तथ्यपर जितना जोर दिया जाये उतना ही कम है कि सत्याग्रहियोंका व्यक्तिगत और भौतिक स्वार्थसे कोई सरोकार नहीं है। उन्हें भी उतना सरोकार नहीं है कि कोई एशियाई फ्री स्टेटमें दाखिल होता भी है या नहीं परन्तु जहाँतक मैं समझ सकता हूँ चाहे उन्हें अनिश्चित कालतक कष्ट सहना पड़े जबतक ट्रान्सवालके कानूनोंकी जगह लेनेवाले और मुख्यतया सत्याग्रहियोंको ही सन्तोष देनेके लिए पास किये जानेवाले विधानमें जातीय-भेद बना हुआ है वे कष्टसे मुँह नहीं मोड़ सकते। यूरोपीय समाजकी भौतिक स्थितिपर कोई बुरा प्रभाव डाले बिना यदि ब्रिटिश परम्पराके अनुरूप न्यायानुकूल व्यवहार प्राप्त करनेके लिए सत्याग्रहियोंकी ओरसे किये गये इन उचित प्रयत्नोंसे यूरोपीय समाज क्षुब्ध होता है तो मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि हम यह जोखिम उठायेंगे। तथापि मैं जनरल स्मट्ससे कहना चाहता हूँ कि वे एक ऐसा नया मुद्दा उठा रहे हैं जो चार तारीखके उनके तार, जनरल बोथाके २ दिसम्बरके खरीते[1] और द्वितीय वाचनके समय उनके खुदके भाषणके विरुद्ध है। मैं उनकी एशियाई भावनाको सन्तुष्ट करनेकी अभिलाषाका स्मरण दिलाकर उनसे प्रार्थना करता हूँ और चाहता हूँ कि वे यह बात मंजूर कर लें जिसका एशियाइयोंके लिए इतना बड़ा और सामान्य रूपसे यूरोपीयों और खास तौरसे फ्री स्टेटके यूरोपीयोंके लिए कुछ भी अर्थ नहीं है। मैं आपसे एक्सप्रेससे कल केप टाउनके लिए रवाना होना चाहता हूँ और

१. देखिए "यूरोपीय समितिकी बैठककी रिपोर्ट", पृष्ठ ५२१।

यदि जनरल स्मट्स कृपापूर्वक मुझसे भेंट करना स्वीकार कर लें तो कदाचित् मैं अपने निवेदनको और अधिक स्पष्ट कर सकूँगा।

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५३५१) की फोटो-नकल और ८-४-१९११ के इंडियन ओपिनियन से।

४६५. तार : एल० डब्ल्यू० रिचको

जोहानिसबर्ग
मार्च २४, १९११

स्मट्सका लम्बा जवाब मिला। यह रंग बदलना और धमकी देना है। अपने उत्तरकी प्रति आपके पास भेजी है। डायमंड एक्सप्रेससे कल रवाना हो रहा हूँ।

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१५४) की फोटो-नकलसे।

४६६. तार : एच० एस० एल० पोलकको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च २४, १९११

स्मट्सने हॉस्केनको अपमानजनक तार भेजा है। इसलिए मुझे केप टाउनमें इस प्रश्नके बारेमें समस्त सीधी पुस्तकोंकी आवश्यकता होगी। कृपया उन्हें केप टाउन भेजें।

गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१५५) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए परिशिष्ट ११।
२. देखिए पिछला शीर्षक।
३. देखिए परिशिष्ट १२।

४६७. तार : द० आ० ब्रि० भा० समितिको[1]

जोहानिसबर्ग
मार्च २४, १९११

सरकार पत्नियों, नाबालिगों और वैध निवासियोंको संरक्षण देनेके लिए राजी जान पड़ती है। परन्तु लॉर्ड क्रूके नाम जनरल बोथाके २ दिसम्बरके खरीते [जनरल स्मट्सका गांधीके नाम ४ मार्चके तार तथा द्वितीय वाचनपर उनकी इस घोषणाके बावजूद कि शिक्षित एशियाई प्रवासी संघके किसी भी प्रान्तमें बसनेमें समर्थ होंगे जनरल स्मट्स अब कहते हैं कि उन्हें फ्री स्टेटके अपमानजनक पंजीयन कानूनकी अधीनता माननी पड़ेगी। इस प्रकार वे उनके प्रवेशपर रोक लगा रहे हैं और संघके प्रवासी कानूनमें रंगभेद पैदा कर रहे हैं। सत्याग्रही बराबर रंगभेदके विरुद्ध लड़ते रहे हैं इसलिए सरकार यदि तीन बार दिये गये उपर्युक्त आश्वासनसे मुकरती है और अब रंगभेद पैदा करती है तो लड़ाई अवश्य ही जारी रहनी चाहिए। सत्याग्रही केवल राष्ट्रीय सम्मान और ब्रिटिश संविधानकी रक्षाके लिए लड़ रहे हैं। कल हॉस्केनके सभापतित्वमें यूरोपीय समितिकी बैठक हुई।[2] उसने भारतीय रुखका समर्थन किया और जनरल स्मट्सको फौरन तार भेजा कि वे उस नीतिको न बदलें जिसका आभास जनरल बोथाके खरीते और स्मट्सके तारसे मिला था। विश्वास है कि साम्राज्य और भारतकी सरकारें समय रहते कार्रवाई करेंगी।

मो० क० गांधी

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (सी० ओ० ५५१/२१) की फोटो-नकल और गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ५१७५) से।

१. यही तार मो० क० गोखलेको भी भेजा गया था। यह टाइम्स ऑफ इंडियामें २८-३-१९११ के अंकमें प्रकाशित हुआ था।
२. देखिए "यूरोपीय समितिकी बैठककी रिपोर्ट", पृष्ठ ५२१।

४६८ तार नटेसनको[1]

[जोहानिसबर्ग
मार्च २४ १९११]

अधिनियम और गोखलेको भेजे गये तार देख लें।

गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें पेंसिलसे लिखे मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ५३७५)से।

४६९ पत्र एच० एस० एल० पोलकको

मार्च २४ १९११

प्रिय पोलक

आपका पत्र मिला। मुझे हर्ष है कि आपका दाँत निकल गया। ऐसा बढ़िया दन्त-चिकित्सक पानेपर मैं आपको बधाई देता हूँ। मुझे अलबत्ता यह कहना पड़ेगा कि वे एक अपवाद हैं। करामतका मामला बड़ा दुष्कर है। वह निश्चय ही बड़ा मूढ़ है। वह हिदायतोंको नहीं मानता इसलिए उसका इलाज करना कठिन है। अन्यथा मैं सोचता हूँ कि उसकी बीमारी लाइलाज नहीं है। उसे भारत भेजने और वहीं कहीं उसका प्रबन्ध करने तक मैं केवल इतना ही सुझाव दे सकता हूँ कि यदि फीनिक्सके लोग इस विचारको पसन्द करें तो श्री रुस्तमजी उसके लिए एक झोंपड़ी बनवा दें और वह उस झोंपड़ीमें अकेला रहे और अपना खाना स्वयं पकाये। आश्रम वासियोंको सख्त हिदायत दे दी जाये कि उसे कुछ और खानेको बिलकुल ही न दिया जाये। इसकी लागत नगण्य होगी। वह अपना समय काफी सहज तरीकेसे बिता सकेगा और उसे कुछ सहानुभूतिपूर्ण संग-साथ भी मिलेगा। वह एक छोटा-सा जमीनका टुकड़ा ले सकता है और चाहे तो उपयोग कर सकता है। ध्यान इतना ही रखना है कि अपनी झाड़ी और उस टुकड़ेको सुहावना बनाये रखे। उस फीनिक्स वासकी आशा तभी सिद्ध हो सकती है जब जैसा कि मैंने कहा है, आश्रमवासी इसपर सहमत हों और यदि श्री रुस्तमजी कम-से-कम महीनेमें एक बार उसे स्वयं देख लेनेका जिम्मा

१ प्रो० गोखलेको भेजे गये उपर्युक्त मसविदेके साथ ही यह तारका मसविदा भी लिखा हुआ है। पर किसे भेजा गया था, इसका उल्लेख नहीं है। पोलकको मार्च २४ १९११ को लिखे गये पत्र (पृष्ठ ५२८) से स्पष्ट अनुमान किया है जिससे पता चलता है कि यह तार नटेसनको भेजा गया था।

२. देखिए "पत्र: मगनलाल गांधीको" पृष्ठ ४१८।

(५) मालूम होता है, यहाँ बसे हुए भारतीयोंकी स्त्रियों और बच्चोंको अबतक जिस तरहका संरक्षण मिलता रहा है, इस विधेयकमें उसकी व्यवस्था नहीं है

(६) यह विधेयक शैक्षणिक परीक्षा पास कर लेनेके बाद प्रविष्ट होनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंका संघके एक प्रान्तमें निवास-सम्बन्धी प्रश्नपर एशियाई कानूनोंके अधीन कर देता है और इस तरह जातीय अथवा रंगभेदको जन्म देता है

और विश्वास करती है कि संघ सरकार राहत प्रदान करनेवाले आवश्यक संशोधन प्रस्तुत करेगी।

श्री बी पी मॉमी द्वारा अनुमोदित; और श्री जे आर सॉलोमन (डॉनाड) द्वारा समर्थित।

(२) श्री इस्माइल गोरा द्वारा प्रस्तावित

नेटालके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंकी यह सभा घोषित करती है कि यदि प्रथम प्रस्तावमें वर्णित निर्योग्यताओंको लागू करनेसे सम्बन्ध रखनेवाली धारा विधेयकसे निकाली नहीं जाती अथवा सन्तोषजनक रीतिसे संशोधित नहीं की जाती तो इस सभामें उपस्थित व्यक्ति विधेयकका अपनी पूरी शक्तिसे सादर विरोध करेंगे।

श्री आर एन मूडले (बैरिस्टर) द्वारा अनुमोदित और श्री एस इमाम मती द्वारा समर्थित।

(३) श्री अब्दुल्ला हाजी आदम द्वारा प्रस्तावित

नेटालके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंकी यह सभा उपर्युक्त प्रस्तावोंके उद्देश्योंको प्रभावकारी रीतिसे कार्यान्वित करनेके लिए चन्दा एकत्रित करनेका अधिकार देती है।

श्री आर बी चट्टी द्वारा अनुमोदित; और श्री एम एम सुलेमान (उमजिंटो) द्वारा समर्थित।

(४) श्री पारसी रुस्तमजी द्वारा प्रस्तावित

नेटालके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंकी यह सभा ट्रान्सवाल भारतीय समाजको, जबतक प्रस्ताव सं० १ में उल्लिखित प्रजाति-भेद या रंगभेद हटा न दिया जाये तब तक सत्याग्रहको जारी रखनेके संकल्पके लिए बधाई देती है और उसके इस संकल्पका हार्दिक अनुमोदन करती है।

श्री लछमन पाण्डे द्वारा अनुमोदित और श्री मुहम्मद कासिम कुवाड़िया द्वारा समर्थित।

(५) श्री सुलेमान करवा द्वारा प्रस्तावित:

नेटालके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंकी यह सभा अध्यक्षको अधिकार देती है कि वह उपर्युक्त प्रस्तावोंकी प्रतिलिपियाँ संघ-सरकार, साम्राज्यीय सरकार और भारत सरकारको भेज दे।

श्री पी० के नायडू द्वारा अनुमोदित; श्री शमसुद्दीन द्वारा समर्थित।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-४-१९११

४७२. तार : जोहानिसबर्ग कार्यालयको

केप टाउन
मार्च २७, १९११
११-२ [दिनको]

मन्त्रीसे थोड़ी देर बात हुई। मुलाकात चार बजे होगी।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस० एन० ५१९७) की फोटो-नकलसे।

४७३. तार : जोहानिसबर्ग कार्यालयको

केप टाउन
मार्च २७, १९११
५-१९ [दोपहर बाद]

मुलाकात ठीक रही। आशापूर्ण हूँ। आगे भी भेंट सम्भव।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस० एन० ५१७२) की फोटो-नकलसे।

४७४. पत्र : सोंजा श्लेसिनको[1]

[केप टाउन
मार्च २७, १९११]

यहाँ मोटे तौरपर स्मट्स और मेरे बीच हुई बातचीतका आशय दिया जा रहा है :

> स्मट्स : देखिए गांधी, मैं आपको सब-कुछ दे रहा हूँ। पत्नियों और बच्चोंको विनियम बनाकर संरक्षण दिया जा सकता था, परन्तु अब मैं यही काम विधेयकके द्वारा कर रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि क्यों, परन्तु इतना जानता हूँ कि हरएक व्यक्ति मुझपर सन्देह करता है। मैं अधिवासियोंको

[1] इसके प्रारम्भिक दो पृष्ठ अप्राप्य हैं और इसलिए यह किसे लिखा गया था इसका नाम नहीं मिलता; तथापि अन्तिम चार अनुच्छेदोंमें दी गई विगतोंसे जान पड़ता है कि यह कु० सोंजा श्लेसिनको लिखा गया होगा। वे गांधीजीके जोहानिसबर्ग कार्यालयकी देखरेख करती थीं।

लें। उसे किसी कोढ़ीखानेमें भेजना मेरी रायमें उससे आत्महत्या करनेके लिए कहना है। जबरदस्ती ऐसे पृथक स्थानमें उसे भेजनेकी सलाह देनेकी अपेक्षा मैं उसके हाथमें पिस्तौल देना अच्छा समझूँगा। मेरा खयाल है कि रॉबेन द्वीपकी[1] बुराइयोंके बारेमें आपने भी कुछ सुना होगा।

यदि स्मट्सका कोई तार नहीं मिला तो मैं कल केप टाउनके लिए रवाना हो जाऊँगा। हमारे बीच तारोंका आदान-प्रदान प्रायः होता रहेगा। इसलिए इस पत्रमें किसी विषयकी चर्चा करना आवश्यक नहीं है। यहाँकी स्थितिके बारेमें कुमारी श्लेसिन आपको रोज लिखेंगी और इंडियन ओपिनियन के लिए उनके पास जो सामग्री होगी आपको भेजेंगी। आज जो तार लन्दन और कलकत्ता[2] भेजे गये हैं उन्हें इसके साथ भेज रहा हूँ। एक छोटा-सा तार[3] मैंने नटेसनको भेजा है और उनसे कहा है कि वे गोखलेके नाम मेरे तारों और कानूनको देख लें।

हृदयसे आपका

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५३५९) की फोटो-नकलसे।

४७०. पत्र: जे० जे० डोकको

मार्च २८, १९११

प्रिय श्री डोक,

जनरल स्मट्स और मेरे बीच[4] तथा श्री हॉस्केन और जनरल स्मट्सके बीच[5] जो तारोंके आदान-प्रदान हुए, उनकी प्रतियाँ आपको मिली होंगी। वे अशुभ-सूचक हैं। इसलिए मैं आरमंडेल एक्सप्रेससे केप टाउन जा रहा हूँ। जानेसे पहले मैं आपसे मिलना चाहता था। परन्तु मुझे एक पलकी भी फुरसत नहीं मिली। श्री कैलेनबैक पॉचिफस्ट्रूमसे वापस आ गये हैं। वे आपसे सम्पर्क बनाये रखेंगे। मैं सोचता हूँ कि श्री हॉस्केनके नाम अपने तारोंमें यदि मैं उपयुक्त सम्बोधनोंका प्रयोग करूँ तो जनरल स्मट्सकी झूठी बातोंका प्रभाव मिटानेके लिए यह आवश्यक होगा कि समिति[7] बड़े जोरके साथ काम करे। यदि उन्होंने एक ऐसे आदमीको जो हमारा पक्ष-पोषक

१. टेबल बे के मुहानेपर एक द्वीप, जो पहले कुष्ठ-बस्ती था।

२. द ना मि मा समितिको।

३. [illegible], जो उन दिनों कलकत्तामें रहते थे। टाइम्स ऑफ इंडियाने इसे कलकत्तासे प्राप्त रूपमें प्रकाशित किया था।

४. देखिए पिछला शीर्षक।

५. देखिए "तार: गृह-मन्त्रीके निजी सचिवको" पृष्ठ ५२३-२४ तथा परिशिष्ट ११।

६. देखिए परिशिष्ट १२।

७. यूरोपीय ब्रिटिश भारतीय समिति।

है, इस तरीकेसे गुमराह करनेका साहस किया है, तो ऐसे लोगोंके बारेमें क्या-कुछ नहीं किया होगा जिन्होंने उस प्रश्नपर कुछ भी जाननेका कष्ट नहीं किया है। मैंने समितिके सदस्योंके हस्ताक्षरसे एक सार्वजनिक पत्र प्रस्तुत करनेका सुझाव दिया है। पत्रमें सदस्यगण उन मांगोंके विषयमें अपनी सम्मति दें जिनका आग्रह हम प्रारम्भसे ही करते आये हैं। यूरोपीय समाजके उत्तेजित हो उठनेकी धमकीसे मुझे डर्बनमें प्रदर्शनकारियोंने दिसम्बर १८९६ और जनवरी १८९७ में भीड़को भड़कानेके लिए जो-कुछ किया था उसकी याद हो आती है। यूरोपीय समाज बिलकुल उत्तेजित नहीं है। हाँ, अमरक स्मट्स जरूर उत्तेजित हैं और चाहते हैं कि समाज भी उत्तेजित हो जाये।

हृदयसे आपका

मूल टाइप की हुई अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५३५८) की फोटो-नकलसे।

४७१. प्रस्ताव : नेटाल भारतीय कांग्रेसकी सभामें[1]

[डर्बन
मार्च २६, १९११]

नेटाल भारतीय कांग्रेसकी सभामें निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए :

(१) श्री मसूल कादिर द्वारा प्रस्तावित :

नेटालके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंकी यह सार्वजनिक सभा प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयकका जो इस समय संघ-संसदके समक्ष प्रस्तुत है, जोरदार विरोध करती है, क्योंकि

(१) उसके द्वारा इस प्रान्तमें निरपवाद रूपसे सभी ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति निषेधकी नीतिका प्रारम्भ होता है। इस प्रकार इस विधेयकका मन्शा यहाँ रहनेवाले भारतीयोंकी उन सुविधाओंको कम कर देना है जो उन्हें अबतक प्राप्त रही हैं और जिनके द्वारा वे भारतसे सहायतार्थ मुनीम आदि बुलवा लिया करते थे;

(२) [विधेयकमें] इस प्रान्तकी वर्तमान भारतीय आबादीके खास तौरपर इस प्रान्तमें जन्मे भारतीयोंके निवासके अधिकारोंको मान्यता देनेकी कोई निश्चित व्यवस्था नहीं की गई है;

(३) अभीतक प्रचलित प्रथाके विरुद्ध प्रस्तुत विधेयकमें निवास-सम्बन्धी प्रमाणपत्र देना-न-देना शासनकी मर्जीपर छोड़ दिया गया है;

(४) प्रतीत होता है कि ऐसी व्यवस्था भी नहीं की गई है जिससे प्रवासी अधिकारी द्वारा निषिद्ध प्रवासी घोषित किये जानेपर लोगोंको अदालतके सामने अपने अधिकारोंका दावा करनेमें सहायता मिले;

१. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ १८३-८८।
२. देखिए "पत्र : ए० एम० कैमरूनको" पृष्ठ ५१।

(५) मालूम होता है यहाँ बसे हुए भारतीयोंकी स्त्रियों और बच्चोंको अबतक जिस तरहका संरक्षण मिलता रहा है, इस विधेयकमें उसकी व्यवस्था नहीं है

(६) यह विधेयक शैक्षणिक परीक्षा पास कर लेनेके बाद प्रविष्ट होनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंको संघके एक प्रान्तमें निवास-सम्बन्धी प्रश्नपर एशियाई कानूनोंके अधीन कर देता है और इस तरह जातीय अथवा रंगभेदको जन्म देता है

और विश्वास करती है कि संघ सरकार राहत प्रदान करनेवाले आवश्यक संशोधन प्रस्तुत करेगी।

श्री डी० पी० गांधी द्वारा अनुमोदित और श्री जे० आर० सॉलोमन (डॉबाम) द्वारा समर्थित।

(२) श्री इस्माइल बोरा द्वारा प्रस्तावित

नेटालके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंकी यह सभा घोषित करती है कि यदि प्रथम प्रस्तावमें वर्णित निर्योग्यताओंको लागू करनेसे सम्बन्ध रखनेवाली धारा विधेयकसे निकाली नहीं जाती अथवा सन्तोषजनक रीतिसे संशोधित नहीं की जाती तो इस सभामें उपस्थित व्यक्ति विधेयकका अपनी पूरी शक्तिसे डटकर विरोध करेंगे।

श्री आर० एन० मूडले (मैरित्सबर्ग) द्वारा अनुमोदित और श्री एस० इमाम अली द्वारा समर्थित।

(३) श्री अब्दुल्ला हाजी आदम द्वारा प्रस्तावित:

नेटालके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंकी यह सभा उपर्युक्त प्रस्तावोंके उद्देश्योंको प्रभावकारी रीतिसे कार्यान्वित करनेके लिए चन्दा एकत्रित करनेका अधिकार देती है।

श्री आर० बी० चेट्टी द्वारा अनुमोदित; और श्री एम० एम० सुलेमान (उर्वाडो) द्वारा समर्थित।

(४) श्री पारसी रुस्तमजी द्वारा प्रस्तावित

नेटालके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंकी यह सभा ट्रान्सवाल भारतीय समाजको, जबतक प्रस्ताव नं० १ में उल्लिखित प्रजाति-भेद या रंगभेद दूर न किया जाये तब तक सत्याग्रहको जारी रखनेके संकल्पके लिए बधाई देती है और उनके इस संकल्पका हार्दिक अनुमोदन करती है।

श्री लछमन पाण्डे द्वारा अनुमोदित; और श्री मुहम्मद कासिम कुवाडिया द्वारा समर्थित।

(५) श्री सुलेमान करवा द्वारा प्रस्तावित

नेटालके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंकी यह सभा अध्यक्षको अधिकार देती है कि वह उपर्युक्त प्रस्तावोंकी प्रतिलिपियाँ संघ-सरकार सम्राट्की सरकार और भारत सरकारको भेज दे।

श्री बी० के० नायडू द्वारा अनुमोदित श्री दाउदुद्दीन द्वारा समर्थित।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १–४–१९११

४७२ तार जोहानिसबर्ग कार्यालयको

केप टाउन
मार्च २७ १९११
११-१ [दिनको]

मन्त्रीसे थोड़ी देर बात हुई। मुलाकात चार बजे होगी।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस एन ५१६७) की फोटो-नकलसे।

४७३ तार जोहानिसबर्ग कार्यालयको

केप टाउन
मार्च २७ १९११
५-१५ [दोपहर बाद]

मुलाकात ठीक रही। आशापूर्ण हूँ। आगे भी भेंट सम्भव।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस एन ५२७२) की फोटो-नकलसे।

४७४ पत्र सोंजा श्लेसिनको[1]

[केप टाउन
मार्च २७ १९११]

यहाँ मोटे तौरपर स्मट्स और मेरे बीच हुई बातचीतका आशय दिया जा रहा है

स्मट्स देखिए गांधी मैं आपको सब-कुछ दे रहा हूँ। पत्नियों और बच्चोंको विनियम बनाकर संरक्षण दिया जा सकता था परन्तु अब मैं यही काम विधेयकके द्वारा कर रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि क्यों परन्तु इतना जानता हूँ कि हरएक व्यक्ति मुझपर सन्देह करता है। मैं अधिवासियोंको

१ इसके प्रारम्भिक दो पृष्ठ अप्राप्य हैं और इसलिए यह किसे लिखा गया था उसका नाम नहीं मिलता; तथापि अन्तिम चार अनुच्छेदोंमें दी गई हिदायतोंसे जान पड़ता है कि यह कु० सोंजा श्लेसिनको लिखा गया होगा। वे गांधीजीके जोहानिसबर्ग कार्यालयकी देखरेख करती थीं।

मान्यता भी दे रहा हूँ। परन्तु आप ज्यादती कर रहे हैं। आपका मुद्दा तो बिलकुल नया है।

गांधी जनरल स्मट्स आप यह कैसे कह सकते हैं? क्या आप वाकिफ पैदा नहीं कर रहे हैं?

स्मट्स नहीं कदापि नहीं। क्या आप यह सिद्ध कर सकते हैं?

गांधी बेशक यह तो आप स्वीकार करेंगे कि पिछले चार वर्षोंसे हम बराबर जाति या रंगपर प्रतिबन्धके विरुद्ध लड़ते रहे हैं।

स्मट्सने आँखें सिकोड़कर देखा और फिर कुछ झिझकते हुए कहा — हाँ।

गांधी आप जानते हैं कि ट्रान्सवाल प्रवासी कानूनमें रंगपर प्रतिबन्ध नहीं है। परन्तु यदि आप उसका [उपखण्ड ४] और एशियाई कानून [मिला कर] पढ़ें तो प्रतिबन्ध लग जाता है।

स्मट्स आप इसे उचित ढंगसे पेश नहीं कर रहे हैं।

गांधी तब आप इसे स्वयं अपने शब्दोंमें कह दीजिए।

स्मट्स हम ट्रान्सवालमें पूर्ण निषेध चाहते थे और दोनों कानूनोंके संयुक्त प्रभावसे यह सम्भव हो सका है।

गांधी और अब आप फ्री स्टेटके लिए भी पूर्ण निषेध चाहते हैं और नये विधेयक तथा फ्री स्टेटके कानूनको मिला दें तो हैदराबादके निजामको भी निषिद्ध ठहराया जा सकता है। सत्याग्रही निश्चय ही इसके विरुद्ध लड़ेंगे।

स्मट्स आपकी यह बात युक्तिसंगत नहीं है।

गांधी मैं इसे नहीं मानता। सचमुच एक भी भारतीय फ्री स्टेटमें दाखिल होता है या नहीं मैं इस बातके लिए बिलकुल चिन्तित नहीं हूँ। मैं सच्चे मनसे आपकी सहायता करना चाहता हूँ।

स्मट्स आप मेरी कठिनाइयाँ नहीं जानते।

गांधी जानता हूँ और इसीलिए मेरा सुझाव है कि फ्री स्टेटके कानूनके केवल उतने ही भागको छूटका आधार बनाया जाये जिससे किसी अत्यन्त शिक्षित भारतीयका ही फ्री स्टेटमें प्रवेश सम्भव हो सके। यदि आप उस कानूनको मँगवा भेजें तो मैं आपसे बताऊँगा कि मेरा क्या तात्पर्य है।

स्मट्स (कानून लानेको कहते हैं) परन्तु फ्री स्टेटवाले इसके लिए कभी राजी नहीं होंगे।

गांधी तब फिर जनरल बोथाने लॉर्ड क्रू को यह किस लिए लिखा कि शिक्षित प्रवासी किसी भी प्रान्तमें प्रवेश कर सकेंगे?

स्मट्स आपको सब करीतोंका पता नहीं है। आप जानते हैं हमने सभी बातें मुद्रित नहीं कीं। लॉर्ड क्रू को मालूम है कि फ्री स्टेटमें ऐसे अधिकार देनेका हमारा इरादा कभी नहीं रहा।

गांधी परन्तु द्वितीय वाचनके समय तो आपने भी यही बात दोहराई थी।

स्मट्स : हाँ, मैं केवल फ्री स्टेटवालोंके मनकी थाह ले रहा था और उससे जाहिर हो गया कि वे इसके बहुत अधिक विरुद्ध हैं।

गांधी : यदि वे विरुद्ध हैं तो आपका कर्तव्य यह है कि आप उन्हें राजी करें। और यदि वे राजी नहीं होते तो आप केवल ट्रान्सवालके विधानका संशोधन करें।

स्मट्स : परन्तु मैं साम्राज्य-सरकारके सामने इस विधेयकको पास करानेके लिए बैठा हुआ हूँ। (कागजको पढ़ते हैं और गांधीसे अपनी ओर आनेको कहते हैं। गांधी उस धाराकी ओर संकेत करते हैं जिससे छूट दी जाती है।) हाँ, अब मैं आपका आशय समझ गया।

गांधी : जी हाँ। शिक्षित एशियाइयोंको तब भी अचल सम्पत्ति रखने और व्यापार करनेकी मुमानियत रहेगी। मैं उस मुद्देको तो उठा ही नहीं रहा हूँ। हमें अभी आपसे १८८५ के कानून ३ के प्रश्नपर लड़ना है। परन्तु उसका सत्याग्रहसे कोई सरोकार नहीं है। जहाँतक मेरा प्रश्न है मैं पार्थिव लाभके लिए सत्याग्रह नहीं करना चाहता। परन्तु हम प्रजातीय भेदको कभी स्वीकार नहीं कर सकते।

स्मट्स : परन्तु आपको मेरी कठिनाइयोंका कुछ अन्दाज नहीं है।

गांधी : मैं जानता हूँ कि आप इनसे भी बड़ी कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

स्मट्स : अच्छा, मैं अब फ्री स्टेटके सदस्योंसे बात करूँगा। आप अपना पता फेनके पास छोड़ दीजिए। मुझे आशा है कि आप केप और नेटालके भारतीयोंको शान्त रखेंगे।

गांधी : वे निश्चय ही शान्त नहीं रहेंगे। मुझे नेटालसे अभी तार मिला है। वर्तमान अधिकारोंकी रक्षा करना नितान्त आवश्यक है। अधिवासका प्रश्न पेचीदा है और खण्ड २५ में संशोधनकी आवश्यकता है। प्रमाणपत्र तो माँगने भरसे मिल जाने चाहिए।

स्मट्स : परन्तु विवेकाधिकार तो सदैव रहेगा।

गांधी : वर्तमान कानूनोंमें नहीं। परन्तु इस बारेमें यदि आप चाहें तो मैं बादमें बात करूँगा।

स्मट्स : जोहानिसबर्गके बारेमें आप क्या कहते हैं?

गांधी : *सत्याग्रहियों आदिके परिवारोंकी देखभाल।*

स्मट्स : इन लोगोंको गिरफ्तार करनेमें मुझे आपसे भी अधिक दुःख हुआ। जो लोग विवेककी खातिर कष्ट उठाते हैं उन लोगोंको गिरफ्तार करना मेरे जीवनकी सबसे अप्रिय घटना है। मैं खुद भी विवेककी खातिर लड़ूँगा।

गांधी : और फिर भी श्रीमती सोढ़ापर जुल्म किया जा रहा है।

•

कृपया सोराबजी और अन्य लोगोंको जो आश्रममें हों मुलाकातका यह विवरण पढ़वाइयेगा। अधिकतर मैंने इसे उन्हींके लिए लिखा है। उसके बाद यह भी पोलकके पास भेजा जा सकता है। मैंने यह विवरण प्रकाशनके लिए नहीं है। परन्तु इसे नष्ट भी नहीं करना है।

मुझे आशा है, पत्र-व्यवहार[1] प्रकाशित करनेके लिए आपको हॉस्केनकी अनुमति मिल गई होगी।

कृपया सोराबजीसे आश्रमके लोगोंके लिए रोज लिखनेको कहिए।

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन ५१७६) की फोटो-नकलसे।

४७५ तार जोहानिसबर्ग कार्यालयको

केप टाउन
मार्च २८, १९११

पोलकको कार्टराइटर और मन्त्रीके संशोधन प्रकाशनार्थ भेजिए।[2] मन्त्रीके संशोधन असन्तोषजनक। उनके बारेमें कार्यवाही कर रहा हूँ। आज और नहीं।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस एन ५१७) की फोटो-नकलसे।

४७६ पत्र ई० एफ० सी० लेनको

७ ब्यूटेनसिंगिल स्ट्रीट
केप टाउन
मार्च २९, १९११

प्रिय श्री लेन

मेरी रायमें प्रवासी विधेयकमें अलरक स्मट्स द्वारा पेश किये जानेवाले संशोधनोंके अनुसार अधिवास विवाह और पैतृक सम्बन्धके बारेमें प्रमाण देकर प्रवासी अधिकारीको विश्वास दिलाना आवश्यक होगा। जनरल स्मट्सके विचारार्थ मैं यह निवेदन प्रस्तुत करना चाहता हूँ कि इसे आवश्यक कर देनेसे पक्षपात भ्रष्टाचार और घूसको

१ देखिए परिशिष्ट १२।
२. यह इंडियन ओपिनियनके १-४-१९११ के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

प्रश्न मिल सकता है। मैं यह भी निवेदन करना चाहता हूँ कि सन्देहकी स्थितिमें वैवाहिक और पैतृक सम्बन्ध-जैसे नाजुक प्रश्न केवल न्यायालयों द्वारा ही निर्णीत होने चाहिए, प्रशासकीय अधिकारी द्वारा नहीं; और न इस मामलेका निपटारा किसी विनियमपर ही छोड़ा जाना चाहिए।

अधिवासके प्रश्नके बारेमें निवेदन है कि सर्वाधिक महत्त्वकी बात यह है कि इसकी एक दृष्टान्तयुक्त परिभाषा दी जानी चाहिए, जैसी कि नेटालके कानूनमें आई है। पहले उन्हें कटु अनुभव हो चुका है, इसलिए भारतीय समाजके लोग यहाँ इस मुद्देपर सबसे अधिक जोर दे रहे हैं।

खण्ड २५के बारेमें लोगोंका इस बातपर बहुत जोर है कि जो अपने अधिवासका अधिकार सिद्ध कर दें, उन्हें प्रार्थनापत्र देनेपर स्थायी अधिवासी प्रमाणपत्र पानेका हक होना चाहिए।

ये मुद्दे हैं जो निवासियोंके लिए बड़े महत्त्वके हैं और मुझे आशा है कि जनरल स्मट्स इनपर कृपापूर्वक विचार करेंगे।

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५१८५) की फोटो-नकल और १-४-१९११ के इंडियन ओपिनियन से।

४७७. तार : जोहानिसबर्ग कार्यालयको

केप टाउन
मार्च २९, १९११

पोलकको तार दीजिए कि हॉस्केनकी अनुमति है, पत्र-व्यवहार[1] प्रकाशित करें। आज कोई समाचार नहीं है।

अंग्रेजी तार (एस० एन० ५३८२) की फोटो-नकलसे।

४७८. भेंट : 'केप आर्गस' के प्रतिनिधिको[2]

[केप टाउन
मार्च ३१, १९११से पूर्व][3]

लोगोंमें यह गलत धारणा फैली हुई है कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय नये प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयककी धाराओंसे पूरी तरह सन्तुष्ट हैं। ऐसी कोई भी बातोंमें

१. पत्र-व्यवहारके लिए, देखिए परिशिष्ट १९।

२. “केप आर्गसके विशेष सम्वाददाता” को दी गई यह मुलाकात “प्रवासी विधेयक — श्री गांधीकी शिकायतें — कुछ नये सुझाव” शीर्षकसे प्रकाशित हुई थी।

३. यह ३१ मार्चके स्टारमें प्रकाशित हुई थी।

जो ट्रान्सवालके भारतीय समाजके प्रवक्ता हैं और इन दिनों केप टाउनमें हैं, आर्मस के प्रतिनिधिके साथ हुई अपनी बातचीतमें विधेयकके उन मुद्दोंकी विस्तारपूर्वक चर्चा की जिनको ट्रान्सवालके भारतीय मंजूर नहीं कर रहे हैं। [उन्होंने कहा :]

अगर विधेयकके अन्तर्गत शैक्षणिक कसौटीको पार करके संघ-राज्यमें आनेवाले शिक्षित भारतीयोंको फ्री स्टेटमें बसनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता तो जहाँतक एशियाइयोंका सम्बन्ध है विधेयकका मुख्य दोष उसके प्रजातीय-भेदपर आधारित होनेमें है। आपको याद होगा कि २ दिसम्बरको जनरल बोथाने लॉर्ड क्रू को भेजे पत्रमें अपने खरीतेमें लिखा है कि ऐसे एशियाई संघ-राज्यके किसी भी प्रान्तमें बस सकेंगे। जनरल स्मट्सने भी विधेयकके दूसरे वाचनके समय इसी आशयके शब्द कहे थे। परन्तु अब ऐसा दिखाई देता है कि इस वचनको ताकपर रखकर इन एशियाइयोंको फ्री स्टेटमें प्रवेश न देनेका विचार किया जा रहा है।

यहींपर मैं यह भी बता दूँ कि इस सवालका महत्त्व अभी तो केवल सैद्धान्तिक है क्योंकि आजकी परिस्थितियोंमें कोई भी भारतीय फ्री स्टेटमें आनेकी बात नहीं सोचेगा। परन्तु एशियाइयोंकी भावनाओंको शान्त करनेके लिए प्रजातिगत रुकावटको हटाना नितान्त आवश्यक है।

हम यह नहीं कहते कि एशियाइयोंपर जो अन्य सामान्य बन्दिशें लगी हुई हैं वे हटा दी जायें अर्थात् अगर एक शिक्षित भारतीय फ्री स्टेटमें जाता है तो उसपर अचल सम्पत्ति रखने और व्यापार-व्यवसाय न करनेसे सम्बन्धित निर्योग्यताकी बन्दिश तो रहेगी ही। शिक्षित भारतीयोंको प्रवेश देनेपर जो आपत्ति की जा रही है उसका मूल कारण केवल वहाँकी परिस्थितिका अज्ञान ही है। मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकता कि अगर प्रजातिगत रुकावटको हटा देनेसे एशियाइयोंके मनको संतोष हो सकता है तो फ्री स्टेटके सदस्य इसका विरोध क्यों करेंगे। मेरी समझमें शायद ही कोई शिक्षित ब्रिटिश भारतीय फ्री स्टेटमें आनेकी कोशिश करेगा क्योंकि वहाँ भारतीय इतनी कम संख्यामें हैं और सो भी इस तरह दूर-दूर बिखरे पड़े हैं कि वहाँ किसी भारतीय डॉक्टर या बैरिस्टरका निर्वाह हो ही नहीं सकता। जबतक प्रजाति-सम्बन्धी यह रुकावट नहीं हटाई जाती मुझे भय है कि अनाक्रमक प्रतिरोध बन्द नहीं किया जा सकेगा और यदि कहीं केप और नेटालके ब्रिटिश भारतीय इसमें शरीक हो जायें तो इसका क्षेत्र भी बढ़ सकता है।

नेटाल और केप

विधेयकके अन्य मुद्दोंके बारेमें मेरे पास नेटालसे तार आ रहे हैं। इनके बारेमें केप टाउनके अपने देश भाइयोंसे मैं सलाह-मशविरा कर रहा हूँ। उन सबकी राय यही है कि वर्तमान अधिकारोंकी पूरी तरह रक्षा होनी चाहिए। इसलिए वे कहते हैं कि जो लोग दक्षिण आफ्रिकामें बस गये हैं उनकी पत्नियों और बच्चोंको पूरा संरक्षण मिलना चाहिए, और अधिवासके अधिकारोंको पूरी पूरी मान्यता मिलनी चाहिए जैसी कि अभी तक दी गई है।

'अधिवास' शब्द

फिर अधिवास अत्यन्त पारिभाषिक (टकनीकल) शब्द है। पिछला अनुभव कहता है कि रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचारसे बचनेके लिए जरूरी है कि इन शब्दोंका अर्थ निश्चित और साफ कर दिया जाये। नेटालमें तो ऐसा कानून है कि जो एशियाई तीन वर्ष वहाँ रह लेता है वह वहाँका निवासी होनेका प्रमाणपत्र पा सकता है। लोग यह भी चाहते हैं कि जो निवासी होनेके अधिकारी हैं वे अगर चाहें तो उन्हें इसका प्रमाणपत्र भी दे दिया जाना चाहिए, जिससे वे बिना किसी बाधाके सब जगह आ-जा सकें और हर बार अपना अधिकार सिद्ध करनेके लिए उन्हें खर्च न उठाना पड़े। मुझे तो लगता है कि इनमें से बहुत-सी बातें सचमुच बड़ी आसानीसे ठीक की जा सकती हैं।

शैक्षणिक कसौटी

नेटाल और केप कालोनीके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए बड़ा सवाल यह है कि नये विधेयकमें शैक्षणिक कसौटीको सख्त कर देनेके कारण एक और नई निर्योग्यता पैदा हो गई है। यहाँ बसे हुए भारतीयोंको अपनी मददके लिए कारकुनों मुनाश्तों आदिकी जरूरत पड़ती है वे यहाँ नहीं मिल सकते। अतः भारतसे ऐसे लोगोंके लिए आ सकनेका कोई प्रबन्ध कर देना भी निःसन्देह आवश्यक है। अबतक तो प्रवास-सम्बन्धी शर्तके अनुसार साधारण शिक्षा पाय हुए भारतीयोंको प्रवेश मिल जाया करता था। इसलिए अगर वर्तमान अधिकारोंकी रक्षा की जानी है तो जरूरी है कि यह सहूलियत आगे भी बनी रहे।

हममें से कुछ तो यह भी चाहते हैं कि अब संघ-राज्यमें एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें जानेपर भी किसीको कोई रुकावट न रहे। परन्तु जो बहुत अल्प सन्तोषी हैं वे फिलहाल इतनेसे ही सन्तोष कर लेंगे कि प्रान्तके अन्दर-अन्दर घूमने-आमनेकी पूरी स्वतन्त्रता मिल जाये। इस सम्बन्धमें हम सरकारकी कठिनाईको समझ सकते हैं, परन्तु फिर भी यह एक अत्यन्त जरूरी शिकायत तो है ही।

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालयमें सुरक्षित केप आरगस की कतरन (एस. एन. ५२१४) की फोटो-नकल और ८-४-१९११के इंडियन ओपिनियन से।

४७९. तार : जोहानिसबर्ग कार्यालयको

७ ब्यूटेनसिंगल [स्ट्रीट]
केप टाउन
मार्च १, १९११

कैलेनबैकसे पूछिए, रिच माउन्टेन व्यूमें कुछ दिन रह सकते हैं या नहीं। विधेयकपर कुछ दिन विचार स्थगित। मन्त्रीसे कल मिलूँगा। अप्रैल समाप्त होनेसे पहले सब निपट जायेगा।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस० एन० ५१९१) की फोटो-नकलसे।

४८०. भाषण : केप टाउनके स्वागत-समारोहमें[1]

भाइयो, आप लोगोंने मेरे लिए जो कष्ट उठाया है, उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। आप यदि मेरे और मेरे कामके प्रति स्नेह रखते हों, तो मैं आपसे यही प्रार्थना करूँगा कि आप भी उसमें हाथ बँटाएँ। आपने मेरी जो प्रशंसा की, मैं अपनेको उसके योग्य नहीं मानता। मैंने जो-कुछ किया है और मैं जो-कुछ करता हूँ उस सबीका कारण मेरी धर्मके प्रति तत्परता है। आप सब लोग जानते हैं कि प्रह्लादने अपने पिताका विरोध किया। वे लोहेके खम्भेसे बाँधे गये। और भी अनेक संकट उन्होंने उठाये। किन्तु उसका कारण पिताके प्रति अमता नहीं, बल्कि अधर्मके प्रति अमता ही है। भाइयो, उसी प्रकार हमने सरकारके विरोधमें जो सत्याग्रह किया है वह इसलिए नहीं किया कि हमें सरकारके प्रति द्वेष है, बल्कि इसलिए कि धर्म असत्यके विरोधका आदेश देता है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि सत्याग्रहका अर्थ है जेल जाना; किन्तु बात ऐसी नहीं है। असत्यके मुकाबलेमें सत्यपर दृढ़ रहनेका नाम सत्याग्रह है। सत्याग्रह किसी भी स्थान अथवा प्रसंगपर, कोई भी व्यक्ति — वह बिलकुल अकेला ही क्यों न हो — कर सकता है, और यदि कोई श्रद्धापूर्वक इसपर दृढ़ रहे तो वह हमेशा विजयी होता है। सत्याग्रह करके ऊबना या निराश होना सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता। सत्याग्रहसे ट्रान्सवालमें प्राप्त विजयकी आप इतनी प्रशंसा करते हैं, इसीसे उसके अमूल्य होनेका अनुमान लगाया जा सकता है।

[प्रवासी-विधेयकके बारेमें बोलते हुए गांधीजीने कहा :]

१. १ मार्च १९११ को श्री रिच और गांधीजीके सम्मानमें केप टाउनके हिन्दू संघोंने मिल-जुलकर एक विशिष्ट सम्मान समारोहका आयोजन किया था।

अब हम मंजिलके बहुत पास आ पहुँचे हैं और यदि हम सत्याग्रहपर दृढ़ रहकर काम करते रहे तो जीत बेशक हमारी ही होगी। नये विधेयकमें हमारे प्रति सबसे अधिक अपमानजनक बात यह है कि हमारे पढ़े-लिखे लोग ऑरेंज फ्री स्टेटमें नहीं जा सकते और वहाँका प्रजाति भेदपर आधारित कानून भी अक्षुण्ण रहेगा। यह बात हम सबके लिए अपमानजनक है। हम ट्रान्सवाल और नेटालके लोग दृढ़तापूर्वक इसका विरोध कर रहे हैं और मुझे यह देखकर बड़ी खुशी होती है कि केपके भारतीय भी साथ हो गये हैं। यदि सब एकत्र होकर सत्याग्रह करेंगे तो जीत बेशक हमारी ही होगी।

इसके बाद गांधीजीने जनरल स्मट्सके साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ था उसके बारेमें बताया और यह भी बताया कि टॉल्स्टॉय फार्ममें सत्याग्रहियोंके कुटुम्ब किस प्रकार रहते हैं और उन्हें शिक्षा और क्या व्यावहारिक ज्ञान दिया जाता है। अन्तमें उन्होंने ठण्डकी ऋतुके कारण आश्रममें रहनेवाले लोगोंको कम्बल, कपड़े इत्यादि साधनोंकी सख्त आवश्यकता भी उल्लेख किया।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९११

४८१. तार : जोहानिसबर्ग कार्यालयको

बफ स्ट्रीट
[केप टाउन]
मार्च ३१, १९११

रम्भाबाईकी अपील करनेकी प्रार्थना स्वीकृत। चौबीस तारीखको ब्लूमफौंटीनमें सुनवाई। कल भारतीयोंकी भारी सभाएँ हुईं। सार्वजनिक सभा रविवारको।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस० एन० ५१९४) की फोटो-नकलसे।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधि मण्डलकी इंग्लैंड-यात्राके खर्चका विवरण

[जून २१ १९०९ से नवम्बर १९०९ तक]

	पौंड	शि	पे०
लन्दन आने-जानेका जहाजका किराया	३१८	१४	५
डाक-खर्च; स्थानीय तथा दक्षिण आफ्रिका और भारतको तार इत्यादि	३६	११	११
स्थानीय रेलें, ट्रम गाड़ी, बग्घी इत्यादि	९	२	१
मसविदा	८	११	६
छपाई	४	१९	
लेखन सामग्री	३१	१	
होटलका बिल	१५५	१९	१
मीटिंगोंके हॉलों इत्यादि	३८	२	८
फुटकर	१		११
	५७८	१६	४

जमा

	पौंड	शि	पे
केपटाउन प्रतिनिधि-मण्डलसे (सम्मिलित खर्चके कारण) प्राप्त की गई रकम	३१	१६	१
डा० मेहतासे प्राप्त	११	१०	८
अब्दुल कादिरसे प्राप्त	२		
	६५	१४	९
बकाया	५१३	१	१

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-१२-१९०९

(१)

टॉल्स्टॉयका गांधीजीको पत्र[1]

कोचेटी[2]
रूस
सितम्बर ७, १९१०

आपकी पत्रिका — इंडियन ओपिनियन — मुझे मिल गई है। उसमें सत्याग्रहके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है, उस सबको पढ़कर मैं प्रसन्न हुआ हूँ। उन लेखोंको पढ़कर मेरे मनमें जो विचार उठे सो मैं आपपर प्रकट करना चाहता हूँ।

ज्यों-ज्यों आयु बढ़ रही है — विशेषकर इन दिनों जब मैं मृत्युके निकट पहुँच रहा हूँ — दूसरोंके सामने अपनी वे भावनाएँ व्यक्त करनेकी मेरी प्रवृत्ति अधिकाधिक प्रबल होती जा रही है जो मेरे अन्तरको आकुल कर रही हैं और जो मेरी रायमें, असाधारण महत्त्वकी हैं। मतलब यह कि जिसे दूसरोंका प्रतिकार न करनेका सिद्धान्त कहा जाता है वह वास्तवमें प्रेमके अनुशासनका ही दूसरा नाम है जो मिथ्या व्याख्याकी विकृतिसे अछूता है। दूसरोंके साथ तादात्म्य स्थापित करने और सहयोग करनेकी अभिलाषा ही प्रेम है। ऐसी अभिलाषा सदैव सत्कर्मोंकी प्रेरणा बनती है। प्रेम ही मानव-जीवनका सर्वोपरि और अनुपम धर्म है और प्रत्येक व्यक्ति इसका अपनी अन्तरात्मामें अनुभव करता है। इसकी सर्वाधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति हमें शिशुओंमें मिलती है। मनुष्य भी इसे महसूस करते हैं लेकिन तभीतक जबतक कि संसारके मिथ्या प्रभाव उनकी भावनाओंपर पर्दा नहीं डाल देते।

भारतीय, चीनी, हिब्रू, यूनानी, रोमन — संसारके सभी दार्शनिक मतोंने इसी प्रेम-धर्मको प्रचारित किया है। मैं समझता हूँ कि ईसाने इसे सर्वाधिक स्पष्ट रूपमें व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि इस प्रेम-धर्ममें धार्मिक विधि-निषेध और पैगम्बरोंके कलाम दोनों ही का समावेश है। लेकिन ईसा इतना ही कह कर नहीं रह गये। वे इससे भी आगे गये। उन्होंने इस धर्ममें विकृति पैदा होनेकी सम्भावनाको भी देखा। उन्होंने स्पष्ट कहा कि सांसारिक सुखोंके पीछे दौड़नेवाले व्यक्तियोंके हाथों इस धर्मके विकृत हो जानेका खतरा है। सम्भव है कि [इस धर्मको माननेवाले] लोग अपने-अपने स्वार्थोंकी रक्षाके लिए हिंसाका प्रयोग करें अर्थात् ईसाके कथनानुसार थप्पड़का जवाब थप्पड़से दिया जाये और जो चीजें छीनी गई हों उनको जोर जबर्दस्तीसे वापस लिया जाये और इसी प्रकारके अन्य कार्य भी हों। ईसा यह भी जानते थे कि प्रेमका साथ हिंसाके प्रयोगसे मेल नहीं बैठता; और सभी समझदार व्यक्तियोंको यह बात समझ लेनी चाहिए। प्रेम ही जीवनका मूलभूत तत्त्व है। ईसा जानते थे कि यदि हिंसाको कहीं किसी हद तक भी केवल स्वीकार कर लिया जाये तो इससे प्रेमधर्म व्यर्थ हो जाता है, जबकि हमारी व्यावहारिक शिक्षाओंवाली समूची ईसाई सभ्यता ऊपर-ऊपरसे इसी भ्रान्ति और इसी विचित्र तथा घोर अन्तर्विरोधपर टिकी है।

वास्तवमें प्रेमके साथ-साथ प्रतिकारकी भावनाकी गुंजाइश स्वीकार करते ही प्रेमका अस्तित्व मिट जाता है। तब यह जीवनका धर्म इसमें बना नहीं रह सकता; और उसके विलीन होते ही हिंसा, अर्थात् जिसकी लाठी उसकी भैंस, के सिद्धान्तके अतिरिक्त अन्य कोई सिद्धान्त शेष नहीं रहता। पर उन्नीस शताब्दियोंसे

१. रूसी भाषामें लिखे गये मूल पत्रका [illegible] द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद "काउन्ट टॉल्स्टॉय और सत्याग्रह : गुरुदेवका भारतीयोंके नाम एक सन्देश" शीर्षकसे इंडियन ओपिनियनके २६-११-१९१० के अंकमें प्रकाशित हुआ था। ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित टॉल्स्टॉयके संस्मरण और निबन्धमें भी इसका एल्मर मॉड द्वारा किया हुआ एक अनुवाद मिलता है।

२. टॉल्स्टॉयकी सबसे बड़ी पुत्रीकी हवेली।

चोरी करने, यह जानते हुए कि वह माल चोरीका है चोरीका माल अपने कब्जेमें रखने, जालसाजी करने या जाली कागजातको जाली जानते हुए चलाने, जाली सिक्के बनाने या उन्हें जाली जानते हुए चलाने, अपराध करनेके इरादेसे सेंध लगाने, चोरी करने, बलात्पूर्वक डकैती करने, धमकीसे या दूसरी तरहसे रकम ऐंठनेके लिए धमकी देने या ऐसे किसी अपराधका प्रयत्न करनेके, और उस अपराधसे सम्बद्ध स्थितिके कारण मन्त्री उसे उसका अवांछनीय निवासी या उसमें आया हुआ अवांछनीय व्यक्ति मानता हो;

(च) कोई निर्बुद्धि या मिरगीसे पीड़ित व्यक्ति या कोई व्यक्ति, जो पागल हो या जिसके मस्तिष्कमें कुछ कमी हो, या जो बहरा और गूंगा हो या बहरा और अन्धा हो, या गूंगा और अन्धा हो, या जो किसी दूसरे शारीरिक रोगसे पीड़ित हो — बशर्ते कि किसी भी मामलेमें कोई व्यक्ति स्वयं या उसका साथी या कोई दूसरा व्यक्ति मन्त्रीको उसमें उसके स्थायी पालन-पोषणकी या जब मन्त्री चाहे तब उसको उससे बाहर ले जानेकी सन्तोषजनक जमानत न दे;

(छ) कोई व्यक्ति जो कोढ़से या किसी ऐसे स्पर्शजन्य संक्रामक या किसी घृणित रोगसे या किसी अन्य रोगसे, जो विनियममें बताया गया है, पीड़ित हो या जो मानव-शक्ति निम्न श्रेणीका हो या वेश्या-गुजारा हो।

व्यक्ति जो निषिद्ध नहीं हैं

५. नीचे लिखे व्यक्ति या वर्ग इस अधिनियमके अर्थोंके अनुसार निषिद्ध प्रवासी न होंगे

(क) महामहिमकी नियमित थल-सेना या जल सेनाका कोई सदस्य;

(ख) किसी विदेशी राज्यके सरकारी जहाजके अफसर और उसके कर्मचारी;

(ग) कोई व्यक्ति जो उसमें महामहिम सम्राट् या किसी दूसरे देशकी सरकार द्वारा या उसके अधिकारसे विधिवत् प्रमाणित हो या ऐसे व्यक्तिकी पत्नी, परिवार, कर्मचारी या नौकर;

(घ) कोई व्यक्ति जो ऐसी स्थितियोंमें जिनका समय-समयपर किसी कानूनके अनुसार या किसी पड़ोसी प्रदेश या राज्यकी सरकारके साथ सम्पन्न समझौतेके अनुसार निर्देश किया जाये, उसमें प्रवेश करता है और जो ऐसा व्यक्ति नहीं है जैसा इससे पहले खण्ड अनुच्छेद (ख) (ग) (घ), (ङ), (च) या (छ) में बताया गया है।

अपराध और दण्ड

६. (१) प्रत्येक निषिद्ध प्रवासी, जो इस अधिनियमके लागू होनेके बाद उसमें प्रवेश करेगा या पाया जायेगा वह अपराधी होगा और अपराध सिद्ध होनेपर वह दण्डोंका पात्र होगा

(क) सादी या सख्त कैद जो तीन महीनोंसे ज्यादा न होगी और जिसमें जुर्मानेका विकल्प न होगा; और

(ख) मन्त्रीके आदेश-पत्रसे किसी भी समय उससे निर्वासन।

(२) निषिद्ध प्रवासी जबतक निर्वासित न किया जाये तबतक विनियमसे निर्दिष्ट हिरासतमें रखा जा सकता है।

(३) यदि यह जमानत दे दी जाये कि निषिद्ध प्रवासी एक महीनेके भीतर उसको छोड़ जायेगा और फिर नहीं लौटेगा और मन्त्रीको उससे सन्तोष हो जाये तो निषिद्ध प्रवासी पूर्वोक्त कैदसे या हिरासतसे छोड़ा जा सकता है।

(४) कैदकी ऐसी सजा उससे निषिद्ध प्रवासीके निर्वासित किये जाते ही खत्म मानी जायेगी।

(५) जेल या हवालातके प्रत्येक अधिकारीका कर्तव्य होगा कि निषिद्ध प्रवासीके निर्वासनका आदेश-पत्र दिखाये जानेपर वह अधिकारी उसमें उल्लिखित व्यक्तिको किसी पुलिस अधिकारी या अन्य

और ये शर्तें जो सामान्यतः इस अधिनियमके उद्देश्यों और प्रयोजनोंको अधिक अच्छी तरहसे पूरा करनेके लिए आवश्यक हों।

(२) विनियमोंमें उनके उल्लंघन करने या उनका पालन न करनेपर दी जानेवाली सजाएँ हो सकती हैं जो इस धाराके खण्डमें उल्लिखित सजाओंसे ज्यादा न होंगी।

सजाएँ

(२७) किसी व्यक्तिको जो

(क) इस अधिनियम या किसी कानूनका उल्लंघन करके संघमें या किसी विशेष प्रान्तमें प्रवेश करने या किसी व्यक्तिको इस तरह प्रवेश करने या रहनेमें सहायता देनेके उद्देश्यसे कोई अनुमतिपत्र या अन्य कागज जाली तौरपर तैयार करता है या उसमें गलत ढंगसे परिवर्तन करता है या जो ऐसे किसी अनुमतिपत्र या अन्य कागजको, जो किसी वैध अधिकारसे जारी नहीं किया गया है या वैध अधिकारसे जारी किये जानेपर भी जिसे वह काममें लेनेका अधिकारी नहीं है या किसी जाली या परिवर्तित अनुमतिपत्र या अन्य दस्तावेजको जाली जानते हुए भी बरतता है, प्रयोगमें लाता है या प्रयोगमें उसको प्रस्तुत करता है; या

(ख) उन शर्तोंको पूरा नहीं करता या तोड़ता है जिनके अन्तर्गत उसके नाम वह अनुमतिपत्र या अन्य कागज इस अधिनियम या इन विनियमोंके अन्तर्गत जारी किया गया है; या

(ग) प्रवासी-अधिकारियों या पुलिस-अधिकारियोंको इस अधिनियम या इन विनियमोंके अन्तर्गत अपने कर्तव्यका पालनसे रोकता है, उनके मार्गमें बाधा डालता है या उनका विरोध करता है; या

(घ) इस अधिनियम या विनियमोंकी व्यवस्थाओंका उल्लंघन करता है या उनका पालन नहीं करता जिनके उल्लंघन करने या पालन न करनेकी सजाकी कोई विशेष तौरपर व्यवस्था नहीं की गई है,

अपराध सिद्ध होनेपर जुर्माना देना होगा जो पचास पौंडसे ज्यादा न होगा या जुर्माना न देनेपर सख्त या सादी कैद भुगतनी होगी जो तीन महीनेसे ज्यादा की न होगी और इस खण्डके अनुच्छेद (क) और (ख)का उल्लंघन करनेकी अवस्थामें कैद भुगतनी होगी जिसमें जुर्मानेका विकल्प न होगा।

अधिनियमका नाम

(२८) यह अधिनियम सभी कार्योंके लिए १९११का प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम कहा जा सकेगा और यह १९११ की . . . के प्रथम दिनसे लागू होगा और अमलमें आयेगा।

प्रथम अनुसूची

रद किये गये कानून

प्रान्त	कानूनकी संख्या और साल	कानूनका नाम और विषय	रद होनेवाला अंश
केप ऑफ गुड होप	१९०६ का अधिनियम सं० ३	प्रवासी अधिनियम १९०६	सम्पूर्ण
नेटाल	१९०३ का अधिनियम सं० ३	प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम १९०३	सम्पूर्ण
नेटाल	१९०६ का अधिनियम सं० ३	१९०३ के प्रवासी अधिनियमके संशोधनार्थ	सम्पूर्ण
ट्रान्सवाल	१९०७ का अधिनियम सं० २	एशियाई कानून संशोधन अधिनियम, १९०७	अधिनियम ट्रान्सवालके वैध निवासी एशियाइयों पर लागू होनेके मामलेको छोड़कर शेष भाग
ट्रान्सवाल	१९०७ का अधिनियम सं० १५	प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम १९०७	सम्पूर्ण
ट्रान्सवाल	१९०८ का अधिनियम सं० ३८	प्रवासी प्रतिबन्धक संशोधन अधिनियम १९०८	सम्पूर्ण
ऑरेंज फ्री स्टेट	१८९९ का कानून सं० १८	ऑरेंज फ्री स्टेटमें विदेशियोंका प्रवेश और निष्कासन	सम्पूर्ण
ऑरेंज फ्री स्टेट	१९०२ का अध्यादेश सं० २५	शान्तिपूर्ति और शान्ति रक्षा-अध्यादेश १९०२	खण्ड उन्नीससे चौबीस तक, तथा दोनों खण्डों सहित

द्वितीय अनुसूची

खण्ड इक्कीसके अनुच्छेद (क) में उल्लिखित व्यवस्थाएँ

राज्य	कानूनकी संख्या और सन	कानूनका नाम या विषय	खण्ड जिनका उल्लंघन हुआ है
केप ऑफ गुड होप	१९ २ का अधिनियम सं० ४७	प्रवासियोंका प्रवेश और देशान्तर	खण्ड तीस, इकतीस, बत्तीस और तैंतीस
नेटाल	१९ ३ का अधिनियम सं० ३०	प्रवास-विधि संशोधन अधिनियम १९ ३	खण्ड तीन, तेरह, चौदह और पन्द्रह
ट्रान्सवाल	१९ ३ का अध्यादेश सं० ५	शान्तिरक्षा अध्यादेश १९ ३	खण्ड तीन, तेरह, चौदह और छब्बीस
ट्रान्सवाल	१९०८ का अधिनियम सं० १५	प्रवास-विधि संशोधन अधिनियम १९ ८	खण्ड चार और खण्ड पाँच अनुच्छेद (क)
ऑरेंज फ्री स्टेट	१९ ३ का अध्यादेश सं० ११	व्यापार और शान्तिरक्षा नियमन अध्यादेश १९ ३ १९ ८ के अध्यादेश सं० १९ से संशोधित रूपमें	खण्ड दो, ग्यारह, बारह और तेरह

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४-३-१९११।

सामग्रीके साधन-सूत्र

साबरमती संग्रहालय पुस्तकालय तथा आलेख-संग्रह जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी कालकी और १९३३ तक के भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात सुरक्षित हैं। देखिए खण्ड १ पृष्ठ ३९ ।

गांधी स्मारक संग्रहालय नई दिल्ली गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १ पृष्ठ ३५९।

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स उपनिवेश-कार्यालय लन्दनके पुस्तकालयमें सुरक्षित कागजात। देखिए खण्ड १ पृष्ठ ३५९।

इंडिया ऑफिस ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स भूतपूर्व इंडिया ऑफिसके पुस्तकालयमें सुरक्षित भारतीय मामलोंसे सम्बन्धित वे कागजात और पत्रादि जिनका सम्बन्ध भारत-मन्त्रीसे था।

इंडिया (१८९०-१९२१) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लन्दन स्थित ब्रिटिश समिति द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक पत्र जोकि प्रति शुक्रवारको निकलता था। देखिए खण्ड २ पृष्ठ ४१ ।

इंडियन ओपिनियन (१९०३-६१) प्रति शनिवारको प्रकाशित होनेवाला साप्ताहिक पत्र जिसका प्रकाशन डर्बनमें आरम्भ किया गया था किन्तु जो बादमें फीनिक्स ले जाया गया था। इसमें अंग्रेजी और गुजराती दो विभाग थे। प्रारम्भमें हिन्दी तथा तमिल विभाग भी थे।

केप आर्गस केप टाउनका दैनिक समाचार पत्र।

डायमंड फील्ड्स ऐडवर्टाइज़र किम्बर्लेका दैनिक समाचार पत्र।

नेटाल मर्क्युरी (१८५२   ) डर्बनका दैनिक समाचारपत्र।

रैंड डेली मेल जोहानिसबर्गसे प्रकाशित एक दैनिकपत्र।

स्टार जोहानिसबर्गसे प्रकाशित सान्ध्य दैनिकपत्र।

ट्रान्सवाल लीडर जोहानिसबर्गसे प्रकाशित दैनिकपत्र।

गुजराती बम्बईसे प्रकाशित होनेवाला एक साप्ताहिक समाचारपत्र।

महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधीका जीवन-चरित (लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी) डी० जी० तेन्दुलकर झवेरी और तेन्दुलकर, बम्बई १९५१-५४ आठ जिल्दोंमें।

जीवननुं परोढ़ प्रभुदास छगनलाल गांधी नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद १९४८।

महात्मा गांधीजीना पत्रो जी० एम० पटेल द्वारा सम्पादित सेवक कार्यालय अहमदाबाद १९२१।

गांधीजीनी साधना रावजीभाई पटेल नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, १९३९।

टॉल्स्टॉय ऐंड गांधी डॉक्टर कालीदास नाग पुस्तक भंडार, पटना।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(नवम्बर १३, १९०९ से मार्च १९११)

नवम्बर १३ ट्रान्सवालके भारतीय शिष्टमण्डल (गांधीजी और हाजी हबीब) का इंग्लैंडसे दक्षिण आफ्रिकाके लिए प्रस्थान। भारतके वाइसरॉय लॉर्ड मिन्टोकी हत्याका अहमदाबादमें विफल प्रयास।

नवम्बर १३–२२ किल्डोनन कैसिल नामक जहाजपर अपनी यात्राके दौरान गांधीजीने गुजरातीमें हिन्द स्वराज्य नामक पुस्तक लिखी।

नवम्बर १५ भारत सरकार द्वारा मॉर्ले-मिन्टो सुधारोंको लागू करनेकी योजना प्रकाशित।

नवम्बर १६ इंग्लैंडकी लॉर्ड सभामें उपनिवेश-मन्त्रीने लॉर्ड ऐम्टहिलको बताया कि ट्रान्सवालमें भारतीयोंकी समस्याको हल करनेके लिए उपनिवेश मन्त्रालय और दक्षिण आफ्रिकी संघके प्रतिनिधियों द्वारा बहुत प्रयत्न किये गये हैं। साथ ही यह वादा भी किया कि हाल ही में हुई समझौता-वार्ताका विवरण एक नीली पुस्तिका में प्रकाशित किया जायेगा।

नवम्बर १८ गांधीजीने टॉल्स्टॉयके पत्र एक हिन्दूके नाम की प्रस्तावना गुजरातीमें लिखी।

नवम्बर १९ टॉल्स्टॉयके पत्र एक हिन्दूके नाम की प्रस्तावना अंग्रेजीमें लिखी।

नवम्बर ३० गांधीजी हाजी हबीबके साथ केप टाउन पहुँचे। केप आर्गस के प्रतिनिधिसे भेंट की।

ट्रान्सवालके संघर्षकी सहायतार्थ श्री रतन टाटा द्वारा दिये गये पच्चीस हजार रुपयेके दानके लिए धन्यवाद देते हुए श्री गोखलेको तार किया। बड़ौदा राज्यके प्रधानमन्त्री श्री रमेशचन्द्र दत्तका देहान्त।

दिसम्बर १ कॉमन्स सभामें कर्नल सीलीने स्वीकार किया कि ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंके आव्रजनके विरुद्ध रंग-भेदपर आधारित जो प्रवासी कानून है उससे कहीं अधिक सख्त कानून ऑरेंज रिवर कालोनीमें लागू है।

दिसम्बर २ गांधीजी जोहानिसबर्ग पहुँचे।

पार्क स्टेशनपर रायटरके संवाददाताको भेंट देते हुए सरकारको धन्यवाद दिया कि उसने उन्हें और हाजी हबीबको ट्रान्सवालमें पुनः प्रवेशकी अनुमति दी।

दिसम्बर ३ जोहानिसबर्गमें तमिल महिलाओंकी सभामें भाषण।

स्टार' के अग्रलेखका उत्तर देते हुए लिखा कि "जहाँतक प्रवासका सम्बन्ध है कानूनमें समानताके सिद्धान्तको स्वीकार किया जाये भले ही व्यवहार रूपमें उसकी जानबूझकर अवहेलना ही हो।"

कलकत्तामें आयोजित एक सार्वजनिक सभामें ट्रान्सवालके भारतीयोंके साथ होनेवाले व्यवहारकी निन्दा की गई।

दिसम्बर ४ कलकत्ताकी सभामें श्री पोलक द्वारा दक्षिण आफ्रिकी संघर्षके नए राजनीतिक पहलूपर भाषण।

दिसम्बर ५ जोहानिसबर्गमें शिष्टमण्डलके स्वागतार्थ आयोजित सार्वजनिक सभामें बोलते हुए गांधीजीने श्री हॉस्केनकी समिति और यूरोपीय मित्रोंको उनकी सहायताके लिए धन्यवाद दिया। सभाने निश्चय किया कि जबतक सुसंस्कृत ब्रिटिश भारतीयोंको अन्य प्रवासियोंके समान ही कानून और सैद्धान्तिक समानता नहीं प्रदान की जाती तबतक कष्ट-सहन करते हुए संघर्ष जारी रखा जायगा। जोहानिसबर्गमें आयोजित चीनियोंकी सभामें गांधीजीने शिष्टमण्डलके कार्योंका विवरण दिया।

नायडू और कैलेनबैकके साथ डीपक्लूफ गये जहाँ जेलमें उन्होंने रुस्तमजी और अस्वातसे भेंट की।

दिसम्बर ६ गांधीजीने ट्रान्सवाल-संघर्षके आर्थिक और अन्य पहलुओंपर प्रकाश डालते हुए श्री गोखलेको एक पत्र लिखा और १ पौंड भेजनेका अनुरोध किया।

दिसम्बर ९ रैंड डेली मेल में अपने वक्तव्यमें ट्रान्सवाल सरकारसे अनुरोध किया कि वह भारतीयोंकी सैद्धान्तिक समानताकी माँग स्वीकार कर ले।

दिसम्बर १२ डर्बनकी सार्वजनिक सभामें बोलते हुए गांधीजीने कहा कि व्यापारिक अनुमतिपत्रोंके सम्बन्धमें सरकारने अपील करनेकी जो व्यवस्था की है वह एक जाल है।

दिसम्बर २१ नासिकके कलेक्टर, ए० एम० टी० जैक्सनकी हत्या

दिसम्बर २२ गांधीजीने अपने पुत्र मणिलाल रायप्पन तथा अन्य लोगोंके साथ नेटालसे ट्रान्सवालमें प्रवेश किया किन्तु गिरफ्तार नहीं किये गये।

दिसम्बर २३ ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षने उपनिवेश सचिवको पत्र लिखकर १७ दिसम्बर, १९०९के गजटमें प्रकाशित रेलवे विनियमोंको अनावश्यक, खिझानेवाले और अपमानजनक बताया।

दिसम्बर २४ गांधीजीने फीनिक्स सम्बन्धी अपनी योजनाके आर्थिक तथा अन्य पहलुओंके बारेमें ए० एच० वेस्टको पत्र लिखा।

श्री सोराबजी ६ माहकी सजा भोगकर रिहा हुए।

दिसम्बर २५ इंग्लैंडकी शाही परिषदके सदस्य नियुक्त किये जानेपर श्री अमीर अलीको गांधीजीने बधाई देते हुए पत्र लिखा।

दिसम्बर २९ या उससे पूर्व फीनिक्सके बारेमें वेस्टको एक दूसरा पत्र लिखा।

दिसम्बर २९ लाहौर अधिवेशनमें कांग्रेसने दक्षिण आफ्रिकाके संघर्षकी सराहना करते हुए और गिरमिटिया मजदूरोंकी भर्ती बन्द करनेकी माँग करते हुए एक प्रस्ताव पास किया।

दिसम्बर ३१ सर मंचरजी भावनगरीने उपनिवेश उपमन्त्रीको एक पत्र लिखकर उनका ध्यान पारसी रुस्तमजीके साथ जेलमें होनेवाले दुर्व्यवहारकी ओर आकृष्ट किया।

१९१०

जनवरी १ आर्थिक कारणोंसे इंडियन ओपिनियन का आकार छोटा कर दिया गया।

निश्चय किया था। इसका समर्थन करते हुए गांधीजीने इंडियन ओपिनियन में लेख लिखा।

सत्याग्रहियोंके सम्मानमें डर्बन भारतीय समाज द्वारा आयोजित समारोहमें भाषण किया।

मार्च ११ प्रवासी कानूनोंका उल्लंघन करनेके लिए गांधीजीने अनेक सत्याग्रहियोंके साथ ट्रान्सवालमें प्रवेश किया।

मौलवी अहमद मुख्तारको एक पत्र लिखकर बताया कि फीनिक्सके सिलसिलेमें जो कर्ज चढ़ा है वह संघर्षके दौरान चढ़ा है।

मार्च १७ स्टार के संवाददाताको बताया कि भारतीय अपने मित्री अधिकारोंकी माँग करने नहीं संघर्षमें भाग लेनेके लिए जोहानिसबर्ग आये हैं।

नेटाल भारतीय कांग्रेसके अध्यक्ष और मन्त्रियोंने भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयकके विरुद्ध एक प्रार्थनापत्र उपनिवेश-सचिवको भेजा।

मार्च २१ वाइसरॉयकी परिषदमें रॉबर्ट्सनने एक विधेयक पेश किया जिसका उद्देश्य १९०८के भारतीय प्रवासी अधिनियमको संशोधित करके श्री पोलकके २५ फरवरीवाले प्रस्तावको कार्यान्वित करना था।

मार्च २४ बम्बईके सरकारी गजट में विज्ञप्ति निकली कि हिंद स्वराज्य सर्वोदय (रस्किनके अन्टु दिस लास्ट का गुजराती अनुवाद) मुस्तफा कामेल पाशाका भाषण (काहिरामें अपनी मृत्युसे पहले दिये गये एक मिस्री देशभक्तके भाषणका गुजराती अनुवाद) और एक सत्यवीरकी आत्मकथा इन पुस्तकोंको देशद्रोहकी भावना फैलानेवाली सामग्री होनेके कारण जब्त कर लिया गया है। ये सारी पुस्तकें इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेससे प्रकाशित हुई थीं।

अप्रैल ४ गांधीजीने लियो टॉल्स्टॉयको एक पत्रके साथ अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज्य की एक प्रति उनकी सम्मतिके लिए भेजी।

अप्रैल ८-९ ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षके पत्रका उत्तर देते हुए ट्रान्सवालके लेफ्टिनेंटने इस शिकायतको गलत बताया कि सत्याग्रही कैदियोंको डीपक्लूफ जेलमें पक्के किस्मके अपराधी बन्दियोंके साथ रखनेकी दृष्टिसे भेजा जाता है। उसने सत्याग्रहियोंको दी जानेवाली खुराकमें परिवर्तन करने या उनकी बदली दूसरी जेलमें करनेसे इनकार कर दिया।

अप्रैल १२ कामन्स सभामें भारतसे नेटाल भेजे जानेवाले गिरमिटिया मजदूरोंका प्रश्न श्री ओ'ग्रेडी और श्री रीजने उठाया।

अप्रैल १४ ५९ भारतीयोंको उमलोटी नामक जहाज द्वारा ट्रान्सवालसे निर्वासित करके भारत भेजा गया।

गांधीजीने बदर्नी अफसरको करोड़ियाके मुकदमेके सिलसिलेमें पत्र लिखते हुए सरकारसे अनुरोध किया कि प्रतिष्ठित भारतीयोंकी गिरफ्तारीके वारन्ट जारी करानेमें वह न्याय-बुद्धिसे काम ले।

अप्रैल २५ श्री गोखलेको पत्र लिखकर सूचित किया कि सत्याग्रह कोष का उपयोग किस प्रकार किया जा रहा है।

मई ५ ट्रान्सवाल सरकार द्वारा बिना मुकदमा चलाये भारतीयोंको निर्वासित करनेके विरुद्ध मद्रासकी सार्वजनिक सभामें रोष प्रकट किया गया।

मई ६ इंग्लैंडके राजा एडवर्ड सप्तमका देहान्त।

मई ८ हिन्द स्वराज्य के बारेमें अपनी सम्मति देते हुए गांधीजीको लिखे एक पत्रमें टॉल्स्टॉयने कहा कि सत्याग्रह न केवल भारतीयों बल्कि समस्त मानवताके लिए अत्यन्त महत्त्वकी वस्तु है।

मई ९ ट्रान्सवाल विधानसभाके सदस्य श्री डब्ल्यू॰ हॉस्केनके पत्रका उत्तर देते हुए गांधीजीने हिन्द स्वराज्य में व्यक्त अपने विचारोंका समर्थन किया और उन्हें ठीक बताया।

मई ९ कैलेनबैकने ट्रान्सवालमें सत्याग्रह चलने तक के लिए लॉलीके निकट स्थित अपना फार्म सत्याग्रहियों और उनके परिवारके लिए देनेका प्रस्ताव किया था। गांधीजीने इसके लिए धन्यवाद देते हुए श्री कैलेनबैकको पत्र लिखा।

जून १ दक्षिण आफ्रिका संघकी स्थापना हुई।

जून २ समाचारपत्रोंको लिखे गये एक पत्रमें गांधीजीने कहा कि दक्षिण आफ्रिका संघकी स्थापना कोई खुशी मनानेकी बात नहीं। संघका अर्थ तो एशियाइयोंके विरुद्ध सभी शत्रु-शक्तियोंका एकत्र होना है।

जून ९ सर चार्ल्स हार्डिंग भारतके वाइसरॉय नियुक्त हुए।

जून ११ ट्रान्सवाल सरकार द्वारा अप्रैलमें निर्वासित किये गये २६ सत्याग्रही प्रेसीडेंट नामक जहाजसे डर्बन वापस लौटे।

जून १८ डर्बनमें भारतीयोंकी विशाल सभामें सत्याग्रहका समर्थन किया गया।

भारतसे बाहर शाही उपनिवेशों और संरक्षित प्रदेशोंमें जानेवाले प्रवासियोंके मामलेकी जाँच करनेवाली समितिकी रिपोर्ट प्रकाशित।

जून २६ गांधीजीने जोहानिसबर्गके थियोसॉफिस्ट लॉजमें आयोजित एक सभामें "आधुनिक बनाम प्राचीन सभ्यता" पर भाषण दिया।

जून २९ कॉमन्स सभामें श्री ओ'ग्रेडीने ट्रान्सवालमें भारतीयोंकी समस्यापर चर्चा करते हुए सुझाव दिया कि समझौता करानेके लिए गांधीजी और स्मट्सके बीच बातचीत होनी चाहिए।

जुलाई १ गांधीजीने लन्दन-स्थित दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिको तार देकर सूचित किया कि नेटालने निर्वासित भारतीयोंको वापस आनेपर प्रवेश देनेसे मना कर दिया है।

जुलाई ३ *टॉल्स्टॉय फार्मपर बसनेवालोंकी सहायताके लिए उदार दानकी अपील की।*

जुलाई ८ ब्रिटिश भारतीय संघने लॉर्ड ग्लैडस्टनको अभिनन्दन-पत्र दिया।

जुलाई ९ उपनिवेश मन्त्रीको उत्तर देते हुए लॉर्ड ग्लैडस्टनने सूचित किया कि तीन महीने तक की सजा काटनेवाले भारतीयोंकी दैनिक खुराकमें वृद्धि करनेका निश्चय किया गया है।

जुलाई २१ नेटाल सरकारी गजटमें १८९१ के भारतीय प्रवासी कानूनके अन्तर्गत बनाये गये नियम प्रकाशित हुए। इन नियमोंके अनुसार बागानोंमें काम करनेवाली

भारतीय महिलाओंके बच्चोंके लिए छायाकी व्यवस्था करना गिरमिटिया भारतीय प्रवासियोंसे काम करानेवाले मालिकोंके लिए अनिवार्य करार दिया गया।

निर्वासित करके भारत भेजे गये सत्याग्रहियोंके लिए श्री जी॰ ए॰ नटेसन द्वारा किये गये कार्योंकी गांधीजीने सराहना की।

जुलाई २२ भारत मन्त्री लॉर्ड मॉर्लेने उपनिवेश मन्त्री लॉर्ड क्रू को पत्र लिखकर इस बातपर खेद व्यक्त किया कि ट्रान्सवाल सरकारने जेलमें मुसलमान बन्दियोंको रमजानके महीनेमें रोजे आदि रखनेकी सहूलियत देनेसे और हिन्दू कैदियोंको उनकी धार्मिक भावनाको ठेस पहुँचानेवाले कामोंसे छुटकारा देनेसे इनकार कर दिया है।

जुलाई २६ लॉर्ड ऍम्टहिलने ट्रान्सवालसे भारतीयोंके निर्वासनका प्रश्न लॉर्डसभामें उठाया।

जुलाई २८ ब्रिटिश भारतीय संघने दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति (लन्दन) को तार देकर सूचित किया कि श्री रामप्पनको निर्वासित करके मद्रास भेज दिया गया है, और सरकार नाबालिग बच्चोंको निषिद्ध प्रवासी करार देनेकी कोशिश कर रही है।

जुलाई ३१ गांधीजीने वक्तव्य द्वारा कॉमन्स सभामें दिये गये इस वक्तव्यपर टिप्पणी की कि मताधिकारकी माँग करनेवाली महिला सत्याग्रहियों और दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहियोंके साथ जेलमें अपमानजनक व्यवहार न करनेके आदेश दे दिये गये हैं।

अगस्त ३ लन्दनमें सर मंचरजी भावनगरीकी अध्यक्षतामें सार्वजनिक सभा हुई जिसमें ट्रान्सवालके भारतीयोंके साथ होनेवाले दुर्व्यवहार और निर्वासनपर क्षोभ व्यक्त किया गया।

अगस्त ५ श्री पोलकने शाही परिषदमें ट्रान्सवालसे निर्वासित किये जानेवाले व्यक्तियोंके सम्बन्धमें प्रश्न पूछे।

अगस्त ६ उपनिवेश-मन्त्रीने लॉर्ड मार्लेके २२ जुलाईवाले पत्रको लॉर्ड ग्लैडस्टनके पास भेजते हुए लिखा कि भारतीयोंकी धार्मिक भावनाको ठेस पहुँचानेवाली इन बातोंसे समझौतेके मार्गमें बहुत बड़ी बाधा है।

अगस्त ९ लॉर्ड मॉर्लेने इस बातका खण्डन किया था कि डेलागोआ-बेसे बम्बई तककी यात्रामें निर्वासित भारतीयोंके साथ बहुत सख्तीका बर्ताव किया गया। इसीके आधारपर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने एशियाइयोंकी तत्सम्बन्धी शिकायतोंको अतिशयोक्ति बताते हुए एक अग्रलेख लिखा था। गांधीजीने इसका उत्तर भेजा।

अगस्त ११ उपनिवेश कार्यालयने लन्दनमें ३ अगस्तको होनेवाली सभाके विषयमें सर मंचरजी भावनगरी और श्री रिचको लिखा।

अगस्त १५ गांधीजीने टॉल्स्टॉयको पत्र लिखा।

अगस्त २३ यूनाइटेड स्टेट्सके व्यापारी श्री लोगनाथन पुत्रो बालिग होनेपर एशियाई पंजीयकने उस पंजीयन करनेसे इनकार कर दिया था। श्री लोगनाथनने इस पंजीयके विरुद्ध अपील की।

मद्रासके विक्टोरिया हॉलमें सर एस० सुब्रह्मण्यम्‌की सभापतित्वमें एक सभा हुई जिसमें निर्वासित भारतीयोंको उनके ट्रान्सवालके लिए पुन: रवाना होनेके अवसरपर विदाई दी गई। सभामें श्रीमती एनी बेसेंट भी उपस्थित थीं।

अगस्त २५ केप टाउनकी नगर परिषदने प्रस्ताव पास करके समस्त भारतीयोंको व्यापारी अनुमतिपत्र न देनेका निश्चय किया।

सितम्बर २ श्री रिचने पंजीयन कानून और ट्रान्सवालसे भारतीयोंके निर्वासनके बारेमें उपनिवेश कार्यालयके अगस्त ११ के पत्रका उत्तर दिया।

सितम्बर ७ टॉल्स्टॉयने गांधीजीको पत्र लिखकर सत्याग्रहका समर्थन किया।

सितम्बर ९ गांधीजीने अदालत द्वारा छोटाभाईकी अपील रद करने और नाबालिग एशियाइयोंपर अदालतके फैसलेके प्रभावका जिक्र करते हुए इंडियन ओपिनियन में लिखा।

सितम्बर ११ सर्वोच्च न्यायालयने छोटाभाईकी अपील रद की और उनसे खर्चा दिलाया।

सितम्बर १७ गांधीजी भारतसे लौटनेवाले निर्वासित भारतीयों और श्री पोलकका स्वागत करनेके लिए डर्बन रवाना हुए।

सितम्बर २ उपनिवेशमें ही पैदा हुए भारतीयोंकी एक सभामें भाषण किया। लौटनेवाले निर्वासित भारतीयोंके स्वागतका कार्यक्रम तय करनेके लिए आयोजित काठियावाड़ आर्य-मण्डलकी सभामें भाषण।

सितम्बर २४ इंडियन ओपिनियन में लिखकर डॉ० रघुनाथकी टैम्बुलैंडकी ओरसे केपकी प्रान्तीय परिषद्के सदस्य निर्वाचित होनेपर बधाई दी।

सितम्बर २६ एशियाइयोंके सम्बन्धमें अगस्त ८, १९१ तक बनाये गये कानूनोंका हवाला देनेवाली नीली पुस्तिका प्रकाशित।

सितम्बर २८ गांधीजी श्री पोलकसे मिले। श्री पोलक अन्य निर्वासित भारतीयोंके साथ भारतसे डर्बन पहुँचे थे।

अक्तूबर ४ श्री रिचने इंग्लैंडसे लौटनेपर कप आर्मेस के प्रतिनिधिको भेंट दी।

अक्तूबर ५ श्री पोलक और अन्य सत्याग्रहियोंके सम्मानमें काठियावाड़ आर्य-मण्डल द्वारा डर्बनमें *आयोजित समारोहमें गांधीजीने भाषण दिया।*

अक्तूबर ७ ट्रान्सवाल जानेके इच्छुक भारतीयोंके एक दलको प्रवासी अधिकारियोंने जहाजसे उतरनेकी अनुमति नहीं दी थी। इसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालयमें ब्रिटिश भारतीय लीगके अध्यक्षकी याचिकापर सुनवाई हुई।

अक्तूबर ८ *गांधीजीने निर्वासितोंको जहाजसे उतरने देनेके विषयमें गृह-मन्त्रीको लिखा।*

अक्तूबर १६ नारायणस्वामीकी मृत्यु।

१६ अक्तूबरके बाद गांधीजीने दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति (लन्दन) को एक पत्र लिखा जिसमें नारायणस्वामीकी मृत्युको कानून की आड़में हत्या बताया।

अक्तूबर २५ एशियाई पंजीयकको पत्र लिखकर अनुरोध किया कि वह मुख्य प्रवासी प्रतिबन्धक अधिकारीसे कह दे कि अदालतके आदेशानुसार जो भारतीय सैनिसबरी

द्वीपपर रोक रखे गये हैं उनके पंजीयन प्रमाणपत्रोंकी दूसरी प्रतिके लिए दिये गये प्रार्थनापत्र स्वीकार किये जायें।

नवम्बर ६ प्रवासी अधिकारीको पूर्व-सूचना देनेके बाद गांधीजी श्रीमती सोढा और उनके तीन बच्चोंके साथ डर्बनसे टॉल्स्टॉय फार्म जाते हुए फोक्सरस्ट पहुँचे।

नवम्बर ७ श्रीमती सोढाकी ओरसे गांधीजीने अदालतमें पैरवी की। प्रवासी अधिकारीको तार द्वारा सूचित किया कि श्रीमती सोढा ट्रान्सवालमें स्थायी निवासका अधिकार नहीं चाहती।

नवम्बर ८ ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षने श्रीमती सोढाकी गिरफ्तारीके विषयमें जनरल स्मट्सको तार देकर अनुरोध किया कि श्रीमती सोढाका मुकदमा उठा लिया जाये।

नवम्बर ९ गांधीजीने श्री पोलक और रिचके सम्मानमें चीनी समाज द्वारा आयोजित एक समारोहमें भाषण दिया।

नवम्बर १ ब्रिटिश भारतीय संघने गृह-मन्त्रीको तार देकर अनुरोध किया कि श्रीमती सोढाको अस्थायी अनुमतिपत्र दे दिया जाये और यह भी कहा कि संघ महिलाओंको संघर्षमें नहीं खींचना चाहता।

नवम्बर ११ सर्वोच्च न्यायालयके ट्रान्सवाल स्थित प्रान्तीय विभाग द्वारा छोटाभाईकी अपील खारिज।

अखिल भारतीय मुस्लिम लीगकी लन्दन शाखाने उपनिवेश मन्त्रीको पत्र भेजकर समुद्र पारके शाही उपनिवेशोंमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंके साथ होनेवाले व्यवहारका विरोध किया।

नवम्बर १२ गृह-मन्त्रीने श्रीमती सोढाको अस्थायी अनुमतिपत्र देनेसे भी इनकार कर दिया।

नवम्बर १४ गांधीजीने श्रीमती सोढाके मामलेको लेकर समाचारपत्रोंको पत्र लिखा। स्मट्सने विदेशियोंके नागरिकताके अधिकार प्राप्त करनेसे सम्बन्धित विभिन्न कानूनोंको एकीकृत और संशोधित करनेवाले विधेयकके द्वितीय वाचनका प्रस्ताव रखा।

नवम्बर १८ से पहले गांधीजीने छोटाभाईके मामलेके बारेमें एशियाई सम्मेलनके सदस्योंको पत्र लिखा।

नवम्बर १८ लन्दनके कैक्स्टन हॉलमें श्री पोलककी अध्यक्षतामें एक सभा हुई जिसमें श्री बेरेसफोर्ड पॉवेलने साम्राज्यके अन्दर भाईचारा ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंके विशेष संदर्भमें विषयपर अपना निबन्ध पढ़ा। ब्रिटिश भारतीय संघने ड्यूक ऑफ कनॉटको अभिनन्दन पत्र देनेके आयोजनमें कोई भाग न लेनेका निश्चय किया।

श्री रतन टाटाने ट्रान्सवालके संघर्षके लिए गांधीजीको २५ हजार रुपयेका चैक भेजा।

नवम्बर १८के बाद हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अध्यक्षने ड्यूक ऑफ कनॉटको स्वागतका सन्देश भेजते हुए सादर सूचित किया कि वे उनके स्वागतके लिए आयोजित सार्वजनिक समारोहमें भाग नहीं ले सकेंगे।

जनवरी ३ ड्यूक ऑफ कनॉटने लन्दनके मित्रगृहोंमें एक दावतके दौरान आशा व्यक्त की कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके प्रश्नपर जल्द ही समझौता हो जायेगा।

फरवरी १ दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके नये नियम लागू हुए।

फरवरी १४ गृह-मन्त्रीने नेटालके कानूनमें रद्दोबदल करने और भारतीय महिलाओंको ३ पौंड करकी अदायगीसे विमुक्त करनेका नेटाल भारतीय कांग्रेसका अनुरोध माननेसे इनकार कर दिया।

फरवरी १९ दक्षिण भारतीय मुस्लिम लीग लन्दनने दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके कष्टोंके बारेमें उपनिवेश उपमन्त्रीको लिखा।

फरवरी २ ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षने रेलवेके नये नियमोंके विरुद्ध दक्षिण आफ्रिकी रेलवेके कार्यवाहक महाप्रबन्धकको लिखा।

फरवरी २४ पोलकने टाइम्स ऑफ नेटाल को लिखते हुए नेटालमें गुलामी प्रथाकी निन्दा की।

फरवरी २५ दक्षिण आफ्रिकी संघ सरकारके असाधारण गजटमें प्रवासी प्रतिबंधक विधेयक (१९११)का पाठ प्रकाशित हुआ।

स्ट्रेंजर नामक बागानके एक मालिकके गिरमिटिया भारतीय मजदूरोंने सत्याग्रह किया।

फरवरी २७ स्ट्रेंजर बागानके सत्याग्रहियोंको सजा सुनाई गई और उन्हें जेल भेज दिया गया।

फरवरी २८ भारतीय प्रवासीयोंके संरक्षक द्वारा स्ट्रेंजर बागानके सत्याग्रहियोंकी रिहाई।

स्मट्सने संसदमें कहा कि एशियाई लोग एक अत्यंत प्राचीन जातिके हैं इसलिए उनके साथ आम तौरपर बर्बर मानकर बर्ताव नहीं किया जा सकता।

मार्च २ प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयकका प्रथम वाचन।

गांधीजीने गृह-मन्त्रीके निजी सचिवके नाम अपने पत्रमें यह स्पष्टीकरण माँगा कि क्या नये विधेयकके खण्ड १ के अन्तर्गत शैक्षणिक परीक्षामें उत्तीर्ण होनेवाले एशियाइयोंको १९०८के अधिनियम ३६के अन्तर्गत अपना पंजीयन कराये बिना ट्रान्सवालमें प्रवेश और निवास करनेकी अनुमति रहेगी।

प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयककी व्याख्याके बारेमें राय जाननेके लिए जोहानिसबर्गके एक वकील आर. ग्रेगरोवस्कीका लिखा।

मार्च ४ लेनने गांधीजीके पत्रके उत्तरमें लिखा कि नये प्रवासी विधेयकके अन्तर्गत प्रवासियोंके रूपमें प्रवेश पानेवाले एशियाई पंजीयन कानूनोंके अधीन नहीं होंगे और उनपर प्रांतीय सीमाओंका प्रतिबन्ध नहीं रहेगा।"

गांधीजीने लेनके नाम अपने पत्रमें अनुरोध किया कि समितिके स्तरपर नये विधेयकको इस प्रकार संशोधित किया जाये कि उसका आश्वासन "बिलकुल स्पष्ट" हो जाये। उन्होंने पंजीकृत एशियाइयोंकी पत्नियों और नाबालिग बच्चोंके लिए वैधानिक संरक्षणकी माँग की।

मार्च २३ जोहानिसबर्गमें यूरोपीय ब्रिटिश भारतीय समितिने नये प्रवासी विधेयकके बारेमें गृह-मन्त्रीके साथ हुए गांधीजीके हालके पत्र-व्यवहारकी ताईद की और सरकारसे प्रस्तावित हलको स्वीकार करनेके लिए कहा।

मार्च २४ स्मट्सके निजी सचिवने गांधीजीको सूचित किया कि "प्रवासी विधेयकमें या सरकार द्वारा पेश किये जानेवाले किसी भी संशोधनमें किसी भी प्रकारका कोई जाति या रंग-भेद नहीं रहेगा।

स्मट्सने ऑरेंज फ्री स्टेटके सम्बन्धमें प्रस्ताव किया कि उस प्रान्तके मौजूदा कानूनके अन्तर्गत वर्तमान स्थितिको ज्यों-का-त्यों रहने दिया जाये।

गांधीजीने स्मट्सके निजी सचिवको तार द्वारा कहा कि यदि शिक्षित एशियाई प्रवासियोंको ऑरेंज फ्री स्टेटमें प्रवेश करनेपर एशियाई पंजीयन कानूनके अधीन चलना पड़ा तो जाति-भेद पैदा होना निश्चित ही है।

मार्च २५ केप टाउनके लिए रवाना।

मार्च २६ डर्बनमें नेटाल भारतीय कांग्रेसके तत्त्वावधानमें हुई विशाल सभामें नये प्रवासी विधेयकका विरोध किया गया।

मार्च २७ केप टाउनमें गांधीजीने स्मट्ससे भेंट की।

मार्च २९ नेटाल भारतीय कांग्रेसने नये व्यक्ति-कर विधेयकके विरोधमें वित्त-मन्त्रीको तार भेजा।

गांधीजीने लेनको भेजे गये पत्रमें कहा कि प्रवासी विधेयकमें अधिवास विवाह और माता-पिताके सम्बन्धके बारेमें स्मट्स द्वारा पेश किये जानेवाले संशोधनोंमें जो यह व्यवस्था की जा रही है कि प्रवासी अधिकारीके सामने साक्ष्य प्रस्तुत किया जाये उसके फलस्वरूप पक्षपात भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरीके लिए रास्ता खुल सकता है।

मार्च ३ से पहले केप-आर्गस'से भेंट।

मार्च ३ एक डब्ल्यू रिच और अपने सम्मानमें केप टाउन युनाइटेड हिन्दू एसोसिएशन द्वारा आयोजित सभामें भाषण किया।

वास्तुकार – आर्किटेक्ट
विक्रेता (व्यापारिक) अनुमतिपत्र अधिनियम – डीलर्स लाइसेंसिज ऐक्ट
विचारार्थ सूची – सब्जेक्ट्स लिस्ट
विधान परिषद् – लेजिस्लेटिव कौंसिल
विधेयक – बिल
विनियम – रेगुलेशन
व्यक्ति-कर – पोल टैक्स
शान्ति-रक्षक न्यायाधीश – जस्टिस ऑफ पीस
शान्ति-सुरक्षा अनुमतिपत्र – पीस प्रिज़र्वेशन परमिट
शाही आयोग – रॉयल कमीशन
शिष्टमण्डल – डेपुटेशन
शुल्क-सूची – टैरिफ बुक
शैक्षणिक परीक्षा (कसौटी) – एजुकेशन टेस्ट
सोमाचारी – [illegible]
संघ-संसद – यूनियन पार्लियामेंट
संयुक्त कर पुस्तक – ज्वाइंट टैरिफ बुक
संरक्षक – प्रोटेक्टर
सत्याग्रह, अनाक्रामक प्रतिरोध – पैसिव रेज़िस्टेंस
सत्याग्रही, अनाक्रामक प्रतिरोधी – पैसिव रेज़िस्टर
सपरिषद्-गवर्नर – गवर्नर-इन-कौंसिल
सपरिषद्-सम्राट् – किंग-इन-कौंसिल
समझौता – सेटलमेंट
समाचारपत्र-अधिनियम – प्रेस लॉ ऐक्ट
सर्वोच्च न्यायालय – सुप्रीम कोर्ट
साम्राज्य-सरकार – इम्पीरियल गवर्नमेंट
स्थायी निवास – परमानेंट रेज़िडेंस
स्वेच्छया पंजीकृत – वॉलंटरी रजिस्ट्रेशन
हमीदिया इस्लामिया अंजुमन – हमीदिया इस्लामिक सोसाइटी

शीर्षक-सांकेतिका

सांकेतिका

आ

इ

ई

उ

ठ

ड

त

थ

द

भ

ल

व

य

र

ल

व